›

श्रीमद् आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिविरचित

लब्धिसार

[संस्कृतहिन्दी टीकाद्वयसहित]

जयन्त्यन्वहमर्हन्तः सिद्धाः सूर्युपदेशकाः ।

साधवो भव्यलोकस्य शरणोत्तममङ्गलम् ।।१।।

अन्वयार्थ – जो **(भव्यलोकस्य)** भव्य जीवों के लिए **(शरणोत्तममंगलम्)** शरण, उत्तम और मंगलस्वरूप हैं, वे **(अर्हन्तः, सिद्धाः, सूर्युपदेशकाः, साधवः)** अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु **(अन्वहम्)** प्रतिदिन अर्थात् सदैव **(जयन्ति)** जयवन्त हो अर्थात् सर्वोत्कृष्टरूप से विराजमान रहे।।१।।

श्रीनागार्यतनूजातशान्तिनाथोपरोधतः ।

वृत्तिर्भव्यप्रबोधाय लब्धिसारस्य कथ्यते ।।२।।

श्लोकार्थ – (श्री नागार्यतनूजातशान्तिनाथोपरोधतः) श्री नागार्यपुत्र शांतिनाथ के अनुरोधवश **(भव्यप्रबोधाय)** भव्य जीवों को उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए **(लब्धिसारस्य)** लब्धिसार ग्रन्थ की **(वृत्तिः)** टीका **(कथ्यते)** कही जाती है (लिखी जाती है।)

श्रीमन्नेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती सम्यक्त्वचूडामणिप्रभृतिगुणनामाङ्कितचामुण्डरायप्रश्नानुरूपेण कषायप्राभृतस्य जयधवलाख्यस्य द्वितीयसिद्धान्तस्य पञ्चदशानां महाधिकाराणां मध्ये पश्चिमस्कन्धाख्यस्य पञ्चदशस्याधिकारस्यार्थं संगृह्य लब्धिसारनामधेयं शास्त्रं प्रारभमाणो भगवत्पञ्चपरमेष्ठिस्तवप्रणामपूर्विकां कर्तव्यप्रतिज्ञां विधत्ते–

जयधवला नामक द्वितीय सिद्धांतग्रन्थ कषायप्राभृत में पंद्रह महाधिकार हैं । उसमें पश्चिम स्कंध नामक पन्द्रहवें अधिकार के अर्थ को ग्रहण करके सम्यक्त्वचूड़ामणि इत्यादि गुणों से प्रसिद्ध चामुण्डराय के प्रश्नानुसार श्री नेमिचन्द्र सिद्धातचक्रवर्ती लब्धिसार नामक ग्रन्थ को लिखना प्रारंभ करते हैं । इससे पूर्व पञ्चपरमेष्ठी भगवन्तों की स्तुति व वंदना करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं ।

विशेषार्थ : श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने षट्खण्डागम के अन्तर्गत जीवस्थान खण्ड के चूलिका नामक अर्थाधिकार की ८ वीं चूलिका और कषायप्राभृत के स्वयं गुणधर आचार्य द्वारा स्थापित अन्त के ६ अर्थाधिकारों का अवलम्बन लेकर लब्धिसार और क्षपणासार नामक महान् ग्रन्थ की रचना की है। कषायप्राभृत के अन्त में पश्चिमस्कंधनामक एक अनुयोगद्वार अवश्य है। किन्तु उसमें केवलिसमुद्घात के प्रथम समय से लेकर सिद्धगति प्राप्त होने तक के कार्यविशेष का मात्र निर्देश है। उसमें दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय की उपशामना और क्षपणा का विधान नहीं है ।

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे ।
वंदिय सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं परूवेमो ।।१।।

सिद्धान् जिनेन्द्रचन्द्रान् आचार्योपाध्यायसाधुगणान् ।
वन्दित्वा सम्यग्दर्शनचारित्रलब्धिं प्ररूपयामः ।।१।।

सिद्धान् जिनेन्द्रचन्दद्रानाचार्योपाध्यायांश्च साधुगणान् वन्दित्वा सम्यग्दर्शन-चारित्रलब्धिं प्ररूपयामः। सम्यग्दर्शनसम्यक्चारित्रयोर्लब्धिः प्राप्तिर्यस्मिन् प्रतिपाद्यते स लब्धिसाराख्यो ग्रन्थः, तं प्ररूपयामः इति शास्त्रकारेण कृत्यप्रतिज्ञा दर्शिता। पूर्वं किं कृत्वा? वन्दित्वा स्तुत्वा प्रणम्य चेत्यर्थः। कान्? जिनेन्द्रचन्द्रान्-जिनेन्द्रा अर्हन्तः चन्द्रा इव चन्द्राः, सकललोकप्रकाशकाह्लादकत्वात्। मुख्यार्थो वायं चन्द्रशब्दः । तथा सिद्धान्-कृतकृत्यानुपलब्ध-स्वात्मनश्च तथा आचार्यान् पञ्चाचारप्रवर्तनपरान् तथा उपाध्यायान्-उपेत्य विनयादधीयन्ते भव्यलोका एतेभ्य इत्युपाध्यायास्तान् तथा साधुगणांश्च-साधयन्ति मोक्षमार्गमाराधयन्तीति साधवस्तेषां गणान् देशान्तरकालान्तरवर्तिनः समूहान् गुरुकुलभेदभिन्नान् वा ।।१।।

अन्वयार्थ : मैं (नेमिचन्द्राचार्य) **(सिद्धे)** सिद्धों को **(जिणिंदचंदे)** जिनेन्द्रचंद्र अर्थात् अरिहन्तों को **(आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे)** आचार्य, उपाध्याय व साधुओं को **(वंदिय)** नमस्कार करके **(सम्मद्दंसण-चरित्तलद्धिं)** सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र लब्धि का **(परूवेमो)** वर्णन करता हूँ ।।1।।

टीकार्थ : सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र की प्राप्ति का वर्णन जिसमें किया गया है, वह लब्धिसार ग्रन्थ है । वह ग्रन्थ मैं कहता हूँ इस प्रकार शास्त्र का प्ररूपण करने की प्रतिज्ञा की है। उससे पूर्व क्या करके? वंदन करके अर्थात् स्तुति व प्रणाम करके। किसको? जिनेन्द्रचंद्र को-संपूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाले और आनन्द देने वाले होने से अरिहन्त चन्द्रमा के समान हैं अथवा यहाँ चंद्रशब्द प्रमुख है अर्थात् अरिहन्त ही चन्द्रमा है ।

कृतकृत्य और अपनी आत्मा को जिसने प्राप्त किया है ऐसे सिद्धों को तथा पंचाचारों का प्रवर्तन करने में तत्पर ऐसे आचार्यों को तथा जिसके पास जाकर भव्य जीव विनय से अध्ययन करते हैं ऐसे उपाध्यायों को, मोक्षमार्ग की साधना–आराधना करने वाले देशान्तर, कालान्तरवर्ती साधु समूहों को अथवा गुरुकुल के भेद से भिन्न साधु समूहों को (वंदन करके लब्धिसार ग्रन्थ कहने की नेमिचन्द्र आचार्य ने प्रतिज्ञा की है।) ।।१।।

विशेषार्थ : सिद्ध भगवान आठ कर्मों से रहित व आठ गुणों से युक्त होते हैं । अरिहंत भगवान घातिया कर्म ४७, आयु कर्म की ३ और नामकर्म की १३– इस प्रकार ६३ प्रकृतियों से रहित, १८ दोषों से रहित , १००८ लक्षणों से युक्त, १८००० शीलों के स्वामी तथा ४६ गुणों से सहित होते हैं । आचार्य १२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक, ३ गुप्ति– इसप्रकार ३६ गुणों से सहित होते हैं । उपाध्याय ११ अंग व १४ पूर्व के पाठी होते हैं तथा वे श्रुत के धारक दूसरों को पढ़ाते हैं । साधु २८ मूलगुणों का पालन करते हैं । ऐसे पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति का वर्णन करने की प्रतिज्ञा इस मंगलाचरण गाथा में की है ।

एवं कृतपञ्चपरमेष्ठिस्तवप्रणामरूपमुख्यमङ्गल आचार्यः प्रथमोद्दिष्टसम्यग्दर्शनप्राप्त्युपायप्ररूपणं प्रक्रमते–

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो।
पढमुवसम्मं गेण्हदि[1] पंचमवरलद्धिचरिमम्हि[2] ।।२।।

चतुर्गतिमिथ्यः संज्ञी पूर्णो गर्भजो विशुद्धः साकारः ।
प्रथमोपशमं गृह्णाति पञ्चमवरलब्धिचरमे ।।२।।

अनादिः सादिर्वा मिथ्यादृष्टिरेव चतसृष्वपि गतिषूत्पन्नः दर्शनमोहस्य प्रथमोपशमं गृह्णाति करोतीत्यर्थः । तिर्यग्गतौ तु संज्ञी पञ्चेन्द्रिय एव नान्यः । तिर्यग्मनुष्यगत्योस्तु पर्याप्तको गर्भजश्चैव नान्यः । स च चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिर्विशुद्ध एव क्षयोपशमलब्धिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या वर्धमानविशुद्धिरित्यर्थः । सोऽपि साकारोपयोगवानेव, गुणदोषादिविचाररूपज्ञानोपयोगे सत्येव तत्त्वार्थश्रद्धानरूपसम्यक्त्वप्राप्तिसम्भवात्, अनाकारे दर्शनोपयोगे तद्विचाराभावात् । कस्मिन् काले प्रथमोपशमं गृह्णाति ? पञ्चमी लब्धिःकरणलब्धिः तस्या वरः उत्कृष्टो भागः अनिवृत्तिकरणपरिणामः, तस्य लब्धिः प्राप्तिः तस्याः चरमे

---

१) पाठभेद – पढमुवसमं स गिण्हदि। मु.प्र. २) ध. पु. ९, पृ. २०७ । क. पा. पृ. ६१५

चरमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति जीव इत्यर्थः। स च भव्य एव, अभव्यस्य तद्ग्रहणायोग्यत्वात् । विशुद्ध इत्यनेन शुभलेश्यत्वं सङ्गृहीतम्, उदयप्रस्तावे स्त्यानगृद्ध्यादित्रयोदयाभावस्य वक्ष्यमाणत्वात् जागरत्वमप्युक्तमेव ।।२।।

इसप्रकार पंचपरमेष्ठी की स्तुति व वंदनारूप मुख्य मंगल करके आचार्य सबसे पहले सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय कहते हैं ।

अन्वयार्थ : **(चदुगदिमिच्छो)** चारों गतियों का मिथ्यादृष्टि **(सण्णी)** संज्ञी **(पुण्णो)** पर्याप्त **(गब्भज)** गर्भज **(विसुद्ध)** मंदकषायी **(सागारो)** साकारोपयोगी जीव **(पंचमवरलब्धिचरिमम्हि)** पाँचवी करणलब्धि के उत्कृष्ट अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम के अंतिम समय में **(पढमुवसम्मं)** प्रथमोपशम सम्यक्त्व को **(गेण्हदि)** ग्रहण करता है ।।२।।

टीकार्थ : चारों गतियों में उत्पन्न होने वाला अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव ही दर्शनमोहनीय के प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है । तिर्यंचगति में संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है, असंज्ञी जीव ग्रहण नहीं करता है। तिर्यंच व मनुष्यगति में पर्याप्तक गर्भज जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण करता है। चारों गतियों का विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव क्षयोपशमलब्धि के प्रथम समय से प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ता है। वह भी साकार अर्थात् ज्ञानोपयोगवाला होना चाहिये क्योंकि ज्ञानोपयोग में गुण-दोषों का विचार होने पर ही तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है। अनाकार दर्शनोपयोग में गुण-दोषों का विचार हो नहीं सकता है।

कौन से काल में जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण करता है? पाँचवीं करणलब्धि का उत्कृष्ट भाग याने अनिवृत्तिकरणरूप परिणाम, उसके अंतिम समय में जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है। वह जीव भव्य ही होता है क्योंकि अभव्यजीव को सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता नहीं है। विशुद्ध इस शब्द से शुभ लेश्यापना ग्रहण किया है। आगे उदय के प्रकरण में स्त्यानगृद्धि आदि तीन प्रकृतियों के उदय का अभाव कहने वाले हैं। उससे प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने वाला जीव जागृत होना चाहिए ऐसा भी कहा है।

विशेषार्थ : उपशम सम्यक्त्व दो प्रकार का है- १) प्रथमोपशम सम्यक्त्व और २) द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

(१) प्रथमोपशम सम्यक्त्व : अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों के अथवा सम्यक्त्व के बिना छह प्रकृतियोंके अथवा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके बिना शेष पाच प्रकृतियोंके उपशम होने

से मिथ्यात्व गुणस्थान में से चौथे, पाँचवें, सातवें गुणस्थान में जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

(2) द्वितीयोपशम सम्यक्त्व - सातवें गुणस्थान में उपशम श्रेणी चढ़ने के सम्मुख अवस्था में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

(3) अनादि मिथ्यादृष्टि - जिस मिथ्यादृष्टि भव्य जीव ने आज तक आत्मानुभव करके सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है वह अनादि मिथ्यादृष्टि है ।

(4) सादि मिथ्यादृष्टि - जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया और बाद में उसका सम्यक्त्व छूट गया ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव सादि मिथ्यादृष्टि है । वह पुनः पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल के जाने पर ही उसे प्राप्त करने के योग्य होता है, इसके पूर्व नहीं । अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् वेदककाल पर्यंत कभी भी क्षायोपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है ।

(५) जिस अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव का संसार में रहने का काल अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण शेष रहता है, वह उक्त काल के प्रथम समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के योग्य अन्य सामग्री के सद्भाव में उसे ग्रहण कर सकता है। उस समय उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नियम से होती है, ऐसा कोई नियम नहीं है । मुक्त होने के पूर्व इस काल के मध्य में कभी भी वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

६) संस्कृत टीका में ''विशुद्ध इत्यनेन शुभलेश्यत्वं संगृहीतम्'' ऐसा लिखा है, जिसका शुभ लेश्यारूप अर्थ किया है। परंतु नरकगति में शुभ लेश्या की प्राप्ति संभव नहीं है। ध.पु.६ पृष्ठ २०४ पर ''सर्वविशुद्ध'' शब्द विशुद्ध शब्द के स्थान पर आया है तथा इसी प्रकरण में ध. पु. ६ पृष्ठ २१४ पर सर्वविशुद्ध पद का अर्थ जो जीव अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण करने के सम्मुख है ऐसा जीव लिया गया है। यहाँ विशुद्ध शब्द का यही अर्थ लेना चाहिए।

७) यहाँ संस्कृत टीका में अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है, ऐसा कहा गया है सो उसका अर्थ यह लेना चाहिए कि अनिवृत्तिकरण के अन्तिम समय के व्यतीत होने पर अगले समय में यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है क्योंकि यह उत्पादानुच्छेद-पद्धति से कथन किया गया है। उत्पादानुच्छेद अर्थात् जहाँ जिसका सद्भाव हो वहाँ ही उसका अभाव कहा जाता है। जैसे पहले गुणस्थान में सोलह प्रकृतियों का बंध होता है तो उनकी व्युच्छित्ति भी वहीं पर कही जाती है।

गाथा में किस पद से किसका निषेध होता है, इसका हेतुसहित वर्णन

पद	प्रतिषेध	हेतु
मिथ्यादृष्टि	सासादन, मिश्र,	प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप परिणमन होने की शक्ति का अभाव है।
	वेदक-सम्यग्दृष्टि	इस जीव ने पहले ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया है।
संज्ञी	असंज्ञी	मन के बिना विशिष्ट ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती है।
पर्याप्त	अपर्याप्त	अपर्याप्तक जीवों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने का विरोध है।
पंचेन्द्रिय	एकेन्द्रिय से चतुरिंद्रिय-पर्यंत जीव	सम्यक्त्व ग्रहण करने योग्य परिणाम एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में नहीं हो सकते हैं।
गर्भज	सम्मूर्च्छन	सम्मूर्छन जीवों के प्रथमोपशम सम्यक्त्व की योग्यता नहीं है।
विशुद्ध	संक्लेशसहित	विशुद्धि के बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता।
साकार	अनाकार	अनाकार उपयोग में गुणदोषों का विचार नहीं होता है।

चार गतियों में सम्यक्त्व के बाह्य निमित्त

गति	सम्यग्दर्शन के निमित्तकारण
मनुष्यगति	१. जातिस्मरण २. देवदर्शन ३.धर्मश्रवण
तिर्यंचगति	१. जातिस्मरण २. देवदर्शन ३.धर्मश्रवण
नरकगति	
१ ले ३ रे नरकपर्यंत	१. वेदनानुभव २. जातिस्मरण ३. धर्मश्रवण
४ से ७ वें नरकपर्यंत	१. वेदनानुभव २. जातिस्मरण
देवगति	
भवनत्रिक	१. जातिस्मरण २. देवर्द्धिदर्शन ३.धर्मश्रवण ४.जिनकल्याणकदर्शन
१ ले १२ वें कल्प	१. जातिस्मरण २. देवर्द्धिदर्शन ३.धर्मश्रवण ४.जिनकल्याणकदर्शन
१२ वें १६ वें कल्प	१. जातिस्मरण २. धर्मश्रवण ३.जिनकल्याणक दर्शन
९ ग्रैवेयक	१. जातिस्मरण २. धर्मश्रवण
अनुदिश और अनुत्तर	यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं।

सभी द्वीप और समुद्रों में रहने वाले गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और ढाई द्वीप व दोनों समुद्रों मे रहने वाले गर्भज पर्याप्त मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकते हैं।

शंका – त्रस जीवों से रहित असंख्यात समुद्रों में तिर्यंच प्रथमोपशम सम्यक्त्व को कैसे उत्पन्न कर सकते हैं ?

समाधान – उन असंख्यात समुद्रों में बैरी देवों के द्वारा लाये गये तिर्यंचो में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति देखी जाती है।

अथ पञ्चलब्धिनामोद्देशं तत्कार्यविभागं च कुर्वन्नाह–

खयउवसमियविसोही[1] देसणपाउग्गकरणलद्धी य।
चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते[2] ।।३।।

क्षयोपशमविशुद्धी देशनाप्रायोग्यकरणलब्धयश्च ।
चतस्रोऽपि सामान्यात् करणं सम्यक्त्वचारित्रे ।।३।।

लब्धिशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते क्षयोपशमलब्धिः विशुद्धिलब्धिः देशनालब्धिः प्रायोग्यतालब्धिः करणलब्धिश्चेत्येताः पञ्च लब्धयः। अत्र आद्याश्चतस्रोऽपि लब्धयः सामान्यादपि भव्याभव्यसाधारणादपि भवन्ति । करणलब्धिःपुनर्भव्यस्यैव सम्यक्त्वे चारित्रे च साध्ये भवति ।।३।।

यहाँ पाँच लब्धियो कें नामों का निर्देश व उनके कार्यों का विभाग करते हुए कहते हैं–

अन्वयार्थ – (खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य) क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण ये पाँच लब्धियाँ हैं। उनमें से **(चत्तारि वि)** प्रथम चार लब्धियाँ **(सामण्णा)** सामान्य हैं। **(करणं)** करणलब्धि मात्र **(सम्मत्तचारित्ते)** सम्यक्त्व व चारित्र प्राप्त होते समय होती है।

टीकार्थ – लब्धि शब्द प्रत्येक के साथ जोड़ें। (१) क्षयोपशमलब्धि (२) विशुद्धिलब्धि (३) देशनालब्धि (४) प्रायोग्यलब्धि और (५) करणलब्धि। इस प्रकार ये पाँच लब्धियाँ हैं। इनमें से प्रथम चार लब्धियाँ सामान्य से भव्य और अभव्य दोनों को ही होती हैं परंतु करणलब्धि केवल भव्यजीवों को सम्यक्त्व और चारित्र के प्राप्त होते समय ही होती है।

विशेषार्थ – यहाँ गाथा में जो "सामण्णा' शब्द है इसका प्रयोग आगे गाथा ७ और १५ में भी हुआ है, किन्तु प्रत्येक गाथा में सामण्णा शब्द विभिन्न विषयों का द्योतक है ।

---

१) पाठभेद– खयओसमविसोही । का. ह. प्र.
२) ध. पु. ६. पृ. २०५ ।

यहाँ पर ''करणं सम्मत्तचारित्ते'' से यह स्पष्ट हो जाता है कि करण लब्धि से पूर्व की (क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना और प्रायोग्य) चार लब्धियाँ होने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्वोत्पत्ति का नियम नहीं है, किन्तु करणलब्धि के प्रारम्भ होने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अवश्य उत्पन्न होगा। जिन जीवों को प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है तथा जिनको नहीं होता है उनको भी क्षयोपशमादि चार लब्धियाँ हो जाती है । अतः प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति की अपेक्षा आदि की चारों लब्धियाँ साधारण (सामान्य) हैं ।

अथ क्रमप्राप्तक्षयोपशमलब्धिस्वरूपं कथयति –

कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धी दु[१-२] ।।४।।

कर्ममलपटलशक्तिः प्रतिसमयमनन्तगुणविहीनक्रमा ।
भूत्वा उदीर्यते यदा तदा क्षयोपशमलब्धिस्तु ।।४।।

कर्मसु मलान्यप्रशस्तकर्माणि ज्ञानावरणादीनि तेषां पटलं समूहः तस्य शक्तिरनुभागः सा यदा यस्मिन् समये अनन्तगुणविहीनक्रमा अनन्तैकभागप्रमाणीभूत्वा क्रमेणोदेति तदा तस्मिन् समये तदनुभागानन्तबहुभागहानिः क्षयोपशमलब्धिः। तुशब्देन पुनः प्रतिसमयं तदनन्तबहुभागहानिक्रमः सूच्यते । देशघातिस्पर्धकानामुत्कृष्टानुभागानन्तैकभागमात्राणामुदये सत्यपि सर्वघातिस्पर्धकानामुत्कृष्टानुभागानन्तबहुभागप्रमाणानामुदयाभावः क्षयः, तेषामेवानुदयप्राप्तानां कर्मस्वभावेन सदवस्था उपशमः, तयोर्लब्धिः क्षयोपशमलब्धिः।।४।।

यहाँ क्रमप्राप्त क्षयोपशम लब्धि का स्वरूप कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(जदा)** जब **(कम्ममलपडलसत्ती)** अप्रशस्त कर्मसमूह की शक्ति **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(अणंतगुणविहीणकमा)** क्रम से अनन्त गुणहीन **(होदूण)** होकर **(उदीरदि)** उदय में आती है **(तदा)** तब **(खओवसमलद्धी दु)** क्षयोपशम लब्धि होती है।

टीकार्थ – जब कर्मों में मलरूप अप्रशस्त ज्ञानावरणादि कर्मों के समूह का अनुभाग अनन्त गुणा हीन होकर अर्थात् अनन्तवाँ एक भागप्रमाण होकर क्रम से उदय में आता है तब उस कर्म के अनुभाग की अनन्त बहुभागप्रमाण हानि होती है वह क्षयोपशम लब्धि

१) पाठभेद – खओवसमियलद्धी दु। का. ह. प्र. २) ध. पु. ९, पृ. २०५

है। गाथा में तु शब्द प्रत्येक समय में अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभाग का हानिक्रम सूचित करता है। उत्कृष्ट अनुभाग का अनन्तवाँ भागप्रमाण देशघाति स्पर्धकों का उदय होने पर भी, उत्कृष्ट अनुभाग के अनन्त बहुभागप्रमाण सर्वघाति स्पर्धकों के उदय के अभावरूप क्षय की और उदय में न आये हुए (भविष्यकाल में उदय के योग्य) सर्वघाति स्पर्धकों को सत्ता में कर्मस्वभावरूप से रहनेरूप उपशम की प्राप्ति होना ही क्षयोपशम लब्धि है।

विशेषार्थ – क्षयोपशम लब्धि में यथायोग्य घाति और अघाति सभी अप्रशस्त कर्मों संबंधी अनुभाग शक्ति की प्रत्येक समय में अनन्तगुणी हानि होना अपेक्षित है। परन्तु जीव की विशुद्धि लब्धि के निमित्त से सातादि परावर्तनमान प्रकृतियों की बंधयोग्य ही विशुद्धि होती है। असाता आदि के बंधयोग्य संक्लेश परिणाम होते नहीं, ऐसा यहाँ समझना चाहिए।

क्षयोपशम और क्षयोपशम–लब्धि में अन्तर (१) क्षयोपशम केवल देशघाति प्रकृति में ही पाया जाता है परन्तु क्षयोपशम–लब्धि में प्रत्येक समय में अनुभाग का अनन्त गुणा घटना यह कार्य सभी घातिकर्मों और अघाति कर्मों की अप्रशस्त प्रकृतियों में होता रहता है। (२) क्षयोपशम में देशघाति कर्मों का जितना अनुभाग है उतना ही उदय होता है, परन्तु क्षयोपशम–लब्धि में प्रत्येक समय में अनन्तवाँ भाग होकर उदय होता रहता है। (३) क्षयोपशम तो निरन्तर विद्यमान रहता है, निद्रावस्था और बेहोशी में भी बना रहता है परन्तु क्षयोपशम–लब्धि केवल अंतर्मुहूर्त पर्यंत ही रहती है, वह भी जागृत अवस्था में ही रहती है। (४) मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है। उसमें शैल, अस्थि व दारु ऐसे तीन प्रकार के स्पर्धक होते हैं। क्षयोपशम–लब्धि में उसका अनुभाग अनन्तगुणा घटता जाता है तब भी उसे मिथ्यात्व कर्म का क्षयोपशम नहीं कहते हैं।

अथ विशुद्धिलब्धिस्वरूपमाह–

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।
सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसोहिलद्धी सो ।।५।।

आदिमलब्धिभवो यो भावो जीवस्य सातप्रभृतीनाम् ।
शस्तानां प्रकृतीनां बन्धनयोग्यो विशुद्धिलब्धिः सः ।।५।।

मिथ्यादृष्टिजीवस्य प्रागुक्तक्षयोपशमलब्धौ सत्यां सातादिप्रशस्तप्रकृतिबन्धहेतुर्यो भावो धर्मानुरागरूपशुभपरिणामो भवति तत्प्राप्तिर्विशुद्धिलब्धिरित्युच्यते। अशुभकर्मानुभागस्यानन्तगुणहानौ सत्यां तत्कार्यस्य संक्लेशपरिणामस्य हानिर्यथा यथा भवति तद्विरुद्धस्य विशुद्धिपरिणामस्य तथा तथा वृद्धिसम्भवःसुसङ्गत एवेति ।।५।।

अब विशुद्धिलब्धि का स्वरूप कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(आदिमलद्धिभवो)** प्रथम क्षयोपशम–लब्धि के उत्पन्न होने पर **(सादपहुदीणं सत्थाणं पयडीणं)** सातादिक प्रशस्त प्रकृतियों के **(बंधणजोगो)** बंध के योग्य **(जो)** जो **(जीवस्स)** जीव का **(भावो)** परिणाम है **(सो)** वह **(विसोहीलब्धि)** विशुद्धि लब्धि है।

टीकार्थ– पूर्व में कही गयी क्षयोपशम–लब्धि होने पर मिथ्यादृष्टि जीव के सातादि प्रशस्त प्रकृतियों के बन्ध के कारणभूत जो धर्मानुरागरूप शुभ भाव होते हैं उन परिणामों की प्राप्ति को विशुद्धिलब्धि कहते हैं । अशुभ कर्मों के अनुभाग की अनन्तगुणी हानि होने पर उसके कार्यभूत संक्लेश परिणाम की जैसे–जैसे हानि होती है वैसे–वैसे उसके प्रतिपक्षी विशुद्ध परिणाम की वृद्धि होना सुसंगत ही है।

अथ देशनालब्धिस्वरूपमाचष्टे–

छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो।
देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु।।६।।

षड्द्रव्यनवपदार्थोपदेशकरसूरिप्रभृतिलाभो यः ।
देशितपदार्थधारणलाभो वा तृतीयलब्धिस्तु ।।६।।

षड्द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्मकालाकाशानि। पञ्चास्तिकाया अत्रैवान्तर्भूताः। नव पदार्था जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापानि। सप्त तत्त्वान्यत्रैवान्तर्भूतानि। तेषामुपदेशकरा आचार्योपाध्यायादयः, तेषां लाभो यस्तद्देशनाप्राप्तिः चिरातीतकाले उपदेशितपदार्थधारणलाभो वा स देशनालब्धिर्भवति। तु शब्देनोपदेशकरहितेषु नारकादिभवेषु पूर्वभवश्रुतधारिततत्त्वार्थस्य संस्कारबलात् सम्यग्दर्शनप्राप्तिर्भवति इति सूच्यते ।।६।।

अब देशनालब्धि का स्वरूप कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(जो)** जो **(छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो)** छह द्रव्य, नौ पदार्थों के उपदेश करने वाले आचार्यादिकों का लाभ **(वा)** अथवा **(देसिदपदत्थधारणलाहो)** उपदेशित पदार्थ के धारणा की प्राप्ति होना **(तदियलद्दी)** वह तीसरी देशनालब्धि है।

टीकार्थ– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये छह द्रव्य हैं। पंचास्तिकाय इनमें अंतर्भूत हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ये नौ पदार्थ हैं। सात तत्त्व इनमें गर्भित हैं। उनका उपदेश करने वाले आचार्य, उपाध्यायादिकों की प्राप्ति होना देशनालब्धि है। अथवा दीर्घ भूतकाल में उपदेशित पदार्थों की धारना होना वह देशनालब्धि है। गाथा में तु शब्द से उपदेशक से रहित नारकादि भवों में पूर्व भव में शास्त्र के द्वारा धारण किए तत्त्वार्थ के संस्कार के बल से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार सूचित किया गया है।

विशेषार्थ– गाथा में दु शब्द आया है उसके द्वारा वेदनानुभव, जातिस्मरण, जिनबिम्बदर्शन, देवऋद्धि–दर्शनादि कारणों का ग्रहण होता है, क्योंकि इन कारणों से नैसर्गिक प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। जो प्रथमोपशम–सम्यक्त्व धर्मोपदेश के बिना जिनबिम्बदर्शनादि कारणों से उत्पन्न होता है वह नैसर्गिक सम्यग्दर्शन है, जिनबिम्ब दर्शन से निधत्ति और निकाचितरूप भी मिथ्यात्वादि कर्मों के समूह का क्षय देखा जाता है।

अथ प्रायोग्यतालब्धिस्वरूपं कथयति–

अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ।
पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा[२] ।।७।।

अन्तःकोटाकोटिद्विस्थाने स्थितिरसयोर्यत्करणम् ।
प्रायोग्यलब्धिर्नाम भव्याभव्येषु सामान्यात् ।।७।।

कश्चिज्जीवो लब्धित्रयसम्पन्नः प्रतिसमयं विशुद्ध्यन् आयुर्वर्जितसप्तकर्मणां तत्कालस्थिति–मेककाण्डकघातेन छित्त्वा काण्डकद्रव्यमन्तःकोटाकोटिमात्रावशिष्टस्थितौ निक्षिपति। अप्रशस्तानां घातिनामनुभागं चानन्तबहुभागप्रमाणं खण्डयित्वा तद्द्रव्यं लतादारुसमाने द्विस्थानमात्रे अघातिनां च निम्बकाञ्जीरसमाने अवशिष्टानुभागे निक्षिपति तदा जीवस्य तत्करणं प्रायोग्यतालब्धिर्नाम वेदितव्या,सा च भव्याभव्ययोः साधारणी भवति। विशुद्ध्या प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागखण्डनं नास्ति।।७।।

अब प्रायोग्य लब्धि का स्वरूप कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(जं)** जो **(ठिदिरसाण)** स्थिति व अनुभाग को **(अंतोकोडाकोडी विट्ठाण करणं)** अंत:कोड़ाकोड़ी व द्विस्थानीय करती है **(पाउग्गलद्धिणामा)** वह प्रायोग्यलब्धि है अर्थात् कर्मों की स्थिति अंत:कोड़ाकोड़ी करती है और चतु:स्थानगत अनुभाग को द्विस्थानरूप करती है। **(भव्वाभव्वेसु)** यह लब्धि भव्य व अभव्य जीवों को **(सामण्णा)** सामान्यरूप से होती है।

टीकार्थ– पूर्व में कही गयी तीन लब्धियों से सम्पन्न कोई एक जीव प्रत्येक समय में विशुद्ध होता हुआ आयु को छोड़कर बाकी सात कर्मों की वर्तमान स्थिति को एक स्थितिकाण्डकघात के द्वारा छेदकर उस कांडक के द्रव्य को अवशेष रही अंत: कोटाकोटीमात्र स्थिति में निक्षेपण (देता) करता है। अप्रशस्त प्रकृतियों के पूर्व के अनुभाग को अनन्त का भाग देकर बहुभागमात्र अनुभाग का खण्डन करके अवशेष रहे एक भागरूप अनुभाग में निक्षेपण करता हैं । घातिया कर्मों का अनुभाग निम्ब कांजीररूप द्विस्थानगत शेष रह जाता है। इस कार्य करने की योग्यता की प्राप्ति होने को प्रायोग्यता लब्धि जानना चाहिए । यह लब्धि भव्य और अभव्य जीवों को समानरूप से होती है। विशुद्धि के द्वारा प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का खंडन नहीं होता है।

---

१) ध. पु. ६. पृ. ४३१ ।   २) ध. पु. ६. पृ. २०४ ।

विशेषार्थ– अंत: कोटाकोटी का मतलब एक कोटि को एक कोटि से गुणा करने पर जो संख्या आती है उससे कम अर्थात् एक कोटि के ऊपर और एक कोटाकोटी से नीचे की संख्या। विशुद्धि होने से प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का घात नहीं होता है यह विशेषता है। (१) घाति कर्मों के अनुभाग का चतु:स्थान – (अ) लता (आ) दारु (इ) अस्थि (ई) शैल। (२) अघातिया कर्मों में प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का चतु:स्थान – (अ) गुड़ (आ) खांड (इ) शर्करा (ई) अमृत। (३) अघातिया कर्मों में अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का चतुस्थान – (१) निंब (२) कांजीर (३) विष (४) हलाहल।

प्रायोग्यता–लब्धि में एक स्थितिकाण्डकघात का नक्शा

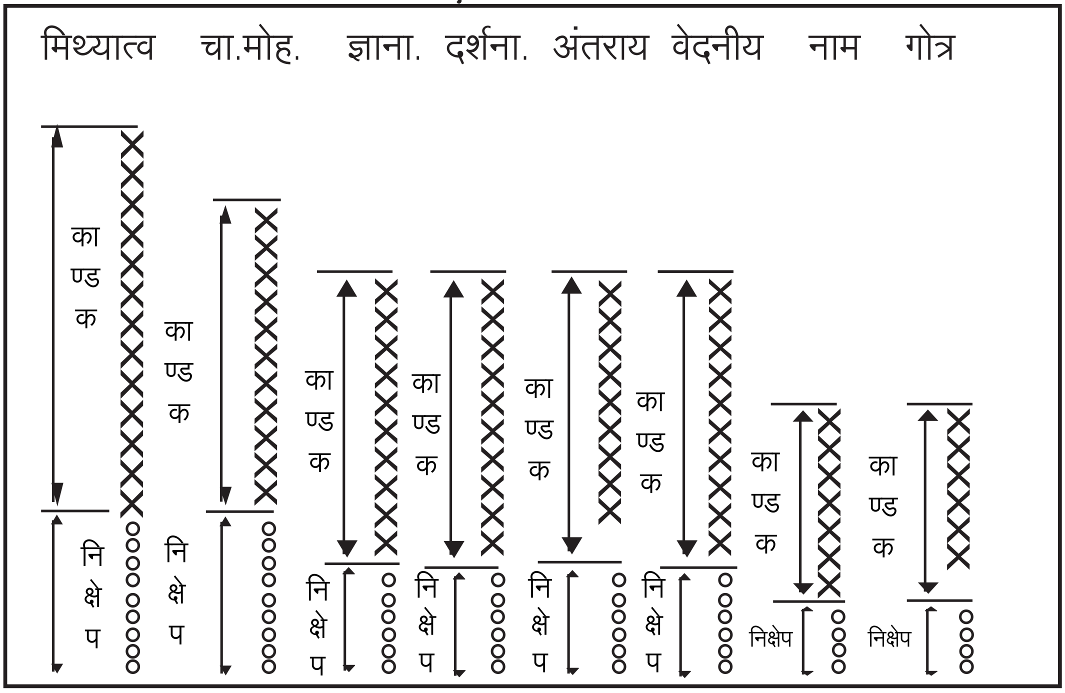

स्पष्टीकरण– प्रायोग्यतालब्धि में जीव एक काण्डकघात के द्वारा अंत:कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति रखकर बाकी सब स्थितियों का घात करता है । सात कर्मों की स्थिति अंत:कोड़ाकोड़ी प्रमाण करता है। ऐसा सामान्यत: कहा गया है किन्तु मिथ्यात्व की जो स्थिति वास्तव में है उसका (४/७) भाग प्रमाण चारित्रमोहनीय की, (३/७) भाग प्रमाण ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और वेदनीय कर्म की, (२/७) भाग प्रमाण नाम व गोत्र की स्थिति करता है। इस प्रकार विशेष जानना चाहिए। नक्शे में X यह चिह्न घात करने के लिए ग्रहण की गई स्थिति का जाने। उसको ही काण्डक कहते हैं। '0' यह चिह्न शेष रही स्थिति का जाने। उसमें ऊपर घात की जाने वाली स्थिति के निषेकों को देता है। इसलिए उसको ही निक्षेप कहते हैं।

अथ प्रसंगायातां प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणायोग्यतां प्रतिपादयति–

जेट्ठवरट्ठिदिबंधे जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ।
ण य पडिवज्जदि पढमुवसमसम्मं मिच्छजीवो हु[1] ।।८।।

ज्येष्ठावरस्थितिबंधे ज्येष्ठावरस्थितित्रिकाणां सत्त्वे च ।
न च प्रतिपद्यते प्रथमोपशमसम्यक्त्वं मिथ्यजीवो हि।।८।।

ज्येष्ठावरस्थितिबन्धे ज्येष्ठावरस्थितित्रयाणां सत्त्वे च न च प्रतिपद्यते प्रथमोपशमसम्यक्त्वं मिथ्यादृष्टिर्जीवः खलु। सर्वसंक्लिष्टसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवसम्भविन्युत्कृष्टस्थितिबन्धे सर्वविशुद्धक्षपकसम्भविनि जघन्यस्थितिबन्धे सर्वसंक्लिष्टसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकसम्भवि–न्युत्कृष्टस्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वे सर्वविशुद्धक्षपकसम्भविनि जघन्यस्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वे प्रथमोपशम–सम्यक्त्वं जीवो न प्रतिपद्यते, उत्कृष्टबन्धसत्त्वयोस्तीव्रसंक्लेशनिबन्धनत्वात् जघन्यबन्ध–सत्त्वयोश्च, तीव्रविशुद्धिनिबन्धनत्वेन मिथ्यादृष्टित्वाभावात् प्रागेव गृहीतसम्यग्दर्शनस्य क्षपक–श्रेण्यारोहणात्। ततोऽन्तःकोटाकोटिस्थिति–द्विस्थानानुभागबन्धसत्त्वपरिणामे कर्मणां जीवः प्रथमोपशमयोग्यो भवतीति तात्पर्यम् ।।८।।

अब प्रसंगप्राप्त प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण की अयोग्यता बतलाते हैं–

अन्वयार्थ– **(जेट्ठवरठिदिबंधे)** उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिबंध होने पर **(य)** और **(जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते)** उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति, अनुभाग व प्रदेश सत्त्व होने पर **(हु)** निश्चय से **(मिच्छजीवो)** मिथ्यादृष्टि जीव **(पढमुवसमसम्मं)** प्रथमोपशम सम्यक्त्व को **(ण य पडिवज्जदि)** प्राप्त नहीं होता है।

टीकार्थ– सबसे अधिक संक्लेश परिणामी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव को संभवने वाला उत्कृष्ट स्थिति–बंध होने पर, सबसे अधिक विशुद्ध परिणामी क्षपक जीव को पाया जाने वाला जघन्य स्थितिबंध होने पर, सबसे अधिक संक्लेश परिणामी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव के संभव उत्कृष्ट स्थिति–अनुभाग प्रदेशसत्त्व होने पर और सर्वविशुद्ध क्षपक जीव के संभव जघन्य स्थिति, अनुभाग व प्रदेश सत्त्व होने पर जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि उत्कृष्ट बंध और उत्कृष्ट सत्त्व तीव्र संक्लेश परिणामों के निमित्त से होता है और जघन्य बन्ध और जघन्य सत्त्व तीव्र विशुद्धि के निमित्त से होता है अतः तीव्र विशुद्धि में मिथ्यादृष्टिपने का अभाव है। जिसने पूर्व में सम्यग्दर्शन ग्रहण किया है, ऐसा जीव ही क्षपकश्रेणी पर आरोहण करता है। इसलिए कर्मों का अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध व स्थिति–सत्त्व उसीप्रकार द्विस्थानरूप अनुभागबन्ध और अनुभागसत्त्वरूप परिणाम होने पर

१) १ ध. पु, ६. पृ. २०३ ।

जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य होता है, यह तात्पर्य है।

विशेषार्थ – संक्लेश परिणामों की वृद्धि से तीन आयुको छोड़कर सभी प्रकृति संबंधी स्थिति की वृद्धि होती है और विशुद्धि की वृद्धि से उनकी स्थिति की हानि होती है। असातावेदनीय के बन्ध के योग्य परिणाम संक्लेशरूप होते हैं और सातावेदनीय के बन्ध के योग्य परिणाम विशुद्ध होते है। उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा स्थितिबंध जघन्य होता है, क्योंकि तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु को छोड़कर सभी स्थितियों में प्रशस्तभाव का अभाव है। अर्थात् पुण्य-पापरूप सभी प्रकृतियों की स्थिति अप्रशस्त है। आगे के कोष्टक से यह स्पष्ट होता है कि उत्कृष्ट स्थितिबंध और उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-प्रदेशसत्त्व उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के है। उसको उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम होने से प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं हो सकता। जघन्य स्थितिबंध व जघन्य स्थिति-अनुभाग-प्रदेशसत्त्व क्षपकश्रेणी में है। वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व होता है इसलिए प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने का प्रश्न ही नहीं है।

उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिबन्ध और उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति-अनुभाग - प्रदेशसत्त्व के स्वामी -

कर्मप्रकृति	बन्ध व सत्त्व का भेद	स्वामी
आयु बिना ७ कर्म	उत्कृष्ट स्थितिबन्ध	उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी अथवा ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामी पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि
मोहनीय व आयु बिना शेष ६ कर्म	जघन्य स्थितिबन्ध	अन्तिम बन्ध में अवस्थित सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक जीव
मोहनीय	जघन्य स्थितिबन्ध	अन्तिम बन्ध में स्थित अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव
आयु बिना ७ कर्म	उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व	उत्कृष्ट स्थितिबन्ध जिसने किया है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव
मोहनीय	जघन्य स्थितिसत्त्व	अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपराय क्षपक जीव
मोहनीय	जघन्य अनुभागसत्त्व	अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपराय क्षपक जीव
ज्ञानावरण,दर्शनावरण, अन्तराय	जघन्य स्थितिसत्त्व	क्षीणमोह गुणस्थान अन्तिम समयवर्ती जीव
	जघन्य अनुभागसत्त्व	क्षीणमोह गुणस्थान अन्तिम समयवर्ती जीव

कर्मप्रकृति	बन्ध व सत्त्व का भेद	स्वामी
चार अघाति कर्म	जघन्य स्थितिसत्त्व	अयोगकेवली गुणस्थान का अन्तिम समयवर्ती जीव
७ कर्म (आयु बिना)	उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व	उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करके जबतक अनुभाग का घात नहीं करता तब तक वह जीव
७ कर्म (आयु बिना)	उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्व	गुणित कर्मांशिक सातवें नरक का अन्तिम समयवर्ती नारकी जीव
मोहनीय	जघन्य प्रदेशसत्त्व	क्षपितकर्मांशिक दसवें गुणस्थान का अन्तिम समयवर्ती जीव
घातिकर्म	जघन्य प्रदेशसत्त्व	क्षपितकर्मांशिक बारहवें गुणस्थान का अन्तिम समयवर्ती जीव

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखस्य स्थितिबन्धपरिमाणमाह–

सम्मत्तहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु ।

अंतोकोडाकोडिं सत्तण्हं बंधणं कुणइ[1] ।।९।।

सम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यो विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धमानः खलु ।

अन्तःकोटाकोटिं सप्तानां बन्धनं कुरुते ।।९।।

प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखो मिथ्यादृष्टिर्जीवः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानः प्रायोग्यतालब्धिकालप्रथमसमयादारभ्य आयुर्वर्जितसप्तकर्मस्थितिबन्धं पूर्वस्थितिबन्धस्य संख्यातैकभागमात्रमन्तःकोटाकोटिप्रमितं बध्नाति ।।९।।

अब प्रसंगप्राप्त प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुए जीव के स्थितिबंध का प्रमाण बतलाते हैं–

अन्वयार्थ– (सम्मत्तहिमुहमिच्छो) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव **(हु)** निश्चय से **(विसोहिवड्ढीहि)** विशुद्धि की वृद्धि से **(वड्ढमाणो)** बढ़ने वाला

१) जी. चू. ८, सू. ३।२.

अर्थात् वर्धमान विशुद्धिवाला **(सत्तण्हं)** सात कर्मों का **(अंतकोडाकोडिं)** अंत: कोटाकोटि सागरप्रमाण **(बंधण)** स्थितिबंध **(कुणइ)** करता है।

टीकार्थ– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ मिथ्यादृष्टि जीव प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ता हुआ प्रायोग्यता–लब्धि–काल के प्रथम समय से आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का स्थितिबंध पूर्व के स्थितिबंध का संख्यातवाँ भागमात्र अर्थात् अन्त:कोटाकोटी सागर प्रमाण बांधता है।

अथ प्रायोग्यतालब्धिकाले प्रकृतिबन्धापसरणावतारमाह–

तत्तो उदधिसदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय।
बंधम्मि पयडिबंधुच्छेदपदा होंति चोत्तीसा[1] ।।१०।।

तत उदधिशतस्य च पृथक्त्वमात्रं पुन:पुनरवतीर्य ।
बन्धे प्रकृतिबन्धोच्छेदपदानि भवन्ति चतुस्त्रिंशत् ।।१०।।

तस्मादन्त:कोटाकोटिसागरोपमप्रमितात् स्थितिबन्धात् पल्यसंख्यातैकभागोनां स्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावत्समानामेव बध्नाति । पुनस्तत: पल्यसंख्यातैकभागोनामपरां स्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद् बध्नाति। एवं पल्यसंख्यातैकभागहानिक्रमेण पल्योनामन्त:कोटाकोटिसागरोपमस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद् बध्नाति। एवं पल्यसंख्यातैकभागहानिक्रमेणैव पल्यद्वयोनां पल्यत्रयोनामित्यादिस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद् बध्नाति। तथा सागरोपमहीनां द्विसागरोपमहीनां त्रिसागरोपमहीनामित्यादिसप्ताष्टशतलक्षण–सागरोपमपृथक्त्वहीनामन्त:कोटाकोटिस्थितिमन्तर्मुहूर्तं यावद् बध्नाति तदा एकं नारकायु: प्रकृतिबन्धापसरणस्थानं भवति, तदा नारकायुर्बन्धव्युच्छित्तिर्भवतीत्यर्थ:। पुनरपि पूर्वोक्तक्रमेण सागरोपमशतपृथक्त्वहीनामन्त:कोटाकोटिस्थितिं यदा बध्नाति तदा तिर्यगायुर्बन्धव्युच्छेदो भवति । एवमनेन सागरोपमशतपृथक्त्वहानिक्रमेण स्थितिबन्धे एकैकं प्रकृतिबन्धव्युच्छेदपदं भवति यावत् चतुस्त्रिंशत्तमं प्रकृतिबन्धव्युच्छेदपदं प्राप्नोति तावन्नेतव्यम्।।१०।।

अब प्रायोग्यता लब्धि के समय में होने वाले प्रकृति बंधापसरण का कथन करते हैं–

अन्वयार्थ– (तत्तो) उसके अनन्तर अर्थात् अन्त:कोटीकोटी मात्र स्थितिबंध प्रारम्भ करने के अनन्तर **(उदहिसदस्स य पुधत्तमेत्तं)** १०० सागर पृथक्त्वमात्र **(पुणो पुणोदरिय)** पुन:पुन: स्थितिबंधापसरण जाकर **(बंधम्मि)** बंध में **(चोत्तीसा पयडिबंधुच्छेदपदा)** प्रकृतिबंध

१) ध. पु. ६ पृ. १३५.; जय. ध. पु. १२, पृ. २२१.

के चौंतीस व्युच्छित्ति स्थान **(होंति)** होते हैं ।

टीकार्थ– अंत:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण स्थितिबंध होने के अनन्तर पूर्व स्थितिबंध से पल्य का संख्यातवाँ भाग घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त पर्यन्त समान ही बाँधता है। पुन: उसके अनन्तर पल्य का संख्यातवाँ भाग कम दूसरी स्थिति अंतर्मुहूर्त पर्यंत बाँधता है। इसी प्रकार पल्य के संख्यातवाँ एक भाग प्रमाण हानि के क्रम से एक पल्य कम अन्त:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण स्थिति अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त बांधता हैं। इसी प्रकार पल्य के संख्यातवें भाग हानि के क्रम से दो पल्य कम, तीन पल्य कम इत्यादि स्थिति अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त बाँधता है। उसी प्रकार एक सागरोपम कम, दो सागरोपम कम, तीन सागरोपम कम इत्यादि ७००–८०० सागरोपम कम अंत:कोटाकोटी स्थिति अंतर्मुहूर्त पर्यन्त बांधता हैं। तब एक नरकायु प्रकृति बंधापसरण स्थान होता है अर्थात् तब नरकायु की बंधव्युच्छित्ति होती है। पुन: पूर्वोक्त क्रम से १०० सागरोपमपृथक्त्व हीन अंत:कोटाकोटी स्थिति जब बाँधता है तब तिर्यंचायु की बन्धव्युच्छित्ति होती है। इसी प्रकार १०० सागरोपम पृथक्त्व हानि के क्रम से स्थितिबंध में एक–एक प्रकृतिबंध का व्युच्छित्ति–स्थान होता है। ३४ प्रकृतिबंध व्युच्छित्तिस्थान पूर्ण होने तक ऐसा ही क्रम जानना चाहिए।

विशेषार्थ– प्रकृतिबंधापसरण – प्रकृतिबंध का न होना प्रकृतिबंधापसरण कहलाता है। पुधत्त–पृथक्त्व शब्द बहुलतावाची है। जहाँ जो संख्या विवक्षित है वहाँ वह संख्या ग्रहण करें। तीन से अधिक और नौ से कम संख्या के लिए पृथक्त्व शब्द का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पृथक्त्व शब्द का अर्थ ७००–८०० दिया है। आगे इसी टीका में सौ सागरोपम पृथक्त्व लिखा है वहाँ पृथक्त्व शब्द का अर्थ सात–आठ ग्रहण करें। सौ सागरोपम पृथक्त्व अर्थात सात–आठ सौ सागरोपम समझना।

अंक–संदृष्टि से उपर्युक्त गणित इसप्रकार है– प्रथम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिबंध एक लाख (१,००,०००) वर्ष माना। पल्योपम का संख्यातावाँ भाग पाँच (५)वर्ष, पल्य का प्रमाण २५ वर्ष, सागरोपम का प्रमाण सौ (१००)वर्ष, सागरोपम पृथक्त्व का प्रमाण सात सौ (७००)वर्ष माना और अंतर्मुहूर्त का प्रमाण चार समय माना है ।

प्रायोग्यलब्धि के प्रथम एक से चार समय तक एक लाख वर्ष स्थितिबंध किया। पाँचवें समय से ५ वर्ष कम १ लाख अर्थात् ९९,९९५ वर्ष स्थितिबंध किया। ६ ठे, ७ वें, ८ वें समय में स्थितिबंध उतना ही होता है। इसको एक स्थितिबंधापसरण कहते हैं। पुन: ९ वें समय से पूर्व स्थितिबंध से ५ वर्ष कम अर्थात् ९९,९९० स्थितिबंध किया। ऐसे प्रत्येक ४ समय में ५–५ वर्ष स्थितिबंध कम होता हुआ २५ वर्ष कम किया अर्थात् एक पल्य कम किया। पुन: ५–५ वर्ष कम होते हुये ५० वर्ष कम किया। पुन: ५–५ वर्ष कम होते हुए

---

१) ध. पु. ६, पृ. १३५–१३९ ।

१०० वर्ष अर्थात् १ सागर कम स्थितिबंध किया। इसप्रकार स्थितिबंध कम-कम होता हुआ ७०० वर्ष कम अर्थात् ९९,३०० वर्ष प्रमाण स्थितिबंध किया। तब प्रथम प्रकृतिबंधापसरण हुआ अर्थात् १ नरकायु की बंधव्युच्छित्ति की। पुन: प्रत्येक स्थितिबंधापसरण के द्वारा ५-५ वर्ष कम होकर ७०० वर्ष कम अर्थात् ९८,६०० वर्ष स्थितिबंध होने पर दूसरा प्रकृतिबंधापसरण होता है । इस प्रकार से ७००-७०० वर्ष अर्थात् सागरोपम शतपृथक्त्व कम स्थितिबंध होने पर एक-एक स्थितिबंधापसरण होता है। ३४ प्रकृतिबंधापसरण में कुल तेवीस हजार आठ सौ (७००X३४=२३,८००) वर्ष स्थितिबंध कम हुआ। इसी प्रकार वास्तविक गणित में समझना चाहिए।

स्थितिबंधापसरण व प्रकृतिबंधापसरण का क्रम

दूसरा प्रकृतिबंधापसरण	११२१ से ११२४	९८,६०० वर्ष	७-८ सौ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	0 0		
प्रथम प्रकृतिबंधापसरण	५६१ से ५६४	९९,३०० वर्ष	७-८ सौ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	0 0		
इकतालीसवाँ स्थितिबंधापसरण	१६१ से १६४	९९,८०० वर्ष	२ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	0 0		
इक्कीसवाँ स्थितिबंधापसरण	८१ से ८४	९९,९०० वर्ष	१ सागर कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	0 0		
ग्यारहवाँ स्थितिबंधापसरण	४१ से ४४	९९,९५० वर्ष	२ पल्य कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	0 0		
छठा स्थितिबंधापसरण	२१ से २४	९९,९७५ वर्ष	१ पल्य कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
	0 0		
तीसरा स्थितिबंधापसरण	९ से १२	९९,९९० वर्ष	पल्य का संख्यातवाँ भाग कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
दूसरा स्थितिबंधापसरण	५ से ८	९९,९९५ वर्ष	पल्य का संख्यातवाँ भाग कम अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
प्रथम स्थितिबंधापसरण	१ से ४	१,००,००० वर्ष	अंत:कोड़ाकोड़ी सागर
बंधापसरण क्रमांक	**समय क्र.**	**काल्पनिक स्थितिबंध**	**वास्तविक स्थितिबंध**

स्थितिबंधापसरण और प्रकृतिबंधापसरण के क्रम का नक्शा

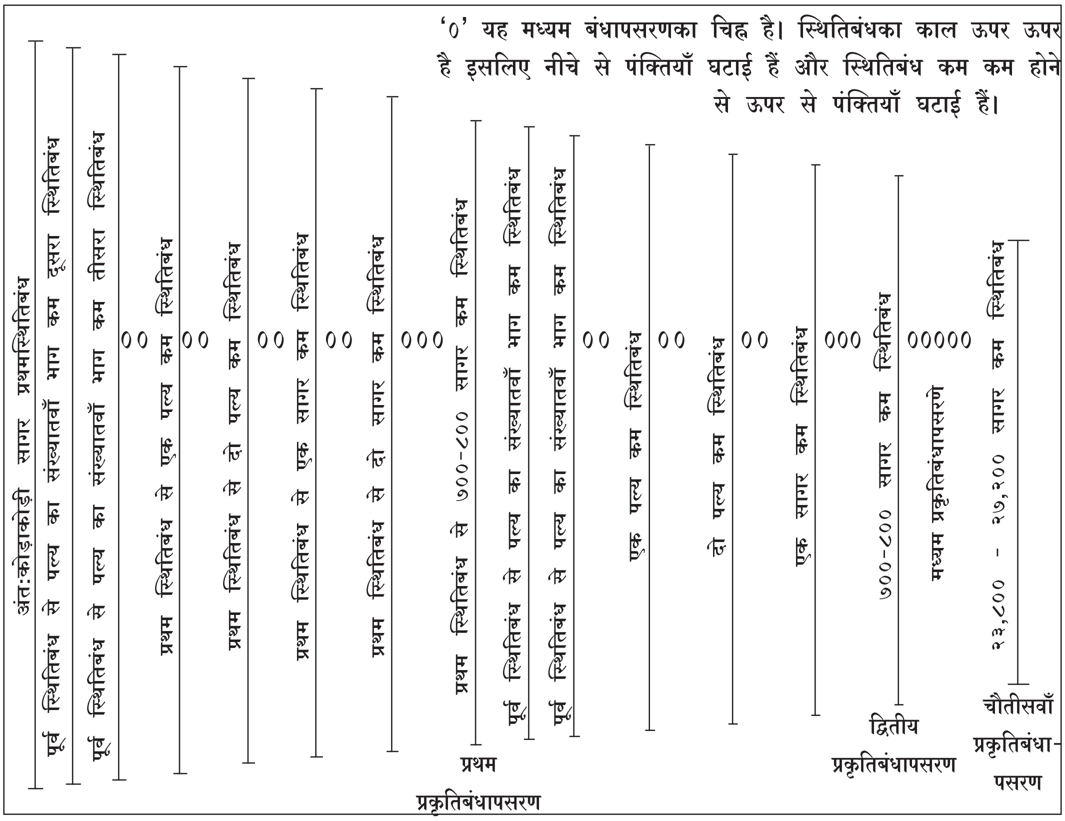

अथ चतुस्त्रिंशत्प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि गाथापञ्चकेनाह–

आउं पडि णिरयदुगे सुहुमतिये सुहुमदोण्णि पत्तेयं ।

बादरजुद दोण्णि पदे अपुण्णजुद वितिचसण्णिसण्णीसु ।।११।।

आयु: प्रति निरयद्विकं सूक्ष्मत्रयं सूक्ष्मद्वयं प्रत्येकम् ।

बादरयुतं द्वे पदे अपूर्णयुतं द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिषु ।।११।।

प्रथमं नारकायुषो व्युच्छित्तिपदं, द्वितीयं तिर्यगायुष:, तृतीयं मनुष्यायुष:, चतुर्थं देवायुष:, पंचमं नरकगतितदानुपूर्व्ययो:, षष्ठं सूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणप्रकृतीनां संयुक्तानां, सप्तमं सूक्ष्मापर्याप्तकप्रत्येकप्रकृतीनां संयुक्तानाम्, अष्टमं बादरापर्याप्तकसाधारणानां संयुक्तानां, नवमं बादरापर्याप्तकप्रत्येकानां संयुक्तानां, दशमं द्वीन्द्रियजात्यपर्याप्तकनाम्नो: संयुक्तयो:,

एकादशं त्रीन्द्रियजात्यपर्याप्तकनाम्नो:, द्वादशं चतुरिन्द्रियजात्यपर्याप्तयो:, त्रयोदशं असञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियजात्यपर्याप्तयो:, चतुर्दशं सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रिय-जात्यपर्याप्तयो: ।।११ ।।

अन्वयार्थ :- **(आउं पडि)** प्रत्येक आयु, **(णिरयदुगे)** नरकद्विक, **(सुहुमतिय)** सूक्ष्मत्रय, **(सुहुमदोण्णि पत्तेय)** सूक्ष्मादि दो और प्रत्येक, **(बादरजुद दोण्णिपदे)** बादरयुक्त पूर्वोक्त दो स्थान, **(अपुण्णजुद वि-ति-चसण्णि सण्णीसु)** अपर्याप्तयुक्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय (ऐसे क्रमश: १४ स्थान हैं।) ।।११।।

टीकार्थ :- पहला नरकायु का व्युच्छित्ति स्थान है। दूसरा स्थान तिर्यंचायु, तीसरा स्थान मनुष्यायु, चौथा स्थान देवायु, पाँचवा स्थान नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी, छठा स्थान संयुक्त रूप से सूक्ष्म-अपर्याप्तक-साधारण प्रकृति, सातवाँ स्थान संयुक्त रूप से सूक्ष्म-अपर्याप्तक-प्रत्येक प्रकृति, आठवाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर-अपर्याप्त-साधारण प्रकृति, नौवाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर-अपर्याप्तक-प्रत्येक प्रकृति, दसवाँ स्थान संयुक्त रूप से द्वीन्द्रिय जाति अपर्याप्तक, ग्यारहवाँ स्थान संयुक्त रूप से त्रीन्द्रिय जाति अपर्याप्तक, बारहवाँ स्थान संयुक्त रूप से चतुरिन्द्रिय जाति अपर्याप्तक, तेरहवाँ स्थान संयुक्त रूप से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जाति अपर्याप्तक, चौदहवाँ स्थान संयुक्त रूप से संज्ञी पंचेन्द्रिय जाति अपर्याप्तक का है।

विशेषार्थ :- (१) बंधव्युच्छित्ति का लक्षण - विवक्षित स्थान के अंतिम समयपर्यंत बंध होकर उसके अनन्तर समय में बंध न होना उसे बंधव्युच्छित्ति कहते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में आयुबंध का अभाव है अत: यहाँ सर्व आयुओं की बंध-व्युच्छिति कही है। (२) यहाँ संयुक्त रूप का अर्थ उन प्रकृतियों का एक साथ मिलकर यहाँ से बंध नहीं होता है परन्तु उनमें किसी प्रकृति का परिवर्तन होने पर यथासंभव इन प्रकृतियों में से किसी प्रकृति का आगे भी बंध होता है, ऐसा समझना चाहिए। जैसे सातवें स्थान में सूक्ष्म, अपर्याप्त व प्रत्येक की संयुक्त रूप से बंधव्युच्छित्ति हुई। इनमें से प्रत्येक प्रकृति का सूक्ष्म-अपर्याप्त के साथ बंध नहीं होगा, किंतु बादर और पर्याप्त के साथ आगे भी बंध होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए। (३) सूक्ष्मत्रिक अर्थात् सूक्ष्म, अपर्याप्तक और साधारण। (४) नरकद्विक अर्थात् नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी।

अट्ठ अपुण्णपदेसु वि पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे ।
एइंदिय आदावं थावरणामं च मिलिदव्वं ।।१२।।

अष्टास्वपूर्णपदेष्वपि पूर्णेन युतेषु तेषु तुर्यपदे ।
एकेन्द्रियमातपः स्थावरनाम च मेलयितव्यम् ।।१२।।

पञ्चदशं सूक्ष्मपर्याप्तसाधारणानां संयुक्तानां, षोडशं सूक्ष्मपर्याप्तप्रत्येकानां संयुक्तानां, सप्तदशं बादरपर्याप्तसाधारणानां संयुक्तानाम्, अष्टादशं बादरपर्याप्तप्रत्येकैकेन्द्रियजात्यातपस्थावराणां संयुक्तानाम्, एकान्नविंशं द्वीन्द्रियजातिपर्याप्तयोः संयुक्तयोः, विंशं त्रीन्द्रियजातिपर्याप्तयोः, एकविंशं चतुरिन्द्रियजातिपर्याप्तयोः, द्वाविंशं असंज्ञिपञ्चेन्द्रियजातिपर्याप्तयोः ।।१२।।

अन्वयार्थ :– **(अट्ठ अपुण्णपदेसु वि)** पूर्वोक्त आठ अपर्याप्त स्थानों में **(पुण्णेण जुदेसु)** पर्याप्त जोड़ने पर (आगेके आठ स्थान होते हैं ।) **(तेसु तुरियपदे)** उसमें से चौथे स्थान में **(एइंदिय आदावं थावरणाम च)** एकेन्द्रिय, आतप व स्थावर नामकर्म **(मिलिदव्वं)** मिलाना चाहिए अर्थात् पूर्वोक्त छठे स्थान से तेरहवें स्थान पर्यन्त आठ स्थानों में अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त जोड़ें एवं नौवें स्थान में एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृति अधिक जोड़ना चाहिए।

टीकार्थ :– पंद्रहवाँ स्थान संयुक्तरूप से सूक्ष्म–पर्याप्त–साधारण का है। सोलहवाँ स्थान संयुक्तरूप से सूक्ष्म–पर्याप्त–प्रत्येक का, सतरहवाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर–पर्याप्त–साधारण का, अठारहवाँ स्थान संयुक्त रूप से बादर–पर्याप्त–प्रत्येक–एकेन्द्रिय जाति –आतप–स्थावर का, उन्नीसवाँ स्थान संयुक्त रूप से द्वीन्द्रिय–जाति–पर्याप्त का, बीसवाँ स्थान संयुक्त रूप से त्रीन्द्रिय–जाति–पर्याप्त का, इक्कीसवाँ स्थान संयुक्त रूप से चतुरिन्द्रिय–जाति–पर्याप्त का, बावीसवाँ स्थान असंज्ञी–पंचेन्द्रिय–जाति–पर्याप्त का है। ।।१२।।

तिरियदुगुज्जोवे वि य णीचे अपसत्थगमण दुभगतिए ।
हुंडासंपत्ते वि य णउंसए वाम–खीलीए ।।१३।।

तिर्यग्द्विकोद्योतावपि च नीचैरप्रशस्तगमनं दुर्भगत्रिकम् ।
हुण्डासम्प्राप्तेऽपि च नपुंसकं वामनकीलिते ।।१३।।

त्रयोविंशं तिर्यग्गतितदानुपूर्व्योद्योतानां संयुक्तानां, चतुर्विंशं नीचैर्गोत्रस्य, पञ्चविंशं अप्रशस्तगमन–दुर्भगदुःस्वरानादेयानां संयुक्तानां, षड्विंशं हुंडसंस्थानासंप्राप्तसृपाटिकासंहननयोः, सप्तविंशं नपुंसकवेदस्य, अष्टाविंशं वामनसंस्थानकीलितसंहननयोः ।।१३।।

अन्वयार्थ : **(तिरियदुगुज्जोवे वि य)** तिर्यंचद्विक और उद्योत, **(णीचे)** नीचगोत्र,

(अपसत्थगमण दुभगतिए) अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भगत्रिक **(हुंडासंपत्ते वि य)** हुंडक संस्थान और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, **(णउंसए)** नपुंसकवेद **(वाम-खीलीए)** वामन संस्थान और कीलित संहनन- इसप्रकार क्रमशः ६ व्युच्छित्ति स्थान हैं ।

टीकार्थ :- तेवीसवाँ स्थान संयुक्तरूप से तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी व उद्योत का है। चौवीसवाँ स्थान नीचगोत्र, पच्चीसवाँ स्थान संयुक्तरूप से अप्रशस्त विहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय, छब्बीसवाँ स्थान हुंडक संस्थान और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, सत्ताईसवाँ स्थान नपुंसकवेद और अट्ठाईसवाँ स्थान वामन संस्थान व कीलितसंहनन का है।

खुज्जद्धं णाराए इत्थीवेदे य सादिणाराए ।
णग्गोधवज्जणाराए मणुओरालदुगवज्जे ।।१४।।

कुब्जार्धनाराचं स्त्रीवेदं च स्वातिनाराचे ।
न्यग्रोधवज्रनाराचे मनुष्यौदारिकद्विकवज्रे ।।१४।।

एकान्नत्रिंशं कुब्जसंस्थानार्द्धनाराचसंहननयोः, त्रिंशं स्त्रीवेदस्य, एकत्रिंशं स्वातिसंस्थान-नाराचसंहननयोः, द्वात्रिंशं न्यग्रोधसंस्थानवज्रनाराचसंहननयोः, त्रयस्त्रिंशं मनुष्यगतितदानुपूर्व्यौ-दारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गवज्रवृषभनाराचसंहनननानां संयुक्तानाम् ।।१४।।

अन्वयार्थ :- (खुज्जद्धं णाराए) कुब्जकसंस्थान-अर्द्धनाराचसंहनन, **(इत्थीवेदे य)** स्त्रीवेद, **(सादिणाराए)** स्वाति संस्थान व नाराच संहनन, **(णग्गोधवज्जणाराए)** न्यग्रोध संस्थान व वज्रनाराच संहनन **(मणुओराल दुग- वज्जे)** मनुष्यद्रिक, औदारिक द्विक व वज्रवृषभनाराचसंहनन-इस प्रकार ५ व्युच्छित्ति स्थान हैं ।

टीकार्थ :- उनतीसवाँ स्थान कुब्जक संस्थान और अर्द्धनाराच संहनन का है । तीसवां स्थान स्त्रीवेद, इकतीसवाँ स्थान स्वाति संस्थान और नाराच संहनन, बत्तीसवाँ स्थान न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान और वज्रनाराचसंहनन, तैतीसवाँ स्थान संयुक्त रूप से मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन का है ।

अथिरअसुभजस-अरदी सोय-असादे य होंति चोत्तीसा ।
बंधोसरणट्ठाणा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ।।१५।।

अस्थिराशुभायशोऽरतिः शोकासाते च भवन्ति चतुस्त्रिंशं ।
बन्धापसरणस्थानानि भव्याभव्येषु सामान्यानि ।।१५।।

चतुस्त्रिंशं अस्थिराशुभायशस्कीर्त्यरतिशोकासातानां संयुक्तानां प्रकृतीनां बन्ध-व्युच्छित्तिपदम्। एवं प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि चतुस्त्रिंशदपि भव्याभव्ययो: समानानि भवन्ति। सर्वत्र सागरोपमशतपृथक्त्वहान्या आयुर्वर्जसप्तप्रकृतिस्थितिबन्धक्रमोऽपि पूर्ववद्द्रष्टव्य: ।।१५।।

अन्वयार्थ :- (अथिरअसुभजस अरदी सोय असादे य) अस्थिर, अशुभ, अयश, अरति, शोक, असाता यह चौंतीसवाँ स्थान है। इसप्रकार **(चोत्तीसा बंधोसरणट्ठाणा)** चौंतीस बंधापसरण स्थान **(भव्वाभव्वेसु)** भव्य और अभव्यों में **(सामण्णा)** सामान्यरूप से (दोनों को) **(होंति)** होते हैं।

टीकार्थ :- चौंतीसवाँ संयुक्तरूप से अस्थिर-अशुभ-अयश-अरति-शोक-असाता प्रकृतियों का बंधव्युच्छित्ति स्थान है। इस प्रकार चौंतीस ही प्रकृतिबन्धापसरण स्थान भव्य और अभव्य दोनों में समानरूप से होते हैं। सभी प्रकृतिबंधापसरण स्थानों में सौ सागरोपम पृथक्त्व हानि के द्वारा आयु के बिना सात कर्म प्रकृतियों में स्थितिबंध का क्रम पूर्व के समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ :- अशुभ, अशुभतर और अशुभतम के भेद से प्रकृतियों का अवस्थान माना गया है। इस अपेक्षा से इन प्रकृतियों की बंध-व्युच्छित्ति का क्रम है। बंधव्युच्छित्ति का क्रम विशुद्धि को प्राप्त होने वाले भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवों में साधारण अर्थात् समान है परंतु जयधवलाकार ने कहा है कि जो अभव्यों के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होता है उसे एक भी कर्मप्रकृति की बंधव्युच्छित्ति नहीं होती है। इस प्रकार इस बारे में दो मत हैं। वैसे ही चौंतीस स्थितिबंधापसरण के संबंध में भी दो मत हैं। धवला में प्रत्येक बंधापसरण में सागरोपमशतपृथक्त्व स्थितिबंध कम होने का क्रम कहा है परन्तु जयधवला में मात्र सागरोपमपृथक्त्व स्थितिबंध कम होने का उल्लेख है।[४]

अंतिम चौंतीसवे बंधापसरण में असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयश:कीर्ति इन छह प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव की होती है। यद्यपि ये प्रकृतियाँ प्रमत्तसंयत गुणस्थानपर्यंत बंध के योग्य हैं तथापि यहां उनके बन्धव्युच्छित्ति के कथन में विरोध नहीं आता, क्योंकि इन प्रकृतियों के बंधयोग्य संक्लेश का उल्लंघन करके उनके प्रतिपक्षभूत प्रकृतियों के बंधयोग्य विशुद्धि से वृद्धि को प्राप्त सर्वविशुद्ध जीव को इन प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होने में कोई विरोध नहीं है। चतुर्थादि गुणस्थानों में उनके बंधयोग्य संक्लेश परिणाम होने पर पुन: उनका बंध प्रारंभ होता है। कही गई इन प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होने पर अवशेष प्रकृतियों को सम्यक्त्व के सम्मुख मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यात्व गुणस्थान के चरम समयपर्यंत बाँधता है ।

---

१) ध. पु. ६ पृ. १३६ से १३९. २) जय. ध. पु. १२ पृ. २२१. ३) ध. पु. ६ पृ. १३६ से १३९.
४) जय. ध. पु. १२, पृ. २२१ से २२४. ५) जय. ध. पु. १२, पृ. २२४-२२५

अथ एतेषां प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानां चतुर्गतिसम्भवविशेषं कथयति–

णरतिरियाणं ओघो भवणतिसोहम्मजुगलए विदियं।
तदियं अट्ठारसमं तेवीसदिमादि दसपदं चरिमं ।।१६।।

नरतिरश्चामोघो भवनत्रिसौधर्मयुगलके द्वितीयम्।
तृतीयमष्टादशमं त्रयोविंशत्यादिदशपदं चरमम् ।।१६।।

मनुष्यगतौ तिर्यग्गतौ च प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेः प्रकृतिबंधापसरणपदानि चतुस्त्रिंशदपि सम्भवन्ति। तद्बन्धयोग्यानां सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीनां मध्ये नारकायुरादि–षट्चत्वारिंशत्प्रकृतिबन्धापसरणकथनात्। तथाहि– नारकायुरादिषु षट्सु पदेषु नव, अष्टादशे पदे तिस्रः, तत्तत्पदेषु द्वित्रिचतुरिंद्रियजातयस्तिस्रः, त्रयोविंशादिषु द्वादशसु पदेषु तिर्यग्द्विकोद्योतादयः एकत्रिंशत्। एवं चतुस्त्रिंशत्पदेषु षट्चत्वारिंशत्प्रकृतयो बन्धतो व्युच्छिन्ना इति सूत्रे सूचितत्वात्, शेषा एकसप्ततिप्रकृतयस्तेन बध्यन्ते। भावनादित्रये सौधर्मैशानयोश्च कल्पयोर्बन्धयोग्यानां त्र्यधिकशतप्रकृतीनां मध्ये तिर्यगायुरादिषु चतुर्दशसु पदेषु एकत्रिंशत्प्रकृतयो बन्धतो व्युच्छिन्नाः। शेषाः द्वासप्ततिप्रकृतयो बध्यन्ते।।१६।।

अब इन प्रकृतिबंधापसरण स्थानों की चार गतियों में विशेषता कहते हैं–

अन्वयार्थ :– **(णर–तिरियाणं)** मनुष्य व तिर्यंचो के **(ओघो)** सामान्य अर्थात् चौतीस बन्धापसरण स्थान होते हैं। **(भवणतिसोहम्मजुगलए)** भवनत्रिक और सौधर्म युगल में **(विदियं)** दूसरा **(तदियं)** तीसरा, **(अट्ठारसम)** अठारहवाँ, **(तेवीसदिमादि दसपदं)** तेवीसवें स्थान से लेकर दस स्थान और **(चरिमं)** अंतिम स्थान होता है।

टीकार्थ :– मनुष्यगति और तिर्यंचगति में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख होने वाले मिथ्यादृष्टि के चौतीस बन्धापसरण स्थान होते हैं क्योंकि उसके बंधयोग्य ११७ प्रकृतियों में से नरकायु आदि ४६ प्रकृतियों का बन्धापसरण कहा है। इसका स्पष्टिकरण इसप्रकार है – नरकायु आदि छह स्थानों में ९ प्रकृतियाँ होती हैं। अठारहवें स्थान में एकेंद्रियादिक ३ प्रकृतियाँ, उस–उस पद में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय–जाति ये ३ प्रकृतियाँ, तेईसवें आदि बारह पदों में तिर्यंचद्विक, उद्योतादि ३१ प्रकृतियाँ–इसप्रकार चौतीस स्थानों में ४६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती हैं ऐसा सूत्र में सूचित किया है। इसलिये शेष ७१ प्रकृतियों का बन्ध होता है। यह बात सिद्ध होती है। भवनत्रिक और सौधर्म ऐशान स्वर्ग में बन्धयोग्य १०३ प्रकृतियों में से तिर्यंचायु आदि १४ पदों में ३१ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है, शेष ७२ प्रकृतियाँ बंधती हैं।

विशेषार्थ :– दर्शनमोहनीय की उपशामना करने वाले जीव को तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती है। सादि मिथ्यादृष्टि के कदाचित् आहारकद्विक की सत्ता संभव है परंतु आहारकद्विक की उद्वेलना करने के बाद ही उक्त जीव दर्शनमोहनीय की उपशामना करने के योग्य होता है क्योंकि सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति के उद्वेलनाकाल से आहारकद्विक

का उद्वेलना–काल अल्प है। इसलिए दर्शनमोहनीय की उपशामना करने के सन्मुख मिथ्यादृष्टि जीव के उक्त दो प्रकृतियों की सत्ता नहीं होती है। ३४ प्रकृति बन्धापसरण स्थानों में अपुनरुक्त ५१ प्रकृतियाँ होती हैं। उसमें असंज्ञी पंचेन्द्रिय स्वतन्त्र प्रकृति नहीं है। त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक इन चार प्रकृतियों का एकेन्द्रिय के साथ संयुक्त बंध नहीं होता है परन्तु संज्ञी पंचेन्द्रिय के साथ उपर्युक्त चार प्रकृतियों का बंध होता है। इसलिए इन चार प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति नहीं होती है। इस प्रकार ५१ में से ५ प्रकृतियाँ कम होने पर टीका में कही हुई ९+३+३+३१=४६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है।

अथ नरकगतौ देवगतौ च विशेषेण बन्धापसरणपदसम्भवं कथयति–

ते चेव चोद्दसपदा अट्ठारसमेण हीणया होंति।
रयणादिपुढविछक्के सणक्कुमारादिदसकप्पे ।।१७।।

तानि चैव चतुर्दशपदान्यष्टादशेन हीनानि भवन्ति।
रत्नादिपृथ्वीषट्के सनत्कुमारादिदशकल्पेषु ।।१७।।

नरकगतौ रत्नप्रभादितमःप्रभापर्यन्ते पृथ्वीषट्के प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टेः प्रकृतिबन्धापसरणपदानि पूर्वोक्तान्येव अष्टादशेन हीनानि त्रयोदश भवन्ति। तेषु तिर्यगायुरादयो–ऽष्टाविंशतिप्रकृतयो बन्धतो व्युच्छिन्नाः, तद्योग्यप्रकृतिशतमध्ये तदपनयने शेषाः द्वासप्ततिप्रकृतयो बध्यन्ते। एवं देवगतौ सनत्कुमारादिसहस्रारपर्यन्तेषु दशसु कल्पेष्वपि बन्धापसरणपदानि बन्धव्युच्छिन्नप्रकृतयो बध्यमानप्रकृतयश्च ज्ञातव्याः ।।१७।।

अब नरकगति और देवगति में विशेषरूप से बंधापसरण स्थान कहते हैं–

अन्वयार्थ :–(रयणादिपुढविछक्के) रत्नप्रभादि छह नरक पृथिवियों में और **(सणक्कुमारादिदसकप्पे)** सानत्कुमारादि दस स्वर्गों में **(अट्ठारसमेण हीणया)** अठारहवें स्थान से रहित **(ते चेव चोद्दसपदा)** वे ही अर्थात् सौधर्म युगल में पाये जाने वाले चौदह स्थान **(होंति)** होते हैं।

टीकार्थ :– नरकगति में रत्नप्रभा से तमःप्रभा नरक तक छह पृथ्वियों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के पूर्व में कहे गए १४ स्थानों में से अठारहवें स्थान को कम करके शेष तेरह प्रकृतिबंधापसरण स्थान होते हैं। उनके बंधयोग्य सौ (१००) प्रकृतियों में से २८ प्रकृतियों को कम करके शेष ७२ प्रकृतियों का बंध होता है। इसी प्रकार देवगति में सानत्कुमार आदि सहस्रार पर्यन्त दस स्वर्गों में भी बंधापसरण स्थान, बंधव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ और बंधनेवाली प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

विशेषार्थ :– एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप ये तीन प्रकृतियाँ तीसरे स्वर्ग से लेकर आगे बंधयोग्य नहीं हैं। सौधर्म युगल की ३१ प्रकृतियों में से ये ३ प्रकृतियाँ कम करने पर यहाँ २८ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है।

अथानतादिषु प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि कथयति–

ते तेरस विदिएण य तेवीसदिमेण चावि परिहीणा।
आणदकप्पादुवरिमगेवेज्जंतोत्ति ओसरणा ।।१८।।

तानि त्रयोदश द्वितीयेन च त्रयोविंशतिकेन चापि परिहीनानि ।
आनतकल्पादुपरिमग्रैवेयकान्तमित्यपसरणाः ।।१८।।

देवगतौ प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेरानतप्राणतादिषूपरिमग्रैवेयकपर्यन्तेषु विमानेषु वर्तमानस्य विशुद्धिविशेषात्तान्येव पूर्वोक्तानि त्रयोदश प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि द्वितीयेन त्रयोविंशेन च हीनान्येकादशप्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि भवन्ति, तेष्वबध्यमानाः प्रकृतयश्च– तुर्विंशतिः। तद्योग्यषण्णवतिप्रकृतिमध्ये तदपनयने शेषा द्वासप्ततिः प्रकृतयो बध्यन्ते ।।१८।।

अब आनतादि स्वर्गोंमें प्रकृति–बन्धापसरण स्थानों का वर्णन करते हैं–

अन्वयार्थः– (आणदकप्पादुवरिमगेवेज्जंतोत्ति) आनत कल्प से उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त **(विदिएण य)** दूसरे और **(तेवीसदिमेण चावि)** तेवीसवें स्थान से **(परिहीणा)** हीन **(ते तेरस)** वे ही पूर्वोक्त तेरह **(ओसरणा)** बंधापसरण स्थान होते हैं ।

टीकार्थः– देवगति में आनतप्राणतादि से उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत के विमान में रहने वाले प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि को विशुद्धिविशेष के कारण पूर्व गाथा में बताये हुये तेरह प्रकृतिबंधापसरण स्थानों में से दूसरे और तेईसवें स्थान को कम करके ग्यारह प्रकृतिबंधापसरण स्थान होते हैं। उनमें अबध्यमान २४ प्रकृतियाँ हैं। आनतादि में बन्धयोग्य छियानबे (९६) प्रकृतियों में से चौबीस (२४) प्रकृतियाँ कम करने पर शेष बहत्तर (७२) प्रकृतियाँ बांधी जाती हैं।

विशेषार्थः– तेरहवें स्वर्ग से उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त के देवों में उपर्युक्त २८ प्रकृतियों में से बन्ध के अयोग्य तिर्यंचद्विक, उद्योत व तिर्यंचायु ये चार प्रकृतियाँ कम करके २४ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है। देव और नारकियों में औदारिक शरीरादि प्रकृतियों का ध्रुवबन्ध होने से उनकी बंधव्युच्छित्ति नहीं होती है।

अथ सप्तमपृथिव्यां बन्धापसरणपदानि कथयति –

ते चेवेक्कारपदा तदिऊणा विदियठाणसंजुत्ता ।
चउवीसदिमेणूणा सत्तमपुढविम्हि ओसरणा।।१९।।

तानि चैवैकादशपदानि तृतीयोनानि द्वितीयस्थानसंयुक्तानि ।
चतुर्विंशतिकेनोनानि सप्तमपृथिव्यामपसरणानि।।१९।।

नरकगतौ सप्तमपृथिव्यां प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेः प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि तान्येव पूर्वोक्तानि तृतीयस्थानरहितानि द्वितीयस्थानसहितान्येकादश चतुर्विंशेन स्थानेन रहितानि दश भवन्ति। तेष्वबध्यमानाः प्रकृतयस्त्रयोविंशतिः। उद्योतेन सह चतुर्विंशतिर्वा।

तद्योग्यषण्णवतिप्रकृतिमध्ये तदपनयने त्रिसप्ततिर्द्विसप्ततिर्वा प्रकृतयो बध्यन्ते, उद्योतबन्धाबन्धयोस्तदा सम्भवात् ।।१९।।

अब सातवीं नरक पृथ्वी में बंधापसरण स्थानों को कहते हैं –

अन्वयार्थः– **(सत्तमपुढविम्हि)** सातवीं पृथ्वी में **(तदिऊणा)** तीसरे स्थान से कम **(विदियठाणसंजुत्ता)** और दूसरे स्थान से युक्त **(चउवीसदिमेणूणा)** चौवीसवें स्थान से रहित **(ते चेवेक्कारपदा)** पूर्व गाथा में कहे गए ग्यारह **(ओसरणा)** बंधापसरण स्थान हैं। (अर्थात् कुल दस स्थान हैं ।) ।।१९।।

टीकार्थः– नरकगति में सातवीं पृथ्वी में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख होने वाले मिथ्यादृष्टि के उन पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतिबंधापसरण स्थानों में से तीसरे स्थान से रहित और दूसरे स्थान से सहित तथा चौवीसवें स्थान से रहित दस स्थान होते हैं। उनमें अबध्यमान २३ प्रकृतियाँ हैं अथवा उद्योत सहित २४ प्रकृतियाँ हैं। सातवीं पृथ्वी में बन्धयोग्य ९६ प्रकृतियों में से २३ अथवा २४ प्रकृतियाँ कम करके ७३ अथवा ७२ प्रकृतियाँ बांधी जाती हैं क्योंकि उद्योत का बंध अथवा अबंध दोनों संभव हैं।

विशेषार्थः– सातवें नरक में मनुष्यायु बंधयोग्य नहीं है। इसलिए तीसरा स्थान कम किया और वहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख जीव के नीचगोत्र की बंधव्युच्छित्ति नहीं होने से २४ वाँ बन्धापसरण स्थान भी कम किया। वहाँ तिर्यंचायु बंधयोग्य है, परन्तु सम्यक्त्व के सन्मुख जीव के आयु की बंधव्युच्छित्ति होने से दूसरे बंधापसरण स्थान को मिलाया इसप्रकार सातवें नरक में १० बंधापसरण स्थान हैं।

शंका – तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र इन प्रकृतियों की सातवें नरक में बंधव्युच्छित्ति क्यों नहीं है?

समाधान – सातवें नरक में उस भव संबंधी संक्लेश परिणाम होने से शेष गतियों के योग्य परिणाम नहीं होने से वहाँ के नारकी मिथ्यादृष्टि के तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत व नीच गोत्र को छोड़कर सदाकाल उसकी प्रतिपक्ष स्वरूप प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता हैं ।[1] उसीप्रकार विशुद्धि से ध्रुवबंधी प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति नहीं होती है। अन्यथा उस विशुद्धि के कारण से ज्ञानावरणादि प्रकृतियों की भी बंधव्युच्छित्ति होने का प्रसंग आएगा किंतु ऐसा नहीं हैं क्योंकि ऐसा मानने पर अनवस्था दोष आएगा ।[2]

---

१) जय. ध. पु. १२, पृ. २२३, गो. क. गा. १०७.
२) ध. पु. ६, पृ. १४३–१४४.

चार गतियों में संभवनीय प्रकृतिबंधापसरण स्थान

स्थान. क्र.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य, तिर्यंच	भवनत्रिक, सौधर्म यु.	३से१२स्वर्ग, १से६नरक	१३ वें स्वर्ग से नव ग्रैवेयक	सातवाँ नरक.
१	नरकआयु	१				
२	तिर्यंचआयु	१	१	१		१
३	मनुष्यायु	१	१	१	१	
४	देवायु	१				
५	नरकद्विक १)नरकगति २) नरकगत्यानुपूर्वी	२				
६	सूक्ष्मत्रिक- सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण	३				
७	सूक्ष्म- अपर्याप्तक- प्रत्येक					
८	बादर-अपर्याप्तक-साधारण					
९	बादर-अपर्याप्तक-प्रत्येक					
१०	द्वीन्द्रियजाति-अपर्याप्तक					
११	त्रीन्द्रियजाति-अपर्याप्तक					
१२	चतुरिन्द्रियजाति-अपर्याप्तक					
१३	असंज्ञिपंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक					
१४	संज्ञिपंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक					
१५	सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण					
१६	सूक्ष्म-पर्याप्त -प्रत्येक					
१७	बादर-पर्याप्त-साधारण					
१८	एकेंद्रिय-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक- आतप-स्थावर	३	३			
१९	द्वीन्द्रियजाति-पर्याप्त	१				
२०	त्रीन्द्रियजाति-पर्याप्त	१				
२१	चतुरिन्द्रियजाति-पर्याप्त	१				
२२	असंज्ञिपंचेन्द्रियजाति-पर्याप्त					
२३	१)तिर्यंचगति २)तिर्यंचगत्यानुपूर्वी ३)उद्योत	३	३	३		
२४	नीचगोत्र	१	१	१	१	
२५	१)अप्रशस्त विहायोगति २)दुर्भग३)दु:स्वर४)अनादेय	४	४	४	४	४
२६	१) हुंडक संस्थान २) असंप्राप्तसृपाटिका संहनन	२	२	२	२	२

स्थान. क्र.	बंधापसरण होने वाली प्रकृतियों के नाम	मनुष्य तिर्यंच	भवनत्रिक सौधर्मयु.	३से१२स्वर्ग १ते६नरक	१३ वे स्वर्ग से नवग्रैवेयक	सातवाँ नरक.
२७	नपुंसकवेद	१	१	१	१	१
२८	१)वामनसंस्थान २) कीलितसंहनन	२	२	२	२	२
२९	१)कुब्जकसंस्थान २)अर्धनाराचसंहनन	२	२	२	२	२
३०	स्त्रीवेद	१	१	१	१	१
३१	१) स्वातिसंस्थान २) नाराचसंहनन	२	२	२	२	२
३२	१)न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान २) वज्रनाराचसंहनन	२	२	२	२	२
३३	१)मनुष्यगति २)मनुष्यगत्यानुपूर्वी ३) औदारिक शरीर ४) औदारिक शरीरांगोपांग ५) वज्रर्षभनाराच संहनन	५				
३४	१) अस्थिर २) अशुभ ३) अयश ४) अरति ५) शोक ६) असाता	६	६	६	६	६
	कुल व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ	४६	३१	२८	२४	२४/२३
	अवशेष बंधयोग्य प्रकृतियाँ	७१	७२	७२	७२	७२/७३
	प्रकृतिबन्धापसरण के कुल स्थान	३४	१४	१३	११	१०
	अबन्ध प्रकृतियाँ	३	१४	१७	२१	२१
	कुल बंधयोग्य प्रकृतियाँ	११७	१०३	१००	९६	९६

अथ मनुष्यतिर्यग्गत्योः प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिना बध्यमानाः प्रकृतयः कथ्यन्ते–

घादिति सादं मिच्छं कसायपुंहस्सरदि भयस्स दुगं।
अपमत्तडवीसुच्चं बंधंति विसुद्धणरतिरिया[1]।।२०।।

घातित्रयं सातं मिथ्यं कषायपुंहास्यरतयो भयस्य द्रिकम्।
अप्रमत्ताष्टाविंशोच्चं बध्नन्ति विशुद्धनरतिर्यञ्चः।।२०।।

ज्ञानावरणस्य पञ्च, दर्शनावरणस्य नव, अन्तरायस्य पञ्च, सातवेद्यं, मिथ्यात्वं,

१) जी. चू. ३, सू. २. जयध. पु. १२, पृ. २११.

षोडशकषाया:, पुंवेदो, हास्यं रतिर्भयं जुगुप्सा, अप्रमत्तस्याष्टविंशतिरुच्चैर्गोत्रमित्येकसप्ततिं प्रकृती: प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखा विशुद्धा मनुष्यतिर्यंचो बध्नन्ति, चतुस्त्रिंशद्बन्धापसरणपदेषु षट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां बन्धव्युच्छेदस्य प्रागेवोक्तत्वात् ।।२०।।

अब मनुष्यगति और तिर्यंचगति में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होने वाले मिथ्यादृष्टि के द्वारा बंधने वाली प्रकृतियाँ कहते हैं–

अन्वयार्थ: **(विसुद्धणरतिरिया)** विशुद्ध मनुष्य व तिर्यंच (प्रायोग्यलब्धि में स्थित मिथ्यादृष्टि) **(घादिति)** ज्ञानावरणादि तीन घातिया कर्म, **(सादं)** साता वेदनीय, **(मिच्छं)** मिथ्यात्व **(कसायपुंहस्सरदि)** कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति **(भयस्स दुगं)** भयद्विक (भय, जुगुप्सा) **(अपमत्तडवीसुच्चं)** अप्रमत्त गुणस्थान में बंधयोग्य २८ नामकर्म की प्रकृतियाँ और उच्च गोत्र इन प्रकृतियों को **(बंधंति)** बांधता हैं ।

टीकार्थ:– ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नौ, अंतराय की पाँच, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रमत्त की अट्ठाईस और उच्चगोत्र, इसप्रकार इकहत्तर (७१) प्रकृतियाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होने वाले विशुद्ध मनुष्य और तिर्यंच जीव बांधते हैं क्योंकि बंधापसरण स्थानों में ४६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है यह पूर्व में ही कहा है।

विशेषार्थ:– घातित्रय से ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नौ और अंतराय की पाँच ऐसी कुल उन्नीस प्रकृतियाँ लेना ।

अथाप्रमत्तस्याष्टाविंशतिं प्रकृतीरुद्दिश्यति–

देवतसवण्णअगुरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइयं।
सग्गमणं पंचिंदी थिरादिछण्णिमिणमडवीसं।।२१।।

देवत्रसवर्णागुरुचतुष्कं समचतुरस्रतेज:कार्मणकम्।
सद्गमनं पञ्चेन्द्रियस्थिरादिषण्णिर्माणमष्टाविंशम्।।२१।।

देवत्रसवर्णागुरुचतुष्काणि समचतुरस्रसंस्थानं तैजसं कार्मणं सद्गमनं पञ्चेन्द्रियजाति: स्थिरादिषट्कं निर्माणमित्यष्टाविंशति: ।।२१।।

अब अप्रमत्त के २८ प्रकृतियों का निर्देश करते हैं–

अन्वयार्थ:– (देवतसवण्णअगुरुचउक्क) देवचतुष्क, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, **(समचउरतेजकम्मइयं)** समचतुरस्रसंस्थान, तैजस व कार्मण शरीर **(सग्गमणं)** प्रशस्त विहायोगति, **(पंचिंदी)** पंचेन्द्रिय **(थिरादिछण्णिमिणं)** स्थिरादि ६ प्रकृतियाँ और निर्माण ये **(अडवीसं)** अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं।

टीकार्थ:– देवचतुष्क, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, समचतुरस्र संस्थान, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्तविहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, स्थिरादिषट्क और निर्माण ये अट्ठाईस प्रकृतियाँ अप्रमत्त संबंधी जानना चाहिए।

विशेषार्थ:– (१) देवचतुष्क – देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग। (२) त्रसचतुष्क – त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक। (३) अगुरुलघुचतुष्क – अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास (४) वर्णचतुष्क – वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श (५) स्थिरादि षट्क – स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश:कीर्ति।

अथ देवनरकगत्यो: प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिना बध्यमाना: प्रकृतीरुद्दिशति–

तं सुरचउक्कहीणं णरचउवज्जजुद पयडिपरिमाणं।
सुरछप्पुढवीमिच्छा सिद्धोसरणा हु बंधंति[1] ।।२२।।

तत् सुरचतुष्कहीनं नरचतुर्वज्रयुतं प्रकृतिपरिमाणं।
सुरषट्पृथिवीमिथ्या: सिद्धापसरणा हि बध्नन्ति।।२२।।

तिर्यग्मनुष्यबन्धप्रकृतिषु सुरचतुष्कमपनीय नरचतुष्के वज्रवृषभनाराचसंहनने च प्रक्षिप्ते द्विसप्ततिं प्रकृती: प्रसिद्धबन्धापसरणा: सुरमिथ्यादृष्टय: षट्पृथ्वीनारकमिथ्यादृष्टयश्च बध्नन्ति।।२२।।

अब देवगति और नरकगति में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों का नाम निर्देश करते हैं–

अन्वयार्थ:– (सिद्धोसरणा सुरछप्पुढवीमिच्छा) बन्धापसरण पूर्ण किये हुए देव और प्रथमादि छह पृथ्वियों के नारकी मिथ्यादृष्टि **(तं)** उनमें से (पूर्वोक्त ७१ प्रकृतियों में से) **(सुरचउक्कहीणं)** देवचतुष्क कम करके **(णरचउवज्जजुद)** मनुष्यचतुष्क और वज्रवृषभनाराच संहनन से युक्त **(पयडिपरिमाणं)** ७२ प्रकृतियों का **(हु बंधंति)** बंध करते हैं ।।२२।।

टीकार्थ:– तिर्यंच व मनुष्य में बंधयोग्य ७१ प्रकृतियों में से देवचतुष्क कम करके मनुष्यचतुष्क व वज्रवृषभनाराच संहनन मिलाने पर ७२ प्रकृतियाँ होती हैं। उन ७२ प्रकृतियों का बन्धापसरण हुए देव मिथ्यादृष्टि और छह पृथ्वी तक के नारकी मिथ्यादृष्टि बांधते हैं।

---

१) जी. चू. ४, सू. २, जयध. पु. १२, पृ. २११.

विशेषार्थ:– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख देव और प्रथम छह पृथ्वियों के नारकी प्रायोग्य लब्धि में बंधापसरण करने के बाद उपर्युक्त ७२ प्रकृतियों का बंध करते हैं। मनुष्य–चतुष्क अर्थात् मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग। गाथा क्र.२६ के विशेषार्थ में महादंडक २ में बध्यमान प्रकृतियाँ कहेंगे। द्वितीय महादण्डक में सौधर्म और ऐशान स्वर्ग और छह पृथ्वियों के (नरकों में) जीवों द्वारा बध्यमान प्रकृतियाँ कही गयी हैं।

अथ सप्तमपृथिव्यां बन्धप्रकृतीरुद्दिशति–

तं णरदुगुच्चहीणं तिरियदु णीचजुद पयडिपरिमाणं।
उज्जोवेण जुदं वा सत्तमखिदिगा हु बंधंति[1]।।२३।।

तत् नरद्विकोच्चहीनं तिर्यग्द्विकं नीचयुतं प्रकृतिपरिमाणं ।
उद्योतेन युतं वा सप्तमक्षितिगा हि बध्नन्ति।।२३।।

तन्नरद्विकोच्चैर्गोत्रहीनं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयुतं प्रकृतिपरिमाणं उद्योतेन युतं वा सप्तमक्षितिगा: खलु बध्नन्ति । सुगमम् ।।२३।। इति प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टे: प्रकृतिबन्धाबन्धविभाग: कथित: ।

अब सातवीं पृथ्वी में बंधयोग्य प्रकृतियों का निर्देश करते हैं–

अन्वयार्थ: **(तं)** उनमें से (पूर्वोक्त ७२ प्रकृतियों में से) **(णरदुगुच्चहीणं)** मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र कम करके **(तिरियदु णीचजुद)** तिर्यंचद्विक व नीचगोत्र मिलाने पर **(पयडिपरिमाणं)** ७२ प्रकृतियाँ होती हैं। वे **(वा)** अथवा **(उज्जोवेण जुदं)** उद्योत प्रकृति से युक्त ७३ प्रकृतियाँ **(सत्तमखिदिगा)** सातवीं पृथ्वी के नारकी मिथ्यादृष्टि **(हु बंधंति)** बांधते हैं।

टीकार्थ:– सातवीं पृथ्वी के नारकी मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र से रहित और तिर्यंचद्विक और नीचगोत्र से सहित उन पूर्वोक्त ७२ प्रकृतियों को अथवा उद्योत से सहित ७३ प्रकृतियों को बाँधते हैं। इसप्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि जीव के प्रकृतिबन्ध–अबन्ध का विभाग कहा।

विशेषार्थ:– उद्योत प्रकृति का बंध कदाचित् होता भी है अथवा नहीं भी होता हैं। उद्योत प्रकृति का बंध होने पर ७३ प्रकृतियों को बांधता है।

---

१) जी. चू. ५, सू. २। ध. पु. ६ पृ. १४२–१४३ । जय ध. पु. १२, पृ. २१२ ।

अथ स्थित्यनुभागबन्धभेदं कथयति-

अंतोकोडाकोडीठिदिं असत्थाण सत्थगाणं च।
विचउट्ठाणरसं च य बंधाणं बंधणं कुणइ[१]।।२४।।

अन्तःकोटाकोटिस्थितिं अशस्तानां शस्तकानां च।
द्विचतुःस्थानरसं च च बन्धानां बन्धनं करोति।।२४।।

चतुस्त्रिंशद्बन्धापसरणपदेषु पदं प्रति पदं प्रति सागरोपमशतपृथक्त्वहीनामन्तःकोटीकोटि-सागरोपमप्रमितां बध्यमानप्रकृतीनां स्थितिं चतुर्गतिविशुद्धमिथ्यादृष्टिर्बध्नाति। तत्र तत्र पदे अप्रशस्तप्रकृतीनां द्विस्थानगतमनुभागं प्रतिसमयमनन्तगुणहान्या बध्नाति, प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागं चतुःस्थानगतं प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या बध्नाति,तद्विशुद्धेः प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धिसम्भवात्।।२४।।

अब स्थितिबंध और अनुभागबंध के भेदों का कथन करते हैं-

अन्वयार्थः- सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि **(बंधाणं)** बध्यमान प्रकृतियों का **(अंतोकोडाकोडीठिदिं)** अंतःकोटाकोटी सागरोपमप्रमाण स्थितिबंध **(च य)** और **(असत्थाण सत्थगाणं च विचउट्ठाणरसं बंधणं)** अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानीय अनुभागबंध और प्रशस्त प्रकृतियों का चतुःस्थानीय अनुभागबंध **(कुणइ)** करता है।

टीकार्थः- चारों गतियों के विशुद्ध मिथ्यादृष्टि चौंतीस बन्धापसरण स्थानों के प्रत्येक स्थान में सौ सागरोपमपृथक्त्व हीनक्रम से अंतःकोटाकोटी सागरोपमप्रमाण बध्यमान प्रकृतियों का स्थितिबन्ध करता है। उस उस स्थान में प्रत्येक समय में अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानगत अनुभाग अनन्तगुणी हानि से बाँधता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका चतुःस्थानगत अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणी वृद्धिसे बाँधता है, क्योंकि प्रत्येक समय में उसके परिणामों की विशुद्धि अनन्तगुणित वृद्धि से बढ़ती है अर्थात् अनन्तगुणित वृद्धि होती है।

अथ प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टेः प्रदेशबन्धविभागं कथयति-

मिच्छणथीणति सुरचउ समवज्जपसत्थगमणसुभगतियं।
णीचुक्कस्सपदेसमणुक्कस्सं वा पबंधदि हु[२]।।२५।।

मिथ्यानस्त्यानत्रिकं सुरचतुःसमवज्रप्रशस्तगमनसुभगत्रिकं।
नीचैरुत्कृष्टप्रदेशमनुत्कृष्टं वा प्रबध्नाति हि।।२५।।

मिथ्यात्वमनन्तानुबन्धिनः स्त्यानगृद्ध्यादित्रयं सुरचतुष्कं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रवृषभ-

१) ध. पु. ६ पृ. २०९, जय ध. पु. १२, पृ. २१३. २) ध. पु. ६ पृ. २१०, जय ध. पु. १२, पृ. २१३.

नाराचसंहननं प्रशस्तविहायोगमनं सुभगत्रयं नीचैर्गोत्रमित्येकान्नविंशते: प्रकृतीनामुत्कृष्टमनुत्कृष्टं वा प्रदेशं प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखो विशुद्धश्चातुर्गतिको मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति ।।२५।।

अब सम्यक्त्व के सम्मुख मिथ्यादृष्टि के प्रदेशबन्ध का विभाग कहते हैं–

अन्वयार्थ:– (मिच्छणथीणति) मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धिचतुष्क, स्त्यानगृद्धित्रिक **(सुरचउ)** देवचतुष्क **(समवज्जपसत्थगमणसुभगतियं)** समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभगत्रिक, **(णीचुक्कस्सपदेसं)** और नीचगोत्र का उत्कृष्ट प्रदेशबंध **(वा)** अथवा **(अणुक्कस्सं)** अनुत्कृष्ट **(पबंधदि हु)** प्रदेशबन्ध करता है।

टीकार्थ:– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख विशुद्ध चारों गति के मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्यानगृद्धि आदि ३, देवचतुष्क ४, समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभगत्रय और नीचगोत्र इन १९ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करते हैं।

विशेषार्थ:– (१) स्त्यानगृद्धित्रिक – निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, स्त्यानगृद्धि। (२) सुभगत्रिक – सुभग, सुस्वर, आदेय। (३) अनन्तानुबन्धी चतुष्क – अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ।

एदेहिं विहीणाणं तिण्णि महादंडएसु उत्ताणं।
एक्कट्ठिपमाणाणमणुक्कस्सपदेसबंधणं कुणइ।।२६।।

एतैर्विहीनानां त्रिषु महादण्डकेषूक्तानाम्।
एकषष्टिप्रमाणानामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धनं करोति।।२६।।

एतैर्विहीनानां त्रिषु महादण्डकेषूक्तानां एकषष्टिप्रमाणानां प्रकृतीनामनुत्कृष्ट–प्रदेशबन्धनं करोति ।।२६।।

अन्वयार्थ:– (एदेहिं विहीणाणं) पूर्वोक्त (१९) प्रकृतियों से रहित **(तिण्णि महादंडएसु उत्ताणं)** तीन महादंडक में (गाथा क्र. २१,२२,२३) कही गयी **(एक्कट्ठिपमाणाणं)** ६१ प्रकृतियों का **(अणुक्कस्सपदेसबंधणं)** अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध **(कुणइ)** करता है।

टीकार्थ :– इसके बिना (गाथा क्र. २५ में कही गयी प्रकृतियों के बिना) तीन महादंडकों में कही गयी ६१ प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है।

विशेषार्थ:– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव जितनी प्रकृतियों को बांधता है उसका कथन तीन महादंडक के द्वारा किया गया है। प्रथम महादण्डक में मनुष्य और तिर्यंचों में बंधयोग्य प्रकृतियों का कथन है। द्वितीय महादण्डक में देव और प्रथम छह पृथ्वियों के नारकियों की बंधयोग्य प्रकृतियों का कथन है और तृतीय महादण्डक में सातवीं पृथ्वी के नारकियों की बंधयोग्य प्रकृतियों का वर्णन है।

अथैतत्प्रकृतिसम्भवं कथयति–

पढमे[1] सव्वे विदिये[2] पण तदिये[3] चउ कमा अपुणरुत्ता।
इदि पयडीणमसीदी तिदंडएसु वि अपुणरुत्ता।।२७।।

प्रथमे सर्वे द्वितीये पञ्च तृतीये चतुः क्रमादपुनरुक्ताः।
इति प्रकृतीनामशीतिस्त्रिदण्डकेष्वप्यपुनरुक्ताः ।।२७।।

सिद्धान्ते प्रथमदण्डके सर्वाः घातित्रयादयः एकसप्ततिप्रकृतयः उक्ताः, द्वितीयदण्डके नरचतुष्कं वज्रर्षभनाराचसंहननमिति पञ्च प्रकृतयः अपुनरुक्ता उक्ताः, तृतीयदण्डके तिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रं उद्योत इति चतस्रः प्रकृतयः अपुनरुक्ता उक्ताः । एवं क्रमात्त्रिष्वपि दण्डकेषु अपुनरुक्तानां प्रकृतीनामशीतिः प्रोक्ता ।।२७।।

अब तीन महादण्डक में होने वाले अपुनरुक्त प्रकृतियाँ कहते हैं–

अन्वयार्थः– **(पढमे सव्वे)** प्रथम महादण्डक की सभी प्रकृतियाँ **(विदिये पण)** दूसरे महादण्डक में पाँच प्रकृतियाँ, **(तदिये चउ)** तीसरे महादण्डक में चार प्रकृतियाँ **(कमा अपुणरुत्ता)** क्रम से अपुनरुक्त हैं। **(इदि)** इसप्रकार **(तिदंडएसु वि)** उन तीन दण्डक में मिलकर **(पयडीणमसीदी)** ८० प्रकृतियाँ **(अपुणरुत्ता)** अपुनरुक्त हैं।

टीकार्थः– सिद्धान्त में प्रथम दण्डक में सभी तीन घातियादि इकहत्तर (७१) प्रकृतियाँ अपुनरुक्त कही गयी हैं। दूसरे महादण्डक में मनुष्यचतुष्क और वज्रर्षभनाराच संहनन इसप्रकार पाँच प्रकृतियाँ अपुनरुक्त कही गयी हैं। तीसरे महादण्डक में तिर्यंचद्विक, नीचगोत्र और उद्योत ऐसी चार प्रकृतियाँ अपुनरुक्त कही गयी हैं। इस प्रकार क्रम से तीनों महादण्डकों में ८० प्रकृतियाँ अपुनरुक्त कही गयी हैं।

विशेषार्थः– तीन महादण्डक की मिलकर (७१+५+४) कुल अपुनरुक्त प्रकृतियाँ ८० होती हैं । उसमें से गाथा क्र. २५ में कही गयी १९ प्रकृतियाँ घटाने पर ६१ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं । उनका अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है।

---

१) जीव. चू. ३ सू. २, ध. पु. ६, पृ. १३३।
२) जीव. चू. ४ सू. २, ध. पु. ६, पृ. १४०।
३) जीव. चू. ४ सू. २, ध. पु. ६, पृ. १४१।

तीन महादंडक में बध्यमान प्रकृतियों का कोष्टक

महादंडक १	महादंडक २	महादंडक ३
५ ज्ञानावरण	५ ज्ञानावरण	५ ज्ञानावरण
९ दर्शनावरण	९ दर्शनावरण	९ दर्शनावरण
१ साता वेदनीय	१ साता वेदनीय	१ साता वेदनीय
१ मिथ्यात्व	१ मिथ्यात्व	१ मिथ्यात्व
१६ कषाय	१६ कषाय	१६ कषाय
१ पुरुषवेद	१ पुरुषवेद	१ पुरुषवेद
१ हास्य	१ हास्य	१ हास्य
१ रति	१ रति	१ रति
१ भय	१ भय	१ भय
१ जुगुप्सा	१ जुगुप्सा	१ जुगुप्सा
१ देवगति	**१ मनुष्यगति***	**१ तिर्यंचगति***
१ पंचेन्द्रियजाति	१ पंचेन्द्रियजाति	१ पंचेन्द्रियजाति
१ वैक्रियिक शरीर	**१ औदारिक शरीर***	१ औदारिक शरीर
१ तैजस शरीर	१ तैजस शरीर	१ तैजस शरीर
१ कार्मण शरीर	१ कार्मण शरीर	१ कार्मण शरीर
१ समचतुरस्र संस्थान	१ समचतुरस्रसंस्थान	१ समचतुरस्र संस्थान
	१ वज्रऋषभनाराच संहनन*	
१ वैक्रियिक शरीरांगोपांग	**१ औदारिकशरीरांगोपांग***	१ औदारिक शरीरांगोपांग
४ वर्णादिचतुष्क	४ वर्णादिचतुष्क	४ वर्णादिचतुष्क
१ देवगत्यानुपूर्वी	**१ मनुष्यगत्यानुपूर्वी***	**१ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी***
४ अगुरुलघु-आदि-चतुष्क (अगुरुलघु,उपघात,परघात उच्छ्वास)	४ अगुरुलघु-आदि-चतुष्क	४ अगुरुलघु-आदि-चतुष्क
		१ उद्योत*
१ प्रशस्त विहायोगति	१ प्रशस्त विहायोगति	१ प्रशस्त विहायोगति
४ त्रसचतुष्क	४ त्रसचतुष्क	४ त्रसचतुष्क
६ स्थिरादि छह	६ स्थिरादि छह	६ स्थिरादि छह
१ निर्माण	१ निर्माण	१ निर्माण
१ उच्चगोत्र	१ उच्चगोत्र	**१ नीचगोत्र***
५ अन्तराय	५ अन्तराय	५ अन्तराय
७१ कुल	**७२ कुल**	**७३ कुल**
अपुनरुक्त प्रकृतियाँ ७१	५	४

एवं प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य विशुद्धमिथ्यादृष्टेः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धाबन्धभेदमभिधाय तस्यैवोदयप्रकृतिभेदमाह–

उदये चोद्दसघादी णिद्दापयलाणमेक्कदरगं तु ।
मोहे दसतिय[१] णामे वचिठाणं सेसगे सजोगेक्कं[२] ।।२८।।

उदये चतुर्दश घातिनो निद्राप्रचलानामेकतरकं तु ।
मोहे दशत्रिकं नामनि वचःस्थानं शेषके स्वयोग्यैकम्।।२८।।

नरकगतौ प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखविशुद्धमिथ्यादृष्टेरुदये वर्तमानाः प्रकृतयो ज्ञानावरणस्य पञ्च, दर्शनावरणस्य स्त्यानगृद्ध्यादित्रयेण निद्राप्रचलाभ्यां च रहिताः चतस्रः, अन्तरायस्य पञ्च, मोहनीयस्य दशकं नवकमष्टकं वा स्थानानि[३], नारकायुरेका, नाम्नो वाक्स्थानमेकान्नत्रिंशत् प्रकृतिकं, वेदनीयस्यैका, नीचैर्गोत्रम्।

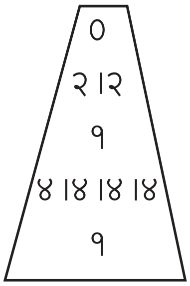

अत्र मोहनीयस्य अष्टप्रकृतिस्थानेन युक्ताः कस्यचिज्जीवस्य चतुःपञ्चाशत्प्रकृतयः तद्भङ्गाः मोहनीयस्याष्टौ, वेदनीयभङ्गाभ्यां गुणिताः षोडश, नामप्रकृतीनां स्थिरशुभयुगलद्वयवर्जितानां नरकगतावप्रशस्तानामेवोदयाद् भङ्गाभावः ।

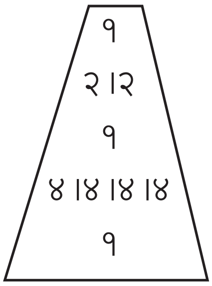

पुनस्ता एव कस्यचिज्जीवस्य भयेन जुगुप्सया वा नवप्रकृतिस्थानेन युक्ताः पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः, तद्भङ्गाः पूर्वोक्ता एव भयजुगुप्साभ्यां गुणिता द्वात्रिंशत् ।

पुनः कस्यचिज्जीवस्य ता एव भयजुगुप्साभ्यां दशप्रकृतिस्थानेन युक्ताः षट्पञ्चाशत्प्रकृतयः, तद्भङ्गाः प्राग्वत् षोडश । भयजुगुप्सयोर्युगपदुदयसम्भवाद् भङ्गाभावः।

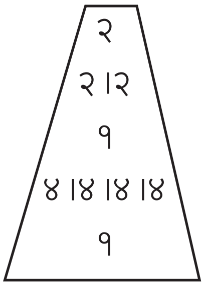

१) पाठभेद – दस सिय मु. प्र. २) ध. पु. ६, पृ. २१०, २११.
३) भयसहियं च जुगुच्छासहियं दोहिं वि जुदं च ठाणाणि । मिच्छादि–अपुव्वंते चत्तारि हवंति णियमेण गो. क., गा. ४७७

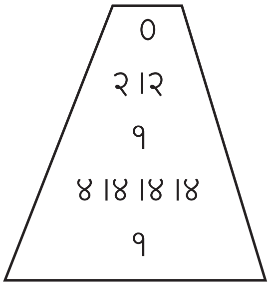

तिर्यग्गतौ[१] पूर्वोक्तप्रकृतिषु संहनने प्रक्षिप्ते मोहाष्टकस्थानयुक्ताः पञ्चपञ्चाशत्प्रकृतयः, तद्भङ्गा मोहस्य चतुर्विंशतिः, वेदनीयस्य द्वौ, नामकर्मणः[२] 'संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे'

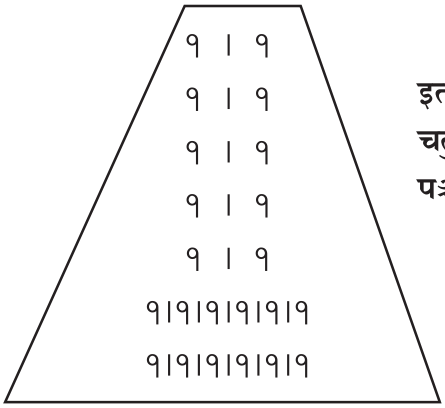

इत्यनेनोक्ता द्वापञ्चाशदुत्तराण्येकादशशतानि ११५२। चतुर्विंशत्या द्वाभ्यां च गुणितानि षण्णवत्युत्तरद्विशत्यधिकानि पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि ५५२९६ भवन्ति ।

पुनस्ता एव प्रकृतयः भयेन जुगुप्सया वा मोहनवकस्थानयुक्ताः षट्पञ्चाशत्तद्भङ्गाः पूर्वभङ्गा एव द्वाभ्यां गुणिता द्वानवत्युत्तरपञ्चशत्यधिकदशसहस्र-संयुक्तैकलक्षसंख्याः ११०५९२।

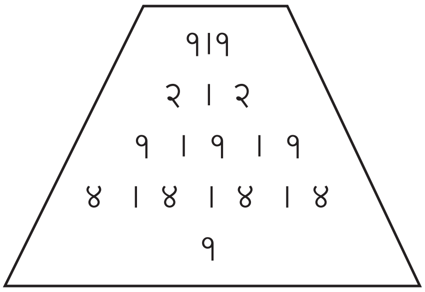

पुनस्ता एव प्रकृतयो युगपद्भयजुगुप्साभ्यां मोहदशक-स्थानयुक्ताः सप्तपञ्चाशत्, तद्भङ्गा भयजुगुप्साभङ्गद्वय-रहितास्त एव षण्णवत्युत्तरद्विशत्यधिकानि पञ्चपञ्चाश-त्सहस्राणि ५५२९६। पुनरेतान्येव त्रीणि स्थलान्युद्योतेनाधिकानि षट्पञ्चाशत्सप्तपञ्चाशदष्ट-पञ्चाशत्प्रकृतिकानि भवन्ति, भङ्गाः पुनः पूर्ववदेव।

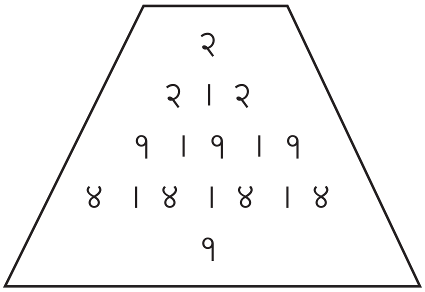

मनुष्यगतावपि तिर्यग्गतिवत्। अयं तु विशेषः – उद्योतनामयुक्तं स्थलत्रयं नास्ति, तदुदयस्य तिर्यग्गतावेवेति नियमात्। उच्चैर्गोत्रस्याप्युदयोऽस्तीति तिर्यग्गतिभङ्गा एव गोत्रभङ्गद्वयेन गुणिता

१) ध. पु. ६. पृ. २१२ । जयध. पु. १२, पृ. २१९

२) संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे। अविरुद्धेगदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा दु। गो. क., गा. ५९९.

मनुष्यगतौ भङ्गा भवन्ति

५५	**५६**	**५७**
११०५९२	**२२११८४**	**११०५९२**

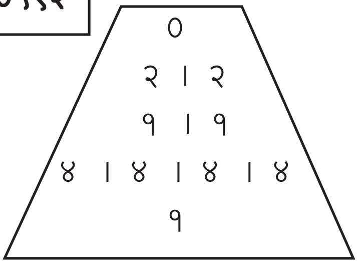

देवगतावपि[1] नरकगतिवत् । अयं तु विशेषः – तत्र नामकर्मप्रकृतयः प्रशस्ता एव, उच्चैर्गोत्रमेव, मोहप्रकृतिषु नपुंसकवेदमपनीय स्त्रीपुंवेदद्वयमेलनात् द्विगुणभङ्गाः। अतः कारणात् स्थलत्रयेऽपि भङ्गा एवम् –

५४	**५५**	**५६**
३२	**६४**	**३२**

पुनर्निद्रया प्रचलया वा युक्ताः पूर्वोक्ता एव गतिचतुष्टये प्रकृतय एकाधिका भवन्ति, भङ्गाश्च पूर्वोक्ता एव निद्राप्रचलाभङ्गद्वयेन गुणिता भवन्ति ।।२८।।

इसप्रकार प्रथम सम्यक्त्व के सम्मुख मिथ्यादृष्टि की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेशों के बन्ध–अबन्धरूप भेदों का कथन करके उसी की उदय प्रकृतियों के भेद कहते हैं–

अन्वयार्थः– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के **(उदये)** उदय में **(चोद्दस घादी)** तीन घातिया कर्मों की १४ प्रकृतियाँ **(णिद्दापयलाणमेक्कदरं तु)** निद्रा और प्रचला में से कोई एक **(मोहे दसतिय)** मोहनीय की दशत्रिक अर्थात् १०–९–८ प्रकृतियाँ **(णामे वचिठाणं)** नामकर्म की भाषा–पर्याप्तिकाल में उदय योग्य होने वाली उनतीस प्रकृतियाँ **(सेसगे सजोगेक्कं)** शेष कर्मों की (आयु, गोत्र व वेदनीय की) स्वयोग्य एक–एक प्रकृति है।

टीकार्थः– नरकगति में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि के ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की स्त्यानगृद्धि आदि ३ और निद्रा, प्रचला इन प्रकृतियों से रहित चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतियाँ, अन्तराय की पाँच, मोहनीय की दस, नौ अथवा आठ, एक नरकायु, भाषापर्याप्तिकाल में उदय होने योग्य नामकर्म की २९ प्रकृतियाँ, वेदनीय की दो में से कोई एक और नीचगोत्र ये प्रकृतियाँ उदयरूप होती हैं ।

किसी जीव को मोहनीय की आठ प्रकृतिस्थान से युक्त ५४ प्रकृतियों का उदय होता है। मोहनीय की आठ प्रकृतियाँ –

	० –	भय, जुगुप्सा रहित
२	२ । २ –	हास्य–रति अथवा शोक–अरति
१	१ –	नपुंसक वेद
४	४ । ४ । ४ । ४	अनन्तानुबन्ध्यादि ४ क्रोध, ४ मान, ४ माया अथवा ४ लोभ
१	१ –	मिथ्यात्व
८	कुल प्रकृतियाँ	

१) ध. पु. ६ , पृ. २१३ । जयध. पु. १२, पृ. २१९ ।

मोहनीय की चार कषाय और हास्य शोक युगल को बदलने से ८ भंग होते हैं । उसको वेदनीय के २ भंगों से गुणा करने पर १६ भंग होते हैं। नरकगति में स्थिर युगल और शुभ युगल को छोडकर शेष नामकर्म की अप्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय होने से नामकर्म के भंगों का अभाव हैं।

किसी जीव को वे ही चौवन प्रकृतियाँ भय अथवा जुगुप्सासहित ९ प्रकृति-स्थान से युक्त होकर ५५ प्रकृतियों का उदय होता है । उसके भंग पूर्व में कहे गए सोलह (१६) भंगों को भय-जुगुप्सा से गुणित करने पर ३२ होते हैं ।

१	१ १	–	भय अथवा जुगुप्सा सहित
२	२ २	–	हास्य, रति अथवा शोक, अरति
१	१ १ १	–	स्त्रीवेद, पुरुषवेद अथवा नपुंसकवेद
४	४ ४ ४ ४	–	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया अथवा ४ लोभ
१	१	–	मिथ्यात्व
९	कुल प्रकृतियाँ		

पुन: किसी जीव को वही प्रकृतियाँ भय, जुगुप्सा दोनों से सहित दस प्रकृति स्थान से युक्त होकर ५६ छप्पन प्रकृतियाँ उदयरूप होती हैं । उसके भंग पूर्व के समान सोलह (१६) जानना चाहिए क्योंकि भय और जुगुप्सा इन दोनों का उदय एक ही समय में होने से भय, जुगुप्सा के भंग नहीं होते हैं ।

२	२	–	भय जुगुप्सा सहित
२	२ २	–	हास्य, रति अथवा शोक, अरति
१	१ १ १	–	स्त्रीवेद, पुरुषवेद अथवा नपुंसक वेद
४	४ ४ ४ ४	–	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया अथवा ४ लोभ
१	१	–	मिथ्यात्व
१०	कुल प्रकृतियाँ		

तिर्यंचगति में पूर्वोक्त मोह की आठ प्रकृति-स्थान से युक्त ५४ प्रकृतियों में संहनन मिलाने पर (पचपन) ५५ प्रकृतियाँ उदयरूप होती हैं। मोहनीय के २४ भंग होते हैं।

०	०	–	भय जुगुप्सा रहित
२	२ २	–	हास्य, रति अथवा शोक, अरति
१	१ १ १	–	स्त्रीवेद, पुरुषवेद अथवा नपुंसक वेद
४	४ ४ ४ ४	–	४ क्रोध, ४ मान, ४ माया अथवा ४ लोभ
१	१	–	मिथ्यात्व
८	कुल प्रकृतियाँ		

हास्य और शोक के युगलों में से एक युगल का, तीन वेदों में से एक वेद का और ४ कषाय चौकड़ी में से १ कषाय चौकड़ी का उदय होने से २x३x४=२४ भंग होते हैं। वेदनीय की दो में से एक प्रकृति का उदय होने से २ भंग होते हैं।

१ । १	यश	अयश
१ । १	सुस्वर	दुस्वर
१ । १	आदेय	अनादेय
१ । १	सुभग	दुर्भग
१ । १	प्रशस्त	अप्रशस्त, विहायोगति
१ १ ११ १ १	छह	संहनन
१ १ ११ १ १	छह	संस्थान

नामकर्म के ६ संस्थानों में से एक संस्थान, ६ संहननों में से एक संहनन, २ विहायोगति में से एक विहायोगति और अंतिम चार युगलों में से किसी भी एक-एक प्रकृति का उदय होने से ६x६x२x२x२x२x२ =११५२ भंग होते हैं । ११५२ को २४ और २ भंगों से गुणा करने पर कुल ११५२x२४x२=५५२९६ भंग होते हैं ।

पूर्वोक्त ५५ प्रकृतियाँ भय अथवा जुगुप्सा से सहित मोहनीय के नौ प्रकृतिक स्थान से युक्त उदयरूप होने पर ५६ होती हैं। पूर्व में कहे गए ५५,२९६ भंग भय जुगुप्सा के दोनों भंगोंसे गुणा करने पर १,१०,५९२ होते हैं।

पुनः वें पूर्वोक्त ५५ प्रकृतियाँ युगपत् भयजुगुप्सारूप मोहनीय के दस स्थान से युक्त होकर ५७ होती हैं। भय-जुगुप्सा का एक काल में उदय होने से उसके २ भंग नहीं होते हैं। इसलिए पूर्वोक्त ५५,२९६ भंग होते हैं। पुनः ये ही पूर्वोक्त ५५,५६ और ५७ ये तीन स्थान उद्योत सहित होने पर ५६,५७, और ५८ प्रकृतिरूप होते हैं। उनके भंग पूर्व के समान जानना चाहिए।

मनुष्यगति में भी तिर्यंचगति के समान जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ उद्योत नामकर्म से युक्त तीन स्थान नहीं होते हैं क्योंकि उद्योत का उदय तिर्यंचगति में होता है, ऐसा नियम है। मनुष्यगति में उच्चगोत्र का भी उदय होने से यहाँ गोत्र के २ भंग होते हैं। तिर्यंचगति के भंगों को गोत्र के २ भंगों से गुणा करने पर मनुष्यगति में भंग होते हैं। वे इस प्रकार हैं –

स्थान	५५	५६	५७
भंग	५५२९६ x २ =११०५९२	११०५९२ x२ =२२११८४	५५२९६ x२ =११०५९२

देवगति में भी नरकगति के समान जानना चाहिए। मात्र यह विशेषता है कि यहाँ नामकर्म की प्रशस्त प्रकृतियों का एवं उच्चगोत्र का ही उदय होता हैं। मोहनीय की प्रकृतियों में से नपुंसक वेद को निकालकर स्त्रीवेद और पुरुषवेद मिलाने पर दुगुणे भंग होते हैं। इसलिए तीन स्थानों में भंग इसप्रकार होते हैं –

स्थान	५४	५५	५६
भंग	१६ x २ =३२	३२ x२ =६४	१६ x२ =३२

(इस प्रकार पूर्वोक्त भंग निद्रा और प्रचला के उदय से रहित जीव की अपेक्षा से कहे गए हैं।) चारों गति में उदयरूप कहे गए प्रकृतियों में निद्रा अथवा प्रचला मिलाने पर एक-एक प्रकृति अधिक होती है और निद्रा अथवा प्रचला में से एक का उदय होने से २ भंग होते हैं। उन २ भंगों को पूर्वोक्त भंगों से गुणा करने पर दुगुणे भंग होते हैं।

विशेषार्थ : स्थान - एक समय में एक जीव को संख्या भेदों की अपेक्षा से जो प्रकृतियों का समूह प्राप्त होता है उसे स्थान कहते हैं।

^J - समान संख्या वाले स्थानों में जो प्रकृतियों का परिवर्तन होता है, उसे भंग कहते हैं। जैसे - एक नारकी जीव को ५५ प्रकृतियों का उदय होने से ५५ प्रकृतियों का एक स्थान हुआ। वे ५५ प्रकृतियाँ कषाय, वेद और वेदनीय का बदल करके अलग-अलग १६ प्रकार से संभव होने से १६ भंग हुए। इस प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए। भंग, अंश, पर्याय, भाग, विधा, प्रकार, भेद, छेद ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं। टीका में कहे गए सभी स्थानों में निद्रा और प्रचला मिलाने पर एक-एक प्रकृति बढ़ती है और प्रत्येक स्थान के भंग दुगुणे होते हैं।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख मिथ्यादृष्टि की उदयप्रकृतियाँ और उनके भंग

गति	उदय प्रकृतियाँ	भंग	प्रकृतियाँ और भंगों का विवरण
नरक	५४	१६	५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अंतराय, ८ मोहनीय, (मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्ध्यादि ४ कषाय, नपुंसकवेद, हास्य रति अथवा शोक अरति) नामकर्म २९, (तैजसकार्मण शरीर,वर्ण चतुष्क, स्थिरद्विक, शुभद्विक, अगुरुलघु, निर्माण, नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति वैकियिक द्विक, हुंडकसंस्थान, त्रस चतुष्क, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, उपघात,परघात, अप्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, दुःस्वर) नरकायु, नीचगोत्र, वेदनीय की कोई एक भंग=१६=४ कषाय x २ हास्यशोक युगल x २ वेदनीय
	५५	३२	उपर्युक्त ५४ प्रकृतियाँ +१ भय अथवा जुगुप्सा भंग ३२=४ कषाय x २ हास्यशोक युगल x २ वेदनीय २भय जुगुप्सा
	५६	१६	उपर्युक्त ५४ +२ भय और जुगुप्सा भंग १६=४ कषाय x २ हास्यशोक युगल x २ वेदनीय

गति	उदय प्रकृतियाँ	भंग	प्रकृतियाँ और भंगों का विवरण
तिर्यंच उद्योत-रहित	५५	५५२९६	नरकगति की उपर्युक्त ५४ प्रकृतियाँ + १ संहनन । विशेषता यह है कि नरकगति और वैकियिकद्विक के स्थान पर तिर्यंचगति और औदारिकद्विक ग्रहण करें। इन ६ संहनन, ६ संस्थान, विहायोगति, सुभग, आदेय, स्वर और यश इन ५ युगलों में से एक-एक का उदय। भंग-मोहनीय के २४=४ कषाय X ३ वेद X २ हास्यशोकयुगल। नामकर्म के ११५२=६ संहनन X ६ संस्थान X २ यश X २ विहायगोति X २ सुभग X २आदेय X २ स्वर कुल भंग = ११५२ X २४ X २ वेदनीय = ५५२९६
	५६	११०५९२	तिर्यंचगति की पूर्वोक्त ५५ प्रकृतियाँ + १ भय अथवा जुगुप्सा। भंग ५५२९६ X २ भय जुगुप्सा = १,१०,५९२
	५७	५५२९६	तिर्यंचगति की पूर्वोक्त ५५ प्रकृतियाँ + २ भय और जुगुप्सा भंग ५५ प्रकृति के ही ग्रहण करें।
तिर्यंच उद्योत-सहित	५६	५५२९६	उपर्युक्त उद्योतरहित की ५५ प्रकृतियाँ + १ उद्योत। भंग पूर्वोक्त
	५७	११०५९२	उपर्युक्त उद्योतरहित की ५६ प्रकृतियाँ + १ उद्योत। भंग पूर्वोक्त
	५८	५५२९६	उपर्युक्त उद्योतरहित की ५७ प्रकृतियाँ + १ उद्योत। भंग पूर्वोक्त
मनुष्य	५५	११०५९२	५५ प्रकृतियाँ तिर्यंचगति के समान। तिर्यंचगति के स्थान पर मनुष्यगति जाननी चाहिए। भंग उपर्युक्त ५५२९६ X २ गोत्र= १,१०,५९२
	५६	२२११८४	उपर्युक्त ५५ प्रकृतियाँ + १ भय अथवा जुगुप्सा भंग-उपर्युक्त १,१०,५९२ X २ भय जुगुप्सा = २,२१,१८४
	५७	११०५९२	उपर्युक्त ५५ प्रकृतियाँ +२ भय और जुगुप्सा । भंग - ५५ प्रकृतियों के ही ग्रहण करना चाहिए ।
देव	५४	३२	५४ प्रकृतियाँ नरकगति के समान। नरकगति के स्थान पर देवगति और नामकर्म की अप्रशस्त प्रकृतियों के स्थान पर प्रशस्त प्रकृतियाँ तथा नीचगोत्र के स्थान पर उच्चगोत्र लेना चाहिए। नपुंसकवेद के स्थान पर स्त्री या पुरुषवेद लेना। भंग = कषाय ४ X २ वेद X २ हा.शो.यु. X २ वेदनीय = ३२
	५५	६४	उपर्युक्त ५४ प्रकृतियाँ + १ भय अथवा जुगुप्सा भंग - उपर्युक्त ३२ X २ भय, जुगुप्सा = ६४
	५६	३२	उपर्युक्त ५४ प्रकृतियाँ +२ भय, जुगुप्सा भंग ५४ प्रकृतियों के ही ग्रहण करें ।

पूर्वोक्त सर्व स्थानों में निद्रा अथवा प्रचला प्रकृति मिलाने पर एक-एक प्रकृति बढ़ती है और पूर्वोक्त भंग में निद्रा प्रचला से गुना करने पर भंग दुगुणे होते हैं।

निद्रा अथवा प्रचलासहित प्रकृति और भंग

नरकगति			तिर्यंचगति					
			उद्योतरहित			उद्योतसहित		
प्रकृति-५५	५६	५७	५६	५७	५८	५७	५८	५९
भंग- ३२	६४	३२	१,१०,५९२	२,२१,१८४	१,१०,५९२	१,१०,५९२	२,२१,१८४	१,१०,५९२

मनुष्यगति			देवगति		
प्रकृति- ५६	५७	५८	५५	५६	५७
भंग- २,२१,१८४	४,४२,३६८	२,२१,१८४	६४	१२८	६४

अथ प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य विशुद्धमिथ्यादृष्टेरुदययोग्यप्रकृतीनां स्थित्यनुभागौ व्याचष्टे-

उदयिल्लाणं उदये[१] पत्तेक्कठिदिस्स वेदगो होदि।
विचउट्ठाणमसत्थे सत्थे उदयिल्लरसभुत्ती[१] ।।२९।।

उदयवतामुदये प्राप्ते एकस्थितिकस्य वेदको भवति।
द्विचतु:स्थानमशस्ते शस्ते उदीयमानरसभुक्ति: ।।२९।।

उदयवतां कर्मणामुदयं प्रति उदयमुद्दिश्य एकस्थितेरुदयागतस्यैकनिषेकस्य वेदकोऽनुभविता भवति स जीव:। उदयवत्प्रकृतीनामप्रशस्तानां द्विस्थानगतस्य रसस्य प्रशस्तानां चतु:स्थानगतस्य रसस्य भुक्तिरनुभवस्तेन जीवेन क्रियते ।।२९।।

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के उदययोग्य प्रकृतियों की स्थिति और अनुभाग को कहते हैं-

अन्वयार्थ :- (उदइल्लाणं) उदयवाली प्रकृतियों का **(उदये पत्ते)** उदय प्राप्त होने पर **(एक्कठिदिस्स)** एक स्थिति का **(वेदगो)** भोक्ता **(होदि)** होता है । **(असत्थे सत्थे विचउट्ठाणं)** अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थान रूप और प्रशस्त प्रकृतियों का चतु:स्थान रूप **(उदयिल्लरसभुत्ती)** उदयवाले अनुभाग को भोगता है ।

टीकार्थ:- वह जीव (प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव)

पाठभेद १ उदयिल्लाणं उदयं पत्तेक्कठिदिस्स। का. ह. प्र.

उदययुक्त कर्मों के उदय को प्राप्त होनेवाली एक निषेकरूप एक स्थिति का भोक्ता होता है। वह जीव उदयवाली अप्रशस्त प्रकृतियों के द्विस्थानगत अनुभाग का और प्रशस्त प्रकृतियों के चतु:स्थानगत अनुभाग को भोगता है ।।२९।।

विशेषार्थ :– विशुद्धि होने से प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का घात नहीं होता है, ऐसी विशेषता है। अपना कार्य करने की कर्मों की शक्ति को अनुभाग कहते हैं अर्थात् कर्म में अपना फल देने की जो शक्ति है, उसे अनुभाग कहते हैं।

अथ तस्य प्रदेशोदयमुदीरणां च ब्रवीति–

अजहण्णमणुक्कस्सं पदेसमणुभवदि सोदयाणं तु।
उदयिल्लाणं पयडिचउक्काणमुदीरगो होदि[1] ।।३०।।

अजघन्यमनुत्कृष्टं प्रदेशमनुभवति सोदयानां तु ।
उदयवतां प्रकृतिचतुष्काणामुदीरको भवति।।३०।।

सोदयानां प्रकृतीनामजघन्यमनुत्कृष्टं च प्रदेशमनुभवति स जीव:। पुनरुदयवतां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां चतुर्णामुदीरको भवति स जीव:, उदयोदीरणयो: स्वामिभेदाभावात्[2] ।।३०।।

अब उस विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के प्रदेश, उदय और उदीरणा को कहते हैं –

अन्वयार्थ:– वह विशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीव **(सोदयाणं तु)** उदयसहित प्रकृतियों के **(अजहण्णमणुक्कस्सं पदेसं)** अजघन्य–अनुत्कृष्ट प्रदेश का **(अणुभवदि)** अनुभव करता है। **(उदयिल्लाणं)** उदयस्वरूप प्रकृतियों का **(पयडिचउक्काणं)** प्रकृति चतुष्क अर्थात् प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग का **(उदीरगो)** उदीरक (उदीरणा करने वाला) **(होदि)** होता है।

टीकार्थ :– वह जीव उदयसहित प्रकृतियों का अजघन्य और अनुत्कृष्ट प्रदेश का अनुभव करता है । पुन: वह जीव उदयवाली प्रकृतियों के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चारों का उदीरक होता है क्योंकि उदय और उदीरणा के स्वामी–भेद का अभाव है अर्थात् जिनको जिन प्रकृतियों का उदय होता है उनको उन्हीं प्रकृतियों की उदीरणा होती है ।

---

१) ध. पु. ६, पृ. २०९, जयध. पु. १२, पृ. २०७

२) उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।
मोत्तूण तिण्णि ट्ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य । गो. क. गा. २७८।

अर्थ– उदय और उदीरणा में स्वामिपने की अपेक्षा से कोई भेद नहीं है; किंतु प्रमत्तविरत, सयोगी और अयोगी इन तीन गुणस्थानों को छोड़कर अन्य गुणस्थानों में उदय के समान ही उदीरणा जाननी चाहिए।

विशेषार्थः- जो कर्मस्कन्ध अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमणादि के बिना स्थितिक्षय को प्राप्त होकर अपना-अपना फल देता है उसे उदय कहते हैं। जो अधिक स्थिति और अनुभाग में अवस्थित कर्मस्कंध हैं उन्हें अपकर्षित करके फल देने के योग्य किया जाता है उसकी उदीरणा संज्ञा है क्योंकि अपक्व कर्मस्कंधों को पक्व करने को उदीरणा कहते हैं।

अथ तस्य सत्त्वप्रकृतीरुद्दिशति-

दुति आउ तित्थहारचउक्कूणा सम्मगेण हीणा वा ।
मिस्सेणूणा वा वि य सव्वे पयडी हवे सत्तं[1] ।।३१।।

द्वित्र्यायुःतीर्थाहारचतुष्कोनाः सम्यक्त्वेन हीना वा ।
मिश्रेणोना वापि च सर्वेषां प्रकृतीनां भवेत् सत्त्वम् ।।३१।।

अनादिमिथ्यादृष्टिः सादिमिथ्यादृष्टिर्वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वयोग्यो भवति। तत्रानादि-मिथ्यादृष्टेर्जीवस्याबद्धायुष इतरायुस्त्रयेण तीर्थकरत्वेनाहारकचतुष्केण सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाभ्यां च दशभिः प्रकृतिभिरूनाः सर्वाः प्रकृतयः १३८ सत्त्वेन विद्यन्ते, तस्यैव बद्धायुषः नवभिरूनाः १३९। सादिमिथ्यादृष्टेरबद्धायुषः इतरायुस्त्रयं तीर्थकरत्वमाहारकचतुष्कमित्यष्टभिरूनाः१४०, तस्यैवोद्वेल्लित-सम्यक्त्वस्य नवभिरूनाः १३९ तस्यैवोद्वेल्लितसम्यग्मिथ्यात्वस्य दशभिरूनाः १३८, तस्यैव बद्धायुषः इतरायुर्द्वयेन तीर्थकरत्वेनाहारकचतुष्केण च सप्तभिरूनाः १४१, तस्यैवोद्वेल्लितसम्यक्त्वस्याष्टभिरूनाः १४०, तस्यैवोद्वेल्लितसम्यग्मिथ्यात्वस्य नवभिरूनाः १३९ समस्ताः प्रकृतयः सत्त्वेन विद्यन्ते। अनुद्वेल्लिताहारकचतुष्कस्य तीर्थकरसत्कर्मणश्च सादिमिथ्यादृष्टेः प्रथमोपशमसम्यक्त्वा-भिमुखस्यासम्भवात् ।।३१।।

अब उस (विशुद्ध मिथ्यादृष्टि) जीव की सत्त्व प्रकृतियाँ कहते हैं-

अन्वयार्थः- **(दुति आउ)** दो अथवा तीन आयु **(तित्थहारचउक्कूणा)** तीर्थंकर और आहारकचतुष्क इन प्रकृतियों से रहित **(सम्मगेण हीणा)** सम्यक्त्वप्रकृति से रहित **(वा)** अथवा **(मिस्सेणूणा वि य)** मिश्रप्रकृति से भी रहित **(सव्वे पयडी)** सर्व प्रकृतियों का **(सत्तं)** सत्त्व **(हवे)** होता है।

टीकार्थः- अनादि मिथ्यादृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य होता है। उसमें से अबद्धायुष्क अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को भुज्यमान आयु को छोड़कर शेष तीन आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दस प्रकृतियों

१) ध. पु. ६, पृ २०९ । जयध. पु. १२ पृ. २०७ ।

के बिना शेष सभी १३८ प्रकृतियाँ सत्त्वरूप से होती हैं। उस अनादि मिथ्यादृष्टि बद्धायुष्क जीव को ९ प्रकृतियों से रहित सभी १३९ प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं। अबद्धायुष्क सादि मिथ्यादृष्टि जीव को शेष तीन आयु, तीर्थंकर, आहारकचतुष्क इन आठ प्रकृतियों से कम शेष १४० प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं। जिसने सम्यक्त्वप्रकृति की उद्वेलना की है, ऐसे अबद्धायुष्क सादि मिथ्यादृष्टि को ९ प्रकृतियों से रहित १३९ प्रकृतियों की सत्ता होती है। जिसने सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की भी उद्वेलना की, इसप्रकार सादि मिथ्यादृष्टि को दस प्रकृतियों से रहित १३८ प्रकृतियों का सत्त्व होता है। उस बद्धायुष्क सादि मिथ्यादृष्टि को शेष दो आयु, तीर्थंकर, आहारक-चतुष्क इन सात प्रकृतियों से रहित १४१ प्रकृतियों का सत्त्व होता है। सम्यक्त्वप्रकृति की उद्वेलना करनेवाले उस बद्धायुष्क सादि मिथ्यादृष्टि को आठ प्रकृतियों से रहित १४० प्रकृतियों का सत्त्व होता है। सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना करने वाले बद्धायुष्क सादि मिथ्यादृष्टि को ९ प्रकृतियों के बिना शेष १३९ प्रकृतियों का सत्त्व होता है, क्योंकि जिसने आहारक चतुष्क की उद्वेलना नहीं की है और जिसे तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता है, ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख नहीं होता है।

विशेषार्थ:- सत्त्व अर्थात् अस्तित्व। अबद्धायुष्क जीव को उसकी भुज्यमान आयु के बिना शेष तीन आयु का सत्त्व नहीं होता है। बद्धायुष्क जीव को उसकी भुज्यमान और बध्यमान आयु के विना शेष दो आयु का सत्त्व नहीं होता है। जिसने दूसरे अथवा तीसरे नरक की आयु का बंध करने के बाद तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है वह जीव मरण के पूर्व एक अंतर्मुहूर्त के लिए मिथ्यात्व में आता है। उस समय उस जीव को मिथ्यात्व अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व होता है परन्तु वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त न होकर पुन:वेदक-सम्यक्त्व को प्राप्त होता है, क्योंकि वह वेदक-सम्यक्त्व की उत्पत्ति का काल है इसलिए प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख जीव को तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व संभव नहीं है। आहारकचतुष्क के उद्वेलना-काल से वेदक-सम्यक्त्व का उत्पत्ति-काल बड़ा है इसलिए आहारकचतुष्क की उद्वेलना किए बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं कर सकता है। आहारकचतुष्क की सत्तावाला जीव मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त कर सर्वप्रथम पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल में आहारकचतुष्क की उद्वेलना पूर्ण करता हैं। उसके बाद उतने ही काल के द्वारा क्रम से सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति की उद्वेलना पूर्ण करता है। सभी की उद्वेलना का प्रारम्भ मिथ्यात्व के प्रथम समय से होता है। आहारकचतुष्क की उद्वेलना होने तक और उसके बाद में भी वेदक-सम्यक्त्व का योग्य काल है । वहाँ तक प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं हो सकता है। बाद में कभी भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है, इसलिए प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख किसी जीव को सम्यक्त्वप्रकृति का सत्त्व नहीं होता। किसी को सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति इन दोनों का सत्त्व नहीं होता।

शंका :- उद्वेलन संक्रमण का अर्थ क्या होता है?

समाधान :– अध:प्रवृत्तादि तीन करण के बिना ही उद्वेलन–प्रकृतियों के परमाणुओं में उद्वेलन भागहार का भाग देने पर एक भागमात्र परमाणु जहाँ अन्य प्रकृतिरूप से परिणमन करते हैं उसे उद्वेलन–संक्रमण कहते हैं।

आहारकचतुष्क अर्थात् आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक बंधन और आहारक संघात। इस गाथा का सार नीचे चार्टरूप से दिखाया गया है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टियों के सत्त्वऔर असत्त्व प्रकृतियों का कोष्ठक

जीव		सत्त्व	असत्त्वरूप प्रकृतियों के नाम
१	अनादि मिथ्यादृष्टि		
१	अबद्धायुष्क	१३८	३ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क, १ सम्यक्त्व प्र, १ सम्यग्मिथ्यात्व
२	बद्धायुष्क	१३९	२ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क, १ सम्यक्त्व प्र, १ सम्यग्मिथ्यात्व
२	सादि मिथ्यादृष्टि		
१	उद्वेलनारहित अबद्धायुष्क	१४०	३ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क
२	सम्यक्त्व–उद्वेलितअबद्धायुष्क	१३९	३ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क, १ सम्यक्त्व प्र.
३	सम्यग्मिथ्यात्व–उद्वेलित अबद्धायुष्क	१३८	३ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क, १ सम्यक्त्व प्र. १ सम्यग्मिथ्यात्व
४	उद्वेलनारहित बद्धायुष्क	१४१	२ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क
५	सम्यक्त्व–उद्वेलित बद्धायुष्क	१४०	२ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क, १ सम्यक्त्व प्र.
६	सम्यग्मिथ्यात्व–उद्वेलित बद्धायुष्क	१३९	२ आयु, १ तीर्थंकर, ४ आहारकचतुष्क, १ सम्यक्त्व प्र. १ सम्यग्मिथ्यात्व

अथ सत्कर्मप्रकृतीनां स्थित्यादिसत्त्वपूर्वकं प्रायोग्यतालब्धिमुपसंहरति–

अजहण्णमणुक्कस्सं ठिदित्तियं होदि सत्तपयडीणं ।
एवं पयडिचउक्कं बंधादिसु होदि पत्तेयं ।।३२।।

अजघन्यमनुत्कृष्टं स्थितित्रिकं भवति सत्त्वप्रकृतीनाम् ।
एवं प्रकृतिचतुष्कं बन्धादिषु भवति प्रत्येकम्।।३२।।

तस्य सत्कर्मप्रकृतीनामुक्तानां स्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वमजघन्यानुत्कृष्टं भवति,

जघन्योत्कृष्टाभावस्य पूर्वमभिहितत्वात् । एवं बन्धादिषु बन्धोदयोदीरणासत्त्वेषु प्रकृतिचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशाः प्रत्येकमुक्तप्रकारेण प्रतिनियमिताः । ईदृशः प्रकृतिबन्धः, इदृशः स्थितिबन्धः, ईदृशोऽनुभागबन्धः, ईदृशः प्रदेशबन्धः इत्यादि विभज्य प्ररूपिताः प्रायोग्यतालब्धि-कालचरमसमयपर्यन्तं प्रत्येतव्याः ।।३२।।

अब सत्त्वरूप कर्मप्रकृतियों की स्थिति आदि का सत्त्व कहकर प्रायोग्यता-लब्धि का उपसंहार करते हैं-

अन्वयार्थः- **(सत्तपयडीणं)** सत्त्व प्रकृतियों का **(ठिदित्तियं)** स्थितित्रिक अर्थात् स्थिति, अनुभाग व प्रदेश **(अजहण्णमणुक्कस्सं)** अजघन्य-अनुत्कृष्ट होता है। **(एवं)** इसप्रकार **(बंधादिसु)** बन्धादि में (बंध, उदय, उदीरणा और सत्त्व में) **(पत्तेयं)** प्रत्येक का **(पयडिचउक्कं)** प्रकृति चतुष्क (प्रकृति, स्थिति,अनुभाग, प्रदेश) **(होदि)** होता है ।

टीकार्थः- प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि को ऊपर कहे गए सत्कर्म प्रकृतियों का स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-सत्त्व अजघन्य-अनुत्कृष्ट होता है । जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति आदि का अभाव है, यह पूर्व में कह आए हैं । इसप्रकार बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्त्व में प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश पूर्वोक्त प्रकार से निश्चित हैं । ऐसा प्रकृतिबंध होता है, ऐसा स्थितिबंध होता है, ऐसा अनुभागबन्ध होता है, ऐसा प्रदेशबन्ध होता है, इत्यादि जो विभाग करके कहा गया, वह प्रायोग्यतालब्धि के अंतिम समय पर्यन्त जानना चाहिए।

अथ क्रमप्राप्तां करणलब्धिमाचष्टे-

तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं बोलिऊण भव्वो हु ।
करणं[1] करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं[2] ।।३३।।

ततः अभव्ययोग्यं परिणामं मुक्त्वा भव्यो हि ।
करणं करोति क्रमशोऽधःप्रवृत्तमपूर्वमनिवृत्तिम् ।।३३।।

ततः पश्चादभव्ययोग्यं लब्धिचतुष्टयसम्भविनं विशुद्धपरिणामं नीत्वा भव्यः खलु

---

१) कधं परिणामाणं करणसण्णा? ण एस दोसो, असिवासीणं व सहायतमभावविवक्खाए करणाणं करणत्तुवलंभादो । ध. पु. ६. पृ. २१७ । येन परिणामविशेषेण दर्शनमोहोपशमादिर्विवक्षितो भावः क्रियते निष्पाद्यते स परिणामविशेषः करणमित्युच्यते। जयध. पु.१२, पृ. २३३,

अर्थ - परिणामों की 'करण' यह संज्ञा कैसी हुई? यह कुछ दोष नहीं है क्योंकि तलवार और वासी के समान साधकतम भाव की विवक्षा में परिणामों का करणपना दिखाई देता है। जिस परिणामविशेष के द्वारा दर्शनमोह का उपशमादिरूप विवक्षित भाव उत्पन्न किया जाता है उस परिणाम-विशेष को करण कहते हैं।

२) ध. पु. ६, पृ. २१४; क. पा. पृ. ६२१.

क्रमेणाध:प्रवृत्तकरणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च विशिष्टनिर्जरासाधनं विशुद्धपरिणामं करोति ।।३३।।

अब क्रमप्राप्त करणलब्धिको कहते हैं–

अन्वयार्थ:– **(तत्तो)** उसके बाद अर्थात् प्रायोग्य–लब्धि के बाद **(अभव्वजोग्गं परिणामं)** अभव्य के योग्य परिणामों को **(बोलिऊण)** लांघकर **(भव्वो हु)** भव्य जीव **(कमसो)** क्रमश: **(अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिकरणं)** अध:प्रवृत्त, अपूर्व और अनिवृत्तिकरण **(करेदि)** करता है।।३३।।

टीकार्थ:– उसके अनन्तर अभव्य के योग्य चार लब्धियों में होनेवाले विशुद्ध परिणामों को समाप्त कर भव्यजीव निश्चय से क्रम से विशिष्ट निर्जरा के साधनभूत अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणाम करता है।

विशेषार्थ:– करण किसे कहते है? जिन परिणाम विशेषों के द्वारा दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के उपशमादिरूप विवक्षित भाव उत्पन्न किए जाते हैं उन परिणामों को करण कहते हैं। तीन करणों का वर्णन गोम्मटसार जीवकाण्ड के गुणस्थान अधिकार में और कर्मकाण्ड के त्रिकरण चूलिका अधिकार में विशेषरूप से किया गया है वहाँ से जानना चाहिए।

अथ त्रिकरणपरिणामकालमल्पबहुत्वसहितं कथयति–

अंतोमुहुत्तकाला तिण्णि वि करणा हवंति पत्तेयं।
उवरीदो गुणियकमा कमेण संखेज्जरूवेण।।३४।।

अन्तर्मुहूर्तकालानि त्रीण्यपि करणानि भवन्ति प्रत्येकम्।
उपरितो गुणितक्रमाणि क्रमेण संख्यातरूपेण।।३४।।

एते त्रयोऽपि करणपरिणामा: प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तकाला भवन्ति। तथापि उपरित: अनिवृत्तिकरणकालात्क्रमेणापूर्वकरणाध:प्रवृत्तकरणकालौ संख्येयरूपेण गुणितक्रमौ भवत:। तत्र सर्वत: स्तोकान्तर्मुहूर्त: अनिवृत्तिकरणकाल: २ ९,तत: संख्येयगुण: अपूर्वकरणकाल: २ ९९ ,तत: संख्येयगुण: अध:प्रवृत्तकरणकाल: २९९९ ।।३४।।

अब तीन करण परिणामों का काल अल्पबहुत्व सहित कहते हैं –

अन्वयार्थ:– **(तिण्णि वि करणा)** तीनों ही करण **(पत्तेयं)** प्रत्येक **(अंतोमुहुत्तकाला)** अंतर्मुहूर्तकाल प्रमाण **(हवंति)**होते हैं **(उवरिदो)** ऊपर से **(कमेण)** क्रम से **(संखेज्जरूवेण)** संख्यातरूप से **(गुणियकमा)** गुणित क्रम है।

टीकार्थ:– इन तीन करण परिणामों में से प्रत्येक का काल अंतर्मुहूर्तप्रमाण है। तथापि ऊपर के अनिवृत्तिकरण काल की अपेक्षा अपूर्वकरण और अध:प्रवृत्तकरण का काल क्रम से संख्यातगुणा है। उनमें से अनिवृत्तिकरण का काल सबसे छोटा अंतर्मुहूर्तप्रमाण है । उसकी संदृष्टि २९(२ आवली;९=संख्यात/संख्यात आवली का अंतर्मुहूर्त होता है) उससे अपूर्वकरण का काल संख्यात गुणा है । उसकी संदृष्टि २९x९=२९९ । उससे अध:प्रवृत्त करण का

काल संख्यातगुणा है। उसकी संदृष्टि २११ x१ =२१११ (संख्यात गुणा करने के लिए एक संख्यात से गुणा करें)

विशेषार्थः– कषायप्राभृत चूर्णिसूत्र में तीन करण के साथ उपशमनकाल पृथक् रूप से कहा है। उसके द्वारा उपशम सम्यग्दर्शन का काल लिया है। जिस कालविशेष में दर्शनमोहनीय उपशांत होकर अवस्थित होता है उसे उपशमनाद्धा अर्थात् उपशमनकाल कहते हैं।

अर्थसंदृष्टि	अनिवृत्तिकरणकाल २१	अपूर्वकरणकाल २११	अधःप्रवृत्तकरणकाल २ १११
अंकसंदृष्टि	अनिवृत्तिकरणकाल ४	अपूर्वकरणकाल ८	अधःप्रवृत्तकरणकाल १६

अथाधःप्रवृत्तकरणस्वरूपं निरुक्तिपूर्वकं व्याचष्टे–

जम्हा हेट्ठिमभावा उवरिमभावेहिं सरिसगा होंति[१]।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तो त्ति णिद्दिट्ठं[२] ।।३५।।

यस्मादधस्तनभावा उपरितनभावैः सदृशा भवन्ति ।
तस्मात् प्रथमं करणमधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टम् ।।३५।।

यस्मात्कारणादधस्तनसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामाः उपरितनसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामैः संख्यया विशुद्ध्या च सदृशा भवन्ति तस्मात्कारणात्प्रथमः करणपरिणामः अधःप्रवृत्त इत्यन्वर्थतो निर्दिष्टः। तथाहि– तत्काले प्रथमसमयद्वितीयपुञ्जस्य परिणामसंख्याविशुद्धी द्वितीयसमयप्रथमपुञ्जस्य परिणामसंख्याविशुद्धिभ्यां सदृशे। तथा प्रथमद्वितीयतृतीयसमयेषु तृतीयद्वितीयप्रथमपुञ्जानां परिणामसंख्याविशुद्धी अन्योन्यं सदृशे । एवमधस्तनोपरितनसमयपरिणामपुञ्जानां संख्याविशुद्धिसादृश्यं नेतव्यं यावच्चरमसमयचरमपुञ्जे परिणामा अप्राप्ताः, प्रथमसमयप्रथमपुञ्जस्य चरमसमयचरमपुञ्जस्य च संख्याविशुद्धिसादृश्याभावात् ।।३५।।

अब अधःप्रवृत्तकरण का स्वरूप कहते हैं –

अन्वयार्थः– **(जम्हा)** जिस कारण से **(हेट्ठिमभावा)** नीचले समयवर्ती जीवों के परिणाम **(उवरिमभावेहिं)** उपरिम समयवर्ती जीवों के परिणामों के **(सरिसगा)** सदृश **(होंति)** होते हैं। **(तम्हा)** उस कारण से **(पढमं करणं)** प्रथम करण को **(अधापवत्तो त्ति)** अधःप्रवृत्त इसप्रकार **(णिद्दिट्ठं)** कहते हैं।

---

१)उवरिमपरिणामा अध हेट्ठा हेट्ठिमपरिणामेसु पवत्तंति त्ति अधापवत्तसण्णा। ध. पु. ६ पृ. २१७; जयध.पु. २३३.
उपरितन समय में होने वाले परिणाम अधस्तन समयवर्ती परिणामों की समानता को प्राप्त होते हैं इसलिए अधःप्रवृत्तकरण यह संज्ञा सार्थक है।

२) गोम्मटसार जीवकाण्ड गा. ४८ और कर्मकाण्ड गा. ८९८ में **'जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति'** ऐसा पाठ है वही उचित लगता है।

टीकार्थ:– जिस कारण से निचले समयवर्ती जीवों के विशुद्ध परिणाम ऊपर के समयवर्ती जीवों के विशुद्ध परिणामों के साथ संख्या और विशुद्धि की अपेक्षा समान होते हैं उस कारण से प्रथम करण परिणाम को अध:प्रवृत्त इसप्रकार अन्वर्थरूप से कहा गया है इसका स्पष्टीकरण – उस अध:प्रवृत्तकरण काल में प्रथम समय के द्वितीय पुंज के परिणामों की संख्या व विशुद्धि द्वितीय समय के प्रथम पुंज के परिणामों की संख्या व विशुद्धि की अपेक्षा समान है। उसीप्रकार प्रथम समय के तृतीय पुंज, द्वितीय समय के द्वितीय पुंज और तृतीय समय के प्रथम पुंजों के परिणामों की संख्या और विशुद्धि परस्पर समान है। इसप्रकार नीचे और ऊपर समयवर्ती परिणामपुंजों की संख्या और विशुद्धि की समानता तब तक ले जानी चाहिए जब–तक चरम समय के चरमपुंज के परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि प्रथम समय के प्रथमपुंज व चरमसमय के चरमपुंज की संख्या व विशुद्धि की समानता का अभाव है।

विशेषार्थ:– प्रथम समय के प्रथमपुंज के परिणाम और अंतिम समय के अंतिमपुंज के परिणाम अन्य किसी भी परिणामों के सदृश अर्थात् समान नहीं हैं । अन्य जितने परिणाम हैं, वे यथायोग्य समान अथवा असमान भी हैं ।

अथापूर्वानिवृत्तिकरणयो: स्वरूपं निरूपयति–

समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु[1]।
अणियट्टी वि तहं चि य पडिसमयं एक्कपरिणामो[2] ।।३६ ।।

समये समये भिन्ना भावास्तस्मादपूर्वकरणो हि ।
अनिवृत्तिरपि तथैव च प्रतिसमयमेकपरिणाम: ।।३६ ।।

अध:प्रवृत्तकरणकालस्योपरि अन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं यस्मात्कारणात् समये समये भिन्ना एव अपूर्वा एव विशुद्धिपरिणामा: खलु भवन्ति, तस्मात्कारणात्सोऽपूर्वकरण इत्युच्यते । अधस्तनोपरितनसमयेषु विशुद्धिपरिणामानां संख्याविशुद्धिसादृश्यं नास्तीत्यर्थ: ।

अनिवृत्तिकरणोऽपि तथैव पूर्वोत्तरसमयेषु संख्याविशुद्धिसादृश्याभावात् भिन्नपरिणाम एव। अयं तु विशेष:– प्रतिसमयमेकपरिणाम:, जघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामभेदाभावात्। यथाध:प्रवृत्तापूर्वकरणपरिणामा: प्रतिसमयं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादसंख्यातलोकमात्रविकल्पा: षट्स्थानवृद्ध्या वर्धमाना: सन्ति न तथाऽनिवृत्तिकरणपरिणामा: तेषामेकस्मिन् समये कालत्रयेऽपि विशुद्धिसादृश्यादैक्यमुपचर्यते ।।३६ ।।

अब अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण का स्वरूप कहते हैं–

१) जयध. पु. १२, पृ. २५४ । ध. पु. ६, पृ.२२० । गो. जी. गा. ५१
२) ध. पु. ६, पृ. २२१ । गो. जी. गा. ५६–५७ ।

अन्वयार्थ:- जिस कारण **(समए समए)** प्रत्येक समय में **(भिण्णा भावा)** भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं। **(तम्हा)** उस कारण **(अपुव्वकरणो हु)** वह अपूर्वकरण है। **(तहं चिय)** उसी प्रकार **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(एक्क परिणामे)** एक परिणाम होता है इसलिए **(अणियट्टि)** वह अनिवृत्तिकरण है।।३६।।

टीकार्थ:- अध:प्रवृत्त काल के अनन्तर अंतर्मुहूर्त काल पर्यन्त जिस कारण से प्रत्येक समय में भिन्न ही अर्थात् अपूर्व ही विशुद्ध परिणाम होते हैं, उस कारण से वह अपूर्वकरण कहलाता हैं। अधस्तन और उपरितन समय के विशुद्ध परिणामों की संख्या और विशुद्धि की समानता नहीं है यह इसका अर्थ है।

उसी प्रकार अनिवृत्तिकरण में भी पूर्वोत्तर समयों में संख्या और विशुद्धि की समानता का अभाव है। इसलिए भिन्न परिणाम ही होते हैं। परन्तु इतना विशेष है कि जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट परिणाम के भेदों का अभाव होने से प्रत्येक समय में एक परिणाम होता है। जैसे अध:प्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण परिणाम प्रतिसमय में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट के भेद से असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान वृद्धि से बढ़ते हैं वैसे अनिवृत्तिकरण परिणाम नहीं हैं। उसके एक समय में तीन काल में भी विशुद्धि समान होने से उनमें एकता का उपचार करते हैं।

विशेषार्थ : जिस करण में प्रत्येक समय में अपूर्व अर्थात् असमान और नियम से अनन्तगुणित रूप से वृद्धिंगत परिणाम होते हैं वह अपूर्वकरण है। इसमें प्रत्येक समय में नाना जीवों की अपेक्षा से असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होने पर भी अन्य समय के परिणामों से समान नहीं होते हैं। अनिवृत्तिकरण में एक-एक समय में नाना जीवों की अपेक्षा भी एक-एक ही परिणाम होता है। एक समय में वर्तमान जीवों के परिणामों की अपेक्षा निवृत्ति अर्थात् भिन्नता नहीं है इसलिए इसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। जिन जीवों का अनिवृत्तिकरण का प्रारम्भ करके समान काल हुआ है उनके परिणाम समान ही होते हैं और निचले समयवर्ती जीवों की विशुद्धि से उपरिम समयवर्ती जीवों की विशुद्धि अधिक ही होती है ऐसा जानना चाहिए।

अथाध:प्रवृत्तकरणस्य विशेषलक्षणं कथयति-

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंडं च णत्थि पढमम्हि ।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु[१] ।।३७।।

गुणश्रेणिर्गुणसंक्रमं स्थितिरसखण्डं च नास्ति प्रथमे ।
प्रतिसमयमनन्तगुणं विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धते हि ।।३७।।

प्रथमे अध:प्रवृत्तकरणे गुणश्रेणिविधानं गुणसंक्रमणविधानं स्थितिकाण्डकघातोऽ-

---

१) ध. पु. ६, पृ. २२२।

नुभागकाण्डकघातश्च न सन्ति तु पुनः प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्धिर्वर्धते ।।३७।।

अब अध:प्रवृत्तकरण का विशेष लक्षण कहते हैं–

अन्वयार्थ:– **(पढमम्हि)** प्रथम अध:प्रवृत्त करण में **(गुणसेढी)** गुणश्रेणी **(गुणसंकम)** गुणसंक्रमण **(च)** और **(ठिदिरसखंडं च)** स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात **(णत्थि)** नहीं होते है। पुन: **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(अणंतगुणं)** अनन्तगुणी **(विसोहिवड्ढीहि)** विशुद्धि की वृद्धि से **(वड्ढदि हु)** बढ़ते हैं।

टीकार्थ:– प्रथम अध:प्रवृत्तकरण में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडक घात नहीं होते है। पुन: प्रत्येक समय में अनन्तगुणी वृद्धि से विशुद्धि बढ़ती है।

विशेषार्थ:– अध:प्रवृत्तकरण में विशेष कार्य – (१) प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ती है। (२) स्थितिबंधापसरण अर्थात् पूर्व में जिसप्रमाण में स्थितिबंध होता था उससे कम–कम स्थितिबंध होता है। (३) सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय में अनन्तगुणित–अनन्तगुणित बढ़ता हुआ गुड़, खांड, शर्करा और अमृत के समान चतु:स्थानसहित अनुभागबंध होता है। (४) असातावेदनीय आदि अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय में अनन्तगुणित–अनन्तगुणित घटता हुआ निम्ब, कांजीर रूप द्विस्थानीय अनुभागबंध होता है, विष और हलाहलरूप नहीं होता है।

शंका :– अध:प्रवृत्तकरण में स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात क्यों नहीं होते हैं?

समाधान :– अध:प्रवृत्तकरण में प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि से अत्यन्त विशुद्ध होने पर भी स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात के योग्य विशुद्धि को प्राप्त नहीं होता है। इसलिए अध:प्रवृत्तकरण में स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होते हैं।

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु ।
पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे[१] ।।३८।।

शस्तानामशस्तानां चतुर्द्विस्थानं रसं च बध्नाति हि ।
प्रतिसमयमनन्तेन च गुणभजितक्रमं तु रसबन्धे ।।३८।।

अध:प्रवृत्तकरणपरिणामे वर्तमानो जीव: सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां चतु:स्थानानुभागं प्रतिसमयमनन्तगुणं बध्नाति, असाताद्यप्रशस्तप्रकृतीनां द्विस्थानानुभागं प्रतिसमयमनन्तकैभागमात्रं बध्नाति ।।३८।।

अन्वयार्थ:– **(सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु)** प्रशस्त प्रकृतियों का चतु:स्थानीय और अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानीय अनुभाग बांधता है **(च)** और **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(अणंतेण गुणभजियकमं तु)** प्रशस्त प्रकृतियों का अनन्तगुणित क्रम से और अप्रशस्त प्रकृतियों का अनन्तवाँ भाग क्रम से **(रसबंधे)** अनुभाग–बंध होता है ।।३८।।

---

१) ध. पु. ६, पृ. २२२ ।

टीकार्थ:– अध:प्रवृत्तकरण परिणाम में जीव प्रत्येक समय में सातादि प्रशस्त प्रकृतियों का चतु:स्थानीय अनुभाग अनन्तगुणितरूप से बांधता है और प्रत्येक समय में असातादि अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानीय अनुभाग अनन्तवाँ भागमात्र बांधता है।

पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण ओसरदि बंधे।
संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्मि ओसरणा ।।३९।।
पल्यस्य संख्यभागं मुहूर्तान्तेनापसरति बन्धे।
संख्येयसहस्राणि चाध:प्रवृत्तेऽपसरणानि।।३९।।

अध:प्रवृत्तकरणकाले प्रथमसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तपर्यन्तं प्राक्तनस्थितिबन्धात्पल्यसंख्यातैक–भागन्यूनां स्थितिं बध्नाति, तत: परमन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं पुनरपि पल्यसंख्यातैकभागन्यूनां स्थितिं बध्नाति। एवं तत्कालचरमसमयं यावत् स्थितिबन्धापसरणानि संख्यातसहस्राणि भवन्ति। अनेनान्तर्मुहूर्तेन२९९प्र. एकस्याम् अपसरणशलाकायां फ. १ एतावति काले—इ २९९९ कियत्य: स्थितिबन्धापसरणशलाका भवन्तीति त्रैराशिकेन लब्धा अपसरणशलाका: ९।

अन्वयार्थ :– **(बंधे)** स्थितिबंध में **(मुहुत्तअंतेण)** एक–एक अंतर्मुहूर्त के द्वारा **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवाँ भाग **(ओसरदि)** कम करता है। इसप्रकार **(अधापवत्तम्मि)** अध:प्रवृत्तकरण में **(संखेज्जसहस्साणि)** संख्यात हजार **(ओसरणा)** स्थितिबंधापसरण होते हैं।

टीकार्थ:– अध:प्रवृत्तकरण के काल में प्रथम समय से अंतर्मुहूर्त पर्यन्त पूर्व स्थितिबंध से पल्य का संख्यातवाँ भाग कम स्थिति बांधता है। उसके पश्चात् पुन: एक अंतर्मुहूर्त पर्यन्त पूर्व स्थितिबंध से पल्य का संख्यातवाँ भाग कम स्थिति बांधता है। इसप्रकार अध:प्रवृत्तकरण काल के अंतिम समयपर्यन्त संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होते हैं। यहाँ त्रैराशिक करते हैं–

२ ९ ९ इस अंतर्मुहूर्त के द्वारा १ अपसरणशलाका होती है तो २ ९ ९ ९ इतने काल में कितनी स्थितिबंधापसरण शलाका होती हैं इस प्रकार त्रैराशिक करने पर अपसरण शलाका ९ संख्यात आती हैं।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
२९९	१	२९९९	९

त्रैराशिक सूत्र – $\frac{\text{फलराशि} \times \text{इच्छाराशि}}{\text{प्रमाणराशि}}$ = लब्धराशि $\frac{१ \times २९९९}{२९९} = ९$

विशेषार्थ :- अंकसंदृष्टि से अध:प्रवृत्तकरण का काल ४०० समय माना । एक स्थितिबंधापसरण काल ४० समय माना। ४० समय में एक स्थितिबंधापसरण होता है तो ४०० समयों में बंधापसरण कितने होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
४०	१	४००	$\frac{१x४००}{४०} = १०$

१० स्थितिबंधापसरण प्राप्त होते हैं।

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि ।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होइ णियमेण[1] ।।४०।।

आदिमकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबन्धतस्तु चरमे ।
संख्यातगुणविहीन: स्थितिबन्धो भवति नियमेन ।।४०।।

अध:प्रवृत्तकरणप्रथमसमये य: स्थितिबन्ध: अंत:कोटीकोटिसागरोपमप्रमित:। सा अं को २ तस्माच्चरमसमये स्थितिबन्ध: संख्यातगुणहीनो नियमेन सा अं को २ / ४ भवति। संख्यातसहस्रापसरणशलाकामहत्त्वेन तथाभावाविरोधात् ।।४०।।

अन्वयार्थ:- **(आदिमकरणद्धाए)** प्रथम अध:प्रवृत्तकरण काल में **(पढमट्ठिदिबंधदो दु)** प्रथम स्थितिबन्ध से **(चरिमम्हि)** अंतिम समय में **(संखेज्जगुणविहीणो)** संख्यातगुणा कम **(ठिदिबंधो)** स्थितिबन्ध **(णियमेन)** नियम से **(होइ)** होता है।

टीकार्थ:- अध:प्रवृत्तकरण काल के प्रथम समय में अन्त:कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण जो स्थितिबन्ध होता है उसकी संदृष्टि **सा अंत: को २** । उससे अंतिम समय में स्थितिबंध संख्यातगुणा कम नियम से होता है क्योंकि संख्यात हजार बन्धापसरणों के माहात्म्य से इतना कम स्थितिबंध होने में विरोध नहीं आता है। अन्तिम स्थितिबंध **सा अं को २ / ४** (संख्यात की संदृष्टि ४ मानी। प्रथम स्थितिबंध में संख्यात से भाग देने पर संख्यातगुणा कम की संदृष्टि होती है) ।।४०।।

तच्चरिमे ठिदिबंधो आदिमसम्मेण देससयलजमं।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो[2]।।४१।।

तच्चरमे स्थितिबंध आदिमसम्येन देशसकलयमम्।
प्रतिपद्यमानकस्यापि संख्येयगुणेन हीनक्रम: ।।४१।।

---

१) ध. पु. ६, पृ. २२३.   २) ध. पु. ६, पृ. २२३.

अध:प्रवृत्तकरणचरमसमये प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य य: स्थितिबंध:

सा अं को २
४

तस्माद्देशसंयमेन सह प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिबन्ध: संख्यातगुणहीन:

सा अं को २
४ ४

तस्मात्सकलसंयमेन सह प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिबन्ध: संख्यातगुणहीन:

सा अं को २
४ ४ ४

अन्वयार्थ:– (तच्चरिमे) अध:प्रवृत्तकरण के अंतिम समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख जीव को जो स्थितिबंध होता है उससे **(आदिमसम्मेण)** प्रथमोपशम सम्यक्त्व– सहित **(देससयलजमं पडिवज्जमाणगस्स वि)** देशसंयम और सकलसंयम को प्राप्त होने वाले जीव को **(संखेज्जगुणेण हीणकमो)** क्रमश: संख्यातगुणा हीन **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध होता है।

टीकार्थ:–अध:प्रवृत्तकरण के अंतिम समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होने वाले जीव में जो (अंत:कोड़ाकोड़ी सागर) स्थितिबंध होता है उसकी संदृष्टि

सा अं को २
४

उससे देशसंयम से सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले जीव में संख्यातगुणा हीन स्थितिबंध होता है। (पूर्व स्थितिबन्ध में पुन: संख्यात का भाग दिया) उसकी संदृष्टि–

सा अं को २
४ ४

उससे सकलसंयम से सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले जीव का संख्यातगुणा कम स्थितिबन्ध होता है इसलिए पुन: एक बार संख्यात का भाग दिया उसकी संदृष्टि–

सा अं को २
४ ४ ४

आदिमकरणद्धाए पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो[1] ।।४२।।

आदिमकरणाद्धायां प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामा: ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तान्तर्हि प्रतिभाग: ।।४२।।

अध:प्रवृत्तकरणकाले प्रथमसमयादारभ्याचरमसमयं त्रिकालगोचरजीवसम्भविनो विशुद्धिपरिणामा: असंख्येयलोकमात्रा: ≡a। ते च प्रतिसमयं विशेषाधिकक्रमेण गच्छन्ति। तत्र प्रथमसमये–

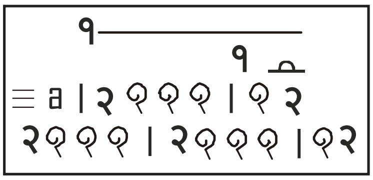

१) ध. पु. ६. पृ. २१४ ।

द्वितीयसमये विशेषाधिका: 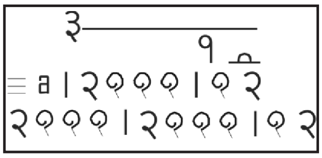 **एवं प्रतिसमयं विशेषाधिकक्रमेण**

गत्वा चरमसमये परिणामाः 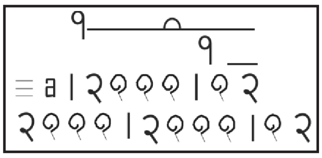 **एवं प्रतिसमयं विशेषाधिका अपि**

तत्परिणामा आलापापेक्षया असंख्यातलोकमात्रा इत्युच्यन्ते । विशेषे आनेतव्ये आदिधनस्यान्तर्मुहूर्तमात्र:

प्रतिभागहारो भवति । तत्प्रमाणं 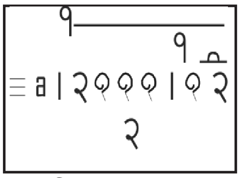 **''पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं ''**

इत्यनेनानीतं विशेषं संस्थाप्य आदिधनगुणकारभागहाराभ्यामुपर्यधश्च गुणयित्वा- गुणकारभूतं द्विकं हारस्य हारं कृत्वा समीक्ष्यमाणे आदिधनस्य भागहार: । अध:प्रवृत्तकरणकालात् संख्येयगुण: किंचिदूनो भवति सोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव ।।४२।।

अन्वयार्थ:- (आदिमकरणद्धाए) प्रथम करण के काल में **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(अहियकमा हु)** अधिक क्रम से **(असंखलोगपरिणामा)** असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं। **(विसेसे)** विशेष अर्थात् चयप्रमाण को प्राप्त करने के लिए **(मुहुत्तअंतो हु)** अंतर्मुहूर्त **(पडिभागो)** प्रतिभाग (भागहार) है।

टीकार्थ:- अध:प्रवृत्तकरण काल में प्रथम समय से आरम्भ करके अंतिम समय पर्यन्त तीन कालसंबंधी जीवों के होने वाले विशुद्ध परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उसकी संदृष्टि ≡a (असंख्यात की संदृष्टि a और तीन लोक की संदृष्टि ≡)वे परिणाम प्रत्येक समय में क्रम से विशेष अधिक हैं। उसमें प्रथम समय के परिणाम ये हैं-

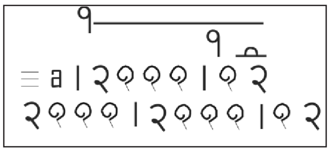

(इन परिणामों का सविस्तर गणित गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ४९ में है। आगे विशेषार्थ में इसका खुलासा किया गया है।)

उससे द्वितीय समय के परिणाम एक चय अधिक हैं। 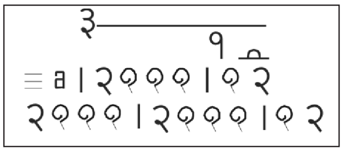

इसी प्रकार प्रत्येक समय में विशेष अधिक क्रम से जाकर अंतिम समय में परिणामों की संख्या

१——⌓——
१___
≡ a | २१११ | १ २
२१११ | २१११ | १ २

इतनी होती है।

इस प्रकार प्रत्येक समय में विशेष अधिक होने पर भी सामान्य अपेक्षा असंख्यात लोकमात्र हैं। विशेष का प्रमाण लाने के लिए प्रथम समय के परिणाम को अंतर्मुहूर्तमात्र प्रतिभागहार से भाग देना चाहिये।

अंतर्मुहूर्त प्रतिभाग का प्रमाण

१————
१ ⌓
≡ a | २१११ | १ २
२

'पदकदि संखेण भाजिदे पचयं' पद के वर्ग को संख्यात से गुणा करके उसका सर्वधन में भाग देनेपर चय का प्रमाण आता है।

चय निकालने का सूत्र

चय = सर्वधन / (पद का वर्ग X संख्यात)

यहाँ सर्वधन असंख्यातलोक (स. ≡ a)
पद अंतर्मुहूर्त (संदृष्टि- २१११)
संख्यात की संदृष्टि- १

चय = ≡ a / (२१११ | २१११ | १) यही चय का प्रमाण यहाँ दूसरी पद्धति से कहते हैं-

प्रथम समय के परिणाम पुंज को यहाँ आदिधन कहा है। पूर्वोक्त चय को स्थापन करके उसे आदिधन के गुणकार व भागहार से नीचे ऊपर गुणा करके गुणकार स्वरूप द्विक को भागहार का भागहार बनाने पर चय का प्रमाण लाने के लिए वह आदिधन का भागहार होता हैं।

प्रथम समय का परिणाम पुंज (आदिधन)

१————
१ ⌓
≡ a | २१११ | १ २
२१११ | २१११ | १ २

आदिधन का भागहार

इस भागहार से आदिधन में भाग देने पर चय का प्रमाण आता है ।

१——— १ ⌒
≡ a | २९९९ | ९ २̄
२९९९ | २९९९ | ९ २

ह्न

१——— १ ⌒
a | २९९९ | ९ २̄
२

भागहार का भागहार उस राशि का गुणकार होता है इस नियमानुसार उलट गुणित किया ।

१——— १ ⌒
≡ a | २९९९ | ९ २̄
२९९९ | २९९९ | ९ २

x

२
———
१——— १ ⌒
२९९९ | ९ २̄

भागहार और गुणकार का अपवर्तन करने पर चय का प्रमाण आया।

चय = | ≡ a / २९९९ | २९९९ | ९ |

अंकसंदृष्टिसे–प्रथम समय का परिणाम पुंज १६२ है। अंतर्मुहूर्त भागहार का प्रमाण $\frac{१६ \times (३\times२-१)+१}{२}$ यह माना ।

$$\frac{१६२}{\frac{१६\times(३\times२-१)+१}{२}} = \frac{१६२\times२}{(१६\times५)+१} = \frac{१६२\times२}{८१} = २\times२ = ४$$ चय का प्रमाण

आदिधन का भागहार अध:प्रवृत्तकरण काल से संख्यातगुणित होकर किंचित् कम है तो भी अंतर्मुहूर्त मात्र है । अध:प्रवृत्तकरण का काल २९९९ उसको ९ संख्यात से गुणा करने पर पुन: उसको २ से गुणा करने पर २९९९ |९ २ पुन: २ से भाग दिया और गुणकार के ऊपर एक कम है। इसलिए किंचित् कम जानना ।।४२।।

विशेषार्थ:– अध:करण काल में नाना जीवों की अपेक्षा से त्रिकाल विषयक सभी समयों के मिलकर सभी परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। अध:करण के प्रत्येक समय में भी नाना जीवों की अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं। असंख्यात लोक के असंख्यात प्रकार होते हैं। प्रथम समय के परिणाम सबसे कम असंख्यात लोकमात्र हैं। उसे निकालने का विधान निम्नांकित है। यहाँ सर्वधन (सर्वसमय के कुल परिणाम) ३०७२, पद (अध:करण का काल) १६ और संख्यात ३ माना है।

$\frac{\text{सर्वधन}}{\text{पद का वर्ग x संख्यात}}$ = चय (समानसंख्या से बढ़ने वाले परिणाम) $\frac{३०७२}{१६\times१६\times३} = ४$

$\frac{\text{पद}-१}{२}$ x चय x पद = चयधन $\frac{१६-१}{२} \times ४ \times १६ = ४८०$ चयधन

सर्वधन – चयधन = आदिधन ३०७२–४८० = २५९२ आदिधन

$\frac{\text{आदिधन}}{\text{पद}}$ = प्रथम समय का परिणामपुंज $\frac{२५९२}{१६} = १६२$ प्रथम समय का परिणामपुंज

यही प्रमाण टीका में अर्थसंदृष्टि से दिखाया है। ऊपर सूत्रों में उन–उन विवक्षित संख्याओं के चिह्न रखकर समीकरण करने पर अर्थसंदृष्टि से प्रमाण आता है। विशेष जिज्ञासुओं के लिए यहाँ उसका खुलासा किया जाता है–

सर्वधन =असंख्यात लोक (संदृष्टि ≡ a),पद=अंतर्मुहूर्त (संदृष्टि २९९९),संख्यात की संदृष्टि–९

पूर्वोक्त सूत्रानुसार चय $= \dfrac{\equiv a}{\text{२९९९ । २९९९ । ९}}$

चयधन $= \dfrac{\text{२९९९}-\text{१}}{\text{२}} \times \dfrac{\equiv a}{\text{२९९९ । २९९९ । ९}} \times \text{२९९९}$

अंतर्मुहूर्त प्रमाण भागहार और गुणकार का अपवर्तन करने पर चयधन $\dfrac{\equiv a \text{ । } (\text{२९९९} - \text{१})}{\text{२९९९ । ९ २}}$

आदिधन = सर्वधन – चयधन

$\equiv a - \dfrac{\equiv a \text{ । } (\text{२९९९} - \text{१})}{\text{२९९९ । ९ २}}$

$\dfrac{\equiv a \text{ । २९९९ । ९ २}}{\text{२९९९ । ९ २}} - \dfrac{\equiv a \text{ । } (\text{२९९९} - \text{१})}{\text{२९९९ । ९ २}}$ समच्छेद करने पर

ऋणराशि में से ऋण संख्या एक तरफ रखें । १ ऋण का प्रमाण इतना जानना चाहिए क्योंकि राशि का भागहार और गुणकार वह ऋण का भी भागहार और गुणकार होता है । ऋण एक तरफ निकालने के बाद शेष रहा प्रमाण $\dfrac{\equiv a}{\text{२९९९ । ९ २}}$

$\dfrac{\equiv a \text{ । २९९९ । ९ २}}{\text{२९९९ । ९ २}} - \dfrac{\equiv a \text{ । २९९९}}{\text{२९९९ । ९ २}}$

$\dfrac{\equiv a \text{ । २९९९ । ९ २}^{\text{१}}}{\text{२९९९ । ९ २}}$ धनराशि और ऋणराशि में असंख्यात लोक और तीन बार संख्यात गुणित आवलि समान है। धनराशि में शेष रहे संख्यात व २ गुणकार के ऊपर ऋणराशि का एक गुणकार कम करे ।

अलग रखे हुए ऋणराशि का ऋण धनराशि में मिलावे। क्योंकि 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं' इस सूत्रानुसार ऋण का ऋण राशि का धन होता है ।

$\dfrac{\equiv a \text{ । २९९९ । ९ २}^{\text{१ +}}}{\text{२९९९ । ९ २}} + \overset{\text{ऋण का ऋण}}{\dfrac{\equiv a}{\text{२९९९ । ९ २}}}$

दोनों राशियों का भागहार समान है। इसलिए समान संख्याओं को निकाल कर धनराशि का जो एक गुणकार है। वह मूलराशि के शेष रहे गुणकार के ऊपर अधिक करना चाहिए।

१———————
          १ ⌢
≡ a | २९९९९ | ९ २
——————————————
  २९९९९ | ९ २   यह आदिधन है ।

आदिधन / गच्छ = प्रथम समयसंबंधी परिणामपुंज

यहाँ गच्छ २ ९ ९ ९ इतना है इससे आदिधन में भाग देने पर प्रथम समयसंबंधी परिणाम आते हैं।

१———————   १ ⌢   ≡ a | २९९९९ | ९ २   २९९९ | २९९९९ | ९ २

= प्रथम समयसंबंधी परिणामपुंज

इसमें एक चय मिलाने पर द्वितीय समय संबंधी परिणाम आते हैं।

द्वितीय समयसंबंधी परिणामपुंज–

प्रथम समयसंबंधी परिणाम + १ चय = द्वितीय समयसंबंधी परिणामपुंज

अंकसंदृष्टि से १६२+४ = १६६

१———————
          १ ⌢
≡ a | २९९९९ | ९ २   ≡ a
————————————— + ——————————
२९९९ | २९९९९ | ९ २   २९९९ | २९९९९ | ९

दोनों राशियों के छेद समान करने के लिए धनराशि में २ से गुणा व भाग करे।

१———————
          १ ⌢
≡ a | २९९९९ | ९ २   ≡ a | २
————————————— + ——————————————
२९९९ | २९९९९ | ९ २   २९९९ | २९९९९ | ९ २

दोनों संख्याओं में से समान संख्या निकालकर रखें । दोनों राशियों में असंख्यात लोक समान हैं। मूलराशि के अवशेष रहे गुणकार में धनराशि का २ गुणकार मिलाया। मूलराशि के ऊपर १ अधिक में २ मिलाने पर ३ अधिक होता है।

३———————   १ ⌢   ≡ a | २९९९९ | ९ २   २९९९ | २९९९९ | ९ २

= द्वितीय समयसंबंधी परिणामपुंज

अंतिम समयसंबंधी परिणामपुंज–

प्रथम समयसंबंधी परिणामपुंज + (पद – १) x चय) = अंतिम समयसंबंधी परिणामपुंज

अंकसंदृष्टि से १६२+(१६–१)x४)=१६२+(१५x४)=१६२+६०=२२२

अर्थसंदृष्टि से,

१——— १ ᗅ
≡ a | २११११ | ११ २ ≡ a x २११११ |
२११११ | २११११ | ११ २ २११११ | २११११ | ११

दो राशियों में अन्य भागहार समान है । केवल २ का भागहार समान नहीं होने से धनराशि में २ से भाग व गुणा करें।

१——— १ ᗅ
≡ a | २११११ | ११ २ + ≡ a x २११११ | २
२११११ | २११११ | ११ २ २११११ | २११११ | ११ २

धनराशि में एक कम गुणकार का जो प्रमाण है उसे अलग निकाल कर रखे ऋण का प्रमाण –

≡ a २
२११११ | २११११ | ११ २

शेष प्रमाण

१——— १ ᗅ
≡ a | २११११ | ११ २ + ≡ a २११११ | २
२११११ | २११११ | ११ २ २११११ | २११११ | ११ २

दो राशियों का भागहार समान है और दो राशियों में ≡ a २११११ इस गुणकार की समानता है। मूलराशि में शेष गुणकार पर १ᗅ ११ २ एक कम है। धनराशि में २ का गुणकार शेष है। उस २ गुणकार में से १ कम करने पर १ गुणकार रहता है वह धनराशि के ११ २ इस गुणकार के ऊपर अधिक करना

१——— १ —
≡ a | २११११ | ११ २
२११११|२११११|११ २

अलग रखे हुए ऋण को इस राशि में से कम करें। क्योंकि धनराशि का ऋण इस मूलराशि का ऋण होता हैं।

लब्ध – धनराशि का ऋण

१——— १ —
≡ a | २११११ | ११ २ — ≡ a २
२११११|२११११|११२ २११११ | २११११ | ११ २

इन दो राशियों में सभी भागहार समान हैं। गुणकार में असंख्यात लोक समान है। ऋणराशि में दो गुणकार हैं उसे मूलराशि के एक अधिक गुणकार में से कम करें। शेष (+१-२=-१) -१ रहता है। उसे मूलराशि के गुणकार में कम करें।

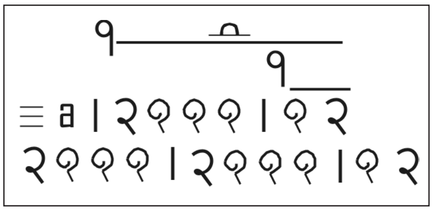

= अंतिम समयसंबंधी परिणामपुंज.

ताए अधापवत्तद्धाए संखेज्जभागमेत्तं तु।
अणुकट्टीए[1] अद्धा णिव्वग्गणकंडयं तं तु[2] ।।४३।।

तस्या अध:प्रवृत्ताद्धाया: संख्येयभागमात्रं तु ।
अनुकृष्ट्या अद्धा निर्वर्गणकाण्डकं तत्तु।।४३।।

तस्या अध:प्रवृत्ताद्धाया: संख्येयभागमात्रोऽनुकृष्ट्यद्धा एकसमयपरिणामनानाखण्डसंख्येत्यर्थ:। अनुकृष्टय: प्रतिसमयपरिणामखण्डानि तासामद्धा आयाम: तत्संख्येत्यर्थ:। तदेव तत्परिमाणमेव निर्वर्गणकाण्डकमित्युच्यते । वर्गणा समयसादृश्यं ततो निष्क्रान्ता उपर्युपरि समयवर्तिपरिणामखण्डास्तेषां काण्डकं पर्व निर्वर्गणकाण्डकम्। तानि च अध:प्रवृत्तकरणकाले संख्येयसहस्राणि भवन्ति।।४३।।

अन्वयार्थ:- **(ताए अधापवत्तद्धाए)** उस अध:प्रवृत्तकरण काल का **(संखेज्जभागमेत्तं तु)** संख्यातवाँ भाग मात्र **(अणुकट्टीए अद्धा)** अनुकृष्टि का आयाम है। **(तं तु णिव्वग्गणकंडयं)** वही निर्वर्गणाकाण्डक का प्रमाण है।।४३।।

टीकार्थ:- उस अध:प्रवृत्तकरण काल का संख्यातवाँ भागप्रमाण अनुकष्टि रचना का आयाम है अर्थात् एक समय के परिणामों के नाना खंडों की संख्या है। अनुकृष्टि याने प्रत्येक समय के परिणाम-खंड। उसका काल अर्थात् आयाम है अर्थात् उन खंडों की संख्या वही निर्वर्गणाकाण्डक का प्रमाण है। वर्गणा अर्थात् समयों की समानता, निर् याने उससे रहित ऊपर-ऊपर के समयों के परिणाम-खंड, उनका कांडक अर्थात् पर्व उसको निर्वर्गणाकांडक कहते हैं। वे अध:प्रवृत्तकरण काल में संख्यात हजार होते हैं ।

विशेषार्थ:- अनुकृष्टि और निर्वर्गणाकाण्डक का खुलासा- प्रथम समयवर्ती जीवों के परिणाम उपरितन समयवर्ती जीवों के परिणामों से जब तक समान पाए जाते हैं तब तक परिणामखंडों में अनुकृष्टि रचना होती है और उसका ही नाम निर्वर्गणाकाण्डक भी है। इस

१) जयध. पु. १२, पृ. २३५ । २) ध. पु. ६, पृ. २१५ । जयध. पु. १२, पृ. २३६ ।

गाथा में प्रथम समय के परिणामों की अपेक्षा से कथन है। द्वितीयादि समयों की अपेक्षा भी इसी प्रकार विचार करना चाहिए। एक निर्वर्गणाकाण्डक अध:प्रवृत्तकरण काल का संख्यातवाँ भागप्रमाण होता है। संदृष्टि

$$\frac{\text{अध:प्रवृत्तकरण का काल}}{\text{संख्यात}} = \text{निर्वर्गणाकाण्डक } \frac{२१११}{१} = \boxed{२११}$$

यही अनुकृष्टिगच्छ का– भी प्रमाण है।

पडिसमयगपरिणामा णिव्वग्गणसमयमेत्तखंडकया।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो[1] ।।४४।।

प्रतिसमयगपरिणामा निर्वर्गणसमयमात्रखण्डकृता:।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तान्तर्हि प्रतिभाग: ।।४४।।

प्रतिसमयगा: परिणामा: निर्वर्गणसमयमात्रखण्डा: कृता: अध:प्रवृत्तकरणकालसंख्यातैक–भागमात्रखण्डा: कृता इत्यर्थ: । ते च संख्यातावलिसमयमात्रा एव जघन्यखण्डात् आ उत्कृष्टखण्डं विशेषाधिका गच्छन्ति। तद्विशेषे साध्ये आदिखण्डस्यान्तर्मुहूर्तमात्र: प्रतिभागहार:। सोऽपि पूर्ववदानेतव्य: ।।४४।।

अन्वयार्थ:–(पडिसमयगपरिणामा) प्रत्येक समय के परिणामों के **(णिव्वग्गणसमयमेत्तखंडकया)** निर्वर्गणा काण्डक के जितने क्रमश: खंड होते हैं **(अहियकमा हु)** वे खण्ड अधिक क्रमवाले हैं। **(विसेसे पडिभागो मुहुत्तअंतो हु)** अधिक प्रमाण लाने के लिए प्रतिभागहार अंतर्मुहूर्त है।।४४।।

टीकार्थ:– प्रत्येक समय के परिणामों के निर्वर्गणा समयप्रमाण खंड किए अर्थात् अध:प्रवृत्तकरण काल के संख्यातवें भागप्रमाण खंड किए। वे संख्यात आवलि के जितने समय हैं उतने प्रमाण ही हैं। जघन्य खंड से उत्कृष्ट खंड पर्यन्त परिणाम एक–एक चय से अधिक हैं। चय का प्रमाण साधने के लिए प्रथम खंड का अंतर्मुहूर्तप्रमाण प्रतिभागहार है अर्थात् प्रथम खण्ड को अंतर्मुहूर्त का भाग देने पर विशेष चय का प्रमाण आता है। उसका विधान गाथा नं ४२ के समान जानना चाहिए।

पडिखंडगपरिणामा पत्तेयमसंखलोगमेत्ता हु।
लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणाणि वि विसेसे[2] वि[3] ।।४५।।

प्रतिखण्डगपरिणामा: प्रत्येकमसंख्यलोकमात्रा हि।
लोकानामसंख्येया: षट्स्थानान्यपि विशेषेऽपि ।।४५।।

प्रतिनियता: खण्डा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्ना: तद्गता: परिणामा: विशुद्धिपरिणामविकल्पा: प्रत्येकमेकस्मिन्नेकस्मिन् खण्डे असंख्येयलोकमात्रा: सन्ति। अनन्तभागवृद्धिरसंख्यातभागवृद्धि:

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २३६ २) पाठभेद– छट्ठाणाणी विसेसे वि। मु. प्र. ३) जयध. पु. १२, पृ. २३४

संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिरसंख्यातगुणवृद्धिरनन्तगुणवृद्धिरिति षट्स्थानान्यप्येकैकस्मिन् खण्डे असंख्येयलोकमात्राणि सन्ति।अनुकृष्टिविशेषेऽप्यसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि भवन्ति।

अन्वयार्थः– **(पडिखंडगपरिणामा)** प्रतिनियत खंड के परिणाम **(पत्तेयं)** प्रत्येक खण्ड में **(असंखलोगमेत्ता हु)** असंख्यात लोकप्रमाण हैं **(छट्ठाणाणि वि)** प्रत्येक खंड में षट्स्थानपतित वृद्धि–स्थान भी **(लोयाणमसंखेज्जा)** असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। **(विसेसे वि)** अनुकृष्टि चय में भी असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान होते हैं अर्थात् चय का प्रमाण इतना बड़ा होता है।

टीकार्थः– जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेदों से भिन्न प्रतिनियत खंड के विशुद्ध परिणामों के भेद एक–एक खंड में प्रत्येक के असंख्यात लोकप्रमाण हैं। अनन्त भागवृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि, अनन्त गुणवृद्धि। इस प्रकार षट्स्थान भी एक–एक खंड में असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। अनुकृष्टि विशेष में भी असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान होते हैं।

विशेषार्थः– जिस करण में ऊपर–ऊपर के समयवर्ती जीवों के परिणाम पूर्व–पूर्व के समयवर्ती परिणामों के सदृश भी होते हैं उस करण को अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है और इस करण में होनेवाले परिणामों का प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण है। फिर भी इसके प्रथम समय के योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं, दूसरे समय के योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरण के अंतिम समय तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ये प्रत्येक समय के परिणाम उत्तरोत्तर सदृश वृद्धि को लिए हुए विशेष अधिक हैं। यह अधःप्रवृत्तकरण के स्वरूप–निर्देश के साथ उसके काल और उसके प्रत्येक समय में होने वाले परिणामों की क्रमवृद्धि को लिए हुए किसप्रकार कहाँ कितने परिणाम होते हैं इसका सामान्य निर्देश है। आगे इस करण के प्रत्येक समय में परिणाम–स्थानों की व्यवस्था किसप्रकार है इसे स्पष्ट करके बतलाते हैं। ऐसा नियम है कि अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय में जितने परिणाम होते हैं वे अधःप्रवृत्तकरण के काल के संख्यातवें भागप्रमाण खण्डों में विभाजित हो जाते हैं, जो उत्तरोत्तर विशेष अधिक प्रमाण को लिए हुए होते हैं। यहाँ पर उन परिणामों के जितने खण्ड हुए, निर्वर्गणा काण्डक भी उतने समय प्रमाण होता है। आगे भी इसप्रकार जानना चाहिए। विवक्षित समय के परिणामों की जिससे आगे अनुकृष्टि का विच्छेद हो जाता है उसकी निर्वर्गणा काण्डक संज्ञा है। इस निर्वर्गणा काण्डक में प्रत्येक समय के परिणामों के जितने खण्ड किए गए हैं उनमें से प्रथम खण्ड से दूसरे खण्ड को और दूसरे आदि खण्ड से तीसरे आदि खण्ड को विशेष अधिक कहा है सो उस विशेष का प्रमाण तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त का भाग देने पर प्राप्त होता है । ये सब खण्ड परस्पर में समान न होकर विसदृश ही होते हैं, क्योंकि प्रत्येक समय के परिणाम–खण्ड उत्तरोत्तर विशेष अधिक प्रमाण को लिए हुए

होते हैं । इनमें से प्रथम समय के प्रथम खण्डगत परिणाम तो नाना जीवों की अपेक्षा अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय में ही पाए जाते हैं । शेष अनेक खण्ड और तद्‌गत परिणाम दूसरे समय में स्थित जीवों के भी होते हैं। साथ ही यहाँ असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी प्राप्त होते हैं जो अंतिमखंडरूप से दूसरे समय में होते हैं। ये अपूर्व परिणाम प्रथम समय के अंतिम खंड में तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने अधिक होते हैं। तीसरे समय में दूसरे समय के जितने खण्ड और तद्‌गत परिणाम हैं उनमें से प्रथम खण्ड और तद्‌गत परिणामों को छोड़कर वे सब प्राप्त होते हैं। साथ ही यहाँ असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी प्राप्त होते है जो अन्तिम खण्डरूप से तीसरे समय में पाये जाते हैं। इस प्रकार इसी प्रक्रिया से अध:प्रवृत्तकरण के अंतिम समय के प्राप्त होने तक चौथे आदि समयों में भी परिणाम स्थानों की व्यवस्था जान लेना चाहिए।

यहाँ अंकसंदृष्टि द्वारा इसी विषय को स्पष्ट किया जाता है । अध:प्रवृत्तकरण का काल अन्तर्मुहूर्त है, जो अंकसंदृष्टि से १६ लिया गया है। कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, जो यहाँ ३०७२ लिए गए हैं । ये सब परिणाम प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर समान वृद्धि को लिए हुए हैं। इस हिसाब से यहाँ समान वृद्धि या चय का प्रमाण ४ है। प्रथम स्थान में वृद्धि का अभाव है, इसलिए प्रथम समय को छोड़कर १५ समयों में वृद्धि हुई है, अत: एक कम सब समयों के आधे को चय और समयों की संख्या से गुणित करने पर

$$\text{चयधन} = \frac{(\text{पद}-१)}{२} \times \text{चय} \times \text{पद} = \frac{(१६-१)}{२} \times ४ \times १६ = ४८०$$

चयधन का प्रमाण प्राप्त होता है । इसे सर्वधन ३०७२ में से घटाकर शेष २५९२ में सब समयों का भाग देने पर १६२ लब्ध आता है। यह प्रथम समय के परिणामों का प्रमाण है। आगे इसमें चय ४ के उत्तरोत्तर मिलाते जाने पर द्वितीयादि समयों के परिणामों का प्रमाण क्रम से १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६ आदि होता है। १६ वें समय के परिणामों का प्रमाण २२२ होता है।

अब ऊपर के समयों में स्थित जीवों के परिणामों की पूर्व के समयों में स्थित जीवों के परिणामों के साथ सदृशता और विसदृशता किस प्रकार है यह बतलाने के लिए अनुकृष्टि रचना करते हैं। अध:प्रवृत्तकरण के प्रत्येक समय के सब परिणामों को उसी के अन्तर्मुहूर्त–प्रमाण काल के संख्यातवें भागप्रमाण काल में जितने समय हैं उतने भागों में विभक्त करें। इस विधि से संख्यात का प्रमाण ४ स्वीकार करके उसका भाग १६ में देने पर ४ लब्ध आया। निर्वर्गणा काण्डक का प्रमाण भी इतना ही है। प्रत्येक समय के परिणामों को चार–चार खण्डों में विभाजित करना चाहिए। उसमें भी प्रथम खण्ड से द्वितीय खण्ड, द्वितीय खण्ड

से तृतीय खण्ड और तृतीय खण्ड से चतुर्थ खण्ड विशेष अधिक है। यहाँ विशेष या चय का प्रमाण उक्त अन्तर्मुहूर्त का भाग निर्वर्गणाकाण्डक के प्रमाण में देने पर जो लब्ध आता है उतना है। पहले अंकसंदृष्टि में निर्वर्गणाकाण्डक का प्रमाण ४ बतला आये हैं, अंतर्मुहूर्त का प्रमाण भी इतना ही है। अतः अंतर्मुहूर्त का (४ का) भाग निर्वर्गणाकाण्डक के प्रमाण (४) में देने पर लब्ध १ आया। यही प्रकृत में विशेष का प्रमाण है। इस विधि से यहाँ सब समयों के प्रथम खण्ड में तो वृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे, तीसरे और चौथे खण्ड में पहले से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में और तीसरे से चौथे में क्रम से उत्तरोत्तर १-१ संख्या की वृद्धि हुई है। अतः वृद्धिरूप चयधन १+२+३=६ होता है। इसे पृथक्-पृथक् प्रथमादि समयों के परिणाम-पुंजों में से घटा देने पर क्रम से १५६, १६०, १६४, १६८ आदि प्राप्त होते हैं। इनमें खंडप्रमाण संख्या ४ का भाग देने पर सर्वत्र प्रथमादि समयों में प्रथम खण्ड क्रम से ३९, ४०, ४१, ४२ आदि संख्याप्रमाण प्राप्त होते हैं। इनमें क्रम से चयधन के मिलाने पर प्रत्येक समय के चारों खण्डों के परिणाम-पुंजों का प्रमाण आ जाता है। रचना इस प्रकार है-

अधःकरण काल के परिणामों की अनुकृष्टि रचना

समय	परिणामों का प्रमाण	प्रथम खंड	द्वितीय खंड	तृतीय खंड	चतुर्थ खंड	निर्वर्गणाकाण्डक
१६	२२२	५४	५५	५६	५७	चतुर्थ
१५	२१८	५३	५४	५५	५६	
१४	२१४	५२	५३	५४	५५	
१३	२१०	५१	५२	५३	५४	
१२	२०६	५०	५१	५२	५३	तृतीय
११	२०२	४९	५०	५१	५२	
१०	१९८	४८	४९	५०	५१	
९	१९४	४७	४८	४९	५०	
८	१९०	४६	४७	४८	४९	द्वितीय
७	१८६	४५	४६	४७	४८	
६	१८२	४४	४५	४६	४७	
५	१७८	४३	४४	४५	४६	
४	१७४	४२	४३	४४	४५	प्रथम
३	१७०	४१	४२	४३	४४	
२	१६६	४०	४१	४२	४३	
१	१६२	३९	४०	४१	४२	

पढमे चरिमे समये पढमं चरिमं च खंडमसरित्थं।
सेसा सरिसा[१] सव्वे अट्ठुव्वंकादिअंतगया।।४६।।

प्रथमे चरमे समये प्रथमं चरमं खण्डमसदृशम्।
शेषाः सदृशाः सर्वे अष्टोर्वङ्काद्यन्तगताः ।।४६।।

अधःप्रवृत्तकरणकालस्य प्रथमसमये प्रथमखण्डं ३९, चरमसमये चरमखण्डं च ५७ उपरितनाधस्तनसमयखण्डैरसदृक्षमेव, शेषाणि द्वितीयखण्डादीनि द्विचरमसमयखण्डपर्यन्तानि सर्वाण्यपि खण्डान्युपरितनाधस्तनसमयवर्तिखण्डैः सदृशानि भवन्ति । तानि प्रथमादिचरमपर्यन्तानि सर्वाण्यपि खण्डान्यष्टाङ्कादीनि उर्वङ्कान्तानि भवन्ति, षट्स्थानानामादिरष्टाङ्कः अनन्तगुणवृद्धिरूपः अन्त उर्वङ्क : अनन्तभागवृद्धिरूप इति वचनात् ।।४६।।

अन्वयार्थ :- **(पढमे समये)** प्रथम समय का **(पढमं खंडं)** प्रथम खंड **(च)** और **(चरिमे समये)** अंतिम समय का **(चरिमं खंडं)** अंतिम खंड **(असरित्थं)** असमान है अर्थात् दूसरे किसी भी खंड के समान नहीं है। **(सेसा सव्वे)** शेष सर्व खंड **(सरिसा)** एक दूसरे से सदृश हैं **(अट्ठुव्वंकादिअंतगया)** सभी खण्डों का आदि अष्टांक और अन्त उर्वंक है।।४६।।

टीकार्थ:- अधःप्रवृत्तकरण काल के प्रथम समय का प्रथम खंड ३९ और अंतिम समय का अंतिम खंड ५७ ऊपर व नीचे समयवर्ती खंडों के असमान ही है। शेष द्वितीय खंड से द्विचरमखंड पर्यंत सभी खंड ऊपर और नीचे के समयवर्ती खंडों के बराबर (यथायोग्य समान) हैं। प्रथम खंड से लेकर अंतिम खंड पर्यन्त सभी खंडों का आदि अष्टांक है और अन्त उर्वंक है क्योंकि षट्स्थानों का आदि अनन्तगुणवृद्धिरूप अष्टांक है और अन्त अनन्तभागवृद्धिरूप उर्वंक है- इस प्रकार वचन है। अर्थात् प्रत्येक खण्ड में प्रथम परिणाम पूर्व परिणाम की अपेक्षा अनन्तगुणवृद्धिरूप है और अंतिम परिणाम पूर्व परिणाम अपेक्षा अनन्तभागवृद्धिरूप है। अनन्तगुणवृद्धि को अष्टांक और अनन्तभागवृद्धि को उर्वंक कहते हैं।

विशेषार्थ:- गाथा की टीका में अंतिम पंक्ति में अष्टांक और उर्वंक इस प्रकार शब्द हैं वे अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तभागवृद्धि के संकेत हैं। छह वृद्धियों के संकेत -

अनन्तगुणवृद्धि-अष्टांक (८), असंख्यातगुणवृद्धि-सप्तांक(७) संख्यातगुणवृद्धि-षडंक(६), संख्यातभाग-वृद्धि-पंचांक(५), असंख्यातभागवृद्धि-चतुरंक(४), अनन्तभागवृद्धि-उर्वंक(३)। प्रथम समय का प्रथम खंड और अंतिम समय का अंतिम खंड अन्य किसी भी खंडों के सदृश नहीं है । इसके अतिरिक्त सभी समयों के अन्य सभी परिणाम खंड यथासंभव समान हैं।

चरिमे सव्वे खंडा दुचरिमसमओ त्ति अवरखंडाए ।
असरिसखंडाणोली अधापवत्तम्हि करणम्हि ।।४७।।

चरमे सर्वे खण्डा द्विचरमसमयपर्यन्ता अवरखण्डाः ।
असदृशखण्डानामावलिरधःप्रवृत्ते करणे।।४७।।

अधःप्रवृत्तकरणकाले चरमसमयवर्तीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टानि सर्वाण्यपि प्रथम-समयादिद्विचरमसमयपर्यन्तवर्तीनि जघन्यानि च खण्डानि अङ्कुशाकारपङ्क्तिगतानि उपरि सादृश्याभावादसदृशानीत्युच्यन्ते ।।४७।।

अन्वयार्थः- **(अधापवत्तम्हि करणम्हि)** अधःप्रवृत्तकरण में **(चरिमे)** अंतिम समय संबंधी **(सव्वे खंडा)** सभी खंड और **(दुचरिमसमओ त्ति)** द्विचरम समयपर्यंत के **(अवरखंडाए)** सर्व जघन्य खण्ड **(असरिसखंडाणोली)** यह असमान खंडों की पंक्ति है ।।४७।।

टीकार्थः- अधःप्रवृत्तकरण काल में अंतिम समय संबंधी जघन्य , मध्यम और उत्कृष्ट सभी खण्ड और प्रथम समय से द्विचरम समयपर्यंत के केवल जघन्य प्रथम खंड अंकुशाकार पंक्तिगत अर्थात् ऊपर के समय संबंधी परिणाम-खंडों से समानता का अभाव होने से असमान हैं, इस प्रकार कहा जाता है।

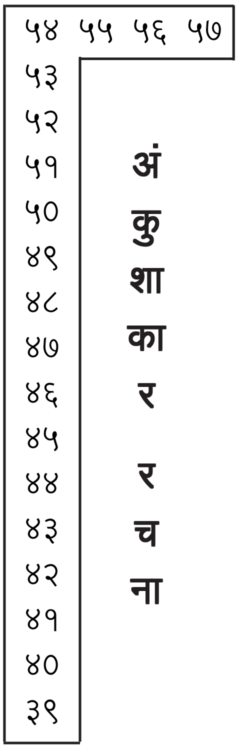

विशेषार्थः- अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से लेकर उपान्त्य समय तक के सब प्रथम खण्डों का अपने से ऊपर के समयों के अन्य किसी खण्डों के साथ सादृश्य नहीं है। इसी प्रकार अन्तिम समय के सब परिणाम-खण्ड भी उनसे ऊपर अन्य परिणाम-खण्डों का अभाव होने से विसदृश ही हैं। अतः इन परिणाम-खण्डों की अंकुशाकार रचना इस प्रकार होती है-
इन सब परिणामों का योग ९१२ होता है। अधःप्रवृत्तकरण के ३०७२ परिणामों में से उक्त ९१२ परिणाम अपुनरुक्त हैं। शेष सब परिणाम पुनरुक्त हैं । उदाः- प्रथम समय के १६२ परिणामों में से प्रारंभ के ३९ परिणाम अपुनरुक्त हैं । पहले समय के शेष दूसरे, तीसरे और चौथे खण्ड के परिणाम पुनरुक्त हैं, क्योंकि नाना जीवों की अपेक्षा ये द्वितीयादि तीनों खण्डों के परिणाम दूसरे समय में, तीसरे और चौथे खण्ड के परिणाम तीसरे समय में, चौथे खंड के परिणाम चौथे समय में भी पाये जाते हैं । इसी प्रकार यथासंभव आगे भी समझ लेना चाहिए।

पढमे करणे अवरा णिव्वग्गणसमयमेत्तगा तत्तो।
अहिगदिणा वरमवरं तो वरपंती अणंतगुणियकमा।।४८।।

प्रथमे करणेऽवरा निर्वर्गणसमयमात्रकास्ततः।
अहिगतिना वरमवरमतो वरपंक्तिरनन्तगुणितक्रमा।।४८।।

अधःप्रवृत्तकरणकाले निर्वर्गणकाण्डकसमयमात्राः प्रतिसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामाः उपर्युपर्यनन्तगुणितक्रमा गच्छन्ति । ततःप्रथमनिर्वर्गणकाण्डकचरमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामात् प्रथमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः। ततो द्वितीयकाण्डकप्रथमसमयप्रथमखण्डजघन्य-परिणामोऽनन्तगुणः। ततः प्रथमकाण्डकद्वितीयसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः । ततो द्वितीयकाण्डकद्वितीयसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामोऽनन्तगुणः एवं जघन्यादुत्कृष्टोऽनन्तगुणः। उत्कृष्टाज्जघन्योऽनन्तगुणोऽहिगत्या गच्छति यावच्चरमकाण्डकचरमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामं प्राप्नोति। तस्माच्चरमकाण्डकप्रथमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः। तस्मात्प्रतिसमयचरम-खण्डोत्कृष्टपरिणामपंक्तिरनन्तगुणितक्रमा गच्छति यावच्चरमकाण्डकचरमसमयचरमखण्डोत्कृष्ट-परिणामं प्राप्नोति । सर्वत्र जघन्यपरिणामादुत्कृष्टपरिणामः असंख्यातलोकमात्रवारानन्तगुणितः। उत्कृष्टपरिणामाज्जघन्यपरिणामः एकवारमनन्तगुणित इति विशेषो ज्ञातव्यः। सर्वजघन्यविशुद्धेरप्य-विभागप्रतिच्छेदाः जीवराशेरनन्तगुणाः सन्तीति अनन्तगुणवृद्ध्यादिषट्स्थानसम्भवः ।।४८।।

अब अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणामों में विशुद्धि का तारतम्य बतलाते हैं–

अन्वयार्थः– **(पढमे करणे)** प्रथम अधःप्रवृत्तकरण में **(णिव्वग्गणसमयमेत्तगा)** निर्वर्गणाकाण्डक समयप्रमाण प्रत्येक समय के **(अवरा)** जघन्य परिणाम **(अणंतगुणियकमा)** ऊपर–ऊपर अनंतगुणित क्रम से हैं **(तत्तो)** उससे (निर्वर्गणाकाण्डक के अंतिम समय संबंधी जघन्य परिणाम से) **(वरमवरं)** प्रथम समयसंबंधी उत्कृष्ट परिणाम, उससे द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डक के प्रथम समयसंबंधी जघन्य परिणाम इस प्रकार **(अहिगतिना)** सर्प की चाल के समान जघन्य से उत्कृष्ट और उससे जघन्य परिणाम अनन्तगुणित क्रम से हैं। **(तो)** उससे (चरम निर्वर्गणाकाण्डक के प्रथम समय के उत्कृष्ट परिणाम से उसके अंतिम समय पर्यन्त) **(वरपंती)** उत्कृष्ट परिणामों की पंक्ति **(अणंतगुणियकमा)** अनन्तगुणित क्रम से है।

टीकार्थः– अधःप्रवृत्तकरण काल में निर्वर्गणाकांडक समय मात्र प्रत्येक समय में प्रथम खंडों के जघन्य परिणाम ऊपर–ऊपर क्रम से अनन्तगुणित होते जाते हैं। उसके पश्चात् प्रथम निर्वर्गणाकाण्डक के अंतिम समयसंबंधी प्रथमखंड के जघन्य परिणाम से प्रथम समयसंबंधी अंतिमखंड का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा (विशुद्ध) है। उससे दूसरे कांडक के प्रथम समयसंबंधी

प्रथमखंड का जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उससे प्रथम कांडक के दूसरे समय संबंधी अंतिम खंड का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। उससे दूसरे कांडक के दूसरे समय संबंधी प्रथम खंड का जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। इसप्रकार जघन्य से उत्कृष्ट अनन्तगुणित और उत्कृष्ट से जघन्य अनन्तगुणित है। इसप्रकार सर्प की चाल से तबतक जाएँ जब–तक अंतिम कांडक के अंतिम समयसंबंधी प्रथम खण्ड का जघन्य परिणाम प्राप्त होता है। उससे अंतिम कांडक के प्रथम समयसंबंधी अंतिम खंड का उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणित है। उसके पश्चात् अंतिम कांडक के अंतिम समय के अंतिम खंड का उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त होने तक प्रत्येक समय में अंतिम खंडों के उत्कृष्ट परिणामों की पंक्ति अनन्तगुणित क्रम से होती जाती है। सर्वत्र जघन्य परिणाम से उत्कृष्ट परिणाम असंख्यात लोकमात्र बार अनन्तगुणित हैं। उत्कृष्ट परिणाम से जघन्य परिणाम एक बार अनन्तगुणित हैं। इसप्रकार विशेष जानना चाहिए। सर्व जघन्य विशुद्धि के भी अविभागप्रतिच्छेद जीवराशि से अनन्तगुणे हैं। इसलिए यहाँ अनन्तगुणवृद्धि आदि छह स्थान सम्भव हैं।

विशेषार्थ:– श्री जयधवला दर्शनमोह उपशमना अधिकार में विशुद्धि सम्बन्धी अल्पबहुत्व का विचार करते हुए अल्पबहुत्व के स्वस्थान और परस्थान ऐसे दो भेद करके स्वस्थान–अल्पबहुत्व का खुलासा इसप्रकार किया है–अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय में प्रथम खण्ड का जघन्य परिणाम सबसे स्तोक है। उससे वहीं के दूसरे खण्ड का जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहीं के तीसरे खण्ड का जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहीं के चौथे खण्ड का जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। इसी प्रकार प्रथम समय के प्रथम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम सबसे स्तोक है। उससे वहीं के दूसरे खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहीं के तीसरे खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है।उससे वहीं के चौथे खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। इसी प्रकार प्रथम समय के अंतिम खण्ड के अंतिम उत्कृष्ट परिणाम के प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इसी प्रकार द्वितीयादि समयों के सब खण्डों सम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट परिणामों का स्वस्थान–अल्पबहुत्व घटित कर लेना चाहिए। यह स्वस्थान–अल्पबहुत्व है। अंकसंदृष्टि के अनुसार प्रथम समय के चारों खण्डों में १६२ परिणाम पाये जाते हैं, उनमें से प्रथम खण्ड में एक से लेकर उनतालीस तक ३९ परिणाम, दूसरे खण्ड में ४० से लेकर ७९ तक ४० परिणाम, तीसरे खण्ड में ८० से लेकर १२० तक ४१ परिणाम और चौथे खण्ड में १२१ से लेकर १६२ तक ४२ परिणाम परिगणित किए गए हैं । इनमें से प्रथम खण्ड का १ संख्यांक परिणाम विशुद्धि की अपेक्षा सबसे स्तोक हैं, उससे दूसरे खण्ड का ४० संख्यांक जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उससे तीसरे खण्ड का ८० संख्यांक जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है और उससे चौथे खण्ड का १२१ वाँ जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है । उत्कृष्ट की अपेक्षा प्रथम खण्ड का ३९ संख्यांक उत्कृष्ट परिणाम सबसे स्तोक है,

अध:प्रवृत्तकरण कालसंबंधी परिणामों की अनुकृष्टिरचना–

समय क्र.	परिणामों का प्रमाण	प्रथम खंड	द्वितीय खंड	तृतीय खंड	चतुर्थ खंड
१६	**२२२**	**५४** ६९१-७४४	**५५** ७४५-७९९	**५६** ८००-८५५	**५७** ८५६-९१२
१५	**२१८**	**५३** ६३८-६९०	**५४** ६९१-७४४	**५५** ७४५-७९९	**५६** ८००-८५५
१४	**२१४**	**५२** ५८६-६३७	**५३** ६३८-६९०	**५४** ६९१-७४४	**५५** ७४५-७९९
१३	**२१०**	**५१** ५३५-५८५	**५२** ५८६-६३७	**५३** ६३८-६९०	**५४** ६९१-७४४
१२	**२०६**	**५०** ४८५-५३४	**५१** ५३५-५८५	**५२** ५८६-६३७	**५३** ६३८-६९०
११	**२०२**	**४९** ४३६-४८४	**५०** ४८५-५३४	**५१** ५३५-५८५	**५२** ५८६-६३७
१०	**१९८**	**४८** ३८८-४३५	**४९** ४३६-४८४	**५०** ४८५-५३४	**५१** ५३५-५८५
९	**१९४**	**४७** ३४१-३८७	**४८** ३८८-४३५	**४९** ४३६-४८४	**५०** ४८५-५३४
८	**१९०**	**४६** २९५-३४०	**४७** ३४१-३८७	**४८** ३८८-४३५	**४९** ४३६-४८४
७	**१८६**	**४५** २५०-२९४	**४६** २९५-३४०	**४७** ३४१-३८७	**४८** ३८८-४३५
६	**१८२**	**४४** २०६-२४९	**४५** २५०-२९४	**४६** २९५-३४०	**४७** ३४१-३८७
५	**१७८**	**४३** १६३-२०५	**४४** २०६-२४९	**४५** २५०-२९४	**४६** २९५-३४०
४	**१७४**	**४२** १२१-१६२	**४३** १६३-२०५	**४४** २०६-२४९	**४५** २५०-२९४
३	**१७०**	**४१** ८०-१२०	**४२** १२१-१६२	**४३** १६३-२०५	**४४** २०६-२४९
२	**१६६**	**४०** ४०-७९	**४१** ८०-१२०	**४२** १२१-१६२	**४३** १६३-२०५
१	**१६२**	**३९** १-३९	**४०** ४०-७९	**४१** ८०-१२०	**४२** १२१-१६२

उससे दूसरे खण्ड का ७९ संख्यांक उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है, उससे तीसरे खण्ड का १२० संख्यांक उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है और उससे चौथे खण्ड का १६२ संख्यांक उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा हैं। इसीप्रकार आगे के द्वितीयादि सब समयों में स्वस्थान–अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए। यह स्वस्थान–अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण है।

परस्थान–अल्पबहुत्व की अपेक्षा विचार इस प्रकार है– प्रथम निर्वर्गणाकाण्डक के अंतिम समय तक एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे आदि समयों में जो जघन्य परिणाम प्राप्त होता है वह उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए होता है। अंकसंदृष्टि के अनुसार पहले समय का १ संख्यांक जघन्य परिणाम अध:प्रवृत्तकरण के अन्य सब परिणामों की अपेक्षा सबसे स्तोक विशुद्धि को लिए हुए होता है यह स्पष्ट ही है। पहले समय के दूसरे खण्ड का ४० संख्यांक जो जघन्य परिणाम है वही दूसरे समय के प्रथम खण्ड का ४० संख्याक जघन्य परिणाम है इसलिए यह प्रथम खण्ड के १ संख्यांक जघन्य परिणाम से अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए होता है। प्रथम समय के तीसरे खण्ड का ८० संख्यांक जो जघन्य परिणाम है वही तीसरे समय के प्रथम खण्ड का ८० संख्यांक जो जघन्य परिणाम है, इसलिए यह भी दूसरे समय के ४० संख्यांक जघन्य परिणाम से अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए होता है। इसीप्रकार प्रथम समय के चौथे खण्ड का १२१ संख्यांक जो जघन्य परिणाम है, वही चौथे समय के प्रथमखण्ड का १२१ संख्यांक जघन्य परिणाम है, इसलिए यह भी तीसरे समय के ८० संख्यांक जघन्य परिणाम से अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए होता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथम निर्वर्गणाकाण्डक के अंतिम समय तक जघन्य विशुद्धि के अल्पबहुत्व का यह क्रम जानना चाहिए। अंकसंदृष्टि की अपेक्षा यह निर्वर्गणा–काण्डक चौथे समय में समाप्त हुआ है। इसलिए चौथे समय सम्बन्धी प्रथम खण्ड के १२१ संख्यांक जघन्य परिणाम तक उक्त अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

आगे उक्त जघन्य परिणाम से प्रथम समय का उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा होता है क्योंकि अंकसंदृष्टि की अपेक्षा पहले जो अध:प्रवृत्तकरण के चतुर्थ समय के प्रथम खण्ड की जघन्य विशुद्धि बतला आये हैं वही अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय के अन्तिम खण्ड की जघन्य विशुद्धि है और यह उसी अन्तिम खण्ड की उत्कृष्ट विशुद्धि है, इसलिए यह उससे अनन्तगुणी होती है। अंकसंदृष्टि की अपेक्षा वह जघन्य विशुद्धि प्रथम समय के अन्तिम खण्ड के १२१ संख्यांक परिणाम की थी और यह उससे अनन्तगुणी बतलाई है। इस प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डक के प्रथम समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। अंकसंदृष्टि की अपेक्षा प्रथम समय सम्बन्धी अंतिम खण्ड के १६२ संख्यांक परिणाम

की उत्कृष्ट विशुद्धि से पाँचवे समय सम्बन्धी प्रथम खण्ड के १६३ संख्यांक परिणाम की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि द्वितीय समयसम्बन्धी द्विचरम खण्ड के अंतिम परिणाम के सदृश होकर उर्वंकपने से (अनन्तभाग वृद्धिरूप से) अवस्थित है और यह जघन्य विशुद्धि दूसरे समय सम्बन्धी अन्तिम खण्ड के अष्टांकरूप जघन्य परिणामरूप से अवस्थित है, इसलिए यह उक्त उत्कृष्ट विशुद्धि से अनन्तगुणी है। इससे अध:प्रवृत्तकरण के द्वितीय समय सम्बन्धी अंतिम खण्ड की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि पूर्व की जघन्य विशुद्धि द्वितीय समय सम्बन्धी अंतिम खण्ड की जघन्य विशुद्धि-स्वरूप है और यह उससे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानों को उल्लंघन कर स्थित हुए दूसरे समय के अंतिम खण्ड की उत्कृष्ट विशुद्धिस्वरूप है, इसलिए यह उससे अनन्तगुणी हो जाती है। अंकसंदृष्टि की अपेक्षा द्वितीयसमय के अंतिम खण्ड की यह उत्कृष्ट विशुद्धि २०५ संख्यांक परिणामस्वरूप है, इसलिए यह उससे अनन्तगुणी है। इसीप्रकार आगमानुसार आगे भी विचार कर लेना चाहिए। यहाँ उसे समझने के लिए अंक संदृष्टि दी जाती है-

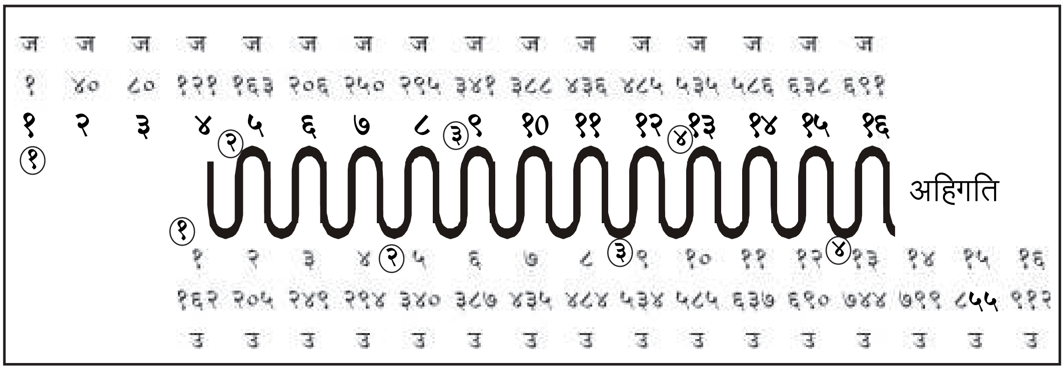

(१) यहाँ १ से लेकर १६ तक संख्या अध:प्रवृत्तकरण के समयों की सूचक है।

(२) गोल कंसमें संख्या कहाँ से किस संख्यावाला निर्वर्गणाकाण्डक चालू हुआ है, इसका सूचक है।

(३) १, ४० आदि संख्या उस-उस समय के उस-उस संख्याक जघन्य परिणाम की सूचक है और १६२, २०५ आदि संख्या उस-उस समय के उस-उस संख्यांक उत्कृष्ट परिणाम की सूचक है।

(४) पहले गाथा ४६ में यह बतला आये हैं कि प्रत्येक षट्स्थानपतितवृद्धि में उसका आदि अष्टांक प्रमाण होता है और अन्त 'उर्वंक' स्वरूप होता है । तदनुसार पिछले उत्कृष्ट स्थान से अगला जघन्य स्थान अनन्तगुण वृद्धिस्वरूप जानना चाहिए और प्रत्येक उत्कृष्ट स्थान अनन्तभाग वृद्धिस्वरूप जानना चाहिए। (५) जघन्य की संदृष्टि ज और उत्कृष्ट की संदृष्टि 'उ' है।

पढमे करणे पढमा उड्ढगसेढी य चरिमसमयस्स।
तिरियगखंडाणोली असरित्थाणंतगुणियकमा ।।४९।।
प्रथमे करणे प्रथमा ऊर्ध्वगश्रेणिश्च चरमसमयस्य ।
तिर्यग्गतखण्डानामावलिरसदृशा अनन्तगुणितक्रमा ।। ४९।।

अध:प्रवृत्तकरणे प्रथमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामादारभ्य द्विचरमसमयप्रथमखण्ड-जघन्यपरिणामपर्यन्ता ऊर्ध्वगा जघन्यपरिणामश्रेणि:, चरमसमयतिर्यक्खण्डपरिणामश्रेणिश्च उपरि सादृश्याभावादसदृशी अनन्तगुणितक्रमा च वेदितव्या । एवमध:प्रवृत्तकरणपरिणामस्वरूपं निरूपितम् ।।४९।।

अन्वयार्थ:- **(पढमे करणे)** प्रथम अध:प्रवृत्तकरण में **(पढमा उड्ढगसेढी)** प्रथम ऊर्ध्वपंक्ति (सब समयों के प्रथम खंड की ऊर्ध्व पंक्ति) **(य)** और **(चरिमसमयस्स)** अंतिम समय की **(तिरियगखंडाणोली)** तिर्यक्रूप से स्थित खंडों की पंक्ति **(असरित्था)** असमान है और **(अणंतगुणियकमा)** अनन्तगुणितरूप से स्थित है ।

टीकार्थ:- अध:प्रवृत्तकरण में प्रथम समय के प्रथम खंड के जघन्य परिणाम से द्विचरम समय के प्रथम खंड के जघन्य परिणाम पर्यंत खड़ी जघन्य परिणामों की पंक्ति और अंतिम समय के तिर्यक् (आड़ी) खंडों के परिणामों की पंक्ति ऊपर समानता का अभाव होने से असमान है और अनंतगुणित क्रम से स्थित है, ऐसा जानना चाहिए। इसप्रकार अध:प्रवृत्तकरण परिणाम का स्वरूप कहा ।।४९।।

विशेषार्थ:- अध:प्रवृत्तकरण का काल अन्तर्मुहूर्त है। उसका अंक संदृष्टि की अपेक्षा प्रमाण १६ लिया है। इनमें से प्रारम्भ के १५ समयों में ऊर्ध्वगत श्रेणी की प्रथम पंक्ति में क्रम से ३९,४०,४१,४२,४३,४४,४५,४६,४७,४८,४९,५०,५१,५२,५३ परिणाम हैं तथा १६ वें समय की तिर्यक् पंक्ति में ५४,५५,५६ और ५७ परिणाम हैं। इन सब परिणामों का योग ९१२ होता है जो परस्पर में विसदृश है अर्थात् अंकसंदृष्टि की अपेक्षा अध:प्रवृत्तकरण के काल का प्रमाण १६ कल्पित करके उनमें जो ३०७२ परिणाम बतलाये गये हैं, उनमें से उक्त ९१२ परिणाम अपुनरुक्त होने से परस्पर में विसदृश हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। इन परिणामों की अंकुशाकार रचना का निर्देश गा. ४७ में पहले ही कर आए हैं। इस प्रकार अध:प्रवृत्तकरण के परिणामों के स्वरूप का निरूपण किया।

अथापूर्वकरणलक्षणमाह-

पढमं व विदियकरणं पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो[1] ।।५०।।

१) जयध. पु. १२. पृ. २५२.

प्रथमं व द्वितीयकरणं प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तान्तर्हि प्रतिभागः।।५०।।

यथाधःप्रवृत्तकरणपरिणामाः व्याख्यातास्तथापूर्वकरणपरिणामा व्याख्यातव्याः। अयं तु विशेषः–अधःप्रवृत्तकरणपरिणामेभ्यः असंख्येयलोकमात्रेभ्यः अपूर्वकरणपरिणामा असंख्येय–लोकगुणिता भवन्ति । ते च प्रतिसमयं विशेषाधिका गच्छन्ति यावदपूर्वकरणचरमसमयपरिणामान् प्राप्नुवन्ति। विशेष आनेतव्ये आदिधनस्यान्तर्मुहूर्तमात्रः प्रतिभागहारः स्यात् ।।५०।।

अब अपूर्वकरण का लक्षण कहते हैं–

अन्वयार्थ :– (पढमं व) प्रथम अधःप्रवृत्तकरण के समान ही **(विदियकरणं)** दूसरा अपूर्वकरण है। यहाँ भी **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(अहियकमा)** क्रम से अधिक **(असंखलोग परिणामा)** असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं **(हु विसेसे)** चय का प्रमाण लाने के लिए **(मुहुत्तअंतो हु)** अंतर्मुहूर्त **(पडिभागो)** प्रतिभागहार है।

टीकार्थः– जिसप्रकार अधःप्रवृत्तकरण परिणामों का व्याख्यान किया गया, उसी प्रकार अपूर्वकरण परिणामों का व्याख्यान करना चाहिए परन्तु यह विशेषता है कि असंख्यात लोकमात्र अधःप्रवृत्तकरण परिणामों की अपेक्षा अपूर्वकरण परिणाम असंख्यात लोकगुणित हैं। वे परिणाम अपूर्वकरण के अंतिम समय के परिणाम प्राप्त होने तक प्रत्येक समय में एक–एक विशेष (चय) अधिक होते जाते हैं। अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय से अंतिम समय पर्यन्त प्रत्येक समय में परिणाम एक–एक चय से अधिक हैं। चय लाने के लिए आदिधन का अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रतिभागहार है।।५०।।

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं।
तम्हा विदियं करणं अपुव्वकरणो त्ति णिद्दिट्ठं ।।५१।।

यस्मादुपरिमभावानामधस्तनभावैः नास्ति सदृशत्वम्।
तस्मात् द्वितीयं करणमपूर्वकरण इति निर्दिष्टम् ।।५१।।

यस्मात्कारणादुपरितनसमयवर्तिपरिणामानामधस्तनसमयवर्तिपरिणामैः सदृशत्वं नास्ति तस्मात्कारणात् द्वितीयकरणपरिणामः अपूर्वकरण इति निर्दिष्टः। प्रथमसमयसर्वोत्कृष्ट–विशुद्धेर्द्वितीयसमयजघन्यविशुद्धिरनन्तगुणा भवतीति पूर्वोत्तरसमयपरिणामयोः सादृश्यं दूरोत्सारितमेव। अधःप्रवृत्तकरणचरमसमये अप्राप्ता एव परिणामा अपूर्वकरणप्रथमसमये जायन्ते । तत्राप्राप्ता एव परिणामास्तद्द्वितीयसमये जायन्ते। एवमातच्चरमसमयमपूर्वा एव परिणामा जायन्ते । इत्यन्वर्था अपूर्वकरणसंज्ञा ।।५१।।

अन्वयार्थः–(जम्हा) जिस कारण **(उवरिमभावा)** ऊपर समयवर्ती परिणामों की **(हेट्टिमभावेहिं)** नीचे के समयवर्ती परिणामों से **(सरिसत्तं)** समानता **(णत्थि)** नहीं है **(तम्हा)** उस कारण से **(विदियं करणं)** दूसरे करण को **(अपुव्वकरणो त्ति)** अपूर्वकरण ऐसा **(णिद्दिट्ठं)** कहा गया है। ।।५१।।

टीकार्थः– जिस कारण से ऊपर समयवर्ती परिणामों की नीचे समयवर्ती परिणामों के साथ समानता नहीं है उस कारण से दूसरे करण परिणाम को अपूर्वकरण ऐसा कहते हैं। प्रथम समय की सबसे उत्कृष्ट विशुद्धि की अपेक्षा दूसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुना है। इसप्रकार पूर्व और उत्तर समयों के परिणामों की सदृशता को दूर ही किया। अधःप्रवृत्तकरण के अंतिम समय में प्राप्त न होने वाले परिणाम अपूर्वकरण के प्रथम समय में उत्पन्न होते हैं। वहाँ प्राप्त न होने वाले परिणाम उसके दूसरे समय में उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार अपूर्वकरण के अंतिम समय पर्यन्त अपूर्व ही परिणाम होते हैं। इसलिए अपूर्वकरण यह संज्ञा सार्थक है।

विशेषार्थः– जिसमें प्रतिसमय अपूर्व–अपूर्व परिणाम होते हैं उसे अपूर्वकरण कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है जो अधःप्रवृत्तकरण काल के संख्यातवें भागप्रमाण है। इस काल में कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होकर भी प्रत्येक समय के परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। वे सब परिणाम प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर सदृश वृद्धि को लिए हुए हैं। प्रथम समय के परिणामों में अन्तर्मुहूर्त का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना प्रथम समय से लेकर उत्तरोत्तर वृद्धि या चय का प्रमाण है। प्रत्येक समय में प्राप्त होने वाले ये सब परिणाम अपूर्व–अपूर्व होते हैं, इसलिए यहाँ भिन्न समयवाले जीवों के परिणामों की तद्भिन्न समयवाले जीवों के परिणामों के साथ अनुकृष्टि नहीं बनती किन्तु एक समयवाले जीवों के परिणामों से सदृशता–विसदृशता बन जाती है। यही कारण है कि इस करण में एक समयवाली ही निर्वर्गणा स्वीकार की गई है। अब अपूर्वकरण के उक्त स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए यहाँ कल्पित अंकसंदृष्टि देते हैं –

कुल परिणामों की संख्या ४०९६, अन्तर्मुहूर्त का प्रमाण ८ समय, चय का प्रमाण १६, नियम यह है कि एक कम पद के आधे को पद और चय से गुणित करने पर उत्तरधन प्राप्त होता है। पद, गच्छ, अध्वान ये एकार्थवाचक हैं।

$$\frac{\text{पद} - १}{२} \times \text{चय} \times \text{गच्छ} = \text{उत्तरधन} \qquad \frac{८-१}{२} \times १६ \times ८ = ४४८$$

इसको सर्वधन ४०९६ में से कम करनेपर ४०९६ – ४४८ = ३६४८ शेष रहते हैं। इसमें पद ८ का भाग देनेपर ३६४८ह्न८ = ४५६ लब्ध आता है। यह अपूर्वकरण के प्रथम समय के कुल परिणामों का योग है। इसमें उत्तरोत्तर एक–एक चय १६ जोड़ने पर द्वितीयादि समयों में प्राप्त होने वाले परिणामों की संख्या क्रम से ४७२, ४८८, ५०४, ५२०, ५३६, ५५२ और ५६८ होती है।

अपूर्वकरणकाल के परिणामों की संदृष्टि–

समय	परिणाम	योग
८	३५२९ से ४०९६ तक	५६८
७	२९७७ से ३५२८ तक	५५२
६	२४४१ से २९७६ तक	५३६
५	१९२१ से २४४० तक	५२०
४	१४१७ से १९२० तक	५०४
३	९२९ से १४१६ तक	४८८
२	४५७ से ९२८ तक	४७२
१	१ से ४५६ तक	४५६

विदियकरणादिसमयादंतिमसमओत्ति अवरवरसुद्धी।
अहिगदिणा खलु सव्वे होंति अणंतेण गुणियकमा।।५२।।
द्वितीयकरणादिसमयादन्तिमसमय इत्यवरवरशुद्धिः ।
अहिगतिना खलु सर्वे भवन्त्यनन्तेन गुणितक्रमाः।।५२।।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य आ अन्तिमसमयं जघन्योत्कृष्टविशुद्धिपरिणामाः अनन्तगुणाः। तद्यथा–तत्प्रथमसमये जघन्यविशुद्धिपरिणामादुत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽनन्तगुणः। तस्मा–दुपरितनसमयजघन्यविशुद्धिपरिणामोऽनन्तगुणः। तस्मात्तत्समयोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽनन्तगुणः। एवं सर्वेऽपि जघन्योत्कृष्टविशुद्धिपरिणामा अनन्तगुणितक्रमा अहिगत्या गच्छन्ति यावच्चरमसमय–जघन्योत्कृष्टपरिणामौ। अत्रानुकृष्टिखण्डविकल्पो नास्ति, अधस्तनसमयसर्वोत्कृष्टपरिणामा–दुपरितनजघन्यपरिणामस्यानन्तगुणत्वसम्भवात् ।।५२।।

अन्वयार्थ:– **(विदियकरणादिसमयाद्)** दूसरे करण के अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय से **(अंतिमसमओत्ति)** अंतिम समय पर्यन्त **(अवरवर सुद्धी)** जघन्य व उत्कृष्ट विशुद्धि **(खलु)** निश्चय से **(अहिगदिणा)** सर्प की चाल से **(सव्वे)** सब **(अणंतेण गुणियकमा)** अनन्तगुणित क्रम से **(होतिं)** होती हैं।

टीकार्थ:– अपूर्वकरण के प्रथम समय से अंतिम समय पर्यन्त जघन्य व उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। उसका खुलासा– अपूर्वकरण के प्रथम समय के जघन्य परिणाम की विशुद्धि की अपेक्षा उत्कृष्ट परिणाम की विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे ऊपर के समय का जघन्य विशुद्धि परिणाम अनन्तगुणा है। उससे उस ही समय का उत्कृष्ट विशुद्धि परिणाम अनन्तगुणा है। इसप्रकार

सर्व जघन्य, उत्कृष्ट विशुद्धि परिणाम अनंतगुणित क्रम से सर्प की चाल से तब तक जाते हैं कि जब तक अंतिम समय के जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम प्राप्त नहीं होते। यहाँ अनुकृष्टि खंडों के भेद नहीं है क्योंकि निचले समय के सबसे उत्कृष्ट परिणाम से ऊपर के समय के जघन्य परिणाम की विशुद्धि भी अनंतगुणी है।

विशेषार्थ:– प्रथम समय की जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है। उसी समय में प्राप्त होने वाली उत्कृष्ट विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानों को उल्लंघन कर प्राप्त होती है, इसलिए प्रथम समय की जघन्य विशुद्धि से यह उसी समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे दूसरे समय में प्राप्त होने वाली जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है जो मात्र अनन्तगुणवृद्धिरूप न होकर असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानपतित विशुद्धि की वृद्धि होने पर प्राप्त होती है। उससे उसी दूसरे समय में प्राप्त होने वाली उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि यह असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानरूप विशुद्धि को उल्लंघन कर अवस्थित है। इसीप्रकार अंतिमसमय तक प्रत्येक समय में प्राप्त होने वाली जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धि का यही क्रम जानना चाहिए। इस गुणस्थान में जघन्य से उत्कृष्ट, उत्कृष्ट से जघन्य, पुन: जघन्य से उत्कृष्ट इत्यादि क्रम से विशुद्धि को सर्प की चाल के समान बतलाने का यही कारण है।

जघन्य परिणाम	१	४५७	९२९	१४१७	१९२१	२४४१	२९७७	३५२९
अहिगति								
उत्कृष्ट परिणाम	४५६	९२८	१४१६	१९२०	२४४०	२९७६	३५२८	४०९६
समय –	**१**	**२**	**३**	**४**	**५**	**६**	**७**	**८**

अथापूर्वकरणपरिणामस्य कार्यविशेषज्ञापनार्थमाह–

गुणसेढीगुणसंकमठिदिरसखंडा अपुव्वकरणादो[1] ।
गुणसंकमेण सम्मामिस्साणं पूरणो त्ति हवे ।।५३।।

गुणश्रेणीगुणसंक्रमस्थितिरसखण्डा अपूर्वकरणात् ।
गुणसंक्रमेण सम्यक्मिश्राणां पूरण इति भवेत् ।।५३।।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य गुणसंक्रमेण सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्यो: पूरणकालचरमसमयपर्यंतं गुणश्रेणिविधानं गुणसंक्रमविधानं स्थितिखण्डनमनुभागखण्डनं च वर्तते ।।५३।।

अब अपूर्वकरण परिणाम के कार्यविशेष बतलाने के लिए कहते हैं –

अन्वयार्थ:– (अपुव्वकरणादो) अपूर्वकरण से **(गुणसंकमेण सम्मामिस्साणं पूरणो**

१) जयधवल भा. १२. पृ. २६० प्रभृति।

त्ति) गुणसंक्रमण द्वारा सम्यक्त्व और मिश्र के पूरण काल पर्यन्त **(गुणसेढीगुणसंकमठिदिरसखंडा)** गुणश्रेणि, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडक घात **(हवे)** होते हैं।

टीकार्थ:– अपूर्वकरण के प्रथम समय से गुणसंक्रमण के द्वारा सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति के पूरणकाल के अंतिम समय पर्यन्त गुणश्रेणीविधान, गुणसंक्रमणविधान, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकांडकघात होते हैं।

विशेषार्थ:– अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर जो चार आवश्यक कार्य प्रारम्भ होते हैं वे इसप्रकार हैं–गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। इतना विशेष है कि मिथ्यात्व का अन्तरकरण करने के बाद उसकी प्रथम स्थिति आवलि और प्रत्यावलि अर्थात् दो आवलि प्रमाण शेष रहने पर उसका गुणश्रेणीरूप द्रव्य का निक्षेप नहीं होता, क्योंकि आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण प्रथम स्थिति के शेष रहने के एक समय पूर्व ही आगाल और प्रत्यागाल का होना बन्द हो जाता है। यदि कहा जाय कि प्रत्यावलि में से गुणश्रेणीनिक्षेप होने में कोई बाधा नहीं हैं सो यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि इस अवस्था में उदयावलि के भीतर गुणश्रेणि निक्षेप का होना असम्भव है। यदि कहा जाय कि प्रत्यावलि में से अपकर्षित द्रव्य का उसी में गुणश्रेणीनिक्षेप हो जाएगा सो यह कहना भी युक्त नहीं हैं, क्योंकि वह स्वयं अतिस्थापनारूप होने से उसमें अपकर्षित द्रव्य का निक्षेप होना असम्भव है। इतने वक्तव्य से यह स्पष्ट हुआ कि मिथ्यात्व के द्रव्य का गुणश्रेणीनिक्षेप उसकी प्रथम स्थिति के आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण शेष रहने के पूर्व समय तक ही होता है। अब शेष रहे तीन आवश्यक कार्य सो इनमें से मिथ्यात्व के द्रव्य के स्थितिकाण्डक–घात और अनुभागकाण्डकघात ये दो कार्य विशेष तो मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति के अंतिम समय तक होते रहते हैं। तथा मिथ्यात्व के द्रव्य का गुणसंक्रम प्रथमोपशम सम्यक्त्व के हो जाने के बाद सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के पूरण होने के अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है। यह मिथ्यात्वप्रकृति की अपेक्षा विचार है। इतनी विशेषता है कि अनुभागकाण्डकघात अप्रशस्त कर्मों का ही होता है, क्योंकि विशुद्धि के कारण प्रशस्त कर्मों की अनुभागवृद्धि को छोड़कर उनके अनुभाग का घात नहीं हो सकता है।

ठिदिबंधोसरणं पुण अधापवत्तादुपूरणो त्ति हवे ।
ठिदिबंधट्ठिदिखंडुक्कीरणकाला समा होंति ।।५४।।

स्थितिबन्धापसरणं पुनरध:प्रवृत्तादापूरण इति भवेत् ।
स्थितिबन्धस्थितिखण्डोत्कीरणकाला: समा भवन्ति ।।५४।।

स्थितिबन्धापसरणं पुनरध:प्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य आगुणसंक्रमणपूरणचरमसमयं प्रवर्तते। यद्यपि प्रायोग्यतालब्धिकाले स्थितिबन्धापसरणप्रारम्भ: कथितस्तथापि तत्र तस्यानवस्थितत्वेन अविवक्षितत्वात् करणपरिणामकार्यस्यावश्यम्भावेन अवस्थितत्वादध:–

प्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य स्थितिबन्धापसरणं विवक्षितं स्थितिबन्धापसरणस्थितिकाण्डको–त्कीरणकालौ द्वावप्यन्तर्मुहूर्तमात्रौ समानावेव ।।५४।।

अब स्थितिबंधापसरण आदि के काल का विचार करते हैं –

अन्वयार्थ :– (ठिदिबंधोसरणं) स्थितिबंधापसरण **(अधापवत्तादापूरणो त्ति)** अध:प्रवृत्तकरण से लेकर सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति के पूरणकाल पर्यन्त **(हवे)** होता है। **(ठिदिबंधट्ठिदिखंडुक्कीरणकाला)** स्थितिबंधापसरण काल और स्थितिकांड्कोत्कीरण काल **(समा होंति)** समान होते हैं।

टीकार्थ:– स्थितिबंधापसरण पुन: अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से प्रारम्भ होकर गुणसंक्रमण द्वारा पूरणकाल के अंतिम समय पर्यंत प्रवृत्त होता है। यद्यपि प्रायोग्यता लब्धि के काल में स्थितिबंधापसरण का प्रारंभ कहा गया है तथापि वह अवस्थित न होने से विवक्षित नहीं है, करणपरिणाम का कार्य अवश्यरूप से अवस्थित होने से अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से ही स्थितिबंधापसरण विवक्षित है। स्थितिबंधापसरण काल और स्थितिकांडकोत्कीरण काल ये दोनों काल समान अंतर्मुहूर्त मात्र हैं।

विशेषार्थ:– करण परिणामों के कारण उत्तरोत्तर विशुद्धि में वृद्धि होने से अपूर्वकरण से लेकर जिस प्रकार एक–एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर एक–एक स्थितिकाण्डक का उत्कीरण नियम से होने लगता है उसी प्रकार उत्तरोत्तर स्थितिबंध में भी अपसरण होने लगता है। इन दोनों का काल समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसमें भी प्रथम स्थितिकाण्डकघात और प्रथम स्थितिबंधापसरण में जितना काल लगता है उससे दूसरे आदि स्थितिकाण्डकघात और स्थितिबन्धापसरणों में उत्तरोत्तर विशेषहीन काल लगता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्थितिकाण्डकघात और स्थितिबंधापसरण एक साथ प्रारम्भ होते हैं और एक साथ समाप्त होते हैं।

गुणश्रेणि का स्वरूपनिर्देश–

गुणसेढीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि ।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो[१] ।।५५।।

गुणश्रेणिदीर्घत्वमपूर्वद्विकात् तु साधिकं भवति ।
गलितावशेष उदयावलिबाह्यतस्तु निक्षेप: ।।५५।।

गुणश्रेणिदीर्घत्वमपूर्वकरणानिवृत्तकरणकालाभ्यां साधिकं भवति गुणश्रेणिकरणार्थमपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपयोग्यस्थित्यायाम इत्यर्थ: । अधिकप्रमाणं पुनरनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रं $\frac{२१}{४}$**। उदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य गलितावशेषे गुणश्रेण्यायामे अपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपो भवति ।।५५।।**

$\frac{२१}{४}$
२१
२११

---

१) जयध. पु. १२ पृ. २६४–२६५

अन्वयार्थ:– **(गुणसेढीदीहत्तं)** गुणश्रेणि का दीर्घत्व अर्थात् गुणश्रेणि का आयाम **(अपुव्वदुगादो दु)** अपूर्वद्विक अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण काल से **(साहियं)** थोड़ा अधिक **(होदि)** होता है **(गलिदवसेसे)** उस गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम में **(उदयावलिबाहिरदो दु)** उदयावलि के बाहर **(णिक्खेवो)** निक्षेप होता है अर्थात् अपकृष्ट द्रव्य देता है।

टीकार्थ:– गुणश्रेणि का दीर्घत्व (आयाम) अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण काल की अपेक्षा अधिक है।

अपूर्वकरणकाल	+	अनिवृत्तिकरणकाल	+	अधिक काल	=	गुणश्रेणी–आयाम
२११		२१		२१/४		

(अर्थसंदृष्टि में अधिक को संख्या के ऊपर लिखने की पद्धति है। इसलिए संस्कृत टीका में तीन संख्या एक के ऊपर एक लिखी है।)

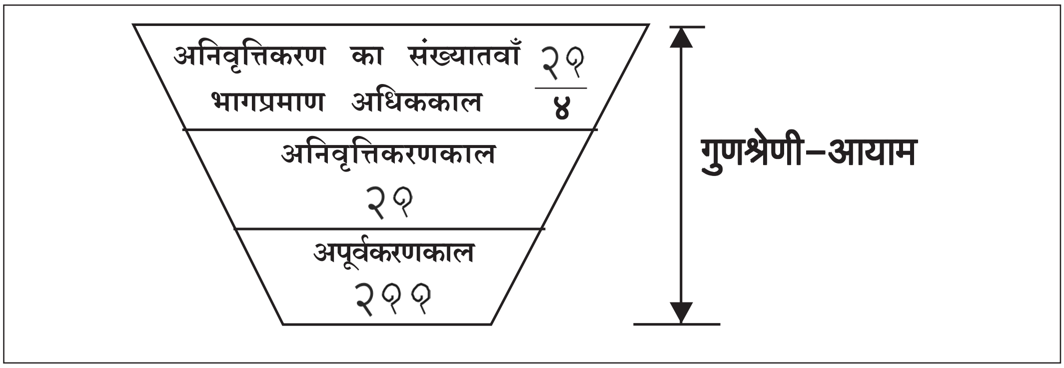

गुणश्रेणी करने के लिए अपकृष्टद्रव्य को देने योग्य स्थिति के आयाम को गुणश्रेणि–आयाम कहते है। अधिक का प्रमाण अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवाँ भागमात्र २१/४ है। उदयावलि के बाहर प्रथम समय से गलितावशेष गुणश्रेणिआयाम में अपकर्षण किए हुए द्रव्य का निक्षेपण होता है ।

विशेषार्थ:– प्रथम समय से दूसरे समय में, दूसरे समय से तीसरे समय में इसप्रकार उत्तरोत्तर गुणश्रेणि–निक्षेप का जितना काल है उसके प्रत्येक समय में निर्जरा के लिए उत्तरोत्तर विवक्षित निषेकों में अपकर्षित द्रव्य का देना गुणश्रेणि–निक्षेप कहलाता है । यह गुणश्रेणि–निक्षेप गलितावशेष और अवस्थित के भेद से दो प्रकार का होता है। जिसमें अधस्तन एक–एक निषेक के गलित होते जाने के कारण उत्तरोत्तर गुणश्रेणि–निक्षेप में एक–एक समय कम होता जाता है, उसकी गलितावशेष गुणश्रेणि–निक्षेप संज्ञा है तथा जिसमें अधस्तन एक–एक

निषेक के गलित होने पर ऊपर एक-एक निषेक की वृद्धि होती जाती है उसकी अवस्थित गुणश्रेणीनिक्षेप संज्ञा है। प्रकृत में गलितावशेष गुणश्रेणि-निक्षेप विवक्षित है । इसका आयाम (दीर्घता) अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण काल से कुछ अधिक है। अधिक का प्रमाण अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्म का गुणश्रेणि-निक्षेप नहीं होता, शेष सब कर्मों का होता है। उसमें भी जिन प्रकृतियों का वर्तमान में उदय होता है उनका उदय-समय से लेकर निक्षेप होता है और जिन प्रकृतियों का वर्तमान में उदय नहीं होता उनका उदयावलि के उपरिम समय से निक्षेप होता है। प्रकृत में उदयवाली प्रकृतियों के गुणश्रेणिरूप से निक्षेप की विधि इसप्रकार है :-

अपूर्वकरण के प्रथम समय में डेढ़गुणहानिप्रमाण समयप्रबद्धों को अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार से भाजित कर वहाँ लब्ध एक खण्डप्रमाण द्रव्य का अपकर्षण कर उसमें असंख्यात लोक का भाग देने पर जो एकभाग द्रव्य प्राप्त हो उसे उदयावलि के भीतर गोपुच्छाकाररूप से निक्षिप्त कर पुन: शेष बहुभागप्रमाण द्रव्य को उदयावलि के बाहर निक्षिप्त करता हुआ उदयावलि के बाहर अनन्तर स्थिति में असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य को निक्षिप्त करता है। उससे उपरिम स्थिति में असंख्यात गुणे द्रव्य को निक्षिप्त करता है। इसप्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल से विशेष अधिक गुणश्रेणिशीर्ष के प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूप से निक्षिप्त करता है। पुन: गुणश्रेणिशीर्ष से उपरिम अनन्तर स्थिति में असंख्यातगुणा हीन द्रव्य निक्षिप्त करता है। उसके बाद अतिस्थापनावलि के पूर्व की अन्तिम स्थिति तक उत्तरोत्तर क्रम से विशेषहीन-विशेषहीन द्रव्य का निक्षेप करता है। यह उदयवाली प्रकृतियों की गुणश्रेणि की अपेक्षा निषेक रचना है तथा जिन प्रकृतियों का प्रकृत में उदय न हो उनमें उदयावलि को छोड़कर पूर्ववत् गुणश्रेणि-निक्षेप-विधि जाननी चाहिए। यहाँ अपूर्वकरण के प्रथम समय में जैसे गुणश्रेणि-निक्षेप की विधि का निर्देश किया उसीप्रकार आगे भी द्वितीयादि समयों में इस विधि को घटित कर लेना चाहिए।

शंका:- आयुकर्म का गुणश्रेणि निक्षेप क्यों नही होता है?

समाधान:- आयुकर्म का गुणश्रेणिनिक्षेप स्वभाव से ही नहीं होता है, क्योंकि इसमें गुणश्रेणि निक्षेप की प्रवृत्ति असंभव है।

अब यहाँ प्रसंगानुसार निक्षेपण व अतिस्थापना का स्वरूप कहते हैं- **निक्षेपण-** अपकर्षण अथवा उत्कर्षण किए हुए द्रव्य को जिन निषेकों में दिया जाता है उन निषेकों को निक्षेपणरूप जानना चाहिए। **अतिस्थापना -** जिन निषेकों में उत्कर्षित अथवा अपकर्षित द्रव्य नहीं दिया जाता है, उनको अतिस्थापनारूप जानना चाहिए। **अपकर्षण -** स्थिति कम करके ऊपर के निषेकों का द्रव्य नीचे के निषेकों में देना अपकर्षण कहलाता है। **उत्कर्षण-** स्थिति बढ़ाने के लिए नीचे के निषेकों का द्रव्य ऊपर के निषेकों मे देना उत्कर्षण कहलाता है।

अथ निक्षेपातिस्थापनयो: स्वरूपभेदप्रमाणविषयान् कथयति –

णिक्खेवमदित्थावणमवरं समऊणआवलितिभागं ।
तेणूणावलिमेत्तं विदियावलियादिमणिसेगे[1] ।।५६।।

निक्षेपमतिस्थापनमवरं समयोनमावलित्रिभागम् ।
तेन न्यूनावलिमात्रं द्वितीयावलिकादिमनिषेके ।।५६।।

अव्याघातविषये अपकर्षणे द्वितीयावलि-प्रथमनिषिके अपकृष्याधो निक्षिप्यमाणे समयो-नावलित्रिभागसमयाधिको जघन्यनिक्षेपो भवति। तेन न्यूनावलिमात्रं जघन्यातिस्थापनं भवति। अपकृष्ट-द्रव्यस्य निक्षेपस्थानं निक्षेप:, निक्षिप्यतेऽस्मिन्निति निर्वचनात्। तेनातिक्रम्यमाणं स्थानमतिस्थापनं,अति-स्थाप्यते अतिक्रम्यतेऽस्मिन्निति अतिस्थापनम् ।।५६।।

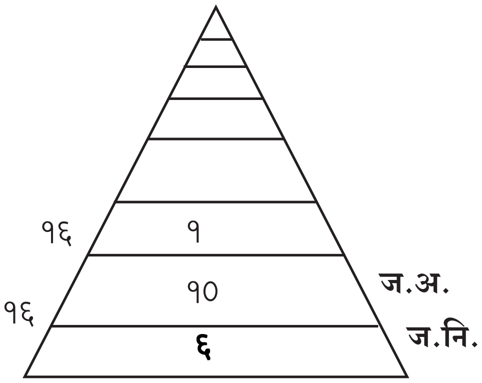

अब निक्षेप और अतिस्थापना का स्वरूप, भेद और प्रमाणादिक का कथन करते हैं–

अन्वयार्थ:– (विदियावलियादिमणिसेगे) द्वितीयावलि के प्रथम निषेक का द्रव्य अपकर्षण करके उदयावलि में देता है उसमें **(समऊणआवलितिभागं)** एक समय कम आवलि का त्रिभाग मात्र **(अवरं णिक्खेवं)** जघन्य निक्षेप है और **(तेणूणावलिमेत्तं)** उस निक्षेप से कम आवलिमात्र **(अवरं अदित्थावणं)** जघन्य अतिस्थापना है।

टीकार्थ:– अव्याघात विषयक अपकर्षण में द्वितीयावलि के प्रथम निषेक का द्रव्य अपकर्षण करके नीचे निक्षेपण करते समय एक समय कम आवलि का त्रिभाग एक समय अधिक जघन्य निक्षेप होता है। उससे कम आवलिमात्र जघन्य अतिस्थापना है। अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपस्थान निक्षेप होता है, क्योंकि इसमें निक्षेपण किया जाता है सो निक्षेप इस प्रकार निरुक्ति है। उससे अतिक्रमित स्थान अर्थात् जहाँ निक्षेपण नहीं किया जाता है उसे अतिस्थापना कहते हैं।

विशेषार्थ:– स्थितिकांडकघात में अंतिम फालि के पतन को छोड़कर जो अपकर्षण होता है उसे अव्याघात विषयक अपकर्षण कहते हैं। अंकसंदृष्टि से टीका का खुलासा – आवलि का प्रमाण १६ माना। इसलिए प्रथमादि १६ निषेक उदयावलि के और उसके ऊपर

१) जयध. पु. ८. पृ. २४४

१६ निषेक द्वितीयावलि के हैं। १७ वें निषेक के द्रव्य का अपकर्षण किया तो १६ में से १ कम करने पर १५ आया, उसका त्रिभाग ५ है। उसमें कम किया हुआ एक मिलाने पर ६ होता है। इसलिए प्रथमादि ६ निषेकों में द्रव्य दिया यही जघन्य निक्षेप होता है। उसके ऊपर १० निषेकों में द्रव्य नहीं दिया वह जघन्य अतिस्थापना है।

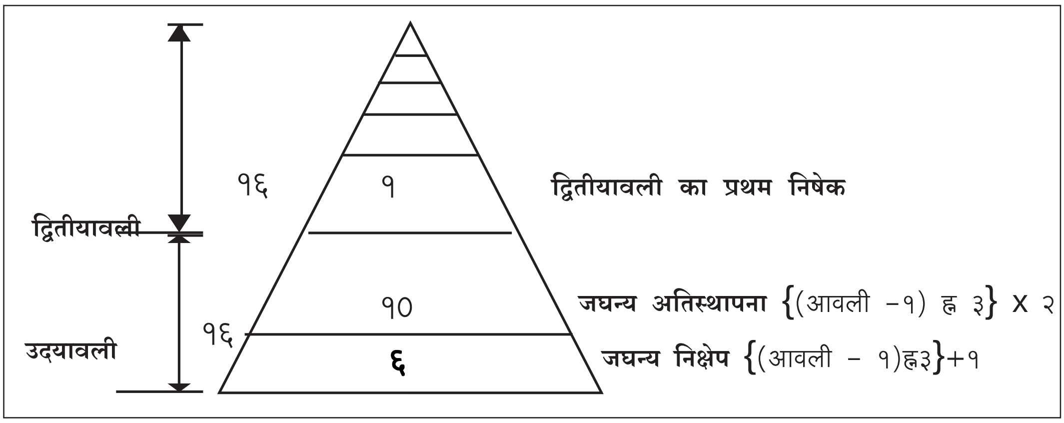

शंका :– आवलि की परिगणना कृतयुग्म संख्या में की गयी है, फिर उसका तृतीय भाग कैसे ग्रहण किया ?

समाधान :– आवलि का प्रमाण जघन्य युक्तासंख्यात है, इसलिए आवलि की परिगणना कृतयुग्मसंख्या में की गई है। जो संख्या ४ से पूर्णरूप से विभाजित होती है, उसे कृतयुग्म संख्या कहते हैं। उसका पूर्ण तीसरा भाग नहीं हो सकता है। इसलिए आवलि में एक कम करके उसका तृतीय भाग ग्रहण किया। यहाँ आवलि में से जो एक कम किया गया उसे तृतीय भाग में मिलाने पर जघन्य–निक्षेप होता है और आवलि का दो तिहाई भागप्रमाण जघन्य अतिस्थापना होती है जो जघन्य–निक्षेप के दुगुणे से दो समय कम है।[2]

जैसे– जघन्य निक्षेप ६ है। (६x२)–२=१२–२=१० जघन्य अतिस्थापना

एत्तो समऊणावलितिभागमेत्तोत्ति तं खु णिक्खेवो[3]।
उवरिं आवलिवज्जिय सगट्ठिदी होदि णिक्खेवो ।।५७।।

अत: समयोनावलित्रिभागमात्रपर्यन्तं तत्खलु निक्षेप: ।
उपर्यावलिवर्जिता स्वकस्थितिर्भवति निक्षेप: ।।५७।।

इत: परं द्वितीयावलिद्वितीयनिषेके अपकृष्टे निक्षेप: स एव समयोनावलित्रिभाग: समयाधिक:, अतिस्थापनं तु समयाधिकं भवति । तथा द्वितीयावलितृतीयनिषेकेऽप्यपकृष्टे स

१) ध. पु. १२, पृ. १३४, ध. पु. १४ पृ. १४७ २) जयध. पु. ८ पृ. २५१ ३) जयध. पु. ८ पृ. २४४.

एव समयोनावलित्रिभागः समयाधिको निक्षेपो भवति। अतिस्थापनं तु द्विसमयाधिकं भवति। एवं समयोत्तरक्रमेण समयोनावलित्रिभागमात्रस्य समयाधिकस्योपरितननिषेकेप्यपकृष्टे स एव समयोनावलित्रिभागः समयाधिको निक्षेपो भवति। अतिस्थापनं तु वर्द्धमानावलिमात्रं भवति। तदुत्कृष्टातिस्थापनम्। तदुपरि निक्षेपो वर्धते। अतिस्थापनं तु आवलिमात्रमवस्थितमेव। एवमुत्तरोत्तरनिषेकेष्वपकृष्टेषु निक्षेपो वर्द्धमानः चरमनिषेके अपकृष्टे अधःआवलिमात्रमतिस्थापनं, तदूना कर्मस्थितिर्निक्षेपो भवति ।।५७।।

अन्वयार्थः– **(एत्तो)** इसके ऊपर **(समऊणावलितिभागमेत्तोत्ति)** एक समय कम आवलि के त्रिभाग मात्रतक (निषेकों का द्रव्य अपकर्षण करने में) **(तं खु)** पूर्व में कहा गया एक समय कम आवलि का त्रिभागमात्र **(णिक्खेवो)** निक्षेप है। **(उवरिं)** उसके ऊपर अर्थात् ऊपर के निषेकों का अपकर्षण करने में **(आवलिवज्जिय सगट्ठिदि)** आवलि से रहित अपनी स्थिति (उस निषेक की स्थिति) **(णिक्खेवो)** निक्षेप **(होदि)** होता है।

टीकार्थः– इसके बाद द्वितीय आवलि के द्वितीय निषेक का अपकर्षण करने पर निक्षेप वही है अर्थात् एक समय कम आवलि का त्रिभाग अधिक एक समय है और अतिस्थापना पूर्व से एक समय अधिक होती है। उसी द्वितीय आवलि के तीसरे निषेक का अपकर्षण करने पर वही एक समय कम आवलि का त्रिभाग अधिक एक समय निक्षेप होता है; परन्तु अतिस्थापना दो समय अधिक होती है। इसप्रकार एक-एक समय अधिक क्रम से एक समय कम आवलि का त्रिभाग अधिक एक समय पर्यंत ऊपर के निषेकों का अपकर्षण करने पर एक समय कम आवलि के त्रिभाग में एक समय अधिक निक्षेप है; परन्तु अतिस्थापना एक-एक समय बढ़ती हुई आवलिमात्र होने पर उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है। उसके पश्चात् निक्षेप बढ़ता है और अतिस्थापना आवलिमात्र अवस्थित रहती है। इसप्रकार उत्तरोत्तर निषेकों का अपकर्षण होने पर निक्षेप बढ़ता है। अंतिम निषेक का अपकर्षण होने पर (उस निषेक के) नीचे केवल आवलिमात्र अतिस्थापना होती है और आवलि से न्यून कर्म की स्थिति निक्षेप होता है ।।५७।।

विशेषार्थः– माना उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण १000 समय है। आवलि का प्रमाण १६ समय है। १६ समय प्रमाण उदयावलि के अनन्तर १७ वें निषेक का अपकर्षण करके उदयावलि में देता है। वहाँ एक समय कम अर्थात् १६-१=१५, इसका दो तिहाई =(१५÷३)X२=१० अर्थात् सातवें निषेक से लेकर १६ वें निषेक तक अतिस्थापना और एक समय अधिक त्रिभाग अर्थात् (१५÷३)+१=६ समय-निक्षेप है। अर्थात् प्रथम निषेक से लेकर छठे निषेक तक जघन्य निक्षेप है।

अठारहवें समय सम्बन्धी निषेक के द्रव्य का अपकर्षण होने पर पूर्व के समान प्रथम छह निषेक तो निक्षेपरूप हैं और सातवें निषेक से लेकर सत्रहवें निषेक तक ग्यारह निषेक अतिस्थापनारूप हैं। इस प्रकार उन्नीसवें निषेक का अपकर्षण होने पर १२ निषेक, बीसवें निषेक का अपकर्षण होने पर १३ निषेक, इक्कीसवें का अपकर्षण करने पर १४ निषेक, बावीसवें का अपकर्षण होने पर १५ निषेक और तेवीसवें का अपकर्षण होनेपर १६ निषेक की अतिस्थापना होती है परन्तु निक्षेप प्रथम

छह समयप्रमाण ही हैं। चौवीसवें निषेक के द्रव्य का अपकर्षण होने पर अतिस्थापना तो १६ समय है, परन्तु निक्षेप एक समय बढ़ा हुआ है। अर्थात् चौवीसवें निषेक का अपकर्षित द्रव्य प्रथम सात निषेकों में सिंचित (दिया) किया गया है। इसके बाद अतिस्थापना का प्रमाण तो अवस्थित एक आवलिप्रमाण है अर्थात् अंकसंदृष्टि से माने गए सोलह समय ही रहता है, परन्तु निक्षेप एक-एक समय बढ़ता जाता है।

आशय यह है कि जब तक एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना नहीं होती है तब तक तो उत्तरोत्तर अतिस्थापना में ही एक-एक निषेक की वृद्धि होती जाती है, निक्षेप का प्रमाण पूर्वोक्त ही रहता है, किन्तु आगे जहाँ-जहाँ अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण सम्भव हो वहाँ-वहाँ अतिस्थापना तो एक आवलीप्रमाण ही रहती है, मात्र निक्षेप जिस स्थिति के निषेक का अपकर्षण हुआ उसे तथा उसके नीचे अतिस्थापनावलि को छोड़कर शेष स्थितिप्रमाण होता है । इतना विशेष है कि यदि उदय प्रकृति का अपकर्षण विवक्षित है तो उसके अपकर्षित द्रव्य का निक्षेप उदयसमय से लेकर होगा और यदि अनुदय प्रकृति का अपकर्षण विवक्षित है तो उसके अपकर्षित द्रव्य का निक्षेप उदयावलि के ऊपर के निषेकों में ही होगा । इतना विशेष और है कि स्थितिकाण्डकघात के समय अंतिम फालि का अपकर्षण होते समय यह नियम लागू नहीं होगा । यह उदयमान प्रकृति का अपकर्षण सम्बन्धी कथन अव्याघातविषयक है।

उक्कस्सट्ठिदिबंधो समयजुदावलिदुगेण परिहीणो ।
ओक्कड्डिदम्मि चरिमे ठिदिम्मि उक्कस्सणिक्खेवो[1] ।।५८ ।।

उत्कृष्टस्थितिबन्धः समययुतावलिद्विकेन परिहीनः ।
अपकर्षितायां चरमायां स्थितौ उत्कृष्टनिक्षेपः ।।५८ ।।

चरमनिषेके अपकृष्याधो निक्षिप्यमाने समययुतावलिद्विकेन परिहीन उत्कृष्टकर्मस्थितिबंधः सर्वोप्युत्कृष्टनिक्षेपो भवति क – ४ । २ (१ ____) **बन्धसमयादारभ्यावलिपर्यन्तमपकर्षणरूपो-दीरणानुपपत्तेराबाधाकाले अचलावलिरेका त्याज्या । अग्रे चरमनिषेकस्याधोऽतिस्थापनावलिरेका त्याज्या, चरमनिषेक एकस्त्याज्य इति समयाधिकावलिद्वयमुत्कृष्टस्थितिबन्धे अपनेतव्यम्। एवं गाथासूत्रत्रयेणाव्याघातविषयापकर्षणे जघन्यातिस्थापनं, जघन्यनिक्षेपः, उत्कृष्टातिस्थापन-मुत्कृष्टनिक्षेपश्च व्याख्याताः ।।५८ ।।**

अन्वयार्थः- (चरिमे ठिदिम्मि) अंतिम स्थिति के (निषेक के) **(ओक्कड्डिदम्मि)** अपकर्षण होने पर **(समयजुदावलिदुगेण परिहीणो)** एक समय अधिक दो आवलि से हीन **(उक्कस्सठिदिबंधो)** उत्कृष्ट स्थितिबन्ध **(उक्कस्सणिक्खेवो)** उत्कृष्ट निक्षेप जानना चाहिए।

---

१) जयध. पु. ८, पृ. २५२

टीकार्थ:– अन्तिम निषेक का अपकर्षण करके नीचे निक्षेपण करने पर एक समय अधिक दो आवलि से रहित कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध सर्व उत्कृष्ट निक्षेप होता है।

उत्कृष्ट स्थिति – (दो आवलि + १) = उत्कृष्ट निक्षेप। संदृष्टि क – ४। २ (ऊपर: १ ——)

(क = कर्म की उत्कृष्ट स्थिति, ४ = आवली, १ एक अधिक) बंधसमय से लेकर एक आवली पूर्ण होने तक अपकर्षणरूप उदीरणा नहीं होती, इसलिए आबाधाकाल में एक अचलावलि छोड़नी चाहिए। ऊपर चरम निषेक के नीचे एक अतिस्थापनावली छोड़नी चाहिए और चरम निषेक एक छोड़े। इसप्रकार उत्कृष्ट स्थितिबंध में एक समय अधिक दो आवलि कम करना चाहिए।

इसप्रकार तीन गाथा सूत्रों के द्वारा अव्याघातविषयक अपकर्षण में जघन्य अतिस्थापना, जघन्य निक्षेप, उत्कृष्ट अतिस्थापना और उत्कृष्ट निक्षेप का व्याख्यान किया।।५८।।

विशेषार्थ:– माना किसी एक जीव ने मिथ्यात्व का सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबंध किया । बंध को प्राप्त नवीन द्रव्य की एक आवली काल पर्यन्त उदीरणा नहीं होती। उसके अनन्तर समय में अंतिम निषेक–द्रव्य की अपकर्षणपूर्वक उदीरणा होने पर अंतिम निषेक के नीचे एक आवलिप्रमाण निषेकों को अतिस्थापित करके उसके नीचे उदयसमय पर्यन्त एक समय अधिक दो आवलि से कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण निषेकों में उसका निक्षेपण होता है। उस समय उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होता है ।इसीप्रकार अपनी–अपनी उत्कृष्ट स्थिति अनुसार सर्वत्र यथासंभव उत्कृष्ट निक्षेप घटित करना चाहिए।

उत्कृष्ट स्थितिबंध का प्रमाण हजार समय (१000) माना। बंध होनेपर एक आवलिकाल तक नया समयप्रबद्ध तदवस्थ रहता है। इसलिए एक आवलि कम हुई। अंतिम अग्रस्थिति के द्रव्य का अपकर्षण हुआ। इसका उसी अग्रस्थिति में निक्षेपण होना संभव नहीं है इसलिए एक निषेक कम हुआ। अग्रस्थिति के नीचे एक आवलिप्रमाण निषेक अतिस्थापनारूप हैं अत: इसमें भी अपकर्षित द्रव्य का निक्षेपण नहीं हो सकता इसलिए वह एक आवली कम हुई।

इसप्रकार १000 समय की स्थिति में (अचलावलि १६+अतिस्थापनावलि १६+ अग्रस्थिति १= ३३) ३३ समयों के निषेक कम करने पर ९६७ निषेक प्राप्त होते हैं। यह उत्कृष्ट निक्षेप का कल्पितप्रमाण प्राप्त होता है। गाथा ५६ से ५८ तक के विषय को स्पष्ट करने के लिए जघन्य और उत्कृष्ट अतिस्थापना व निक्षेप का कोष्टक आगे के पृष्ठ पर दिया गया है।

अव्याघात अवस्था में उदयमान प्रकृतियों के अपकर्षण में अतिस्थापना व निक्षेप का प्रमाण–

१००० समयों की स्थिति – १६ समयों की बंधावली = ९८४ समयों की निषेक रचना

१००० समययुक्त स्थिति का कर्म	अपकर्षित निषेकों की संख्या	अतिस्थापना	निक्षेप
0	९८४ वाँ निषेक	९६८ नि. से ९८३ वें निषेक तक (१६ समयों की)	प्रथम निषेक से ९६७ वें निषेक तक .
अतिस्थापना	९८३ वाँ निषेक		. . . . . .
	९६८ वाँ निषेक		
	९६७ वाँ निषेक	९५१ नि. से ९६६ नि. तक	१ नि. से ९५० नि. तक
	९६६ वाँ निषेक	९५० नि. से ९६५ नि. तक	१ नि. से ९४९ नि. तक
	९६५ वाँ निषेक	९४९ नि. से ९६४ नि. तक	१ नि. से ९४८ नि. तक
	९६४ वाँ निषेक	९४८ नि. से ९६३ नि. तक	१ नि. से ९४७ नि. तक
	९६३ वाँ निषेक	९४७ नि. से ९६२ नि. तक	१ नि. से ९४६ नि. तक
उत्कृष्ट निक्षेप		इसप्रकार यहाँ से आगे अतिस्थापना आवलिप्रमाण (१६ समय) अवस्थित रहती है।	. . . . . . यहाँ से आगे निक्षेप एक-एक समय से बढ़ता है।
	२४ वाँ निषेक	८ से २३ वें नि. तक १६ स.	१ नि. से ७ वें नि. तक
	२३ वाँ निषेक	७ से २२ वें नि. तक १६ स.	१ नि. से ६ ठे नि. तक
	२२ वाँ निषेक	७ से २१ वें नि. तक १५ स.	१ नि. से ६ ठे नि. तक
	२१ वाँ निषेक	७ से २० वें नि. तक १४ स.	१ नि. से ६ ठे नि. तक
	२० वाँ निषेक	७ से १९ वें नि. तक १३ स.	१ नि. से ६ ठे नि. तक
	१९ वाँ निषेक	७ से १८ वें नि. तक १२ स.	१ नि. से ६ ठे नि. तक
	१८ वाँ निषेक	७ से १७ वें नि. तक ११ स.	१ नि. से ६ ठे नि. तक
	१७ वाँ निषेक	७ से १६ वें नि. तक १० स.	१ नि. से ६ ठे नि. तक
उदयावली	१० समयों की जघन्य अतिस्थापना		
	६ समयों का जघन्य निक्षेप		
१६ समयो की बंधावली	माना = ७० कोड़ाकोड़ी सागर = १००० समय, आवली = १६ समय, नि.=निषेक		

व्याघात विषयक अपकर्षण में उत्कृष्ट अतिस्थापना व उत्कृष्ट निक्षेप का स्पष्टीकरण–

उक्कस्सठिदिं बंधिय मुहुत्तअंतेण सुज्झमाणेण।
इगिकंडएण घादे तम्हि य चरिमस्स फालिस्स।।५९।।

चरिमणिसेयोक्कड्डे जेट्ठमदित्थावणं इदं होदि।
समयजुदंतोकोडाकोडिं[1] विणुक्कस्सकम्मठिदी[2] ।।६०।।

उत्कृष्टस्थितिं बन्धयित्वा मुहूर्तान्तः शुद्ध्यता।
एककाण्डकेन घाते तस्मिन् च चरमस्य फालेः।।५९।।

चरमनिषेकापकर्षे ज्येष्ठमतिस्थापनमिदं भवति ।
समययुतान्तःकोटीकोटिं विनोत्कृष्टकर्मस्थितिः।।६०।।

केनचिज्जीवेन कर्मोत्कृष्टस्थितिं बद्ध्वा क्षयोपशमलब्धिमहिम्ना विशुद्ध्यता बन्धावलिमतिवाह्यान्तर्मुहूर्तेनैककाण्डकघाते प्रतिसमयमसंख्येयगुणितफाल्यपनयने क्रियमाणे तस्मिंश्चरमफाल्याश्चरमनिषेके अपकृष्याधोनिक्षिप्यमाणे समययुतान्तःकोटीकोटिरहितकर्मोत्कृष्टस्थितिर्व्याघातविषयापकर्षणे उत्कृष्टातिस्थापनं भवति, उपरिमचरमनिषेकसमयः अधोनिक्षेपस्थितिरन्तःकोटीकोटी च कर्मोत्कृष्टस्थितौ वर्जनीये । ततः समययुतान्तःकोटीकोटिरहिता कर्मोत्कृष्टस्थितिर्व्याघातविषये उत्कृष्टमतिस्थापनमिति सिद्धम् ।।५९-६०।।

अन्वयार्थः– **(उक्कस्सठिदिं बंधिय)** उत्कृष्ट स्थिति बांधने के बाद **(मुहुत्तअंतेण)** अन्तर्मुहूर्त में **(सुज्झमाणेण)** विशुद्ध हुए जीव के **(इगिकंडएण घादे)** एक कांडक के द्वारा (अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थिति शेष रखकर अवशेष बची स्थिति का) घात करनेपर **(तम्हि य)** उस कांडक की **(चरिमस्स फालिस्स)** अंतिम फालि के **(चरिमणिसेयोक्कड्डे)** अंतिम निषेक के अपकर्षण में **(समयजुदंतोकोडाकोडिं विणुक्कस्सकम्मठिदि)** एक समय अधिक अंतःकोड़ाकोड़ी से रहित उत्कृष्ट कर्मस्थिति **(इदं)** यह **(जेट्ठमदित्थावणं)** उत्कृष्ट अतिस्थापना **(होदि)** होती है।

टीकार्थः– किसी एक जीव ने कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बांधने के बाद क्षयोपशमलब्धि की महिमा से विशुद्ध होकर बंधावलि व्यतीत करके अंतर्मुहूर्त के द्वारा प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितरूप से एक-एक फालि कम करके एक कांडकघात करने पर वहाँ अंतिम फालि के अंतिम निषेक का अपकर्षण करके नीचे देने पर एक समय अधिक अंतःकोटाकोटि से रहित

१) समयजुदंतो कोडाकोडि विहीणा उक्कसकम्मठिदी। का. ह. प्र. २) जयध. पु. ८, पृ. २४८-२४९

कर्म की उत्कृष्ट स्थिति, व्याघात-विषयक अपकर्षण में उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है। अंतिम निषेक का एक समय और नीचे जिसमें निक्षेपण किया जाता है वह अंत:कोटाकोटि स्थिति कर्म की उत्कृष्ट स्थिति में से कम करना चाहिए इसलिए एक समय अधिक अन्त:-कोटाकोटी से रहित कर्म की उत्कृष्ट स्थिति व्याघात-विषयक अपकर्षण में उत्कृष्ट अतिस्थापना है, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ:- व्याघात-विषयक अपकर्षण- स्थितिकाण्डकघात में अंतिम फालि के पतन के समय जो अपकर्षण होता है उसकी व्याघात-विषयक अपकर्षण संज्ञा है । उसकी अपेक्षा निक्षेप अन्त:कोड़ाकोड़ी स्थितिप्रमाण है और अतिस्थापना एक समय कम स्थितिकाण्डकप्रमाण है। जिन स्थितियों में अपकर्षित द्रव्य दिया जाता है उनकी निक्षेप संज्ञा है तथा निक्षेपरूप स्थितियों के ऊपर तथा जिस स्थिति के द्रव्य का अपकर्षण होता है उसके नीचे जिन मध्य की स्थितियों में अपकर्षित द्रव्य नहीं दिया जाता है उनकी अतिस्थापना संज्ञा है। जिस प्रकार कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव ने चारित्र-मोहनीय कर्म का ४० कोड़ाकोड़ी सागर का उत्कृष्ट स्थिति बंध किया। बंधावलि व्यतीत करनेपर अंत:कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण स्थिति को छोड़कर शेष स्थिति का कांडकघात प्रारंभ करके उसकी अंतर्मुहूर्तप्रमाण फालियाँ करके प्रत्येक समय में एक-एक फालि का पतन प्रारम्भ किया। इसप्रकार फालि का पतन होते समय जब तक उपान्त्य फालि का पतन नहीं होता तब तक प्रत्येक फालि के पतनकाल में निर्व्याघातरूप एक आवलिप्रमाण ही अतिस्थापना होती है क्योंकि प्रत्येक फालि के परमाणु पुंज का एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना को छोड़कर शेष स्थितियों में निक्षेप होता रहता है। इसलिए इसको निर्व्याघात अतिस्थापना ही समझना चाहिए। मात्र जब अंतिम फालि का कांडकघात के अंतिम समय में पतन होता है तब उस फालि की उत्कृष्ट अतिस्थापना एक समय कम एक कांडकप्रमाण है क्योंकि इस फालि की अग्रस्थिति का पतन उसकी नीचे की स्थिति में नहीं होता है अंत:कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति में होता है, इसलिए इसको व्याघात-विषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना जानना चाहिए।

अग्रस्थिति के नीचे के निषेक का पतन होने पर उसकी अतिस्थापना दो समय कम उत्कृष्ट कांडकप्रमाण है। यह भी व्याघात-विषयक अतिस्थापना है, परन्तु इसमें एक समय कम होते ही मध्यम अतिस्थापना कही जाती है । इस प्रकार आगे-आगे अतिस्थापना एक-एक समय कम होती हुई जहाँ ''एक समय अधिक एक आवलि प्रमाण अतिस्थापना'' प्राप्त होती है वहाँ तक व्याघात-विषयक अतिस्थापना जानना चाहिए।

अंकसंदृष्टि से उत्कृष्ट स्थिति १००० समय, स्थितिकांडक का प्रमाण ९०० समय और अंत:कोड़ाकोड़ी १०० समय माना। अंतिम निषेक की अतिस्थापना = उत्कृष्ट स्थिति -(१ समय+अंत:कोड़ाकोड़ी सागर) अथवा कांडकायाम-१समय =१०००-(१००+१ समय)= ८९९ अथवा ९००-१ =८९९। द्विचरम निषेक की अतिस्थापना=कांडकायाम-२ समय= ९००-२=८९८। (देखें- पृष्ठ ९३ का नक्शा)

व्याघातविषयक अतिस्थापना और निक्षेप का प्रमाण–

प्रमाण–स्थितिकाण्डकायाम = (४० को.को. सागर–अन्त:कोटाकोटी सागर)

स्थितिकाण्डकघात का काल = अन्तर्मुहूर्त = माना हुआ प्रमाण १० समय।

फालियों की संख्या अंतर्मुहूर्तप्रमाण (१० समय)। आवली = ४ समय।

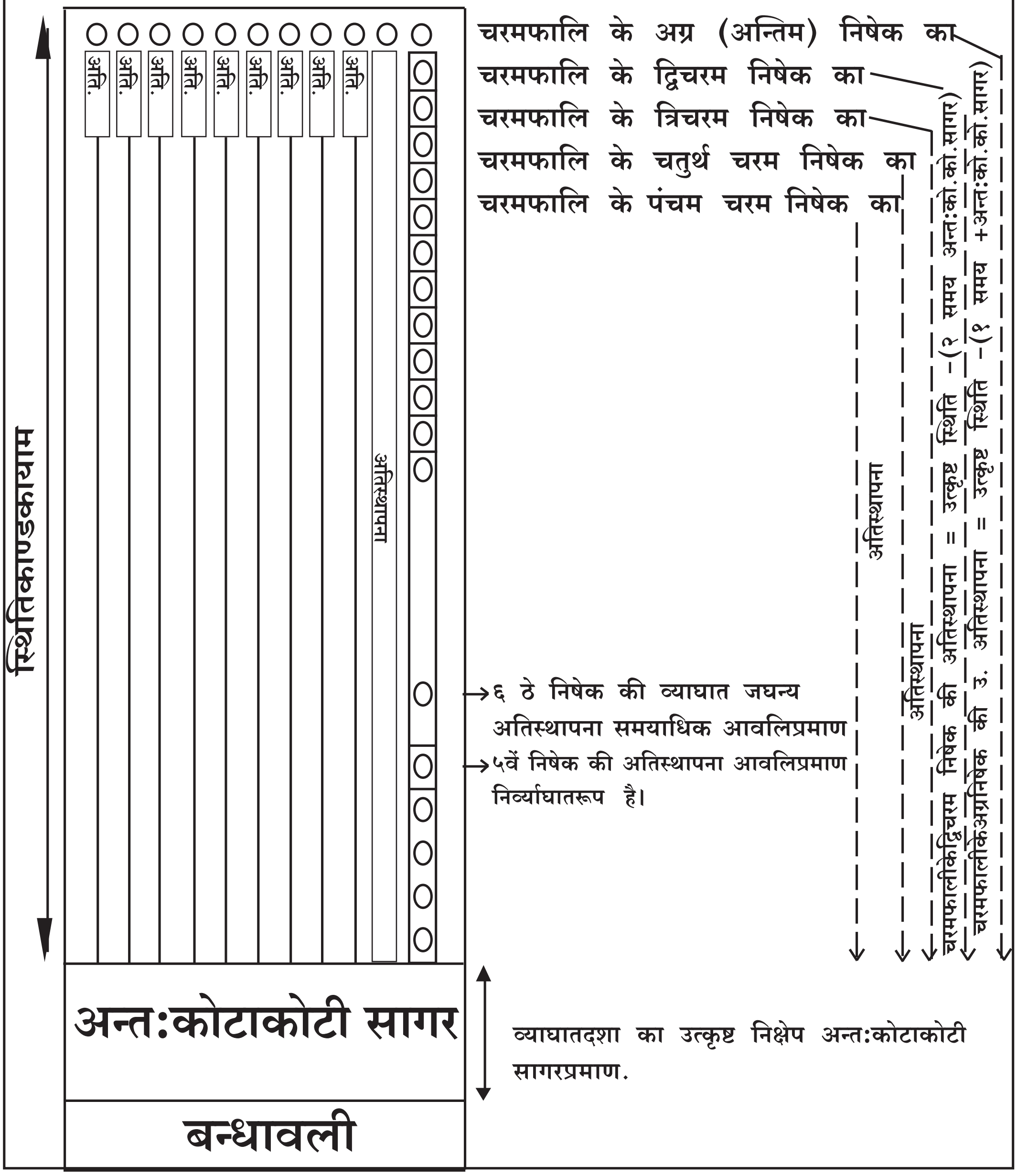

स्थितिकाण्डक के नीचे जो अंत:कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति निक्षेपरूप है, उसी में अंतिम फालि सहित उसका निक्षेप होकर स्थितिकाण्डकगत समस्त स्थिति का उस समय समग्र रूप से घात हो जाता है। यह उक्त दोनों गाथाओं का तात्पर्य है। यहाँ उत्कृष्ट स्थिति के अंतिम निषेक का अपकर्षण किया, इसलिए वह अतिस्थापनारूप नहीं है तथा नीचे की अन्त:कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति निक्षेपरूप है, अत: वह अतिस्थापनारूप नहीं है। अत: एक समयसहित अन्त:कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति को छोड़कर शेष सब स्थिति अतिस्थापनारूप जानना चाहिए। अब ६७ वीं गाथा तक उत्कर्षण का विचार करते हैं–

सत्तग्गठिदि बंधे अदित्थियुक्कड्डुणे जहण्णेण।
आवलिअसंखभागं तेत्तियमेत्तेव णिक्खिवदि[1]।।६१।।

सत्ताग्रस्थितिं बन्धेऽतिस्थाप्योत्कर्षणे जघन्येन।
आवल्यसंख्यभागं तावन्मात्रे एव निक्षिपति।।६१।।

अव्याघातव्याघातविषये कर्मस्थितेरुत्कर्षणे प्राक्तनसत्त्वस्य अग्रस्थितिचरमनिषेकं बन्धे तत्कालबध्यमाने समयप्रबद्धे तत्समानस्थितेरुपरि आवल्यसंख्येयभागमतिच्छायातिक्रम्य तावन्मात्रे आवल्यसंख्येयभागमात्रे एव निक्षिपति इति जघन्यातिस्थापनं जघन्यनिक्षेपश्च कथितौ । उत्कर्षणे आभ्यां स्तोकयोरतिस्थापननिक्षेपयोरभावात् ।।६१।।

अन्वयार्थ:– **(सत्तग्गठिदिं)** सत्त्व की अग्र (अंतिम) स्थिति का **(बंधे)** नवीन बंध में **(उक्कड्डुणे)** उत्कर्षण करने पर **(जहण्णेण)** जघन्यरूप से **(आवलिअसंखभागं)** आवलि का असंख्यातवाँ भागमात्र **(अदित्थिय)** अतिस्थापना छोड़कर **(तेत्तियमेत्तेव)** उतनी मात्र स्थितियों में अर्थात् आवलि के असंख्यातवें भागमात्र स्थितियों में ही **(णिक्खिवदि)** निक्षेपण करता है ।।६१।।

टीकार्थ:– अव्याघात विषयक अथवा व्याघात–विषयक कर्मस्थिति का उत्कर्षण होने पर पूर्व सत्ता की अंतिम स्थिति के चरम निषेक के उस समय बांधे जाने वाले समयप्रबद्ध में पूर्व सत्ता के समान स्थिति के ऊपर आवलि का असंख्यातवाँ भागप्रमाण स्थिति का उल्लंघन करके (अतिस्थापना छोड़कर) उतनी ही अर्थात् आवलि के असंख्यातवें भागमात्र स्थिति में निक्षेपण किया जाता है। इस प्रकार जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप कहा। उत्कर्षण में इससे कम अतिस्थापना और निक्षेप का अभाव है।।६१।।

---

१) जयध. पु. ८, पृ. २५७–२५९

विशेषार्थ:- विवक्षित प्राक्तन सत्कर्म से उसी कर्म का नवीन स्थितिबन्ध अधिक होने पर बंध के समय उसके निमित्त से सत्कर्म की स्थिति को बढ़ाना उत्कर्षण कहलाता है। यह उत्कर्षण व्याघात और अव्याघात के भेद से दो प्रकार का है। जहाँ सत्कर्म से नवीन स्थितिबंध एक आवलि और एक आवलि के असंख्यातवें भाग अधिक के भीतर होने के कारण अतिस्थापना एक आवलि से कम पायी जाती है वहाँ होने वाले उत्कर्षण की व्याघात विषयक उत्कर्षण संज्ञा है और जहाँ पर एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना के साथ निक्षेप कम से कम आवलि के असंख्यातवें भाग होने में कोई व्याघात नहीं पाया जाता है वहाँ होने वाले उत्कर्षण की अव्याघात-विषयक उत्कर्षण संज्ञा है। यहाँ ६१ वीं गाथा में व्याघात-विषयक उत्कर्षण का उल्लेख किया गया है। सत्त्वस्थिति के अग्रभाग से आवलि के दो असंख्यातवें भाग से एक समय कम भी यदि नवीन स्थिति बन्ध हो तो सत्त्वस्थिति के अग्रनिषेक के यथायोग्य कर्म समूह का उत्कर्षण नहीं होता है। हाँ, यदि सत्त्वस्थिति के अग्रभाग से आवलि के दो असंख्यातवें भागप्रमाण नवीन स्थितिबन्ध अधिक हो तो प्रथम आवलि के असंख्यातवें भाग को अतिस्थापनारूप से स्थापित कर द्वितीय आवलि के असंख्यातवें भाग में सत्त्वस्थिति के अग्रनिषेक का उत्कर्षण बन जाता है। यह व्याघात-विषयक उत्कर्षण का प्रथम भेद है।

उदाहरण - माना कि सत्त्वस्थिति का अंतिम निषेक ५० संख्यांक, नवीन बन्ध का प्रमाण ५८, आवलि का असंख्यातवाँ भाग ४। अत: सत्त्वस्थिति के ५० वें अंतिम निषेक का उत्कर्षण होकर उसका निक्षेप नवीन बन्ध के ५५ से ५८ तक चार निषेकों में होगा। ५१ से ५४ तक के चार निषेक अतिस्थापनारूप रहेंगे।

स्थितिसत्कर्म की अग्रस्थिति से एक समय अधिक नवीन स्थिति को बांधने वाला जीव उस अग्रस्थिति का उत्कर्षण नहीं करता क्योंकि यहाँ अतिस्थापना और निक्षेप का अभाव है। इसप्रकार दो समय, तीन समय, आदि अधिक नूतन बन्ध करने पर भी उत्कर्षण नहीं करता है क्योंकि जघन्य अतिस्थापना होनेपर भी निक्षेप का अभाव है। मात्र यदि स्थिति-सत्कर्म की अग्रस्थिति से बांधी जानेवाली नूतन स्थिति एक आवलि और एक आवलि का असंख्यातवाँ भाग अधिक होने पर ही वह जीव सत्कर्म की अग्रस्थिति का उत्कर्षण कर सकता है क्योंकि उस काल में एक आवलि की अतिस्थापना स्थापित करके आवलि के असंख्यातवें भाग में उस उत्कर्षित द्रव्य का निक्षेप कर सकता है। यह अव्याघात-विषयक कथन है।

सत्कर्म की अग्रस्थिति से बांधी जानेवाली नवीन स्थिति आवलि के दो असंख्यातवें भाग अधिक होने पर भी उत्कर्षण हो सकता है क्योंकि आवलि के असंख्यातवें भाग की अतिस्थापना स्थापित करके, दूसरे आवलि के असंख्यातवें भाग में उत्कर्षित द्रव्य का निक्षेपण हो सकता है । यह कथन व्याघात अपेक्षा से है ।

तत्तोदित्थावणगं वड्ढदि जावावली तदुक्कस्सं।
उवरीदो णिक्खेओ वरं तु बंधिय ठिदिं जेट्ठं ।।६२ ।।

वोलिय बंधावलियं ओक्कड्डिय उदयदो दु णिक्खिविय।
उवरिमसमये विदियावलिपढमुक्कड्डुणे जादे।।६३ ।।

तक्कालबज्झमाणे वरट्ठिदीए अदित्थियाबाहं ।
समयजुदावलियाबाहूणो उक्कस्सठिदिबंधो[1]।।६४ ।।

ततोऽतिस्थापनकं वर्धते यावदावलिस्तदुत्कृष्टम्।
उपरितो निक्षेपो वरं तु बन्धयित्वा स्थितिं ज्येष्ठाम् ।।६२ ।।

अपलाप्य बंधावलिकामपकर्ष्य उदयतस्तु निक्षिप्य।
उपरितनसमये द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे जाते ।।६३ ।।

तत्कालबध्यमाने वरस्थित्यामतिस्थाप्याबाधाम्।
समययुतावलिकाबाधोन उत्कृष्टस्थितिबन्धः ।।६४ ।।

ततः जघन्यातिस्थापनात् समयोत्तरक्रमेण अतिस्थापनं वर्धते यावदावलिमात्रमतिस्थापनं भवति। तस्यातिस्थापनस्योत्कर्षः वर उत्कृष्टो निक्षेपश्च उपरि वक्ष्यते । तत्कथं ज्येष्ठामुत्कृष्टां स्थितिं बध्वा तदाबाधायां बन्धावलिमतिवाह्य चरमनिषेकमपकृष्य उदयनिषेकात्प्रभृति उपरि समयाधिकावलिं मुक्त्वा सर्वत्र निक्षिप्य उपरितनसमये अपकर्षणसमयानन्तरसमये प्राक्निक्षिप्त-द्वितीयावलिप्रथमनिषेकस्योत्कर्षणं भवति । तस्मिन्नुत्कर्षणे जाते तत्कालबध्यमाने उत्कृष्टस्थितिके समयप्रबद्धे समयाधिकावलिन्यूनामाबाधामतिक्रम्य प्रथमनिषेकात्प्रभृति उपरि समयाधिकावलि-वर्जितोत्कृष्टकर्मस्थितौ उत्कृष्टद्रव्यं निक्षिपतीति समयाधिकावलिन्यूना आबाधा उत्कृष्टातिस्थापनम्। समयाधिकावलियुक्ताबाधान्यूना उत्कृष्टकर्मस्थितिरुत्कृष्टनिक्षेपो भवति। अपकृष्टद्रव्यस्याधो निक्षिप्तस्य यावती शक्तिस्थितिरस्ति तावत्पर्यन्तं स्थित्युत्कर्षणं घटते ।।६२-६४ ।।

अन्वयार्थः- **(तत्तो)** उसके अनन्तर **(अदित्थावणगं)** अतिस्थापना **(जावावली)** आवलिप्रमाण होने तक (एक-एक समय से) **(वड्ढदि)** बढ़ती है । **(तदुक्कस्सं)** वही (आवलिप्रमाण) उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है। **(उवरीदो)** उसके अनन्तर **(णिक्खेओ)** निक्षेप बढ़ता है। **(वरं तु)** उत्कृष्ट निक्षेप इसप्रकार है **(जेट्ठं ठिदिं)** उत्कृष्ट स्थिति को **(बंधिय)** बांधकर **(बंधावलियं)** बंधावलि **(बोलिय)** व्यतीत करके (उस उत्कृष्ट स्थिति के अंतिम निषेक के द्रव्य का) **(ओक्कड्डिय)** अपकर्षण करके **(उदयदो दु णिक्खिविय)** उदयनिषेक

१) क. चू. जय.ध. भाग ८ पृ. २५९-२६१।

से निक्षेपण करके **(उवरिम समये)** उसके अनन्तर अर्थात् अपकर्षण करने के बाद दूसरे समय में **(विदियावलिपढमुक्कड्डणे जादे)** द्वितीयावलि के प्रथम निषेक का उत्कर्षण होने पर **(तक्कालबज्झमाणे)** उस काल में बांधी जाने वाली **(वरदिठ्दीए)** उत्कृष्ट स्थिति में **(आबाहं)** आबाधाप्रमाण **(अदित्थिय)** अतिस्थापना करके **(समयजुदावलियाबाहूणो)** समय अधिक आवलि और आबाधा से रहित **(उक्कस्सठिदिबंधो)** उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप है।

टीकार्थ :– जघन्य अतिस्थापना से आवलिप्रमाण अतिस्थापना होने तक एक–एक समय अधिक क्रम से अतिस्थापना बढ़ती जाती है। वही अतिस्थापना का उत्कर्ष है अर्थात् आवलिप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापना है। उत्कृष्ट निक्षेप कैसा होता है उसे आगे कहते हैं – उत्कृष्ट स्थिति का बंध करके उसकी आबाधा में बंधावलि व्यतीत होने पर चरम निषेक का अपकर्षण करके उदय–निषेक से लेकर ऊपर समय अधिक आवलि छोड़कर सर्वत्र निक्षेपण करता है। अपकर्षण करने के समय के अनन्तर समय में पूर्व निक्षेपण किए हुए द्वितीयावलि के प्रथम निषेक का उत्कर्षण होता है। उस उत्कर्षण के होने पर उस समय बांधी जाने वाली उत्कृष्ट स्थिति से युक्त समयप्रबद्ध में एक समय अधिक आवलि से हीन आबाधा का उल्लंघन करके प्रथम निषेक से लेकर ऊपर एक समय अधिक आवलि छोड़कर उत्कृष्ट कर्मस्थिति में उत्कर्षण किए द्रव्य का निक्षेपण करता है। इस प्रकार एक समय अधिक आवलि से रहित आबाधा उत्कृष्ट अतिस्थापना है। एक समय अधिक आवलि सहित आबाधा से न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थिति उत्कृष्ट निक्षेप है। नीचे निक्षेपण किए हुए अपकृष्ट द्रव्य की जितनी शक्तिस्थिति होती है वहाँ तक ही स्थिति का उत्कर्षण घटित होता है।

विशेषार्थ:– पहले ६१ वीं गाथा के आशय को स्पष्ट करते हुए व्याघात–विषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप का स्पष्टीकरण कर आये हैं। उसके आगे नवीन बन्ध के आश्रय से एक आवलि कालप्रमाण अतिस्थापना के प्राप्त होने तक एक–एक समय के क्रम से अतिस्थापना में वृद्धि होती जाती है, निक्षेप का प्रमाण पूर्वोक्त ही रहता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण जयधवला भाग ८ पृ. २५० से २६१ तक के पृष्ठों मे किया गया है। जयधवला के अनुसार प्रकृत विषय का सोदाहरण स्पष्टीकरण इस प्रकार है– ५९ समय स्थितिप्रमाण नवीन बन्ध में प्राक्तन सत्ता में स्थित ५० वीं अग्रस्थिति का उत्कर्षण होने पर ५१ से ५५ तक की नवीन बन्ध सम्बन्धी स्थितियाँ अतिस्थापनारूप रहती हैं तथा ५६ से ५९ तक की स्थितियों में प्राक्तन सत्ता में स्थित स्थिति का निक्षेप होता है। इसप्रकार उत्तरोत्तर नवीन बन्ध की स्थिति में एक–एक समय की वृद्धि होने पर एक आवलि काल के प्राप्त होने तक अतिस्थापना बढ़ती जाती है, निक्षेप का प्रमाण पूर्ववत् ही रहता है। उदाहरणार्थ, नवीन स्थितिबन्ध ७० समयप्रमाण होने पर ५१ से ६६ समय तक की स्थितियाँ अतिस्थापनारूप रहती हैं तथा ६७ से ७० समय तक की स्थितियों में प्राक्तन सत्तारूप ५० वीं अग्रस्थिति का निक्षेप होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जब–तक एक समय कम एक आवलि के

प्राप्त होने तक अतिस्थापना और आवलि का असंख्यातवाँ भागप्रमाण निक्षेप रहता है तब–तक उनकी व्याघात–विषयक अतिस्थापना और निक्षेप संज्ञा है। इसके आगे एक आवलि प्रमाण अव्याघात–विषयक जघन्य अतिस्थापना के होने पर वे अव्याघात–विषयक अतिस्थापना और निक्षेप संज्ञा को प्राप्त होते हैं। ये अव्याघात–विषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप हैं । इससे आगे प्राक्तन सत्ता से एक आवलि और एक आवलि के असंख्यातवें भाग से अधिक नवीन स्थिति बन्ध हो और नवीन बन्ध की आबाधा के भीतर एक समय अधिक एक आवलि प्रवेश कर वहाँ से लेकर ऊपर की सत्त्व स्थितियों का उत्कर्षण हो तो अतिस्थापना एक आवलीप्रमाण ही रहेगी, मात्र निक्षेप में वृद्धि होती जाएगी परंतु इस प्रकार अव्याघात–विषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना और उत्कृष्ट निक्षेप नहीं प्राप्त होगा ।

अव्याघात–व्याघातसंबंधी उत्कर्षण के जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेपकी रचना

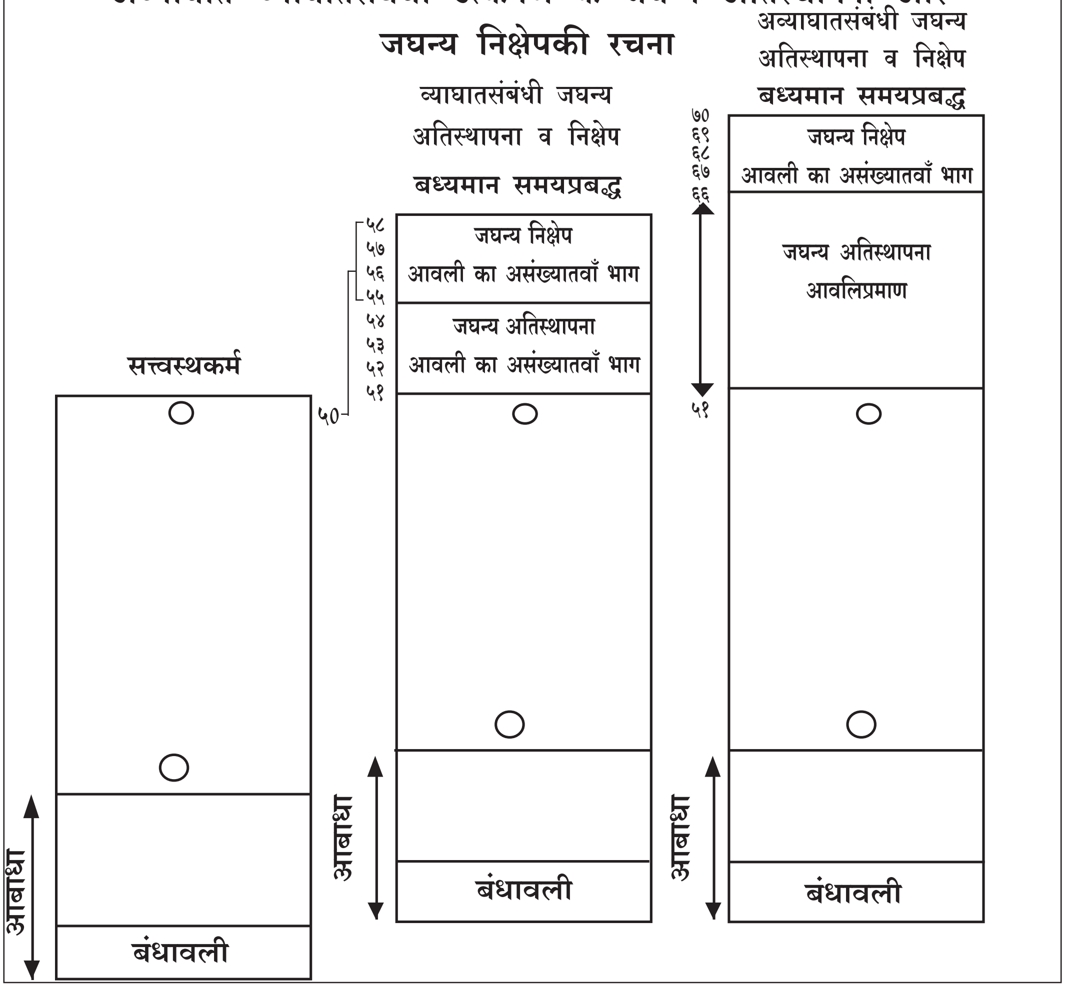

अब अव्याघात-विषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना के साथ उत्कृष्ट निक्षेप किस प्रकार प्राप्त होता है, इसका स्पष्टीकरण करते हैं । कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट संक्लेशवश सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध कर बन्धावलि के बाद प्रथम समय में आबाधा के बाहर स्थितियों में स्थित प्रदेशों का अपकर्षण कर उदयावलि के बाहर निक्षिप्त करता है । यहाँ पर उदयावलि से ऊपर दूसरी स्थिति में अपकर्षण द्वारा निक्षिप्त हुआ द्रव्य विवक्षित है, क्योंकि उदयावलि के ऊपर प्रथम स्थिति में निक्षिप्त हुए द्रव्य का अपकर्षण होने के दूसरे समय में उदयावलि में प्रवेश हो जाता है। फिर दूसरे समय में उत्कृष्ट संक्लेश के कारण उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करने वाला वही जीव इस विवक्षित स्थिति के प्रदेशों का उत्कर्षण कर उन्हें आबाधा के बाहर प्रथम निषेक से लेकर अग्रस्थिति से एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थान नीचे उतर कर जो बन्ध स्थिति है वहाँ तक निक्षिप्त करता है। यहाँ पर उत्कृष्ट निक्षेप तो एक समय और एक आवलि अधिक उत्कृष्ट आबाधा से न्यून उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है और अतिस्थापना उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण प्राप्त होती है। यह उत्कृष्ट निक्षेप, जिस स्थिति के परमाणुओं का यहाँ उत्कर्षण किया गया है उससे ऊपर और आबाधा के भीतर जितनी प्राक्तन सत्ता की स्थितियाँ हैं उन सभी का उक्त विधि से बन जाता है। मात्र आबाधा के बाहर प्रथम निषेक की स्थिति से नीचे की एक आवलिप्रमाण आबाधा के भीतर की स्थितियों का यह उत्कृष्ट निक्षेप सम्भव नहीं है।

यहाँ अतिस्थापना एक-एक समय घटती जाती है और आबाधा के भीतर एक आवलि नीचे उतरकर उससे अनन्तर पूर्व की स्थिति में स्थित परमाणुओं का उत्कर्षण करने पर वह एक आवलिप्रमाण रह जाती है। यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध की अग्रस्थिति से लेकर एक समय अधिक एक आवलि कम शेष बन्धस्थितियों में ही उत्कर्षण का विधान किया गया है। सो इसका कारण यह है कि नवीन बन्ध के बन्धावलिप्रमाण काल के जाने पर ही पूर्व सत्ता के द्रव्य का अपकर्षण कराया गया है, इसलिए पूर्व सत्ता के द्रव्य का उत्कर्षण होने के पूर्व एक आवलि काल तो यह कम हो गया है तथा जिस समय अपकर्षण हुआ उस समय उत्कर्षण होना सम्भव नहीं है, इसलिए उसका उत्कर्षण के पूर्व एक समय यह कम हो गया है। अत: एक समय अधिक एक आवलि बाद पूर्व सत्ता के अपकर्षित द्रव्य का नवीन उत्कृष्ट बन्धस्थिति में उत्कर्षण होने से उस उत्कर्षित द्रव्य में उत्कर्षित होने की जितनी शक्तिस्थिति थी वहीं तक उसका उत्कर्षण हुआ है ऐसा यहाँ समझना चाहिए।

जैसे- किसी जीव ने १००० समयस्थितिप्रमाण समयप्रबद्ध का बंध किया । उसकी आबाधा ५० समय मानी। आवलि १६ समय की मानी। बंधावलि व्यतीत होने पर १७ वें समय में उस समयप्रबद्ध का अपकर्षण किया। अपकृष्ट द्रव्य उदय-निषेक से ऊपर एक समय अधिक अतिस्थापनावलि छोड़कर अतिस्थापनावलि के नीचे के निषेक तक दिये अर्थात् १७

वें समय से ९८३ वें समय तक कुल ९६७ निषेकों में पूर्वोक्त प्रकार से निक्षेपण किए। उसके बाद का १८ वें समय में उस अपकृष्ट द्रव्य का उत्कर्षण किया। उस समय में बांधे गये नवीन समयप्रबद्ध में उसका उत्कर्षण होता है। नवीन समयप्रबद्ध की १००० समय स्थिति बांधी। उदयावलि के द्रव्य का उत्कर्षण नहीं होता इसलिए उदयावलि के ऊपर के निषेक का अर्थात् वर्तमान समय से १७ वें निषेक के द्रव्य का उत्कर्षण करके नवीन समयप्रबद्ध की आबाधा को छोड़कर ऊपर की स्थिति में निक्षेपण करता है। आबाधा में निषेक रचना नहीं होती। इसलिए १७ वें निषेक का द्रव्य १८ से ५० समय तक नहीं दिया। अत: ३३ समयों की उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है।५१ वीं स्थिति के निषेक से लेकर ९८३ समय के निषेक तक निक्षेपण करता है। इसलिए ९३३ समयों का उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होता है। ऊपर के १७ निषेकों में निक्षेपण नहीं करता है क्योंकि वहाँ तक उसकी शक्तिस्थिति नहीं है। इसी प्रकार १७ वें निषेक से लेकर ३४ वें निषेक पर्यन्त के निषेकों के द्रव्य का नवीन समयप्रबद्ध के ५१ से ९८३ तक के निषेकों में निक्षेपण होगा, इसलिए ऐसा कहा गया कि आबाधा के अन्त समय से आवलिप्रमाण निषेकों के नीचे के सभी निषेकों के द्रव्य का उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होता है। प्रत्येक की अतिस्थापना मात्र एक-एक समय कम होती जाती है। जिस निषेक के द्रव्य का उत्कर्षण होता है उसके ऊपर के निषेक से अतिस्थापना ली जाती है । इसलिए आबाधा के अंतसमय से नीचे एक समय अधिक आवलिपर्यन्त के निषेकों की अतिस्थापना आबाधा में ही प्राप्त होती है। उसके ऊपर ३५ वें निषेक की अतिस्थापना ३६ से ५१ समय तक प्राप्त होती है इसलिए निक्षेप एक समय कम होता है। ऊपर के सब निषेकों की अतिस्थापना १६ समय प्रमाण ही रहेगी और निक्षेप एक-एक समय कम होता जाएगा । ऊपर एक समय अधिक आवलिप्रमाण निषेक छोड़कर शेष रहे निषेकों में ही निक्षेपण होता है। इसीप्रकार यथार्थ प्रमाण समझना चाहिए ।

शंका :- यहाँ एक समय अधिक एक आवलि प्रमाण अंत की स्थिति में उस उत्कर्षित द्रव्य का निक्षेपण क्यों नहीं होता है?

समाधान :- नहीं, क्योंकि समयप्रबद्ध के सत्त्वस्थिति का समय अधिक बंधावलि प्रमाण काल पहले ही व्यतीत हो गया है अथवा उस परमाणु पुंज की उस समय उससे कम ही शक्तिस्थिति शेष रही है। जैसे यदि पूर्व के मिथ्यात्व के समयप्रबद्ध का ७० कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध हुआ हो तो उसके अन्तिम निषेक में ७० कोड़ाकोड़ी सागर की व्यक्तिस्थिति है और ७० कोड़ाकोड़ी सागर की शक्तिस्थिति है क्योंकि मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध ७० कोड़ाकोड़ी सागर है। बंधावलि के अनन्तर उस चरम निषेक का उस काल में बांधे जाने वाले ७० कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिवाले चरम निषेक से आवलिप्रमाण निषेकों के नीचे स्थित निषेकों तक उत्कर्षण हो सकता है।

---

१) जयध. पु १४. पृ. २९४

अव्याघात-अवस्था में उत्कर्षणविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना और निक्षेप की रचना-

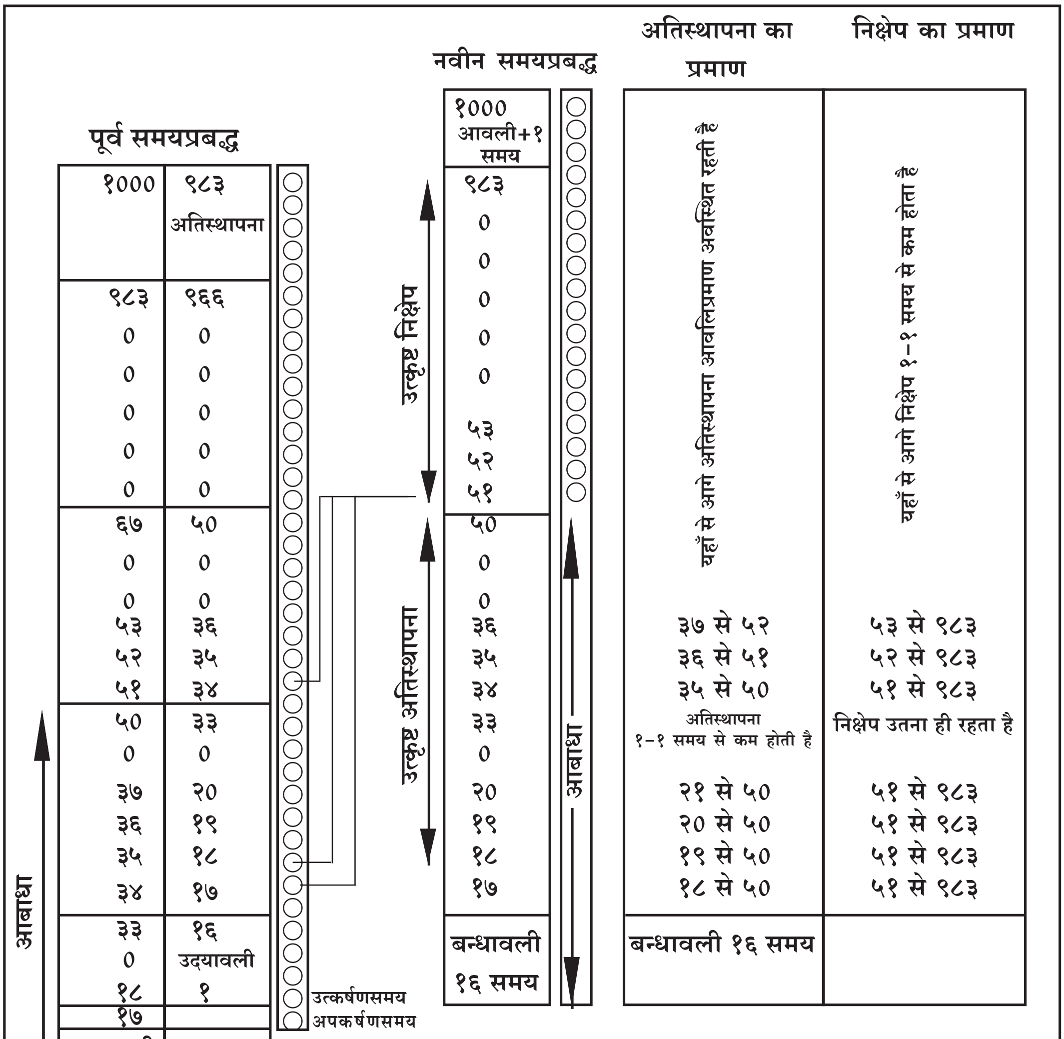

उत्कृष्ट निक्षेप = उत्कृष्ट स्थिति - (आबाधा + आवली + १ समय)

अंकसंदृष्टि- १००० - (५० + १६ + १) = ९३३

अर्थसंदृष्टि- ७० को.को. सा.-(७००० वर्ष+आवली + १ समय)

उत्कृष्ट अतिस्थापना = उत्कृष्ट आबाधा - (आवली + १ समय)

अंकसंदृष्टि- ५०-(१६+१)=३३

अर्थसंदृष्टि- ७००० वर्ष - (आवली + १ समय)

○ यह निषेक का चिह्न है। स = समय

अहवावलिगदवरठिदिपढमणिसेगे वरस्स बंधस्स ।
विदियणिसेगप्पहुदिसु णिक्खित्ते जेट्ठणिक्खेओ[१] ।।६५।।

अथवावलिगतवरस्थितिप्रथमनिषेके वरस्य बन्धस्य ।
द्वितीयनिषेकप्रभृतिषु निक्षिप्ते ज्येष्ठनिक्षेप: ।।६५।।

अथवा आचार्यान्तरव्याख्यानमतभेदात्[२] उत्कृष्टस्थितिबन्धस्य बन्धावलिमतिवाह्य प्रथमनिषेके उत्कृष्टे तात्कालिकबध्यमानस्योत्कृष्टस्थितिसमयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकप्रभृतिषु अग्रे अतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिप्ते समयाधिकावल्याबाधारहिता उत्कृष्टकर्मस्थितिरुत्कृष्टनिक्षेपो भवति।

१−   ४   उ नि । क − आ

विवक्षितसमयप्रबद्धस्य चरमनिषेकस्य सर्वा स्थितिर्व्यक्तिस्थिति: तस्याधोऽधो निषेकाणां समयोनद्विसमयोनादिस्थितयो व्यक्तिस्थितय: । प्रथमादिनिषेकाणां सर्वा स्थिति: शक्तिस्थितिरित्यभिप्राय: ।।६५।।

अन्वयार्थ:− **(अहवा)** अथवा **(आवलिगदवरठिदिपढमणिसेगे)** आवलि व्यतीत होने पर उत्कृष्ट स्थिति के प्रथम निषेक का **(बंधस्स वरस्स)** बध्यमान उत्कृष्ट स्थिति के **(विदियणिसेगप्पहुदिसु)** दूसरे आदि निषेकों में **(णिक्खित्ते)** निक्षेपण करने पर **(जेट्ठणिक्खेओ)** उत्कृष्ट निक्षेप होता है ।।६५।।

टीकार्थ:− अथवा दूसरे आचार्य के व्याख्यान के मतभेद से उत्कृष्ट स्थितिबंध होने पर बंधावलि व्यतीत करके प्रथम निषेक का उत्कर्षण होने पर उस काल में बांधी जाने वाली उत्कृष्ट स्थितियुक्त समयप्रबद्ध के दूसरे आदि निषेकों में आगे अतिस्थापनावलि छोड़कर निक्षेपण करने पर समय अधिक आवलि और आबाधा से रहित कर्मस्थिति उत्कृष्ट निक्षेप होता है।

उत्कृष्ट निक्षेप=कर्मस्थिति − (आबाधा+आवलि+१)

अर्थसंदृष्टि−उ.नि = क − (आ+४+१), आवलि की संदृष्टि ४

विवक्षित समयप्रबद्ध के अंतिम निषेक की सर्व स्थिति व्यक्तिस्थिति है। उसके नीचे−नीचे के निषेकों की एक समय कम, दो समय कम आदि स्थिति व्यक्तिस्थिति है। प्रथमादि निषेकों की सर्व स्थिति शक्तिस्थिति है ऐसा अभिप्राय है।

---

१) जयध. भा. १२, पृ. २५६

२) टिप्पणी− वृत्तिकार ने गाथागत 'अथवा' इस शब्दका अर्थ दूसरे आचार्य के व्याख्यान के मत से ऐसा किया है। किंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। यथार्थ में नेमिचन्द्र सिद्धान्त−चक्रवर्ती ने ही गा.६२,६३ और ६४ के द्वारा एक प्रकार से उत्कृष्ट निक्षेप का वर्णन किया है और गाथा ६५ के द्वारा दूसरे प्रकार से उत्कृष्ट निक्षेप का वर्णन किया है। लब्धिसार प्रस्तावना− पं. फूलचंदजी शास्त्री, आगास प्रति, पृ. ३६.

दूसरी अपेक्षा उत्कर्षण विषयक उत्कृष्ट निक्षेप की रचना–

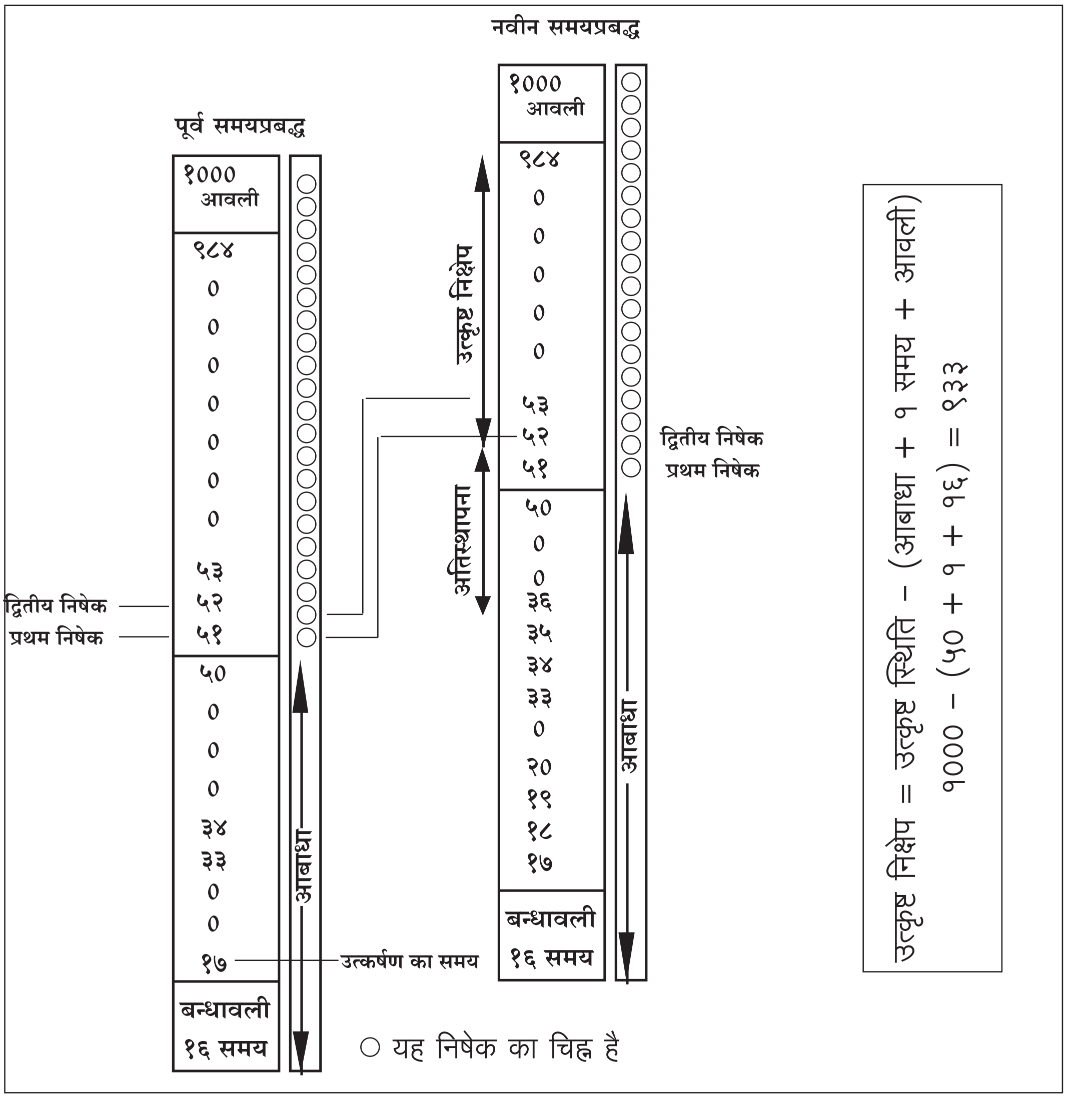

विशेषार्थः– यहाँ दूसरे आचार्य की अपेक्षा से उत्कृष्ट निक्षेप कहा गया है। यहाँ अपकर्षण न करके आबाधा के ऊपर प्रथम निषेक की अपेक्षा से उत्कृष्ट निक्षेप घटित किया गया है। जिस प्रकार किसी जीव ने १००० समय स्थितियुक्त समयप्रबद्ध बांधा । उसकी आबाधा ५० समय मानी। १६ समयप्रमाण बंधावलि व्यतीत होने पर उस जीव ने विवक्षित समयप्रबद्ध का प्रथमादि निषेकों के द्रव्य का उत्कर्षण किया । ५१ वें समय में उसका प्रथम निषेक है क्योंकि ५० समयप्रमाण आबाधा में निषेक रचना नहीं है। उत्कर्षण तत्काल बध्यमान समयप्रबद्ध में ही होता है ।

१७ वें समय में उत्कर्षण करने पर १000 समययुक्त ही नवीन समयप्रबद्ध बांधा। तब ५१ वें निषेक के द्रव्य के नवीन समयप्रबद्ध के ३६ से ५१ निषेकों तक अतिस्थापना होती है और ५२ से ९८४ निषेक तक निक्षेपण होता है। पूर्व समयप्रबद्ध बांधने के बाद एक आवलि जाने पर नवीन समयप्रबद्ध बांधा, इसलिए उसकी रचना एक आवली ऊपर होगी । पूर्व समयप्रबद्ध के निषेकों की शक्तिस्थिति स्वतः की उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही है इसलिए ऊपर एक आवलि में निक्षेपण नहीं होता है। यहाँ बांधी गयी उत्कृष्ट स्थिति में आबाधाकाल में और प्रथम निषेक में द्रव्य दिया नहीं और अंतिम आवलि में द्रव्य दिया नहीं। अतः पूर्वोक्तप्रमाण निक्षेप जानना चाहिए । पूर्व गाथा के मतानुसार और इन आचार्यों के मतानुसार उत्कृष्ट निक्षेप के प्रमाण में भेद नहीं; परन्तु अतिस्थापना में भेद है। इस अपेक्षा से अतिस्थापना केवल आवलिप्रमाण ही प्राप्त होती है, अधिक नहीं।

यहाँ बद्धकर्म की किस निषेक की कितनी शक्तिस्थिति है और उसकी कितनी प्रगट (व्यक्ति) स्थिति है, इसका स्पष्टीकरण किया है। यहाँ प्रत्येक कर्म की अपेक्षा से समझना चाहिए । उसमें भी प्रथमादि निषेकों की शक्तिस्थिति का विचार करने पर उत्कर्षण के नियमानुसार शेष रही शक्तिस्थिति पर्यन्त ही प्रत्येक निषेक का उत्कर्षण होता है।

उक्कस्सट्ठिदिबंधे आबाहग्गा[1] ससमयमावलियं।
ओदरिय णिसेगेसुक्कड्डेसु अवरमावलियं[2] ।।६६ ।।

उत्कृष्टस्थितिबन्धे आबाधाग्रात्ससमयामावलिकाम्।
अवतीर्य निषेकेषूत्कर्षेष्ववरमावलिकम्।।६६ ।।

उत्कृष्टस्थितिबन्धे तत्कालबध्यमानसमयप्रबद्धे आबाधाग्रादाबाधान्त्यसमयात् ससमयावलिकामवतीर्य तत्समानसमयप्रबद्धनिषेकस्योत्कर्षणे आवलिमात्रं जघन्यमतिस्थापनं भवति। आबाधागतामावलिकामतिक्रम्य उपरि निषेकेषु अन्तिमातिस्थापनावलिं मुक्त्वा सर्वत्र निक्षिपतीत्यर्थः।।६६ ।।

अन्वयार्थः– **(उक्कस्सट्ठिदिबंधे)** उत्कृष्ट स्थितिबंध होने पर **(आबाहग्गाससमयमावलियं)** आबाधा के अग्र से एक समय अधिक आवलिप्रमाण निषेक **(ओदरिय)** नीचे उतर कर **(णिसेगेसुक्कड्डेसु)** निषेक का उत्कर्षण होने पर **(आवलियं)** आवलिप्रमाण जघन्य अतिस्थापना होती है। आबाधागत अतिस्थापनावलि छोड़कर ऊपर के निषेकों में निक्षेपण करता है।।६६।।

टीकार्थः– उस काल में बांधे गये उत्कृष्ट स्थितिबन्ध युक्त समयप्रबद्ध में आबाधा के अंतिम समय से एक समय अधिक आवलि नीचे उतर कर उस समान (पूर्व) समयप्रबद्ध के निषेक का उत्कर्षण कराने में आवलि प्रमाण जघन्य अतिस्थापना होती है। आबाधागत आवलि का उल्लंघन करके ऊपर के निषेकों में अंतिम अतिस्थापनावलि छोड़कर सर्वत्र निक्षेपण करता है ।

---

१) पाठभेद–आबाहागा । मु. प्र.   २) जयध. पु. १२, पृ. २५३.

ओदरिय तदो विदियावलिपढमुक्कड्डणे वरं हेट्ठा।
अइच्छावणमाबाहा समयजुदावलियपरिहीणा।।६७।।

अवतीर्य ततो द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे वरमधस्तना।
अतिस्थापनमाबाधा समययुतावलिकपरिहीना।।६७।।

ततस्ततः अधोऽवतीर्य अन्यस्य सत्त्वसमयप्रबद्धस्य द्वितीयावलिप्रथमनिषेकोत्कर्षणे अधःसमययुतावलिपरिहीणा आबाधा उत्कृष्टातिस्थापनं भवति। समयाधिकावलिहीनामाबाधामतिक्रम्य उपरिनिषेकेषु अग्रे समयाधिकावलिं मुक्त्वा निक्षिपतीत्यर्थः ।। ६७।।

अन्वयार्थः– **(तदो)** उसके अनन्तर **(ओदरिय)** नीचे–नीचे उतरकर **(विदियावलिपढमुक्कडणे)** द्वितीयावलि के प्रथम निषेक का उत्कर्षण करने में **(हेट्ठा)** नीचे **(समयजुदावलियपरिहीणा)** एक समय अधिक आवलि से रहित **(आबाहा)** आबाधा **(वरं अइच्छावणं)** उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है।

टीकार्थः– उसके (आबाधा के अन्त्य समय से नीचे एक समय अधिक आवलिप्रमाण निषेक के) नीचे उतरकर अन्यकोई सत्तारूप समयप्रबद्ध के द्वितीयावलि के प्रथम निषेक का उत्कर्षण होने पर नीचे एक समय अधिक आवलि से कम आबाधा उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है। समय अधिक आवलि से रहित आबाधा का उल्लंघन करके ऊपर के निषेकों में अग्रभाग में समय अधिक आवलि को छोड़कर निक्षेपण करता है, यह अर्थ है।

विशेषार्थ :– उपर्युक्त दो गाथाओं का कथन पहले की अपेक्षा जानना चाहिए। पूर्व सत्तारूप कर्म के उदयावलि के निषेक का उत्कर्षण नहीं होता। उदयावली से बाहर के प्रथम निषेक का उत्कर्षण होने पर वर्तमान समय में बांधे हुए उत्कृष्ट स्थितियुक्त कर्म के उत्कृष्ट आबाधा के बाहर स्थित निषेकों में उत्कर्षित कर्म परमाणुओं का निक्षेपण होता है क्योंकि आबाधाकाल अतिस्थापना होती है । जिस निषेक का उत्कर्षण किया वह वर्तमान समय से एक आवलि के ऊपर पूर्व समयप्रबद्ध के सत्ता में स्थित है। इसलिए वर्तमान समयप्रबद्ध के आबाधाकाल में से एक अधिक एक आवलि कम करने पर उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है।

अंकसंदृष्टि – उत्कृष्ट स्थिति १००० समय, उत्कृष्ट आबाधा ५० समय और आवलि का प्रमाण १६ समय माना । वर्तमान में १००० समय उत्कृष्ट स्थितियुक्त कर्म का बन्ध हुआ । वर्तमान समय से ५० समयवाली उत्कृष्ट आबाधा होती है परन्तु जिस निषेक का उत्कर्षण किया वह उदयावलि के बाहर का प्रथम निषेक अर्थात् वर्तमान समय से १७ वाँ निषेक है, इसलिए आबाधाकाल १७ समय कम करने पर (५०–१७)=३३ समय उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है। गाथा ६१ के चित्र में उत्कृष्ट अतिस्थापना दिखायी गयी है, वहाँ से जानना चाहिए।

अपकर्षण व उत्कर्षणसंबंधी निक्षेप और अतिस्थापना का कोष्टक

	अपकर्षण		उत्कर्षण	
	अव्याघात	**व्याघात**	**अव्याघात**	**व्याघात**
जघन्य निक्षेप	$\frac{(\text{आवली}-१)}{३} + १$		$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$	$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$
जघन्य अतिस्थापना	$\frac{(\text{आवली}-१)}{३} \times २$		आवली	$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$
उत्कृष्ट निक्षेप	उत्कृष्टस्थिति–(दो आवली +१ समय)	अंतः को.२ सागर	उत्कृष्टस्थिति–(उ.आबाधा+ आवली+१समय)	$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$
उत्कृष्ट अतिस्थापना	आवलिप्रमाण	उत्कृष्टस्थिति–(अंतः को. २+१ समय)	उत्कृष्ट आबाधा–(आवली+१ समय)	आवली – १ समय

उत्कर्षण के विधान में जानने योग्य कुछ नियम –

(१) उत्कर्षण बन्ध के समय में ही होता है। अर्थात् जब जिस कर्म का बन्ध हो रहा हो तभी उस कर्म के सत्ता में स्थित कर्मपरमाणुओं का उत्कर्षण हो सकता है; अन्य का नहीं। उदाहरणार्थ – यदि कोई जीव साता प्रकृति का बन्ध कर रहा है तो उस समय सत्ता में स्थित साता प्रकृति के कर्मपरमाणुओं का ही उत्कर्षण होगा, असाता के कर्म परमाणुओं का नहीं ।

(२) उदयावलि के कर्मपरमाणुओं का उत्कर्षण नहीं होता।

(३) बन्धे हुए कर्म अपने बन्ध समय से लेकर एक आवलिकाल तक तदवस्थ रहते हैं। (अर्थात् बन्धावलि सकल करणों के अयोग्य है)

(४) बंधने वाले कर्म की अपने आबाधाकाल में निषेक रचना नहीं पायी जाती है।

(५) **अतिस्थापना –** कर्मपरमाणुओं का उत्कर्षण होते समय उनका अपने से ऊपर की जितनी स्थिति में निक्षेप नहीं होता, उसे अतिस्थापना कहते हैं ।

(६) **निक्षेप–** उत्कर्षण होकर कर्मपरमाणुओं का जिन स्थितिविकल्पों में पतन होता है, उसे

निक्षेप कहते है।

(७) **शक्तिस्थिति और व्यक्तिस्थिति –** बन्ध के समय उत्कृष्ट स्थितिबंध होने पर अन्तिम निषेक की सब की सब व्यक्तिस्थिति होती है। इसका मतलब यह है कि अंतिम निषेक की एक समयमात्र भी शक्तिस्थिति नहीं पायी जाती । उपान्त्य निषेक की एक समयमात्र शक्तिस्थिति होती है और शेष स्थिति व्यक्तिस्थिति होती है। त्रिचरम निषेक की दो समयमात्र शक्तिस्थिति होती है और शेष स्थिति व्यक्तिस्थिति होती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक–एक निषेक नीचे जाने पर शक्तिस्थिति का एक–एक समय बढ़ता जाता है। व्यक्तिस्थिति का एक–एक समय घटता जाता है। इस क्रम से प्रथम निषेक की शक्तिस्थिति और व्यक्तिस्थिति का विचार करने पर व्यक्तिस्थिति एक समय अधिक उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण प्राप्त होती है और इस व्यक्तिस्थिति को पूरी स्थिति में से घटा देने पर जितनी स्थिति शेष रही उतनी शक्तिस्थिति प्राप्त होती है। इसप्रकार यह बन्ध के समय जैसी निषेक रचना होती है उसके अनुसार विचार हुआ, किंतु उत्कर्षण से इसमें कुछ विशेषता आ जाती है । जैसे उत्कर्षण द्वारा जिस निषेक की जितनी व्यक्तिस्थिति बढ़ जाती है, उतनी उसकी शक्तिस्थिति घट जाती है। अपकर्षण करने पर जिस निषेक की जितनी व्यक्तिस्थिति घट जाती है उतनी उसकी शक्तिस्थिति बढ़ जाती है। यह सब उत्कृष्ट स्थितिबंध की अपेक्षा शक्तिस्थिति और व्यक्तिस्थिति का विचार है। उत्कृष्ट स्थितिबन्ध न होने पर जितना स्थितिबंध कम हो उतनी अंतिम निषेक की शक्तिस्थिति होती है और शेष निषेकों की भी इसी अनुक्रम से शक्तिस्थिति बढ़ती जाती है।

(८) अपकर्षण के समय उत्कर्षण नहीं होता, उत्कर्षण के समय अपकर्षण नहीं होता ।

(९) जिस निषेक का अपकर्षण किया जाता है उस निषेक के नीचे अतिस्थापना और उस अतिस्थापना के नीचे निक्षेप होता है। जिस निषेक का उत्कर्षण किया जाता है उस निषेक के ऊपर अतिस्थापना और उसके ऊपर निक्षेप होता है। चित्र में अपकर्षण की अतिस्थापना सबसे ऊपर दिखाई गयी है और उत्कर्षण की अतिस्थापना नीचे दिखायी गयी है। अपकर्षण की अतिस्थापना अंतिम निषेक की अपेक्षा से दिखायी गयी है। द्विचरमादि निषेकों की अपेक्षा से अतिस्थापना एक–एक निषेक नीचे जायेगी अर्थात् अंतिम निषेक की जो अतिस्थापना है, वहाँ किसी भी निषेक का द्रव्य दिया नहीं जाता है। इसलिए सामान्य अपेक्षा से अपकर्षण की अतिस्थापना ऊपर दिखायी जाती है। उत्कर्षण की अतिस्थापना प्रथम निषेक की अपेक्षा से नीचे दिखायी जाती है। दूसरे आदि निषेकों की अपेक्षा से एक–एक निषेक अतिस्थापना ऊपर सरकती जाती है अर्थात् प्रथम निषेक की जो अतिस्थापना है वहाँ किसी भी निषेक

का द्रव्य नहीं दिया जाता है इसलिए सामान्य अपेक्षा से उत्कर्षण की अतिस्थापना नीचे दिखायी जाती है।

यहाँ प्रसंगानुसार उत्कर्षण और अपकर्षण की अपेक्षा से निक्षेप व अतिस्थापना का विधान कहा। जहाँ उत्कर्षण करके ऊपर के निषेकों में और अपकर्षण करके नीचे के निषेकों में द्रव्य दिया जाता है, वहाँ पूर्वोक्त कथनानुसार विधान जानना चाहिए। जिस निषेक का द्रव्य ग्रहण किया जाता है उसका द्रव्य निक्षेपरूप निषेकों में देना चाहिये। अतिस्थापनारूप निषेकों में नहीं देना चाहिये । पुनः अनेक निषेकों का द्रव्य एक काल में ग्रहण किए जाने पर भी पृथक्-पृथक् द्रव्य देने का विधान पूर्वोक्त कथनानुसार जानना चाहिए ।

एवं प्रसंगायातमपकर्षणोत्कर्षणविषयजघन्योत्कृष्टनिक्षेपातिस्थापनलक्षणप्रमाण-विषयानाचार्यान्तराभिप्रायं च व्याख्याय अथ प्रकृतगुणश्रेणिनिर्जराविधानं प्ररूपयितुं प्रक्रमते-

उदयाणमावलिम्हि य उभयाणं बाहिरम्मि खिवणट्ठं ।
लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कड्डणो हारो[1] ।।६८।।

उदीयमानानामावलौ चोभयानां बाह्ये क्षेपणार्थम् ।
लोकानामसंख्येयः क्रमश उत्कर्षणो हारः।।६८।।

गुणश्रेणिनिर्जरार्थमपकृष्टानामुदयवतामेव कर्मणां मिथ्यात्वादीनां उदयावल्यां निक्षेपणार्थ-मसंख्येयलोकमात्रो भागहारो भवति । च शद्वात्तद्बहुभागमात्रद्रव्यस्योदयावलिबाह्येऽपि निक्षेपो भवति। उदयवतामेवोदयावल्यां निक्षेप इति नियम उक्तः। उभयेषामुदयवतामनुदयवतां च उदयावलिबाह्ये क्षेपणार्थमपकर्षणनामा भागहारो भवति। क्रमश इति वचनात् पल्यासंख्यातभागमात्रश्च भागहारो भवतीति व्यज्यते। वक्ष्यमाणभागहारक्रमस्य तथैव दर्शनात् ।।६८।।

इसप्रकार प्रसंग प्राप्त अपकर्षण और उत्कर्षण संबंधी जघन्य निक्षेप और अतिस्थापना, उत्कृष्ट निक्षेप और अतिस्थापना का लक्षण और प्रमाण विषयक दूसरे आचार्यों के अभिप्राय का व्याख्यान करके अब प्रकृत गुणश्रेणि-निर्जरा का विधान कहते हैं -

अन्वयार्थः- **(उदयाणं)** उदयरूप प्रकृतियों का द्रव्य **(आवलिम्हि)** उदयावलि में **(य)** और **(उभयाण)** दोनों का अर्थात् उदयरूप और अनुदयरूप प्रकृतियों का द्रव्य **(बाहिरम्मि)** उदयावलि के बाहर **(खिवणट्ठं)** निक्षेपण करने के लिए **(लोयाणमसंखेज्जो)**

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २६५ । ध. पु. ६, पृ. २२४ .

असंख्यात लोकमात्र **(उक्कड्डुणो हारो)** अपकर्षण भागहार है **(कमसो)** क्रम से इस वचनसे पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र भी भागहार है।

टीकार्थ:– गुणश्रेणी निर्जरा के लिए अपकृष्ट उदययुक्त मिथ्यात्वादि कर्मों का द्रव्य उदयावलि में निक्षेपण करने के लिए असंख्यात लोकमात्र भागहार है। च शब्द से उसके बहुभागमात्र द्रव्य का उदयावलि के बाहर भी निक्षेप होता है। उदययुक्त प्रकृतियों का ही द्रव्य उदयावलि में देता है। यह नियम कहा गया है। उदययुक्त और अनुदययुक्त दोनों प्रकृतियों का द्रव्य उदयावलि के बाहर देने के लिए अपकर्षण नाम का भागहार है। क्रमश: इस वचन के द्वारा पल्य का असंख्यातवाँ भागप्रमाण भी भागहार है, यह व्यक्त होता है। आगे भागहार का क्रम वैसा ही कहेंगे।

विशेषार्थ:– यहाँ अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर उदयरूप और अनुदयरूप प्रकृतियों का गुणश्रेणि निक्षेप किस विधि से होता है इसका स्पष्टीकरण किया गया। उदयरूप प्रकृतियों का उदयावलि संबंधी निषेकों में निक्षेपण करने के लिए अपने योग्य द्रव्य में असंख्यात लोक का भाग देने के बाद जो एक भाग आता है उतने द्रव्य का अपकर्षण करना चाहिए। परन्तु जयधवला पु. १२ पृ. २६५ में इसका विशेष खुलासा करते हुए कहा है कि अपने योग्य डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्धों में अपकर्षण–उत्कर्षण भागहार का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आया उसमें असंख्यात लोक का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आता हैं उतने द्रव्य को गोपुच्छाकाररूप से उदयावलि में निक्षिप्त करें। शेष बहुभाग– प्रमाण द्रव्य को गुणश्रेणि निक्षेप के विधानानुसार निक्षिप्त करें। शेष बहुभागप्रमाण द्रव्य को गुणश्रेणि निक्षेप के विधानानुसार निक्षिप्त करें। आगे की गाथा से उसका खुलासा होगा ही।

ओक्कड्डिदइगिभागे पल्लासंखेण भाजिदे[1] तत्थ।
बहुभागमिदं दव्वं उव्वरिल्लठिदीसु णिक्खिवदि।।६९।।

अपकर्षितैकभागे पल्यासंख्येन भाजिते तत्र।
बहुभागमिदं द्रव्यमुपरितनस्थितिषु निक्षिपति।।६९।।

सर्वकर्मसत्त्वमिदं स a १२– । अत्रायुर्द्रव्यस्य स्तोकत्वेन किंचिदूनं कृत्वा शेषे सप्तभिर्भक्ते मोहनीयद्रव्यं भवति। तस्मिन्ननन्तेन खण्डिते एकभाग: मिथ्यात्वषोडशकषायरूपसर्वघातिद्रव्यं भवति। तस्मिन् सप्तदशभिर्भक्ते मिथ्यात्वप्रकृतिद्रव्यमिदं [स a १२– / ७ । ख । १७] अस्मिन् गुणश्रेणि–

निर्जरार्थमपकर्षणभागहारेण भक्ते तदेकभागोऽयं [स a १२– / ७ । ख । १७ । ओ] तद्बहुभाग: स्वस्थिति–

---

१) पल्लासंख्येज्ञभाजिदे तत्थ । का.ह.प्र.

रचनायामेव तिष्ठति 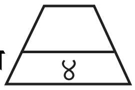

१ ⌂
स a १२- ओ
७ । ख । १७ । ओ

पुनरपकृष्टैकभागे पल्यासंख्येयभागेन खण्डिते तद्बहुभागोऽयम्

१ ⌂
स a १२- प
a
७ । ख । १७ । ओ । प
a

इदं द्रव्यं गुणश्रेण्या उपरितन-स्थितिषु निक्षिपति ।।६९।।

अन्वयार्थ:- (ओकड्डिदइगिभागे) अपकर्षित किए एक भागप्रमाण द्रव्य में **(पल्लासंखेण भाजिदे)** पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर **(तत्थ)** वहाँ **(इदं बहुभागं दव्वं)** यह बहुभाग-प्रमाण द्रव्य **(उव्वरिल्लठिदीसु)** उपरितन स्थिति में **(णिक्खिवदि)** निक्षेपण करता है।।६९।।

टीकार्थ:- सभी कर्मों का सत्त्वरूप द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है। (समयप्रबद्ध की संदृष्टि स, डेढ़ गुणहानि १२, कुछ कम की संदृष्टि-) यहाँ आयु का द्रव्य थोड़ा होने से सत्त्वद्रव्य में किंचित् ऊन करके शेष द्रव्य में सात से भाग देने पर मोहनीय का द्रव्य [स a १२- / ७] आया। उसमें अनन्त का भाग देने पर एकभाग मात्र द्रव्य मिथ्यात्व और १६ कषायरूप सर्वघातिद्रव्य आता है। उसमें १७ से भाग देने पर एक मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य आता है। वह ऐसे [स a १२- / ७ । ख । १७] (ख=अनन्त) इसमें गुणश्रेणि निर्जरा करने के लिए अपकर्षण भागहार से भाग देने पर उसका एकभाग मात्र द्रव्य ऐसा [स a १२- / ७ । ख । १७ । ओ] (ओ= अपकर्षण भागहार) उसका बहुभाग द्रव्य [१ ⌂ स a १२- ओ / ७ । ख । १७ । ओ] पूर्व के समान अपनी स्थिति में रहता है। एकभाग द्रव्य का अपकर्षण होता है।

(बहुभाग द्रव्य निकालने के लिए सर्वद्रव्य में जिस संख्या से भाग देकर एक भाग निकाला उसी संख्या में से एक कम करके उस संख्या से द्रव्य को गुणा करें।

जैसे १०० / १० =१० एक भाग व १००x९ / १० = ९० बहुभाग

यहाँ ओ से भाग दिया इसलिए उसका बहुभाग निकालने के लिए एक कम ओ से गुणा)

पुन: अपकृष्ट किए एक भागमात्र द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर (एक भाग अलग रखकर) शेष बहुभाग द्रव्य का गुणश्रेणि के ऊपर की स्थिति में निक्षेपण करता है।

अपकृष्ट एकभाग का बहुभाग

१ ⌂
स a १२- प
a
७ । ख । १७ । ओ । प
a

एक भाग का एक भाग।

स a १२-
७ । ख । १७ । ओ । प
a

(यहाँ पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग दिया इसलिए पल्य के असंख्यातवें भाग में से एक घटा करके गुणा किया । सर्वत्र जहाँ बहुभाग निकालने का प्रसंग हो वहाँ इसी प्रकार करें) ।।६९।।

विशेषार्थ :- यहाँ उपरितन स्थितियों में गुणश्रेणि शीर्ष से आगे की और अतिस्थापनावलि से पूर्व तक की स्थितियाँ ली गई हैं । यहाँ इतना विशेष जानना कि जिस निषेकस्थिति में से द्रव्य का अपकर्षण किया जाय उससे नीचे एक आवलिप्रमाण निषेकस्थितियाँ अतिस्थापनावलि रूप होती हैं और उससे नीचे तक उस निषेकस्थिति के द्रव्य का निक्षेप होता है।

सेसिगिभागे भजिदे असंखलोगेण तत्थ बहुभागं।
गुणसेढीए सिंचदि सेसिगिभागं च उदयम्हि।।७०।।

शेषैकभागे भजितेऽसंख्यलोकेन तत्र बहुभागम्।
गुणश्रेण्यां सिञ्चति शेषैकभागं चोदये।।७०।।

पल्यासंख्यातैकभागोऽयं

स a १२-
७ । ख । १७ । ओ । प
a

अस्मिन्नसंख्येयलोकेन भाजिते बहुभागद्रव्यमिदं

१ ⌂
स a १२- ≡a
७ । ख । १७ । ओ । प≡a
a

गुणश्रेण्यां सिञ्चति गुणश्रेण्यायामे निक्षिपतीत्यर्थः। शेषैकभागं

स a १२-
७ । ख । १७ । ओ । प≡a
a

उदये उदयावल्यां निक्षिपति। चशब्दः परस्परसमुच्चयार्थः ।।७०।।

अन्वयार्थः- **(सेसिगिभागे)** शेष रहे एक भाग में **(असंखलोगेण)** असंख्यात लोक से **(भजिदे)** भाग देने पर **(तत्थ बहुभागं)** वहाँ बहुभाग **(गुणसेढिए)** गुणश्रेणि में **(सिंचदि)** देता है **(च)** और **(सेसिगिभागं)** शेष रहा एक भाग **(उदयम्हि)** उदयावलि में देता है ।।७०।।

टीकार्थ:– पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया एक भाग

स a १२ –
७ । ख । १७ । ओ । प
a

इसमें असंख्यात लोक से भाग देने पर बहुभागद्रव्य यह आता है।

१ ⌓
स a १२ – ≡a
७ । ख । १७ । ओ । प≡a
a

(केवल ≡ a असंख्यात लोक से भाग दिया और बहुभाग लेने के लिए एक कम असंख्यात लोक से गुणा किया।) इस बहुभाग द्रव्य को गुणश्रेणि–आयाम में देता है। शेष रहे एक भाग का उदयावलि में निक्षेपण करता है ।

स a १२ –
७ । ख । १७ । ओ । प≡a
a

यह एक भाग द्रव्य है। गाथा में च शब्द परस्पर का समुच्चय करने के लिए है। (बहुभाग गुणश्रेणि में देता है और एकभाग उदयावलि में देता है)

विशेषार्थ:– उपर्युक्त गणित अंकसंदृष्टि से समझाते हैं। गाथा ६९ में कहे गये अनुसार मिथ्यात्वादि कर्मों के द्रव्य में अपकर्षण भागहार से भाग देने पर आया जो एक भाग है उतना द्रव्य अपकर्षण के लिए ग्रहण करता है। मिथ्यात्वादि कर्मों का द्रव्य अपकर्षण भागहार से भाग देने पर माना कि ४०,००० आया । पल्य का असंख्यातवाँ भाग १० और असंख्यात लोक १०० माना। अब इस गाथा में कहे अनुसार विचार करने पर निम्नोक्त सूत्र निष्पन्न होते हैं। उन सूत्रों में संख्या रखनेपर अपना–अपना द्रव्य आता है।

उपरितन स्थिति में दीयमान द्रव्य = अपकृष्ट द्रव्य X(पल्य का असंख्यातवाँ भाग –१) / पल्य का असंख्यातवाँ भाग = ४०,०००X(१०–१) / १०

=३६,०००

१.अपकृष्ट द्रव्य का एक भागद्रव्य = मिथ्यात्वादिकर्मों का अपकर्षण भागहार से भाग देने पर आया हुआ द्रव्य / पल्य का असंख्यातवाँ भाग

= ४०००० / १० = ४०००

२.गुणश्रेणी में दीयमान द्रव्य = (शेष एकभाग द्रव्य)X(असंख्यात लोक –१) / असंख्यात लोक

= (४०००)X(१००–१) / १०० = ३,९६० अर्थात्

= (शेष एकभाग द्रव्य) – (उदयावली में दीयमान द्रव्य)

= ४,००० – ४० = ३,९६०

३.उदयावली में दीयमान द्रव्य = शेष एकभाग द्रव्य / असंख्यात लोक = ४,००० / १०० = ४०

उदयावलिस्स दव्वं आवलिभजिदे दु होदि मज्झधणं।
रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण।।७१।।
मज्झिमधणमवहरिदे पचयं पचयं णिसेयहारेण।
गुणिदे आदिणिसेयं विसेसहीणक्कमं तत्तो[1]।।७२।।

उदयावलेर्द्रव्यमावलिभजिते तु भवति मध्यधनम्।
रूपोनाध्वानार्धेनोनेन निषेकहारेण।।७१।।
मध्यमधनमवहरिते प्रचयं प्रचयं निषेकहारेण।
गुणिते आदिनिषेकं विशेषहीनक्रमं ततः।।७२।।

तदेकभागमात्रे उदयावलिसम्बन्धिद्रव्ये आवल्या भक्ते मध्यमधनं भवति

स a **१२–**
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a **८**
a

रूपोनाध्वार्द्धेन रूपोनगच्छार्धेन ऊनेन रहितेन निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या तस्मिन् मध्यमधने भाजिते प्रचयो विशेषो भवति।

स a **१२–** १ ⌓
७ । ख । १७ । ओ । प । १ ≡a **। ८ । १६ – ८**
a **२**

तस्मिन् प्रचये द्विगुण–गुणहान्या गुणिते आदिनिषको भवति।

स a **१२–। १६**
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a **। ८ । १६ – ८**
a **२**

ततो द्वितीयादिनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण निक्षिप्यते यावच्चरमनिषेकः रूपोनावलिमात्रविशेषहीन–प्रथमनिषेकमात्रो भवति

स a **१२–। १६– ८**
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a **। ८ । १६ – ८**
a **२**

उदयावली में द्रव्य देने का विधान –

अन्वयार्थ:– (उदयावलिस्स दव्वं) उदयावलि के (उदयावलि में देने योग्य) द्रव्य में **(आवलिभजिदे दु)** आवलि से भाग देने पर **(मज्झधणं)** मध्यधन **(होदि)** होता है **(रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण)** एक कम अध्वान के आधे से कम निषेकहार से **(मज्झिमधणं)** मध्यमधन में **(अवहरिदे)** भाग देने

१) ध. पु. ६ पृ. २२४.

पर **(पचयं)** प्रचय (चय) आता है। **(पचयं)** चय में **(णिसेयहारेण गुणिदे)** निषेकहार से गुणा करने पर **(आदिणिसेयं)** प्रथम निषेक (उदयावलि के प्रथम समय में देने योग्य द्रव्य का प्रमाण) आता है। **(तत्तो)** उसके अनन्तर **(विसेसहीणकमं)** क्रम से एक-एक चय कम दिया जाता है।

टीकार्थ:- उस एक भागमात्र उदयावलि संबंधी द्रव्य में आवलि से भाग देने पर मध्यम धन आता है।

$\frac{\text{सर्वधन}}{\text{गच्छ}}$ = मध्यमधन (यहाँ सर्वधन उदयावलि में देने योग्य द्रव्य है और गच्छ एक आवलि है। यहाँ आवलि की संदृष्टि ८ कल्पित है)

सर्वधन

स a १२ -
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a
a

मध्यमधन

स a १२ -
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a ८
a

एक कम गच्छ के आधे से हीन निषेकहार अर्थात् दो गुणहानि से उस मध्यमधन में भाग देने पर चय आता है (निषेकहार = १६, आवलि में १ कम करके २ से भाग देने पर)

$\frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \frac{(\text{गच्छ}-१)}{२}}$ = चय

स a **१२ -** १ ꣳ
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a **। ८ । १६ - ८**
a **२**

उस चय को दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम निषेक आता है।

चय x दो गुणहानि = प्रथम निषेक

स a **१२ -। १६**
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a**। ८ । १६- ८**
a **२**

उसके अनन्तर द्वितीयादि निषेक से अंतिम निषेकपर्यंत चयहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है।

एक कम आवलिप्रमाण चय प्रथम निषेक में से कम करनेपर अंतिम निषेक का प्रमाण आता है।

प्रथम निषेक - [चय x (गच्छ - १)] = अन्तिम निषेक

स a **१२ -। १६ - ८**
७ । ख । १७ । ओ । प । ≡a**। ८ । १६ - ८**
a **२**

यहाँ गच्छ आवलि है। उसकी संदृष्टि है। उसमें से १ कम करके इतने चय प्रथम निषेक में से घटा दिये ।। ७१-७२।।

विशेषार्थ:- उदयावलि में द्रव्य देने का विधान-

सर्वद्रव्य में गच्छ से भाग देने पर मध्यमधन आता है। गच्छ में एक कम करके उसका आधा करके निषेकहार (दो गुणहानि) में से कम करें। जो लब्ध आए उससे मध्यमधन में भाग देने पर चय आता है।

अंकसंदृष्टि से सर्वद्रव्य ४०० माना व गच्छ ८, निषेकहार = १६।

करणसूत्र –१.

$$\text{मध्यमधन} = \frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{गच्छ}} = \frac{४००}{८} = ५०$$

करणसूत्र –२

$$\text{चय} = \frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \frac{(\text{गच्छ}-१)}{२}} \quad \frac{५०}{१६-\frac{(८-१)}{२}} = \frac{५०}{१६-\frac{७}{२}} = \frac{५०}{\frac{३२-७}{२}} = \frac{५०}{\frac{२५}{२}} = \frac{५० \times २}{२५} = ४$$

करणसूत्र ३ – प्रथम निषेक में देने योग्य धन = चय x दो गुणहानि = ४x१६=६४
दूसरे, तीसरे आदि निषेकों में एक–एक चय कम देना।

करणसूत्र ४ – द्वितीय निषेक = प्रथम निषेक–१चय,६४–४=६०।
एक कम गच्छ मात्र चय प्रथम निषेक में से कम करनेपर अंतिम निषेक का देय द्रव्य निकलता है।

करणसूत्र ५ – अन्तिम निषेक= प्रथम निषेक– [(गच्छ–१)xचय]=६४– [(८–१)x४] ,
=६४–(७x४), = ६४–२८=३६ अन्तिम निषेक।

ओकड्डिदम्हि देदि हु असंखसमयपबद्धमादिम्हि।
संखातीतगुणक्कममसंखहीणं विसेसहीणकमं।।७३।।

अपकर्षिते ददाति हि असंख्यसमयप्रबद्धमादौ।
संख्यातीतगुणक्रममसंख्यहीनं विशेषहीनक्रमम्।।७३।।

पुनर्गुणश्रेण्यर्थमपकृष्टद्रव्यस्य असंख्यातलोकभक्तबहुभागद्रव्यमिदं

१ ^
स a १२– ≡a
७ । ख । १७ । ओ । प≡a
a

अस्मिन्नन्तर्मुहूर्तमात्रे गुणश्रेण्यायामे प्रतिसमयमसंख्येयगुणितनिक्षेपाभ्युपगमात् संख्याता–वलिकालसर्वगुणकारसंयोगरूपेण प्रमाणराशिना भक्ते तदेकभागमसंख्यातसमयप्रबद्धमात्रं गुणश्रेण्यादिनिषेके ददाति, भागहारभूतपल्यभागहारस्यासंख्येयस्य माहात्म्यादसंख्येयसमयप्रबद्धमात्रं गुणश्रेणिप्रथमनिषेके निक्षिप्यत इत्यर्थ:। ततो द्वितीयादिनिषेकेषु गुणश्रेण्यायामचरमनिषेकपर्यंतेषु प्रतिनिषेकमसंख्येयगुणितं द्रव्यं निक्षिप्यते । तत्राङ्कसंदृष्ट्या गुणश्रेणिनिषेकाश्चत्वार:। असंख्येयगुणकारसन्दृष्टिश्चत्वार:। एवं च प्रथमे निषेके एको गुणकार:। द्वितीये चत्वार:। तृतीये षोडश। चतुर्थे चतु:षष्टि:। सर्वगुणकारसंयोग: पञ्चाशीति: । तत उपरितनस्थितिप्रथमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यमसंख्येयगुणहीनं, कुत:? उपरितनस्थितौ निक्षिप्तद्रव्यमिदं

स a १२ – (१ ⌒ / प a)

७ । ख । १७ । ओ । प (a)

इदं नानागुणहानिषु निक्षिप्यत इति प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके 'द्विवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यभिप्रायेण द्व्यर्धगुणहान्या भक्त्वा द्विगुणगुणहान्या अध उपरि च गुणयित्वा निक्षिप्यमाणे तद्द्रव्यागमनात् । ततो द्वितीयादिनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण अग्रे अतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपेत् । एवं गुणश्रेणिकरण–प्रथमसमयापकृष्टत्रिद्रव्यनिक्षेपसन्दृष्टिर्मूलग्रन्थे द्रष्टव्या ।।७३।।

अन्वयार्थः– **(ओकड्डिदम्हि)** अपकर्षित द्रव्य में से **(आदिम्हि)** गुणश्रेणी के प्रथम निषेक में **(असंखसमयपबद्धं)** असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य **(देदि हु)** देता है (उसके अनन्तर गुणश्रेणि शीर्षपर्यन्त) **(संखातीत गुणक्कमं)** असंख्यात गुणित क्रम से देता है (उसके बाद उपरितन स्थिति में) **(असंखहीणं)** असंख्यातगुणा हीन, उसके बाद में **(विसेसहीणकमं)** चयहीन क्रम से देता है ।।७३।।

टीकार्थः– पुनः गुणश्रेणि के लिए अपकृष्ट द्रव्य में असंख्यात लोक से भाग देने पर आया बहुभाग द्रव्य यह है।

स a १२– ≡a

७ । ख । १७ । ओ । प≡a

a

इस अन्तर्मुहूर्तमात्र गुणश्रेणि आयाम में प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितरूप से निक्षेपण का स्वीकार करने से संख्यात आवलिप्रमाण काल के सर्व गुणकारों का योग करके उसे प्रमाणराशि से गुणश्रेणि द्रव्य में भाग देने पर असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण एक भाग आता है । उतना द्रव्य गुणश्रेणि के प्रथम निषेक में दिया जाता है। भागहारभूत पल्य की भागहाररूप जो असंख्यात संख्या है वह बड़ी होने से पल्य का असंख्यातवाँ भाग छोटी संख्या आती है। उससे द्रव्य में भाग देने पर असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य आता है। उतना द्रव्य गुणश्रेणि के प्रथम निषेक में निक्षेपण किया जाता है। उसके बाद द्वितीयादि निषेकों से लेकर गुणश्रेणि–आयाम के अंतिम निषेक पर्यन्त प्रत्येक निषेक में असंख्यातगुणित द्रव्य दिया जाता है। अंकसंदृष्टि से माना कि गुणश्रेणि निषेक ४, असंख्यात गुणकार की संदृष्टि ४ है। इस प्रकार प्रथम निषेक में १ गुणकार, दूसरे में ४ गुणकार, तीसरे में १६ गुणकार, चौथे में ६४ गुणकार, सभी गुणकारों का योग ८५ होता है। (गुणश्रेणि में देय द्रव्य ८५०० माना । ८५०० में ८५ का भाग देने पर एक भाग १०० आया। उतना प्रथम निषेक में देता है। दूसरे निषेक में १००x४=४०० द्रव्य देता है। तीसरे निषेक में १००x१६=१६००, चौथे निषेक में १००x६४=६४०० देता है।

उसके बाद उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में निक्षिप्त द्रव्य असंख्यात गुणा हीन है। ऐसा क्यों? क्योंकि उपरितन स्थिति में निक्षिप्त द्रव्य संपूर्ण अपकृष्ट द्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर जो बहुभाग आता है उतना होता है।

१ ⌒ स a १२– प a ७ । ख । १७ । ओ । प a

यह द्रव्य नाना गुणहानियों में दिया जाता है। उपरितन स्थिति में देने योग्य द्रव्य में डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर प्रथम निषेक में देने योग्य द्रव्य आता है। उसमें पुनः दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम निषेक आता है। उसके बाद द्वितीयादि निषेकों में एक–एक चय हीनक्रम से आगे अतिस्थापनावलि छोड़कर देता है। इसप्रकार गुणश्रेणि करने के प्रथम समय में अपकर्षण किए द्रव्य को तीन जगह देने की संदृष्टि मूलग्रन्थ में देखना चाहिये।

विशेषार्थ :– गुणश्रेणी निर्जरा के लिए द्रव्य का (कर्म–परमाणुओं का) अपकर्षण किया जाता है। किन्तु अपकृष्ट द्रव्य केवल गुणश्रेणी आयाम में न देकर उदयावली और उपरितन स्थिति में भी दिया जाता है। जिसप्रकार किसी गुरुकुल में मेहमानों के लिए आम खरीदकर लाये गये। लाते समय तो मेहमानों के उद्देश्य से लाए किन्तु उसका बँटवारा बच्चों, नौकरों और मेहमानों में किया जाता है। बँटवारे में सबसे ज्यादा आम बच्चों को मिलते हैं, उससे कम अतिथियों को मिलते हैं। उससे भी कम नौकरों को मिलते हैं। परंतु एक–एक में देखेंगे तो अतिथियों को ज्यादा मिलते हैं; उससे नौकरों को कम और उससे कम बच्चों को मिलते हैं।

उदाहरण के लिए नौकर ५ हैं, अतिथि १० हैं, बच्चे २०० हैं। आम १५० लाये। उसमें से बहुभाग अर्थात् १०० आम बच्चों को बाँटें। प्रत्येक को आधा–आधा आम मिला। एक भाग अर्थात् ५० आम, उनमें से एक भाग अर्थात् १० आम नौकरों को दिये। प्रत्येक को दो–दो आम मिले और बहुभाग ४० आम मेहमानों को दिये। प्रत्येक मेहमान को ४–४ आम मिले। इसीप्रकार उपरितन स्थिति में बहुभागप्रमाण ज्यादा द्रव्य मिलता है; परंतु उसका बँटवारा अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण स्थितिमें स्थित निषेकों मे करते हैं इसलिए प्रत्येक निषेक में समयप्रबद्ध का असंख्यातवाँ भागमात्र द्रव्य प्राप्त होता है। गुणश्रेणी में कुल देय द्रव्य उपरितन स्थिति से कम होने पर भी वह अंतर्मुहूर्तमात्र निषेकों मे देता है अतः प्रत्येक निषेक में असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य प्राप्त होता है। उदाहरण स्थूल रूप से समझना। वास्तविक गणित में प्रत्येक निषेक में समान विभाग नहीं मिलता है। गुणश्रेणि में असंख्यात गुणित क्रम से और उपरितन स्थिति में व उदयावलि में चयहीन क्रम से मिलता है। यह बात ध्यान में रखना।

उपरितन स्थिति में देय द्रव्य १२,७०० माना। उसमें साधिक ड्ढेढ़ गुणहानि का भाग देने पर प्रथम निषेक का द्रव्य आता है। एक गुणहानि का प्रमाण ८, ड्ढेढ़ गुणहानि १२, साधिक का प्रमाण १०३ह्न२५६ माना

$$\frac{\text{उपरितन स्थिति का देय द्रव्य}}{\text{साधिक डेढ़गुणहानि}} = \text{उपरितन स्थिति का प्रथम निषेक}$$

$$\frac{१२७००}{१२\,\frac{१०३}{२५६}} = \frac{१२७००}{\frac{३१७५}{२५६}} = \frac{१२७०० \times २५६}{३१७५} = \boxed{१०२४}$$

$$\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{दो गुणहानि}} = \text{चय}, \frac{१०२४}{१६} = ६४ \text{ चय},$$

प्रथम निषेक के द्रव्य में एक चय कम करनेपर द्वितीय निषेक का देय द्रव्य आता है। इसीप्रकार एक एक चय कम करने पर तृतीयादि निषेकों में देय द्रव्य का प्रमाण आता है ।

१०२४−६४=९६० द्वितीय निषेक, ९६०−६४= ८९६ तृतीय निषेक इत्यादि

गुणश्रेणी के लिए अपकृष्ट द्रव्य देने का विधान

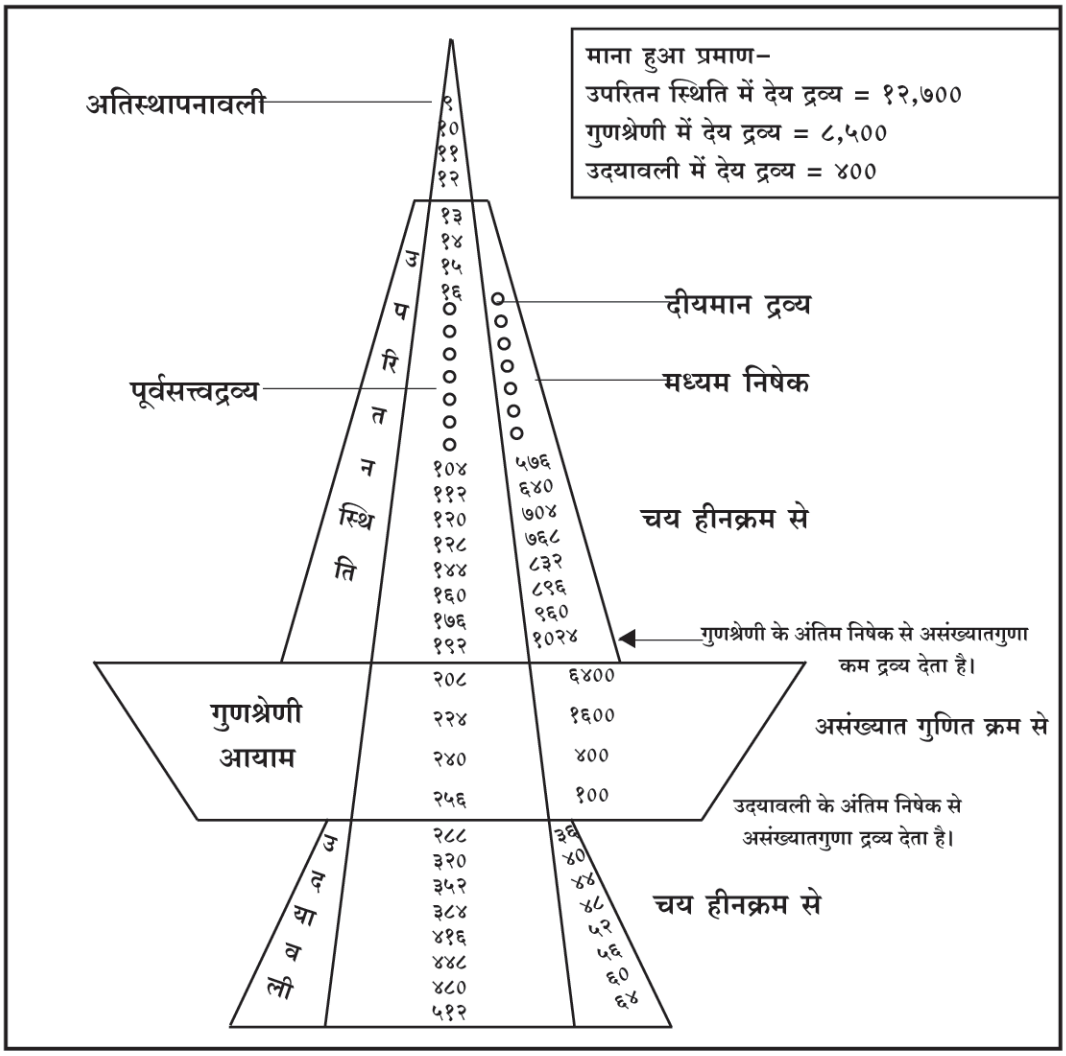

पडिसमयमोक्कड्डुदि असंखगुणियक्कमेण सिंचदि य।
इदि गुणसेढीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं।।७४।।

प्रतिसमयमपकर्षत्यसंख्यगुणितक्रमेण सिञ्चति च।
इति गुणश्रेणीकरणमायुष्कवर्ज्यानां कर्मणाम्।।७४।।

एवं प्रतिसमयं च गुणश्रेणिकरणद्वितीयादिसमयेष्वपि गुणश्रेणिकरणकालचरमसमयपर्यन्तेषु पूर्वापकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणं द्रव्यमपकर्षति सिञ्चति च, पूर्वोक्तविधानेन उदयावल्यां गुणश्रेण्यायामे उपरितनस्थितौ च तत्तद्द्रव्यं निक्षिपति च, इत्यनेन प्रकारेणायुर्वर्जितानां सप्तप्रकृतीनां द्रव्यस्य मिथ्यात्वद्रव्यवदेव गुणश्रेणिकरणं त्रिद्रव्यनिक्षेपविधानं ज्ञातव्यम् ।।७४।।

अन्वयार्थ:– **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखगुणियक्कमेण)** असंख्यातगुणित क्रम से **(ओक्कड्डुदि)** अपकर्षण करता है **(य)** और **(सिंचदि)** निक्षेपण करता है **(इदि)** इसप्रकार **(आउगवज्जाण)** आयु छोड़कर **(कम्माणं)** शेष कर्मों का **(गुणसेढीकरणं)** गुणश्रेणी-करण जानना चाहिए।।७४।।

टीकार्थ:– इस प्रकार प्रत्येक समय में अर्थात् गुणश्रेणिकरण के दूसरे आदि समय से गुणश्रेणिकरण काल के अंतिम समयपर्यंत पूर्व समय के अपकृष्ट द्रव्य की अपेक्षा आगे के समय में असंख्यात गुणित द्रव्य का अपकर्षण करता है और निक्षेपण करता है। पूर्व में कहे गए विधान से उदयावलि में, गुणश्रेणी आयाम में और उपरितन स्थिति में अपने द्रव्य का निक्षेपण करता है। इसप्रकार आयु छोड़कर सात प्रकृतियों के द्रव्य का मिथ्यात्व के द्रव्य के समान ही गुणश्रेणिकरण और तीन द्रव्य का निक्षेप विधान जानना चाहिए ।।७४।।

अथ गुणसंक्रमविधानार्थमाह–

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं।
बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु।।७५।।

प्रतिसमयमसंख्यगुणं द्रव्यं संक्रामति अप्रशस्तानाम्।
बन्धोज्झितप्रकृतीनां बध्यमानस्वजातिप्रकृतिषु।।७५।।

गुणसेढी गुणसंक्रम इति पूर्वमुद्दिष्टो गुणसंक्रम: अपूर्वकरणप्रथमसमये नास्ति तथापि स्वयोग्यावसरे भविष्यतस्तस्य स्वरूपं पूर्वोद्देशानुसारेणास्मिन् प्रकरणे कथ्यते। तद्यथा– अप्रशस्तानां बन्धोज्झितप्रकृतींना द्रव्यं प्रतिसमयमसंख्येयगुणं बध्यमानस्वजातीयप्रकृतिषु संक्रामति। पूर्वस्वरूपं त्यक्त्वान्यस्वरूपं गृह्णातीत्यर्थ: ।।७५।।

अब गुणसंक्रमण का विधान कहते हैं–

अन्वयार्थ:– **(अप्पसत्थाणं बंधुज्झियपयडीणं)** बंधरहित अप्रशस्त प्रकृतियों का **(दव्वं)** द्रव्य **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखगुणं)** असंख्यात गुणितरूप से **(बंधंतसजादिपयडीसु)** बांधी जाने वाली स्वजातीय प्रकृतियों में **(संकमदि)** संक्रमित करता है ।

टीकार्थ:– पूर्व में कहा गया गुणसंक्रमण अपूर्वकरण के पहले समय में नहीं होता है फिर भी अपने योग्य अवसर पर होता है। उसका स्वरूप पूर्व उद्देशानुसार इस प्रकरण में कहते हैं। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है – बंधरहित अप्रशस्त प्रकृतियों का द्रव्य प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितरूप से बध्यमान स्वजातीय प्रकृतियों में संक्रमित करता है। अपने पूर्व स्वरूप को छोड़कर दूसरे स्वरूप को ग्रहण करता है इस प्रकार संक्रमण का अर्थ है।।७५।।

विशेषार्थ:– औपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के प्रथम समय से शुरूआत करके विध्यात संक्रमण प्राप्त होने के पूर्व समय तक गुणसंक्रमण के द्वारा मिथ्यात्व के द्रव्य को सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप से संक्रमित करता है। आगे इस विषय का विशेष विचार किया गया है। आगे गाथा ७६ में अन्य किन प्रकृतियों का कौनसी अवस्था में गुणसंक्रमण होता है इसका निर्देश किया गया है। यहाँ ७५ वीं गाथा में कौनसी प्रकृतियों का गुणसंक्रमण होता है, इसका सामान्य निर्देश किया गया है।

एवंविहसंकमणं पढमकसायाण मिच्छमिस्साणं।
संजोजणखवणाए इदरेसिं उभयसेढिम्मि।।७६।।

एवंविधसंक्रमणं प्रथमकषायाणां मिथ्यात्वमिश्रयो:।
संयोजनक्षपणयोरितरेषामुभयश्रेणौ।।७६।।

एवंविधं प्रतिसमयमसंख्येयगुणं संक्रमणं प्रथमकषायाणामनन्तानुबन्धिनां विसंयोजने वर्तते। मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्यो: क्षपणायां वर्तते । इतरासां प्रकृतीनामुभयश्रेण्यामुपशमकश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां च वर्तते । यथा असातद्रव्यस्य श्रेण्यां बन्धरहितस्य बध्यमाने सातद्रव्ये संक्रमणं, सातबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्त:२९,असातबन्धकालस्तु ततस्संख्येयगुणोऽन्तर्मुहूर्त: २९ । ४ मिश्रकाल:,

प्र.	फ.	इ.
२९५	स a १२– ७ ।	२९१

इति त्रैराशिकेन लब्धं सातद्रव्यं वेदनीयद्रव्यस्य संख्यातैकभागमात्रं लब्धं [स a १२–। १ / ७ । ५] **एतस्मात्संख्येयगुणमसातद्रव्यं** [स a १२–। ४ / ७ । ५] **श्रेण्यां बन्धरहितस्यासातद्रव्यस्य बध्यमाने सातद्रव्ये प्रतिसमयमसंख्येयगुणं संक्रमणं भवति ।।७६।।**

अन्वयार्थ :– **(एवंविहसंकमणं)** इसप्रकार का संक्रमण **(पढमकसायाण)** प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय का **(मिच्छमिस्साणं)** मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृति का क्रमश: **(संजोजणखवणाए)** विसंयोजन के काल में और क्षपणा के काल में होता है। **(इदरेसिं)** शेष प्रकृतियों का संक्रमण **(उभयसेढिम्मि)** दोनों श्रेणियों में (उपशम और क्षपकश्रेणि में) होता है।

टीकार्थ:– इसप्रकार से प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित संक्रमण प्रथम अनन्तानुबन्धी कषायों के विसंयोजना के काल में होता है। मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृतियों का गुणसंक्रमण क्षय के समय होता है। अन्य प्रकृतियों का गुणसंक्रमण उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि में होता है। जैसे श्रेणि में बंधरहित असातावेदनीय प्रकृति का संक्रमण बध्यमान साता वेदनीय के द्रव्य में होता है। सातावेदनीय का बंधकाल अंतर्मुहूर्त है। संदृष्टि [२ ९] असातावेदनीय का बंधकाल उससे संख्यात गुणा अन्तर्मुहूर्त है। उसकी संदृष्टि [२ ९ । ४] दोनों का मिलकर काल २९५। साता और असाता का द्रव्य निकालने के लिए अब त्रैराशिक करते हैं । [२ ९ ५] इतने [स a १२– / ७ ।] काल में इतना द्रव्य तो २९ इतने काल में कितना द्रव्य?

प्रमाण	फलराशि	इच्छा
२९।५	स a १२– / ७ ।	२९।१

$\frac{\text{फल} \times \text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}}$ $\frac{\text{स a १२–} \times \text{२९१}}{\text{७ । } \quad \text{२९५}}$, $\frac{\text{स a १२– } \quad \text{१}}{\text{७ । } \quad \text{५}}$ =साता वेदनीय का द्रव्य

सर्व वेदनीय द्रव्य का संख्यातवाँ भाग द्रव्य साता वेदनीय का है। इससे असाता वेदनीय का द्रव्य संख्यात गुणा है। $= \frac{\text{स a १२– } \quad \text{४}}{\text{७ । } \quad \text{५}}$ श्रेणि में बंधरहित असाता के द्रव्य का बध्यमान साता के द्रव्य में प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितरूप से संक्रमण होता है ।।७६।।

विशेषार्थ:– अंकसंदृष्टि – माना कि साता वेदनीय का बंधकाल ४ समय (संख्यात की सहनानी ४ मानी।)तो असाता वेदनीय का बंधकाल १६ समय और दोनों का मिलकर बंधकाल १६+४=२० समय और वेदनीय का द्रव्य २000।

	प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
प्रथम त्रैराशिक	२० समय में	२000 द्रव्य	४ समय में कितना?	२000 x ४ह्न२०=४00
दूसरा त्रैराशिक	२० समय में	२000 द्रव्य	१६ समय में कितना?	२000x१६ह्न२०=१६00

साता वेदनीय से चारगुणा असाता वेदनीय का द्रव्य आया ४00x४=१६00। इसी प्रकार वास्तविक गणित जानना चाहिए।

अथ स्थितिकाण्डकघातस्वरूपं निरूपयति–

पढमं अवरवरट्ठिदिखंडं पल्लस्स संखभागं तु।
सायरपुधत्तमेत्तं इदि संखसहस्सखंडाणि[1] ।।७७।।

प्रथममवरवरस्थितिखण्डं पल्यस्य संख्येयभागं तु।
सागरपृथक्त्वमात्रमिति संख्यसहस्रखण्डानि।।७७।।

अपूर्वकरणप्रथमसमये क्रियमाणमवरं जघन्यं स्थितिखण्डं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं प/९ तु पुनर्वरमुत्कृष्टस्थितिखण्डं सागरोपमपृथक्त्वमात्रं भवति [सा ७ / ८] यद्यपि तत्काले आयुर्वर्जितानां सप्तानां कर्मणां स्थितिरन्त:कोटीकोटिर्भवति तथापि विशुद्धिपरिणामभेदवशात् कस्यचिज्जीवस्य कर्मस्थितिर्जघन्या अल्पान्त:कोटीकोटिर्भवति। कस्यचित् पुनरुत्कृष्टा कर्मस्थितिरधिकान्तःकोटी–कोटिसागरोपमा भवति। तदनुसारेण स्थितिकाण्डकमपि जघन्यमुत्कृष्टं च सम्भवतीत्यर्थ:। मध्ये काण्डकविकल्पा असंख्येया: [प १ १ ९ ९ ९] स्थितिविकल्पास्तत: संख्येयगुणा: [प १ ९ ९] एतावत्सु काण्डकविकल्पेषु प्र. [प १ ९ ९ ९] यद्येतावन्त: स्थितिविकल्पा सम्भवन्ति फ. [प १ ९ ९] तदा एकस्मिन् काण्डकविकल्पे कियन्त: स्थितिविकल्पा: सम्भवेयु: इ. १ इति त्रैराशिकलब्धा: एककाण्डकविकल्पे संख्येया: स्थितिविकल्पा: लब्धं ९ अंकसंदृष्टौ काण्डकविकल्पा: पञ्च प्रमाणं ।प्र.५। स्थितिविकल्पा: पञ्चदश फलं ।फ.१५। इच्छा–काण्डकविकल्प एक: ।इ. १। लब्धा: स्थितिविकल्पास्त्रय:।लब्ध ३ । एवमपूर्वकरणप्रथमसमयं प्रारब्धस्थितिकाण्डकमादिं कृत्वा अन्तर्मुहूर्ते एकैकस्थितिकाण्डकोत्करणसमाप्तौ सत्यां अपूर्वकरणकाले संख्यातसहस्राणि स्थितिकाण्डकानि भवन्ति। अपूर्वकरणकालस्य २ ९९ संख्यातैकभागमात्र: स्थितिकाण्डकोत्करणकाल:, तत: एतावति काले प्र. २९ यद्येकं स्थितिखण्डमुत्कीर्यते फ. १ तदा एतावति काले इ. २ ९९ कियन्ति स्थितिखण्डान्युत्कीर्यन्ते? इति त्रैराशिकेन लब्धानि अपूर्वकरणकाले संख्यातसहस्राणि स्थितिखण्डानि भवन्ति । लब्ध ९000 ।।७७।।

१) ध. पु. ६, पृ. २२४। जयध. पु. १२, पृ. २६०

अब स्थितिकाण्डकघात का स्वरूप कहते हैं –

अन्वयार्थ:– **(पढमं अवरवरट्ठिदिखंडं)** प्रथम जघन्य स्थितिकांडक और उत्कृष्ट स्थितिकांडक क्रम से **(पल्लस्स संखभागं तु)** पल्य का संख्यातवाँ भाग और **(सायरपुधत्तमेत्तं)** सागर पृथक्त्व मात्र होता है **(इदि)** इस प्रकार **(संखसहस्सखंडाणि)** संख्यात हजार स्थितिकांडक होते हैं।।७७।।

टीकार्थ:– अपूर्वकरण के प्रथम समय में किया जाने वाला जघन्य स्थितिखंड अर्थात् स्थितिकांडकायाम पल्य का संख्यातवाँ भाग मात्र होता है। उसकी संदृष्टि [प / ९] परन्तु उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक आयाम सागरोपम पृथक्त्वमात्र होता है [सा ७ / ८] (सात से आठ सागर)। यद्यपि उस काल में आयु छोड़कर सात कर्मों की स्थिति अन्त:कोटाकोटि सागर होती है तथापि विशुद्ध परिणामों के भेद से किसी जीव की कर्मस्थिति जघन्य अल्प अन्त:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण है। पुन: किसी जीव की उत्कृष्ट कर्मस्थिति अधिक अंत:कोटाकोटि सागरोपम है। तदनुसार स्थितिकांडक भी जघन्य और उत्कृष्ट होता है। मध्यम कांडकविकल्प असंख्यात हैं। (एक सागर के १० कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं इसलिए सागर पृथक्त्व के संख्यात ही पल्य होते हैं। सागर पृथक्त्व = संख्यात पल्य [प ९]

(अंत – आदि / वृद्धि) +१ = स्थानसंख्या (किसी भी गच्छ का प्रमाण निकालने के लिए यह सूत्र उपयोगी है।)

कांडकभेद = (उत्कृष्ट काण्डक – जघन्य काण्डक / वृद्धि) + १ , (प – प / १) + १ =

समच्छेद करने पर = (प ९/९ – प/९) + १ , (प/९ (९ – १)) + १ = [प ९ ९̅ / ९ ^१]

स्थितिविकल्प (जघन्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत के भेद) कांडक विकल्प से संख्यातगुणे हैं।

उत्कृष्ट स्थिति = अंत:कोड़ाकोड़ी सागर अर्थात् संख्यात पल्य [प ९९]

जघन्य स्थिति = संख्यात पल्य [प ९]

स्थितिभेद = (उत्कृष्ट स्थिति – जघन्य स्थिति / वृद्धि) + १ = (प ९९ – प ९ / १) + १ = [प ९ ^१ ९̅ ^१ ‾‾]

(समान संख्या एक ओर निकालकर शेष रहे गुणकार में एक कम किया और सभी संख्या पर एक अधिक किया)

इतने कांडकविकल्पों में यदि [प ९ ९̅ / ९ ^१] इतने स्थितिविकल्प [प ९ ९̅ ^१ ‾‾ ^१] होते हैं तो एक कांडकविकल्प में कितने स्थितिभेद होंगे?

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
प १⌓ ९ ९ ९	प १⌓ ९ ९	१	प १⌓ ९ ९ ह्न प १⌓ ९ ९ ९
काण्डकविकल्प	स्थितिविकल्प	काण्डकविकल्प	स्थितिविकल्प = ९

भागहार का भागहार मूलसंख्या का गुणकार होता है। इसलिए संख्यात भागहार भाज्यराशि की पंक्ति में रखी। (सभी अपर्वतन होकर संख्यात शेष रहा)

प १⌓ ९ ९ x ९ / (प १⌓ ९ ९) = ९ एक कांडकविकल्प में संख्यात विकल्प होते हैं। अंकसंदृष्टि की अपेक्षा से माना कि कांडक के भेद ५ व स्थिति विकल्प १५ हैं। १५ x १ ह्न ५ =३।

एक कांडकविकल्प में ३ स्थितिविकल्प आते हैं अर्थात् इतनी स्थितिभेदों में कांडक का प्रमाण समान होगा। इस प्रकार अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रारंभ किये स्थितिकांडक को आदि करके एक-एक अंतर्मुहूर्त में एक-एक स्थितिकांडकोत्कीरण की समाप्ति होती है। इस प्रकार अपूर्वकरण काल में संख्यात हजार स्थितिकांडक होते हैं। अपूर्वकरण काल का संख्यातवाँ एक भागप्रमाण स्थितिकांडकोत्कीरण काल है। इसलिए इतने काल □९९ (प्रमाण □९ यदि एक स्थितिखंड का उत्कीरण (फलराशि १) होता है तो इतने काल में इच्छाराशि (अपूर्वकरण काल) कितने स्थितिखंडों का उत्कीरण होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर

१ x □९९ / □९ = ९ अपूर्वकरणकाल में संख्यात हजार ९००० स्थितिखंड होते हैं ।।७७।।

विशेषार्थ:– अपूर्वकरण के प्रथम समय में ऐसे दो जीवों ने प्रवेश किया जिनके विशुद्धिरूप परिणाम समान होते हैं। फिर भी उनमें से एक जीव पल्योपम का संख्यातवाँ भाग प्रमाण स्थितिकांडकघात के लिए ग्रहण करता है और दूसरा जीव सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण स्थितिकांडकघात के लिए ग्रहण करता है ऐसा क्यों होता है, क्योंकि जब उनके विशुद्ध परिणाम समान माने हैं तो उनके द्वारा घात के लिए ग्रहण किया गया स्थितिकाण्डक समान क्यों नहीं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए जयधवला में बतलाया है कि अपूर्वकरण के प्रथमसमय से पूर्व जितने विशुद्ध परिणाम होते हैं वे सब संसार के योग्य होने से समान ही होते हैं ऐसा नियम न होने से अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिकाण्डकों में यह विसदृशता देखी जाती है। स्थिति अनुसार कांडक का प्रमाण होता है। स्थिति अधिक हो तो कांडक बड़ा होता है और स्थिति कम होती है तो कांडक छोटा होता है।

स्थितिभेद	५० ५१ ५२	५३ ५४ ५५	५६ ५७ ५८	५९ ६० ६१	६२ ६३ ६४
कांडकविकल्प	५ ५ ५	६ ६ ६	७ ७ ७	८ ८ ८	९ ९ ९

माना कि जघन्य स्थिति –५० समय और उत्कृष्ट स्थिति ६४ समय, कुल स्थितिभेद १५ होते हैं। जघन्य कांडक का आयाम ५ समय, उत्कृष्ट कांडक का आयाम ९ समय हैं। ५० से ५२ समय स्थितिविकल्पों का कांडकायाम ५ समय ही रहा। ५३ से ५५ समय स्थितिविकल्पों का कांडकायाम ६ समय ही रहेगा। ५६ से ५८समय स्थितिविकल्पों का कांडकायाम ७ समय ही रहेगा। ५९ से ६१ स्थितिविकल्पों का कांडकायाम ८ समय और ६२ ते ६४ स्थितिविकल्पों का कांडकायाम ९ समय रहेगा, इसप्रकार १५ स्थितिभेदों में कांडकभेद ५ होते हैं।

अथापूर्वकरणप्रथमचरमसमयस्थितिखण्डादीनां अल्पबहुत्वं व्याचष्टे–

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसत्तो।
ठिदिबंधो य अपुव्वे होदि हु संखेज्जगुणहीणो[1] ।।७८।।

आयुष्कवर्ज्यानां स्थितिघातः प्रथमाच्चरमस्थितिसत्त्वं।
स्थितिबन्धश्चापूर्वे भवति हि संख्येयगुणहीनः।।७८।।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयवर्तिभ्यः स्थितिखण्डस्थितिसत्त्वस्थितिबन्धेभ्यः चरमसमयवर्तिनस्ते संख्येयगुणहीना भवन्ति । संदृष्टिः प्रथमसमये काण्डकं प/१ स्थितिसत्त्वं अन्तःकोटीकोटिः।

स्थितिबन्धः अन्तःकोटीकोटिः।/४ चरमसमये काण्डकं प/११ स्थितिसत्त्वं अन्तःकोटीकोटिः।/४

स्थितिबन्धः अन्तःकोटीकोटिः।/४ ४ संख्यातसहस्रस्थितिखण्डस्थितिबन्धापसरणवशात् स्थितिसत्त्वस्थितिबन्धयोः संख्यातगुणहीनत्वं तदनुसारेण स्थितिकाण्डकस्यापि संख्यातगुणहीनत्वं युक्तमेव ।।७८।।

अब अपूर्वकरण के प्रथम और चरम समय में स्थितिखंडादिक का अल्पबहुत्व कहते हैं–

अन्वयार्थ :– (अपुव्वे) अपूर्वकरण में **(आउगवज्जाणं)** आयु छोड़कर शेष कर्मों का **(पढमादु)** प्रथम से (प्रथम स्थितिघात, स्थितिसत्त्व व स्थितिबंध से) **(चरिमठिदिसत्तो ठिदिघादो य ठिदिबंधो)** अंतिम स्थितिघात, स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध **(संखेज्जगुणहीणो)** संख्यातगुणा कम **(होदि हु)** होता है ।।७८।।

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २६८। ध. पु. ६, पृ. २२८/२२९.

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाले स्थितिखंड, स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध की अपेक्षा अंतिम समय में होने वाले स्थितिखंड, स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध संख्यात गुणे हीन होते हैं। प्रथम समय में कांडक $\frac{\textbf{प}}{१}$ (पल्य का संख्यातवां भाग) स्थितिसत्त्व = अंत:कोटाकोटी

$$\text{स्थितिबन्ध} = \frac{\text{अन्त:कोटाकोटि}}{४}\ ।$$ (स्थितिसत्त्व की अपेक्षा स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन है इसलिए ४ संख्यात का भाग दिया)

$$\text{अंतिम समय का काण्डक} = \frac{\text{प्रथम स्थितिकाण्डक}}{\text{संख्यात}} = \boxed{\frac{\textbf{प}}{११}}$$

$$\text{अंतिम समय का स्थितिसत्त्व} = \frac{\text{प्रथम समय का स्थितिसत्त्व}}{\text{संख्यात}} = \frac{\text{अन्त:कोटाकोटी}}{४}$$

$$\text{अंतिम समय का स्थितिबंध} = \frac{\text{प्रथम समय का स्थितिबंध}}{\text{संख्यात}} = \frac{\text{अन्त:कोटाकोटी}}{४।४}$$

संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होने से स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन होता है । संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होने से स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है और स्थिति अनुसार स्थितिकांडक होता है इसलिए स्थितिकांडक भी संख्यातगुणा हीन होता है यह युक्त ही है।

विशेषार्थ:– अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितना स्थितिसत्त्व है, उससे उसके अंतिम समय में वह संख्यातगुणित हीन होता है। प्रथम समय में जितना स्थितिकांडक का प्रमाण है उससे अंतिम समय में संख्यातगुणित हीन हो जाता है तथा प्रथम समय में जितना स्थितिबन्ध होता है अंतिम समय में वह भी संख्यातगुणा हीन होने लगता है। यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

अथानुभागकाण्डकस्वरूपोत्करणकालविषयायामभेदानाह–

एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिबंधओसरणकाले।
संखेज्जसहस्साणि य णिवडंति रसस्स खंडाणि।।७९।।

एकैकस्थितिकाण्डकनिपतनस्थितिबन्धापसरणकाले ।
संख्येयसहस्राणि च निपतन्ति रसस्य खण्डानि।।७९।।

एकैकस्थितिखण्डनिपतनकाल:, एकैकस्थितिबन्धापसरणकालश्च समानावन्तर्मुहूर्तमात्रौ। तस्मिन्नन्तर्मुहूर्ते संख्यातसहस्राण्यनुभागस्य खण्डानि निपतन्ति। एकस्थितिखण्डोत्करणस्थिति–

बन्धापसरणकालस्य | २ ११ | **संख्यातैकभागमात्रोऽनुभागखण्डोत्करणकाल इत्यर्थः** | २ १ | **अनेनानुभागकाण्डकोत्करणकालप्रमाणमुक्तम् ।।७९ ।।**

अब अनुभागकांडक का स्वरूप, उत्कीरणकाल विषय और आयाम के भेद कहते हैं –

अन्वयार्थः– **(एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिबंध ओसरणकाले)** एक–एक स्थितिखंड के उत्कीरणकाल में और स्थितिबंधापसरणकाल में **(संखेज्जसहस्साणि य)** संख्यात हजार **(रसस्स खंडाणि)** अनुभागकाण्डकों का **(णिवडंति)** घात होता है।

टीकार्थः– एक–एक स्थितिकांडक का पतनकाल (घातकाल) और एक–एक स्थितिबंधापसरण का काल दोनों समान अन्तर्मुहूर्त हैं। उस अन्तर्मुहूर्त में संख्यात हजार अनुभागखंड का पतन होता है। एक स्थितिकांडकोत्करण व स्थितिबंधापसरण काल का | २१ १ | संख्यातवाँ भागमात्र अनुभागखंड का उत्कीरण काल | २ १ | है। इसके द्वारा अनुभागकांडकोत्करण काल का प्रमाण कहा गया है ।।७९।।

विशेषार्थः– एक स्थितिकांडकघात और एक स्थितिबंधापसरण का काल समान अंतर्मुहूर्त है। एक स्थितिकाण्डक में हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं क्योंकि स्थितिकांडकोत्कीरण–काल की अपेक्षा अनुभागकाण्डकोत्कीरण का काल संख्यातगुणा कम है। एक अनुभागकांडोत्कीरणकाल का स्थितिकांडोत्कीरणकाल में भाग देने पर संख्यात हजार संख्या प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ एक स्थितिकाण्डक का काल १००० समय माना और एक अनुभागकांडकोत्कीरण का काल ५ समय माना।

$$\frac{\text{स्थितिकाण्डकोत्कीरण काल}}{\text{अनुभागकाण्डकोत्कीरण काल}} = \text{एक स्थितिकाण्डक में होने वाले अनुभागकांडक का प्रमाण}$$

$$\frac{10,000}{5} = 2,000$$

अर्थात् एक स्थितिकांडक के समाप्त होने तक २००० अनुभागकांडक हुए। अपूर्वकरण के पहले समय में स्थितिकाण्डक घात और अनुभागकाण्डकघात एक ही समय में शुरू हुआ। १ से ५ समय में पहला अनुभागकाण्डकघात समाप्त हुआ किन्तु स्थितिकाण्डकघात समाप्त नहीं हुआ। पुनः ६ से १० समय में दूसरा अनुभागकाण्डकघात समाप्त हुआ। इस प्रकार २००० अनुभागकाण्डकघात होंगे तब प्रथम स्थितिकाण्डकघात समाप्त होगा। इसका भाव यह है कि विशुद्धि के माहात्म्य से अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का घात प्रचण्डरूप से होने लगा है।

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि।
सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि ।।८० ।।

अशुभानां प्रकृतीनामनन्तभागा रसस्य खण्डानि।
शुभप्रकृतीनां नियमान्नास्तीति रसस्य खण्डानि।।८० ।।

विशेषार्थ:- प्रत्येक अनुभागकांडक का पतन होने पर जो अनुभागसत्त्व शेष रहता है, उसका अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभाग ग्रहण करके उसके आगे अनुभागकांडक की रचना होती है। एक स्थितिकांडकघात के संख्यात हजारवें भागप्रमाण अंतर्मुहूर्तकाल में उसका पतन होता है। एक-एक अन्तर्मुहूर्त में एक-एक अनुभागकांडक का घात होता है। एक अनुभागकाण्डकोत्कीरणकाल के प्रत्येक समय में एक-एक फालि का पतन होता है। इस प्रकार आगे भी जानना चाहिए। मात्र विशेषता यह है कि अनुभाग का घात अप्रशस्त प्रकृतियों का ही होता है, प्रशस्त प्रकृतियों का नहीं क्योंकि विशुद्धि से प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता है, उसका घात नहीं हो सकता है।

रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्डयाणि थोवाणि ।
अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणंतगुणियकमा[१] ।।८१ ।।
रसगतप्रदेशगुणहानिस्थानकस्पर्धकानि स्तोकानि ।
अतिस्थापननिक्षेपे रसखण्डेऽनन्तगुणितक्रमाणि ।।८१ ।।

रसगतान्यनुभागसम्बन्धीनि प्रदेशगुणहानिस्थानकस्पर्धकानि कर्मपरमाणुसम्बन्ध्येक-गुणहानिस्थितस्पर्धकानि स्तोकानि ९। ततः अतिस्थापनास्पर्धकान्यनन्तगुणाणि ९ ख । ततः निक्षेपस्पर्धकान्यनन्तगुणानि ९ ख ख। ततः अनुभागकाण्डकस्पर्धकान्यनन्तगुणानि ९ ख ख ख। अनेनानुभागकाण्डकायामाल्पबहुत्वं प्रदर्शितम् ।।८१ ।।

अन्वयार्थ:- **(रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्डयाणि)** अनुभाग संबंधी एक प्रदेश गुणहानिस्थान में स्पर्धक **(थोवाणि)** कम हैं उससे **(अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणंतगुणियकमा)** अतिस्थापनारूप स्पर्धक अनन्त गुणे हैं। उससे निक्षेपरूप स्पर्धक अनन्तगुणे हैं और उससे अनुभागकांडकरूप स्पर्धक अनन्त गुणे हैं।।८१।।

टीकार्थ:- अनुभागसंबंधी कर्मपरमाणुओं के एक गुणहानिस्थान में स्पर्धक कम हैं। उसकी संदृष्टि ९ है। उससे अतिस्थापनारूप स्पर्धक अनन्त गुणित हैं ९xख। उससे निक्षेपरूप स्पर्धक अनन्तगुणित हैं ९ x ख x ख। उससे अनुभागकांडकरूप स्पर्धक अनन्तगुणित हैं ९ x ख x ख x ख। इस गाथा के द्वारा अनुभागकांडक-आयाम का अल्पबहुत्व कहा गया है ।।८१।।

विशेषार्थ:- कर्म के अनुभागविषय में स्पर्धक रचना है। उसमें प्रथमादि स्पर्धक कम अनुभागयुक्त हैं। ऊपर के स्पर्धक अधिक अनुभागयुक्त हैं। उन सर्व स्पर्धकों को अनन्त का भाग देने पर जो बहुभाग आता है उतने ऊपर के स्पर्धकों के परमाणु एकभाग मात्र नीचे के स्पर्धकों में से ऊपर के स्पर्धकों को छोड़कर शेष रहे नीचे के स्पर्धकरूप से परिणमाए जाते हैं। उनमें से कुछ परमाणुओं को पहले समय में परिणमाता है तो कुछ को दूसरे समय में परिणमाता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा सभी परमाणुओं को परिणमाकर ऊपर

के स्पर्धकों का अभाव करता है। प्रत्येक समय में जो द्रव्य ग्रहण किया गया उसको फालि कहते हैं। ऐसे अन्तर्मुहूर्त के द्वारा जो कार्य किया उसे काण्डक कहते हैं। उस काण्डक के द्वारा जितने स्पर्धकों का अभाव किया जाता है उसे काण्डकायाम कहते हैं। काण्डक का शेष रहा द्रव्य जो प्रथमादि स्पर्धक में दिया, वे स्पर्धक निक्षेपरूप हैं। जिन ऊपर के स्पर्धकों में द्रव्य नहीं दिया है वे स्पर्धक अतिस्थापनारूप हैं। अनुभागगत एक प्रदेश-गुणहानि में जितना अनुभाग है उसे अनुभागगत प्रदेश-गुणहानि-स्थान कहते हैं। इसमें अनुभाग स्पर्धक सबसे कम होने पर भी अभव्यों से अनन्तगुणित और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं। इससे अतिस्थापनागत अनुभाग-स्पर्धक अनन्तगुणित हैं। अपकर्षण के काल में जो अनुभाग-स्पर्धक अतिस्थापनारूप रहते हैं अर्थात् जिन अनुभाग-स्पर्धकों का उल्लंघन करके नीचे के अनुभाग-स्पर्धकों में निक्षेपण किया जाता है वे अतिस्थापनारूप अनुभाग स्पर्धक अनुभागगत एक प्रदेशगुणहानि संबंधी स्पर्धकों से अनन्तगुणित होते हैं; क्योंकि इन अतिस्थापनारूप स्पर्धकों में अनुभागसंबंधी अनन्त प्रदेशगुणहानियाँ देखी जाती हैं। इससे जिसमें अपकर्षित द्रव्य का निक्षेप होता है वे निक्षेपगत अनुभाग-स्पर्धक अनन्तगुणित होते हैं। इससे अपकर्षण करने के लिए काण्डकरूप से ग्रहण किए अनुभाग स्पर्धक अनन्तगुणित होते हैं क्योंकि अपूर्वकरण के प्रथम अनुभागकांडक के पतन के समय जो अनुभाग सत्त्व है उसमें द्विस्थानीय अनुभागसत्त्व के अनन्तवें भाग को छोड़कर शेष सभी अनुभाग सत्त्व का प्रथम अनुभागकांडकघात में ग्रहण होता है।

उदाहरण माना कि कुल स्पर्धक २८, एक प्रदेशगुणहानि के स्पर्धक २ और अनन्त का प्रमाण २ अतिस्थापनारूप स्पर्धक २×२=४, निक्षेपरूप स्पर्धक ४×२=८, कांडकरूप स्पर्धक=८×२=१६

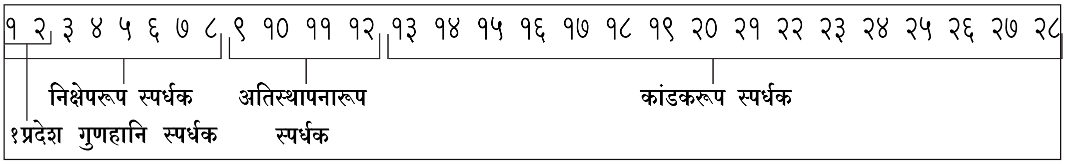

आगे के अनुभागकांडकघात में भी उत्तरोत्तर शेष रहे अनुभाग सत्त्व को विचार में लेकर इसी विधि से विचार करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि एक-एक अनुभागकांडक के पतन के द्वारा अनन्तबहुभागप्रमाण अनुभागस्पर्धकों का पतन होता जाता है।

पढमापुव्वरसादो चरिमे समये पसत्थइदराणं।
रससत्तमणंतगुणं अणंतगुणहीणयं होदि।।८२।।

प्रथमापूर्वरसाच्चरमे समये प्रशस्तेतरेषाम्।
रससत्त्वमनन्तगुणमनन्तगुणहीनकं भवति ।।८२।।

अपूर्वकरणप्रथमसमये प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागसत्त्वात् चरमसमये अनुभागसत्त्वमनन्तगुणं

भवति। प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्ध्या प्रशस्तानुभागस्यानन्तगुणसत्त्वसम्भवात्। इतरासामप्रशस्त-प्रकृतीनां प्रथमसमयानुभागसत्त्वात् चरमसमये तदनुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनं भवति, अनुभागकाण्डकघात-माहात्म्येन तत्सम्भवात्। एवमपूर्वकरणपरिणामैः क्रियमाणं कार्यं व्याख्यातम् ।।८२।।

अन्वयार्थ- **(पसत्थइदराणं)** प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियों के **(पढमापुव्वरसादो)** अपूर्वकरण के प्रथम समय के अनुभाग सत्त्व की अपेक्षा **(चरिमे समये)** अंतिम समय में **(रससत्तं)** अनुभागसत्त्व क्रमशः **(अणंतगुणं)** अनन्तगुणित व **(अणंतगुणहीणयं)** अनन्तगुणित हीन **(होदि)** होता है अर्थात् शुभ प्रकृतियों का अनन्तगुणा और अशुभ प्रकृतियों का अनन्तगुणा हीन अनुभागसत्त्व होता है। ।।८२।।

टीकार्थ- अपूर्वकरण के प्रथम समय के प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभागसत्त्व की अपेक्षा अंतिम समय में अनुभागसत्त्व अनन्तगुणित होता है क्योंकि प्रत्येक समय में अनन्त गुणी विशुद्धि होने पर प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागसत्त्व अनन्तगुणित होता है। शेष अप्रशस्त प्रकृतियों के प्रथम समय के अनुभागसत्त्व की अपेक्षा अंतिम समय में अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा हीन होता है, क्योंकि अनुभाग कांडक के माहात्म्य से वह शक्य है। इसप्रकार अपूर्वकरण परिणामों के द्वारा किया जानेवाला कार्य बताया।।।८२।।

अथानिवृत्तिकरणपरिणामस्वरूपं तत्कार्यं च प्राह-

विदियं व तदियकरणं पडिसमयं एक्क एक्क परिणामो।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधमाणुवई[1] ।।८३।।

द्वितीयमिव तृतीयकरणं प्रतिसमयमेक एकः परिणामः।
अन्यत् स्थितिरसखण्डमन्यत् स्थितिबन्धमाप्नोति।।८३।।

तृतीयकरणः अनिवृत्तिकरणः स च द्वितीयकरण इव व्याख्यातव्यः। यथा अपूर्वकरणे स्थितिखण्डादयः कार्यविशेषाः प्रोक्तास्तथात्राप्यनिवृत्तिकरणे ते प्रवक्तव्या इत्यर्थः। अयं तु विशेषः अस्मिन्ननिवृत्तिकरणकाले प्रतिसमयं नानाजीवपरिणामाः जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहिता एकादृशा एव भवन्ति। यथापूर्वकरणचरमसमये नानाजीवपरिणामाः षट्स्थानवृद्धिगताः परस्परतो जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नाः सन्ति न तथा अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये परस्परतो भिद्यन्ते, तत्र तेषां सर्वेषामपि समानविशुद्धिकत्वात्। अत एव न विद्यते निवृत्तिः एकस्मिन् समये परस्परतो भेद एषामित्यनिवृत्तयः करणविशुद्धिपरिणामा इति अनिवृत्तिकरणसंज्ञा अन्वर्था। द्वितीयादिसमयेषु विशुद्धेरनन्तगुणत्वेऽपि समये समये नानाजीवपरिणामाः सदृशा एव । तत्करणप्रथमसमये अन्यदेव स्थितिखण्डमन्यदेवानुभागखण्डमन्यदेव स्थितिबन्धनं च प्रारभते,अपूर्वकरणकालचरमस्थितिखण्डानुभागखण्डस्थितिबन्धानां तच्चरमसमये समाप्तत्वात्।८३।

---

१) पाठभेद - ठिदिबंधमाढवइ - का. ह. प्र.

अब अनिवृत्तिकरण परिणाम का स्वरूप और उसका कार्य कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(विदियं व तदियकरणं)** दूसरे अपूर्वकरण के समान ही तीसरा अनिवृत्तिकरण होता है। **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(एक्क एक्क परिणामो)** एक–एकही परिणाम होता है। **(अण्णं ठिदिरसखंडं)** पूर्व से अन्य ही स्थितिकाण्डक, अन्य ही अनुभागकाण्डक और **(अण्णं ठिदिबंधं)** अन्य ही स्थितिबंध **(आणुवई)** प्रारम्भ करता है ।।८३।।

टीकार्थ– तीसरे अनिवृत्तिकरण का दूसरे अपूर्वकरण के समान ही व्याख्यान करना चाहिए । जिस प्रकार अपूर्वकरण में स्थितिखंडादि कार्यविशेष कहे उसके समान यहाँ अनिवृत्तिकरण में भी कहना चाहिए ऐसा अर्थ है। परन्तु यह विशेष है कि इस अनिवृत्तिकरण–काल में प्रत्येक समय में नाना जीवों के परिणाम जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से रहित एक समान ही हैं। जिसप्रकार अपूर्वकरण के अंतिम समय में नाना जीवों के परिणाम षट्स्थानवृद्धि को प्राप्त हुए परस्पर में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से भिन्न हैं उसी प्रकार अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में परस्पर में भेदे नहीं जाते अर्थात् भिन्न भिन्न नहीं हैं, क्योंकि वहाँ सभी की विशुद्धि समान ही है। इसलिए एक समय में परस्पर निवृत्ति अर्थात् इनमें भेद नहीं होने से अनिवृत्तिकरण विशुद्ध परिणाम होते हैं। इसप्रकार अनिवृत्तिकरण संज्ञा अन्वर्थ (सार्थक) है। दूसरे आदि समयों में विशुद्धि अनन्तगुणित होती हुयी भी समय–समय में नाना जीवों के परिणाम सदृश ही होते हैं। उस करण के प्रथम समय में अन्य ही स्थितिखंड, अन्य ही अनुभागखंड, अन्य ही स्थितिबंध का आरम्भ करता है, क्योंकि अपूर्वकरणकाल का अंतिम स्थितिखंड, अनुभागखंड और स्थितिबंध उसके अंतिम समय में ही समाप्त होते हैं।।८३।।

विशेषार्थ– अपूर्वकरण में प्रत्येक समय के परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं परन्तु अनिवृत्तिकरण के प्रत्येक समय में नाना जीवों के एकसमान ही परिणाम होते हैं। अनिवृत्तिकरण में भी स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, स्थितिबंधापसरण और गुणश्रेणि ये सर्व क्रियाएँ अपूर्वकरण के समान ही होती हैं, परन्तु इनका प्रमाण अन्य होता है। अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अपूर्वकरण के अंतिम स्थितिकांडक से विशेषहीन अन्य स्थितिकांडक शुरु करता है। पूर्व के स्थितिबंध से पल्योपम का संख्यातवाँ भागप्रमाण हीन स्थितिबंध प्रारम्भ करता है और घात करके शेष रहे अनुभाग का अनन्त बहुभागप्रमाण काण्डक को ग्रहण करता है। गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्व का ही गलितावशेष रहता है।

अथानिवृत्तिकरणकाले कार्यविशेषं प्ररूपयति–

संखेज्जदिमे सेसे दंसणमोहस्स अंतरं कुणइ।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ[1] ।।८४।।

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २७२। ध. पु. ६, पृ. २२०.

संख्येये शेषे दर्शनमोहस्यान्तरं करोति।
अन्यत् स्थितिरसखण्डमन्यत् स्थितिबन्धनं तत्र।।८४।।

अनिवृत्तिकरणकालमन्तर्मुहूर्तमात्रं २९ संख्येयरूपैर्भक्त्वा तद्बहुभागान् [२९ ४/५] पूर्वोक्तस्थितिखण्डादिविधानेन नीत्वा शेषतदेकभागे [२९ १/५] दर्शनमोहस्यान्तरं विवक्षित-स्थित्यायामे निषेकाभावं करोत्यनिवृत्तिकरणविशुद्धिपरिणामो जीवः। तस्मिन्नन्तरकरणकालप्रथमसमये अन्यदेव स्थितिखण्डमन्यदेव रसखण्डमन्यदेव स्थितिबन्धनं च प्रारभते, तद्बहुभागचरमसमये प्राक्तनस्थितिखण्डादीनां परिसमाप्तत्वात्।।८४।।

अब अनिवृत्तिकरण काल में कार्य विशेष कहते हैं-

अन्वयार्थ- (अनिवृत्तिकरणकाल का) **(संखेज्जदिमे सेसे)** संख्यातवां भाग शेष रहने पर **(दंसणमोहस्स)** दर्शनमोह का **(अंतरं)** अंतर **(कुणइ)** करता है **(तत्थ)** वहाँ **(अण्णठिदिरसखंडं)** पूर्व की अपेक्षा अन्य ही स्थितिखंड, अनुभागखंड और **(अण्णं ठिदिबंधणं)** अन्य ही स्थितिबंध करता है।।८४।।

टीकार्थ- अनिवृत्तिकरण का काल अंतर्मुहूर्त है। उसकी संदृष्टि २९. है । उसमें संख्यात से भाग देने पर उसका बहुभागकाल [२९ ४/५] (अनिवृत्तिकरण के काल में संख्यात से भाग दिया। यहाँ संख्यात ५ माना इसलिए ५ से भाग देने पर और ४ से गुणा करने पर $\frac{४}{५}$ बहुभाग आता है और $\frac{१}{५}$ एकभाग आता है।)
पूर्व में कहे गए स्थितिखंडविधान के द्वारा बहुभाग बिताकर शेष रहे एक भाग में [२९ १/५]

अनिवृत्तिकरण विशुद्ध परिणाम युक्त जीव दर्शनमोह का अंतर करता है अर्थात् विवक्षित स्थिति आयाम में निषेकों का अभाव करता है। उस अंतरकरणकाल के प्रथम समय में अन्य ही स्थितिखंड, अन्य ही अनुभागखंड और अन्य ही स्थितिबंध प्रारम्भ करता है क्योंकि अनिवृत्तिकरण के बहुभागकाल के अंतिम समय में पूर्व के स्थितिखंडादि समाप्त होते हैं ।।८४।।

विशेषार्थ- यहाँ मिथ्यात्वकर्म की उपशम विधि का निर्देश किया जा रहा है। उसके अनुसार यहाँ अंतरकरण के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। मिथ्यादृष्टि जीव के अनिवृत्तिकरण काल का बहुभाग बीत जानेपर जब एकभाग शेष रहता है तब इस अंतरकरण विधि का प्रारंभ होता है। परिणाम विशेष के द्वारा विवक्षित कर्मों की नीचे और ऊपर की स्थितियों को छोड़कर मध्य की अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थिति के निषेकों के अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं। जिस कारण से मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व ही उदयरूप प्रकृति है इसलिए

उसके उदय समय से लेकर ऊपर के अन्तर्मुहूर्त काल के जितने समय होते हैं उतने निषेकों को छोड़कर उनसे ऊपर के अंतर्मुहूर्तप्रमाण अन्य निषेकों का उत्कर्षण कर उनका यथासम्भव उन निषेकों से ऊपर के निषेकों में और अपकर्षण कर उन निषेकों से नीचे के निषेकों में निक्षेपण कर के उनका पूरी तरह से अभाव करना अन्तरकरण कहलाता है। यहाँ जिन निषेकों का अभाव किया उनसे नीचे की स्थिति का नाम प्रथम स्थिति है और ऊपर के निषेकों का नाम द्वितीय स्थिति है। यह जीव जिस समय अन्तरकरण–विधि को प्रारम्भ करता है उस समय से स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और स्थितिबन्ध ये तीनों कार्य नये प्रारम्भ होते हैं।

अथान्तरकरणकालपरिमाणं प्ररूपयति–

एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती।
अंतोमुहुत्तमेत्तं अंतरकरणस्स अद्धाणं[१] ।।८५।।

एकस्थितिखण्डोत्कीरणकालेऽन्तरस्य निष्पत्तिः।
अन्तर्मुहूर्तमात्रमन्तरकरणस्याध्वा ।।८५।।

एकस्थितिखण्डोत्करणकाले अन्तरकरणस्य समाप्तिर्भवति स चान्तरकरणस्याध्वा कालः अन्तर्मुहूर्तमात्र एव

२ ९ । ३	
४ । ४	

।।८५।।

अब अंतरकरणकाल का प्रमाण कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(एयट्ठिदिखण्डुक्कीरणकाले)** एक स्थितिखंडोत्करणकाल में **(अंतरस्स णिप्पत्ती)** अंतर की निष्पत्ति होती है। **(अंतरकरणस्स अद्धाणं)** अंतरकरण का काल **(अंतोमुहुत्तमेत्तं)** अंतर्मुहूर्तमात्र है।।८५।।

टीकार्थ– एक स्थितिखंडोत्करणकाल में अंतरकरण की समाप्ति होती है। वह अंतरकरण का काल अंतर्मुहूर्तमात्र ही

२ ९ । ३	
४ । ४	

है।

विशेषार्थ– अन्तर करने वाला जीव कितने काल के द्वारा अन्तर करता है, यह यहाँ कहा गया है । जो उस समय स्थितिबंध का काल है अथवा स्थितिकाण्डकोत्कीरण काल है उतने काल के द्वारा अन्तर करता है। अर्थात् एक समय, दो समय, तीन समय, या संख्यात समयों के द्वारा अन्तरकरण विधि समाप्त नहीं होती, किन्तु अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा ही यह विधि समाप्त होती है।

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २७३। ध. पु. ६ पृ. २३२

गुणश्रेणी शीर्ष अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवाँ भाग प्रमाण है। इसलिए गुणश्रेणी शीर्ष का प्रमाण इतना [२९ / ४] है। शेष रहा अनिवृत्तिकरण का एक भाग गुणश्रेणीशीर्ष से संख्यातगुणा है इसलिए अनिवृत्तिकरण का शेष एकभाग इतना [२९। ३ / ४] है।

गुणश्रेणीशीर्ष x संख्यात = अनिवृत्तिकरण का शेष एकभाग। संख्यात ३ माना । इस शेष रहे एक भाग का संख्यातवाँ भागप्रमाण अन्तरकरणकाल है। इसलिए

अन्तरकरणकाल = $\frac{\text{शेष एकभाग}}{\text{संख्यात}}$ = [२९। ३ / ४ ४] इसलिए अन्तरकरणकाल की पूर्वोक्त संदृष्टि संस्कृत टीका में दिखायी गयी है।

अथान्तरायामप्रमाणं तन्निषेकनिक्षेपस्थापनं चाख्याति –

गुणसेढीए सीसं तत्तो संखगुण उवरिमठिदिं च।
हेट्ठुवरिम्हि य आबाहुज्झिय बंधम्हि संछुहदि[1] ।।८६।।

गुणश्रेण्याः शीर्षं ततः संख्यगुणामुपरितनस्थितिं च ।
अधस्तनोपरि चाबाधोज्झित्वा बन्धे सम्पातयति ।।८६।।

गुणश्रेण्यायामकथनकाले अपूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयादधिकं यदनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रमित्युक्तं, तदस्मिन् प्रकरणे गुणश्रेणिशीर्षमित्युच्यते [२९। १ / ४] ततः संख्येयगुणा उपरितनस्थितिषु निषेकाः [२९९ / ४] उभयोप्यन्तरायामः [१ ⌒ / २९९ / ४]

सोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव । शीर्षस्याधो गलितावशेषगुणश्रेण्यायामः अनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रः। सोऽपि शीर्षात्संख्येयगुणः [२९। ३ / ४] तत्रान्तरायामे स्थितान्निषेकानुत्कीर्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणाः फालीर्गृहीत्वा तत्कालबध्यमाने मिथ्यात्वप्रकृतिसमयप्रबद्धे अन्तरायामस्याबाधावर्जिताधःस्थितिषु उपरितनस्थितिषु च निक्षिपति, अन्तरायामसदृशस्थितिषु न निक्षिपतीत्यर्थः। अनादिमिथ्यादृष्टिर्मिथ्यात्वप्रकृतेरेवान्तरं करोति। सादिमिथ्यादृष्टिस्तस्या मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योरप्यन्तरं करोति। तयोरन्तरोत्कीर्णद्रव्यमपि तत्कालबध्यमानमिथ्यात्वप्रकृतेरध उपरि च निक्षिपति। अनिवृत्तिकरणसंख्यातैकभागमात्रस्य शेषस्य संख्यातैकभागमात्रान्तरकरणकालः

---

१) ध. पु. ६ पृ. २३२ । जयध. पु. १२, पृ. २७४.

[२ । ३ / ४ ४] उपरि तद्बहुभागमात्री प्रथमस्थितिः [२ ९ । ३ । ३ / ४ ४] तदुपर्यन्तर्मुहूर्तमात्रोऽन्तरायामः [१ — / २ ९ ९ / ४] ।।८६।।

अब अंतरायाम का प्रमाण और उसके निषेकों के निक्षेप स्थापन को कहते हैं–

अन्वयार्थ– (गुणसेढीए सीसं) गुणश्रेणी का शीर्ष **(च)** और **(तत्तो संखगुण उवरिमठिदिं च)** उससे संख्यात गुणी उपरितन स्थिति को (स्थिति के निषेकों को) **(हेट्ठुवरिम्हि य)** नीचे और ऊपर **(आबाहुज्झियं)** आबाधा से रहित **(बंधम्हि)** बध्यमान कर्म में **(संछुहदि)** देता है।।८६।।

टीकार्थ– गुणश्रेणीआयाम के कथन के समय अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण काल की अपेक्षा जो अनिवृत्तिकरणकाल का संख्यातवाँ भाग अधिक कहा गया था उसी को इस प्रकरण में गुणश्रेणिशीर्ष कहा गया है।

(अनिवृत्तिकरण का काल इतना २९. है। उसमें संख्यात ४ से भाग देने पर उसका एक भाग आता [२ ९ / ४] है।)

उससे संख्यातगुणित उपरितन स्थिति के निषेक $\frac{२ ९ \times ९}{४}$ दोनों मिलकर अंतरायाम हैं।

गुणश्रेणीशीर्ष + उससे संख्यातगुणे उपरितन ९ निषेक = अन्तरायाम का प्रमाण

$\frac{२ ९}{४} + \frac{२ ९ ९}{४}$ = [१ — / २ ९ / ४] (समान संख्या रखकर शेष रहे संख्यात गुणकार पर धनराशि का एक गुणकार अधिक किया।)

वह भी अंतर्मुहूर्तमात्र ही है। शीर्ष के नीचे गलितावशेष गुणश्रेणी का आयाम अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवाँ भागमात्र है। वह शीर्ष से संख्यातगुणा है। [२ ९ ३ / ४] अंतरायाम में स्थित निषेकों को निकालकर प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित फालि को ग्रहण करके उस काल में बांधे जाने वाले मिथ्यात्व प्रकृति के समयप्रबद्ध में अंतरायाम की आबाधारहित नीचे की स्थिति में व उपरितन स्थिति में निक्षेपण करता है। अन्तरायाम के सदृश स्थितियों में निक्षेपण नहीं करता है।

अनादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वप्रकति का ही अन्तर करता है। सादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व–प्रकृति, मिश्रप्रकृति और सम्यक्त्वप्रकृति का भी अन्तर करता है। उन दोनों का उत्कीर्णद्रव्य भी उस काल में बध्यमान मिथ्यात्वप्रकृति में नीचे और ऊपर देता है। शेष रहे अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें एक भागमात्र का संख्यातवाँ एक भागप्रमाण अंतरकरणकाल है। [२ ९ ३ / ४ ४]

उसके ऊपर बहुभागमात्र प्रथम स्थिति है। | २०३३ / ४ ४ | उसके ऊपर अंतर्मुहूर्तमात्र अंतरायाम है ।।८६।। | १— / २०० / ४ |

दर्शनमोहनीय की अन्तरकरण-विधि की रचना

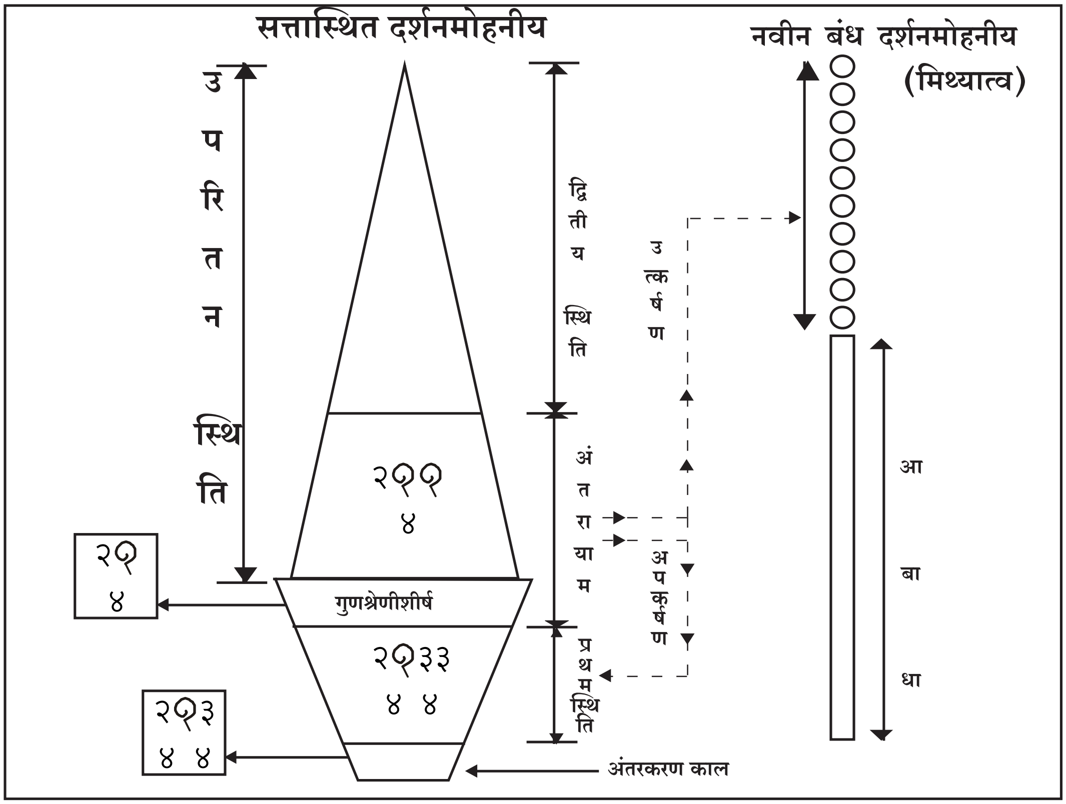

विशेषार्थ– इस गाथा में दो बातें कही गयी हैं। (१) यहाँ जितने समय के निषेकों का अभाव किया जाता है उसकी अंतरायाम संज्ञा है। (२) अंतर करते समय उसमें रहने वाले निषेकों का अन्तरायाम से नीचे के और ऊपर के किन निषेकों में निक्षेप होता है। गुणश्रेणि का काल अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल से थोड़ा अधिक है यह गाथा क्र. ५५ में कह आए हैं। वह अधिक काल ही गुणश्रेणिशीर्ष कहलाता है। गुणश्रेणीशीर्ष सम्बन्धी स्थिति का काल और उससे संख्यातगुणी उपरितन स्थिति का काल इन दोनों को मिलाकर जितना काल होता है तत्प्रमाण अन्तरायाम का प्रमाण है जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। इस अन्तरायाम में रहनेवाले निषेकों का अभाव किया जाता है, इसलिए इसकी अन्तरायाम संज्ञा है। उस अंतरायाम के ऊपर जितनी उपरितन कर्मस्थिति है उतनी द्वितीय स्थिति है। अब उस अंतरायाम सबंधी निषेकों का अभाव कर मिथ्यात्व की किस स्थिति में निक्षेप करता

है इस तथ्य का निर्देश करते हुए प्रकृत गाथा में समुच्चयरूप से मात्र इतना ही कहा गया है कि नीचे और ऊपर आबाधा को छोड़कर बन्ध में निक्षेप करता है। इसका विशेष खुलासा करते हुए श्री धवला में बतलाया है कि अन्तर के लिए ग्रहण किये गये प्रदेश-पुंज का अन्तरायाम के काल में बंधने वाली मिथ्यात्वप्रकृति में अर्थात् आबाधा को छोड़कर उसकी द्वितीय स्थिति में और अन्तरायाम से नीचे की प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृत में उस समय बंधने वाली मिथ्यात्वप्रकृति का आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होकर भी प्रथम स्थिति और अन्तरायाम से बहुत अधिक होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि दर्शनमोहनीय के यह उपशमन का कथन अनादि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा किया जा रहा है। यदि सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व की सत्ता वाला हो तो वह इन दोनों प्रकृतियों का अन्तर करते समय नीचे एक आवलि मात्र स्थिति को छोड़कर ऊपर मिथ्यात्व के अन्तर के समान अन्तर करता है।

अथान्तरकरणसमाप्त्यनन्तरसमयकर्तव्यं प्रतिपादयति –

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणिदमुवसमदि।
गुणसंकमेण दंसणमोहणियं जाव पढमठिदी[1] ।।८७।।

अन्तरकृतप्रथमतः प्रतिसमयमसंख्यगुणितमुपशाम्यति।
गुणसंक्रमेण दर्शनमोहनीयं यावत् प्रथमस्थितिः ।।८७।।

एवमेकस्थितिकाण्डकोत्करणकालेनान्तरकरणं निष्ठाप्यान्तरकृतो भवति। अन्तरं कृतं यस्मिन् येन वासौ अन्तरकृतः, अन्तरकरणकालचरमसमयस्तस्यानन्तरसमयः प्रथमस्थितिप्रथमसमयः तत आरभ्य यावत्प्रथमस्थितिचरमसमयस्तावत्प्रतिसमयमसंख्येयगुणितक्रमेण द्वितीयस्थितिस्थित-दर्शनमोहनीयद्रव्यं गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा लब्धफालीरुपशमयति। यद्यप्यधःप्रवृत्तकरणप्रथम-समयादारभ्यायं दर्शनमोहस्योपशमक एव तथापि तत्प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामस्मिन्नवसरे निरवशेषतः उपशमक इत्युच्यते ।।८७।।

अब अंतरकरण समाप्ति के अनंतर समय में होनेवाले कार्य का प्रतिपादन करते हैं–

अन्वयार्थ– **(अंतरकदपढमादो)** अंतर करने के पश्चात् प्रथम समय से **(जाव पढमठिदि)** प्रथम स्थिति के अंतसमय पर्यंत **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(गुणसंकमेण)** गुणसंक्रमण भागहार द्वारा **(असंखगुणिदं)** असंख्यात गुणितरूप से **(दंसणमोहणियं)** दर्शनमोह का **(उवसमदि)** उपशम करता है ।।८७।।

---

१) जयध. पु. १२ पृ. २७६। ध. पु. ६ पृ. २३२-२३३.

टीकार्थ– इस प्रकार एक स्थितिकांडकोत्करणकाल के द्वारा अंतरकरण का निष्ठापन (समाप्ति) करके अंतरकृत होता है। जिसमें अन्तर किया अथवा जिसने अंतर किया है वह अंतरकृत होता है। अंतरकरणकाल के अंतिम समय के पश्चात् का समय अर्थात् प्रथमस्थिति का प्रथम समय, वहाँ से शुरुआत करके प्रथम स्थिति के अंतिम समय पर्यन्त प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित क्रम से द्वितीय समय में स्थित दर्शनमोहनीय के द्रव्य में गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर जो फालि आती है उसका उपशमन करता है। यद्यपि अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से यह जीव दर्शनमोह का उपशमक ही है तो भी अब इस समय वह उस मिथ्यात्वकर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का संपूर्णरूप से उपशमक है, ऐसा कहा गया है। ।।८७।।

विशेषार्थ–यहाँ अन्तरकरण विधि के बाद जो उपशमन क्रिया होती है, उसका निर्देश किया गया है। करण परिणामों के द्वारा नि:शक्त किए गए दर्शनमोहनीय का उदय न होकर सत्ता में अवस्थित रहने को उपशम कहते हैं। उपशम करने वाला उपशामक कहलाता है चूर्णिसूत्रकार ने यहाँ से लेकर इसे उपशामक कहा है सो इसका स्पष्टीकरण करते हुए श्री धवला में बतलाया है कि इस पद को मध्यदीपक करके शिष्यों को प्रतिबोध करने के लिए यतिवृषभ आचार्य ने उक्त कथन किया है।

अथ दर्शनमोहोपशमनक्रियायां सम्भवद्विशेषनिर्णयार्थमाह –

पढमट्ठिदियावलिपडिआवलिसेसेसु णत्थि आगाला।
पडिआगाला मिच्छत्तस्स य गुणसेढिकरणं पि।।८८।।

प्रथमस्थितावावलिप्रत्यावलिशेषेषु नास्त्यागाल:।
प्रत्यागालो मिथ्यात्वस्य च गुणश्रेणिकरणमपि।।८८।।

प्रथमस्थितौ आवलिप्रत्यावलिद्वयं उदयावलिद्वितीयावलिद्वयं समयाधिकं यावदवशिष्यते तावदागालप्रत्यागालौ वर्तेते। गुणश्रेणिकरणमपि वर्तते। आवलिद्वये समयाधिके अवशिष्टे आगालप्रत्यागालगुणश्रेणिकरणानि न सन्ति। दर्शनमोहादन्यकर्मणां गुणश्रेणिरस्त्येव। केवलं समयाधिकद्वितीयावलिनिषेकानसंख्येयलोकेन भक्त्वा तदेकभागस्योदयावल्यां समयोनावलि–द्वित्रिभागमतिस्थाप्याधस्तनत्रिभागे समयाधिके निक्षेपरूपा प्रतिसमयोदीरणा वर्तते। द्वितीयस्थिति–द्रव्यस्यापकर्षणवशात्प्रथमस्थितावागमनमागाल:। प्रथमस्थितिद्रव्यस्योत्कर्षणवशात् द्वितीयस्थितौ गमनं प्रत्यागाल इत्युच्यते। एकस्यामेव प्रत्यावल्यामवशिष्टायां प्रतिसमयोदीरणापि नास्ति, तन्निषेकाणां प्रतिसमयाधोगलनस्यैव सम्भवात्।

स ३ १२–
७ । ख । १७ । गु

उपशमविधानं तु प्रथमस्थितिचरमसमयपर्यन्तमस्त्येव। प्रथमफालिद्रव्यं

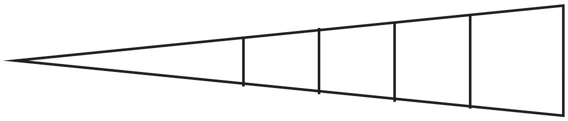

द्वितीयफालिद्रव्यं

स a १२– । a
७ । ख । १७ । गु

एवं प्रतिसमयसंख्येयगुणं फालिद्रव्यं चरमफालिद्रव्यं

स a १२– । a । २९ १ ।३।३
७ । ख । १७ । गु ।४।४

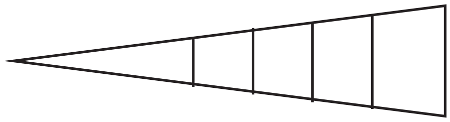

चरमफालिद्रव्यस्य असंख्येयगुणकारा: प्रथमस्थितिसमया रूपोना यावन्तस्तावन्तो भवन्तीत्यर्थ: ।।८८।।

अब दर्शनमोहनीय की उपशमनक्रिया में होनेवाले विशेष का निर्णय करने के लिए कहते हैं –

अन्वयार्थ– (पढमट्ठिदियावलिपडिआवलिसेसेसु) प्रथम स्थिति में आवलि और प्रत्यावलि शेष होने पर **(आगाला पडिआगाला)** आगाल और प्रत्यागाल **(णत्थि)** नहीं होते हैं **(य)** और **(मिच्छत्तस्स)** मिथ्यात्व का **(गुणसेढीकरणं पि)** गुणश्रेणीकरण भी **(णत्थि)** नहीं होता है ।।८८।।

टीकार्थ– प्रथम स्थिति में आवलि, प्रत्यावलि अर्थात् उदयावलि और द्वितीयावलि इसप्रकार दो आवलि एक समय अधिक अवशेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होता है, गुणश्रेणिकरण भी होता है। दो आवलि शेष रहने पर आगाल, प्रत्यागाल और गुणश्रेणिकरण नहीं होता है। दर्शनमोह बिना अन्य कर्मों की गुणश्रेणि होती ही है। केवल एक समय अधिक द्वितीयावली के निषेकों के द्रव्य को असंख्यात लोक का भाग देकर जो प्रमाण आता है उतने द्रव्य को उदयावली में एक समय कम आवलि के दो–तिहाई भागमात्र निषेकों को अतिस्थापना छोड़कर नीचे के एक समय अधिक आवलि के त्रिभाग में निक्षेपण करके प्रत्येक समय में उदीरणा होती है।

द्वितीय स्थिति के द्रव्य का अपकर्षण द्वारा प्रथम स्थिति में आना आगाल कहलाता हैं और प्रथम स्थिति के द्रव्य का उत्कर्षण के द्वारा द्वितीय स्थिति में जाना प्रत्यागाल कहलाता है ऐसा कहा गया है। एक प्रत्यावली शेष रहने पर प्रत्येक समय में उदीरणा भी नहीं होती है। उन निषेकों का प्रतिसमय अधोगलन ही होता है, किन्तु प्रथम स्थिति के अंतिम समय पर्यंत उपशमविधान शुरु ही रहता है।

$$\text{प्रथम फालि का द्रव्य} = \frac{\text{मिथ्यात्व का सत्त्वद्रव्य}}{\text{गुणसंक्रमण भागहार}} = \frac{\dfrac{\text{स a १२–}}{\text{७ । ख । १७ ।}}}{\text{गु}} = \frac{\text{स a १२–}}{\text{७ । ख । १७ । गु}}$$

$$\text{द्वितीय फालि का द्रव्य} = \text{प्रथम फालि का द्रव्य} \times \text{असंख्यात} \ \frac{\text{स a १२ – a}}{\text{७ । ख । १७ । गु}}$$

इसप्रकार प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित फालिद्रव्य होता है।

चरमफालि का द्रव्य = प्रथम फालि का द्रव्य x एक कम प्रथम स्थिति के उपशमन काल के जितने समय उतने असंख्यात के गुणकार।

प्रथम स्थिति का उपशमन काल = २ ३ । ३ / ४ ४ (गाथा ८६ में इसका खुलासा किया गया है)

चरमफालि का द्रव्य = स a । १२ – । a । २१ । ३ । ३ / ७ । ख । १७ । गु ४ ४ ।।८८।।

विशेषार्थ–प्रथम स्थिति के द्रव्य का उत्कर्षण कर द्वितीय स्थिति में देना प्रत्यागाल है और द्वितीय स्थिति के द्रव्य का अपकर्षण कर प्रथम स्थिति में देना आगाल है। ये दोनों कार्य आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण प्रथम स्थिति के शेष रहने के पूर्व समय तक ही होते हैं। यहीं तक मिथ्यात्व के द्रव्य का गुणश्रेणीनिक्षेप भी होता है। जब मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण शेष रह जाती है तब वहाँ से लेकर ये तीनों कार्य बन्द हो जाते हैं। मात्र अन्य कर्मों का गुणश्रेणिनिक्षेप होता रहता है। आवलि शब्द से उदयावली का ग्रहण होता है और प्रत्यावली से उदयावली के ऊपर दूसरी आवलि का ग्रहण होता है। मिथ्यात्व की प्रथमस्थिति आवलि और प्रत्यावलि प्रमाण शेष रहने पर उसके द्रव्य का गुणश्रेणिनिक्षेप न होने का कारण यह है कि उदयावलि में गुणश्रेणि असंभव है और प्रत्यावलि में अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं हो सकता क्योंकि अतिस्थापना में अपकर्षित द्रव्य के निक्षेप होने का विरोध है, इसलिए वहाँ से लेकर मिथ्यात्व के गुणश्रेणिनिक्षेप का भी निषेध किया है।

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणकालं तत्कार्यविशेषं च प्ररूपयति –

अंतरपढमं पत्ते उवसमणामो हु तत्थ मिच्छत्तं।
ठिदिरसखंडेण विणा उवट्ठाइदूण कुणदि तिधा।।८९।।

अन्तरप्रथमं प्राप्ते उपशमनाम हि तत्र मिथ्यात्वम्।
स्थितिरसखण्डेन विनोपस्थापयित्वा करोति त्रिधा।।८९।।

अन्तरायामप्रथमसमये प्राप्ते सति दर्शनमोहस्यानन्तानुबन्धिचतुष्टयस्यापि प्रकृतिस्थित्यनु–भागप्रदेशांना निरवशेषोपशमनादौपशमिकं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपसम्यग्दर्शनं प्रतिपद्यमानो जीव: प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिनामा भवति। स तत्रान्तरायामप्रथमसमये द्वितीयस्थितौ स्थितं मिथ्यात्वप्रकृतिद्रव्यं

स्थित्यनुभागकाण्डकघातं विना अपवर्त्य गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा त्रिधा करोति मिथ्यात्व-मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परिणमयतीत्यर्थः ।।८९।।

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहणकाल और उसमें होनेवाले कार्यविशेष का प्ररूपण करते हैं-

अन्वयार्थ- **(अंतरपढमं)** अंतरायाम के प्रथम समय को **(पत्ते)** प्राप्त होने पर **(हि)** निश्चय से उसका **(उवसमणामो)** प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि नाम है। **(तत्थ)** वहाँ वह **(मिच्छत्तं)** मिथ्यात्व का **(ठिदिरसखंडेण विणा)** स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकांडकघात के बिना **(उवट्टाइदूण)** अपवर्तन करके **(तिधा कुणदि)** तीन प्रकार करता है।।८९।।

टीकार्थ- अंतरायाम के प्रथम समय को प्राप्त होने पर दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी चतुष्क के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का संपूर्णरूप से उपशम होने से तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप औपशमिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त करनेवाला जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि होता है। वह वहाँ अंतरायाम के प्रथम समय में द्वितीय स्थिति में स्थित मिथ्यात्वप्रकृति के द्रव्य को स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात के बिना अपकर्षण करके गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर तीन प्रकार करता है अर्थात् मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वरूप से परिणमाता है ।।८९।।

विशेषार्थ- प्रथम स्थिति को समाप्त कर इस जीव के अंतरायाम में प्रवेश करने पर दर्शनमोहनीय की उपशम संज्ञा हो जाती है। करण परिणामों के द्वारा निःशक्त किये गये दर्शनमोहनीय के उदयरूप पर्याय के बिना अवस्थित रहने का नाम उपशम है। यहाँ सर्वोपशम सम्भव नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहनीय का उपशम हो जाने पर भी उसका संक्रमण और अपकर्षण पाया जाता है। अतः यहाँ से दर्शनमोहनीय का उपशम करने वाले जीव की उपशम संज्ञा हो जाती है। यहीं से लेकर यह जीव मिथ्यात्वप्रकृति को तीन भागों में विभक्त करता है। प्रथम भाग का नाम वही रहता है। दूसरे और तीसरे भाग को क्रम से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति कहते हैं। अनन्तानुबन्धी कर्म का उदय प्रारम्भ के दो गुणस्थानों में ही होता है ऐसा एकान्त नियम है। अतः इस गुणस्थान में अनुदय रहने से उसके द्रव्य को भी उदय में नहीं दिया जा सकता इसलिए प्रथमोपशम सम्यक्त्व में उसका उपशम स्वीकार किया गया है। अनन्तानुबन्धी का अन्तरकरण उपशम नहीं होता है।

यहाँ संस्कृत टीका में दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्क का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों की अपेक्षा निरवशेष अर्थात् सब प्रकार से उपशम कहा है इसका यही तात्पर्य है कि इन सातों प्रकृतियों के प्रकृति आदि चारों प्रकृत में उदय के अयोग्य रहते हैं। संक्रमण और अपकर्षण होने में कोई बाधा नहीं, क्योंकि यह मिथ्यात्वप्रकृति तीन भागों में विभक्त होती है तथा अनन्तानुबन्धी का अपनी सजातीय प्रकृतिरूप से संक्रमण हो सकता है तथा अनुदयरूप प्रकृति होने से उसका उदयावली के बाहर उपरितन निषेक तक अपकर्षण भी हो सकता है।

मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा य दव्वादो ।
सत्तीदो य असंखाणंतेण य होंति भजियकमा[१] ।।९०।।

मिथ्यात्वमिश्रसम्यस्वरूपेण च तत्त्रिधा च द्रव्यत: ।
शक्तितश्चासंख्यानन्तेन च भवन्ति भजितक्रमा: ।।९०।।

गुणसंक्रमभागहारेण तन्मिथ्यात्वद्रव्यं अपवर्त्य विभज्य मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परिणममानं द्रव्यतोऽसंख्येयभागक्रमेण शक्तितोऽनुभागतोऽनन्तभागक्रमेण च परिणमति। तथाहि– मिथ्यात्वद्रव्यमिदं [स a १२− / ७ । ख । १७] गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा बहुभागमात्रद्रव्यं मिथ्यात्वप्रकृतिरूपेण तिष्ठति [स a १२−। १⌢ गु १— a / ७ । ख । १७ । गु a] तदेकभागमात्रद्रव्यमिदं [स a १२−। a १— / ७ । ख । १७ । गु a] अत्राधिकरूपं पृथक्संस्थाप्यावशिष्टं इदं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति–रूपेण परिणतं [स a १२−। a १— १ / ७ । ख । १७ । गु a] पृथक्स्थापितैकरूपमिदं सम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परिणतम् [स a १२− १— / ७ । ख । १७ । गु a] अत: कारणादेता: प्रकृतयो द्रव्यतोऽसंख्येयभाजित–क्रमा इति सूत्रे सूचितम्। अनुभागत: मिथ्यात्वद्रव्यानुभाग: [३— / व ९ ना / ख] संख्यातानुभागकांडका–वशिष्टत्वात्। अस्यानन्तैकभागमात्रो मिश्रप्रकृत्यनुभाग: [३— / व ९ ना / ख ख] अस्यानन्तैकभागमात्र: सम्यक्त्वप्रकृत्यनुभाग: [३— / व ९ ना / ख ख ख] इदमनुभागाल्पबहुत्वमपि सूत्रसूचितमेव ।।९०।।

स्थिति और अनुभागकी अपेक्षा मिथ्यात्वके द्रव्यका तीनरूप विभाग किसप्रकार होता है इसका निर्देश–

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २८२ । ध. पु. ६, पृ. २३५.

अन्वयार्थ– (मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा) मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप से उसके तीन प्रकार होते हैं। **(दव्वादो य सत्तीदो य असंखाणंतेण य भजियकमा होंतिं)** वे क्रम से द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातवाँ भागमात्र और शक्ति की अपेक्षा से अनन्तवाँ भागमात्र है।।९०।।

टीकार्थ– गुणसंक्रम भागहार से भाग देकर मिथ्यात्व, मिश्र व सम्यक्त्वप्रकृतिरूप से परिणमने वाला मिथ्यात्व का द्रव्य द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातभाग क्रम से और अनुभाग की अपेक्षा से अनन्तभागक्रम से परिणमता है।

मिथ्यात्व के द्रव्य को

स a १२–
७ । ख । १७

गुणसंक्रम भागहार से भाग देकर बहुभागमात्र द्रव्य

स a १२–। गु a (गु के ऊपर: १ —)
७ । ख । १७ । गु a ।

मिथ्यात्वप्रकृतिरूप से ही रहता है।

(गुणसंक्रमणभागहार से भाग देकर एक कम गुणसंक्रमण भागहार से गुणा करने पर बहुभाग आता है।) (मिश्रप्रकृति और सम्यक्त्वप्रकृति में असंख्यात भागक्रम से बँटवारा दिखाने के लिए एक अधिक असंख्यात से भाग दिया और एक अधिक असंख्यात से गुणा किया। एक ही संख्या से भाग व गुणा करने पर मूल संख्या में अंतर नहीं पड़ता) एक भागमात्र द्रव्य यह

स a १२–। a
७ । ख । १७ । गु a ।

३—

इसमें से एक अधिक रूप अलग रखने पर शेष रहा द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्वरूप से परिणत होता है। वह मिश्ररूप द्रव्य

स a १२–। a
७। ख । १७ । गु a

अलग रखा हुआ एकरूप द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृति रूप से परिणत होता है।

स a १२–।
७। ख । १७ । गु a

इसलिए ये प्रकृतियाँ द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात भागक्रम से हैं। ऐसा सूत्र में सूचित किया गया है।

अंकसंदृष्टि से ५0000 मिथ्यात्व द्रव्य माना, गुणसंक्रमण भागहार १000 माना

$\frac{५0000}{१000}$ = ५0 एकभाग । ५0X९९९=४९९५0 बहुभाग मिथ्यात्वरूप रहा। एकभाग को पाँच

$\frac{५0}{४+१}$ से भाग दिया $\frac{५0}{५}$ = १0 एकभाग सम्यक्त्वरूप और ४0 बहुभाग मिश्ररूप हुआ।

अनुभाग की अपेक्षा से मिथ्यात्व के द्रव्य का अनुभाग

व ९ ना
ख

(गाथा ८0 में इसका खुलासा किया गया हैं।)

संख्यात अनुभागकांडकघात होकर शेष रहने से पूर्व अनुभाग का अनन्तवाँ भागमात्र है। इसका अनन्तवाँ भागमात्र मिश्रप्रकृति का अनुभाग है।

व ९ ना / ख ख

(अनन्तवाँ भाग दिखाने के लिए पुनः अनन्त का (ख) भाग दिया) उसका अनन्तवाँ भागमात्र सम्यक्त्वप्रकृति का अनुभाग है। (पुनः अनन्त का भाग दिया।)

व ९ ना / ख ख ख

इस अनुभाग का अल्पबहुत्व भी सूत्र में सूचित किया गया है।।९०।।

विशेषार्थ–प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होने के प्रथम समय में सत्ता में स्थित मिथ्यात्व के द्रव्य के तीन टुकड़े कर मिथ्यात्व के द्रव्य में से जितने प्रदेश-पुंज को सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति को देता है, उससे संख्यातगुणा हीन द्रव्य सम्यक्प्रकृति को देता है। यहाँ उक्त दोनों प्रकृतियों के द्रव्य को लाने के लिए गुणसंक्रम भागहार का प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्व के गुणसंक्रम भागहार से सम्यक् प्रकृति का गुणसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है। इस प्रकार अल्पबहुत्व विधि से अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्व के द्रव्य से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति को पूरता है । इतनी विशेषता है कि प्रथम समय में इन दोनों प्रकृतियों को जितना द्रव्य दिया जाता है, द्वितीयादि समयों में उनसे उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे- असंख्यातगुणे द्रव्य को देता है। इस प्रकार यह क्रम गुणसंक्रमकाल के अन्तर्मुहूर्त काल तक चालू रहता है। अनुभाग की अपेक्षा प्रथम समय में मिथ्यात्व का जितना अनुभाग होता है उसका अनन्तवाँ भागप्रमाण सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होता है और उसका भी अनन्तवाँ भागप्रमाण अनुभाग सम्यक्प्रकृति को ~~प्राप्त~~ होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि समयों में भी जानना चाहिए।

पढमादो गुणसंकमचरिमो त्ति य सम्ममिस्ससम्मिस्से।
अहिगदिणाऽसंखगुणो विज्झादो संकमो तत्तो[1]।।९१।।

प्रथमात् गुणसंक्रमचरम इति च सम्यग्मिश्रसंमिश्रे ।
अहिगतिनासंख्यगुणो विध्यातः संक्रमस्ततः।।९१।।

अन्तरप्रथमसमयादारभ्य द्वितीयादिषु समयेषु अन्तर्मुहूर्तमात्रगुणसंक्रमकालचरमसमयपर्यन्तेषु प्रतिसमयमहिगत्या असंख्येयगुणं मिथ्यात्वद्रव्यं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिरूपेण परिणमति । तद्यथा– प्रथमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यं स्तोकं

स a १२–। १ / ७ । ख । १७ । गु a

ततोऽसंख्येयगुणं मिश्रप्रकृतिद्रव्यं

स a १२–। a १ / ७ । ख । १७ । गु a

ततो द्वितीयसमये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं

स a १२–। a । a १ / ७ । ख । १७ । गु a

प्रथमसमयगृहीतद्रव्यात् द्वितीयसमयगृहीतद्रव्यस्य द्विरसंख्येयगुणत्वात्।

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २८४ । ध. पु. ६, पृ. २३६.

ततो मिश्रप्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं

स a १२–। a । a । a १__
७ । ख । १७ । गु a

ततस्तृतीयसमये सम्यक्त्व-प्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं

स a १२–। a । a । a । a १__
७ । ख । १७ । गु a

द्वितीयसमयगृहीतद्रव्यात्तृतीय-समयगृहीतद्रव्यस्य द्विरसंख्येयगुणत्वात् । ततो मिश्रप्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं

स a १२–। a । a । a । a । a १__
७ । ख । १७ । गु a

एवं प्रतिसमयं द्विरसंख्येयगुणितक्रमेण अहिगत्या गत्वा गुणसंक्रमकालचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यस्य 'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंतधनमिति' सूत्रेणानीता असंख्येयगुणकारशलाकाः द्विरूपोनसंख्यातावलिसमयमात्रा द्विगुणद्विरूपाधिका भवन्ति

स a १२–। a।२१–२।२ (२ ; १__)
७ । ख । १७ । गु a

मिश्रप्रकृतिद्रव्यस्यासंख्येयगुणकाराः तत्सूत्रानीता रूपोनसंख्याता-वलिसमयमात्रा द्विगुणा रूपाधिका भवन्ति

१____
१ ᪲
स a १२–। a।२१ । २
७ । ख । १७ । गु a

ततः परं गुणसंक्रम-कालचरमसमयात्परं विध्यातसंक्रमभागहारेण मिथ्यात्वद्रव्यमपव-र्त्यान्तर्मुहूर्तपर्यन्तं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्योः संक्रमयति तदा विध्यातविशुद्धिकार्यत्वात् विध्यातसंक्रम इत्युच्यते। विध्यातशब्दस्य मन्दार्थत्वेन मन्दविशुद्धिकार्यस्य अङ्गुलासंख्यातभागमात्र-विध्यातसंक्रमभागहारलब्धद्रव्याल्पत्वस्य सुघटत्वात् ।। ९१ ।।

कहाँ तक गुणसंक्रम होता है और आगे कहाँ से विध्यातसंक्रम होता है इसका निर्देश–

अन्वयार्थ– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के **(पढमादो)** प्रथम समय से लेकर **(गुणसंकमचरिमोत्तिय)** गुणसंक्रमण के अंतिम समय पर्यन्त **(अहिगदिणा)** सर्प की चाल से **(असंखगुणो)** असंख्यातगुणित मिथ्यात्वद्रव्य **(सम्ममिस्ससम्मिस्से)** सम्यक्त्व, मिश्र, पुनः सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृतिरूप से परिणमता है। **(तत्तो)** उसके पश्चात् **(विज्झादो संकमो)** विध्यातसंक्रमण होता है।।९१।।

टीकार्थ– अन्तरायाम के प्रथम समय से लेकर द्वितीयादि समयों में अंतर्मुहूर्तप्रमाण गुणसंक्रमकाल के अंतिम समय पर्यन्त प्रत्येक समय में सर्प की चाल के समान मिथ्यात्व-द्रव्य सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृतिरूप से परिणमता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है –

प्रथम समय में सम्यक्त्व–प्रकृति का द्रव्य कम है वह ऐसा

स a १२–। १ १__
७ । ख । १७ । गु a

उससे असंख्यातगुणित मिश्रप्रकृति का द्रव्य है।

स a १२-। a १__
७ । ख । १७ । गु a

उससे दूसरे समय में सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणित

स a १२-। a । a १__
७ । ख । १७ । गु a

है। (असंख्यातगुणित करने के लिए आगे असंख्यात का गुणकार बढाते जाना) क्योंकि प्रथम समय में ग्रहण किये द्रव्य से दूसरे समय में ग्रहण किया द्रव्य दो बार असंख्यात गुणित है। उससे मिश्रप्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणित है।

स a १२-। a । a । a १__
७ । ख । १७ । गु a

उससे तृतीय समय में सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणित है क्योंकि द्वितीय समय में ग्रहण किए द्रव्य से तृतीय

स a १२-। a । a । a । a १__
७ । ख । १७ । गु a

समय में ग्रहण किया हुआ द्रव्य दो बार असंख्यातगुणित है। उससे मिश्रप्रकृति का द्रव्य असंख्यात गुणित है।

स a १२-। a । a । a । a । a १__
७ । ख । १७ । गु a

इस प्रकार प्रत्येक समय में दो गुणा असंख्यातगुणित क्रम से अहिगति से जाकर गुणसंक्रमकाल के अंतिम समय में सम्यक्त्व-प्रकृति के द्रव्य की असंख्यात गुणकार शलाका **''व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यन्तधनम्''** इस सूत्र से लाने पर दो कम संख्यात आवलि के समयों को दो गुणा करके उसमें २ अधिक आती है। **''व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंतधनम्''** इसका अर्थ- पद में से एक कम करें और चय से गुणा करें और उसे आदिधन में (प्रथम समय के धन में) मिलावें। ऐसा करने पर अंतधन (अंतिम समय का धन) आता है। सूत्र = {(पद -१) x चय} + आदि = अंतधन

उदा. ४ समय पद माना । प्रत्येक समय का द्रव्य दो बार असंख्यातगुणित है इसलिए चय का प्रमाण २ है। {(४-१) x २}+० (पहले समय में सम्यक्त्वप्रकृति का असंख्यात का गुणकार नहीं है, इसलिए आदि ० है। ३ x २ = ६ + ० = ६ (अंतिम समय के सम्यक्त्व द्रव्य का असंख्यात गुणकार ६ बार आया)

यह उत्तर दूसरे प्रकार से कहा जाता है :- {(पद - २) x २}+२ (पद में से २ घटा करके पुनः उसका २ गुणा करके दो मिला) ४ - २ = २; और २ x २ = ४; और ४+२=६ (दोनों पद्धति से उत्तर समान ही आता है।) अर्थसंदृष्टि - पद= २୨ (संख्यात आवली)

{ (पद - २) x २} + २ = **{(२୨ - २)** x २ } + २ =

२______
२୨-२।२

पहले समय में संक्रमित द्रव्य को

स a १२–
७ । ख । १७ । गु

इतनी बार असंख्यात के गुणकार से गुणा करने पर अंतिम समय का संक्रमित द्रव्य इतना आता है –

२__
स a १२– a। २९ –२।२
७ । ख । १७ । गु

इस पद्धति से सम्यग्मिथ्यात्व का असंख्यात गुणकार निकालने पर एक कम संख्यात आवली के समयों को २ से गुणा करने पर उससे १ अधिक आता है।

सूत्र {(पद–१) x चय}+आदि
{(४–१) x २}+१
{३ x २ }+ १ = ७

(प्रथम समय में मिश्रप्रकृति के द्रव्य में १ बार असंख्यात का गुणकार है इसलिए आदिधन १ है।)

समय	सम्यक्त्व–प्रकृति का गुणकार	मिश्र– प्रकृति का गुणकार
४	६	७
३	४	५
२	२	३
१	०	१

अर्थसंदृष्टि – पद = २९ (संख्यात आवली)

{(२९–१) x २}+१ =

१_____
१ ⌒
२९ । २

प्रथम समय में सम्यक्त्वप्रकृति के सक्रंमित द्रव्य को ९__ उपर्युक्त बार असंख्यात के गुणकार से गुणा करने पर अंतिम समय का सम्यग्मिथ्यात्व का संक्रमित द्रव्य प्राप्त होता है। प्रथम समय में संक्रमित

द्रव्य =

स a १२ –
७ । ख । १७ । गु

१______
१ ⌒
स a १२–। a।२ । २
७ । ख । १७ । गु a

= सम्यग्मिथ्यात्व का अंतिम समय में संक्रमित द्रव्य

(अंकसंदृष्टि से प्रथम समय में १० सम्यक्त्वरूप, ४० मिश्ररूप, दूसरे समय में १६० सम्यक्त्वरूप, ६४० मिश्ररूप, तीसरे समयमें २५६० सम्यक्त्वरूप, १०,२४० मिश्ररूप, चौथे समय में ४०,९६० सम्यक्त्वरूप और १,६३,८४० मिश्ररूप होते हैं।)

गुणसंक्रमण काल के अंतिम समय के पश्चात् विध्यातसंक्रमण भागहार से मिथ्यात्व के द्रव्य को भाजित करके अंतर्मुहूर्त पर्यंत सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति में संक्रमित करता है। उस समय मंद विशुद्धि का कार्य होने से उसे विध्यातसंक्रमण ऐसा कहते हैं। विध्यात शब्द का अर्थ मन्द होने से मन्द विशुद्धि के कार्यरूप अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र विध्यातसंक्रमण भागहार से भाग देकर आया लब्ध द्रव्य अल्प है यह सुसंगत ही है ।।९१।।

अथानुभागकांडकोत्करणकालप्रभृतीनां पञ्चविंशतेः पदानामल्पबहुत्वप्ररूपणां प्रक्रमते–

विदियकरणादिमादो गुणसंकमपूरणस्स कालो त्ति।
वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्पबहुं[1] ।।९२।।

द्वितीयकरणादिमात् गुणसंक्रमपूरणस्य काल इति ।
वक्ष्ये रसखण्डोत्कीरणकालादीनामल्पबहुम्।।९२।।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य गुणसंक्रमणपूरणपर्यन्तं क्रियमाणानुभागकाण्डकोत्करण–कालादीनामल्पबहुत्वं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञावाक्यमिदम्।।९२।।

अब अनुभागकांडकोत्करणकाल इत्यादि पच्चीस पदों के अल्पबहुत्व का प्ररूपण करते हैं –

अन्वयार्थ– (विदियकरणादिमादो) दूसरे (अपूर्व) करण के प्रथम समय से लेकर **(गुणसंकमपूरणस्स कालो त्ति)** गुणसंक्रमपूरणकाल पर्यंत **(रसखंडुक्कीरणकालादीणं)** अनुभाग–कांडकोत्करण–कालादि का **(अप्पबहुं)** अल्पबहुत्व **(वोच्छं)** मैं कहूँगा **।।९२।।**

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय से आरम्भ करके गुणसंक्रमण काल पर्यन्त किये जाने वाले अनुभागकांडकोत्कीरण कालादिक का अल्पबहुत्व मैं कहता हूँ इसप्रकार यह प्रतिज्ञा वाक्य है ।।९२।।

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ।
तत्तो संखेज्जगुणो चरिमट्ठिदिखंडहदिकालो[2] ।।९३।।

अन्तिमरसखण्डोत्करणकालतस्तु प्रथमोऽधिकः।
ततः संख्यातगुणश्चरमस्थितिखण्डहतिकालः।।९३।।

दर्शनमोहस्य प्रथमस्थितिसमाप्तिसमकालभावि शेषकर्मणां गुणसंक्रमचरमसमयसमकालभावि च यदनुभागकाण्डकं तदन्त्यानुभागकाण्डकमित्युच्यते। तस्योत्करणकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रो वक्ष्यमाणपदेभ्यः सर्वेभ्यः स्तोकः [२७।१] पदं १ । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयादारब्धानुभागकाण्डकोत्करणकालो

विशेषाधिकः $\boxed{\frac{२७।५}{४}}$ **विशेषप्रमाणं पूर्वकालसंख्यातैकभागमात्रम् । पदे २ । तस्मात्**

---

१) जयध. पु. १२, पृ. २८५–२८६। ध. पु. ६, पृ. २३६.
२) जयध. पु. १२, पृ. २८६–२८७।

प्रथमानुभागकाण्डकोत्करणकालात् चरमस्थितिखण्डोत्करणकाल: चरमस्थितिबन्धकालश्च द्वौ समौ संख्येयगुणौ $\boxed{\frac{२\text{९} \mid ५ \mid ४}{४}}$ **एकस्थितिकांडकोत्करणकाले संख्यातसहस्रानुभाग-खण्डसम्भवात्, ।पदानि ४। ।।९३।।**

अन्वयार्थ– (अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु) अंतिम अनुभागकांडकोत्कीरणकाल से **(पढमओ)** प्रथम अनुभागकांडकोत्कीरणकाल **(अहिओ)** अधिक है । **(तत्तो)** उससे **(चरिमट्ठिदिखंडहदिकालो)** अंतिम स्थितिकांडकघातकाल **(संखेज्जगुणो)** संख्यातगुणा है ।।९३।।

टीकार्थ– दर्शनमोहनीय का प्रथम स्थिति के अंत में होने वाला और अन्यकर्मों का गुणसंक्रमण काल के अंतसमय में होने वाला जो अनुभागकांडक है, उसे अंत का अनुभागकांडक कहते हैं । उसका उत्कीरणकाल अंतर्मुहूर्त है। वह आगे कहे जाने वाले सभी पदों की अपेक्षा छोटा है। $\boxed{२\text{९} \mid १}$ पद १।

उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में शुरु किया अनुभागकांडकोत्कीरणकाल विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण पूर्वकाल का संख्यातवाँ भागमात्र है। $\boxed{\frac{२\text{९}\mid१}{४}}$

पूर्वकाल + $\frac{\text{पूर्वकाल}}{\text{संख्यात}}$ = दूसरे पद का काल = २९ + $\boxed{\frac{२\text{९}\mid१}{४}}$ समच्छेद करके

$$\frac{२\text{९}\mid४}{४} + \frac{२\text{९}\mid१}{४} = \frac{२\text{९}\ (४+१)}{४} = \boxed{\frac{२\text{९}\ ५}{४}}$$ पद २।

उस प्रथम अनुभागकांडकोत्कीरणकाल की अपेक्षा अंतिम स्थितिकांडकोत्कीरणकाल और अंतिम स्थितिबंधकाल दोनों समान होकर संख्यातगुणे हैं $\boxed{\frac{२\text{९}\ ५ \mid ४}{४}}$ क्योंकि एक स्थिति-कांडकोत्कीरणकाल में संख्यात हजार अनुभागकांडकघात होते हैं । पद ३-४। (यहाँ पद ३ और पद ४ ये दोनों समान होने से अलग-अलग नहीं दिखाये हैं)।।९३।।

विशेषार्थ– अंतिम स्थितिकाण्डकोत्करणकाल और अंतिम स्थितिबंधकाल से प्रकृत में मिथ्यात्व की अपेक्षा उसकी प्रथम स्थिति के समाप्त होते समय उक्त दोनों को ग्रहण करना चाहिए तथा आयुकर्म को छोड़कर ज्ञानावरणादि शेष कर्मों की अपेक्षा गुणसंक्रमकाल के समाप्त होते समय उक्त दोनों को ग्रहण करना चाहिए। ये दोनों प्रथम अनुभागकांडकोत्करण के काल से संख्यातगुणे हैं।

तत्तो पढमो अहिओ पूरणगुणसेढिसीसपढमठिदी।
संखेण य गुणियकमा उवसमगद्धा विसेसहिया[१] ।।९४।।

ततः प्रथमोऽधिकः पूरणगुणश्रेणिशीर्षप्रथमस्थितिः।
संख्येन च गुणितक्रमा उपशमकाद्धा विशेषाधिका।।९४।।

ततश्चरमस्थितिकाण्डकोत्करणकालादन्तरकरणकालस्तदात्वस्थितिबन्धकालश्चान्योन्यं समानौ विशेषाधिकौ

२ϱ ५ । ४ । ५	
४ ४	

विशेषः पूर्वकालस्य संख्येयभागः। पदानि ६। ततः प्रथमः अपूर्वकरणप्रथमसमयारब्धस्थितिखण्डोत्करणकालस्तदात्वस्थितिबन्धकालश्च द्वौ समौ विशेषाधिकौ विशेषः पूर्वस्य संख्यातैकभागः। पदानि

२ ϱ। ५। ४। ५। ५	
४। ४। ४	

७-८। ततो गुणसंक्रमपूरणकालः संख्येयगुणः

२ ϱ। ५। ४। ५। ५। ४	
४। ४। ४	

पदानि ९ । ततो गुणश्रेणिशीर्षः संख्येयगुणः

२ ϱ। ५। ४। ५। ५। ४। ४	
४। ४। ४	

पदानि १०। ततः प्रथमस्थित्यायामः संख्येयगुणः

२ ϱ। ५। ४। ५। ५। ४। ४। ४	
४। ४। ४	

पदानि ११। ततो दर्शनमोहोपशमनकालो विशेषाधिकः

१ ⌓	
४। २	
२ ϱ। ५। ४। ५। ५। ४। ४। ४	
४। ४। ४	

विशेषः समयोनद्व्यावलिमात्रः पदानि १२ ।।९४।।

अन्वयार्थ– (तत्तो) उससे (अंतिम स्थितिकांडकोत्कीरणकाल की अपेक्षा) **(पढमो)** प्रथम स्थितिकांडकोत्कीरणकाल **(अहिओ)** अधिक है। उससे **(पूरणगुणसेढिसीसपढमठिदी)** गुणसंक्रमण-पूरणकाल, गुणश्रेणिशीर्ष व प्रथम स्थिति **(संखेण य गुणियकमा)** क्रम से संख्यातगुणित हैं । उससे **(उवसमगद्धा)** उपशमकरणकाल **(विसेसहिया)** विशेष अधिक है। ।।९४।।

टीकार्थ– अन्तिम स्थितिकाण्डकोत्कीरणकाल की अपेक्षा अंतरकरणकाल और उस समय होने वाला स्थितिबंधकाल परस्पर समान होकर पूर्व से विशेष अधिक हैं । विशेष का प्रमाण पूर्वकाल की अपेक्षा संख्यातवाँ भागमात्र है। पद ५-६।

२ϱ ५ । ४ । ५	
४ ४	

१) जयध. पु. १२, पृ. २८७-२९०.

अपूर्वकरण के प्रथम समय में आरंभ हुआ स्थितिखंडोत्करणकाल और उस समय का ही स्थितिबंधकाल परस्पर समान होकर पूर्व की अपेक्षा विशेष अधिक हैं। विशेष का प्रमाण पूर्वकाल का संख्यातवाँ भागमात्र

२ । ५। ४। ५। ५
। ४। ४। ४।

है।

इस विशेष का प्रमाण पूर्वपद में मिलाने पर ७ वें पद का प्रमाण आता है।

२९ ५ । ४ । ५ / ४ ४ + २ ९। ५। ४। ५ / ४। ४। ४ = २ ९। ५। ४। ५। ५ / ४। ४। ४

समच्छेद करके मिलाने पर उपर्युक्त प्रमाण आता है। पद ७,८।

(जहाँ विशेष अधिक प्रमाण कहा हो वहाँ ऐसा ही विधान समझें और वहाँ यह ५/४ संख्या आगे लिखे)

उससे गुणसंक्रमणपूरणकाल संख्यातगुणा है

२ ९। ५। ४। ५। ५। ४
४। ४। ४

जहाँ संख्यात गुणकार कहा हो वहाँ ४ से गुणा करें) पद ९।

उससे गुणश्रेणिशीर्ष संख्यातगुणा है।

२ ९। ५। ४। ५। ५। ४। ४
४। ४। ४

पद १०।

उससे प्रथम स्थिति का आयाम संख्यातगुणा है। ९

२ ९। ५। ४। ५। ५। ४। ४। ४
४। ४। ४

पद ११।

उससे दर्शनमोहनीय का उपशमनकाल विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण एक समय कम दो आवली मात्र है।

१
४। २
२ ९। ५। ४। ५। ५। ४। ४। ४
४। ४। ४

यहाँ आवलि का चिह्न ४ माना है पद १२। ।।९४।।

विशेषार्थ– इस अल्पबहुत्व में दसवाँ स्थान गुणश्रेणिशीर्ष है सो इससे अन्तर सम्बन्धी अंतिम फालि का पतन होते समय गुणश्रेणीनिक्षेप के अग्र से संख्यातवें भाग का खंडन कर जो फालि के साथ निजीर्ण होनेवाला गुणश्रेणिशीर्ष है उसका ग्रहण करना चाहिए, तथा प्रथम जो उपशामककाल को एक समय कम दो आवलि कालप्रमाण अधिक बतलाया है उसका कारण यह है कि अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव जो मिथ्यात्व का नया बन्ध करता है उसका एक समय तो प्रथमस्थिति के साथ ही गल जाता है, इसलिए प्रथमस्थिति के इस अन्तिम समय को छोड़कर उपशम सम्यग्दृष्टि के काल के भीतर एक समय कम दो आवलिप्रमाण काल ऊपर जाने तक उस नवकबन्ध की उपशामना समाप्त होती है। (इसका स्पष्टीकरण गाथा क्र. २६३ में किया गया है, वहाँ से जानना चाहिये) यही कारण है कि प्रथम स्थिति से उपशमना का काल उक्त प्रमाण से विशेष अधिक कहा है।

अणियट्टी संखगुणो णियट्टिगुणसेढियायदं सिद्धं।
उवसंतद्धा अंतर अवरवराबाह संखगुणियकमा ।।९५ ।।

अनिवृत्तिसंख्यगुणं निवृत्तिगुणश्रेण्यायतं सिद्धम्।
उपशान्ताद्धाऽन्तरमवरवराबाधा संख्यगुणितक्रमा ।।९५ ।।

ततो दर्शनमोहोपशमनकालादनिवृत्तिकरणकाल: संख्येयगुण:

१ ‿ / ४। २   २ । ५। ४। ५। ५। ४। ४। ४।४   ४। ४। ४

अयमपवर्त्य गुणित एतावान् २१। पदानि १३ । तत: अपूर्वकरणकाल: संख्येयगुण: [२१ १।]

१—   २११। ४   ४

पदानि । १४ । ततो गुणश्रेण्यायामो विशेषाधिक: (२११। ४ / ४) **विशेषोऽनिवृत्तिकरणकाल – स्तत्संख्येयभागश्च ।'निवृत्तिगुणश्रेण्यायतं सिद्धमित्यनेन करणत्रयावतारे' 'उवरीदो गुणिदकमा' कमेण संखेज्जरूवेणेत्यनिवृत्तिकरणकालादपूर्वकरणकालस्य संख्येयगुणत्वं सिद्धम्। गुणसेढीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदीत्यत्र गुणश्रेण्यायामस्यापूर्वकरणकालाद्विशेषाधिकत्वं सिद्धमित्यनुवाद: कृत: पदानि१५ ।तत: उपशमसम्यग्दर्शनकाल: संख्येयगुण:**

१—   १—   २११।४।४   ४

पदानि १६ । ततोऽन्तरायाम: संख्येयगुण:

१—   १—   २११। ४।४। ४।   ४

पदानि १७ ।

तस्मान्मिथ्यात्वस्य जघन्याबाधा संख्येयगुणा

१—   १—   २११। ४।४। ४। ४   ४

सा प्रथमस्थितिचरमसमये गुणसंक्रमकालचरमसमये बध्यमान–जघन्यस्थितेर्भवति। शेषकर्मणां पदानि १८।

ततो मिथ्यात्वस्योत्कृष्टाबाधा संख्येयगुणा

१—   १—   २११। ४।४। ४। ४।४   ४

सा चापूर्वकरणप्रथमसमय–स्थितिबन्धस्य ग्राह्या। पदानि १९ । ।।९५।।

अन्वयार्थ– (अणियट्टी संखगुणो) अनिवृत्तिकरण का काल संख्यातगुणा है। **उससे (णियट्टिगुणसेढियायदं सिद्धं)** अपूर्वकरण का काल व गुणश्रेणीआयाम संख्यातगुणा है यह बात सिद्ध है। गुणश्रेणीआयाम से **(उवसंतद्धा)** उपशम सम्यक्त्व का काल, **(अंतर)** अंतरायाम, **(अवरवराबाह)** जघन्य आबाधा और उत्कृष्ट आबाधा **(संखगुणियकमा)** क्रम से संख्यातगुणित है।

टीकार्थ–दर्शनमोहनीय के उपशम काल की अपेक्षा अनिवृत्तिकरण का काल संख्यातगुणा

१ ⏜
४। २
२ ९। ५। ४। ५। ५। ४। ४। ४
४। ४। ४

है। (इन सभी का अपवर्तन करके २ ९ इतना रहता है।) क्योंकि ये सभी काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है। पद १३।

उससे अपूर्वकरण का काल संख्यात गुणा है [२९९] पद १४। उससे गुणश्रेणीआयाम विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण अनिवृत्तिकरण का काल और उसका संख्यातवाँ भाग हैं। अपूर्व+अनिवृत्ति + अनिवृत्ति का संख्यातवाँ भाग =गुणश्रेणीआयाम (प्रथम दो संख्याओं का योग)

[२९९] + [२९] = [२९९] (समान संख्या निकालकर शेष रहे संख्यात गुणकार में एक अधिक किया)

दोनों का जोड़ + अनिवृत्ति का संख्यातवाँ भाग (समान संख्या निकालकर शेष रहे [९ ४] गुणकार में एक अधिक किया।)

= [१ — / २९९ + २९ / ४] समच्छेद = [१ — / २९९ ४ / ४ + २९ / १ — ४] = [१ — / १ — / २९९ ४ / ४] गुणश्रेणी–आयाम पद १५।

'निवृत्ति गुणश्रेण्यायतं सिद्धम्' इस पद से तीन करण के प्रकरण में **'उवरीदो गुणिदकमा'** इस पद से अनिवृत्तिकरणकाल की अपेक्षा अपूर्वकरण का काल संख्यातगुणा है, यह सिद्ध है। गुणश्रेणीदीर्घत्व अपूर्वकरणद्विक की अपेक्षा साधिक है। इससे गुणश्रेणिआयाम अपूर्वकरण–काल की अपेक्षा विशेष अधिक है। यह सिद्ध है।

गुणश्रेणीआयाम से उपशम सम्यग्दर्शन का काल संख्यात गुणा है। [१ — / १ — / २९९ ४ । ४ / ४] पद १६।

उससे अंतरायाम संख्यातगुणा है। [१ — / १ — / २९९ ४। ४।४ / ४] पद १७।

उससे मिथ्यात्व की जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है। यह जघन्य आबाधा प्रथम स्थिति के अंतिम समय में बाँधी जानेवाली जघन्य स्थिति की होती है। शेष कर्मों की जघन्य आबाधा गुणसंक्रमणकाल के अंतिम समय में होती है। पद १८। [१ — / १ — / २९९ ४ । ४। ४। ४ / ४]

उससे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है। वह अपूर्वकरण के प्रथम समय के

स्थितिबन्ध की ग्रहण करनी चाहिये। [१ — / १ — / २११ ४ । ४। ४। ४। ४ / ४] पद १९। ।।९५।।

पढमापुव्वजहण्णट्ठिदिखंडमसंखसंगुणं तस्स।
अवर[१]वरट्ठिदिबंधा तट्ठिदिसत्ता य संखगुणियकमा[२] ।।९६ ।।

प्रथमापूर्वजघन्यस्थितिखण्डमसंख्यसंगुणं तस्य।
अवरवरस्थितिबन्धस्तत्स्थितिसत्त्वं च संख्यगुणितक्रम्।।९६ ।।

प्रथमस्थितौ एकस्थितिखण्डोत्करणकाले अन्तर्मुहूर्ते अपूर्णे अवशिष्टे यच्चरमस्थितिखण्डं पल्यसंख्यातैकभागमात्रमारब्धं तज्जघन्यस्थितिखण्डमुच्यते। तच्च तस्मादुत्कृष्टाबाधाकालतोऽसंख्येयगुणं। [प / १] पदानि २०। ततः अपूर्वकरणप्रथमसमयोत्कृष्टस्थितिखण्डं संख्येयगुणं सागरोपमपृथक्त्वमात्रं [सा७ / ८] पदानि२१। ततः प्रथमस्थितिचरमसमये मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणोऽन्तः–कोटीकोटिसागरोपमप्रमितः [सा अं को २ / ४ । ४ । ४] पदानि २२।तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयोत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्येयगुणः [सा अं को २ / ४ । ४] पदानि २३। ततः प्रथमस्थितिचरमसमये मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं [सा अं को २ / ४] पदानि २४। ततः ततोऽपूर्वकरणप्रथमसमये उत्कृष्टस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं [सा अं को २] पदानि २५। इति दर्शनमोहोपशमकस्याल्पबहुत्वपदानि पञ्चविंशतिः कथितानि।।९६।।

अन्वयार्थ– उत्कृष्ट आबाधा की अपेक्षा **(पढमापुव्वजहण्णट्ठिदिखंडमसंखसंगुणं)** अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला जघन्य स्थितिकांडक असंख्यात गुणित है। **(तस्स)** उससे **(अवरवरट्ठिदिबंधा)** जघन्य स्थितिबंध, उत्कृष्ट स्थितिबंध **(तट्ठिदिसत्ता य)** जघन्य स्थितिसत्त्व और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व ये पद **(संखगुणियकमा)** क्रम से संख्यातगुणे हैं ।।९६।।

टीकार्थ– प्रथम स्थिति में अंतर्मुहूर्तमात्र एक स्थितिखंडोत्करणकाल शेष रहने पर जो पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र अंत का स्थितिखंड प्रारंभ किया उसे जघन्य स्थितिखंड कहते हैं। वह जघन्य स्थितिखंड उत्कृष्ट आबाधाकाल की अपेक्षा असंख्यातगुणा है।

१) वरमवरट्ठिदिसत्ता एदे य संखगुणियकमा। इत्यपि पाठः २) जयध. पु. १२ पृ. २९३–२९६.

प	$\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$
?	

पद २०। उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिकांडक संख्यातगुणा है। उसका प्रमाण सागरोपमपृथक्त्वमात्र है (७-८ सागरोपम)पद २१। उससे प्रथम स्थिति के अंतिम समय में मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा अर्थात् अंत:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण **सा अं को २ / ४ । ४ । ४** है। पद २२। उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है। **सा अं को २ / ४ । ४** (एक संख्यात का भाग कम करने पर संख्यातगुणा अर्थ होता है।)पद २३। उससे प्रथम स्थिति के अंतिम समय में मिथ्यात्व का जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। **सा अं को २ / ४** पद २४। उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यात गुणा है। **सा अ. को. २** पद २५। इसप्रकार दर्शनमोहनीय के उपशम के २५ अल्पबहुत्व पद कहे गए ।।९६।।

विशेषार्थ – गाथा में **''पढमापुव्वजहण्णट्ठिदिखंडमसंखसंगुणं''** पाठ है। ध. पु. ६ पृ. २३७ पर **''अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्ण ओट्ठिदिखंडओ असंखेज्जगुणो''** यह पाठ है। इन दोनों का अर्थ है कि अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य स्थितिखंड असंख्यातगुणित है। परंतु जयधवल पु.१२, पृ. २९३ पर चूर्णिसूत्र में **''जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं''** ऐसा पाठ है। इसमें **''पढमापुव्व''** यह पाठ नहीं है। इस पाठ के अभाव में प्रथमस्थिति के अन्त में होने वाले स्थितिखण्ड का ग्रहण होता है, क्योंकि अपूर्वकरण के प्रथम स्थितिखण्ड की अपेक्षा प्रथम स्थिति के अन्त का स्थितिखण्ड जघन्य है। यह जघन्य स्थितिखण्ड भी पूर्वोक्त उत्कृष्ट आबाधा से असंख्यातगुणा है। जयधवला टीका में कहा भी है – मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति अल्प शेष रहने पर प्राप्त हुए अंतिम स्थितिकाण्डक का और शेष कर्मों के गुणसंक्रमणकाल के अल्प शेष रहने पर प्राप्त हुए अंतिम स्थितिकांडक का जघन्य स्थितिकाण्डकरूप से ग्रहण करना चाहिये। अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिखण्ड जघन्य स्थितिखण्ड की अपेक्षा संख्यातगुणा है क्योंकि उसका प्रमाण सागरोपम पृथक्त्व है।

जघन्य स्थितिबंध मिथ्यात्वकर्म का अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में होने वाला ग्रहण करना चाहिए। उसीप्रकार जघन्य स्थितिसत्त्व के बारे में भी जानना चाहिए ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्वसंबंधी पच्चीस (२५) अल्पबहुत्व पद

पद	प्रमाण	पूर्व पद से अल्पबहुत्व का प्रमाण	संदृष्टि
१) अन्तिम अनुभागकांडकोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त		२୧
२) प्रथम अनुभागकांडकोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	२୧५ ४
३) अन्तिम स्थितिकांडकोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२୧५।४ ४
४) अन्तिम स्थितिबंधापसरणकाल (स्थितिबंधकाल)	अंतर्मुहूर्त	तीसरे के समान	२୧५।४ ४
५) अन्तरकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	२୧५।४।५ ४ ४
६) अन्तरकरण के समय का स्थितिबंधकाल	अंतर्मुहूर्त	पाँचवें के समान	२୧५।४।५ ४ ४
७) प्रथम स्थितिकाण्डकोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	२୧५।४।५।५ ४ ४ ४
८) उस समय का स्थितिबंधकाल	अंतर्मुहूर्त	सातवें के समान	२୧५।४।५।५ ४ ४ ४
९) गुणसंक्रमणपूरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२୧५।४।५।५।४ ४ ४ ४
१०) गुणश्रेणिशीर्ष	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२୧५।४।५।५।४।४ ४ ४ ४
११) प्रथम स्थिति का आयाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२୧५।४।५।५।४।४।४ ४ ४ ४
१२) उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	एक समय कम दो आवली से अधिक	१ ⏜ ४।२ २୧५।४।५।५।४।४।४ ४ ४ ४

१३) अनिवृत्तिकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२
१४) अपूर्वकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२११
१५) गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	१— १— २११ ४ ४
१६) उपशमसम्यक्त्वकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	१— १— २११ ४।४ ४
१७) अंतरायाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	१— १— २११ ४।४।४ ४
१८) मिथ्यात्व की जघन्य आबाधा	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	१— १— २११ ४।४।४।४ ४
१९) मिथ्यात्व की उत्कृष्ट आबाधा	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	१— १— २११ ४।४।४।४।४ ४
२०) जघन्य स्थितिकांडकायाम	पल्य / संख्यात	असंख्यातगुणा	प १
२१) उत्कृष्ट स्थितिकांडकायाम	पृथक्त्व सागरप्रमाण	संख्यातगुणा	**सा ७ ८**
२२) जघन्य स्थितिबंध	अंतःकोटा-कोटी सा.	संख्यातगुणा	**सा अं को २ ४ ४ ४**
२३) उत्कृष्ट स्थितिबंध	अंतःकोटा-कोटी सा.	संख्यातगुणा	**सा अं को २ ४ ४**
२४) जघन्य स्थितिसत्त्व	अंतःकोटा-कोटी सा.	संख्यातगुणा	**सा अं को २ ४**
२५) उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व	अंतःकोटा-कोटी सा.	संख्यातगुणा	**सा अं को २**

प्रथमोपशम सम्यक्त्वसंबंधी २५ अल्पबहुत्व पदों की रचना–

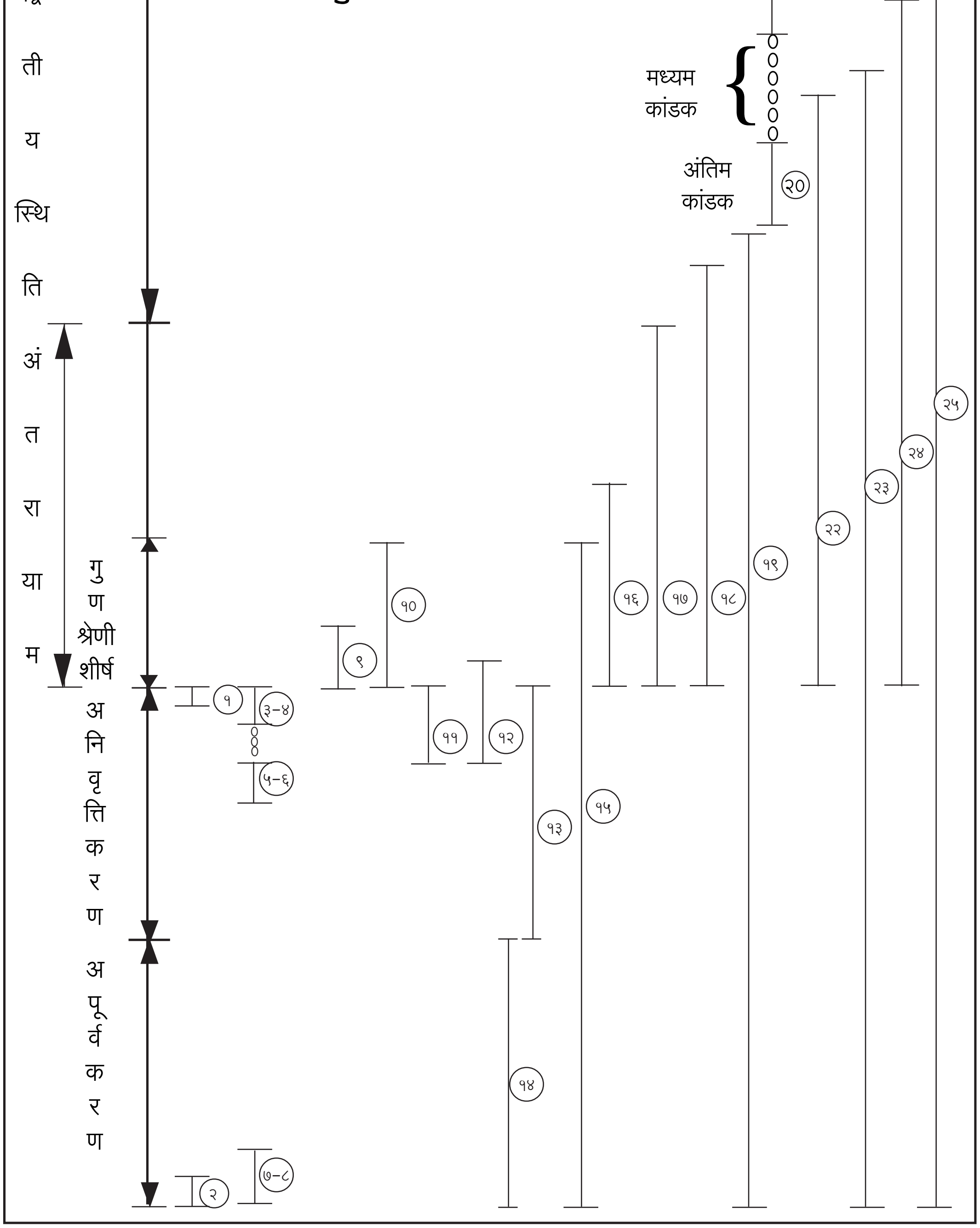

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणसमयस्थितिसत्त्वमाह–

अंतोकोडाकोडी जाहे संखेज्जसायरसहस्से।
णूणा कम्माण ठिदी ताहे उवसमगुणं गहइ।।९७।।

अन्त:कोटीकोटिर्यदा संख्येयसागरसहस्रेण।
न्यूना कर्मणां स्थितिस्तदा उपशमगुणं गृह्णाति।।९७।।

जाहे–यस्मिन् काले प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति ताहे–तस्मिन् समये कर्मणां स्थिति-सत्त्वं संख्येयसागरोपमसहस्रोनान्त:कोटीकोटिमात्रं भवति सा अं को २ / ४ अथवा यस्मिन् काले अन्तरायामप्रथमसमये कर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्येय-सागरोपमसहस्रोनान्त:कोटीकोटिमात्रं भवति तस्मिन् काले प्रथमोपशमसम्यक्त्वगुणं गृह्णाति।।९७।।

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहणसमय में जो स्थितिसत्त्व रहता है उसे कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(जाहे)** जिस समय **(संखेज्जसायरसहस्से णूणा)** संख्यात हजार सागर कम **(अंतोकोडाकोडी)** अंत:कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण **(कम्माण ठिदी)** कर्मों की स्थिति रहती है **(ताहे)** उस समय **(उवसमगुणं गहइ)** उपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है।।९७।।

टीकार्थ–जिस काल में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है उस समय में कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार सागरोपम से हीन अंत:कोटाकोटी प्रमाण होता है। **सा अं को २ / ४** अथवा जिस काल में अर्थात् अंतरायाम के प्रथम समय में कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार सागरोपम कम अंत:कोटाकोटी प्रमाण होता है, उस काल में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करता है ।।९७।।

विशेषार्थ– तात्पर्य यह है कि अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितना स्थितिसत्त्व होता है उससे दो करण परिणामों के द्वारा संख्यात हजार सागरोपम घटकर स्थितिसत्त्व प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय में शेष रहता है।

अथ देशसकलसंयमाभ्यां सह प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णत: कर्मस्थितिसत्त्वविशेषमाह–

तट्ठाणे ठिदिसत्तो आदिमसम्मेण देससयलजमं।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो।।९८।।

तत्स्थाने स्थितिसत्त्वं आदिमसम्यक्त्वेन देशसकलयमम्।
प्रतिपद्यमानकस्यापि संख्येयगुणेन हीनक्रमम् ।।९८।।

तट्ठाणे अंतरायामप्रथमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वेन सह देशसयंमं प्रतिपद्यमानस्य पूर्वस्मादवस्थितिसत्त्वात् संख्येयगुणहीनं स्थितिसत्त्वं भवति–

सा अं को २
४ । ४

सम्यक्त्वकारणविशुद्धेः सकाशाद्देशसंयमकारणविशुद्धिविशेषस्यानन्तगुणत्वेन तत्कार्यस्य स्थितिखण्डायामस्य संख्येयगुणत्वोपलम्भात् खण्डितावशिष्टस्थितिसत्त्वस्य संख्येयगुणहीनत्वं युक्तमिति। पुनस्तेनैव प्रथमोपशमसम्यक्त्वेन सह सकलसंयमं प्रतिपद्यमानस्य कर्मणां स्थितिसत्त्वं पूर्वस्मात्संख्येयगुणहीनं भवति–

सा अं को २
४ । ४ । ४

देशसंयमहेतुविशुद्धेः सकाशात् सकलसंयमहेतुविशुद्धेरनन्तगुणत्वेन तत्कार्यस्य स्थितिखण्डस्य संख्येय–गुणत्वात् खण्डितावशिष्टस्थितिसत्त्वं ततः संख्येयगुणहीनं सुघटमेवेति[1] ।।९८।।

अब देशसंयम और सकलसंयम से सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने वाले जीव के कर्म का स्थितिसत्त्व विशेष कहते हैं–

अन्वयार्थ–(तट्ठाणे) उस स्थान में अर्थात् अन्तरायाम के प्रथम समय में **(आदिमसम्मेण)** प्रथमोपशम सम्यक्त्व के समान **(देससयलजमं)** देशसंयम और सकलसंयम को **(पडिवज्जमाणगस्स वि)** प्राप्त होने वाले जीव का **(ठिदिसत्तो)** स्थितिसत्त्व **(संखेज्जगुणेण हीणकमो)** क्रम से संख्यातगुणा हीन है ।।९८।।

टीकार्थ– अंतरायाम के प्रथम समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के समान देशसंयम को प्राप्त होने वाले जीव का स्थितिसत्त्व पूर्व के स्थितिसत्त्व की अपेक्षा (केवल प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले जीव के स्थितिसत्त्व की अपेक्षा) संख्यातगुणा हीन होता

सा अं को २
४ । ४

है।(संख्यातगुणा हीन दिखाने के लिए ४ का भाग दिया) क्योंकि सम्यक्त्व के कारणभूत विशुद्धि की अपेक्षा देशसंयम को कारणभूत विशुद्धि अनन्तगुणी होने पर उस विशुद्धि का कार्यभूत स्थितिखंडायाम संख्यातगुणा प्राप्त होता है। उस कारण खंडित होकर शेष रहा स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन होता है यह युक्त ही है। पुनः उस प्रथमोपशम सम्यक्त्व से सहित संकलसंयम को प्राप्त होने वाले जीव का स्थितिसत्त्व पूर्व की अपेक्षा संख्यातगुणा हीन होता

सा अं को २
४ । ४ । ४

है।क्योंकि देशसंयम के कारणभूत विशुद्धि की अपेक्षा संकलसंयम को कारणभूत विशुद्धि अनंतगुणी होने से उसका कार्यभूत स्थितिकांडक संख्यातगुणा होता है। उसकारण खंडित होकर शेष रहा हुआ स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा कम है यह बात सुघटित है।।९८।।

विशेषार्थ– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि जीव के जो तीन करण परिणाम होते हैं उनकी अपेक्षा प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ संयमासंयम को ग्रहण करने वाले जीव के तीन करण परिणाम अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए होते हैं। इसलिए केवल प्रथमोपशम

---

१) जयध. पृ. ६, पृ. २६८.

सम्यक्त्व को ग्रहण करने वाले जीव के आयुकर्म के अतिरिक्त शेष कर्मों का जितना स्थितिसत्त्व होता है उससे प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित संयमासंयम को ग्रहण करने वाले जीव के उक्त कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा कम होता है। यह उक्त कथन का तात्पर्य है। संकलसंयम की अपेक्षा भी इसीप्रकार विचार करना चाहिए।

अथ दर्शनमोहोपशमनकाले सम्भवद्विशेषमाह–

उवसामगो य सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो।
उवसंते भजियव्वो णिरासणो चेव खीणम्हि[1]।।९९।।

उपशामकश्च सर्वो निर्व्याघातस्तथा निरासानः।
उपशान्ते भजितव्यो निरासानश्चैव क्षीणे।।९९।।

सर्वः सोपसर्गो निरुपसर्गो वा दर्शनमोहोपशमको निर्व्याघातः विच्छेदमरणलक्षणव्याघातरहित एव तथा निरासादनश्च । तदुपशमनकाले अनन्तानुबन्ध्युदयाभावेन सासादनगुणप्राप्तेरभावात्। उपशान्ते दर्शनमोहे अन्तरायामे वर्तमानः प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिः सासादनगुणप्राप्त्या भक्तव्यो विकल्पनीयः। कस्यचित्प्रथमोपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयादिषडावलिकान्तावशेषे सासादनगुणत्वसम्भवात्। उपशमसम्यक्त्वकाले क्षीणे समाप्ते सति निरासादन एव तदा नियमेन मिथ्यात्वाद्यन्यतमोदयसम्भवात्।।९९।।

अब दर्शनमोह के उपशमनकाल में होनेवाली विशेषता कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(उवसामगो य सव्वो)** दर्शनमोहनीय का उपशम करने वाले सभी जीव **(णिव्वाघादो)** व्याघात से रहित हैं। **(तहा)** उसीप्रकार **(णिरासाणो)** सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होते हैं। **(उवसंते)** दर्शनमोहनीय का उपशम होने पर **(भजियव्वो)** भजनीय है अर्थात् कोई सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता भी है और नहीं भी होता है। **(च)** और **(खीणम्हि)** उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर **(णिरासणो एव)** सासादन से रहित ही है ।।९९।।

टीकार्थ– उपसर्गसहित या उपसर्गरहित दर्शनमोहनीय का उपशम करने वाला जीव व्याघात से रहित अर्थात् विच्छेद और मरण से रहित ही है। उसीप्रकार वह आसादन से रहित है क्योंकि उस उपशमनकाल में (मिथ्यात्वरहित केवल) अनन्तानुबंधी के उदय का अभाव होने से सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है। दर्शनमोहनीय उपशांत होने पर अंतरायाम में स्थित प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि सासादन गुणस्थान की प्राप्ति की अपेक्षा से भजनीय है अर्थात् किसी को सासादन गुणस्थान की प्राप्ति होती है या किसी को नहीं भी होती है क्योंकि किसी जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में एक समय से लेकर छह आवली शेष रहने पर सासादन गुणस्थान की प्राप्ति संभव है। उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर आसादना रहित ही है क्योंकि उस समय नियम से मिथ्यात्वादि ३ प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का उदय होता है ।।९९।।

१) कसायपाहुड गा. १००.

विशेषार्थ– दर्शनमोहनीय की उपशमविधि को प्रारम्भ करके उसका उपशम करने वाले जीवको यद्यपि चारों प्रकार के उपसर्ग एक साथ उपस्थित होनेपर भी वह निश्चय से दर्शनमोह की उपशमनविधि को प्रतिबन्ध के बिना समाप्त करता है यह उक्त कथन का तात्पर्य है। इस कथन द्वारा दर्शनमोह के उपशामक का उस अवस्था में मरण भी नहीं होता यह भी जानना चाहिए, क्योंकि मरण भी व्याघात का एक भेद है। **'निरासणो चेव खीणम्हि'** इस पद के दो अर्थ किये गये हैं– (१) उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर सासादन गुणस्थान को नियम से प्राप्त होता नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्व के काल में जघन्यरूप से एक समय और उत्कृष्टरूप से छह आवली शेष रहने पर सासादन गुणस्थान होता है उसके पश्चात् नहीं, ऐसा नियम है। (२) दर्शनमोहनीय का क्षय होने पर यह जीव निरासान ही है उसके सासादन गुणस्थानरूप परिणाम संभव नहीं है। क्षायिक सम्यक्त्व अप्रतिपात स्वरूप होता है और सासादन परिणाम के उपशम सम्यक्त्वपूर्वक होने का नियम है, इसलिए क्षायिक सम्यक्त्व से सासादन गुणस्थान की प्राप्ति नहीं होती है।

अथ सासादनस्वरूपं कालप्रमाणं चाह –

उवसमसम्मत्तद्धा छावलिमेत्ता दु समयमेत्तो त्ति।
अवसिट्ठे आसाणो अणअण्णदरुदयदो होदि[१]**।।१००।।**

उपशमसम्यक्त्वाद्धा षडावलिमात्रतः समयमात्र इति ।
अवशिष्टे आसादनोऽनान्यतमोदयतो भवति।।१००।।

उपशमसम्यक्त्वस्य काले एकसमयादिषडावलिकान्ते अवशिष्टे अनन्तानुबन्धिनामन्यतमोदयेन उपशमसम्यक्त्वं विराध्य मिथ्यात्वमप्राप्य सासादनो नाम भवति, न सम्यग्दृष्टिर्नापि मिथ्यादृष्टिर्नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टिः किन्तु सासादनोऽनुभयरूपः । अस्य कालः जघन्येनैकसमयः। उत्कर्षेण षडावलिका इत्यर्थः।।१००।।

अब सासादन का स्वरूप और काल का प्रमाण कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(उवसमसम्मत्तद्धा)** उपशम सम्यक्त्व का काल **(छावलि मेत्ता दु)** छह आवलि से लेकर **(समयमेत्तो त्ति)** एक समय पर्यन्त **(अवसिट्ठे)** शेष रहने पर **(अणअण्णदरूदयदो)** अनन्तानुबन्धी कषाय में से किसी भी एक कषाय के उदय से **(आसाणो)** सासादन **(होदि)** होता है।

टीकार्थ– उपशम सम्यक्त्व के काल में एक समय से लेकर छह आवली पर्यंत शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी कषाय में से किसी एक कषाय के उदय से उपशम सम्यक्त्व की विराधना करके मिथ्यात्व को प्राप्त न होकर वह सासादन गुणस्थानवर्ती होता है। वह जीव सम्यग्दृष्टि भी

---

१) जयध. पु. १२, पृ. ३०३

नहीं, मिथ्यादृष्टि भी नहीं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नहीं, किन्तु सासादन गुणस्थानवर्ती अनुभयरूप है। इसका काल जघन्यरूप से एक समय और उत्कृष्टरूप से छह आवली है ।।१००।।

अथ सिंहावलोकनन्यायेनोपशमसम्यक्त्वप्रारम्भसामग्रीमाह–

सायारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजणिज्जो।
जोगे अण्णदरम्हि दु जहण्णए तेउलेस्साए[१] ।।१०१ ।।

साकारे प्रस्थापको निष्ठापको मध्यमश्च भजनीय:।
योगेऽन्यतरस्मिन् तु जघन्यके तेजोलेश्याया:।।१०१ ।।

साकारे सविकल्पे उपयोगे ज्ञानोपयोगे वर्तमानो जीव: प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारम्भको भवति। तन्निष्ठापको मध्यमश्च भजनीयो विकल्पनीय:, साकारे वा अनाकारे वा उपयोगे वर्तत इत्यर्थ:। अन्यतरस्मिन् योगे मनोवाक्काययोगानामेकस्मिन् योगे वर्तमान: प्रथमोपशमसम्यक्त्व–प्रारम्भको भवति। तथा यद्यपि तिर्यग्मनुष्यो वा मन्दविशुद्धिस्तथापि तेजोलेश्याया जघन्यांशे वर्तमान एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारम्भको भवति। नरकगतौ नियताशुभलेश्यत्वेऽपि कषायाणां मन्दानुभागोदयवशेन तत्त्वार्थश्रद्धानानुगुणकारणपरिणामरूपविशुद्धिविशेषसम्भवस्याविरोधात्। देवगतौ सर्वोऽपि शुभलेश्य एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारम्भको भवति।।१०१ ।।

अब सिंहावलोकन–न्याय से उपशम सम्यक्त्व की प्रारम्भिक सामग्री कहते हैं –

अन्वयार्थ– (पट्ठवगो) दर्शनमोहनीय के उपशम का प्रस्थापक जीव (प्रारंभ करने वाला) **(सायारे)** साकार उपयोग में होता है परन्तु **(णिट्ठवगो य मज्झिमो भजणिज्जो)** उसका निष्ठापक (समापन करने वाला) और मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है अर्थात् साकार या निराकार दोनों में से कोई भी उपयोग हो सकता है और वह जीव **(जोगे अण्णदरम्हि दु)** तीन योगों में से किसी एक योग में विद्यमान होता है और **(तेउलेस्साए)** तेजोलेश्या के **(जहण्णए)** जघन्य अंश में वर्तमान होता है ।।१०१।।

टीकार्थ– सविकल्प ज्ञानोपयोग में जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारम्भक होता है। उसकी समाप्ति करने वाला और मध्यमजीव भजनीय है अर्थात् साकार या अनाकार उपयोग में होता है। मन,वचन, काय इन तीन योगों में से किसी एक योग में प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारम्भक होता है। उसीप्रकार यद्यपि तिर्यंच अथवा मनुष्य मंदविशुद्धि से युक्त होता है फिर भी तेजोलेश्या के जघन्य अंश में रहने वाला जीव ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारम्भक होता है। नरकगति में नियम से अशुभ लेश्या होने पर भी कषायों के मन्द अनुभाग के उदय

---

१) जयध. पु. १२ पृ. ३०६, कसायपाहुड गा. ८९.

से तत्त्वार्थश्रद्धान के अनुरूप गुण को कारणभूत परिणामों की विशेष विशुद्धि होने में विरोध नहीं है। देवगति में सभी जीव नियम से शुभ लेश्यायुक्त होते हैं। वे जीव (अपनी-अपनी लेश्या में) प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रारम्भ करते हैं ।।१०१।।

विशेषार्थ- दर्शनमोह की उपशमन-विधि का प्रारंभ करने वाला जीव अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त प्रस्थापक कहलाता है। आत्मा के अर्थग्रहणरूप परिणाम का नाम उपयोग है । उपयोग दो प्रकार का है - (१) साकार उपयोग और (२) अनाकार उपयोग । साकार उपयोग का अर्थ ज्ञानोपयोग और अनाकार उपयोग का अर्थ दर्शनोपयोग। दर्शनमोह की उपशमना-विधि का प्रस्थापक जीव नियम से ज्ञानोपयोग में उपयुक्त होता है, क्योंकि सामान्य ग्राही अविचारस्वरूप दर्शनोपयोग के द्वारा विचारस्वरूप तत्त्वार्थश्रद्धान-लक्षण सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के प्रति अभिमुखपना नहीं बन सकता । इसलिए एक साकार उपयोग ही होता है। इस वचन से जागृत अवस्था से सहित जीव ही सम्यक्त्व की उत्पत्ति के योग्य होता है, निद्रा अवस्था में नहीं यह सिद्ध होता है।

दर्शनमोह के उपशामना को समाप्त करने वाला जीव निष्ठापक होता है अर्थात् समस्त प्रथमस्थिति को क्रम से गलाकर अन्तर-प्रवेश के अभिमुख जीव निष्ठापक होता है। वह साकारोपयोग से उपयुक्त होता है अथवा अनाकारोपयोग से उपयुक्त होता है, क्योंकि इन दोनों उपयोगों में से किसी एक उपयोग के साथ निष्ठापक होने में विरोध का अभाव है इसलिए भजनीय है। इसीप्रकार मध्यम अवस्थावाले का भी कथन करना चाहिए । प्रस्थापक और निष्ठापक पर्यायों के अन्तराल काल में प्रवर्तनमान जीव मध्यम कहलाता है। दोनों ही उपयोगों का क्रम से परिणाम होने में विरोध का अभाव होने से भजनीय है।[2]

शुभलेश्या का नियम मनुष्य और तिर्यंचगति के लिए कहा गया है; क्योंकि इन दोनों गति में ही शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की लेश्या संभव हैं। इसलिए यह नियम किया है कि प्रस्थापक जीव के शुभलेश्या ही होती है। देवगति में शुभलेश्या होने से वहाँ इस नियम की आवश्यकता नहीं है। नरकगति में अशुभलेश्या ही होने से वहाँ यह नियम लागू नहीं होता है। पीत,पद्म और शुक्ल लेश्याओं में से कोई एक वर्धमान लेश्या प्रस्थापक के होती है। इसमें से कोई भी लेश्या हीयमान नहीं होती है। यदि अत्यन्त मन्द विशुद्धि से सहित तिर्यञ्च अथवा मनुष्य प्रथमोपशम का प्रारम्भ करता है तो भी उसको कम-से-कम तेजोलेश्या का जघन्य अंश अवश्य होता है। केवल तेजोलेश्या का जघन्य अंश होने पर ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ऐसा **'जहण्णए तेउलेस्साए'** इस पद का अर्थ नहीं है।

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालात्परमुदययोग्यकर्मविशेषमाह -

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होदि उवसंतो।
तेण परमुदओ खलु तिण्णेकदरस्स कम्मस्स[3] ।।१०२।।

१) जयध. पु. १२, पृ. ३०४, २) जयध. पु. १२, पृ. ३०५, ३) कसायपाहुड गा. १०३.

अन्तर्मुहूर्तमद्धा सर्वोपशमेन भवत्युपशान्तः।
तेन परं उदयः खलु त्रिष्वेकतरस्य कर्मणः।।१०२।।

अन्तर्मुहूर्तमध्वानं अन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं सर्वेषां दर्शनमोहस्य प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशाना-मुपशमेन उदयायोग्यभावेन जीवः उपशान्तः उपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति। तेण परं तस्मादुपशमसम्यक्त्व-कालात्परं तिसृणां दर्शनमोहप्रकृतीनामेकतमस्य कर्मणः उदयो भवत्येव ।।१०२।।

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्वकाल के अनन्तर उदययोग्य कर्मविशेष का कथन करते हैं –

अन्वयार्थ– (अंतोमुहुत्तमद्धं) अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत **(सव्वोवसमेण)** सभी दर्शनमोहनीय के उपशम से **(उपसंतो)** उपशांत अर्थात् उपशमसम्यग्दृष्टि **(होदि)** होता है। **(तेण परं)** उसके अनन्तर **(खलु)** निश्चय से **(तिण्णेकदरस्स कम्मस्स)** दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का **(उदओ)** उदय होता है।।१०२।।

टीकार्थ–अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यंत सभी दर्शनमोहनीय की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का उदय न आने योग्य उपशम होने से जीव उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। उस उपशम सम्यक्त्वकाल के अनन्तर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का उदय नियम से होता है।

अथ दर्शनमोहान्तरपूरणविधानान्तरमाह –

उवसमसम्मत्तुवरिं दंसणमोहंतरं तु पूरेदि।
उदयिल्लस्सुदयादो सेसाणं उदयबाहिरदो।।१०३।।

उपशमसम्यक्त्वोपरि दर्शनमोहान्तरं तु पूरयति।
उदीयमानस्योदयतः शेषाणामुदयबाह्यतः।।१०३।।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्योपरि तत्कालचरमसमयस्योपर्यनन्तरसमये दर्शनमोहस्य द्वितीयस्थिति-द्रव्यमपकृष्य उदयवतोऽन्तरमुदयावलिप्रथमनिषेकादारभ्य उदयहीनस्य उदयावलिबाह्यप्रथम-निषेकादारभ्य निक्षिप्य पूरयति ।।१०३।।

अब दर्शनमोह के अन्तर को पूरण करने की विधि कहते हैं –

अन्वयार्थ– (उवसमसम्मत्तुवरिं) उपशमसम्यक्त्व का काल समाप्त होने के अनन्तर **(दंसणमोहंतरं तु)** दर्शनमोह के अन्तरायाम को **(पूरेदि)** भरता है। **(उदयिल्लस्सुदयादो)** उदययुक्त प्रकृतियों का द्रव्य उदयनिषेक से देता है **(सेसाणं)** शेष (अनुदयरूप दो) प्रकृतियों का द्रव्य **(उदयबाहिरदो)** उदयावलि के बाहर देता है ।।१०३।।

टीकार्थ– प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अंतिम समय के अनन्तर समय में द्वितीय स्थिति के द्रव्य का अपकर्षण करके उदययुक्त प्रकृति का अंतर उदयावलि के प्रथम निषेक से निक्षेपण करके भरता है और उदयरहित प्रकृतियों का अंतर उदयावलि के बाहर प्रथम निषेक से निक्षेपण करके भरता है।।१०३।।

विशेषार्थ– उपशम सम्यक्त्वकाल की अपेक्षा संख्यातगुणा अन्तरायाम है। उसमें उपशम सम्यक्त्व के कालप्रमाण जो अभावरूप निषेक हैं वे उपशम सम्यक्त्व के काल में व्यतीत हुए। उसके ऊपर अन्तरायाम के जो निषेक अभावरूप हैं उनमें द्वितीय स्थिति के द्रव्य का निक्षेपण करके उनको सद्भावरूप करता है।

ओक्कट्टिदइगिभागं समपट्टीए विसेसहीणकमं।
सेसासंखाभागे विसेसहीणेण खिवदि सव्वत्थ।।१०४।।

अपकर्षितैकभागं समपङ्क्त्या विशेषहीनक्रमम्।
शेषासंख्यभागे विशेषहीनेन क्षिपति सर्वत्र।।१०४।।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालं परिसमाप्यानन्तरसमये तिसृणां दर्शनमोहप्रकृतीनां मध्ये या प्रकृतिरुदययोग्या भवति तत्प्रकृतिद्रव्यं द्वितीयस्थितौ स्थितमपकृष्य उदयावल्यां तद्बाह्यान्तरायामे द्वितीयस्थितौ च निक्षिपति। उदयायोग्ययो: शेषप्रकृत्योर्द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यान्तरायाम–द्वितीयस्थित्योरेव निक्षिपति। तद्यथा —

तत्र उदययोग्यं सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यं [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु] इदमपकर्षणभागहारेण खण्डयित्वा एकभागं [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु ।ओ] गृहीत्वा असंख्येयलोकेन खण्डयित्वा तदेकभागं [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु ।ओ ≡a] उदयावल्यां 'उदयावलिस्स दव्वं आवलिभजिदे दु' इत्यादिपूर्वोक्त–विधानेन विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् अवशिष्टासंख्यातलोक–खंडितबहुभागं [स a १२– (≡a–१)/≡a / ७ । ख । १७ । गु ।ओ ≡a] गुणकारस्यैकरूपहीनतामविवक्षित्वा अपवर्तितं [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु ।ओ]

अस्मादपकृष्टबहुभागमात्रं नानागुणहानिमात्रद्वितीयस्थितिद्रव्यमिदं [स a १२– ओ / ७ । ख । १७ । गु ।ओ] गुणकारस्यैकरूपहीनत्वमविवक्षित्वा अपवर्त्य 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनेनानीतं तत्प्रथमनिषेकद्रव्यमिदं [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु ।१२] 'पदहतमुखमादिधन–मित्यनेन' संख्यातावलिमात्रेणान्तरायामेन गुणितं समपट्टिकाद्रव्यं [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु ।१२] पुनर्द्वितीयस्थितिप्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकद्रव्यं द्विगुणितं तदधस्तन–गुणहानिप्रथमनिषेकद्रव्यं भवति [स a १२– २ / ७ । ख । १७ । गु ।१२]

अस्मिन् द्विगुणगुणहान्या भक्ते प्रचयो भवति

स a १२– २
७ । ख । १७ । गु ।१२ ।१६

सैकपदाहतपद–दलचयहतमुत्तरधनमित्यनेनानीतं

स a १२– २ २१।
७ । ख । १७ । गु ।१२ ।१६।२

चयधनं पूर्वानीतादिधने साधिकं कृत्वा

१
स a १२–
७ । ख । १७ । गु ।१२

एतावद्द्रव्यं अपकृष्टावशिष्ट द्रव्याद् गृहीत्वान्तरायाम–

स a १२–
७ । ख । १७ । गु । ओ

प्रथमसमये गच्छमात्रचयैरधिकं द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकमात्रं द्रव्यं निक्षिप्य द्वितीयादिसमयेषु विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्। अन्तरायामचरमसमये एकचयाधिकं निक्षिपेत्। अपकृष्टावशिष्टद्रव्यं किञ्चिदूनमपवर्तितं–

स a १२–
७ । ख । १७ । गु । ओ

अस्मात्पुन–रपि सविशेषसमपट्टिकाद्रव्यमिदं गृहीत्वा

१
स a १२–
७ । ख । १७ । गु । ओ ।१२

पूर्ववदन्तरायामे निक्षिप्य अवशिष्टापकृष्टद्रव्यमिदं

स a १२ =
७ । ख । १७ । गु । ओ
१०

'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा', इत्यनेन द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकादारभ्य सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण उपर्यतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपेत्। उदयायोग्ययोर्मिश्रमिथ्यात्वप्रकृत्योर्द्रव्यमप्यपकृष्टैकभागमुदयावलिबाह्यान्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्ववन्निक्षिपेत्। मिश्रस्यान्तरायामाधस्तनावल्यां कुतो न दीयते ? इति चेत् न तत्र प्रागपि निषेक सदभावात् मिथ्यात्वोदयात्तद्द्रव्यमुदयावलिप्रथमसमयादारभ्य निक्षिपेत् । अनुदययोः शेषयोर्द्रव्यमुदयावल्यां न निक्षिपेत्। सर्वत्र एकगोपुच्छाकारेण विशेषहीननिक्षेपाभ्युपगमात् ।।१०४।।

अन्वयार्थ– **(ओक्कट्टिदइगिभागं)** अपकृष्ट द्रव्य का एक भाग **(समपट्टीए)** समपट्टिकारूप से **(विसेसहीणकमं)** विशेष (चय) हीनक्रम से **(खिवदि)** (उदयावलि में) देता है। **(सेसासंखाभागे)** शेष रहा असंख्यात बहुभाग **(सव्वत्थ)** सर्वत्र **(विसेसहीणेण)** चयहीन क्रम से **(खिवदि)** देता है ।।१०४।।

टीकार्थ– प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने के अनन्तर समय में दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों में से जो प्रकृति उदययोग्य है उस प्रकृति का द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली में, उसके बाहर अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । उदय के अयोग्य शेष दो प्रकृतियों के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली के बाहर अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में ही निक्षेपण करता है। इसका स्पष्टीकरण

सम्यक्त्वप्रकृति उदययोग्य हो तो उसके द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर उसमें से एक भाग ग्रहण करके उसको पुनः असंख्यात लोक से भाग देकर एकभाग उदयावली में विशेष हीन क्रम से देता है। सम्यक्त्वप्रकृति के द्रव्य (स a १२− / ७ । ख । १७ । गु) को अपकर्षण भागहार से भाग दिया (स a १२− / ७ । ख । १७ । गु । ओ) आये हुए एकभाग को पुनः असंख्यात लोक का भाग दिया जो एक भाग आया (स a १२− / ७ । ख । १७ । गु । ओ ≡ a) उसको उदयावली में 'उदयावली के द्रव्य को आवली से भाग देने पर' इत्यादि पूर्व में (गाथा क्र. ७१ व ७२ में) कही गयी पद्धति से विशेषहीन क्रम से देवें। असंख्यात लोक से भाग देने पर शेष रहा बहुभाग द्रव्य इतना (पूर्व में कही गयी पद्धति से सर्वद्रव्य में से एकभाग घटाने पर (स a १२− ≡a 1 ⌓ / ७ । ख । १७ । गु । ओ ≡ a) बहुभाग आता है अथवा एकभाग को एक कम भागहार से गुणा करने पर बहुभाग आता है।) गुणकारभूत एकरूप हीनता की विवक्षा न करके अपवर्तन करने पर इतना शेष रहा (स a १२− / ७ । ख । १७ । गु । ओ) (यह द्रव्य अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है और द्वितीय स्थिति के पूर्व प्रथम निषेक का प्रमाण निकालते हैं।) अपकृष्ट किए एकभाग को छोड़कर शेष रहा बहुभाग द्रव्य द्वितीय स्थिति में नाना गुणहानिरूप से स्थित है। वह बहुभाग द्रव्य इतना (स a १२− ओ / ७ । ख । १७ । गु । ओ) यहाँ भी गुणकारभूत एकरूप हीनता की विवक्षा न करके अपवर्तन किया। (स a १२− / ७ । ख । १७ । गु) इसको डेढ़गुणहानि से भाग देने पर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का प्रमाण आता है। (स a १२− / ७ । ख । १७ । गु । १२) (डेढ़गुणहानि का प्रमाण = १२) **'पदहतमुखमादिधनं'** इस सूत्र के अनुसार पद से मुख को गुणा करने पर आदिधन आता है। इसलिए प्रथम निषेक के द्रव्य को संख्यात आवलिप्रमाण अंतरायाम पद से गुणा करने पर अंतरायाम में देने योग्य समपट्टिकारूप द्रव्य का प्रमाण आता है। (यहाँ पद संख्यात आवली २ है।)

पद x मुख = आदिधन (स a १२ − / ७ । ख । १७ । गु । १२) पुनः द्वितीय स्थिति के प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक के द्रव्य को दो गुणा करने पर उसके नीचे की गुणहानि के प्रथम निषेक का द्रव्य आता है। (स a १२− २ / ७ । ख । १७ । गु । १२) इसमें दो गुणहानि से भाग देने पर चय (दो गुणहानि=१६) आता है। (स a १२− / ७ । ख । १७ । गु । १२ । १६) सैकपद अर्थात् एक से सहित पद, आहत अर्थात् गुणकार, पददल अर्थात् पद के अर्ध से, चयहत अर्थात् चय से गुणा करने पर उत्तरधन आता है अर्थात् एक अधिक पद को पद के आधे से गुणा करके

चय से गुणा करने पर उत्तरधन अर्थात् चयधन आता है। (प्रथम समय से अंतिम समय पर्यंत के चयों को जोड़ना हो तो चयधन निकालने का सूत्र यह है) यहाँ पद = (संख्यात आवली)।

(पद+१) x पद x चय = चयधन
२

स a १२– २ २१।
७ । ख । १७ । गु ।१२ ।१६।२

यह चयधन पूर्व में निकाले हुये समपट्टिकारूप आदिधन में साधिक करना चाहिए।

समपट्टिकारूप धन + चयधन =

।
स a १२–
७ । ख । १७ । गु ।१२

(आदिधन में चयधन मिलाने के लिए ऊपर ''।''अधिक की संदृष्टि की गयी है) इतना द्रव्य अपकर्षण किए शेष द्रव्य से ग्रहण करके देना चाहिए। उसमें से अंतरायाम के प्रथम समय में गच्छप्रमाण चय से अधिक द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेकप्रमाण द्रव्य का निक्षेपण करता है। (द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का जितना द्रव्य है उतना और उसमें अंतरायाम का जितना प्रमाण है उतने नीचे की गुणहानि के चय देता है।) द्वितीयादि समयों में विशेष (चय) हीनक्रम से निक्षेपण करता है। अंतरायाम के अंतिम समय में एक चय अधिक निक्षेपण करता है। (अर्थात् अन्तरायाम के ऊपर द्वितीय स्थिति है। इसलिए द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक की अपेक्षा अन्तरायाम के अंतिम निषेक में एक चय अधिक होगा। अन्तरायाम में पूर्ण निषेकों का अभाव है। इसलिए अन्तरायाम के अंतिम निषेक में द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेकप्रमाण और नीचे की गुणहानि का एक चयप्रमाण द्रव्य देता है।) अपकृष्टद्रव्य में से शेष रहा द्रव्य कुछ कम करके अपवर्तित किया वह द्रव्य इतना है

स a १२–
७।ख।१७।गु।ओ

इसमें से पुन: चयसहित समपट्टिका द्रव्य

।
स a १२–
७ । ख । १७ । गु ।१२

ग्रहण करके पूर्व के समान अंतरायाम में निक्षेपण करके शेष रहा अपकृष्ट द्रव्य यह है

स a १२ =
७।ख।१७।गु।ओ

इसको पुन: **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** 'सर्वद्रव्य को डेढ़गुणहानि का भाग देने पर प्रथम निषेक का प्रमाण आता है' इस सूत्र के अनुसार द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक से चयहीनक्रम से ऊपर अतिस्थापनावली छोड़कर निक्षेपण करना चाहिये।

उदय के अयोग्य मिश्र और मिथ्यात्वप्रकृति के अपकृष्ट एकभागरूप द्रव्य का उदयावली के बाहर अंतरायाम में व द्वितीय स्थिति में पूर्व के समान निक्षेपण करना चाहिए। मिश्र का द्रव्य अंतरायाम के अधस्तन आवली में क्यों नहीं देता? ऐसा पूछने पर कहते हैं – नहीं, क्योंकि वहाँ पूर्व मे भी निषेक का सद्भाव है।[1] मिथ्यात्व का उदय हो तो उसके द्रव्य का उदयावली के प्रथमसमय से निक्षेपण करना चाहिए। अनुदयरूप शेष दो प्रकृतियों के द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण नहीं

---

१) यहाँ एक पंक्ति का संशोधन होना चाहिए क्योंकि अर्थ नहीं लगता है। यहाँ मिश्र का उदय न होनेसे उसका द्रव्य नीचे की आवली में देता नहीं, ऐसा पाठ उचित लगता है।

करना चाहिए। सर्वत्र एक गोपुच्छाकाररूप से विशेषहीनक्रम से निक्षेपण स्वीकार किया है। जिसप्रकार गाय की पूँछ पहले मोटी होती है फिर पतली होती जाती है उसीप्रकार निषेक रचना एक-एक चयहीन- क्रम से स्थित होती है। इसलिए उसे गोपुच्छाकार कहते हैं ।।१०४।।

विशेषार्थ– उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने पर यदि सम्यक्त्वप्रकृति का उदय हो तो उसके द्रव्य में अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एकभाग आता है उसको उदयावली, अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में देता है। अपकृष्ट द्रव्य में असंख्यात लोक का भाग देकर उसमें से एकभागप्रमाण द्रव्य उदयावली में और बहुभाग द्रव्य अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में देता है। जैसे – अपकृष्ट द्रव्य ६२०४ माना । उसमें से उदयावली में देने योग्य द्रव्य ४१६। अन्तरायाम और द्वितीय स्थिति में देने योग्य द्रव्य ५७८८। उदयावली में देने का विधान गाथा ७१-७२ में कहे अनुसार चयहीनक्रम से देना चाहिए। आवलि का प्रमाण ४ माना।

$$\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{गच्छ}} = \text{मध्यमधन}; \frac{\text{मध्यमधन}}{\text{दो गुणहानि} - \frac{(\text{गच्छ}-१)}{२}} = \text{चय}; \frac{४१६}{४} = \frac{१०४}{८-(३\text{ह्न}२)} = \frac{१०४}{(१६-३)\text{ह्न}२} = \frac{१०४ \times २}{१३} = १६ \text{ चय आया।}$$

प्रथम निषेक = चय x दो गुणहानि ; १६ x ८=१२८ यहाँ आवली का प्रमाण ४ मानने से दो गुणहानि का प्रमाण८ होता है। दूसरे आदि निषेकों में एक-एक चय कम करते हुए क्रमशः ११२, ९६ और ८० देता है। अंतरायाम में पूर्ण निषेकों का अभाव है। इसलिए प्रथम बहुभाग द्रव्य में से कुछ द्रव्य लेकर अंतरायाम में निषेकों का सद्भाव करता है। **अंतरायाम में द्रव्य देने का विधान –**द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का जितना प्रमाण आता है उतना द्रव्य अंतरायाम के सभी समयों में समपट्टिकारूप से देना चाहिए। उन सब का योग करके जितना द्रव्य होता है उतना ही आदिधन होता है। पद x मुख = आदिधन। माना कि द्वितीयस्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य २५६, अंतरायाम का प्रमाण ४ है। २५६x ४= १०२४ अंतरायाम में देने योग्य आदिधन इतना है। द्वितीय स्थिति के नीचे अन्तरायाम का निषेक है। इसलिए द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक की अपेक्षा नीचे चय बढ़ते क्रम से हैं। अंतरायाम संबंधी गुणहानि द्वितीय स्थिति के प्रथम गुणहानि के नीचे है। इसलिए चय का प्रमाण द्वितीय स्थिति की प्रथम गुणहानि के चय से दो गुणा है। इसलिए अंतरायाम की गुणहानि का चय ३२ होता है। अंतरायाम के सभी निषेकों में चय प्राप्त होंगे इसलिए चयधन निकालने का सूत्र-

(पद + १) x (पद ह्न२) x चय = चयधन (उत्तरधन) (४+१) x ४ह्न२ x ३२ = ५ x २ x ३२ = ३२०

इसप्रकार पूर्वोक्त आदिधन १०२४ और उत्तरधन ३२० मिलकर १३४४ हुए। इतना द्रव्य अपकृष्ट बहुभाग द्रव्य में से ग्रहण करके अन्तरायाम में देना चाहिए। अन्तरायाम के प्रथम निषेक में गच्छप्रमाण चय देना चाहिए अर्थात् ३२ x ४=१२८ यह प्रथम निषेक में देने योग्य चयधन है। द्वितीयादि निषेकों में एक-एक चय कम देना चाहिए। अंतिम निषेक में एक ही चय देना चाहिए। इसप्रकार देने पर अन्तरायाम में पहले निषेकों का अभाव था उनका सद्भाव होता है। बहुभाग द्रव्य ५७८८ है। उसमें से १३४४ द्रव्य कम हुआ। शेष रहे ४४४४ द्रव्य पुनः उसमें से पूर्वोक्त प्रमाण अन्तरायाम में आदिधन व चयधन देना चाहिए। पुनः १३४४ द्रव्य

अन्तरायाम में दिया। शेष रहा ३१०० द्रव्य द्वितीय स्थिति में देता है। द्वितीय स्थिति में देने का विधान –सर्वद्रव्य ह्नसाधिक डेढ़ गुणहानि = प्रथम निषेक

$$\frac{३१००}{१२\frac{१४}{१२८}} = \frac{३१००}{\frac{(१२\times १२८)+१४}{१२८}} = \frac{३१००}{\frac{१५५०}{१२८}} = \frac{३१०० \times १२८}{१५५०} = २५६ = \text{प्रथम निषेक}$$

(डेढ़गुणहानि का प्रमाण १२ और उसमें साधिक का प्रमाण १४ ह्न१२८ है।)

$$\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{दो गुणहानि}} = \text{चय } \frac{२५६}{१६} = १६$$ चय. द्वितीयादि निषेकों में एक–एक चय कम देता है

अंतरायाम पूर्ण भरने की रचना

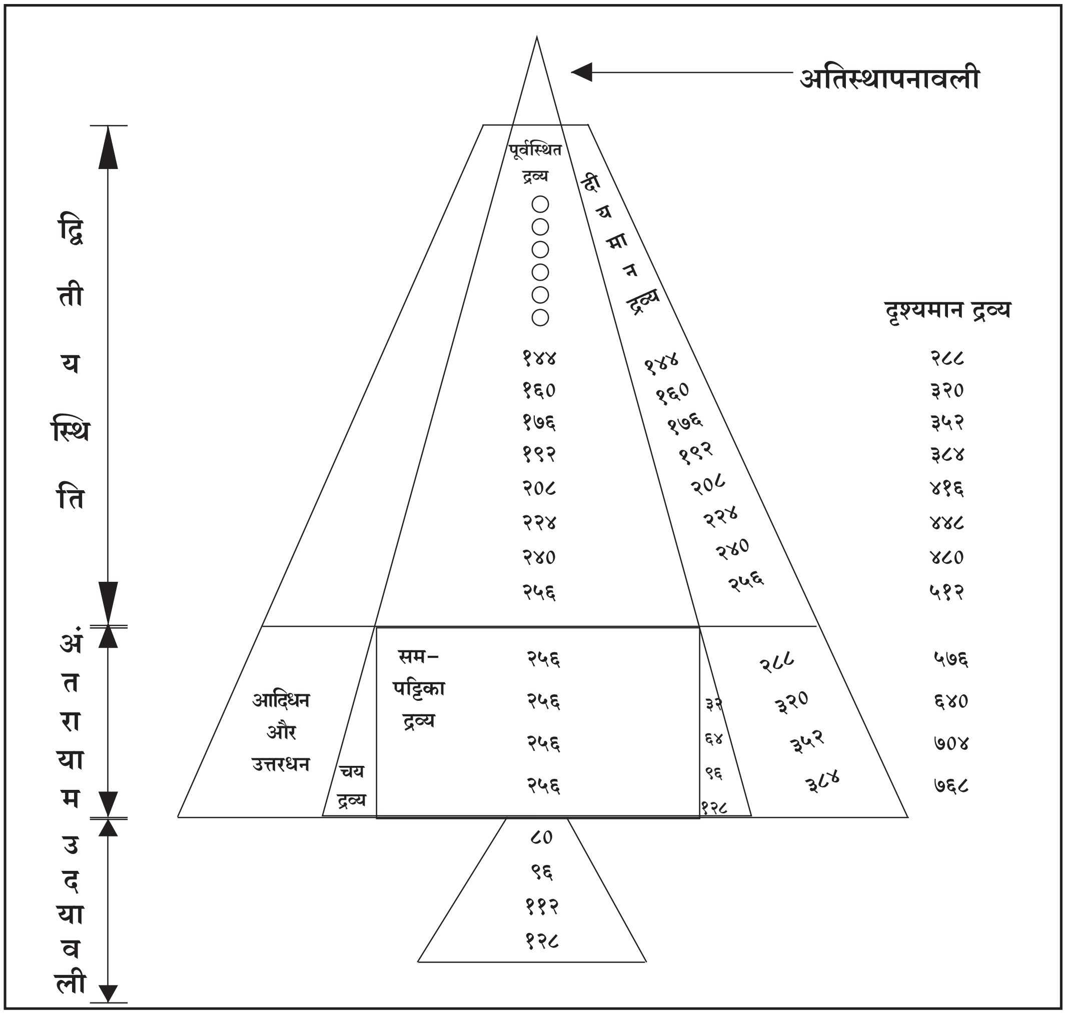

अथ सम्यक्त्वप्रकृत्युदयकार्यं प्ररूपयति–

सम्मुदये चलमलिणमगाढं सद्दहदि तच्चयं अत्थं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।१०५।।
सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि[१]।।१०६।।

सम्यक्त्वोदये चलमलिनमगाढं श्रद्दधाति तत्त्वमर्थम्।
श्रद्दधात्यसद्भावमजानानो गुरुनियोगात्।।१०५।।
सूत्रतस्तं सम्यक् दर्शयन्तं यदा न श्रद्दधाति।
स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवस्ततः प्रभृति।।१०६।।

सम्यक्त्वप्रकृतेरुदये सति जीवस्तत्त्वार्थं चलमलिनमगाढं च यथा भवति तथा श्रद्दधाति, तत्त्वार्थश्रद्धानस्य चलत्वमलिनत्वागाढत्वानि सम्यक्त्वप्रकृत्युदयकार्याणीत्यर्थः। अयं वेदकसम्यग्दृष्टिः स्वयं विशेषमजानानो गुरोर्वचनाकौशलदुष्टाभिप्रायगृहीतविस्मरणादिनिबन्धनान्नियोगादन्यथा व्याख्यानासद्भावं तत्त्वार्थेष्वसद्रूपमपि श्रद्दधाति तथापि सर्वज्ञाज्ञाश्रद्धानात्सम्यग्दृष्टिरेवासौ। पुनः कदाचिदाचार्यान्तरेण गणधरादिसूत्रं प्रदर्श्य व्याख्यायमानं सम्यग्रूपं यदा न श्रद्दधाति ततः प्रभृति स एव जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवति, आप्तसूत्रार्थाश्रद्धानात् ।।१०५–१०६।।

अब सम्यक्त्वप्रकृति के उदय का कार्य कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(सम्मुदये)** सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर (जीव)**(तच्चयं अत्थं)** तत्त्व और अर्थ का अथवा तत्त्वार्थ का **(चलमलिणमगाढं)** चल, मलिन और अगाढ़रूप से **(सद्दहदि)** श्रद्धान करता है। **(अजाणमाणो)** स्वयं न जानने वाला वेदक सम्यग्दृष्टि **(गुरुणियोगा)** गुरुओं के निमित्त से **(असब्भावं)** असत् भाव का ही **(सद्दहदि)** श्रद्धान करता है । **(सुत्तादो)** सूत्र के द्वारा **(सम्मं दरिसिज्जंतं)** सम्यक्रूप से दिखाये गये **(तं)** तत्त्वार्थ का **(जदा)** यदि वह **(ण सद्दहदि)** श्रद्धान नहीं करता है तो **(सो चेव)** वही **(जीवो)** जीव **(तदो पहुदी)** उस समय से **(मिच्छाइट्ठी)** मिथ्यादृष्टि **(हवदि)** होता है।।१०५–१०६।।

टीकार्थ– सम्यक्त्वप्रकृति का उदय होने पर जीव चल, मलिन, अगाढ़रूप से तत्त्वार्थ का श्रद्धान करता है। तत्त्वार्थश्रद्धान में चलपना, मलिनपना और अगाढ़पना यह सम्यक्त्वप्रकृति के

---

१) कसायपाहुड गा. १०७–१०८

उदय का कार्य है। यह वेदक सम्यग्दृष्टि स्वयं विशेष न जानने से गुरुओं के वचनों की अकुशलता, दुष्ट अभिप्राय, ग्रहण किये गये तत्त्व का विस्मरण इत्यादि कारणों से अन्य प्रकार से व्याख्यान (उपदेश) के असद्भाव का अर्थात् तत्त्वार्थ में असत्रूप का भी श्रद्धान करता है फिर भी सर्वज्ञ की आज्ञा का श्रद्धान होने से सम्यग्दृष्टि ही है। पुन: जब कभी दूसरे आचार्यों के द्वारा गणधरादिकों के सूत्र दिखाकर कहे गए सम्यक् स्वरूप का यदि श्रद्धान नहीं करता है तो तब से वही जीव मिथ्यादृष्टि होता है क्योंकि उसे आप्त के द्वारा कथित सूत्रार्थ का श्रद्धान नहीं है।।१०५-१०६।।

विशेषार्थ- श्री जयधवला भाग १२, पृ. ३२१ में मात्र वेदकसम्यग्दृष्टि का ग्रहण न कर सामान्य सम्यग्दृष्टि पद आया है। उसके अनुसार चाहे वेदकसम्यग्दृष्टि हो या उपशम सम्यग्दृष्टि, यदि गुरुनियोग से वह अन्यथा श्रद्धान करता है और सूत्र से सम्यक् अर्थ के बतलाने पर भी वह हठाग्रही बना रहता है तो संक्लेश विशेष के बढ़ जाने के कारण वह उस समय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यहाँ किसका कितना काल है इस दृष्टि से विचार नहीं किया है किन्तु उक्त दोनों सम्यक्त्वों में यह संभव है इस दृष्टि से वहाँ सामान्य सम्यग्दृष्टि पद का प्रयोग जान पड़ता है।

सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से स्थिरता और नि:कांक्षा का घात होता है। स्थिरता का घात होने से चल और अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं । नि:कांक्षा का घात होने से मल दोष उत्पन्न होता है। जिस प्रकार वृद्ध पुरुष हाथ में लकड़ी पकड़ता है; परन्तु वह लकड़ी स्थिर नहीं रहती है उसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि का तत्त्वार्थश्रद्धान स्थिर नहीं रहता है, चलायमान होता है। स्थिरता का घात होने से श्रद्धा दृढ़ नहीं रहती है और नि:कांक्षा का घात होने से शंका, कांक्षा आदि दोष सम्यक्त्व को मलिन करते हैं ।

अथ मिश्रप्रकृत्युदयकार्यं व्याचष्टे-

मिस्सुदये सम्मिस्सं दहिगुडमिस्सं व तच्चमियरेण।
सद्दहदि एक्कसमये मरणे मिच्छो व अयदो वा।।१०७।।

मिश्रोदये संमिश्रं दधिगुडमिश्रं वा तत्त्वमितरेण।
श्रद्दधात्येकसमये मरणे मिथ्यो वा असंयतो वा।।१०७।।

मिश्रस्य सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतेरुदये सति जीवस्तत्त्वमितरेणातत्त्वेन संमिश्रमेकस्मिन् समये पूर्वगृहीतमिथ्यादेवतादिश्रद्धानमत्यजन् अर्हन् देवतेत्यपि श्रद्दधाति। मिश्रं परस्परप्रदेशानुप्रविष्टं दधिगुडं यथा रसान्तरपरिणामं लोके दृश्यते तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिरपि तत्त्वातत्त्वश्रद्धानमिश्रपरिणामो न विरूध्यत इत्यर्थः। स मरणे स्वमरणकाले स्वायुषोन्तर्मुहूर्तमात्रे अवशिष्टे मिथ्यादृष्टिर्वा भवत्यसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा भवति।।१०७।।

अब मिश्रप्रकृति का उदय कार्य कहते हैं –

अन्वयार्थ– (मिस्सुदये) मिश्रप्रकृति का उदय होने पर **(दहिगुडमिस्सं व)** दही व गुड़ के मिश्रित स्वाद के समान **(इयरेण तच्चं)** इतर अर्थात् अतत्त्व से सहित तत्त्व का **(सम्मिस्सं)** सम्मिश्ररूप से **(एक्क समये)** एक ही समय में **(सद्दहदि)** श्रद्धान करता है। **(मरणे)** मरणसमय में **(मिच्छो व)** मिथ्यादृष्टि अथवा **(अयदो वा)** असंयत सम्यग्दृष्टि होता है।।१०७।।

टीकार्थ– मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व का उदय होने पर जीव अतत्त्व से सहित तत्त्व का मिश्ररूप से एक ही समय में श्रद्धान करता है अर्थात् पूर्व में ग्रहण किए मिथ्या देवतादि का श्रद्धान न छोड़कर अर्हन्त भी देव है, ऐसा श्रद्धान करता है। परस्पर प्रदेशों में प्रविष्ट दही और गुड़ जिसप्रकार भिन्नरसरूप परिणाम को प्राप्त लोक में दिखाई देता है उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिरूप तत्त्व और अतत्त्वश्रद्धानरूप मिश्र परिणाम भी विरूद्ध नहीं है। वह अपने मरण के समय अपनी आयु का अंतर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यादृष्टि अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि होता है।।१०७।।

अथ मिथ्यात्वप्रकृत्युदयकार्यं प्ररूपयति–

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणं होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जुरिदो।।१०८।।

मिथ्यात्वं वेदयन् जीवो विपरीतदर्शनो भवति।
न च धर्मं रोचते हि मधुरं खलु रसं यथा ज्वरित:।।१०८।।

मिथ्यात्वप्रकृतेरुदयमनुभवन् जीवो विपरीतदर्शन: अतत्त्वश्रद्धानो मिथ्यादृष्टिर्भवति। स च धर्मं वस्तुस्वभावमनेकान्तं दयामूलं वा रत्नयत्रात्मकं मोक्षमार्गं न रोचते नेच्छति। अस्मिन्नर्थे उपमानमाह यथा ज्वरित: पित्तज्वराक्रान्तो मधुररसं स्फुटं न रोचते ।।१०८।।

अब मिथ्यात्वप्रकृति का उदयकार्य कहते हैं –

अन्वयार्थ– (मिच्छत्तं वेदंतो जीवो) मिथ्यात्व का वेदन करने वाला जीव **(विवरीयदंसणं)** विपरीत श्रद्धानवाला **(होदि)** होता है **(य)** और **(जहा)** जिसप्रकार **(जुरिदो)** ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को **(खु)** निश्चय से **(महुरं रसं)** मधुर रस **(ण रोचेदि)** अच्छा नहीं लगता है उसी प्रकार उसे **(धम्मं)** धर्म **(ण रोचेदि)** अच्छा नहीं लगता है।।१०८।।

टीकार्थ– मिथ्यात्वप्रकृति के उदय का अनुभव करनेवाला जीव विपरीत दर्शनवाला अर्थात् अतत्त्वश्रद्धानी मिथ्यादृष्टि होता है और उसे वस्तुस्वभावरूप धर्म अथवा अनेकांतरूप धर्म अथवा दयामूलक धर्म अथवा रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग अच्छा नहीं लगता है, उसकी इच्छा नहीं करता है। इस अर्थ में उपमा देते हैं कि जिसप्रकार पित्तज्वर से पीड़ित व्यक्ति को मधुर

रस निश्चय से प्रिय नहीं लगता है।।१०८।।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।१०९।।

मिथ्यादृष्टिर्जीव उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति।
श्रद्दधात्यसद्भावमुपदिष्टं वाऽनुपदिष्टम्।।१०९।।

यो मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं परमागमं न श्रद्दधाति नाभ्युपगच्छति किन्तूपदिष्टमनुपदिष्टं वा असद्भावमतत्त्वार्थं श्रद्दधाति।

एवं प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्ररूपणः प्रथमोऽधिकारः ।।।१०९।।

अन्वयार्थ– **(मिच्छाइट्ठी जीवो)** मिथ्यादृष्टि जीव **(उवइट्ठं पवयणं)** (सर्वज्ञ भगवान द्वारा) कहे गये प्रवचन का **(ण सद्दहदि)** श्रद्धान नहीं करता है। **(उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं)** दूसरों के द्वारा उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट **(असब्भावं)** असत् भाव का **(सद्दहदि)** श्रद्धान करता है।।१०९।।

टीकार्थ– जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह उपदिष्ट प्रवचन अर्थात् परमागम का श्रद्धान नहीं करता है, परन्तु उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट असत् भाव का अर्थात् अतत्त्व का (खोटे तत्त्व का) श्रद्धान करता है ।।१०९।।

इसप्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्ररूपण नाम का

प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

क्षायिकसम्यक्त्वाधिकार

जयन्त्यर्हद्विधूताङ्गसूर्युपाध्यायसाधव:।
लोकेऽस्मिन् भव्यलोकानां शरणोत्तममङ्गलम्।।१।।

अन्वयार्थ– **(अस्मिन् लोके)** इस लोक में **(भव्यलोकानां)** भव्यजीवों के **(शरणोत्तममंगलम्)** शरण, उत्तम और मंगलस्वरूप **(अर्हद्विधूताङ्गसूर्युपाध्यायसाधव:)** अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु **(जयन्ति)** सर्वोत्कृष्ट रूप हैं।

विशेषार्थ– 'विधूतं अङ्गं यस्य स: विधूताङ्ग:' अर्थात् जिसका शरीर नष्ट हो गया है वह विधूताङ्ग याने सिद्ध भगवान है।

अथ क्षायिकसम्यग्दर्शनोत्पत्तिसामग्रीं प्ररूपयति –

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो ।
तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले[१] ।।११०।।

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक: कर्मभूमिजो मनुष्य: ।
तीर्थंकरपादमूले केवलिश्रुतकेवलिमूले ।।११०।।

यो मनुष्य: पञ्चदशकर्मभूमिसमुत्पन्न: पर्याप्त: तीर्थंकरपादमूले इतरकेवलिश्रुत–केवलिनो: पादमूले वा सन्निहित: स एव दर्शनमोहस्य क्षपणाप्रस्थापको भवति । प्रस्थापक: प्रारम्भक इत्यर्थ: । अन्यत्र दर्शनमोहक्षपणाकारणविशुद्धिविशेषाघटनात् । अध:प्रवृत्तकरणप्रथम–समयादारभ्य मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्यो: द्रव्यमपवर्त्य सम्यक्त्वप्रकृतौ संक्रम्यते यावत्तावदन्तर्मुहूर्तकालं दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक इत्युच्यते ।।११०।।

अब क्षायिकसम्यग्दर्शन की उत्पत्ति की सामग्री कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(तित्थयरपादमूले)** तीर्थंकर के पादमूल में अथवा **(केवलिसुदकेवलीमूले)** केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में **(कम्मभूमिजो मणुसो)** कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ मनुष्य **(दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो)** दर्शनमोह की क्षपणा प्रारम्भ करता है।।११०।।

टीकार्थ– पंद्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न हुआ जो पर्याप्त मनुष्य तीर्थंकर के पादमूल में अथवा अन्य केवली और श्रुतकेवली के पादमूल में स्थित है, वह ही दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक अथवा प्रारम्भ करने वाला होता है क्योंकि अन्यत्र दर्शनमोह के क्षय में कारणभूत विशेष विशुद्धि संभव नहीं है। अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से आरम्भ करके मिथ्यात्व

---

१) ध. पु. ६, पृ. २४५। जी. चू. ८, सू. ११, पृ. २४३। जयध. पु. १३, पृ. २।

और मिश्रप्रकृति के द्रव्य का अपवर्तन करके सम्यक्त्वप्रकृति में संक्रमित करता है तब- तक अंतर्मुहूर्तकाल तक दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक है, ऐसा कहते हैं ।

विशेषार्थ- जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव नरक से निकलकर तीर्थंकर होते हैं स्वयं मुनिपद धारण करके जिनपद संज्ञा के अधिकारी हो जाते हैं। अत: वे किसी अन्य केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में उपस्थित हुए बिना स्वयं दर्शनमोह की क्षपणा कर लेते हैं। क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को वेदकसम्यग्दृष्टि कहते हैं। यहाँ कर्मभूमिज मनुष्य को दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रस्थापक कहा है। इससे दु:षमा, अतिदु:षमा, सुषमासुषमा और सुषमा इन चार कालों में उत्पन्न हुए मनुष्य दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ न कर शेष दो कालों में उत्पन्न हुए मनुष्य ही दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ करते हैं, ऐसा आशय यहाँ ग्रहण करना चाहिए। सुषमा-दु:षमा काल में उत्पन्न हुए मनुष्य दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारंभ कैसे करते है, इस शंका का समाधान करते हुए धवला पु.६ पृ: २४७ में बतलाया है कि वर्धनकुमार आदि जीव एकेन्द्रियों में से आकर मनुष्य हुए थे और उन्होंने उसी भव में दर्शनमोहनीय की क्षपणा की थी। इससे विदित होता है कि सुषमा-दुषमा काल में उत्पन्न हुए मनुष्य भी दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ करते हैं।

णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु घम्मे य।
कदकरणिज्जो चदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा[१]।।१११।।

निष्ठापकस्तत्स्थाने विमानभोगावनिषु घर्मे च।
कृतकृत्यश्चतुर्ष्वपि गतिषूत्पद्यते यस्मात्।।१११।।

दर्शनमोहक्षपणाया निष्ठापक: मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वद्रव्यस्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण संक्रमणान्तरसमयादारभ्य क्षायिकसम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयात्प्राक् निष्ठापको भवतीत्यर्थ : । स च तत्स्थाने दर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भभवे विमानेषु सौधर्मादिषु कल्पेषु कल्पातीतेषु च भोगभूमितिर्यग्मनुष्येषु च घर्मायां नरकपृथिव्यां च भवति । कुत: ? यस्मात् कारणात् कृतकृत्यवेदक: पूर्वं बद्धायुष्कश्चतसृष्वपि गतिषु उत्पद्यते तस्मात्कारणात्तत्रोत्पन्नो दर्शनमोहक्षपणां निष्ठापयतीत्यर्थ: ।।१११।।

अन्वयार्थ- (तट्ठाणे) उसी स्थान में (जिस भव में क्षय का प्रारम्भ किया उसी भव में) **(य)** अथवा **(विमाणभोगावणीसु)** विमान में (स्वर्ग में) अथवा भोगभूमि में अथवा **(घम्मे)** घर्मानामक प्रथम नरक पृथ्वी में **(णिट्ठवगो)** निष्ठापक (समाप्ति करनेवाला) होता है **(जम्हा)** क्योंकि **(कदकरणिज्जो)** कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि **(चदुसु वि गदीसु)** चारों

---

१) णिट्ठवगो पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदी । ध. पु. ६ पृ. २४७. जी. चू. ८, सू. १२,

ही गतियों में उत्पन्न होता है।।१११।।

टीकार्थ– मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के द्रव्य को सम्यक्त्वप्रकृतिरूप से संक्रमण होने के अनन्तर समय से आरम्भ करके क्षायिकसम्यक्त्व को ग्रहण करने के पूर्व समय तक वह जीव दर्शनमोह की क्षपणा का निष्ठापक है। वह उस स्थान में अर्थात् दर्शनमोह के क्षय की शुरुआत किए भव में सौधर्मादि कल्पों में या कल्पातीतों में अथवा भोगभूमि तिर्यंच और मनुष्यों में अथवा घर्मानामक नरकपृथ्वी में निष्ठापक होता है। किस कारण से ? जिस कारण से जिसने पूर्व में आयु बांध ली है, ऐसा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीव चारों ही गतियों में उत्पन्न होता है उस कारण से वहाँ उत्पन्न हुआ दर्शनमोह की क्षपणा का निष्ठापन करता है ।।१११।।

विशेषार्थ– मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय कर कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि होने के बाद यह जीव दर्शनमोहनीय की क्षपणा का निष्ठापक कहलाता है। वह पहले जिस गति की आयु का बन्ध करता है उसके अनुसार उस गति में जन्म लेकर भी दर्शनमोहनीय की क्षपणा को पूरा करता है ।

अथ पूर्वमनन्तानुबन्धिविसंयोजनां प्ररूपयति –

पुव्वं तियरणविहिणा अणं खु अणियट्टिकरणचरिमम्हि।
उदयावलिबाहिरगं ठिदिं विसंजोजदे णियमा[१]।।११२।।

पूर्वं त्रिकरणविधिनाऽनन्तं खल्वनिवृत्तिकरणचरमे।
उदयावलिबाह्यं स्थितिं विसंयोजयति नियमात्।।११२।।

पूर्वमादौ त्रिकरणविधिना अनन्तानुबन्धिन: क्रोधमानमायालोभान् उदयावलिं मुक्त्वा तद्बाह्योपरितनस्थितिस्थितान् सर्वान् विसंयोजयन् अनिवृत्तिकरणचरमसमये निरवशेषं विसंयोजयति द्वादशकषायनोकषायस्वरूपेण संक्रामयति। तथाहि –

असंयतसम्यग्दृष्टिर्देशसंयत: प्रमत्तसंयत: अप्रमत्तसंयतो वा वेदकसम्यक्त्व: अध:प्रवृत्तकरणकालं प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणकालोक्तविधिना प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्ध्या वर्धमान: परिसमाप्य तदनन्तरसमये गुणश्रेणिगुणसंक्रमस्थितिकाण्डकानुभागकाण्डकघातानपूर्वकरणपरिणामै: प्रवर्तयति। तत्र प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणश्रेणिद्रव्याद्देशसंयतगुणश्रेणिद्रव्यमसंख्येयगुणम्। तस्मात्सकलसंयतगुणश्रेणिद्रव्यमसंख्येयगुणम् । तस्मादसंख्येयगुणद्रव्यमपकृष्यायमनन्तानुबन्धि–विसंयोजको गुणश्रेणिं करोति । गुणश्रेण्यायाम: पूर्ववदेवापूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयात्साधिकोऽपि

---

१) ध. पु. ६ पृ. २४८। जयध. पु. १३, पृ. १२

संयतगुणश्रेण्यायामात् संख्येयगुणहीन:, समयं प्रति गलितावशेषश्च। अनुभागकाण्डकायाम: पूर्वस्मादनन्तगुण:। स्थितिकाण्डकायामश्च पूर्वस्मात्संख्येयगुण:, गुणसंक्रमद्रव्यं च पूर्वस्मादसंख्येय-गुणम्। गुणसंक्रमस्तु अनन्तानुबन्धिनामेव नान्येषां कर्मणाम्। एवं संख्यातसहस्रै: स्थितिखण्डै: स्थितिबन्धैरनुभागखण्डैश्चापूर्वकरणकालं परिसमाप्य तदनन्तरसमये अनिवृत्तिकरणं प्रविशति।।११२।।

अब प्रथम अनन्तानुबन्धी के विसंयोजन का वर्णन करते हैं –

अन्वयार्थ– दर्शनमोह की क्षपणा के **(पुव्वं)** पूर्व **(तियरणविहिणा)** तीन करण विधान द्वारा **(अणं खु)** अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का **(उदयावलिबाहिरगं ठिदिं)** उदयावलि के बाहर की स्थिति का **(अणियट्टिकरण चरिमम्हि)** अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में **(णियमा)** नियम से **(विसंजोजदे)** विसंयोजन करता है ।।११२।।

टीकार्थ– दर्शनमोह की क्षपणा के पहले तीन करण विधान द्वारा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ की उदयावली को छोड़कर के उसकी बाह्य उपरितन स्थिति में स्थित सभी निषेकों का विसंयोजन करते हुए अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में संपूर्णरूप से विसंयोजन करता है अर्थात् बारह कषाय और नौ नोकषायरूप से संक्रमित करता है। उसका स्पष्टीकरण–

असंयत सम्यग्दृष्टि, देशसंयत, प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती वेदक-सम्यग्दृष्टि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के ग्रहणकाल में कही गयी विधि द्वारा प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि से बढ़ता हुआ अध:प्रवृत्तकरणकाल समाप्त करके अनंतर समय में अपूर्वकरण परिणामों के द्वारा गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात का प्रवर्तन करता है। प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय जो गुणश्रेणी द्रव्य है, उससे देशसंयत का गुणश्रेणी का द्रव्य असंख्यातगुणा है। उससे सकलसंयत के गुणश्रेणी का द्रव्य असंख्यातगुणा है। उससे असंख्यात गुणे द्रव्य का अपकर्षण करके अनन्तानुबन्धी का विसंयोजक जीव गुणश्रेणी करता है। गुणश्रेणी का आयाम पूर्व के समान ही अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण से थोड़ा अधिक है किन्तु संयत के गुणश्रेणी आयाम से संख्यातगुणा कम है और प्रत्येक समय में गलितावशेष है। (प्रत्येक समय में एक समय गलने पर जितना शेष रहता है उतना ही है) अनुभागकांडकायाम पूर्व से अनन्तगुणा है। स्थितिकांडकायाम पूर्व से संख्यातगुणा है और गुणसंक्रमण पूर्व से असंख्यातगुणा है परन्तु गुणसंक्रमण अनन्तानुबन्धी का ही होता है, अन्य कर्मों का नहीं । इस प्रकार संख्यात हजार स्थितिखंड, स्थितिबंध और अनुभाग खंडों के द्वारा अपूर्वकरण का काल समाप्त करके अनन्तर समय में अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करता है।

विशेषार्थ– जो वेदकसम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज मनुष्य केवली और श्रुतकेवली के पादमूल में दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ करता है वह प्रथम अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करता है। किन्तु यह चतुर्थादि गुणस्थानों में उदयवाली प्रकृति नहीं है, इसलिए उदयावली को छोड़कर शेष समस्त सत्त्व की बारह कषाय और नौ नोकषायरूप से विसंयोजना करता

है। उसीप्रकार उदयावली में प्रविष्ट हुए द्रव्य का स्तिबुक संक्रमण के द्वारा उदययुक्त प्रकृति में संक्रमण करता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क का बारह कषाय और नौ नोकषायरूप से परिणमन करने को विसंयोजना कहते हैं।

अथानिवृत्तिकरणकाले क्रियमाणं कार्यविशेषमाह–

अणियट्टीअद्धाए अणस्स चत्तारि होंति पव्वाणि।
सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टि उच्छिट्ठं[1] ।।११३।।

अनिवृत्त्यद्धायामनन्तस्य चत्वारि भवन्ति पर्वाणि।
सागरलक्षपृथक्त्वं पल्यं दूरापकृष्टिरुच्छिष्टम् ।।११३।।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये अनन्तानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वं सागरोपमलक्षपृथक्त्वं जातम्। अपूर्वकरणस्थितिखण्डबाहुल्येनान्तःकोटीकोटिसागरोपमसत्त्वस्य संख्यातगुणहान्या तदा तत्प्रमाण–सम्भवात्। शेषकर्मणां स्थितिसत्त्वमन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमेव। इदमनन्तानुबन्धिनां प्रथमं स्थितिसत्त्वस्य पर्व। पुनः स्थितिखण्डसहस्रेषु पल्यसंख्यातैकभागमात्रायामेषु गतेषु अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातैकभागेऽवशिष्टे अनन्तानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वमसंज्ञिस्थितिबन्धसमं सागरोपमसहस्रप्रमितं भवति। पुनः पल्यसंख्यातैकभागमात्रायामेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु चतुरिन्द्रियस्थितिबन्धसमं सागरोपमशतप्रमितं भवति। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु त्रीन्द्रियस्थितिबन्धसमं पञ्चाशत्सागरोपमप्रमितं तेषां स्थितिसत्त्वं भवति। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु द्वीन्द्रियस्थितिबन्धसमं पञ्चविंशतिसागरोपमप्रमितं तेषां स्थितिसत्त्वं भवति। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु एकेन्द्रियस्थितिबन्धसममेकसागरोपमप्रमितं तेषां स्थितिसत्त्वं भवति। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु पल्यमात्रमनन्तानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वं भवति। इदं द्वितीयं पर्व । पुनः पल्यसंख्यातबहुभागमात्रायामेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु दूरापकृष्टिसंज्ञं तेषां स्थितिसत्त्वं भवति तच्च पल्यसंख्यातैकभागमात्रं

प
५।५।५।५

इदं तृतीयं पर्व। पुनः पल्यासंख्यातबहुभागमात्रायामेषु स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेषु अनन्तानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वमावलिमात्रमवशिष्यते तदुच्छिष्टावलिसंज्ञम्। इदं चतुर्थं पर्व। एवमनन्तानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वे सागरोपमलक्षपृथक्त्वं पल्यं दूरापकृष्टिरुच्छिष्टावलिरिति चत्वारि पर्वाणि भवन्ति ।।११३।।

अब अनिवृत्तिकरण के काल में किये जाने वाले कार्यविशेषों का कथन करते हैं –

अन्वयार्थ– (अणियट्टीअद्धाए) अनिवृत्तिकरणकाल में **(अणस्स)** अनन्तानुबंधी कषायों के **(सायरलक्खपुधत्तं)** पृथक्त्वलक्ष सागर, **(पल्लं)** पल्य, **(दूरावकिट्टि)** दूरापकृष्टि और **(उच्छिट्ठं)** उच्छिष्टावली इस प्रकार **(चत्तारि पव्वाणि)** चार पर्व **(होंति)** होते हैं **।।११३।।**

१) ध. पु. ६ पृ. २५१। जयध. पु. १३, पृ. २००

टीकार्थ– अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अनन्तानुबंधी कषाय का स्थितिसत्त्व पृथक्त्वलक्ष सागरोपमप्रमाण होता है क्योंकि अपूर्वकरण में किए गए स्थितिखंडों की बहुलता से अंत:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण सत्त्व की संख्यातगुणी हानि होकर उस समय उतना सत्त्व रहना संभव है। शेष कर्मों का स्थितिसत्त्व अंत:कोटाकोटी सागरोपमप्रमाण ही है। यह अनन्तानुबन्धी कषायों के स्थितिसत्त्व का प्रथम पर्व हुआ। पुन: पल्य के संख्यातवें भागमात्र आयाम वाले संख्यात हजार स्थितिखंड होने पर अनिवृत्तिकरणकाल का संख्यातवाँ भाग शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी का स्थितिसत्त्व असंज्ञी के स्थितिबंध के समान हजार सागरोपम प्रमाण होता है। पुन: पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र आयामयुक्त संख्यात हजार स्थितिबंध होने पर चतुरिन्द्रिय के स्थितिबंधसमान सौ सागरोपममात्र स्थितिसत्त्व होता है। पुन: उतने ही आयामयुक्त संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर त्रीन्द्रिय के स्थितिबन्ध के समान पचास सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्व रहता है। पुन: उतने ही आयामवाले हजारों स्थितिखंड होनेपर द्वीन्द्रिय के स्थितिबंध के समान पच्चीस सागरोपमप्रमाण उसका स्थितिसत्त्व रहता है। पुन: उतने ही आयाम वाले संख्यात हजार स्थितिखंड होने पर एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान एक सागरोपमप्रमाण उसका स्थितिसत्त्व होता है। पुन: उतने ही आयामवाले संख्यात हजार स्थितिकांडक होनेपर अनन्तानुबंधी का सत्त्व पल्योपमप्रमाण होता है। यह दूसरा पर्व हुआ। पुन: पल्य के संख्यात बहुभागमात्र आयामवाले हजारों स्थितिखंड होने पर दूरापकृष्टि नाम का उनका स्थितिसत्त्व होता है। वह पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र है। यह तीसरा पर्व हुआ।

पुन: पल्य के असंख्यात बहुभागप्रमाण आयामवाले हजारों स्थितिखंड होने पर अनन्तानुबन्धी का स्थितिसत्त्व आवलिमात्र शेष रहता है उसका उच्छिष्टावली ऐसा नाम है। यह चौथा पर्व हुआ। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी के स्थितिसत्त्व में पृथक्त्वलक्ष सागरोपम, पल्योपम, दूरापकृष्टि और उच्छिष्टावली ऐसे चार पर्व हैं ।।११३।।

विशेषार्थ– इस प्रकरण में श्रीधवला और जयधवला में ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है कि अनिवृत्तिकरण के प्रारम्भ में अनन्तानुबन्धी का स्थितिसत्त्व कितना रहता है, परन्तु उक्त गाथा में यह स्पष्ट बतलाया गया है कि अनिवृत्तिकरण के प्रारम्भ में उक्त प्रकृतियों का स्थितिसत्त्व सागरोपम लक्षपृथक्त्व प्रमाण पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त प्रकृतियों का यह स्थितिसत्त्व प्रथम स्थितिकाण्डक के पतन के पूर्व प्रथम समय से लेकर उक्त काण्डक के पतन के अंतिम समय तक पाया जाता है। इसको प्रकृत में प्रथम पर्व कहा गया है। पृथक्त्व शब्द का अर्थ ३ से ९ के बीचकी संख्या होती है।

दूरापकृष्टि का खुलासा गाथा १२० की टीका में किया है वह इसप्रकार है– पल्य में उत्कृष्ट संख्यात से भाग देने पर जो लब्ध आता है वहाँ से लेकर पल्य में जघन्य परीतासंख्यात से भाग देनेपर जो लब्ध आता है तब–तक एक–एक कम करते जाएँ अथवा जघन्य परीतासंख्यात से पल्य में भाग देनेपर जो लब्ध आता है वहाँ से लेकर पल्य में उत्कृष्ट संख्यात से भाग

देनेपर जो लब्ध आता है वहाँ तक एक-एक बढ़ाते हुए जितने विकल्प होते हैं उतने दूरापकृष्टि के भेद हैं । उनमें से कोई एक भेद जो है वह जिनेंद्र भगवान ने देखा यहाँ पर दूरापकृष्टि जानना चाहिए। उदाहरणार्थ:- माना कि पल्य ९६०, उत्कृष्ट संख्यात १५ और जघन्य परीतासंख्यात १६ हैं। ९६० में १५ से भाग देने पर ६४ आया और १६ से भाग देने पर ६० आया। ६४ में से एक-एक कम करते हुए ६० तक जाने पर ६३, ६२, ६१ ऐसे तीन दूरापकृष्टि के भेद होते हैं। उनमें से कोई भी एक भेद दूरापकृष्टिरूप से ग्रहण किया है।

पल्लस्स संखभागो संखा भागा असंखगा भागा।
ठिदिखंडा होंति कमे अणस्स पव्वादु पव्वो त्ति[1] ।।११४।।

पल्यस्य संख्यभाग: संख्या भागा असंख्यका भागा:।
स्थितिखंडा भवन्ति क्रमेणानन्तस्य पर्वात् पर्वान्तं ।।११४।।

अनन्तानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वस्य प्रथमपर्वण: आरभ्य द्वितीयपर्वपर्यन्तं पल्यसंख्यातैकभाग: स्थितिखण्डायामो भवति । द्वितीयपर्वण: आरभ्य तृतीयपर्वपर्यन्तं पल्यसंख्यातबहुभागमात्र: स्थितिखंडायाम: । तृतीयपर्वण आरभ्य चतुर्थपर्वपर्यन्तं पल्यासंख्यातबहुभागमात्र: स्थितिखण्डायाम:।

अब प्रथमादि तीन पर्वों में क्रम से स्थितिकाण्डक-आयाम का प्रमाण कहते हैं -

अन्वयार्थ- (अणस्स) अनन्तानुबन्धी के स्थितिसत्त्व के **(पव्वादु पव्वो त्ति)** एक पर्व से लेकर दूसरे पर्व तक **(कमे)** क्रम से **(पल्लस्स संखभागो, संखा भागा, असंखगा भागा)** पल्य का संख्यातवाँ भाग, संख्यात बहुभाग और असंख्यात बहुभागमात्र आयामवाले **(ठिदिखंडा)** स्थितिकाण्डक **(होंति)** होते हैं ।।११४।।

टीकार्थ- अनन्तानुबन्धी के स्थितिसत्त्व के प्रथम पर्व से लेकर दूसरे पर्व पर्यन्त पल्य का संख्यातवाँ एकभागप्रमाण स्थितिकांडकआयाम होता है। दूसरे पर्व से तीसरे पर्व तक पल्य का संख्यात बहुभागमात्र स्थितिकांडकआयाम होता है। तीसरे पर्व से लेकर चौथे पर्व तक पल्य का असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिकांडक-आयाम होता है। ।।११४।।

अनंतानुबंधिसत्त्व के चार पर्व	संदृष्टि	स्थितिकाण्डकायाम का प्रमाण
१) पृथक्त्वलक्षसागरोपम	सा. ७-८ ल	पल्य का संख्यातवाँ भाग
२) पल्योपम	प	पल्य का संख्यात बहुभाग
३) दूरापकृष्टि (पल्य का संख्यातवाँ भाग)	प ५५५५	पल्य का असंख्यात बहुभाग
४) उच्छिष्टावली		

अनन्तानुबंधी के स्थितिसत्त्व के चार पर्व

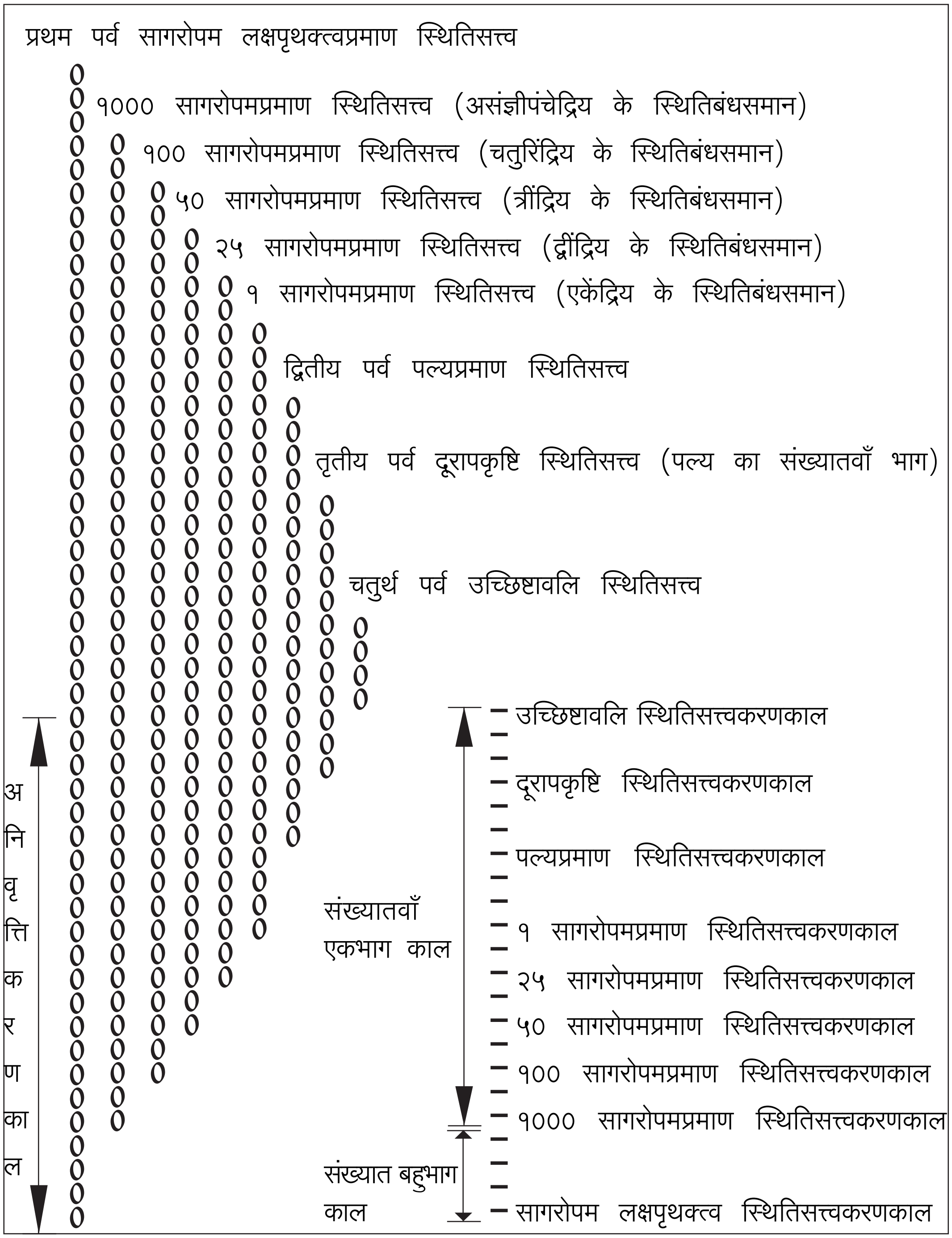

अणियट्टीसंखेज्जाभागेसु गदेसु अणगठिदिसत्तो।
उदधिसहस्सं तत्तो वियलेयसमं तु पल्लादी।।११५।।

अनिवृत्तिसंख्यातभागेषु गतेष्वनन्तगस्थितिसत्त्वं ।
उदधिसहस्रं ततो विकलैकसमं तु पल्यादि ।।११५।।

अनिवृत्तिकरणकालस्य प्रथमसमयादारभ्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु अनन्तानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वं क्वचित्सागरोपमसहस्रम्। ततो विकलत्रयैकेन्द्रियस्थितिबन्धसमम्। ततः पल्यादि भवति। आदिशब्दात् दूरापकृष्टिरुच्छिष्टावलिश्च गृह्येते। प्रतिपर्व संख्यातसहस्रस्थिति-खण्डवशात् तत्स्थितिहानिसम्भवात् ।।११५।।

अन्वयार्थ- **(अणियट्टीसंखेज्जाभागेसु गदेसु)** अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग काल व्यतीत होने पर **(अणगठिदिसत्तो)** अनन्तानुबंधी का स्थितिसत्त्व **(उदधिसहस्सं)** हजार सागर होता है। **(तत्तो)** उसके पश्चात् **(वियलेयसमं)** विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय के बंध के समान होता है। उसके पश्चात् **(पल्लादि)** पल्य आदि होता है ।।११५।।

टीकार्थ- अनिवृत्तिकरणकाल के प्रथम समय से लेकर संख्यात बहुभागकाल व्यतीत होनेपर अनंतानुबंधी का स्थितिसत्त्व किसी स्थान पर हजार सागरोपम होता है। उसके पश्चात् विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान होता है। उसके बाद पल्य आदि होता है। आदि शब्द से दूरापकृष्टि और उच्छिष्टावली ग्रहण की गयी है। प्रत्येक पर्व में संख्यात हजार स्थितिखंड होने से उसकी स्थिति की हानि संभव है ।।११५।।

उवहिसहस्सं तु सयं पण्णं पणुवीसमेक्कयं चेव।
वियलचउक्के एगे मिच्छुक्कस्सट्ठिदी होदि।।११६।।

उदधिसहस्रं तु शतं पञ्चाशत् पञ्चविंशतिरेकं चैव।
विकलचतुष्क एकस्मिन् मिथ्योत्कृष्टस्थितिर्भवति।।११६।।

असञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियश्चतुरिन्द्रियस्त्रीन्द्रियो द्वीन्द्रियश्च विकलचतुष्कं, तस्मिन्नेकेन्द्रिये च यथाक्रमं सहस्रशतपञ्चाशत्पञ्चविंशत्येकसागरोपमप्रमितो मिथ्यात्वोत्कृष्टो स्थितिबन्धो भवति। एवमनन्तानुबन्धिनां द्रव्यं स a १२– / ७ । ख । १७ **गुणश्रेण्या अपकृष्टमधो निक्षिप्य स्थितिकाण्डकद्रव्यं**

प्र	फ	इ	लब्ध
प ९	कां १	प	कां ९

प्र	फ	इ	ल
कां ९	स a १२– ७ । ख । १७	कां १	स a १२– ७ । ख । १७। ९

गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा लब्धफालीः प्रतिसमयमसंख्येयगुणाः द्वादशकषायनोकषायेषु संक्रमय्य अनिवृत्तिकरणचरमसमये चरमकाण्डकफालिद्रव्यमुच्छिष्टावलिमात्रनिषेकवर्जितं विसंयो-जयति। उच्छिष्टावलिद्रव्यं च प्रतिसमयमेकैकनिषेकरूपेणावलिकाले विसंयोज्यते ।।११६।।

अन्वयार्थ– **(वियलचउक्के)** विकल चतुष्क अर्थात् असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व द्वीन्द्रिय में और **(एगे)** एकेन्द्रिय में **(मिच्छुक्कस्सट्ठिदी)** मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध (क्रमशः) **(उवहिसहस्सं तु)** हजार सागर, **(सयं)** सौ सागर, **(पण्णं)** पचास सागर, **(पणवीसं)** पच्चीस सागर **(एक्कयं चेव)** और एक सागर **(होदि)** होता है ।।११६।।

टीकार्थ– असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय इस विकलचतुष्क में व एकेन्द्रिय में क्रम से एक हजार, सौ, पचास, पच्चीस, और एक सागरप्रमाण मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थितिबंध होता है।

इस प्रकार अनन्तानुबन्धी का द्रव्य $\dfrac{\text{स a १२–}}{\text{७ । ख । १७}}$ है। इसको गुणश्रेणी द्वारा अपकर्षण करके नीचे निक्षिप्त करता है। स्थितिकांडक का द्रव्य निकालते हैं–

पल्य का संख्यातवाँ भागप्रमाण एक कांडक होता है तो संख्यात पल्य में कितने कांडक होते हैं ? त्रैराशिक करने पर लब्ध संख्यात कांडक होते हैं। वह इस प्रकार है–

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
$\dfrac{\text{प}}{\text{१}}$ $\dfrac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$	१ काण्डक	प१ $\dfrac{\text{संख्यात}}{\text{पल्य}}$	$\dfrac{\text{प१}}{\dfrac{\text{प}}{\text{१}}} = \text{प१} \times \dfrac{\text{१}}{\text{प}} = \text{१}$

(भागहार का भागहार राशि का गुणकार होता है। इसलिए संख्यात गुणकार हुआ और पल्य भागहार हुआ। अपवर्तन करने पर संख्यात काण्डक लब्ध आता है।) दूसरा त्रैराशिक –

संख्यात कांडकों के द्वारा इतने द्रव्य का घात होता है तो एक कांडक के द्वारा कितने द्रव्य का घात होता है?

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
१ संख्यात काण्डक	द्रव्य $\dfrac{\text{स a १२–}}{\text{७ । ख । १७}}$	१ काण्डक	$\dfrac{\text{स a १२–}}{\text{७ । ख । १७। १}}$

सर्वद्रव्य का संख्यातवाँ भाग एक कांडकद्रव्य का प्रमाण आता है।

गुणसंक्रमण भागहार से भाग देकर जो लब्ध आया उतनी फालि प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितरूप से बारह कषाय और नौ नोकषायों में संक्रमित करके अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में चरम कांडक के चरम फालि का द्रव्य उच्छिष्टावलिप्रमाण निषकों को छोड़कर विसंयोजित करता है। उच्छिष्टावलिप्रमाण द्रव्य को प्रत्येक समय में एक–एक निषेकरूप से आवलिकाल में विसंयोजित करता है ।।११६।।

विशेषार्थ– अनिवृत्तिकरण में अनन्तानुबन्धी चतुष्क के स्थितिसत्त्व की उत्तरोत्तर हानि होते हुए अन्त में उच्छिष्टावलिप्रमाण स्थिति किस क्रम से रह जाती है इसका स्पष्ट निर्देश तो मूल में और उसकी टीका में किया ही है। यहाँ इतना विशेष जानना कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क का अन्तरकरण नहीं होता है, क्योंकि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय की उपशामना के समय तथा चारित्रमोहनीय की क्षपणा के समय ही अन्तरकरण क्रिया सम्भव है, अन्यत्र नहीं ।

अथ विसंयोजितानन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्योत्तरकालकर्तव्यमाह–

अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय[१] पुणो वि तिकरणं करिय।
अणियट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेइ।।११७।।

अन्तर्मुहूर्तकालं विश्रम्य पुनरपि त्रिकरणं कृत्वा।
अनिवृत्तौ मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं क्रमेण नाशयति।।११७।।

पूर्वोक्तक्रमेण विसंयोजितानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभकषायो जीवोऽन्तर्मुहूर्तकालं विश्रम्य क्रियान्तरमकृत्वा स्वस्थानस्थितो भूत्वेत्यर्थः, पुनरपि त्रिकरणान् कृत्वा अनिवृत्तिकरणकाले मिथ्यात्वप्रकृतिं मिश्रप्रकृतिं सम्यक्त्वप्रकृतिं च क्रमेण नाशयति, वक्ष्यमाणप्रकारेण क्षपयतीत्यर्थः। तथाहि –

अनन्तानुबन्धिविसंयोजनानन्तरमन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं विशुद्ध्यतिशयाभावादसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा देशसंयतो वा प्रमत्तसंयतो वा अप्रमत्तसंयतो वा स्वस्थानस्थितो भूत्वा पुनर्दर्शनमोहक्षपणाभिमुखः सन् प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्धिमापूर्य दर्शनमोहोपशमनोक्तप्रकारेणाधःप्रवृत्तकरणं कृत्वा अपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जरां कर्तुं प्रारभते। अनन्तानुबन्धिविसंयोजकस्य गुणश्रेणिकरणार्थमपकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणं द्रव्यमपकृष्य तद्गुणश्रेण्यायामात्संख्येयगुणहीनगुण–श्रेण्यायामे तात्कालिकापूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयात्साधिके निक्षिपति। सम्यक्त्वोत्पत्त्यादि–करणत्रयकालादुत्तरोत्तरकरणत्रयकालस्य संख्यातगुणहीनत्वात्। तदा अन्यदेव स्थितिखण्डमन्यदे–वानुभागखंडमन्यदेव स्थितिबन्धनं पल्यसंख्यातैकभागहीनं प्रारभते मिथ्यात्वमिश्रद्रव्ययोर्गुणसंक्रमं च करोति। अपूर्वकरणप्रथमसमये जघन्यं स्थितिसत्त्वमन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितं पूर्वस्मात् संख्येयगुणहीनम्। तत्रैवोत्कृष्टं स्थितिसत्त्वं जघन्यात्संख्येयगुणं। तथाहि–

एको जीवः पूर्वमुपशमश्रेणिमारुह्य तत्र कर्मणां स्थितिसत्त्वं बहुशः खण्डयित्वा ततोऽवतीर्याविलम्बितमेव दर्शनमोहक्षपणायां प्रवृत्तस्तस्य कर्मस्थितिसत्त्वं जघन्यं भवति । यस्तूपशमश्रेणिमनारुह्य दर्शनमोहक्षपणायां प्रवृत्तस्तस्य कर्मस्थितिसत्त्वं तस्मात्संख्येयगुणं भवति। तत्र जघन्यस्थितिसत्त्वस्य स्थितिकाण्डकायामः पल्यसंख्यातभागमात्रः। उत्कृष्टस्थितिसत्त्वस्य स्थितिकाण्डकायामः सागरोपमपृथक्त्वमात्रः[२] स्थितिकाण्डकानां स्थित्यनुसारित्वेन प्रवृत्तेः । एवंविधैः संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकघातैः ततः संख्येयगुणानुभागकांडकघातैः प्रतिसमयमसंख्येय–गुणद्रव्यस्य गुणश्रेणिनिर्जरया गुणसंक्रमविधानेन वापूर्वकरणचरमसमयं प्राप्तः तत्र कर्मणां स्थितिसत्त्वं तत्प्रथमसमयस्थितिसत्त्वात् संख्येयगुणहीनं भवति । दर्शनमोहोपशमने प्रतिपादितो विशेषः सर्वोप्यत्रानुक्तोऽपि द्रष्टव्यः ।।११७।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २०१ २) जयध. पु. १३, पृ. २५ ते ३१

अब अनन्तानुबन्धी चार कषायों का विसंयोजन होने के पश्चात् काल में होने वाला कार्य कहते हैं–

अन्वयार्थ– अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करने के पश्चात् **(अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय)** अन्तर्मुहूर्तकाल विश्राम करके **(पुणो वि)** पुनः **(तिकरणं करिय)** तीन करण करके **(अणियट्टीए)** अनिवृत्तिकरणकाल में **(मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण)** मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति का क्रम से **(णासेइ)** नाश करता है।।११७।।

टीकार्थ– पूर्व में कहे गए क्रम से जिसने अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ कषाय का विसंयोजन किया है ऐसा जीव अंतर्मुहूर्तकाल विश्राम करके अर्थात् दूसरी क्रिया नहीं करके अपने स्थान में ही रहकर पुनः तीन करण करके अनिवृत्तिकरणकाल में मिथ्यात्व–प्रकृति, मिश्रप्रकृति और सम्यक्त्वप्रकृति का क्रम से नाश करता है अर्थात् आगे कहे गये प्रकार से क्षय करता है।

अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन होने के पश्चात् अंतर्मुहूर्तकाल तक अतिशय विशुद्धि का अभाव होने से असंयत सम्यग्दृष्टि अथवा देशसंयत अथवा प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत अपने ही स्थान में स्थित होकर पुनः दर्शनमोह की क्षपणा के सम्मुख होकर प्रत्येक समय में अनंतगुणी वृद्धि से विशुद्धि को बढ़ाकर दर्शनमोह के उपशमकाल में कहे गए प्रकार से अधःप्रवृत्तकरण करके अपूर्वकरण के प्रथम समय में गुणश्रेणी निर्जरा करने के लिए प्रारंभ करता है। अनन्तानुबन्धी विसंयोजक के गुणश्रेणी करने के लिए अपकर्षित किए द्रव्य से असंख्यात गुणे द्रव्य का अपकर्षण करके अनन्तानुबन्धी विसंयोजक के गुणश्रेणी–आयाम से संख्यातगुणा हीन और तात्कालिक अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और उससे थोड़ा अधिक गुणश्रेणी–आयाम में निक्षेपण करता है क्योंकि सम्यक्त्व की उत्पत्ति के पूर्व जो तीन करण का काल है उससे उत्तरोत्तर तीन करण का काल संख्यातगुणा कम है। तब अन्य ही स्थितिकांडक, अन्य ही अनुभागखंड और अन्य ही पल्य के संख्यातवें भाग से हीन स्थितिबंध प्रारम्भ करता है और मिथ्यात्व तथा मिश्र द्रव्य का गुणसंक्रमण करता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य स्थितिसत्त्व पूर्व से संख्यातगुणा कम अंतःकोटाकोटी सागरोपमप्रमाण करता है। वहाँ ही उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व जघन्य से संख्यातगुणा है। उसका स्पष्टीकरण –

एक जीव उपशमश्रेणी पर आरोहण करके वहाँ कर्मों का स्थितिसत्त्व अनेक बार खंडित करके वहाँ से उतरकर विलम्ब न करते हुए दर्शनमोह का क्षय करने में प्रवृत्त होता है। उसके कर्मों का स्थितिसत्त्व जघन्य होता है और दूसरा एक जीव उपशमश्रेणी पर न चढ़कर दर्शनमोह का क्षय करने में प्रवृत्त होता है। उसके कर्मों का स्थितिसत्त्व उससे संख्यातगुणित है। उसमें से जघन्य स्थितिसत्त्व का स्थितिकांडकायाम पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र होता है। उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व का स्थितिकांडकायाम सागरोपमपृथक्त्वमात्र होता है, क्योंकि स्थिति का अनुसरण करके स्थितिकांडक की प्रवृत्ति होती है। इसप्रकार के संख्यात हजार स्थितिकांडकघात द्वारा,

उससे संख्यातगुणित अनुभागकांडकघात द्वारा, प्रत्येक समय में असंख्यात गुणे द्रव्य की गुणश्रेणी निर्जरा द्वारा और गुणसंक्रम विधान द्वारा अपूर्वकरण के अंतिम समय को प्राप्त होता है। वहाँ कर्मों का स्थितिसत्त्व उसके प्रथम समय के स्थितिसत्त्व से संख्यातगुणा हीन होता है। दर्शनमोह के उपशमन में बताया गया सर्व विशेष यहाँ भी बिना बताये जानना चाहिए।

विशेषार्थ– दर्शनमोहनीय की क्षपणा करनेवाले जीवों की सत्त्वस्थिति में सदृशता और विसदृशता किस प्रकार सम्भव है इसका चूर्णिसूत्रों के आधार से श्री जयधवला भाग १३ पृ: २५ से ३० तक विशेष खुलासा किया है। वह इसप्रकार है– १) कोई एक जीव मध्यकाल में मिश्रगुणस्थान को प्राप्त कर उसके पूर्व और अनन्तर सब मिलाकर दो छ्यासठ सागरोपमकाल तक वेदकसम्यक्त्व के साथ रहने के बाद दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ करता है और दूसरा जीव दो छ्यासठ सागरोपमकाल तक परिभ्रमण किये बिना ही वेदकसम्यग्दर्शनपूर्वक दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ करता है। इसप्रकार दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ करने वाले इन दोनों जीवों की सत्त्व–स्थिति में अपूर्वकरण के प्रथम समय में विसदृशता पाई जाती है, क्योंकि प्रथम जीव के स्थिति–सत्कर्म से दूसरे जीव का स्थिति–सत्कर्म दो छ्यासठ सागरोपमकाल के समय–प्रमाण निषेकों की अपेक्षा विशेष अधिक होता है। इस विधि से एक समय अधिक आदि से लेकर दो छ्यासठ सागरोपमप्रमाण काल के भीतर जितने स्थितिविकल्प सम्भव हों वे सब यहाँ ग्रहण कर लेने चाहिए इसीलिए अपूर्वकरण में यथासम्भव स्थितिकाण्डकायाम में भी विसदृशता बन जाती है।

(२) अथवा एक जीव अन्तर्मुहूर्त पहले उपशमश्रेणी पर चढ़ा और दूसरा जीव अन्तर्मुहूर्त बाद उपशमश्रेणी पर चढ़ा। अनन्तर उन दोनों ने एकसाथ दर्शनमोहनीय की क्षपणा की। तो इस प्रकार भी अपूर्वकरण के प्रथम समय में उन दोनों के स्थितिसत्कर्म में विषमता बन जाने से स्थितिकाण्डकायाम में भी विसदृशता बन जाती है, क्योंकि प्रकृत में प्रथम जीव के स्थितिसत्कर्म से दूसरे जीव का स्थितिसत्कर्म अन्तर्मुहूर्त निषेकप्रमाण अधिक देखा जाता है।

यह तो एक जीव के स्थितिसत्कर्म से दूसरे जीव का स्थितिसत्कर्म विशेष अधिक कैसे होता है इसका विचार है। आगे एक जीव के स्थितिसत्कर्म से दूसरे जीव का स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा कैसे होता है? इसका स्पष्टीकरण करते हैं–

३) एक जीव कषायों का उपशम करने के बाद उतरकर दर्शनमोहनीय की क्षपणा करता है और दूसरा जीव उपशमश्रेणी पर आरोहण न कर दर्शनमोहनीय की क्षपणा करता है तो अपूर्वकरण के प्रथम समय में इस प्रथम जीव के स्थितिसत्कर्म से दूसरे जीव का स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा होता है, क्योंकि इस दूसरे जीव ने उपशमश्रेणी पर चढ़कर स्थिति–सत्कर्म का घात कर उसे संख्यातवें भागप्रमाण नहीं किया है। इसलिए इस दूसरे जीव का स्थितिकाण्डकायाम प्रथम जीव के स्थितिकाण्डकायाम से संख्यातगुणा होता है।

अथानिवृत्तिकरणं प्रविष्टस्य कार्यविशेषमाह–

अणियट्टिकरणपढमे दंसणमोहस्स सेसगाण ठिदी।
सायरलक्खपुधत्तं कोडीलक्खगपुधत्तं च[१] ।।११८।।

अनिवृत्तिकरणप्रथमे दर्शनमोहस्य शेषकानां स्थितिः।
सागरलक्षपृथक्त्वं कोटिलक्षकपृथक्त्वं च।।११८।।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वं सागरोपमलक्षपृथक्त्वम्। इदं प्रथमं पर्व। पृथक्त्वशब्दोऽत्र बहुत्ववाची, अन्तःकोटीत्यर्थः। शेषकर्मणां स्थितिसत्त्वं कोटीलक्षपृथक्त्वं अन्तःकोटीकोटीत्यर्थः। अपूर्वकरणकृतसंख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकघातवशादेवंविधस्थितिसत्त्व–सम्भवात्। अत्र सर्वेषां जीवानां विशुद्धिपरिणामसादृश्येन जघन्योत्कृष्टविकल्पं विना स्थितिसत्त्वमेकादृशमेव भवति। अतःपरं दर्शनमोहस्य पल्यस्थितिपर्यन्तं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं स्थितिकाण्डकं भवति।।११८।।

अब अनिवृत्तिकरण में प्रविष्ट हुए जीव के कार्यविशेष कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(अणियट्टिकरणपढमे)** अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में **(दंसणमोहस्स)** दर्शनमोह की **(ठिदि)** स्थिति **(सायरलक्खपुधत्तं)** पृथक्त्वलक्षसागरप्रमाण होती है **(च)** और **(सेसगाण)** बाकी के कर्मों की स्थिति **(कोडीलक्खगपुधत्तं)** पृथक्त्वलक्ष कोटी सागरप्रमाण होती है ।।११८।।

टीकार्थ– अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में दर्शनमोह का स्थितिसत्त्व पृथक्त्वलाख सागरोपम होता है। यह प्रथम पर्व है । यहाँ पृथक्त्व शब्द बहुवाची है अर्थात् कोटि के भीतर ऐसा अंतःकोटि है । शेष कर्मों का स्थितिसत्त्व पृथक्त्वलक्षकोटि सागरोपमप्रमाण अर्थात् कोटाकोटी के भीतर अंतःकोटाकोटि ऐसा अर्थ है क्योंकि अपूर्वकरण में किये गए संख्यात हजार स्थितिकांडकघात से इस प्रकार ही स्थितिसत्त्व संभव होता है। यहाँ सभी जीवों के विशुद्धि परिणाम समान होने से जघन्य और उत्कृष्ट भेद के बिना स्थितिसत्त्व एकसमान ही है। यहाँ से आगे दर्शनमोह का पल्यप्रमाण स्थितिसत्त्व होने तक पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र स्थितिकांडक होता है ।।११८।।

अथानिवृत्तिकरणकाले क्रियमाणं कार्यविशेषमाह–

अमणट्ठिदिसत्तादो पुधत्तमेत्ते पुधत्तमेत्ते य।
ठिदिखंडये हवंति हु चउ ति वि एयक्ख पल्लठिदी[२]।।११९।।

अमनःस्थितिसत्त्वतः पृथक्त्वमात्रं पृथक्त्वमात्रं च।
स्थितिकाण्डके भवन्ति हि चतुस्त्रि द्वि एकाक्षे पल्यस्थितिः।।११९।।

---
१) जयध. पु. १३, पृ. ४१। ध. पु. ६, पृ. २५४ । २) जयध. पु. १३, पृ. ४१ ते ४३.

सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्राद्दर्शनमोहस्य अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयभाविनः स्थितिसत्त्वात् संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकघातवशेनासंज्ञिस्थितिबन्धसमं सागरोपमसहस्रमात्रं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिकाण्डकेषु गतेषु चतुरिन्द्रियस्थितिबन्धसमं सागरोपमशतमात्रं स्थितिसत्त्वं भवति । ततो बहुषु स्थितिखण्डेषु पतितेषु त्रीन्द्रियस्थितिबन्धसमं पञ्चाशत्सागरोपमप्रमितं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिखण्डेषु गतेषु द्वीन्द्रियस्थितिबन्धसमं पञ्चविंशतिसागरोपममात्रं भवति। ततो बहुषु स्थितिखण्डेषु पतितेषु एकेन्द्रियस्थितिबन्धसमं एकसागरोपमप्रमितं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिखण्डेषु पतितेषु पल्यमात्रं स्थितिसत्त्वं भवति। इदं द्वितीयं पर्व ।।११९।।

अब अनिवृत्तिकरणकाल में किये जाने वाले कार्यविशेष कहते हैं–

अन्वयार्थ– (अमणट्ठिदिसत्तादो) असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबन्ध के समान स्थितिसत्त्व होने के पश्चात् **(पुधत्तमेत्ते य पुधत्तमेत्ते य)** पृथक्त्वप्रमाण–पृथक्त्वप्रमाण **(ठिदिखंडये)** स्थितिकांडक बीतने पर **(चउ ति वि एयक्ख पल्लठिदि)** चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान और पल्यप्रमाण स्थिति **(हवंति हु)** होती है ।।११९।।

टीकार्थ– अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में दर्शनमोह के पृथक्त्वलक्ष सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्व से संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होने से असंज्ञी जीव के स्थितिबंध के समान हजार सागरोपम मात्र स्थितिसत्त्व रहता है। उसके पश्चात् बहुत स्थितिकांडक व्यतीत होने पर चतुरिन्द्रिय के स्थितिबन्ध के समान सौ सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्व होता है। उसके पश्चात् बहुत स्थितिखंडों का पतन होने पर त्रीन्द्रिय–स्थितिबंध के समान पचास सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्व होता है। उसके पश्चात् बहुत स्थितिकाण्डक बीतने पर द्वीन्द्रिय–स्थितिबन्ध के समान पच्चीस सागरोपममात्र स्थितिसत्त्व रहता है। उसके पश्चात् बहुत स्थितिखंडों के पतन होने पर एकेन्द्रिय स्थितिबंध के समान एक सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्व होता है। उसके पश्चात् बहुत स्थितिखंडों का घात होने पर पल्यमात्र स्थितिसत्त्व होता है । यह दूसरा पर्व है ।।११९।।

पल्लट्ठिदिदो उवरिं संखेज्जसहस्समेत्तठिदिखंडे।
दूरावकिट्टिसण्णिदठिदिसत्तं होदि णियमेण।।१२०।।

पल्यस्थितित उपरि संख्येयसहस्रमात्रस्थितिखण्डे।
दूरापकृष्टिसंज्ञितं स्थितिसत्त्वं भवति नियमेन।।१२०।।

तस्मात्पल्यमात्रस्थितिसत्त्वादुपर्युपरि पल्यसंख्यातबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकेषु निपतितेषु दूरापकृष्टिसंज्ञं स्थितिसत्त्वं नियमेन भवति। का दूरापकृष्टिर्नामेति चेदुच्यते–पल्ये उत्कृष्टसंख्यातेन भक्ते यल्लब्धं तस्मादेकैकहान्या जघन्यपरिमितासंख्यातेन भक्ते पल्ये यल्लब्धं तस्मादेकोत्तरवृद्ध्या यावन्तो विकल्पास्तावन्तो दूरापकृष्टिभेदाः तेषु कश्चिदेव विकल्पो जिनदृष्टभावोऽस्मिन्नवसरे दूरापकृष्टिसंज्ञितो वेदितव्यः। इदं तृतीयं पर्व।।१२०।।

अन्वयार्थ– (पल्लट्ठिदिदो उवरिं) पल्यमात्र स्थितिसत्त्व होने के बाद **(संखेज्जसहस्समेत्तठिदिखंडे)** संख्यात हजारप्रमाण स्थितिखंड होने पर **(णियमेण)** नियम से **(दूरावकिट्टिसण्णिदठिदिसत्तं)** दूरापकृष्टि नाम का स्थितिसत्त्व **(होदि)** होता है। ।।१२०।।

टीकार्थ– उस पल्यप्रमाण स्थितिसत्त्व के ऊपर–ऊपर पल्य का संख्यात बहुभागप्रमाण आयामयुक्त संख्यात हजार स्थितिकांडकों का पतन होने पर दूरापकृष्टि नाम का स्थितिसत्त्व नियम से होता है । दूरापकृष्टि किसे कहते है? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं – पल्य में उत्कृष्ट संख्यात से भाग देने पर जो लब्ध आया उसमें से एक–एक कम करते हुए (पल्य में जघन्य परीतासंख्यात से भाग देने पर जो लब्ध आता है वहाँ तक जावें) और जघन्य परितासंख्यात से पल्य में भाग देने पर जो लब्ध आता है उसमें एक–एक बढ़ाते (पल्य में उत्कृष्ट संख्यात से भाग देने पर जो लब्ध आया तब तक) जावे। मध्य में जितने विकल्प होते हैं उतने दूरापकृष्टि के भेद हैं। उसमें कोई एक जिनेन्द्र भगवान् ने देखा हुआ विकल्प यहाँ पर दूरापकृष्टि नाम का जानना चाहिए ।।१२०।।

विशेषार्थ– दूरापकृष्टि किसे कहते है इस प्रश्न का समाधान करते हुए श्री जयधवला में बतलाया है कि पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्म से अत्यन्त दूर उतरकर सबसे जघन्य पल्योपम के संख्यातवें भागप्रमाण जो स्थितिसत्कर्म शेष रहता है उसकी दूरापकृष्टि संज्ञा है, क्योंकि पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्म से नीचे अत्यन्त दूर तक अपकर्षित की गई होने से और अत्यन्त कृश (अल्प) होने से यह स्थिति दूरापकृष्टि कहलाती है। अथवा इसका स्थितिकाण्डक अत्यन्त दूरतक अपकर्षित किया जाता है, इसलिए इसका नाम दूरापकृष्टि है। यहाँ से लेकर असंख्यात बहुभागों को ग्रहण कर स्थितिकाण्डकघात किया जाता है, इसलिए भी यह दूरापकृष्टि कहलाती है यह उक्त कथन का तात्पर्य है। वह दूरापकृष्टि एक विकल्पवाली है या अनेक विकल्पवाली है? इस विषय में कितने ही आचार्य कहते हैं कि वह एक विकल्पवाली है, क्योंकि वह पल्योपम के भेदरहित सबसे जघन्य संख्यातवें भागप्रमाण है और वह निर्विकल्प पल्योपम का संख्यातवाँ भाग, पल्योपम को जघन्य परीतासंख्यांत से भाजित कर वहाँ जो भाग प्राप्त हो उनमें एक मिलाने पर जितना प्रमाण हो तत्प्रमाण है, क्योंकि इसमें से एक भी स्थितिविशेष की हानि होने पर पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण विकल्प की उत्पत्ति होती है। किन्तु वीरसेन स्वामी का निर्णय है कि वह अनेक विकल्पवाली है। इसका विशेष खुलासा जयधवल भाग १३ पृ: ४६–४७ में किया गया है।

पल्लस्स संखभागं तस्स पमाणं तदो असंखेज्जा।
भागपमाणे खंडे संखेज्जसहस्सगेसु तीदेसु।।१२१।।
सम्मस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणा होदि।
तत्तो उवरिं तु पुणो बहुखंडे मिच्छउच्छिट्ठं[1] ।।१२२।।

---

१) ध. पु. ६ पृ. २५६ । जयध. पु. १३, पृ. ४८

पल्यस्य संख्यभागं तस्य प्रमाणं ततो असंख्येया:।
भागप्रमाणे खण्डे संख्येयसहस्रकेषु अतीतेषु।।१२१।।
सम्यक्त्वस्यासंख्यानां समयप्रबद्धानामुदीरणा भवति ।
तत उपरि तु पुनो बहुखण्डे मिथ्योच्छिष्टम्।।१२२।।

प
५।५।५।५

तस्य दूरापकृष्टिस्थितिसत्त्वस्य प्रमाणं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति ततो दूरापकृष्टिस्थितिसत्त्वात्पल्यासंख्यातबहुभागमात्रायामेषु स्थितिकाण्डेषु संख्यातसहस्रेष्वतीतेषु सम्यक्त्वप्रकृतेरपकृष्टद्रव्यस्य असंख्यातसमयप्रबद्धमात्रमुदीरणाद्रव्यमुदयावल्यां निक्षिप्यते । तथाहि– सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमिदं

स a १२–
७ । ख । १७ । गु

अस्मादपकृष्टं पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागद्रव्यं उपरितनस्थितौ देयं

१ ⌓
स a १२– प
a
७।ख।१७।गु।ओ।प
a

शेषैकभागं पुन: पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेण्यां देयं–

स a १२– प
a
७।ख।१७।गु।ओ।प।प
a a
१ ⌓

शेषैकभागद्रव्यमुदयावल्यां देयं

स a १२–
७।ख।१७।गु।ओ।प।प
a a

पल्यभागहारभूतासंख्यातस्य बाहुल्येन पल्यद्वये अपकर्षणभागहारे चापवर्तितेप्यसंख्यातगुणकार–सम्भवात् इत: परं सर्वत्र पल्यासंख्यातभागखण्डितमेव उदयावल्यां दीयते। ततो मिथ्यात्वप्रकृते: पल्यासंख्यातबहुभागमात्रायामेषु बहुषु गतेषु स्थितिकाण्डकेषु चरमकाण्डकचरमफालिपतनसमये मिथ्यात्वस्य उच्छिष्टावलिमात्रा निषेका अवशिष्यन्ते। अन्यत्काण्डकद्रव्यं सर्वं सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परिणतमित्यर्थ:। आवलिमात्रनिषेकाश्च समयं प्रति द्विसमयोना गलन्ति।।१२१– १२२।।

अन्वयार्थ– **(तस्स पमाणं)** उस दूरापकृष्टि का प्रमाण **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवाँ भाग है। **(तदो)** उसके बाद **(असंखेज्जा भागपमाणे)** पल्य का असंख्यात बहुभागप्रमाण **(संखेज्जसहस्सगेसु खंडे तीदेसु)** संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर वहाँ **(सम्मस्स)** सम्यक्त्वप्रकृति के **(असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणा)** असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा **(होदि)** होती है। **(तत्तो उवरिं तु)** उसके बाद **(पुणो)** पुन: **(बहुखंडे)** बहुत स्थितिखंड व्यतीत होने पर **(मिच्छउच्छिट्ठं)** मिथ्यात्व की उच्छिष्टावली शेष रहती है ।।१२१–१२२।।

टीकार्थ– उस दूरापकृष्टि स्थितिसत्त्व का प्रमाण पल्य का संख्यातवाँ एकभागमात्र है।

प
५।५।५।५

(पल्य का छोटा संख्यातवाँ भाग दिखाने के लिए पल्य में चार बार संख्यात से भाग दिया है) उसके बाद दूरापकृष्टि स्थितिसत्त्व रहने पर पल्य का असंख्यात

बहुभागमात्र आयामयुक्त संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर सम्यक्त्वप्रकृति के अपकृष्ट द्रव्य में असंख्यात समयप्रबद्धमात्र उदीरणा द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण होता है । उसका खुलासा–

सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य (पूर्व में कहे अनुसार) $\frac{\text{स a १२ –}}{\text{७ । ख । १७ । गु}}$ इसमें अपकर्षण भागहार से भाग देने पर एकभाग द्रव्य का अपकर्षण किया। $\frac{\text{स a १२ –}}{\text{७ । ख । १७ । गु । ओ}}$ इसमें पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो बहुभाग द्रव्य आया वह उपरितन स्थिति में देना चाहिए। $\frac{\text{स a १२ –} \frac{\text{प}}{\text{a}}}{\text{७।ख।१७। गु। ओ ।}\frac{\text{प}}{\text{a}}}$

(पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर बहुभाग द्रव्य आता है।)

शेष रहे एकभाग में पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो बहुभाग द्रव्य आया वह गुणश्रेणिआयाम में देना चाहिए। $\frac{\text{स a १२ –} \frac{\text{प}}{\text{a}}}{\text{७।ख।१७। गु। ओ ।}\frac{\text{प}}{\text{a}}\text{।}\frac{\text{प}}{\text{a}}}$ शेष रहे एक भाग द्रव्य $\frac{\text{स a १२ –}}{\text{७।ख।१७। गु। ओ ।}\frac{\text{प}}{\text{a}}\text{।}\frac{\text{प}}{\text{a}}}$ को उदयावली में देना चाहिए। पल्य का भागहारभूत असंख्यात संख्या बड़ी होने से दो पल्य[1] और अपकर्षण भागहार से भाग देने पर भी असंख्यात गुणकारपना संभव है। यहाँ आगे सर्वत्र पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया एक भाग द्रव्य उदयावली में दिया जाता है। उसके बाद मिथ्यात्वप्रकृति के पल्य के असंख्यात बहुभागमात्र आयामयुक्त बहुत स्थितिकांडक व्यतीत होने पर चरम कांडक की चरम फालि के पतन के समय मिथ्यात्व के उच्छिष्टावलिमात्र निषेक शेष रहते हैं । अन्य सर्वकांडक का द्रव्य सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप से परिणत हुआ। आवलिमात्र निषेक प्रत्येक समय में दो समय शेष रहने तक गलते जाते हैं ।।१२१–१२२।।

विशेषार्थ–दूरापकृष्टि से नीचे असंख्यात गुणहानि–गर्भित संख्यात हजार स्थितिकाण्डकघात होने पर भी जब तक मिथ्यात्व का अंतिम स्थितिकाण्डक प्राप्त नहीं होता, इस अंतराल में सम्यक्त्व के असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा प्रारंभ हो जाती है। यहाँ से पूर्व सर्वत्र असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभाग के अनुसार उदययोग्य सब कर्मों की उदीरणा होती थी परन्तु यहाँ से पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण प्रतिभाग के अनुसार सम्यक्त्व की उदीरणा प्रवृत्त हुई, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। अपकर्षित होने वाले सकल द्रव्य में पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने द्रव्य को उदयावली के बाहर गुणश्रेणि में निक्षिप्त करता है तथा गुणश्रेणि के भी असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य की, जो कि असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण

१) संस्कृत टीका में दो पल्य लिखा है उसके स्थानपर दो पल्यके असंख्यातवें भाग ऐसा होना चाहिए।

होता है, उसकी समय-समय में उदीरणा करता हैं। पुन: इसके आगे हजारों स्थितिकाण्डकों के व्यतीत होने पर मिथ्यात्व की उच्छिष्टावलि को छोड़कर उसके शेष समस्त स्थितिसत्कर्म को घात के लिए ग्रहण करता है। यह उक्त दोनों गाथाओं का तात्पर्य है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीव ही क्रम से मिथ्यात्व आदि तीनों प्रकृतियों का क्षय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि बनता है। अत: जो जीव मिथ्यात्वप्रकृति की क्षपणा करते समय मिथ्यात्वप्रकृति के संख्यात हजार स्थितिकाण्डकों का घात करते हुए उसकी उच्छिष्टावलिमात्र स्थिति शेष रखने के सन्मुख होता है तब उसके मध्यकाल में प्रतिसमय सम्यक्त्वप्रकृति के असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा कैसे होती है, इसी तथ्य का स्पष्टीकरण प्रकृत में करते हुए यह बतलाया गया है कि सम्यक्त्वप्रकृति के द्रव्य में जितने द्रव्य का अपकर्षण होता है उसमें से बहुभागप्रमाण द्रव्य का तो गुणश्रेणि के ऊपर के निषेकों में निक्षेप करता है। जो शेष एक भाग रहता है उसमें से बहुभागप्रमाण द्रव्य का गुणश्रेणि में निक्षेप करता है तथा शेष एकभागप्रमाण द्रव्य को उदयावली में देता है। यहाँ जो शेष एकभागप्रमाण द्रव्य उदयावली में दिया गया है वह भी असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। यहाँ से आगे सर्वत्र पल्य का असंख्यातवाँ भागप्रमाण भागहार जानना चाहिए।

जत्थ असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तत्तो।
पल्लासंखेज्जदिमो हारो णासंखलोगमिदो[1] ।।१२३।।

यत्रासंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा तत:।
पल्यासंख्येयो हारो नासंख्यलोकमित: ।।१२३।।

यस्मिन्नवसरे असंख्येयानां समयप्रबद्धानां उदीरणा उपरितनस्थितिस्थितानामुदयावलिप्रवेशो भवति तत्समयादारभ्य उत्तरकाले पल्यासंख्यातभागमात्र एव उदयावलिनिक्षेपार्थ: भागहारो नासंख्यातलोकप्रमित:।। १२३ ।।

अन्वयार्थ- **(जत्थ)** जहाँ **(असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा)** असंख्यात समय-प्रबद्धों की उदीरणा शुरु हुई **(तत्तो)** वहाँ **(पल्लासंखेज्जदिमो)** पल्य का असंख्यातवाँ भाग **(हारो)** भागहार है। **(असंखलोगमिदो)** असंख्यात लोकप्रमाण **(ण)** नहीं है।

टीकार्थ- जिस समय असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा अर्थात् उपरितन स्थिति में स्थित कर्म निषेकों का उदयावली में प्रवेश होता है उस समय से उत्तर काल में पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र ही उदयावली में निक्षेपण करने के लिए भागहार है, असंख्यातलोक प्रमाण नहीं है। ।।१२३।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ४९।

मिच्छुच्छिट्ठादुवरिं पल्लासंखेज्जभागिगे खंडे।
संखेज्जे समतीदे मिस्सुच्छिट्ठं हवे णियमा[१]।।१२४।।
मिथ्योच्छिष्टादुपरि पल्यासंख्येयभागगे खण्डे।
संख्येये समतीते मिश्रोच्छिष्टं भवेन्नियमात् ।।१२४।।

यस्मिन् समये मिथ्यात्वप्रकृतेरुच्छिष्टावलिमात्रमवशिष्यते शेषा सर्वापि स्थितिर्बहुभिः स्थितिकाण्डकैः खण्डिता भवति, तस्मात्समयादारभ्य सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृत्योः स्थितौ पल्यासंख्यातभागबहुभागायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकेषु गतेषु चरमकाण्डकचरमफालिपतनसमये मिश्रप्रकृतेरुच्छिष्टावलिमात्रमवशिष्यते ।।१२४।।

अन्वयार्थ– **(मिच्छुच्छिट्ठादुवरिं)** मिथ्यात्व की स्थिति उच्छिष्टावली शेष रहने के बाद **(पल्लासंखेज्जभागिगे)** पल्य का असंख्यात बहुभाग आयामयुक्त **(संखेज्जे)** संख्यात **(खंडे समतीदे)** खंड व्यतीत होने पर **(णियमा)** नियम से **(मिस्सुच्छिट्ठं)** मिश्र की उच्छिष्टावलि **(हवे)** रहती है।

टीकार्थ– जिस समय में मिथ्यात्व की उच्छिष्टावलिमात्र शेष रहती है, बाकी की स्थिति बहुत स्थितिकांडकों के द्वारा खंडित होती है उस समय से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति की स्थिति में पल्य के असंख्यातवें भाग का बहुभागमात्र आयामयुक्त संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर चरम कांडक की अंतिम फालि के पतनसमय में मिश्रप्रकृति की उच्छिष्टावलि मात्र शेष रहती है ।।१२४।।

विशेषार्थ– पहले मिथ्यात्व की उच्छिष्टावलि को छोड़कर जिस विधि से उसकी क्षपणा का विधान कर आये हैं उसी विधि से सम्यग्मिथ्यात्व की क्षपणा का विधान जानना चाहिए। यह भी प्रकृत में उदय–प्रकृति न होने से अन्त में इसकी भी उच्छिष्टावलि को छोड़कर शेष की क्षपणा स्थितिकाण्डकघात के क्रम से हो जाती है तथा उच्छिष्टावलिप्रमाण निषेकों का स्तिबुक संक्रमण द्वारा सम्यक्त्वप्रकृति में संक्रमण होकर अभाव हो जाता है । मिथ्यात्व की उच्छिष्टावलि का भी इसी विधि से अभाव होता है।

मिस्सुच्छिट्ठे समये पल्लासंखेज्जभागिगे खंडे ।
चरिमे पडिदे चेट्ठदि सम्मस्सडवस्सठिदिसत्तो[२] ।।१२५।।
मिश्रोच्छिष्टे समये पल्यासंख्येयभागगे खण्डे ।
चरमे पतिते चेष्टते सम्यक्त्वस्याष्टवर्षस्थितिसत्त्वम् ।।१२५।।

यस्मिन् समये मिश्रप्रकृतेश्चरमकाण्डकचरमफालिपतने आवलिमात्रस्थितिरवशिष्यते तस्मिन्नेव समये सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितौ पल्यासंख्यातभागबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकेषु गतेषु चरमकाण्डकचरमफालिपतने अष्टवर्षमात्रस्थितिसत्त्वमवशिष्य तिष्ठति।।१२५।।

---
१) जयध. पु. १३, पृ. ५३। ध. पु. ६, पृ. २५८।   २) जयध. पु. १३, पृ. ५४.

अन्वयार्थ– **(मिस्सुच्छिट्ठे समये)** मिश्र की उच्छिष्टावलि रहती है उस समय में **(पल्लासंखेज्जभागिगे)** पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र आयामयुक्त **(चरिमे खंडे पडिदे)** अंतिमखंड का पतन होने पर **(सम्मस्स)** सम्यक्त्व का **(अडवस्सठिदिसत्तो)** आठ वर्षमात्र स्थितिसत्त्व **(चेट्ठदि)** रहता है ।।१२५।।

टीकार्थ– जिस समय में मिश्रप्रकृति के चरम कांडक की चरम फालि के पतन–समय में आवलिमात्र स्थिति शेष रहती है उस समय में सम्यक्त्वप्रकृति की स्थिति में पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र आयामयुक्त संख्यात हजार स्थितिकांडक होने पर चरम कांडक की चरम फालि का पतन होनेपर आठ वर्ष मात्र स्थितिसत्त्व शेष रहता है ।

विशेषार्थ– जिस समय सम्यग्मिथ्यात्व की उच्छिष्टावलिप्रमाण स्थिति शेष रहती है उस समय सम्यक्त्व की सत्त्वस्थिति कितनी शेष रहती है इस प्रश्न का समाधान करते हुए चूर्णिसूत्रों में बतलाया गया है कि इस विषय में दो उपदेश पाये जाते हैं– अप्रवाह्यमान उपदेश के अनुसार सम्यक्त्व की संख्यात हजार वर्षप्रमाण सत्त्वस्थिति शेष रहती है और प्रवाह्यमान उपदेश के अनुसार आठ वर्ष प्रमाण सत्त्वस्थिति शेष रहती है। यह दूसरा मत सर्व आचार्य सम्मत है तथा जो आर्यमंक्षु और नागहस्ति महावाचकों के मुखकमल से निकला है वह प्रकृत में प्रवाह्यमान उपदेश है और इसके अतिरिक्त दूसरा अप्रवाह्यमान उपदेश है। आगे प्रवाह्यमान उपदेश के अनुसार व्याख्यान किया गया है। इतना स्पष्ट समझना चाहिए।

मिच्छस्स चरिमफालिं मिस्से मिस्सस्स चरिमफालिं तु।
संछुहदि हु सम्मत्ते ताहे तेसिं च वरदव्वं[1]।।१२६।।
मिथ्यात्वस्य चरमफालिं मिश्रे मिश्रस्य चरमफालिं तु।
संक्रामति हि सम्यक्त्वे तस्मिन् तेषां च वरद्रव्यं।।१२६।।

मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितौ पल्यासंख्यातभागबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु चरमकाण्डकचरमफालिं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतौ निक्षिपति। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितौ पल्यासंख्यातभागबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकेषु गतेषु चरमकाण्डकचरमफालिं सम्यक्त्वप्रकृतौ निक्षिपति। तस्मिन् चरमफालिपतनसमये तयोर्मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योर्द्रव्यमुत्कृष्टं भवति।।१२६।।

अन्वयार्थ– जिस समय **(मिच्छस्स चरमफालिं)** मिथ्यात्व की अंतिम फालि **(मिस्से)** मिश्र में और **(मिस्सस्स चरमफालिं तु)** मिश्र की अंतिमफालि **(सम्मत्ते)** सम्यक्त्व

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ५५.

में **(संछुहदि)** संक्रमित करता है **(ताहे)** उस समय **(तेसिं च)** उन दोनों का (मिश्र–प्रकृति और सम्यक्त्वप्रकृति का) **(वरदव्वं)** उत्कृष्ट द्रव्य होता है ।।१२६।।

टीकार्थ– मिथ्यात्वप्रकृति की स्थिति में पल्य के असंख्यातवें भाग का बहुभागमात्र आयामयुक्त संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर चरमकांडक की चरमफालि का सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति में निक्षेपण करता है। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति की स्थिति में पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र आयामयुक्त संख्यातहजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर चरमकांडक की चरमफालि को सम्यक्त्वप्रकृति में निक्षेपण करता है। उस चरमफालि के पतन–समय में मिश्र व सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य उत्कृष्ट होता है । ।।१२६।।

विशेषार्थ– यहाँ मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के अंतिम स्थितिकांडक की अंतिम–फालि का पतन किसका किसमें होता है। यह नियम करते हुए यह बतलाया गया है कि मिथ्यात्व की अंतिमफालि का पतन सम्यग्मिथ्यात्व में और सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिमफालि का पतन सम्यक्त्व–प्रकृति में होता है। पहले ऐसा नियम नहीं था, इसलिए यहाँ यह नियम किया गया है।

जदि होदि गुणिदकम्मो दव्वमणुक्कस्समण्णहा तेसिं।
अवरठिदी मिच्छदुगे उच्छिट्ठे समयदुगसेसे।।१२७।।
यदि भवति गुणितकर्मा द्रव्यमनुत्कृष्टमन्यथा तेषाम्।
अवरस्थितिर्मिथ्यात्वद्विके उच्छिष्टे समयद्विकशेषे।।१२७।।

अयं दर्शनमोहक्षपक आत्मा यदि गुणितकर्मांश: उत्कृष्टयोगादिसामग्रीवशेन उत्कृष्टकर्म–सञ्चयवान् भवति तदा तयोर्द्रव्यमुत्कृष्टं भवतीति सम्बन्ध; अन्यथा यद्युत्कृष्टसञ्चयवान्न भवति तदा तयोर्द्रव्यमनुत्कृष्टं भवति। मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्योरुच्छिष्टावल्यां समयद्विके शेषे सति जघन्यस्थितिर्भवति। उदयावलिचरमनिषेको भवतीत्यर्थ: ।।१२७।।

अन्वयार्थ– (जदि) यदि **(गुणिदकम्मो)** गुणितकर्मांशवाला **(होदि)** हो तो (उसका उत्कृष्ट द्रव्य होता है ऐसा पीछे की गाथा से संदर्भ लेना चाहिए) **(अण्णहा)** अन्यथा अर्थात् गुणितकर्मांशवाला न हो तो **(तेसिं)** उस मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का **(दव्वं अणुक्कसं)** द्रव्य अनुत्कृष्ट होता है। **(मिच्छदुगे उच्छिट्ठे समयदुगसेसे)** मिथ्यात्व व मिश्रप्रकृति की उच्छिष्टावलि में दो समय शेष रहने पर **(अवरठिदी)** जघन्य स्थिति होती है । वहाँ उदयावली में अंतिम निषेकमात्र सत्त्व रहता है।

टीकार्थ– यह दर्शनमोह का क्षय करने वाला जीव यदि गुणितकर्मांशवाला अर्थात् उत्कृष्ट योगादि सामग्री के द्वारा उत्कृष्ट कर्म का संचययुक्त होता है तब मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य उत्कृष्ट होता है ऐसा पीछे की गाथा से संबंध है । अन्यथा यदि उत्कृष्ट संचययुक्त

न हो तो उन दोनों प्रकृतियों का द्रव्य अनुत्कृष्ट होता है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व–प्रकृति की उच्छिष्टावलि में दो समय शेष रहने पर जघन्य स्थिति होती है। वहाँ उदयावली का अंतिम निषेकमात्र सत्त्व रहता है।

विशेषार्थ– जो निरन्तर गुणितकर्मांशिक विधि से कर्मस्थिति के काल तक मिथ्यात्व का बन्ध कर सातवें नरक में दूसरी बार यथाविधि उत्पन्न होकर भवस्थिति के अंतिम समय में मिथ्यात्व का उत्कृष्ट संचय कर क्रम से तिर्यञ्च पर्याय में उत्पन्न हुआ और वहाँ से यथाविधि अतिशीघ्र कर्मभूमिज मनुष्य होकर क्रम से वेदकसम्यक्त्व पूर्वक दर्शनमोहनीय की क्षपणा करने लगा उसके क्रम से मिथ्यात्व के अंतिम काण्डक की अंतिम फालि के सम्यग्मिथ्यात्व में और सम्यग्मिथ्यात्व के अंतिम कांडक की अंतिमफालि के सम्यक्त्व में उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होने पर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का यथाक्रम उत्कृष्ट प्रदेश संचय होता है।

मिस्सदुगचरिमफाली किंचूणदिवड्ढसमयपबद्धपमा।
गुणसेढिं करिय तदो असंखभागेण पुव्वं व[1]।।१२८।।

मिश्रद्विकचरमफालिः किञ्चिदूनद्व्यर्धसमयप्रबद्धप्रमा।
गुणश्रेणिं कृत्वा ततोऽसंख्यभागेन पूर्वं वा।।१२८।।

मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योश्चरमफलिद्वयद्रव्यं किञ्चिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणं वा । तथाहि सम्यग्मिथ्यात्वद्रव्यमिदं [स a १२–a / ७।ख।१७।गु।a] अस्मिन् मिथ्यात्वद्रव्ये [स a १२–गु।a / ७।ख।१७।गु।a] संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकगुणसंक्रमविधानेनोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकान् वर्जयित्वा निक्षिप्ते सम्यग्मिथ्यात्वद्रव्यमियद्भवति [स a १२– / ७ । ख । १७] अत्रापि संख्यातसहस्रस्थितिकाण्डकगुणसंक्रमविधानेन चरमकाण्डकचरम–फालिं विहाय इतरकाण्डकद्रव्यं सर्वं सर्वद्रव्यासंख्यातैकभागमात्रं [स a १२– / ७ । ख । १७ । a] सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्ये [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु] स्वस्याष्टवर्षस्थितेरुपरि चरमकाण्डकचरम–फालिद्रव्यं मुक्त्वा इतरसर्वकाण्डकद्रव्यमपि गुण–संक्रमकालद्विचरमसमयपर्यन्तं निक्षिप्य तच्चरमसमये मिश्रचरमफालिद्रव्यं [स a १२–a / ७।ख।१७।a] सम्यक्त्वचरमफालिद्रव्यं [स a १२–a / ७।ख।१७।गु।a] एतद्द्रव्यद्वये मिलिते एवं [स a १२– / ७ । ख । १७] इदं सर्वं मनस्यवधार्याचार्यैः मिस्सदुग चरिमफाली किंचूणदिवड्ढसमयपवद्धपमा इत्युक्तम्। अस्माच्चरमफालिद्वयद्रव्यात्पल्यासंख्यातैकभागं

---

१) ध. पु. ६ पृ. २५९। जयध. पु. १३, पृ. ६४।

(स a १२– / ७ । ख । १७ । प a) **गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृतेरवशिष्टाष्टवर्षमात्रस्थितौ उदयावलिप्रथमसमया– दारभ्य प्रागारब्धगलितावशेषगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तं प्रतिनिषेकमसंख्यात गुणितक्रमेण निक्षिप्य तदनन्तरोपरितनैकसमयेऽप्यसंख्यातगुणम्। इतः प्रभृत्यवस्थितगुणश्रेणिप्रतिज्ञानात्। पुनस्तद्बहुभाग– द्रव्यमिदं** (स a १२– प a / ७ । ख । १७ । प a) ।।१२८।।

अन्वयार्थ– (मिस्सदुगचरिमफाली) मिश्रद्विक अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्-प्रकृति की अंतिम फालि का द्रव्य **(किंचूणदिवड्ढसमयपबद्धपमा)** कुछ कम डेढ़ गुणहानि– गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है। **(पुव्वं व)** पूर्व के समान **(तदो)** उस अंतिम फालि के द्रव्य में **(असंखभागेण)** पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एकभाग **(गुणसेढिं करिय)** उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी करके उसमें देता है।।।१२८।।

टीकार्थ– मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति इन दोनों चरमफालि का द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण है। उसका खुलासा पूर्व में विभाग किए सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य ऐसा (स a १२–a / ७।ख।१७।गु।a) है। इसमें मिथ्यात्व के द्रव्य का स्थितिकांडक व गुणसंक्रमण (स a १२– गु। a / ७।ख।१७।गु।a, गु के ऊपर १, a के ऊपर १) संख्यात हजार विधान द्वारा उच्छिष्टावलिमात्र निषेकों को छोड़कर निक्षेपण करने पर सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य इतना होता है। (स a १२– / ७ । ख । १७) (कुछ कम डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण) यहाँ भी संख्यात हजार स्थितिकांडक और गुणसंक्रम विधान के द्वारा चरमकांडक की चरमफालि छोड़कर अन्य कांडक का सर्वद्रव्य सर्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र है। सम्यक्त्वप्रकृति के द्रव्य में (स a १२ – / ७ । ख । १७ । गु) स्वयं के आठ वर्ष स्थिति के ऊपर अंतिम कांडक की अंतिम फालि को छोड़कर अन्य सर्व कांडकों का द्रव्य भी गुणसंक्रमकाल के द्विचरम समय तक निक्षेपण करके उस अंतिम समय में मिश्र की अंतिम फालि का द्रव्य और (अंतिम फालि को छोड़कर अन्य फालि का द्रव्य सर्व कांडक द्रव्य का असंख्यातवाँ भाग है और अंतिम फालि का द्रव्य असंख्यात बहुभागमात्र है इसलिए बहुभाग द्रव्य ग्रहण करने के लिए असंख्यात से भाग देकर एक कम असंख्यात से गुणा किया) सम्यक्त्व की चरमफालि का द्रव्य (स a १२–a / ७ । ख । १७ । a)

ये दोनों द्रव्य मिलकर इतना होता (स a १२–a / ७।ख।१७।गु।a) है। (मिश्रप्रकृति के द्रव्य के समान समझें) (स a १२– / ७ । ख । १७) यह सब मनमें रखकर आचार्य ने मिश्रद्विक की चरमफालि का द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित

समयप्रबद्ध प्रमाण होता है ऐसा कहा है। इन दो चरम फालि द्रव्य से पल्य का असंख्यातवाँ भाग द्रव्य

स a १२–
७ । ख । १७ । प
a

ग्रहण करके सम्यक्त्व प्रकृति की शेष रही आठ वर्ष मात्र स्थिति में उदयावलि के प्रथम समय से आरम्भ करके पूर्व में आरम्भ की गई गलितावशेष गुणश्रेणी तक प्रतिनिषेक में असंख्यात गुणित क्रम से निक्षेपण करके उसके बाद (उपरितन स्थिति के एक समय में भी असंख्यात गुणा देता है क्योंकि यहाँ से आगे अवस्थित गुणश्रेणी कही है। पुन: बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति

स a १२– (१ / प / a)
७ । ख । १७ । प
a

में देता है। यह आगे की गाथा में कहेंगे। चरम दो फालि के द्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर बहुभाग द्रव्य आता है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के द्रव्य की संदृष्टि का खुलासा गाथा क्र. ९० में देखें।) ।।१२८।।

विशेषार्थ– जब तक मिश्र मोहनीय को गुणसंक्रमण द्वारा सम्यक्त्व मोहनीयरूप से परिणमाता है तब तक गुणसंक्रमण काल कहा जाता है। उस गुणसंक्रमणकाल के अंतिम समय में मिश्र मोहनीय के उच्छिष्टावलि मात्र निषेक और सम्यक्त्व मोहनीय के आठ वर्ष मात्र निषेक छोड़कर अन्य सर्व द्रव्य उसकी अंतिम दो फालि का जानना चाहिए। वह कुछ कम डेढ गुणहानिगुणित समयप्रबद्ध है। इससे पूर्व उदयावलि के बाहर गुणश्रेणिआयाम होता था और अब उदय समय से गुणश्रेणिआयाम हुआ इसलिए इसको उदयादि कहते हैं। पूर्व का एक समय व्यतीत होने पर गुणश्रेणिआयाम कम होता था। अब एक समय व्यतीत होने पर उपरितन स्थिति में से एक मिलकर गुणश्रेणिआयाम का प्रमाण जितना है उतना ही रहता है इसलिए उसे अवस्थित कहते हैं। इसप्रकार इसका नाम उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिआयाम है। इसके निषेकों में द्रव्य असंख्यात गुणित क्रम से दिया जाता है। जिस समय मिश्र प्रकृति की उच्छिष्टावलि को छोडकर अंतिम स्थितिकांडक की अंतिम फालि का सम्यक्त्व प्रकृति की आठ वर्षप्रमाण स्थिति में पतन होता है उसी समय सम्यक्त्व प्रकृति के आठ वर्ष प्रमाण स्थितिसत्त्व को छोड़कर उपरितन स्थितिसत्त्वस्वरूप अंतिम कांडक की अंतिम फालि का सम्यक्त्व प्रकृति की आठ वर्ष प्रमाण सत्त्वस्थिति में पतन होता है। उसमें भी इन दोनों फालि के द्रव्य में अपकर्षण–उत्कर्षण भागहार से असंख्यातगुणा ऐसा पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आता है उसको पूर्व के समान गुणश्रेणी करके गुणसंक्रमण विधि से निक्षिप्त करना चाहिए अर्थात् उदयस्थिति में सबसे स्तोक द्रव्य को निक्षिप्त करें। उससे उपरितन स्थिति में असंख्यात गुणे द्रव्य को निक्षिप्त करें। इस विधि से गुणश्रेणि शीर्ष के प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे द्रव्य को निक्षिप्त करें। इन दोनों फालियों में संचित द्रव्य डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है। इसे टीका में स्पष्ट किया है।

सेसं विसेसहीणं अडवस्सुवरिमठिदीए संछुद्धे।
वरमाउलिंगसरिसी रयणा संजायदे एत्तो।।१२९।।

शेषं विशेषहीनमष्टवर्षस्योपरिमस्थित्यां संक्षिप्ते।
वरमातुलिङ्गसदृशी रचना सञ्जायतेऽतः।।१२९।।

'सेसं विसेसहीणमित्यादि गुणश्रेण्यायामान्तर्मुहूर्तकालन्यूनाष्टवर्षमात्रोपरितनस्थितौ 'अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदे' इत्यादिविधानेनानीतं प्रथमनिषेकद्रव्यं इदमुपरितनप्रथमस्थितिप्रथमसमये निक्षिपेत्। पुनर्द्वितीयादि-समयेष्वष्टवर्षचरमसमयपर्यन्तं एकादृशविशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्।

स a १२ –। १६
७। ख । १७ । व८–१६–व ८
२

एवं निक्षिप्ते गुणश्रेणिचरमसमयद्रव्यात्तदनन्तरोपरितनस्थितिप्रथमसमयद्रव्यमसंख्यातगुणितं भवति, पल्यासंख्यातबहुभागद्रव्यस्य तत्र निक्षेपात् ।।१२९।।

अन्वयार्थ– (सेसं) शेष बहुभाग द्रव्य **(अडवस्सुवरिमठिदीए)** अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष मात्र उपरितन स्थिति में **(विसेसहीणं)** विशेषहीन क्रम से **(संछुद्दे)** देने पर **(एत्तो)** यहाँ से आगे **(वरमाउलिंगसरिसी)** उत्कृष्ट मातुलिंग के समान **(रयणा)** रचना **(संजायदे)** उत्पन्न होती है।।१२९।।

टीकार्थ–'सेसं विसेसहीणमित्यादि' गुणश्रेणी आयामप्रमाण अंतर्मुहूर्त काल से कम आठ वर्ष मात्र उपरितन स्थिति में **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे'** इत्यादि विधि से लाया हुआ प्रथम निषेक का द्रव्य

स a १२ –। १६
७। ख । १७ । व८–१६–व ८
२

इसका स्पष्टीकरण – यहाँ पूर्वोक्त चरम द्वय फालि के द्रव्य का बहुभाग सर्वधन है। बहुभाग में पल्य का असंख्यातवाँ भाग भागहार व एक कम पल्य का असंख्यातवाँ भागरूप गुणकार का अपवर्तन किया। अवशेष रहा सर्वधन

स a १२ –
७ । ख । १७

यह है। यहाँ पद का प्रमाण कुछ कम ८ वर्ष है। उसकी संदृष्टि व ८–

$\frac{\text{सर्वधन}}{\text{पद}}$ = मध्यमधन

स a १२ –
७। ख । १७ । व८–

यह मध्यमधन होता है। इसमें एक कम पद के अर्ध से न्यून निषेकहार से भाग देने पर चय आता है।

$\frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \frac{(\text{गच्छ}-१)}{२}}$ = चय

स a १२ –
७। ख । १७ । व८–१६–व ८
२

चय को दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम निषेक आता है।

चय x दो गुणहानि = प्रथम निषेक

स a १२ –। १६
७। ख । १७ । व८–१६–व ८
२

(दो गुणहानि की संदृष्टि १६ है)

यह द्रव्य उपरितन स्थिति के प्रथम समय में निक्षेपण करें। पुन: द्वितीयादि समयों में आठ वर्ष के अंतिम समय तक विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करें । इस प्रकार से निक्षेपण करने पर गुणश्रेणी के चरम समय के द्रव्य से उसके पश्चात् उपरितन स्थिति के प्रथम समय का द्रव्य असंख्यात गुणित होता है क्योंकि वहाँ पल्य का असंख्यात बहुभाग द्रव्य का निक्षेपण किया है। (उपरितन स्थिति केवल ८ वर्ष प्रमाण ही है और द्रव्य ज्यादा है इसलिए प्रथम निषेक में द्रव्य ज्यादा मिलता है)।।१२९।।

मातुलिंग सदृश रचना

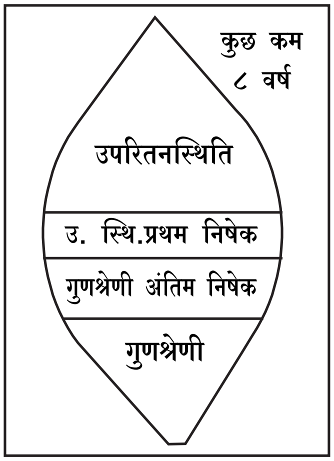

विशेषार्थ– अंतर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण उपरितन स्थिति में बहुभागप्रमाण द्रव्य का निक्षेप किस विधि से होता है? यह गाथा में कहा है। यहाँ से प्रत्येक समय में गुणश्रेणीशीर्ष के अंतिम निषेक में जितना द्रव्य निक्षिप्त होता है उससे असंख्यातगुणित द्रव्य उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में निक्षिप्त होता है और आगे चयहीन क्रम से निक्षिप्त होता है इसलिए यहाँ उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि की रचना प्रारम्भ करता है। इस रचना को ही गाथा में मातुलिंग के समान कहा है। मातुलिंग अर्थात् यह एक फल है। यह फल गोल, लंबा और नुकीला होता है। उदयादि गुणश्रेणी और उपरितन स्थिति की रचना इस फल के समान दिखती है।

अडवस्सादो उवरिं उदयादिअवट्ठिदं च गुणसेढी।
अंतोमुहुत्तियं ठिदिखंडं च य होदि सम्मस्स[१]।।१३०।।

अष्टवर्षादुपर्युदयाद्यवस्थितं च गुणश्रेणी।
अन्तर्मुहूर्तिकं स्थितिखण्डं च च भवति सम्यक्त्वस्य।।१३०।।

सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षमात्रस्थितिकरणसमयादूर्ध्वमपि न केवलमष्टवर्षमात्रस्थितिकरणसमय एवोदयाद्यवस्थितगुणश्रेणिरित्यर्थ:, सम्यक्त्वप्रकृतेरन्तर्मुहूर्तायामं स्थितिखण्डं भवति ।।१३०।।

अन्वयार्थ– (अडवस्सादो उवरिं) आठ वर्ष स्थिति करने के समय से आगे सभी समयों में **(उदयादिअवट्ठिदं च गुणसेढी)** उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम है। **(च य)** और **(सम्मस्स)** सम्यक्त्व प्रकृति का **(अंतोमुहुत्तियं)** अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयामयुक्त **(ठिदिखंडं)** स्थितिकाण्डक **(होदि)** होता है ।।१३०।।

टीकार्थ– सम्यक्त्व प्रकृति की केवल आठ वर्षमात्र स्थिति करने के समय में ही नहीं, किन्तु आठ वर्षमात्र स्थिति करने के समय के अनन्तर आगे भी उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी होती है और सम्यक्त्व प्रकृति का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयामयुक्त स्थितिकांडक होता है ।।१३०।।

विदियावलिस्स पढमे पढमस्संते च आदिमणिसेये।
तिट्ठाणेणंतगुणेणूणकमोवट्टणं चरमे।।१३१।।

द्वितीयावले: प्रथमे प्रथमस्यान्ते चादिमनिषेके।
त्रिस्थानेऽनन्तगुणेनोनक्रमापवर्तनं चरमे।।१३१।।

यस्मिन् समये सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षमात्रस्थितिमवशेषयन् चरमकाण्डकचरम-फालिद्वयं पातयति तस्मिन्नेव समये सम्यक्त्वप्रकृत्यनुभागसत्त्वमतीतानन्तरसमयनिषेकानुभाग-सत्त्वादनन्तगुणहीनमवशिष्यते । तद्यथा –

सम्यक्त्वप्रकृतेश्चरमकाण्डकद्विचरमफालिद्वयपतनपर्यन्तं लतादारुसमद्विस्थानानुभागसत्त्वं काण्डकघातवशेनानन्तगुणहीनमायातम् । पुनश्चरमफालिद्वयपतनसमये अनन्तगुणहान्यापकृष्य लतासमानैकस्थानं सम्यक्त्वप्रकृत्यनुभागसत्त्वमजनिष्ट इत: प्रभृत्यन्तर्मुहूर्तकालसाध्योऽनुभागकाण्डक-घातो नास्ति किन्तु प्रतिसमयमनन्तगुणहान्यानुभागापवर्तनं प्रवर्तते । अतीतानन्तरसमयनिषेकानुभागसत्त्वा ९ ना दिदानीमष्टवर्षावशेषकरणप्रथमसमये उदयावल्युपरितनावलिप्रथमनिषेकानुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनं

९ ना / ख इदमवशिष्टम्। शेषा बहुभागाः ९ ना ख / ख अपवर्तिताः खण्डिताः । तदानीन्तनविशुद्धि-विशेषमाहात्म्याद्विनाशिता इत्यर्थः। तथा तस्मिन्नेव समये द्वितीयावलिप्रथम-निषेकानुभागसत्त्वादुदयावलिचरमनिषेकानुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनमवशिष्यते ९ ना / ख ख

शेषास्तद्बहुभागाः अपवर्तिताः ९ ना ख ख / ख ख तथा तस्मिन्नेव समये उदयावलिचरमनिषेका-नुभागसत्त्वात्तत्प्रथमनिषेकानु-भागसत्त्वमनन्तगुणहीनमवशिष्यते ९ ना / ख ख ख

शेषास्तद्बहुभागा अपवर्तिताः ९ ना ख ख ख / ख ख ख एवमनन्तगुणहीनमनुभागापवर्तनमष्टवर्ष-द्वितीयादिसमयेष्वपि प्रतिसमय-मनन्तगुणहीनक्रमेणाष्टवर्षस्थितौ चरमे समयाधिकावलिं यावन्न प्राप्नोति तावज्ज्ञातव्यं। उच्छिष्टचरमावल्यां तु अतीतानन्तरसमय-निषेकानुभागसत्त्वादुदयावलिप्रथमनिषेकानुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनं, तस्मात्तदनन्तरसमये उदयनिषेकानुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनम्। एवं प्रतिसमयमनन्तगुणहीनक्रमेणोच्छिष्टावलिचरमसमय-पर्यन्तमनुभागापवर्तनं ज्ञातव्यम्।।१३१।।

अन्वयार्थ– (विदियावलिस्स पढमे) द्वितीयावलि के प्रथम निषेक में, **(पढमस्संते)** प्रथम आवलि के (उदयावलि के) अंतिम निषेक में **(च आदिमणिसेये)** और प्रथम निषेक में **(तिट्ठाणे)** इन तीन स्थानों में **(णंतगुणेणूणकमोवट्टणं)** क्रम से अनन्तगुणा कम अनुभाग का अपवर्तन **(चरमे)** अंतिम उच्छिष्टावलि तक होता है अर्थात् द्वितीयावलि के प्रथम निषेक

का पूर्व अनन्तर समयवर्ती निषेक के अनुभागसत्त्व की अपेक्षा अनन्तगुणा हीन अनुभागसत्त्व रहता है। उस समय में उस द्वितीयावलि के प्रथम निषेक के अनुभागसत्त्व से उदयावलि के अंतिम निषेक में अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा हीन होता है। उससे उदयावलि के प्रथम निषेक में अनन्तगुणा हीन अनुभागसत्त्व रहता है।।१३१।।

टीकार्थ– जिस समय में सम्यक्त्व प्रकृति की आठ वर्षमात्र स्थिति शेष रखकर अंतिमकांडक की चरम दो फालि के द्रव्य का निक्षेपण करता है उस समय में सम्यक्त्व प्रकृति का अनुभाग सत्त्व पूर्व के अनन्तर समयवर्ती निषेक के अनुभाग सत्त्व से अनंतगुणा हीन शेष रहता है। उसका स्पष्टीकरण–

सम्यक्त्वप्रकृति के चरम कांडक की द्विचरम दोनों फालि के (सम्यक्त्व और मिश्र इन दो फालि के) पतन होने तक लता दारु समान द्विस्थानीय अनुभागसत्त्व कांडकघात से अनन्तगुणा हीन होता है। पुन: चरम दो फालियों के पतन के समय अनन्तगुणी हानि से कृश करके सम्यक्त्वप्रकृति का लता समान एकस्थानीय अनुभागसत्त्व हुआ। यहाँ से आगे अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा साध्य अनुभागकांडक घात नहीं होता है परन्तु प्रत्येक समय में अनन्तगुणहानि से अनुभाग का अपवर्तन होता है। पूर्व अनन्तर समय में निषेक के अनुभाग सत्त्व से **९ ना** (९ स्पर्धक की संदृष्टि; ना = नाना गुणहानि। स्पर्धक के प्रमाण में नाना गुणहानि से गुणा करने पर सर्व अनुभागसत्त्व निकलता है।) अब आठ वर्षमात्र स्थिति अवशेष करने के प्रथम समय में उदयावलि के ऊपर आवलि के प्रथम निषेक का अनुभाग सत्त्व अनन्तगुणा हीन १ ⌂ शेष रहा। (ख अर्थात् अनन्त उससे पूर्व अनुभाग सत्त्व में भाग दिया) शेष **९ ना / ख** बहुभाग प्रमाण अनुभाग **९ ना ख / ख** खंडित हुआ। (बहुभाग निकालने के लिए एक भाग में एक कम अनन्त से गुणा किया) उस समय की विशुद्धि के माहात्म्य से नष्ट किया। उसी प्रकार उसी समय में द्वितीयावलि के प्रथम निषेक के अनुभागसत्त्व से उदयावलि के चरम निषेक का अनुभाग सत्त्व अनन्तगुणा हीन शेष रहता है। **९ ना / ख ख** शेष बहुभाग **९ ना ख ख / ख ख** खंडित हुआ। उसी प्रकार उसी समय में उदयावलि के चरम निषेक के अनुभाग सत्त्व से उसके प्रथम निषेक का अनुभाग सत्त्व अनन्तगुणा हीन शेष रहता है। **९ ना / ख ख ख** पूर्व से अनन्तगुणा हीन दिखाने के लिए पुन: एक बार अनन्त से (ख) भाग दिया। उसका शेष बहुभाग **९ ना ख ख ख / ख ख ख** खंडित हुआ। इस प्रकार अनन्तगुणा हीन अनुभाग का अपवर्तन आठ वर्ष स्थिति करने के दूसरे आदि समयों में भी प्रत्येक समय में अनन्तगुणित क्रम से आठ वर्ष स्थिति में अंत में एक समय अधिक आवली प्राप्त होने तक जानना चाहिए। परन्तु शेष रहे चरमावलि में पूर्व के अनन्तर समय संबंधी निषेक के अनुभागसत्त्व से उदयावलि के प्रथम निषेक का अनुभाग–

सत्त्व अनन्तगुणा कम होता है। उससे उसके अनन्तर समय में उदय निषेक का अनुभाग-सत्त्व अनन्तगुणा कम होता है। इस प्रकार प्रत्येक समय में अनन्तगुणा हीन क्रम से उच्छिष्टावलि के चरम समय पर्यन्त अनुभाग का अपवर्तन जानना चाहिए ।।१३१।।

विशेषार्थ– जहाँ सम्यक्त्व का आठ वर्ष प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है वहाँ से लेकर उसके अनुभाग का प्रत्येक समय में अपवर्तन होने लगता है। क्रम यह है कि अनन्तर पूर्व समय में जो द्विस्थानीय अनुभागसत्त्व था उससे वर्तमान समय में उदयावलि से उपरितन स्थिति में अनन्तगुणा हीन एक स्थानीय अनुभाग सत्त्व हो जाता है। उससे उदयावलि के अंतिम निषेक में अनन्तगुणा हीन एक स्थानीय अनुभाग सत्त्व हो जाता है और इसी क्रम से उत्तरोत्तर कम होता हुआ उदयस्थिति में अनन्तगुणा हीन एक स्थानीय अनुभाग सत्त्व हो जाता है। आशय यह है कि सम्यक्त्व का आठ वर्ष प्रमाण स्थितिसत्त्व रहने के पूर्व प्रत्येक अनुभाग काण्डक का अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त काल में घात करता था। अब प्रत्येक समय में सम्यक्त्व के अनुभाग का अनन्तगुणी हानिरूप से अपवर्तन करता है। उनमें भी पहले जो लता-दारुरूप द्विस्थानीय अनुभागसत्त्व था उसका प्रत्येक समय में लतारूप एक स्थानीय अनुभाग रूप से अपवर्तन करने लगता है। इसी तथ्य को समग्र रूप से इस प्रकार जानना चाहिए कि अनन्तर पूर्व समय में जो अनुभाग सत्त्व था उससे वर्तमान समय में उदयावलि के बाहर स्थित अनुभागसत्त्व प्रति समय अनन्तगुणा हीन होने लगता है तथा इस उदयावलि के बाहर स्थित अनुभागसत्कर्म से उदयावलि में अनुप्रविशमान अनुभाग सत्कर्म अनन्तगुणाहीन होता है और उससे भी उदय समय में प्रविशमान अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा हीन होता है। यह क्रम दर्शनमोहनीय के क्षय होने में एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने तक जानना चाहिए। उसके बाद आवलिमात्र काल तक उदय में प्रविशमान अनुभागसत्त्व की अनुसमय अपवर्तना होती है।

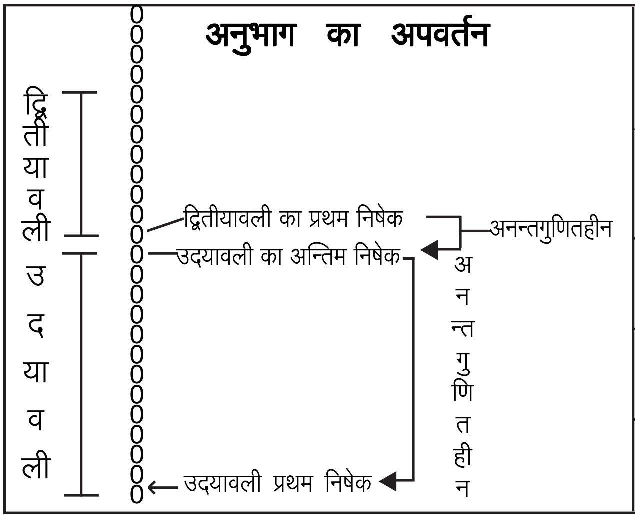

शेष अनुभागसत्त्व एक भाग	अपवर्तित हुआ अनुभागसत्त्व बहुभाग
९ ना ख	९ ना ख ख
९ ना ख ख	९ ना ख ख ख ख
0 0 0 मध्यम निषेक	0 0 0
९ ना ख ख ख	९ ना ख ख ख ख ख ख

अडवस्से उवरिम्मि वि दुचरिमखंडस्स चरिमफालि त्ति।
संखातीदगुणक्कम विसेसहीणक्कमं देदि।।१३२।।

अष्टवर्षादुपर्यपि द्विचरमखण्डस्य चरमफालिपर्यन्तम्।
संख्यातीतगुणक्रमं विशेषहीनक्रमं दत्ते।।१३२।।

यथा मिश्रद्विकचरमफालिद्रव्यं सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितेरष्टवर्षमात्रावशेषकरणसमये उदयसमयाद्यवस्थितगुणश्रेण्यायामे प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणान्तर्मुहूर्तोनाष्टवर्षमात्रोपरितन-स्थितौ च विशेषहीनक्रमेण निक्षिप्तं तथोपर्यपि प्रथमकाण्डकप्रथमफालिपतनसमयात्प्रभृतिद्विचरम-काण्डकचरमफालिपतनसमयपर्यन्तं उदयाद्यवस्थितगुणश्रेण्यायामे प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेणा-न्तर्मुहूर्तोनाष्टवर्षमात्रोपरितनस्थितौ च विशेषोनक्रमेणापकृष्टद्रव्यं फालिद्रव्यं च निक्षेप्तव्यम्।

अन्वयार्थ– **(अडवस्से उवरिम्मि वि)** आठ वर्ष स्थिति करने के बाद भी **(दुचरिमखंडस्स)** द्विचरम कांडक की **(चरिमफालि त्ति)** चरमफालि के पतन होने तक (उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम में) **(संखातीदगुणक्कम)** असंख्यात गुणित क्रम से और (उपरितन स्थिति में) **(विसेसहीणक्कमं)** विशेष (चय) हीनक्रम से द्रव्य **(देदि)** देता है ।।१३२।।

टीकार्थ– जैसे मिश्रद्विक अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति की चरम फालि का द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृति की स्थिति आठ वर्ष मात्र शेष रखने के समय में उदय समय से अवस्थित गुणश्रेणि आयाम में प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से व अंतर्मुहूर्त कम आठ वर्ष मात्र उपरितन स्थिति में विशेषहीन क्रम से निक्षिप्त करता है, उसके समान आगे भी प्रथम कांडक की प्रथम फालि के पतन समय से द्विचरम कांडक की चरमफालि के पतन समय तक उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम के प्रत्येक निषेक में असंख्यातगुणित क्रम से व अंतर्मुहूर्त कम आठ वर्ष मात्र उपरितन स्थिति में विशेषहीन क्रम से अपकृष्टद्रव्य और फालिद्रव्य का निक्षेपण करना चाहिए।।१३२।।

विशेषार्थ– सम्यक्त्व का स्थितिसत्त्व आठ वर्ष प्रमाण शेष होने के समय से लेकर द्विचरमकांडक के पतन के अंतिम समय तक प्रत्येक स्थितिकांडक के द्रव्य का फालि क्रम से देने का विधान सम्यग्मिथ्यात्व की अंतिम फालि के साथ सम्यक्त्व के पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण अंतिमकांडक की अंतिम फालि के द्रव्य को सम्यक्त्व की आठ वर्ष प्रमाण सत्त्वकर्म में निक्षिप्त करता हुआ यह जीव उदय में सबसे कम कर्मपुंज को देता है। उससे ऊपर की स्थिति में असंख्यातगुणित प्रदेश-पुंज को निक्षिप्त करता है। इसप्रकार पूर्व के गुणश्रेणिशीर्ष को प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थिति में उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित प्रदेशपुंज को निक्षिप्त करता हुआ उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में असंख्यातगुणित प्रदेशपुंज को निक्षिप्त करता है। उसके बाद शेष रहे बहुभागप्रमाण द्रव्य को अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष की उपरितन स्थिति में चयहीन क्रम से निक्षिप्त करता है। यहाँ से अवस्थित गुणश्रेणि प्रारम्भ होती है। इसके समान द्वितीयादि समयों में द्रव्य देने का विधान जानना चाहिए।

अब यहाँ स्पष्ट अर्थ जानने के लिए आठ वर्ष करने के पूर्व समय में, आठ वर्ष करने के समय में और आगे के समय में होनेवाला विधान कहते हैं –

अडवस्से संपहियं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं।
उवरिं पुण संपहियं असंखसंखं च भागं तु।।१३३।।

अष्टवर्षे साम्प्रतिकं पूर्वस्मादसंख्यसंगुणितं।
उपरि पुनः साम्प्रतिकमसंख्यसंख्यं च भागं तु।।१३३।।

सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितेरष्टवर्षावशेषकरणसमयात्प्राक्तनानन्तरसमये मिश्रसम्यक्त्वप्रकृति–द्विचरमफालिपतनयोग्ये सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यमिदं [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु] **यद्यपि गुणसंक्रम–कालप्रथमसमयादारभ्य तत्कालचरमसमयपर्यन्तं प्रति–समयमसंख्यात–गुणितक्रमेण गुणसंक्रमद्रव्यमायाति** [स a १२– a / ७ । ख । १७ । गु] **तथापि गुणसंक्रमसामान्यविवक्षया सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यं लिखितं** [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु] **इदं 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनेन विधानेन उदयप्रथमनिषेका–दारभ्य विशेषहीनक्रमेण नानागुण–हानिषु विद्यते इति तथान्यासीकुर्यात्–**

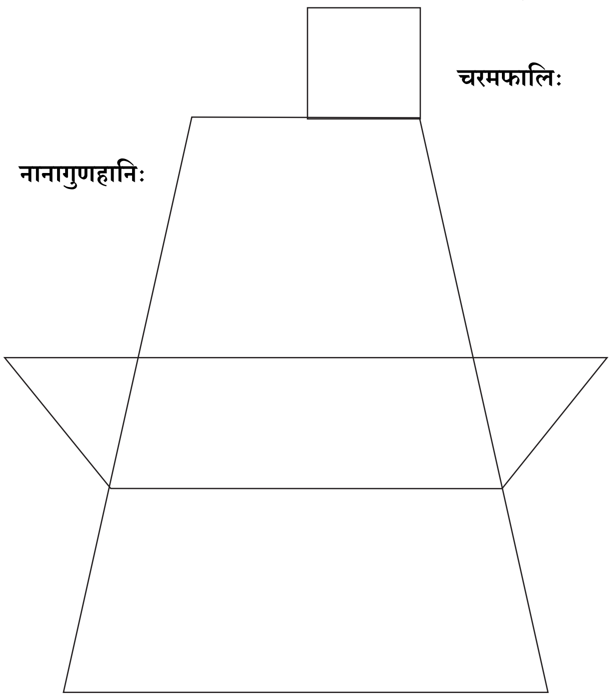

स a १२–। १६– व $\overset{1}{}\,\overline{८}$
७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

०
०
०
०

स a १२–। १६–
७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

स a १२–। १६–
७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

०
०

स a १२–। १६–१
७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

स a १२–। १६
७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

अस्मिन् सत्त्वद्रव्ये तत्कालापकृष्टद्रव्यमिदं

स a १२–
७ । ख । १७ । गु । ओ
a

पल्यासंख्यातभागेन – खण्डयित्वा तद्बहुभागं

स a १२– प
a
७ । ख । १७। गु। ओ । प
a a

'उपरितनस्थितौ दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे' इत्यादि–विधानेनापकृष्टस्याधोऽतिस्थापनावलिं मुक्त्वा विशेषहीनक्रमेण दद्यात्। पुनस्तदेकभागं

स a १२–
७ । ख । १७। गु। ओ । प
a a

पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं गुणश्रेण्यां दद्यात्।

स a १२– प
a
७ । ख । १७। गु। ओ । प । प
a a a

अवशिष्टैकभागं उदयावल्यां दद्यात्।

स a १२–
७ । ख । १७। गु। ओ । प । प
a a a

तन्निक्षेपन्यासोयम्–

स a १२–। १६– व ८
७ । ख । १७ । गु । ओ । १२ । १६
a

१

उपरितनस्थितिः

स a १२–। १६
७ । ख । १७ । गु । ओ । १२ । १६
a

स a १२–।६४
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । ८५
a a

गुणश्रेणिः

स a १२–।१
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । ८५
a a

स a १२–। १६– ४
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प । ४ । १६–४
a a a २

उदयावलिः

स a १२–। १६
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प । ४ । १६–४
a a a २

अनेन गुणश्रेणिद्रव्येण सहितं सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यं दृश्यमित्युच्यते, सर्वत्र तत्काला–पकृष्टद्रव्यमुदयप्रथमसमयात्प्रभृति निक्षिप्यमाणं दीयमानं तेन सहितं सर्वसत्त्वद्रव्यं दृश्यमानमिति राद्धांतवचनात्। एवं निक्षिप्ते दृश्यमानन्यासोऽयं। तद्यथा –

उदयावल्यां दत्तद्रव्यं प्राक्तनसत्त्वद्रव्यस्यासंख्यातैकभागमात्रमिति तेन सत्त्वद्रव्यं साधिकं भवति। इदानीं गुणश्रेण्यां दत्तद्रव्यं प्राक्तनसत्त्वद्रव्यादसंख्यातगुणम् गुणश्रेणिद्रव्यस्यापकर्षणभागहारसद्भावात् सत्त्वद्रव्यासंख्यातैकभागमात्रत्वदर्शनात् ।कथं ततोऽसंख्यातगुणितं गुणश्रेणिद्रव्यमिति चेत्, पल्ये प्रविष्टासंख्यातभागहारबाहुल्यसामर्थ्यादिति ब्रूमः। अतः कारणात् गुणश्रेण्यायाममात्रसत्त्वनिषेकानिदानीं गुणश्रेण्यां निक्षिप्यमाननिषेकेष्वधिकं कुर्यात्। पुनरुपरितनस्थितौ गुणश्रेणिकरणेन निक्षिप्तं द्रव्यं तत्स्थितौ प्राक्तनसत्त्वद्रव्यस्यासंख्यातैकभागमिति सत्त्वद्रव्ये इदानीं निक्षिप्तद्रव्यमधिकं कुर्यात् । सत्त्वद्रव्यमपेक्ष्यापकृष्टद्रव्यस्यापकर्षणभागहारसद्भावात् इदानीं निक्षिप्तद्रव्यं तदसंख्यातभागमात्रं सिद्धम्। अत्र ऋणधनयोर्विवरणमुच्यते–

उपरितनस्थितौ प्राक्तनसत्त्वप्रथमनिषेके ऋणमिदं

स a १२–।
७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

तदा निक्षेप्यद्रव्यमात्रं धनमिदं

स a १२–। १६
७ । ख । १७ । गु । ओ । १२ । १६ a

तत्कालापकर्षणभागहारेण ऋणद्रव्यं समच्छेदीकृत्य द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धस्य गुणकारभूतासंख्यातरूपाणि धनद्रव्यस्य गुणकारभूतद्विगुणगुणहान्यामपनयेत्। अवशिष्टधनमिदं–

स a १२ –। १६–a
७ । ख । १७ । गु । ओ । १२ । १६ a

प्राक्तनोपरितनस्थितिसत्त्वप्रथमनिषेकेऽधिकं कुर्यात्। एवं कृते उपरितनस्थितिदृश्यप्रथमनिषेक ईदृक् भवति–

स a १२ –। १६
७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

एवमुपरितनस्थितौ द्वितीयादिसत्त्वनिषेकेषु तत्कालापकृष्टनिक्षेपद्वितीयादिनिषेकान् ऋणधनविवरणावशिष्टान् प्रक्षिपेत्। एवं प्रक्षिप्ते द्वितीयादिदृश्यनिषेकाः प्रथमादिदृश्यनिषेकेभ्य एकैकचयहीना अवतिष्ठन्ते। एवं कृते मिश्रद्विकचरमफालिपतनयोग्ये गुणसंक्रमणकालचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिसर्वदृश्यद्रव्यन्यासोयं–

तन्निक्षेपन्यासोयम्–

उपरितनस्थितिः	गुणश्रेणिः
स a १२–। १६– व ८– ७ । ख । १७ । गु । १२ । १६	स a १२–। ६४ ७ । ख । १७ । गु । ओ । प । ८५ a a
० ० ०	० ०
स a १२–। १६ ७ । ख । १७ । गु । १२ । १६	स a १२–। १ ७ । ख । १७ । गु । ओ । प । ८५ a a

स a १२–। १६– ४ ७ । ख । १७ । गु । १२ । १६
उदयावलिः ० ० ०
स a १२–। १६ ७ । ख । १७ । गु । १२ । १६

तदनन्तरसमये मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिचरमफालिद्रव्यद्रव्यमष्टवर्षसमयावस्थितनिषेकप्रमाणेन प्रागुक्तसम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वेन स a १२ – / ७ । ख । १७ । गु एतावता न्यूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रप्रथम–समयप्रबद्धप्रमाणम् । 'मिस्सदुग' इत्यादिगाथाव्याख्यानोक्तविधा–नेन उदयाद्यवस्थितगुणश्रेण्यामुपरितनस्थितौ चान्तर्मुहूर्तोनाष्टवर्षप्रमितायां निक्षिपेत्। पुनस्तदनन्तरसमये सर्वस्मात्सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यादस्मादपकृष्टैकभागं स a १२ – / ७ । ख । १७ । गु । ओ पल्यासंख्यातैक भागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयप्रथमसमया–दारभ्यातीता–नन्तरचरमफालिगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तं प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य तदुपरितनस्थिति–प्रथमनिषेकेऽप्यसंख्यातगुणितमेव निक्षिपेत्। मिश्रद्विकचरमफालिपतनसमयादारभ्य सम्यक्त्व–प्रकृतिद्विचरमकांडकचरमफालिपतनपर्यन्तमुदयाद्यवस्थितगुणश्रेणिप्रतिज्ञानात् । शेषबहुभागं

१ ⌒ स a १२ – प a ७ । ख । १७ । गु । ओ । प a

उपरितनस्थितौ 'अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदे' इत्यादिविधानेन विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । तस्मिन्नेव समये प्रथम–काण्डकप्रथमफालिद्रव्यं काण्डकद्रव्यस्याधःप्रवृत्त–भागहारभक्तस्यैकभागमात्रं

स a १२– ७ । ख । १७ । छे a a

इदमपकृष्टद्रव्यस्या

स a १२– ७ । ख । १७ । छे a a a

संख्यातैकभागमात्रमिति मत्त्वापकृष्टद्रव्येऽधिकं कृत्वा निक्षिप्तमिति न पृथग्लिखितम् । एवं सम्यक्त्वप्रकृत्यष्टवर्षमात्रावशेषतृतीयादिसमयेष्वपि प्रथमकाण्डकद्विचरमफालिपतनसमयपर्यन्तं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणापकृष्टद्रव्यं फालिद्रव्यं च तत्कालोदयसमयादारभ्य प्राक्तनानन्तरोपरितनस्थितिप्रथमनिषेकपर्यन्तमवस्थितगुणश्रेणिविधानेन तदुपरितनस्थितौ च विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् ।

पुन: प्रथमकाण्डकचरमफालिद्रव्यमिदम् [१⌒ / स a १२- a / ७ । ख । १७ । a] अस्योत्पत्तिक्रमोऽयम् - अन्तर्मुहूर्तमात्रायामेन यद्येकं स्थिति-काण्डकमाकार्यते लांछ्यते तदाष्टवर्षमात्रायामे कियन्ति स्थितिकाण्डकानि लांछ्यन्ते इति प्र २१। फ १। इ व ८। त्रैराशिकेन स्थितिकाण्डकानि१। एतावद्भि: काण्डकै: यद्येतावद् द्रव्यं निक्षिप्यते तदा एककाण्डकेन कियन्निक्षिप्यते इति

प्र	फ	इ
१ कां	स a १२- / ७ । ख । १७	१ कां

लब्धैककाण्डकद्रव्यं [स a १२- / ७ । ख । १७ । १]

अस्मात् प्रथमादिद्विचरमफालिपर्यन्तमथाप्रवृत्तहारेण प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा निक्षिप्तद्रव्यं काण्डकद्रव्यस्यासंख्यातैकभागमात्रं [स a १२- / ७ । ख । १७ ।१। a] अस्मिन् काण्डकद्रव्यादपनीतेऽवशिष्टबहुभागमात्रं चरमफालि-द्रव्यमुत्पद्यते। एवं सर्वकाण्डकेषु चरमफालिद्रव्यानयनं ज्ञातव्यम्।

तच्च प्रथमकाण्डकचरमफालिद्रव्यं पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभाग-मुदयप्रथमसमयादारभ्य द्विचरमफालिपतनसमयनिक्षिप्तद्रव्योपरितनस्थितिप्रथमनिषेकपर्यन्तमसंख्यात-गुणितक्रमेण निक्षिप्य शेषबहुभागद्रव्यं तदुपरितनस्थितिनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्। एवं भवति 'अडवस्से संपहियं' इत्यादि सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितेरष्टवर्षावशेषकरणसमये पतितमिश्रद्विकचरम-फालिद्रव्यं [स a १२- / ७ । ख । १७] इदं पुव्विलादोऽसंखसंगुणियं प्राक्तनानन्तरसमये द्विचरमफालि-पर्यन्त-मागतगुणसंक्रमद्रव्येण [स a १२ - / ७ । ख । १७ । गु / a] सहितात्सम्यक्त्व-प्रकृतिसत्त्वद्रव्यात् [स a १२ - / ७ । ख । १७ । गु / a] असंख्यातगुणितं यथायोग्यगुणसंक्रमभागहारभक्तात्तद्-भागहाररहितस्यासंख्यातगुणितत्वसम्भवात् 'उवरिं पुण संपहियं' अष्टवर्षद्वितीयसमयादारभ्य प्रथमकाण्डकद्विचरमफालिपतनपर्यन्तमपकृष्टद्रव्यमष्टवर्षप्रथमसमयद्रव्यादसंख्यातगुणहीनं तत्रापकर्षणभागहारसम्भवात्। चरमफालिद्रव्यं तु अष्टवर्षप्रथमसमयद्रव्यात्संख्यातैकभागमात्रं काण्डकसंख्यया संख्यातप्रमितया सर्वद्रव्यस्य विभक्तत्वात्।।१३३।।

अन्वयार्थ- (अडवस्से संपहियं) सम्यक्त्वप्रकृति की आठ वर्ष स्थिति शेष रखने के समय में (मिश्र व सम्यक्त्वप्रकृति के चरम फालिका द्रव्य) **(पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं)** पूर्व समय संबंधी सम्यक्त्व मोहनीय के सत्त्वद्रव्य से असंख्यातगुणा है। उससे **(उवरिं पुण संपहियं)** आठ वर्ष करने के द्वितीय समय से द्विचरम समय तक (अपकर्षित फालिद्रव्य) **(असंख भागं)** असंख्यातवाँ भाग है **(च)** और (अंतिम समय में अपकर्षित फालिद्रव्य) **(संख भागं तु)**संख्यातवाँ भाग है। ।।१३३।।

टीकार्थ– सम्यक्त्व प्रकृति की आठ वर्ष मात्र स्थिति शेष रखने के समय से पूर्व अनन्तर समय में अर्थात् मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति की द्विचरम फालिके पतन योग्य समय में सम्यक्त्व प्रकृति का सत्त्वद्रव्य इतना [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु] है। यद्यपि गुणसंक्रमण काल के प्रथम समय से उस काल के अंतिम समय तक प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से गुणसंक्रम द्रव्य आता [स a १२– a / ७ । ख । १७ । गु] है तो भी गुणसंक्रम सामान्य से सम्यक्त्व प्रकृति का द्रव्य लिखा है। [स a १२– / ७ । ख । १७ । गु] **''दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा''** अर्थात् सर्वद्रव्य में डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर प्रथम निषेक आता है। इस विधान से उदय के प्रथम निषेक से आरम्भ करके विशेषहीन क्रम से नाना गुणहानियों में सत्त्वद्रव्य विद्यमान है। उसी प्रकार रचना करनी चाहिए।

नाना गुणहानियों में स्थित पूर्व सत्त्वद्रव्य की रचना

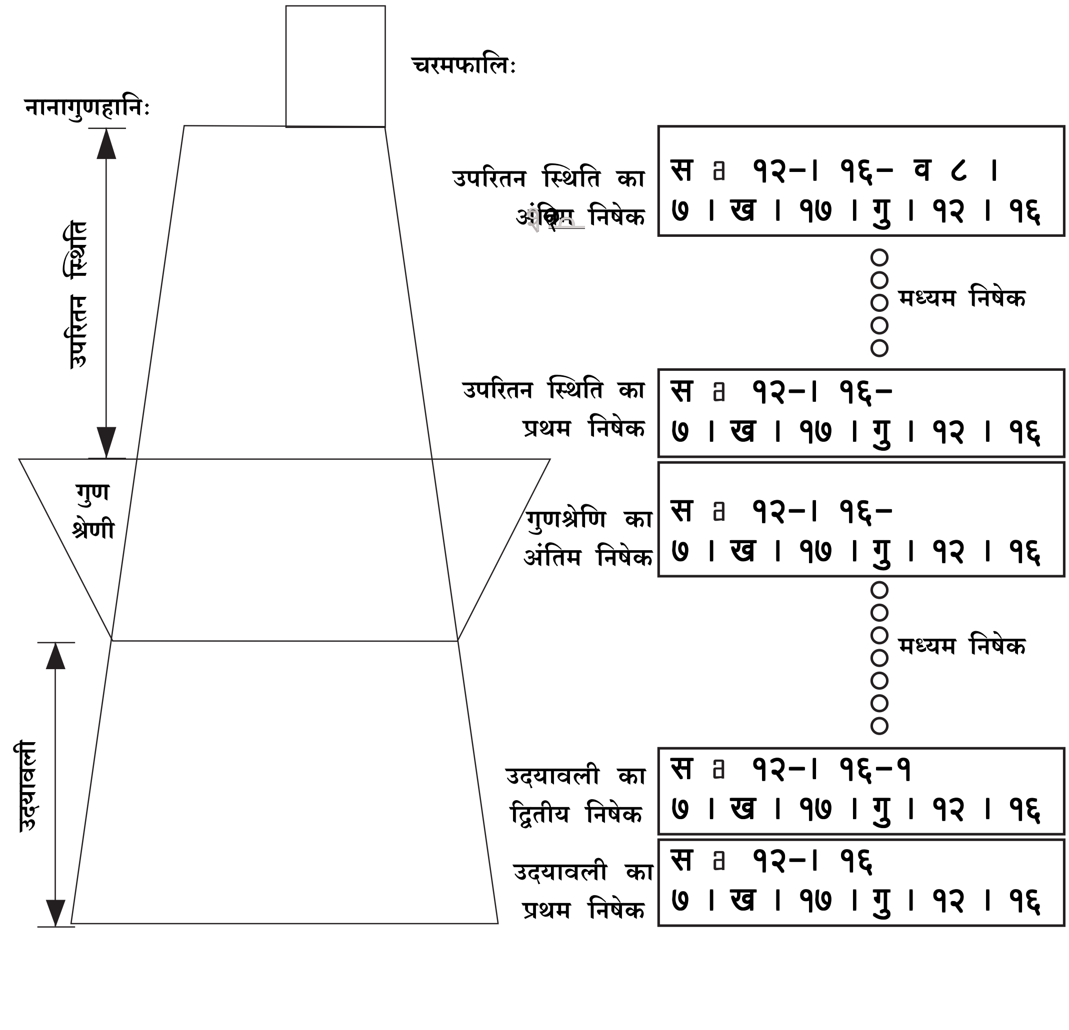

संदृष्टि का स्पष्टीकरण –

$$\text{उदयावली का प्रथम निषेक} = \frac{\text{सर्वद्रव्य x दो गुणहानि}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि x दो गुणहानि}}$$

उदयावली का द्वितीय निषेक = उदयावली का प्रथम निषेक – १ चय

गुणश्रेणी का अंतिम निषेक =उदयावली का प्रथम निषेक – एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण चय

उपरितन स्थिति का प्रथम निषेक = उदयावली का प्रथम निषेक – अन्तर्मुहूर्तप्रमाण चय

उपरितन स्थिति का अंतिम निषेक = उदयावली का प्रथम निषेक – एक समय कम ८ वर्षों के समय प्रमाण चय

विशेष स्पष्टीकरण–

सर्वद्रव्य को साधिक डेढ़ गुणहानि से (१२) भाग देने पर प्रथम निषेक आता है। यहाँ किंचित् अधिक की विवक्षा न करके डेढ़ गुणहानि कहते हैं। चय निकालने के लिए प्रथम निषेक को दो गुणहानि से (१६) भाग दिया। पुन: प्रथम निषेक निकालने के लिए चय को दो गुणहानि से गुणा किया। द्वितीय निषेक में से १ चय कम करने के लिए १६–१ रखा। यहाँ १ अर्थात् चय का प्रमाण जितना है उतना प्रमाण लेना चाहिए। जितनेवें निषेक के द्रव्य का प्रमाण निकालना हो उस निषेक की संख्या में से एक कम करके जो प्रमाण आता है उतने चय प्रथम निषेक में से कम करने पर उस निषेक के द्रव्य का प्रमाण आता है। उदाहरण– १० वें निषेक के द्रव्य का प्रमाण निकालना हो तो प्रथम निषेक के द्रव्य में से ९ चय कम करें। गुणश्रेणि तक का आयाम अंतर्मुहूर्त है। इसलिए गुणश्रेणि के अंतिम निषेक के द्रव्य का प्रमाण निकालने के लिए अंतर्मुहूर्त में से एक कम करके उतने चय प्रथम निषेक में से कम किए। उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का प्रमाण निकालने के लिए अंतर्मुहूर्त प्रमाण अर्थात् अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतने चय प्रथम निषेक में से कम किए। सम्यक्त्वप्रकृति की स्थिति ८ वर्ष प्रमाण शेष रखी है। इसलिए उपरितन स्थिति के अंतिम निषेक के द्रव्य का प्रमाण निकालने के लिए ८ वर्ष–१ अर्थात् ८ वर्ष के जितने समय होते हैं उसमें से एक कम करके उतने चय प्रथम निषेक में से कम किए। यहाँ केवल सत्त्वद्रव्य दिया है, इसलिए उदय समय से उपरितन स्थिति के अंतिम निषेक तक चयहीन क्रम दिखाया है। गुणश्रेणी का आकार गुणितरूप से दिखाया है फिर भी वहाँ पूर्व सत्ता का द्रव्य चयहीन क्रम से है। दीयमान द्रव्य का खुलासा– ऊपर के सत्त्वद्रव्य में से अपकृष्ट द्रव्य यह है। इस द्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति में **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे'** इस

स ａ **१२–** **७ । ख । १७। गु। ओ** ａ

विधान से अंतिम निषेक के नीचे अतिस्थापनावली को छोड़कर विशेष हीन क्रम से देवें। पुनः एकभाग द्रव्य में

स a १२ –
७ । ख । १७। गु। ओ । प
a a

पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर बहुभाग द्रव्य

बहुभागद्रव्य
स a १२ – प
a
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प
a a a

गुणश्रेणी में देवें । शेष रहे एकभाग द्रव्य को उदयावली में देवें ।

एक भागद्रव्य
स a १२ –
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प
a a a

दीयमान द्रव्य की रचना

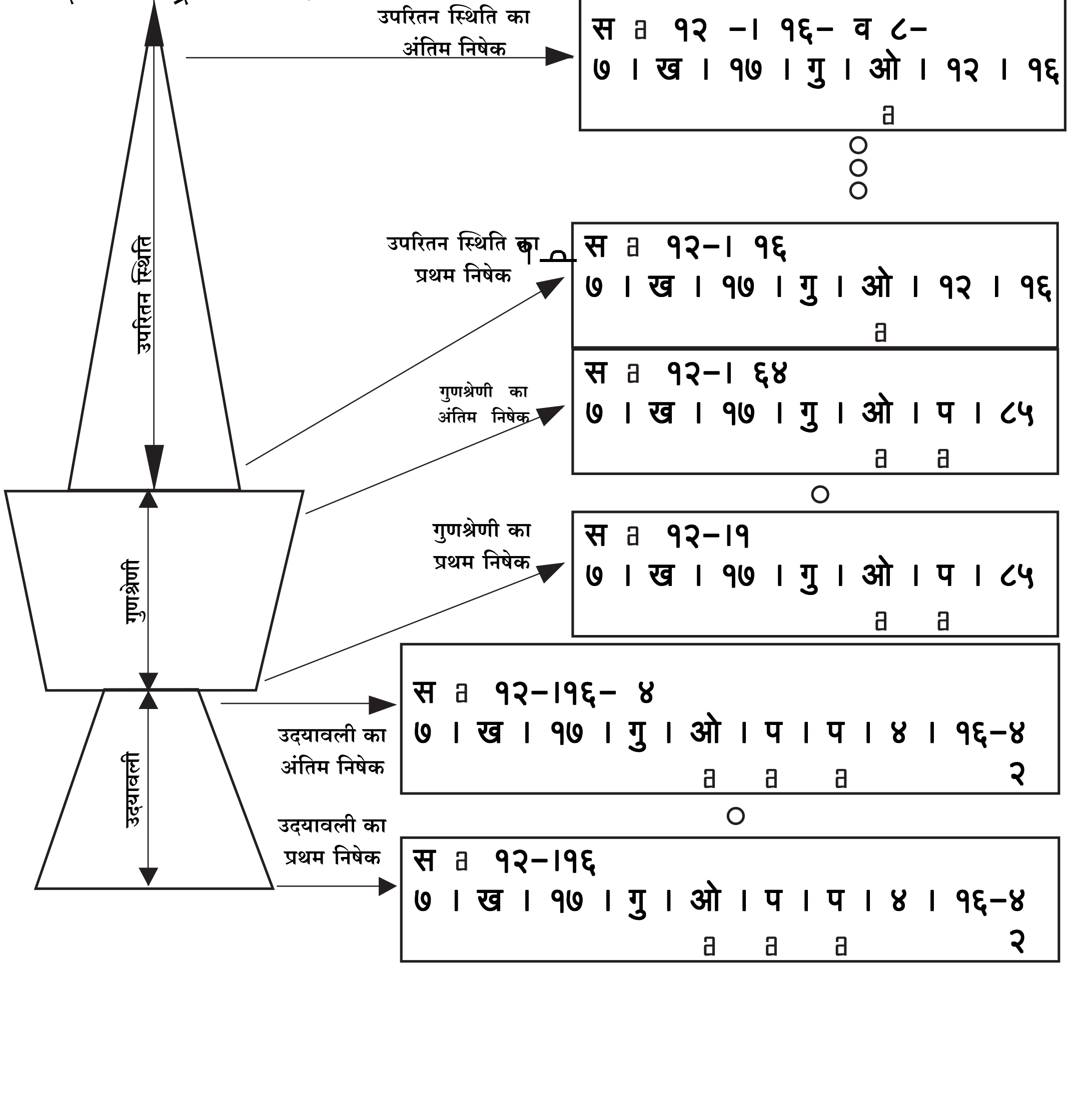

पूर्वोक्त संदृष्टि का खुलासा–

उदयावली के प्रथम निषेक में दिया जाने वाला द्रव्य =

$$\frac{\text{उदयावली में देनेयोग्य द्रव्य}}{\text{आवली}} = \text{मध्यमधन}; \qquad \frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \frac{(\text{गच्छ}-१)}{२}} = \text{चय}$$

चय x दो गुणहानि = प्रथम निषेक में दिया जाने वाला द्रव्य ।

उपर्युक्त सूत्रों में संख्या रखने पर उपर्युक्त संदृष्टियां सिद्ध होती हैं। यहाँ उदयावली में देने योग्य द्रव्य

स a १२–
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प
a a a

इतना है। इसमें आवली की संदृष्टि ४ है। उससे भाग देने पर मध्यमधन आता है। उसमें पुन: एक कम पद के आधे से न्यून निषेकहार से भाग देने पर चय आया। यहाँ एक कम पद के अर्ध की संदृष्टि $\frac{४}{२}$ और निषेकहार की संदृष्टि १६ है। चय में दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम निषेक में दिया जाने वाला द्रव्य आता है –

स a १२–।१६
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प । ४ । १६–$\frac{४}{२}$
a a a

उदयावली के अंतिम निषेक में दिया जाने वाला द्रव्य= प्रथम निषेक – एक कम आवलिप्रमाण चय

स a १२–।१६– ४
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प । ४ । $\frac{१६}{२}$–
a a a

गुणश्रेणि में देने का विधान व उपरितन स्थिति में देने का विधान गाथा क्र. ७३ में जैसा बताया है वैसा जानना चाहिए। यहाँ उपरितन स्थिति कुछ कम ८ वर्ष प्रमाण है। इसलिए उसके अंतिम निषेक में प्रथम निषेक में से एक समय कम कुछ कम ८ वर्ष प्रमाण चय कम करके देना चाहिए। इसलिए अंतिम निषेक की संदृष्टि में [१६–व८–] ऐसा लिखा है। यहाँ अंकसंदृष्टि गाथा क्र. ७१ से ७३ तक के समान समझना चाहिए।

इस गुणश्रेणि के लिए अपकृष्ट किये द्रव्य से सहित सम्यक्त्वप्रकृति के सत्त्वद्रव्य को दृश्यमान कहते हैं क्योंकि सर्वत्र उस काल में अपकृष्ट द्रव्य जो उदय के प्रथम समय से दिया जाता है उस दीयमान द्रव्य से सहित सर्व सत्त्वद्रव्य दृश्यमान है ऐसा सिद्धान्त का वचन है। इसप्रकार निक्षेपण करने पर यह ऊपर की दृश्यमान रचना होती है। उसका स्पष्टीकरण –

उदयावली में दिया गया द्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र है इसलिए वह सत्त्वद्रव्य से कुछ अधिक होता है। अब गुणश्रेणी में दिया गया द्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्य से असंख्यातगुणित है।

प्रश्न – गुणश्रेणि द्रव्य में अपकर्षण भागहार का सद्भाव होने पर गुणश्रेणि द्रव्य सत्त्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र है। तो फिर गुणश्रेणि द्रव्य असंख्यातगुणा कैसे हुआ?

उत्तर – पल्य में प्रविष्ट हुए असंख्यात भागहार के बाहुल्य की सामर्थ्य से असंख्यात- गुणित है ऐसा हम मानते हैं। (गुणश्रेणि का द्रव्य लाने के लिए अपकृष्टद्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग दिया जाता है। पल्य में जिस असंख्यात से भाग दिया वह संख्या बड़ी है इसलिये उस बड़े असंख्यात से भाग देने पर लब्ध संख्या छोटी आती है और उस छोटी संख्या से अपकृष्ट द्रव्य में भाग देने पर एकभाग का प्रमाण अधिक आता है। उदाहरण पल्य १००, अपकृष्ट द्रव्य १०००, असंख्यात २५ माना। १०० ह्न २५ = ४. पल्य का असंख्यातवाँ भाग ४ आया। उससे अपकृष्ट द्रव्य में भाग देने पर १०००ह्न४ = २५०, एक- भाग आया। यदि असंख्यात संख्या छोटी हो तो १००ह्न५ = २० लब्ध बड़ी संख्या में आता है। इस बड़ी संख्या से अपकृष्टद्रव्य में भाग देने पर १०००ह्न२०= ५० एकभाग छोटा आता है। इसलिए यहाँ आचार्यों ने कहा है कि पल्य की भागहारभूत संख्या बड़ी है इसलिए गुणश्रेणि में दीयमान द्रव्य असंख्यातगुणित आया।

इस कारण से गुणश्रेणी का दीयमान द्रव्य सत्त्वद्रव्य से असंख्यात गुणित होने से गुणश्रेणि आयामप्रमाण सत्त्व निषेकों को अब गुणश्रेणि में दिए जानेवाले निषेकों में अधिक करें। पुन: उपरितन स्थिति में गुणश्रेणिकरण के द्वारा दिया गया द्रव्य उस स्थिति में पूर्व सत्त्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भाग है। इसलिए सत्त्वद्रव्य में निक्षेपण किया द्रव्य अधिक करें। सत्त्वद्रव्य की अपेक्षा अपकृष्ट द्रव्य में अपकर्षण भागहार का सद्भाव होने से अब दिया गया द्रव्य सत्त्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र सिद्ध है।

अब ऋण व धन का स्पष्टीकरण करते हैं –

उपरितन स्थिति में पूर्व सत्त्वद्रव्य के प्रथम निषेक में ऋण द्रव्य **स a १२ –
७।ख।१७।गु।१२।१६** यह है। उस समय दिया गया द्रव्यमात्र धन इतना **स a १२–१६
७।ख।१७।गु।ओ।१२।१६
a** (यह अपकृष्ट द्रव्य में से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में दिया गया द्रव्य है) धन द्रव्य में से ऋण द्रव्य कम करने के लिए ऋण द्रव्य में अपकर्षण भागहार से समच्छेद करके

स a १२–।१६ / **७।ख।१७।गु।ओ।१२।१६** – **स a १२ –** / **७।ख।१७।गु।१२।१६।ओ** (ओ/a, a) ऋणद्रव्य में डेढ़ गुणहानि मात्र समयप्रबद्ध का जो गुणकार है **ओ/a** वह असंख्यात है। उस असंख्यात को धनद्रव्य के गुणकारभूत दो गुणहानि में से कम करें। शेष रहा धनद्रव्य

स a १२–।१६–a / **७।ख।१७।गु।ओ।१२।१६** (a)

पूर्व उपरितन स्थितिसत्त्व के प्रथम निषेक में अधिक करें। ऐसा करने पर उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में दृश्यमान द्रव्य ऐसा होता है।

स a १२–।१६ / **७।ख।१७।गु।१२।१६**

इस प्रकार उपरितन स्थिति में द्वितीयादि सत्त्व निषेकों में उस समय अपकृष्ट करके दिये हुए द्वितीयादि निषेकों के धन से उतना ऋण कम करके जो शेष रहा उसको निक्षेपण करें। इस प्रकार निक्षेपण करने पर द्वितीयादि दृश्यमान निषेक प्रथमादि दृश्यमान निषेकों से एक–एक चयहीन स्थित रहते हैं। ऐसा करने पर मिश्रद्विक की चरमफालि पतन योग्य गुणसंक्रमकाल के चरमसमय में सम्यक्त्व प्रकृति के सर्व दृश्यमानद्रव्य की रचना यह है। (दृश्यमानद्रव्य के निक्षेप की रचना अगले पृष्ठ पर है)

उसके बाद के समय में मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति की चरमफालि का द्रव्य आठ वर्ष करने के समय में स्थित निषेक प्रमाण पूर्व में कहे गए सम्यक्त्व प्रकृति के सत्त्व से

स a १२– / **७ । ख । १७ । गु** कम डेढ़गुणहानिमात्र प्रथम समयप्रबद्ध प्रमाण है।

सर्व सम्यक्त्व प्रकृति का सत्त्वद्रव्य–आठ वर्ष के समयमात्र निषेक=चरम फालिद्रव्य

'मिस्सदुग' इत्यादि गाथा में कहे गए विधान से उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि में और अंतर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण उपरितन स्थिति में निक्षेपण करें। पुनः उसके बाद के समय में सर्व सम्यक्त्व प्रकृति के सत्त्वद्रव्य से अपकर्षण किए गए एकभाग

स a १२–।१ / **७ । ख । १७। गु। ओ**

को पल्य के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उसका एक भाग उदय के प्रथम समय से लेकर पूर्व के अनन्तर समय में चरम–फालि के पतनसमय जो गुणश्रेणिशीर्ष था वहाँ तक प्रत्येक निषेक में असंख्यातगुणित क्रम से निक्षेपण करके उसकी उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में भी असंख्यातगुणित निक्षेपण करना चाहिए क्योंकि मिश्रद्विक की चरमफालि के पतनसमय से सम्यक्त्व प्रकृति के द्विचरम कांडक की चरमफालि के पतन तक उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी की प्रतिज्ञा की है। शेष रहा बहुभाग उपरितन स्थिति में 'कालप्रमाण से सर्वधन में भाग देने पर मध्यमधन आता है।' इत्यादि विधान के द्वारा विशेष

सम्यक्त्वप्रकृति के दृश्यमान द्रव्य की रचना–

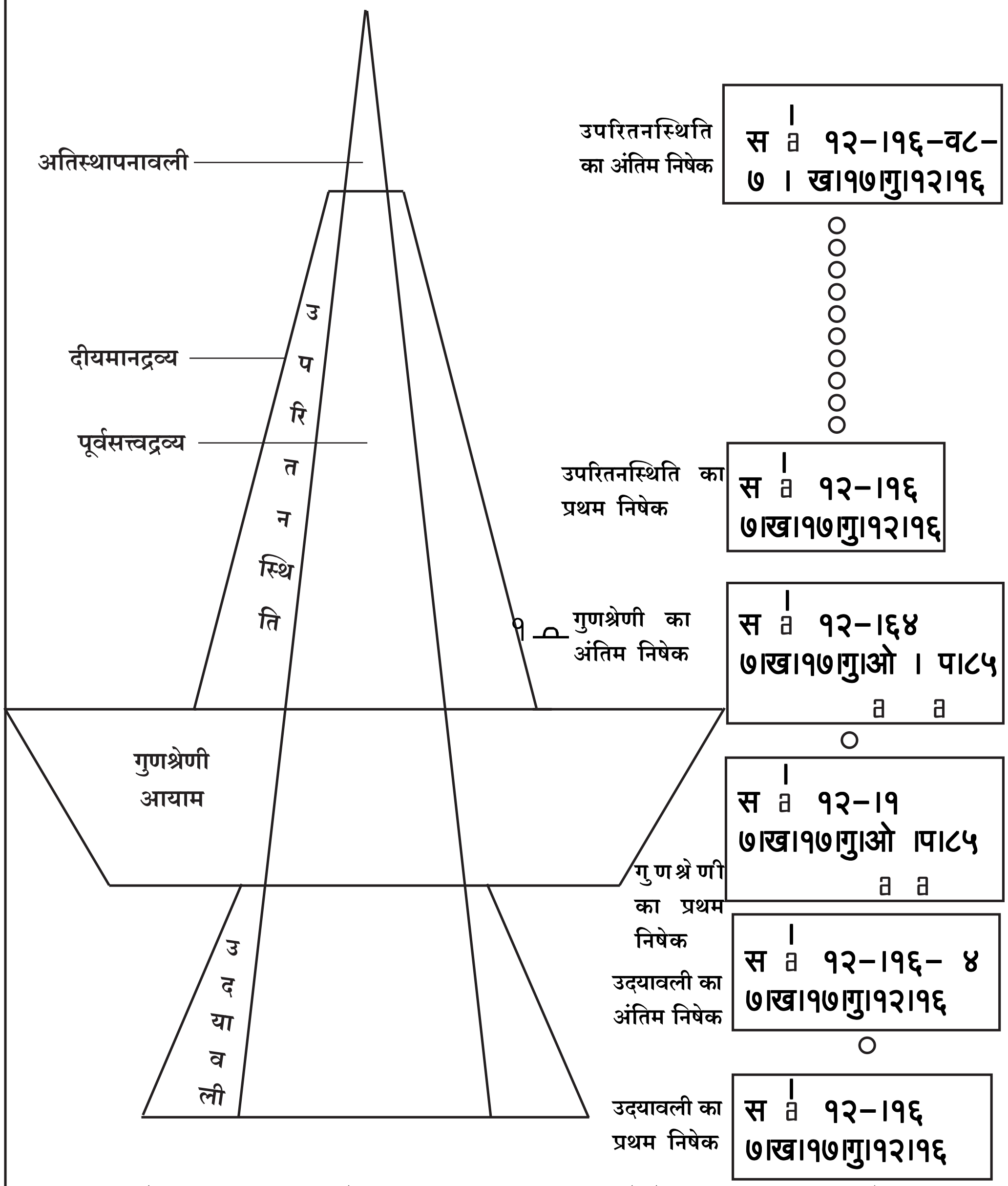

उदयावली और उपरितन स्थिति के दृश्यद्रव्य का प्रमाण दिखाने के लिए पूर्व सत्त्वद्रव्य में दीयमान द्रव्य अधिक किया; क्योंकि सत्त्वद्रव्य से दीयमान द्रव्य कम है। गुणश्रेणि में दीयमान द्रव्य से सत्त्वद्रव्य अधिक किया क्योंकि गुणश्रेणि में सत्त्वद्रव्य से दीयमान द्रव्य अधिक है।

हीन क्रम से निक्षेपण करना उसी समय में प्रथम काण्डक की प्रथम फालि का द्रव्य अध:प्रवृत्तभागहार से भाजित काण्डकद्रव्य का एक भागमात्र है।

स a १२–   ७ । ख । १७। छे   aa

(सम्यक्त्व मोहनीय के द्रव्य में संख्यात का भाग देने पर प्रथम कांडक का द्रव्य आता है। पल्य के अर्धच्छेद में दो बार असंख्यात से भाग देने पर अध:प्रवृत्त भागहार आता है। उस अध:प्रवृत्तभागहार से (छे / aa) प्रथमकांडक के द्रव्य में भाग देने पर प्रथम फालि का द्रव्य आता है) वह अपकर्षण किए द्रव्य का असंख्यातवें भागमात्र है ऐसा मानकर अपकृष्ट द्रव्य में अधिक करके निक्षेपण किया, अलग नहीं लिखा। (अपकृष्टद्रव्य और फालिद्रव्य दोनों द्रव्यों के देने का विधान समान है और फालिद्रव्य अपकृष्ट द्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र है। इसलिए फालिद्रव्य का स्वतन्त्र विवेचन नहीं किया।) इसप्रकार सम्यक्त्व प्रकृति की स्थिति आठ वर्ष शेष रही तब से उसके तीसरे आदि समयों में भी प्रथमकांडक की द्विचरम फालि के पतन समय तक प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से अपकृष्टद्रव्य और फालिद्रव्य, उस काल के उदयसमय से पूर्व के अनन्तर उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक तक अवस्थित गुणश्रेणि विधान द्वारा और उपरितन स्थिति में विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करे।

पुन: प्रथम काण्डक के चरमफालि के द्रव्य

१ ⌓   स a १२–a   ७।ख । १७। ९ ।a

का उत्पत्ति क्रम यह है– अन्तर्मुहूर्त आयाम लेकर जब एक स्थितिकाण्डक लक्षित किया जाता है तब आठ वर्षमात्र आयाम में कितने स्थितिकांडक होते हैं?

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि
२९	१	व ८
अन्तर्मुहूर्त	काण्डक	आठ वर्ष

आठ वर्ष=संख्यात अंतर्मुहूर्त. उसकी संदृष्टि

फल x इच्छा / प्रमाण = लब्ध १ x २९९ / २९ = संख्यात कांडक होते हैं।

इतने कांडकों के द्वारा यदि इतना द्रव्य निक्षेपण किया जाता है तो एक काण्डक के द्वारा कितना द्रव्य निक्षेपण किया जाता है?

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि
९ संख्यात काण्डक	स a १२– ७ । ख । १७	१ काण्डक

फल x इच्छा / प्रमाण = लब्ध

स a १२–   ७ । ख । १७। ९

इस द्रव्य में से प्रथमादि द्विचरम फालिपर्यंत अथाप्रवृत्त भागहार से प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से ग्रहण करके निक्षिप्त किया द्रव्य काण्डकद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र ही है।

स a १२–   ७ । ख ।१७। ९। a

यह द्रव्य पूर्ण काण्डकद्रव्य में से कम करने पर शेष रहा बहुभागमात्र चरमफालि का उपर्युक्त द्रव्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार सर्व काण्डकों में

चरम फालि का द्रव्य जानना चाहिए। उस प्रथम काण्डक के प्रथमफालि का द्रव्य पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित करके उसका एकभाग उदय के प्रथम समय से आरंभ करके द्विचरम फालि के पतन के समय जो उपरितन स्थिति का प्रथम निषेक होता है वहाँ तक असंख्यातगुणित क्रम से निक्षेपण करके शेष रहा बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति के निषेकों में विशेष(चय) हीनक्रम से निक्षेपण करें।

इस प्रकार **'अड्वस्सं संपहिय'** इत्यादि सम्यक्त्व प्रकृति की स्थिति आठ वर्ष शेष रखने के समय में निक्षिप्त हुआ मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति की चरमफालि का द्रव्य यह **'पुव्विल्लादोऽसंखसंगुणियं'** पूर्व अनन्तर समय में द्विचरम फालि तक

स a १२–
७ । ख । १७

आए गुणसंक्रमण द्रव्य से असंख्यातगुणित है। संख्या से भागहार रहित

स a १२ –
७ । ख । १७ । गु
a

सहित सम्यक्त्व प्रकृति के सत्त्वद्रव्य से क्योंकि यथायोग्य गुणसंक्रम भागहार से भाजित संख्या असंख्यात गुणित है यह संभव है। **'उवरिं पुण संपहियं'** अष्टवर्षस्थिति के द्वितीय समय से प्रथम काण्डक के द्विचरम फालि के पतन होने तक अपकृष्ट द्रव्य, अष्ट वर्षकरण के प्रथम समयसंबंधी द्रव्य से असंख्यातगुणित हीन है, क्योंकि वहाँ अपकर्षण भागहार है परन्तु चरमफालि का द्रव्य अष्ट वर्ष के प्रथम समय के द्रव्य से संख्यातवाँ भागमात्र है, क्योंकि संख्यातप्रमाण कांडक संख्यासे सर्वद्रव्य में भाग देकर वह प्रमाण (कुछ कम अंतफालि का द्रव्य) आया है ।।१३३।।

विशेषार्थ – इस गाथा में आठ वर्ष के समयपूर्व के सम्यक्त्वप्रकृति का सत्त्व द्रव्य, आठ वर्ष करने के समय में मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति के चरमफालि का द्रव्य और अष्ट वर्ष करने के बाद के समय से प्रथम कांडक की चरमफालि पर्यन्त सम्यक्त्वप्रकृति का अपकृष्टद्रव्य इनकी तुलना की है। आठ वर्ष करने के पूर्व समयवर्ती सम्यक्त्वप्रकृति के सत्त्वद्रव्य से आठ वर्ष करने के समय में मिश्रद्विक की चरमफालि का द्रव्य असंख्यातगुणित है क्योंकि पूर्व समय में सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य गुणसंक्रमण भागहार से भाजित एक भागमात्र है और मिश्रद्विक की चरमफालि में मिश्र का सर्वद्रव्य और सम्यक्त्वप्रकृति का आठ वर्षमात्र समय संबंधी द्रव्य छोड़कर शेष सर्वद्रव्य है। मिथ्यात्व का सर्वद्रव्य मिश्र में संक्रमित होने से मिश्र का द्रव्य डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है। उसमें से उच्छिष्टावली को छोड़कर सर्वद्रव्य चरमफालि में है।

उदाहरणार्थ – माना कि समयप्रबद्ध का प्रमाण ३१०० और डेढ़ गुणहानि का प्रमाण १२ और सम्यक्त्व प्रकृति का सत्त्वद्रव्य १२०० है।

मिश्र चरमफालि का द्रव्य=कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण ३१००x१२=३७२०० किंचित् कम है इसलिए ३५००० माना।

सम्यक्त्वप्रकृति की चरमफालि का द्रव्य १००० माना। दोनों मिलकर ३६००० हुआ। यह सम्यक्त्वप्रकृति के पूर्व समयसंबंधी सत्त्वद्रव्य १२०० से ३० गुणा है। वास्तविक गणित से असंख्यात

गुणा है। अष्ट वर्ष करने के समय में सम्यक्त्वप्रकृति का पूर्ण द्रव्य ३६२०० हुआ। संख्यात का प्रमाण १० और असंख्यात का प्रमाण २० माना।

३६२००÷१०=३६२० प्रथम कांडक का इतना द्रव्य है। इसमें २० से भाग देने के कारण प्रथम कांडक की द्विचरम फालि तक की प्रत्येक फालि का द्रव्य कांडकद्रव्य का असंख्यातवाँ भाग है इसलिए असंख्यात से भाग दिया। ३६२०÷२०=१८१ इसलिए प्रथमफालि का प्रमाण १८१ और उस समय में अपकृष्टद्रव्य ७२४ माना। दोनों मिलकर ९०५ हुआ। यह अष्ट वर्ष करने के समय संबंधी सम्यक्त्व प्रकृति के ३६२०० द्रव्य की अपेक्षा से ४० वाँ भाग अर्थात् असंख्यातवाँ भाग है।

माना की कुल फालि ५ हैं। ३६२० में से ४ फालियों का द्रव्य १८१x४=७२४ कम हुआ। शेष रहा बहुभाग ३६२०-७२४=२८९६ द्रव्य अंतिम फालि का है। उस समय अपकृष्ट द्रव्य ७२४। दोनों मिलकर ३६२० हुआ। यह प्रथम कांडक की चरमफालि के समय का द्रव्य अष्ट वर्ष करने के समय संबंधी सम्यक्त्व प्रकृति के ३६२०० द्रव्य की अपेक्षा १० वाँ भाग अर्थात् संख्यातवाँ भाग है।

८ वर्षकरण के समय से पूर्व सम्यक्त्व प्रकृति का द्रव्य	८ वर्षकरण के समय में मिश्रद्रव्य फालि का द्रव्य	८ वर्षकरण के अनंतर प्रथम कांडक की द्विचरम फालि तक के प्रत्येक फालि का द्रव्य	८ वर्षकरण के अनंतर प्रथम कांडक की चरम फालि का द्रव्य
१२००	३६०००	९०५	३६२०

ठिदिखंडाणुक्कीरणदुचरिमसमओत्ति चरिमसमये च।
ओक्कट्टिदफालिगददव्वाणि णिसिंचदे जम्हा।।१३४।।

स्थितिखण्डानुत्कीरणद्विचरमसमय इति चरमसमये च।
अपकर्षितफालिगतद्रव्याणि निषिञ्चति यस्मात्।।१३४।।

अष्टवर्षप्रथमसमयद्रव्याद् द्वितीयादिसमयेषु स्थितिकाण्डकोत्करणकालद्विचरमसमय-पर्यन्तेषु अपकृष्टद्रव्यस्यासंख्यातगुणहीनत्वे प्रथमकाण्डकचरमफालिद्रव्यस्य संख्यातगुणहीनत्वे च कारणोपन्यासार्थं सूत्रमिदमागतं तथाहि-

सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षमात्रस्थितेरन्तर्मुहूर्तमात्रायामस्थितिकाण्डकानि अष्टवर्षकरणद्वितीयसमये प्रारब्धानि। तेषां प्रथमादिद्विचरमकाण्डकपर्यन्तानां स्थितिकाण्डकानां प्रत्येकमुत्करणकाल: यथायोग्यान्तर्मुहूर्तमात्र:। तत्प्रथमसमयादारभ्य तद्द्विचरमसमयपर्यन्तं फालिद्रव्यसहितमपकृष्टद्रव्यं निक्षिप्यते। तच्च सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यादपकर्षणभागहारवशात् असंख्यातगुणहीनं जातम्। स्थितिकाण्डकोत्करणकालचरमसमये चरमफालिद्रव्यं सर्वद्रव्यस्य संख्यातैकभागमात्रं दीयते इति हेतो: 'उवरिं पुण संपहियं असंखसंखं च भागं तु' इत्यनन्तरातीतगाथापश्चार्धकथितोऽर्थ; सिद्ध:।।१३४।।

पूर्व गाथा में कहे गए अर्थ का यहाँ कारण कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(जम्हा)** जिस कारण से **(ठिदिखंडाणुक्कीरणदुचरिमसमओत्ति)** स्थितिकाण्डकोत्कीरण काल के द्विचरम समय तक **(ओक्कट्टिदफालिगददव्वाणि)** अपकर्षित फालि द्रव्य के (असंख्यातवें भाग का) **(च)** और **(चरिमेसमये च)** चरम समय में (संख्यातवें भाग का) **(णिसिंचदे)** निक्षेपण करता है उस कारण से पूर्व गाथा में कहा गया अर्थ सिद्ध होता है।।१३४।।

टीकार्थ– आठ वर्ष मात्र स्थिति करने के प्रथम समय के द्रव्य से द्वितीयादि समयों से लेकर स्थितिकाण्डकोत्करण काल के द्विचरमसमय तक अपकृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है और प्रथम काण्डक की चरम फालि का द्रव्य संख्यातगुणा हीन है। उसमें कारण कहने के लिए यह सूत्र है। उसका खुलासा–

सम्यक्त्व प्रकृति के आठ वर्ष मात्र स्थिति के अन्तर्मुहूर्त आयामयुक्त स्थितिकाण्डक आठ वर्ष स्थिति करने के दूसरे समय से शुरु हुए उस प्रथमादि द्विचरम काण्डक तक के स्थितिकाण्डकों का प्रत्येक का उत्कीरणकाल यथायोग्य अन्तर्मुहूर्तमात्र है। उसके पहले समय से द्विचरम समय तक फालिद्रव्यसहित अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपण किया जाता है। वह सम्यक्त्वप्रकृति के सत्त्वद्रव्य से अपकर्षणभागहार के कारण असंख्यातगुणा हीन है। स्थितिकाण्डकोत्करण काल के अंतिम समय में अंतिम फालि का द्रव्य सर्व द्रव्य का संख्यातवाँ भागमात्र दिया जाता है इसलिए आठ वर्ष स्थिति करने के बाद के समय में असंख्यातवाँ भाग और संख्यातवाँ भाग द्रव्य देता है। ऐसा पूर्व की गाथा के उत्तरार्ध में कहा गया अर्थ सिद्ध होता है ।।१३४।।

अडवस्से संपहियं गुणसेढिसीसयं असंखगुणं।
पुव्विल्लादो णियमा उवरि विसेसाहियं दिस्सं।।१३५।।

अष्टवर्षे सांप्रतिकं गुणश्रेणिशीर्षकमसंख्यगुणम्।
पूर्वस्मात् नियमादुपरि विशेषाधिकं दृश्यम् ।।१३५।।

अष्टवर्षकरणप्रथमसमये निक्षिप्तमिश्रद्विकचरमफालिद्रव्यस्योपरितनस्थितिप्रथमनिषेकद्रव्यं दृश्यं

स a १२ –। १६ १
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

इदमस्मिन् प्रस्तावे गुणश्रेणिशीर्षमित्युच्यते। तस्याधस्तनाद् गुणश्रेणिचरमनिषेकाद् रूपोनपल्यासंख्यातगुणकारेण गुणितत्वात् गुणस्य गुणकारस्य श्रेणि: पंक्ति: गुणश्रेणिस्तस्या: शीर्षमग्रमवसानमिति व्युत्पत्त्याश्रयेणोपरितनस्थितिप्रथमनिषेकस्य गुणश्रेणिशीर्षत्वसिद्धे:। इदं पूर्वस्मात् मिश्रद्वयद्विचरमफालिपतनसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यात्

स a १२–।६४
७ । ख ।१७।प।८५
a

असंख्यातगुणमेव नान्यथा । उपर्यष्टवर्षद्वितीयसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यं पूर्वस्मात् अष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्याद् विशेषाधिकमेव

नासंख्यातगुणम्। तद्यथा– अष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यमिदम्।

स a १२ –। १६
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

अस्य द्वितीयसमये आगतं धनमिदम्

स a १२–।६४
७। ख ।१७।ओ ।प।८५
a

अष्टवर्षोपरितनस्थितिद्वितीयनिषेकदृश्यद्रव्यमिदम्

स a १२ –। १६–१
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

तस्य ऋणमेकविशेषमात्रमिदम्–

स a १२–
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

द्वितीयसमये गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यमिदम्

स a १२ –। १६
७। ख।१७।ओ। व८–।१६–व ८–
२

अस्मात् प्राक्तनचयमात्रऋणमसंख्यातगुणहीनं द्विगुणगुण–हानिमात्रगुणकाराभावात्। द्वितीयसमयगुणश्रेणिचरमनिषेकद्रव्यम्

स a १२–।६४
७।ख ।१७।ओ।प।८५
a

इदं वासंख्यातगुणहीनं रूपोनपल्यासंख्यातमात्रगुणकाराभावात्। एतदेकचयमात्रऋणद्रव्यं द्वितीयसमयगुणश्रेणिचरमनिषेकद्रव्यं च तद्गुणश्रेणिशीर्षद्रव्ये किंचिन्न्यूनं कृत्वा द्विगुणगुणहान्या अपकर्षणभागहारमपवर्त्य अवशिष्टा–संख्यातरूपाणि

स a १२ –। a
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

अष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षसमाने निषेके निक्षिपेत्। एवं कृते अष्टवर्षप्रथम–तदनन्तरोपरितन–समयगुणश्रेणि–शीर्षदृश्यद्रव्यात् तद्द्वितीयसमयगुणश्रेणि–शीर्षदृश्यद्रव्यं साधिकमेव भवति–

स a १२ –। १६
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

एवं तृतीयादिसमयेषु गुणश्रेणीशीर्षदृश्यद्रव्यं पूर्व–पूर्वगुणश्रेणिशीर्ष–दृश्यद्रव्यात् साधिकमेव, नान्यथा ।। १३५ ।।

अन्वयार्थ– (अडवस्से संपहियं) सम्यक्त्व प्रकृति की स्थिति ८ वर्ष करने के समय में वर्तमान **(गुणसेढीसीसयं)** गुणश्रेणिशीर्ष का द्रव्य **(पुव्विल्लादो)** पूर्व गुणश्रेणीशीर्ष के द्रव्य से **(णियमा)** नियम से **(असंखगुणं)** असंख्यातगुणा है। **(उवरि)** उसके पश्चात् गुणश्रेणीशीर्ष का **(दिस्सं)** दृश्यमान द्रव्य (अपने–अपने पूर्व गुणश्रेणीशीर्षद्रव्य से) **(विसेसहियं)** विशेष अधिक है।।१३५।।

टीकार्थ– आठ वर्ष करने के समय में मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति की फालि का द्रव्य निक्षिप्त करने पर उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का दृश्यमान द्रव्य यह है

स a १२ –। १६
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

(इस संदृष्टि का खुलासा गाथा क्र. १३३ में है।) इसको इस प्रसंग में गुणश्रेणिशीर्ष कहा है क्योंकि नीचे के गुणश्रेणिशीर्ष के चरम निषेक से उपरितन स्थिति का द्रव्य एक कम पल्य के असंख्यातवें भागरूप गुणकार से गुणित है। गुणकार की पंक्ति को गुणश्रेणी कहते हैं। उस गुणकार की पंक्ति का शीर्ष अर्थात् अंतिम उसको गुणश्रेणि शीर्ष कहते हैं। इस व्युत्पत्ति के आश्रय से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में गुणश्रेणिशीर्षत्व सिद्ध होता है। (उपरितन स्थिति का द्रव्य बहुभागप्रमाण है। बहुभाग निकालने के लिए पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर १ कम पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा किया जाता है। ऊपर के द्रव्य में एक कम को न गिनते हुए १ कम पल्य के असंख्यातवें भाग गुणकार का और पल्य के असंख्यातवें भागरूप भागहार का अपवर्तन किया है। उससे [प / a] यह गुणकार और [प / a] यह भागहार पूर्वोक्त संख्या में नहीं दिखता है)। यह (आठ वर्ष करने की चरमफालि के पतन समयसंबधी उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का दृश्यमान द्रव्य) पूर्व के मिश्रद्रव्य की द्विचरम फालि के पतन के समय होने वाले गुणश्रेणिशीर्ष के दृश्यद्रव्य से

स a १२– ६४
७ । ख ।१७।प।८५
a
१०

असंख्यातगुणा है, अन्यप्रकार से नहीं। आठ वर्ष स्थिति करने के पूर्व के आठ वर्ष करने के बाद के समय में गुणश्रेणिशीर्ष का दृश्यद्रव्य प्रथम समय में होने वाले गुणश्रेणीशीर्ष के दृश्यद्रव्य से विशेष अधिक ही है, असंख्यातगुणित नहीं है। इसका खुलासा–

आठ वर्षमात्र स्थिति शेष करने के प्रथम समय में गुणश्रेणिशीर्ष का दृश्यद्रव्य यह है।

स a १२ –। १६
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

इसका द्वितीय समय में आया धन यह है।

स a १२–।६४
७।ख ।१७।ओ।प।८५
a

आठ वर्ष स्थिति के अनंतर समय में उपरितन स्थिति के द्वितीय निषेक का दृश्यद्रव्य यह है–

स a १२ –। १६–१
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

(प्रथम निषेक द्रव्य – १ चय = द्वितीय निषेक द्रव्य)

उसका ऋण एक चयमात्र यह है।

स a १२ –
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

दूसरे समय में गुणश्रेणीशीर्ष द्रव्य यह है।

स a १२ –। १६
७।ख।१७ ।ओ। व८–।१६–व ८–
२

इससे पूर्व का चयमात्र ऋण असंख्यातगुणा हीन है क्योंकि दो गुणहानिमात्र गुणकार का अभाव है। द्वितीय समय में गुणश्रेणि के चरम निषेक का द्रव्य

स a १२–।६४
७।ख ।१७।ओ।प।८५
a

यह असंख्यातगुणा हीन है क्योंकि गुणश्रेणि द्रव्य में एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र गुणकार का अभाव है। (उपरितन स्थिति में बहुभाग देता है इसलिए वहाँ एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग का गुणकार आता है और गुणश्रेणि में एक भाग देता है इसलिए वहाँ गुणकार नहीं है) यह ऊपर का एक चयमात्र ऋणद्रव्य और द्वितीय समय का गुणश्रेणि चरम निषेक द्रव्य उस (द्वितीय समय के) गुणश्रेणि द्रव्य में कुछ कम करके दो गुणहानि द्वारा अपकर्षण भागहार का अपवर्तन करके शेष रहे असंख्यातरूप आठ वर्ष के प्रथम समय में गुणश्रेणिशीर्ष समान जो निषेक हैं उसके अनन्तर उपरितन निषेक में निक्षेपण करे। ऐसा करने पर आठ वर्ष के प्रथम समय के गुणश्रेणिशीर्ष के दृश्यद्रव्य से उस द्वितीय गुणश्रेणिशीर्ष का दृश्यद्रव्य साधिक ही है।

स a १२ –। a
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

स a १२ –। १६
७ । ख । १७ । व८–।१६–व ८–
२

इस प्रकार तृतीयादि समयों में गुणश्रेणि शीर्ष का दृश्य द्रव्य पूर्व–पूर्व गुणश्रेणिशीर्ष के दृश्यद्रव्य से अधिक ही होता है, अन्य प्रकार से नहीं।।१३५।।

विशेषार्थ– आठ वर्ष स्थिति करने के समय से उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि प्रवृत्त होती है। उसके बाद प्रत्येक समय में गुणश्रेणिशीर्ष बदलता जाता है। यहाँ एक अंतिम स्थिति को ही गुणश्रेणिशीर्ष कहते हैं। पूर्व के समय में जो उपरितन स्थिति का प्रथम निषेक होता है वह आगे के समय में गुणश्रेणि का अंतिम निषेक होता है अर्थात् गुणश्रेणिशीर्ष होता है। आठ वर्ष स्थिति करने के पूर्व समय में जो गुणश्रेणि शीर्ष होता है उससे आठ वर्ष स्थिति करने के समय में गुणश्रेणि शीर्ष असंख्यातगुणा है। उससे आगे के समय में गुणश्रेणीशीर्ष विशेष अधिक ही है। यह गाथा में कहा गया है। वह असंख्यातगुणा और विशेष अधिक प्रमाण कैसे आता है? इसे अंकसंदृष्टि से कहते हैं। आठ वर्ष स्थिति करने के पूर्व समय में सम्यक्त्वप्रकृति की स्थिति पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। सम्यक्त्वप्रकृति का द्रव्य उतनी स्थिति में विभक्त है। उदयावलि, गुणश्रेणि आयाम और उपरितन स्थिति ऐसे तीन भाग हैं। गुणश्रेणिशीर्ष का द्रव्य ३२०० और उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य ५१२ माना । आठ वर्ष करने के समय में मिश्र व सम्यक्त्व प्रकृति की चरमफालि का द्रव्य आठ वर्षमात्र स्थिति में दिया जाता है। इन दो फालि का द्रव्य पूर्व समय के द्रव्य से असंख्यातगुणा है और स्थिति कम है। उससे प्रत्येक निषेक में पूर्व से ज्यादा द्रव्य मिलता है। गुणश्रेणि के अंतिम समय में ३२०० व उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में १६३८४ मिला क्योंकि गुणश्रेणि के अंतिम निषेक से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में असंख्यातगुणा द्रव्य मिलता है। उपरितन स्थिति के द्वितीयादि निषेकों में एक–एक चय कम द्रव्य मिलता है।

चय का प्रमाण = $\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{दो गुणहानि}}$ = $\frac{१६३८४}{१६}$ = १०२४

द्वितीय निषेक = प्रथम निषेक – एक चय = १६३८४ – १०२४ = १५३६०

सत्त्वद्रव्य + दीयमानद्रव्य = दृश्यद्रव्य

५१२ + १६३८४ = १६८९६ = उपरितन स्थिति में प्रथम निषेक का दृश्यद्रव्य

४८० + १५३६० = १५८४० = उपरितन स्थिति में द्वितीय निषेक का दृश्यद्रव्य

३२०० + ३२०० = ६४०० = गुणश्रेणी का अंतिम निषेक का दृश्यद्रव्य

पूर्व समय में गुणश्रेणिशीर्ष का द्रव्य ३२०० था। इस समय में उपरितन स्थिति का प्रथम निषेक अर्थात् गुणश्रेणिशीर्ष का द्रव्य १६८९६ है। यह पूर्व समय से असंख्यातगुणा दिखता है।

अष्टवर्ष करने के बाद दूसरे समय में पूर्व से अपकृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा कम है इसलिए दूसरे समय में द्रव्य कम मिलता है। माना कि गुणश्रेणी के अंतिम निषेक में ४०० मिला है। और उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में ४०९६ मिला है क्योंकि देयद्रव्य गुणश्रेणि के शीर्ष से उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में असंख्यातगुणा मिलता है। देयद्रव्य पूर्वसत्त्व द्रव्य में मिलाने पर दृश्यद्रव्य आता है।

आठ वर्ष करने के समय में उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का अर्थात् गुणश्रेणि शीर्ष का दृश्यद्रव्य = पूर्वसत्त्वद्रव्य + वर्तमान देयद्रव्य = १६८९६ + ४०० = १७२९६

आठ वर्ष करने के बाद के समय में उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का अर्थात् वर्तमान गुणश्रेणिशीर्ष का दृश्यद्रव्य = १५८४० + ४०९६ = १९९३६ पूर्व समय के गुणश्रेणिशीर्ष से वर्तमान समय का गुणश्रेणिशीर्ष २६४० से अधिक है, असंख्यातगुणा नहीं है। कितना प्रमाण अधिक है? उसका प्रमाण कहते हैं–

आठ वर्ष करने के बाद के समय में प्राप्त हुए उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक के देयद्रव्य में से पूर्व समय के प्रथम निषेक से द्वितीय निषेक का ऋणद्रव्य व वर्तमान समय संबंधी गुणश्रेणि के अंतिम निषेक का प्रमाण कम करने पर जो प्रमाण शेष रहता है उतने प्रमाण से अधिक जानना चाहिए।

वर्तमान में उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक में प्राप्त हुआ द्रव्य ४०९६, उपरितन स्थिति का द्वितीय समय का ऋण द्रव्य १६८९६ – १५८४० = १०५६, वर्तमान गुणश्रेणि के अंतिम निषेक में प्राप्त द्रव्य ४००।

४०९६ – (१०५६+४००) = ४०९६ – १४५६ = २६४० इतने प्रमाण से पूर्व गुणश्रेणिशीर्ष से वर्तमान गुणश्रेणिशीर्ष द्रव्य अधिक है।

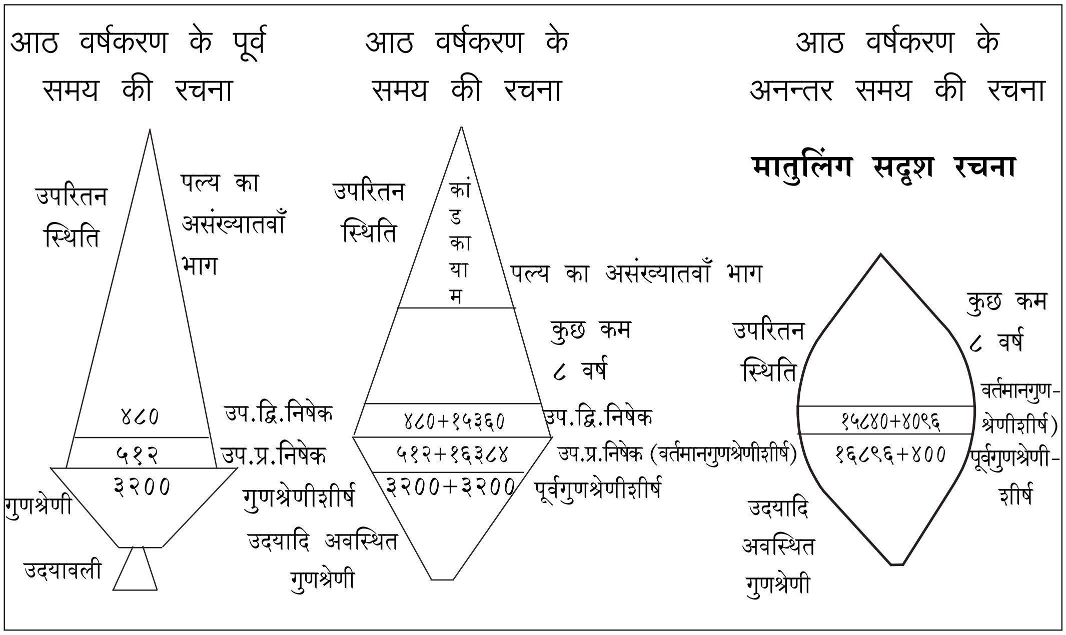

अडवस्से य ठिदीदो चरिमेदरफालिपडिददव्वं खु।
संखासंखगुणूणं तेणुवरिमदिस्समाणमहियं सीसे।।१३६।।
अष्टवर्षे च स्थितितश्चरिमेतरफालिपतितद्रव्यं खलु ।
संख्यासंख्यगुणोनं तेनोपरिमदृश्यमानमधिकं शीर्षे ।।१३६।।

पूर्वपूर्वगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यादुत्तरोत्तरसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यं विशेषाधिकमित्यत्रो-पपत्तिप्रदर्शनार्थमिदमाह। तद्यथा –

अष्टवर्षप्रथमसमये उदयादिचरमस्थितिपर्यन्तं ये निषेका: सन्ति तेष्वेकैकनिषेकं प्रेक्ष्य प्रथमकाण्डकचरमफालिद्रव्यस्योदयादिचरमस्थितिपर्यन्तं निक्षेप्यनिषेका: प्रत्येकं संख्यातगुणहीना दीयन्ते। अष्टवर्षद्वितीयसमयादिप्रथमकाण्डकद्विचरमफालिपतनसमयपर्यन्तमपकृष्टद्रव्यस्य ये निषेकास्ते पुन: प्रत्येकमसंख्यातगुणहीना निक्षिप्यन्ते। तत: कारणात्तत्र तत्र विवक्षितसमये अपकृष्टद्रव्यस्य गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यं तदधस्तननिषेकद्रव्यादसंख्येयगुणं धनमागच्छतीति गुणश्रेणिशीर्षनिषेके दृश्यं विशेषाधिकमिति भाव: ।।१३६।।

अन्वयार्थ– (अडवस्से य ठिदीदो) सम्यक्त्व प्रकृति की ८ वर्ष प्रमाण स्थिति रहने से लेकर **(चरिमेदरफालिपडिददव्वं खु संखासंखगुणूणं)** चरमफालि का द्रव्य संख्यातगुणा हीन और अन्य फालियों का पतित द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है। **(तेण)** उससे **(उवरिमदिस्समाणं सीसे अहियं)** उपरितन गुणश्रेणिशीर्ष का द्रव्य विशेष अधिक है।।१३६।।

टीकार्थ– पूर्व-पूर्व गुणश्रेणिशीर्ष द्रव्य से आगे-आगे के समय में गुणश्रेणिशीर्ष का दृश्यद्रव्य विशेष अधिक है इसमें युक्ति दिखाने के लिए कहते हैं। उसका खुलासा – आठ वर्ष के प्रथम समय में उदय समय से लेकर चरमस्थिति तक जो निषेक हैं उनमें से एक-एक निषेक की अपेक्षा से देखा जाय तो प्रथम कांडक की चरमफालि के द्रव्य के उदय से चरम स्थिति तक निक्षेपण करने योग्य निषेक प्रत्येक संख्यात गुणे कम दिये जाते हैं। (प्रथम कांडक की अंत फालि का एक-एक निषेक में दिया द्रव्य पूर्व सत्तारूप एक-एक निषेक द्रव्य की अपेक्षा संख्यात गुणा कम है) आठ वर्ष के द्वितीयादि समयों से प्रथम कांडक की द्विचरमफालिपतन के समय तक अपकृष्ट द्रव्य के जो निषेक हैं वे पुन: प्रत्येक (पूर्व सत्त्वरूप निषेक द्रव्य की अपेक्षा से) असंख्यातगुणे कम दिये जाते हैं। उस कारण से उस-उस विवक्षित समय में अपकृष्ट द्रव्य के गुणश्रेणिशीर्षद्रव्य में उसके नीचे के निषेक के द्रव्य से असंख्यातगुणा धन आता है। इसलिए गुणश्रेणिशीर्ष निषेक में दृश्यद्रव्य (पूर्व समय के गुणश्रेणिशीर्ष निषेक से) विशेष अधिक है ऐसा भाव है।।१३६।।

अनन्तरोक्तविधानेन विवक्षितगुणश्रेणिशीर्षनिषेके दृश्यद्रव्यं तदधस्तनगुणश्रेणिशीर्षद्रव्याद्विशेषाधिकमित्यत्र एकचयमात्रं ऋणमस्तीत्याशंक्य तत्परिहारार्थमिदं सूत्रमाह–

जदि गोउच्छविसेसं रिणं हवे तो वि धणपमाणादो।
जम्हा असंखगुणूणं ण गणिज्जदि तं तदो एत्थ ।।१३७।।

यदि गोपुच्छविशेषमृणं भवेत् तथापि धनप्रमाणात्।
यस्मादसंख्यगुणोनं न गण्यते तत्ततोऽत्र।।१३७।।

यद्यपि अष्टवर्षद्वितीयसमयेऽपकृष्टद्रव्यस्य गुणश्रेणिशीर्षनिक्षिप्तनिषेकद्रव्यादष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनानन्तरनिषेकगतर्णमसंख्येयगुणहीनं यस्मात्कारणात्तेन कारणेनोपरितनगुणश्रेणिशीर्षदृश्यमानं साधिकमेवेति निर्णेतव्यम्। धनादृणस्यासंख्यातगुणहीनत्वेनागणनात्। यावच्च य एकादृशो वर्तते तावत् गोपुच्छविशेष इत्युच्यते, क्रमहान्यपेक्षया गोपुच्छ इव गोपुच्छ इति गौणशब्दाश्रयणात्।।१३७।।

पूर्व में कहे गए विधान से विवक्षित गुणश्रेणिशीर्ष निषेक में दृश्यद्रव्य उसके नीचे के गुणश्रेणिशीर्षद्रव्य से विशेष अधिक है। यहाँ एक चय मात्र ऋण है ऐसी आशंका करने पर उसका परिहार करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(जदि)** यद्यपि (अधस्तन गुणश्रेणिशीर्ष से उपरितन गुणश्रेणिशीर्ष में) **(गोउच्छविसेसं)** गोपुच्छ चय **(रिणं)** ऋण **(हवे)** है। **(तो वि)** फिर भी **(धणपमाणादो)**

धनप्रमाण से (दिये जाने वाले द्रव्य से) **(जम्हा)** जिस कारण से **(असंखगुणूणं)** असंख्यातगुणा कम है। **(तदो)** उस कारण से **(एत्थ)** यहाँ **(तं)** उसको **(ण गणिज्जदि)** गिनते नहीं हैं।।१३७।।

टीकार्थ– यद्यपि आठ वर्ष के द्वितीय समय में अपकृष्ट द्रव्य के गुणश्रेणिशीर्ष में निक्षिप्त निषेक द्रव्य से आठ वर्ष के प्रथम समय में गुणश्रेणिशीर्ष के उपरितन अनन्तर निषेक में पाया जाने वाला ऋण जिस कारण से असंख्यातगुणा कम है उस कारण से उपरितन गुणश्रेणिशीर्ष का दृश्यमान द्रव्य कुछ अधिक ही है ऐसा निर्णय करना चाहिए, क्योंकि धन से ऋण असंख्यातगुणा कम होने से गिना नहीं है। जब तक एक प्रकार से प्रवृत्त है तब तक उसे गोपुच्छविशेष ऐसा कहते हैं। क्रम से निषेकद्रव्य में हानि होती है इस अपेक्षा से इसे गोपुच्छ (गाय की पूँछ के समान) ऐसा कहते हैं।।१३७।।

तत्तक्काले दिस्सं वज्जिय गुणसेढिसीसयं एक्कं ।
उवरिमठिदीसु वट्टदि विसेसहीणक्कमेणेव।।१३८।।

तत्तत्काले दृश्यं वर्जयित्वा गुणश्रेणिशीर्षकमेकम् ।
उपरिमस्थितिषु वर्तते विशेषहीनक्रमेणैव।।१३८।।

एवमुक्तप्रकारेण सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यं यदा यदा अपकृष्य उदयादिस्वस्थिति–चरमसमयपर्यन्तनिषेकेषु निक्षिप्यते तस्मिन् तस्मिन् समये गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यं दृश्यमेकैकं वर्जयित्वा तदुपरितनसर्वनिषेकेषु तत्तत्कालभाविदृश्यं विशेषहीनक्रमेणैव वर्तते, तत्र प्रकारान्तरा–सम्भवात्। एवमष्टवर्षमात्रसम्यक्त्वप्रकृतिस्थितेः प्रथमकाण्डकविधानेनैव द्विचरमकाण्डकचरमफालिपर्यन्तं अपकृष्टफालिद्रव्ययोर्निक्षेपक्रमो दृश्यक्रमश्चाव्यामोहेन ज्ञातव्यः।।१३८।।

अन्वयार्थ– **(तत्तक्काले)** उस–उस काल में **(एक्कं गुणसेढिसीसयं वज्जिय)** एक गुणश्रेणिशीर्ष छोड़कर **(उवरिमठिदीसु)** उपरितन स्थितियों में **(दिस्सं)** दृश्यमान द्रव्य **(विसेसहीणक्कमेणेव)** विशेष (चय) हीनक्रम से **(वट्टदि)** प्रवर्तमान होता है ।।१३८।।

टीकार्थ– ऊपर कहे गए प्रकार से सम्यक्त्व प्रकृति का द्रव्य जब–जब अपकर्षण करके उदय समय से अपनी स्थिति के चरम समय तक के निषेकों में निक्षेपण किया जाता है उस–उस समय में गुणश्रेणिशीर्ष का एक–एक दृश्यद्रव्य छोड़कर उसके उपरितन सभी निषेकों में उस उस काल के आगे का दृश्यद्रव्य विशेष हीन क्रम से है क्योंकि वहाँ दूसरे प्रकार का अभाव है। इसप्रकार आठ वर्षमात्र सम्यक्त्व प्रकृति की स्थिति के प्रथम काण्डक विधान के द्वारा द्विचरम कांडक की चरमफालि तक अपकृष्ट द्रव्य और फालि के द्रव्य का निक्षेप क्रम व्यामोह रहित होकर जानना चाहिए ।।१३८।।

अष्टवर्षप्रथमसमयादारभ्य सम्यक्त्वप्रकृतेर्द्विचरमकाण्डकचरमफालिपतनसमयपर्यंन्तं क्षपणविधानमभिधाय इदानीं तच्चरमकाण्डकप्रमाणमल्पबहुत्वपुरस्सरं प्रतिपादयितुमिदमाह–

गुणसेढिसंखभागा तत्तो संखगुण उवरिमठिदीओ।
सम्मत्तचरिमखंडो दुचरिमखंडादु संखगुणो।।१३९।।

गुणश्रेणिसंख्यभागास्ततः संख्यगुणमुपरितनस्थितयः।
सम्यक्त्वचरमखण्डो द्विचरमखण्डात् संख्यगुणः ।।१३९।।

या अष्टवर्षप्रथमसमयादारभ्योदयाद्यवस्थितायामा अद्य यावत् गुणश्रेणी कृता तस्यास्संख्यातबहुभागैः [।३ / ४] अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्याष्टवर्षातीतानन्तरसमयपर्यन्तं या गलितावशेषायामा गुणश्रेणिः कृता तस्या अपूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयादधिकशीर्षस्य [४] संख्यातैकभागेन [४।४] अवस्थितगुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनस्थितौ द्विचरमकाण्डकस्याधः यावन्तो निषेका अवशिष्टास्तैश्चावस्थितगुणश्रेणिबहुभागैः संख्यातगुणैः [।४।४।४] परिमितं सम्यक्त्व–प्रकृतिचरमकाण्डकमिदानीं लाञ्छितम्। पुरातनगलितावशेषगुणश्रेण्यधिकशीर्षसंख्यातैक–भागादारभ्योपरितनस्थित्यवशिष्टचरमनिषेकपर्यन्तं चरमकाण्डकप्रमाणमित्यर्थः। इदं द्विचरमकाण्डकायामप्रमाणात् [।४।४] संख्यातगुणितं सदपि तद्योग्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवेति ग्राह्यम् । तथा सति तच्चरमकाण्डकप्रमाणमियद् भवति [।४।४।४] चरमकाण्डकस्याधः अवशिष्टप्रमाणं [। / ४] इदमवस्थितगुणश्रेण्यायामसंख्यातैकभागमात्रं भवदपि गलितावशेष–गुणश्रेण्यधिक–शीर्षसंख्यातबहुभागमात्रेण [।३ / ४ ४] कृतकृत्यवेदककालेन काण्डको–त्करणकालप्रमितेनानिवृत्तिकरणकालगलितावशेषेण [४] निष्पन्नप्रमाणं [।४ / ४] अपवर्तिते एवम् [ ] ।।१३९।।

आठ वर्ष के प्रथम समय से सम्यक्त्व प्रकृति के द्विचरम कांडक की चरमफालि के पतन समय तक की क्षपणा का विधान कहकर अब उसके चरम कांडक का प्रमाण अल्पबहुत्वपूर्वक कहते हैं –

अन्वयार्थ– (गुणसेढिसंखभागा) गुणश्रेणि का संख्यात बहुभाग और **(तत्तो संखगुण उवरिमठिदीओ)** उससे संख्यातगुणित उपरितन स्थिति मिलकर **(सम्मत्तचरिमखंडो)** सम्यक्त्व प्रकृति का चरम कांडक घात करने के लिए ग्रहण करता है। उस चरम कांडक का प्रमाण **(दुचरिमखंडादु संखगुणो)** द्विचरम कांडक से संख्यातगुणा है।।१३९।।

टीकार्थ– आठ वर्ष के प्रथम समय से अब तक जो उदयादि अवस्थित आयामवाली गुणश्रेणि की है उस गुणश्रेणि का संख्यात बहुभाग [।३ / ४] अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर

आठ वर्ष के पूर्व अनन्तर समयपर्यंत जो गलितावशेष आयामवाली गुणश्रेणि की थी, उसके अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण इन दो कालों से अधिक शीर्ष का जो प्रमाण है ४ उसका संख्यातवाँ भाग ४।४ और अवस्थित गुणश्रेणिशीर्ष के ऊपर और द्विचरम कांडक के नीचे जितने उपरितन स्थिति के निषेक शेष रहते हैं वे अवस्थित गुणश्रेणि के बहुभाग से संख्यातगुणे हैं। ।४।४।४ उतना प्रमाण अब सम्यक्त्व प्रकृति के चरम कांडकरूप से ग्रहण करता है। (अवस्थित गुणश्रेणि का बहुभाग+संख्यातगुणा उपरितन स्थिति=सम्यक्त्व प्रकृति चरम कांडक) पूर्व की गलितावशेष गुणश्रेणि के अधिक प्रमाण शीर्ष के संख्यातवें भाग से लेकर उपरितन स्थिति के शेष रहे अंतिम निषेक पर्यन्त चरम काण्डक का प्रमाण है। यह द्विचरम कांडक के आयाम प्रमाण से ।४।४ संख्यात गुणित है, तो भी उसके योग्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। वैसा होने पर उसके चरम काण्डक का प्रमाण इतना है । चरम कांडक के नीचे शेष रहा प्रमाण अवस्थित गुणश्रेणी आयाम का संख्यातवाँ भागमात्र होने पर भी गलितावशेष गुणश्रेणि के अधिक शीर्ष का संख्यात बहुभागमात्र है। कृतकृत्यवेदककाल व काण्डकोत्करणकाल प्रमाण अर्थात् अनिवृत्तिकरण का गलकर शेष रहा जो काल तत्प्रमाण है।

कृतकृत्य वेदककाल+अनिवृत्तिकरण का शेष काल = चरम काण्डक के नीचे शेष रहा प्रमाण समान संख्या रखकर मूल राशि के तीन गुणकार में धनराशि का एक गुणकार

मिलाने पर ऐसा अपवर्तन करने पर इतना प्रमाण शेष रहता है।

विशेषार्थ– इस गाथा में सम्यक्त्व प्रकृति के चरम कांडकायाम का प्रमाण और उसके नीचे शेष रही स्थिति का प्रमाण कहा है। आठ वर्ष करने के समय से लेकर जो उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम है, उसका संख्यातवाँ भाग शेष रखकर संख्यात बहुभाग कांडक के लिए ग्रहण करता है। उदा:– माना कि अवस्थित गुणश्रेणी आयाम १०० समय संख्यात की संदृष्टि ४, १००÷४=२५ एकभाग और १००÷४x३=७५ बहुभाग

बहुभाग ७५ कांडकघात के लिए ग्रहण करता है और उससे संख्यातगुणी उसके ऊपर जो सर्व उपरितन स्थिति है उसे कांडकघात के लिए ग्रहण करता है।

अवस्थित गुणश्रेणि का एक भाग २५ शेष रखा है। उसमें दो काल हैं (१) अनिवृत्तिकरण का शेष रहा काल और (२) कृतकृत्य वेदककाल। उस २५ में से ५ समय अनिवृत्तिकरण काल और २० समय कृतकृत्य वेदककाल माना।

अपूर्वकरण के प्रथम समय में जो गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम स्थापित किया था उसमें से अनिवृत्तिकरण का संख्यातवाँ भाग प्रमाण अनिवृत्तिकरण काल के ऊपर जो गुणश्रेणिशीर्ष है उसका नीचे का संख्यात बहुभाग शेष रखकर ऊपर के संख्यातवें भाग से लेकर कांडक ग्रहण करता है। गुणश्रेणीशीर्ष का संख्यात बहुभाग शेष रखा है वही कृतकृत्य वेदककाल है उदा. गुणश्रेणीशीर्ष २५ समय माना उसमें से २० बहुभाग कृतकृत्यवेदक काल शेष रखकर शेष रहे हुए ५ समय से कांडक ग्रहण करता है।

सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम स्थितिकाण्डकायाम की रचना–

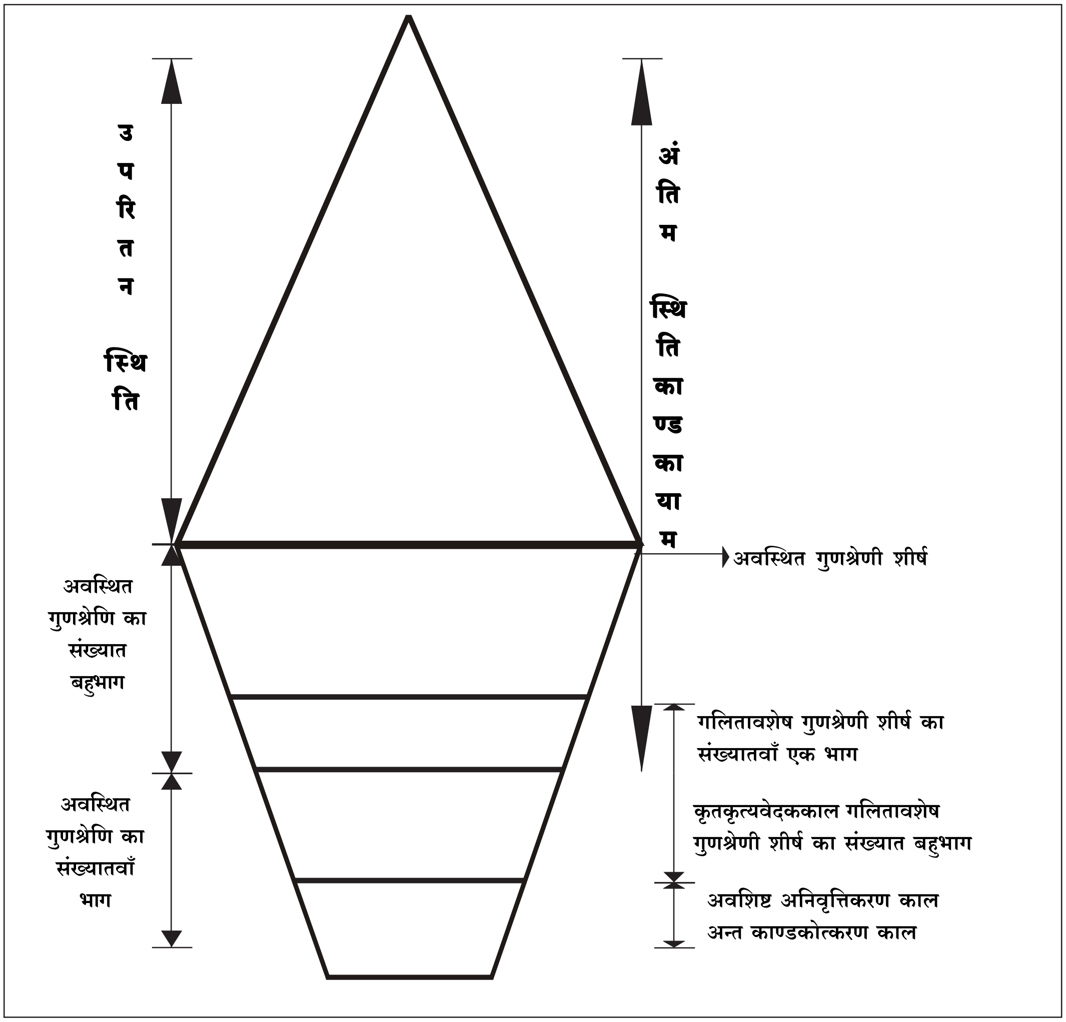

सम्मत्तचरिमखंडे दुचरिमफालि त्ति तिण्णि पव्वाओ।
संपहियपुव्वगुणसेढीणं सीसे य चरिमे य।।१४०।।

सम्यक्त्वचरमखण्डे द्विचरमफालीति त्रीणि पर्वाणि ।
साम्प्रतिकपूर्वगुणश्रेण्यो: शीर्षे च चरमे च।।१४०।।

सम्यक्त्वप्रकृतिचरमखण्डप्रथमफालिपातनसमयादारभ्य तद्द्विचरमफालिपातनसमयपर्यन्तं तत्काण्डकोत्करणकाले फालिद्रव्यस्यापकृष्टद्रव्यस्य च निक्षेपविशेषविधानार्थमिदं सूत्रमाह नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती। तद्यथा –

तत्र सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकप्रथमफालिपातनसमये या उदयाद्यवशिष्टस्थितिचरम-निषेकपर्यन्तायामा गलितावशेषमात्री गुणश्रेण्यारब्धा तच्छीर्षपर्यन्तमेकं पर्व, तत: परं पूर्वावस्थितगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तमेकं पर्व, तत: परमुपरितनस्थितिचरमनिषेकपर्यन्तमेकं पर्व इति द्रव्यनिक्षेपे पर्वत्रयं रचयितव्यम्। अत्रायं विशेष:- फालिद्रव्यनिक्षेपे प्रथममेकमेव पर्व। अपकृष्टद्रव्यनिक्षेपे तु त्रीण्यपि पर्वाणि भवन्तीति ज्ञातव्यम्।।१४०।।

अन्वयार्थ- (सम्मत्तचरिमखंडे) सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम स्थितिकाण्डक के **(दुचरिमफालि त्ति)** द्विचरमफालि तक दीयमान द्रव्य के **(तिण्णि पव्वाओ)** तीन पर्व हैं। **(संपहियपुव्वगुणसेढीणं सीसे य)** (१) वर्तमान समय के गुणश्रेणिशीर्ष तक (२) पूर्व गुणश्रेणिशीर्ष तक और **(चरिमे य)** (३) उपरितन स्थिति के अंतिम निषेक तक ।।१४०।।

टीकार्थ- सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिमखण्ड की प्रथम फालि का पतन करने के समय से उसके द्विचरम फालि का पतन करने के समय तक उस काण्डकोत्करण काल में फालि द्रव्य के और अपकृष्ट द्रव्य के निक्षेप विशेष के विधान के लिए श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती यह सूत्र कहते हैं। वह इस प्रकार है-

सम्यक्त्व प्रकृति के चरम काण्डक की प्रथम फालि का पतन करते समय जो उदय समय से शेष रही स्थिति के चरम निषेक तक की आयामवाली गलितावशेष गुणश्रेणि आरम्भ की उस गुणश्रेणि के शीर्ष तक एक पर्व, उसके आगे पूर्व की अवस्थित गुणश्रेणि के शीर्षपर्यन्त एक पर्व, उपरितन स्थिति के चरम निषेक तक एक पर्व, इस प्रकार द्रव्य का निक्षेपण करने में तीन पर्वों की रचना करनी चाहिए। यहाँ यह विशेष है कि फालि द्रव्य का निक्षेपण करने में प्रथम एक ही पर्व है परन्तु अपकृष्ट द्रव्य का निक्षेपण करने में तीन पर्व है। ऐसा जानना चाहिए।।१४०।।

सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिमकाण्डक की द्विचरम फालि तक दीयमान द्रव्य के तीन पर्वों की रचना–

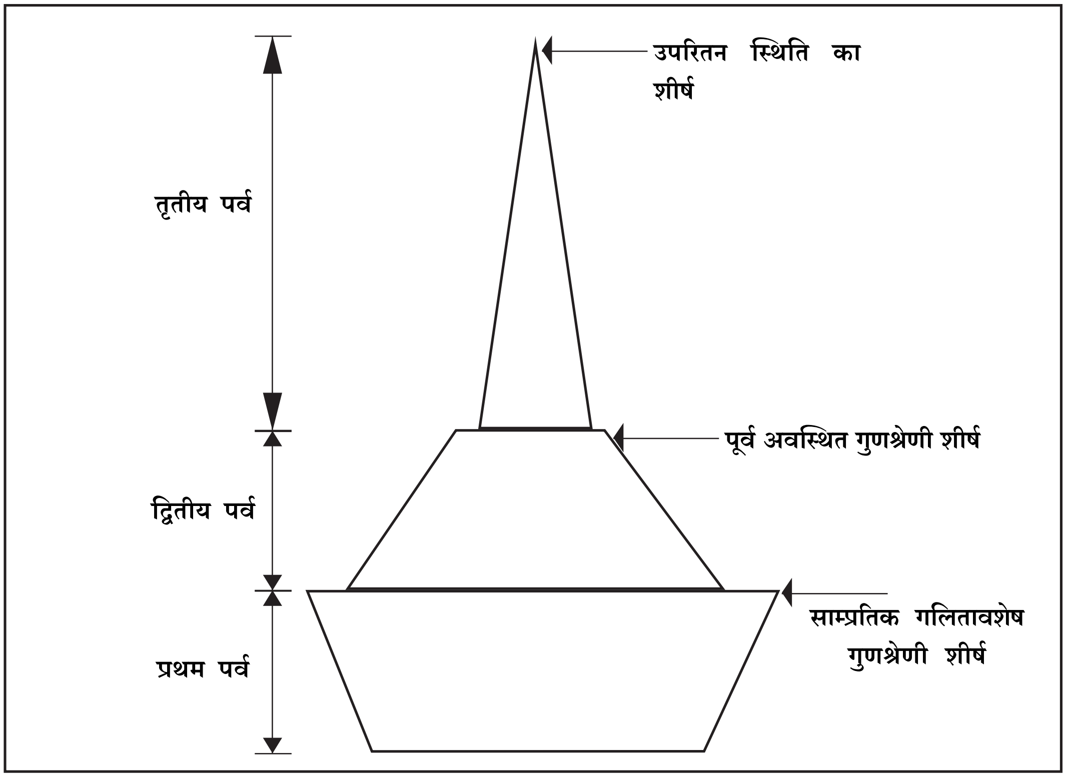

प्राग्रचितपर्वे द्रव्यनिक्षेपक्रमविशेषप्रतिपादनार्थं गाथाद्वयमाह–

तत्थ असंखेज्जगुणं असंखगुणहीणयं विसेसूणं।
संखातीदगुणूणं विसेसहीणं च दत्तिकमो।।१४१।।

ओक्कट्टिदबहुभागे पढमे सेसेक्कभागबहुभागे।
विदिये पव्वे वि सेसिगिभागं तदिये जदो देदि।।१४२।।

तत्रासंख्येयगुणमसंख्यगुणहीनकं विशेषोनम् ।
संख्यातीतगुणोनं विशेषहीनं च दत्तिक्रम:।।१४१।।

अपकर्षितबहुभागे प्रथमे शेषैकभागबहुभागे।
द्वितीये पर्वेऽपि शेषैकभागं तृतीये यतो ददाति ।।१४२।।

तत्र साम्प्रतिकगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्ते प्रथमे पर्वणि द्रव्यमसंख्येयगुणं दीयते। तथाहि–सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकद्रव्यं किञ्चिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं [स a १२– / ७।ख।१७] प्राग्गलितनिषेकैः सर्वद्रव्यासंख्यातैकभागमात्रैर्न्यूनत्वात् [स a १२– / ७।ख।१७] तत्कालोचितापकर्षण–भागहारेण विभक्तादेकभागं [स a १२ – / ७ । ख । १७ । ओ / a] पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं [स a १२ – प (१ ⌒) a / ७ । ख । १७ । ओ । प / a a] प्रथमे पर्वणि उदयनिषेकादारभ्य गुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तमसंख्यात–गुणितक्रमेण प्रक्षेपकरणविधिना निक्षिपेत्। पुनरपकृष्टद्रव्या–संख्यातैकभागं पुनरपि पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं द्वितीये पर्वणि प्रथमपर्वायामात् संख्यातगुणितायामे 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादिविधानेन स्वचरमनिषेकपर्यन्तं विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । पुनरवशिष्टैकभागं तृतीयस्मिन् पर्वणि उपरितनस्थितिप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमनिषेकपर्यन्तं द्वितीयपर्वायामतःसंख्यातगुणाद् द्विचरमकाण्डकायामात् [।४।४] संख्यातगुणितायामे [।४।४।४] 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादिविधानेन विशेषहीनक्रमेण तत्तदपकृष्टनिषेकस्याधस्तादतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपेत्। अत्र साम्प्रतगुणश्रेणिशीर्षनिक्षिप्तद्रव्यात् काण्डकप्रथमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं तदपकृष्टद्रव्यासंख्यातबहुभागस्य प्रथमपर्वणि निक्षेपात् तदेकभागस्य च द्वितीयपर्वणि निक्षेपात्। तथा द्वितीयपर्वचरमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यात् तृतीयपर्वप्रथमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं एकभागासंख्यातबहुभागस्य द्वितीयपर्वणि निक्षेपात् शेषैकभागस्य च तृतीयपर्वणि निक्षेपात्। एवं चरमकाण्डकप्रथमफालिपातनसमयादारभ्य तद्द्विचरमफालिपातनसमयपर्यन्तं द्रव्यनिक्षेपक्रमो विशेषेण ज्ञातव्यः।।१४१–१४२।।

पूर्व में रचे गये पर्वों में द्रव्य निक्षेप के क्रम का विशेष प्रतिपादन करने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ– (तत्थ) वहाँ से (उदयादि गुणश्रेणिरूप प्रथम पर्व में) **(असंखेज्जगुणं)** असंख्यातगुणितरूप से, द्वितीयपर्व के प्रथम निषेक में **(असंखगुणहीणयं)** असंख्यातगुणा हीन, पुन: द्वितीयादि निषेकों से लेकर अन्तिम निषेक पर्यन्त **(विसेसूणं)** विशेषहीन क्रम से, उसके पश्चात् तृतीय पर्व के प्रथम निषेक में **(संखातीदगुणूणं)** असंख्यातगुणाहीन **(च)** और द्वितीयादि निषेकों में **(विसेसहीणं)** विशेषहीन रूप से **(दत्तिकमो)** देने का क्रम है। **(जदो)** क्योंकि **(पढमे)** प्रथम पर्व में **(ओक्कट्टिदबहुभागे)** अपकर्षित द्रव्य का बहुभाग देता है। **(विदिये पव्वे वि)** दूसरे पर्व में **(सेसेक्कभागबहुभागे)** शेष रहे एक भाग का बहुभाग और **(तदिये)** तृतीय पर्व में **(सेसिगिभागं)** शेष रहा एक भाग **(देदि)** देता है।।१४२।।

टीकार्थ– उसमें से वर्तमान की गुणश्रेणिशीर्ष पर्यंत के प्रथम पर्व में असंख्यातगुणितरूप से द्रव्य दिया जाता है। उसका स्पष्टीकरण– सम्यक्त्व प्रकृति के चरम काण्डक का द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धमात्र है; [स a १२– / ७।ख।१७] क्योंकि वह सर्वद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र पूर्व में गले हुए निषेक से केवल न्यून है। उसकाल में योग्य ऐसा अपकर्षण भागहार से भाग देकर आये हुए एकभाग को [स a १२ – / ७ । ख । १७ । ओ a] (चरम काण्डक के द्रव्य में अपकर्षण भागहार से भाग दिया। यहाँ अपकर्षण भागहार छोटा दिखाने के लिए उसमें असंख्यात से भाग दिया है। भागहार छोटा होने से एक भाग बड़ा आता है।) पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित करके उसका बहुभाग [स a १२ – प a / ७ । ख । १७ । ओ a । प a] प्रथम पर्व में उदय निषेक से लेकर गुणश्रेणीशीर्ष पर्यन्त असंख्यात गुणित क्रम से प्रक्षेपकरण विधि के द्वारा निक्षेपण करना चाहिए। पुनः अपकृष्ट द्रव्य के असंख्यातवें भाग को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर उसका बहुभाग प्रथम पर्व के आयाम से संख्यातगुणे आयामवाले द्वितीय पर्व में 'अद्धाणेण सव्वधणे' 'काल के प्रमाण से सर्वधन में भाग देने पर मध्यम धन आता है'। इत्यादि विधान से अपने चरम निषेक पर्यन्त विशेष हीन क्रम से निक्षेपण करना चाहिए। पुनः शेष रहा भाग, द्वितीय पर्व के आयाम से संख्यात गुणा और द्विचरम काण्डक के आयाम से [।४।४] संख्यातगुणे आयाम युक्त तृतीय पर्व में उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक से उसके चरम निषेक पर्यन्त 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादि विधान से विशेषहीन क्रम से उस–उस अपकृष्ट निषेक के नीचे अतिस्थापनावली छोड़कर निक्षेपण करना चाहिए। यहाँ वर्तमान गुणश्रेणीशीर्ष में निक्षिप्त किए द्रव्य की अपेक्षा काण्डक के प्रथम निषेक में निक्षिप्त किया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि अपकृष्ट द्रव्य का असंख्यात बहुभाग प्रथम पर्व में दिया है और उसका एक भाग द्वितीय पर्व में दिया है। उसी प्रकार द्वितीय पर्व के अन्तिम निषेक में निक्षिप्त किए द्रव्य की अपेक्षा तृतीय पर्व के प्रथम निषेक में निक्षिप्त किया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि एकभाग का असंख्यात बहुभाग द्वितीय पर्व में दिया है और शेष एकभाग तृतीय पर्व में दिया है। इस प्रकार अंतिम काण्डक की प्रथम फालि का पतन करने के समय से लेकर उसकी द्विचरमफालि का पतन करने तक द्रव्य निक्षेप का क्रम विशेषरूप से जानना चाहिए ।।१४२।।

सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिमकाण्डक की द्विचरम फालि तक तीन पर्वों में द्रव्य देने की रचना–

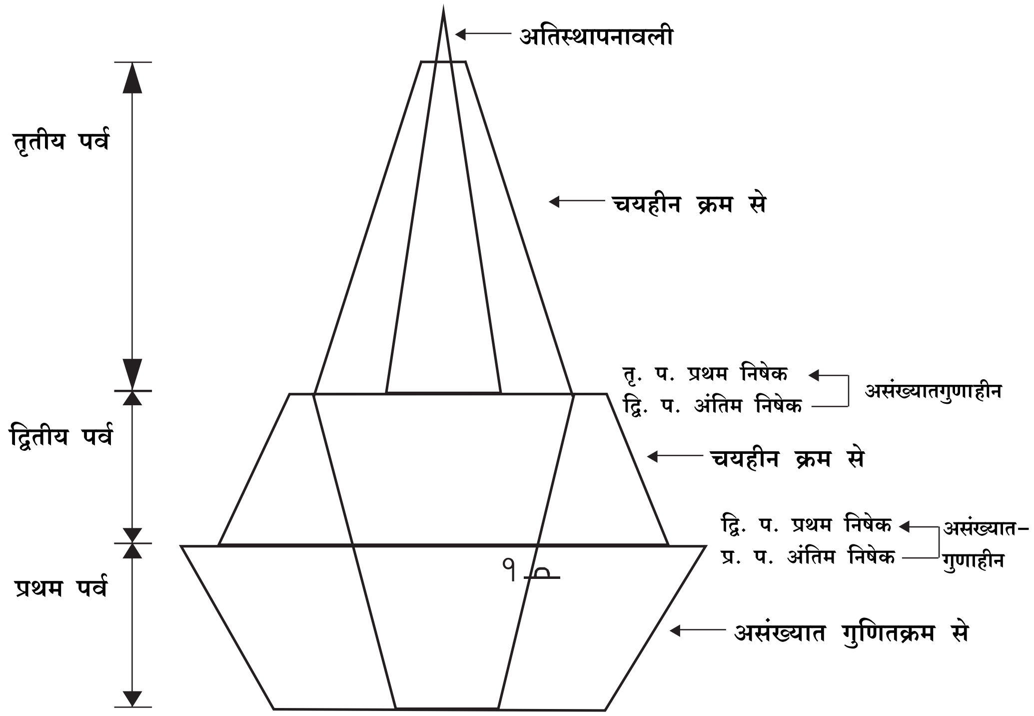

प्रथम पर्व में देने योग्य द्रव्य =
अपकृष्ट द्रव्य का बहुभाग

स a १२ – प (१ ⌢ / a)
७ । ख । १७ । ओ । प
(a a)

द्वितीय पर्व में देने योग्य द्रव्य =
अपकृष्ट द्रव्य के एक भाग का बहुभाग

स a १२ – प (a)
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प
(a a a)

तृतीय पर्व में देने योग्य द्रव्य =
अपकृष्ट द्रव्य के एक भाग का एक भाग

स a १२ –
७ । ख । १७ । गु । ओ । प । प
(a a a)

साम्प्रतगुणश्रेणिस्वरूपनिर्देशपूर्वकं चरमफालिपातनकालनिर्देशार्थमिदं सूत्रमाह–

उदयादिगलिदसेसा चरिमे खंडे हवेज्ज गुणसेढी।
पाडेदि चरिमफालिं अणियट्टीकरणचरिमम्हि।।१४३।।

उदयादिगलितशेषा चरमे खण्डे भवेद् गुणश्रेणिः।
पातयति चरमफालिमनिवृत्तिकरणचरमे।।१४३।।

सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकप्रथमफालिपातनसमयादारभ्य विधीयमाना गुणश्रेणी तच्चरमफालिपातनपर्यन्तं उदयसमयादिगलितावशेषायामा वेदितव्या । पूर्वोक्तविधानेन द्विचरमफालि–पातने एकसमयावशेषः काण्डकोत्करणकालः अनिवृत्तिकरणकालश्च परिसमाप्तः। पुनरवशिष्टेऽ–निवृत्तिकरणकालचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिं पातयति ।।१४३।।

वर्तमान गुणश्रेणि के स्वरूप का निर्देश करके अब अंतिम फालि के पतन करने के काल का निर्देश करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(चरिमे खंडे)** सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम स्थितिकांडक में **(उदयादिगलिदसेसा)** उदयादि गलितावशेष **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि **(हवेज्ज)** होती है, **(अणियट्टीकरणचरिमम्हि)** अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में **(चरिमफालिं)** अंतिम फालि का **(पाडेदि)** पतन करता है।।१४३।।

टीकार्थ– सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम काण्डक की प्रथम फालि का पतन करने के समय से की जाने वाली गुणश्रेणि उसकी अंतिम फालि का पतन करने तक उदयादि गलितावशेष आयामयुक्त जानना चाहिए। पूर्व में कहे गए विधान के द्वारा द्विचरम फालि के पतन के समय काण्डकोत्करणकाल एक समय शेष रहता है और अनिवृत्तिकरण काल समाप्त होता है। पुनःशेष रहे अनिवृत्तिकरणकाल के अंतिम समय में सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम कांडक की अंतिमफालि का नाश करता है।।१४३।।

सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिनिक्षेपक्रमप्रदर्शनार्थमाह–

चरिमं फालिं देदि हु पढमे पव्वे असंखगुणियकमे।
अंतिमसमयम्हि पुणो पल्लासंखेज्जमूलाणि[१]।।१४४।।

चरमं फालिं ददाति हु प्रथमे पर्वेऽसंख्यगुणितक्रमेण।
अन्तिमसमये पुनः पल्यासंख्येयमूलानि ।।१४४।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ७९.

गलितावशिष्टे कृतकृत्यवेदककालप्रमिते साम्प्रतगुणश्रेण्यायामे अनिवृत्तिकरणकालचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिद्रव्यमुत्कीर्य निक्षिपति। तथाहि–

तच्चरमफालिद्रव्यं किञ्चिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सर्वद्रव्यस्याधोगलितनिषेकैः कृतकृत्यकालान्तर्मुहूर्तमात्रनिषेकैश्च न्यूनत्वात्। **[स a १२– / ७ । ख । १७]** **तच्चरमफालिद्रव्यमसंख्यातगुणितपल्यप्रथमवर्गमूलमात्रभागहारेण मु।a अनेन खण्डयित्वा तदेकभागं** **[स a १२– / ७ । ख । १७। मु । a]** **उदयसमयात्प्रभृति साम्प्रतगुणश्रेणिद्विचरमसमयपर्यन्तं प्रक्षेपविधिना प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपेत्। अत्रायं विशेषः– द्वितीयनिषेके निक्षेपगुणकारात् तृतीयनिषेकनिक्षेपगुणकारः असंख्यातगुणितगुणकारगुणितः। एवं द्विचरमनिषेकपर्यन्तं गुणकारक्रमो ज्ञातव्यः। अवशिष्टबहुभागद्रव्यं** **[स a १२–।मु।a / ७।ख।१७।मु।a]** **इदं सांप्रतगुणश्रेणिचरमनिषेके निक्षिपेत्। इदं सर्वं मनसिकृत्य साम्प्रतगुणश्रेण्या उदयनिषेकात्प्रभृति द्विचरमनिषेकपर्यन्तं प्रथमपर्वेत्युक्तम् चरमनिषेके द्वितीयं पर्वेत्युक्तम् ।।१४४।।**

सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम काण्डक की अंतिम फालि का निक्षेपक्रम दिखलाने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– (चरिमं फालिं) अंतिम काण्डक की अंतिम फालि का द्रव्य **(पढमे पव्वे)** प्रथम पर्व में **(असंखगुणियकमे)** असंख्यातगुणित क्रम से **(देदि)** देता है। **(हु पुणो)** पुनः **(अंतिम–समयम्हि)** अंतिम समय में **(पल्लासंखेज्जमूलाणि)** पल्य के असंख्यात वर्गमूलप्रमाण देता है।

टीकार्थ– गलकर शेष रहे कृतकृत्य वेदककाल प्रमाण वर्तमान गुणश्रेणि आयाम में अनिवृत्तिकरणकाल के अंतिम समय में सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम काण्डक की अंतिम फालि का द्रव्य उत्कीरण करके देता है। स्पष्टीकरण :– उसकी अंतिमफालि का द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धमात्र है। **[स a १२– / ७ । ख । १७]** क्योंकि नीचे गले हुए निषेकों से और कृतकृत्यकालप्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र निषेकों से सर्वद्रव्य कम है। उस चरमफालि के द्रव्य में असंख्यातगुणित पल्य के प्रथम वर्गमूलमात्र भागहार से भाग देकर उसका एकभाग **[स a १२– / ७ । ख । १७। मु । a]** उदयसमय से लेकर वर्तमान गुणश्रेणि के द्विचरमसमय पर्यन्त प्रक्षेपविधि से प्रत्येक निषेक में असंख्यातगुणित क्रम से देना चाहिए। यहाँ यह विशेष है कि द्वितीय निषेक के निक्षेप गुणकार से तृतीय निषेक का निक्षेप गुणकार असंख्यातगुणित गुणकार से गुणित है। इस प्रकार द्विचरम निषेक पर्यन्त गुणकार क्रम जानना चाहिए। शेष रहा बहुभाग द्रव्य **[स a १२–।मु।a / ७।ख।१७।मु।a]** अंतिम निषेक में निक्षेपण करे। यह सभी मन में रखकर वर्तमान गुणश्रेणि के उदयनिषेक से लेकर

द्विचरम निषेक पर्यन्त प्रथम पर्व और अंतिम निषेक को द्वितीय पर्व ऐसा कहा है।।१४४।।

सम्यक्त्व प्रकृति के अंतिम काण्डक की अंतिम फालि का द्रव्य देने की रचना –

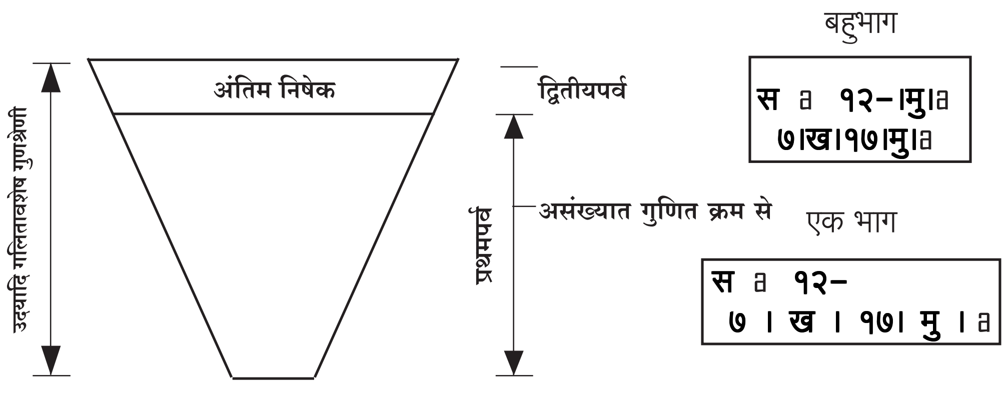

कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वप्रारम्भसमयनिर्देशपूर्वकं तदवस्थाविशेषप्ररूपणार्थमिदं सूत्रद्वयमाह –

चरिमे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जो त्ति वेदगो होदि।
सो वा मरणं पावइ चउगइगमणं च तट्ठाणे ।।१४५।।

देवेसु देवमणुए सुरणरतिरिए चउग्गईसुं पि।
कदकरणिज्जुप्पत्ती कमेण अंतोमुहुत्तेण[1]।।१४६।।

चरमे फालिं दत्ते कृतकरणीयेति वेदको भवति।
स वा मरणं प्राप्नोति चतुर्गतिगमनं च तत्स्थाने ।।१४५।।
देवेषु देवमनुष्ये सुरनरतिरश्चि चतुर्गतिष्वपि।
कृतकरणीयोत्पत्तिः क्रमेणान्तर्मुहूर्तेन।।१४६।।

प्रागुक्तविधानेन अनिवृत्तिकरणचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिद्रव्ये अधोनिक्षिप्ते सति तदनन्तरोपरितनसमयात्प्रभृति पुरातनगलितावशेषगुणश्रेण्यधिकशीर्षसंख्यात-बहुभागमात्रेऽन्तर्मुहूर्तकाले [।३ / ४।४] **कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिरिति जीवः संज्ञायते, दर्शनमोहक्षपणा योग्यस्थितिकाण्डकादि-करणीयस्यानिवृत्तिकरणकालचरमसमये एव निष्ठितत्वात्। कृतं निष्ठितं कृत्यं करणीयं यस्य य कृतकृत्यः इति निरुक्तिसम्भवात् । स एव कृतकृत्य-वेदकसम्यग्दृष्टिर्भुज्यमानायुषः क्षयवशाद्यदि मरणं प्राप्नोति तदा सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्वं बद्धनारकाद्यायुर्वशवर्तित्वेन चतसृषु गतिषु गच्छति। तथाहि–**

तस्मिन्नेव कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वकाले चतुर्भागीकृते प्रथमसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तमात्रे

१) जयध. पु.१३, पृ.८६-८७।

प्रथमे भागे [२१। ३ / ४।४। ४] मृतो देवेष्वेवोत्पद्यते नान्यगतिस्तेषु तत्काले इतरगतित्रयगमनकारणसंक्लेश-परिणामाभावात्। तदनन्तरद्वितीये चतुर्थभागे अन्तर्मुहूर्तमात्रे [। ३ / ४।४। ४] देवमनुष्यगत्योरेवोत्पद्यते नान्यगतिद्वये, तत्काले तद्गतिद्वयगमननिबन्धनसंक्लेशपरिणामा-नुपपत्तेः। तदनन्तरतृतीये चतुर्थभागेऽन्तर्मुहूर्तमात्रे [। ३ / ४।४। ४] मृतो देवमनुष्यतिर्यग्गतिष्वेवोत्पद्यते न नारकगतौ तत्काले नारकगतिगमनहेतुसंक्लेश-परिणामासम्भवात्। तदनन्तरचरम-चतुर्थभागे मृतः कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिश्चतसृष्वपि देवमनुष्यतिर्यग्नारकगतिषूत्पद्यते तत्काले तद्गतिगमननिबन्धनसंक्लेशपरिणामोपलम्भात् ।।१४५-१४६।।

कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व के प्रारम्भ समय का निर्देश करके उसकी अवस्थाविशेष का निरूपण करने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं-

अन्वयार्थ- (चरिमे फालिं दिण्णे) अन्तिम फालि का द्रव्य देने पर **(कदकरणिज्जो त्ति वेदगो)** कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि **(होदि)** होता है। **(सो)** वह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि **(तट्ठाणे)** उस स्थान में **(वा)** विकल्प से **(मरणं पावइ)** मरण को प्राप्त होता है **(च)** और **(चउगइगमणं)** चारों गति में गमन कर सकता है। **(कमेण)** क्रम से **(अंतोमुहुत्तेण)** अन्तर्मुहूर्त के द्वारा **(देवेसु)** देवों में, **(देवमणुए)** देव और मनुष्यगति में **(सुरणरतिरिए)** देव, मनुष्य और तिर्यंचगति में **(चउग्गईसु पि)** और चारों गतियोंमें में **(कदकरणिज्जुप्पत्ती)** कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि की उत्पत्ति होती है ।।१४५-१४६।।

टीकार्थ- पूर्व में कहे गए विधान के द्वारा अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में सम्यक्त्वप्रकृति के अंतिम कांडक की अंतिम फालि के द्रव्य को नीचे निक्षेपण करने पर उसके बाद आगे के समय से पूर्व की गलितावशेष गुणश्रेणि के अधिक शीर्ष का संख्यात बहुभागमात्र अन्तर्मुहूर्तकाल में [।३ / ४। ४] (गुणश्रेणिशीर्ष का बहुभाग) कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि ऐसी जीव की संज्ञा होती है, क्योंकि दर्शनमोह के क्षय के योग्य स्थितिकाण्डकादि करने योग्य कार्य अनिवृत्तिकरण काल के अंतिम समय में पूर्ण किया है। किया है करने योग्य कार्य जिसने वह कृतकृत्य होता है, ऐसी निरुक्ति है। वह कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि भुज्यमान आयु का क्षय होने पर यदि मरण प्राप्त करता है तो सम्यक्त्व ग्रहण के पूर्व नारकादि आयु बाँधने से चारों गतियों में जाता है। उसका खुलासा कृतकृत्य वेदक के काल के चार भाग कीजिए। प्रत्येक भाग अंतर्मुहूर्तमात्र है। वहाँ प्रथम समय से आरंभ प्रथम भाग में मरा जीव देव में ही उत्पन्न होता क्योंकि उस काल में अन्य तीन गतियों में गमन के कारणभूत संक्लेश परिणाम का अभाव है। उसके बाद अन्तर्मुहूर्त मात्र दूसरे चौथे भाग [। ३ / ४।४। ४] मरा हुआ जीव देव और मनुष्य गति में ही उत्पन्न होता है, अन्य दो गतियों में नहीं क्योंकि उस काल में उन दो गतियों के कारणभूत संक्लेश परिणाम

उसके बाद अन्तर्मुहूर्त प्रमाण तीसरे चतुर्थ भागमें [२१ । ३ / ४।४। ४] मरा हुआ जीव देव, मनुष्य व तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होता है, नरकगतिमें नहीं क्योंकि उस काल में नरकगति में जाने के कारणभूत संक्लेश परिणाम नहीं होते हैं। उसके बाद अंतिम चौथे भाग में मरा हुआ कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक चारों गतियों में (चारों में से

विशेषार्थ– कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि प्रथम समय से लेकर प्रथम अन्तर्मुहूर्त के भीतर यदि मरता है तो वह नियम से सौधर्मादि देवों में ही उत्पन्न होगा, क्योंकि इस काल के भीतर शेष गतियों में उत्पत्ति के कारणभूत लेश्या का परिवर्तन नहीं पाया जाता है। प्रथम अन्तर्मुहूर्त के बाद यदि मरता है तो वह नारकियों, तिर्यंचों और मनुष्यों में भी उत्पन्न होता है। श्री जयधवला में कृतकृत्यवेदक के मरण के विषय में मात्र इतना ही उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। इसमें जो विशेषता है वह उपर्युक्त टीका से जानना चाहिए।

अध:प्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य कृतकृत्यवेदककालचरमसमयपर्यन्तं लेश्यापरा–वृत्तिसम्भवासम्भवप्ररूपणार्थमिदं सूत्रमाह–

करणपढमादु जावय किदकिच्चुवरिं मुहुत्तअंतो त्ति।
ण सुहाण परावत्ती सा धि कओदावरं तुवरिं।।१४७।।

करणप्रथमाद्यावत् कृतकृत्योपरि मुहूर्तान्त इति।
न शुभानां परावृत्ति: सा हि कपोतावरं तूपरि।।१४७।।

अध:प्रवृत्तकरणप्रथमसमये दर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भकस्य तेज:पद्मशुक्ललेश्यानां शुभानां मध्ये यया लेश्यया क्षपणा प्रारब्धा तल्लेश्योत्कृष्टांश: प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिक्रमेणानिवृत्तिकरण–चरमसमये परिपूर्णो भवति ।

पुनस्तदनन्तरं कृतकृत्यवेदककालस्याभ्यन्तरे प्रथमभागे यदि म्रियते तदा तत्रापि तल्लेश्यापरावृत्तिर्नास्ति तस्य देवष्वेवोत्पादात्। यदि द्वितीयभागे म्रियते तदा तस्य भोगभूमिजमनुष्यगतावुत्पत्तिसम्भवात् प्रागारब्धशुभलेश्याया उत्कृष्टमध्यमजघन्यांशानां संक्रमक्रमेण हान्या मरणकाले कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति। अथ पुनस्तृतीयभागे यदि म्रियते तदा तस्यापि भोगभूमिजमनुष्यतिर्यग्गत्योरेव जन्मसम्भवात् प्रागुक्तप्रकारेण कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति। अथ पुनश्चतुर्थभागे यदि म्रियते तदा तस्यापि बद्धनारकायुष: प्रथमपृथिव्यामेवोत्पत्तिघटनात् पूर्ववत्कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति। तद्भागमृतमनुष्यतिरश्चो: पूर्ववद्। देवगत्यामुत्पद्यमानस्य सर्वेषु भागेषु मृतस्य लेश्यापरावृत्तिर्नास्ति। इदं कृतकृत्यवेदककाले मरणापेक्षया भणितम्।

तत्काले मरणरहितस्य पुनः प्रादुर्भूतक्षायिकसम्यक्त्वस्य पूर्वं चतुर्गतिषु बद्धायुषः मरणकाले गत्यनुसारेण लेश्यापरावृत्तिरुक्तप्रकारेण ज्ञातव्या ।।१४७।।

अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से प्रारम्भ करके कृतकृत्य वेदककाल के अंतिमसमय पर्यन्त लेश्या के परिवर्तन का सद्भाव और असद्भाव कहने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(करणपढमादु जावय किदकिच्चुवरिं मुहुत्तअंतो त्ति)** करणपरिणाम के प्रथम समय से लेकर कृतकृत्य वेदक के ऊपर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त **(सुहाण)** शुभ लेश्या का **(परावत्ती)** परावर्तन **(ण)** नहीं होता है। **(तुवरिं)** परन्तु उसके बाद **(धि कओदावरं)** कपोत के जघन्य अंश पर्यन्त **(सा)** लेश्या की परावृत्ति (परिवर्तन) होती है।।१४७।।

टीकार्थ– अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय में दर्शनमोह के क्षय को प्रारम्भ करने वाले जीव को तेज, पद्म, शुक्लरूप शुभ लेश्याओं में से जिस लेश्या से क्षपणा प्रारम्भ की उस लेश्या का उत्कृष्ट अंश प्रत्येक समय में अनन्तगुणित विशुद्धि क्रम से अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में पूर्ण होता है। पुन: उसके पश्चात् कृतकृत्य वेदककाल के प्रथम भाग में यदि मरण किया तो वहाँ भी उस लेश्या का परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि उसका देव में जन्म होता है। यदि दूसरे भाग में मरा तो उसकी भोगभूमिज मनुष्यगति में उत्पत्ति संभव होने से पूर्व में प्रारम्भ की गई शुभ लेश्या के उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य अंशों में क्रम से संक्रमण करके हानिद्वारा मरण काल में कपोत लेश्या का जघन्य अंश होता है। पुन: उसके तीसरे भाग में मरा तो उसका भी भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यंचगति में जन्म संभव होने से पूर्व में कहे गए प्रकार से कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है। उसके पश्चात् पुन: चौथे भाग में मरा तो जिसने पूर्व मे नरकायु बांधी है उसकी प्रथम पृथ्वी में ही उत्पत्ति होने से पूर्व के समान ही कपोत लेश्या का जघन्य अंश होता है। उस भाग में (चौथे भाग में) मरा हुआ मनुष्य और तिर्यंच में उत्पन्न हुआ तो पूर्व के समान ही जानना चाहिए अर्थात् उसकी भोगभूमि में उत्पत्ति होने से लेश्या की हानि होकर कपोत लेश्या का जघन्य अंश होता है। देवगति में उत्पन्न होने वाला हो तो किसी भी भाग में मरा तो लेश्या परिवर्तन नहीं होता है। कृतकृत्यवेदककाल में मरने की अपेक्षा से यह कहा गया है। उस काल में मरण से रहित क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले और पूर्व में चारों गतियों में से किसी भी आयु का बंध बांधे हुए जीव को मरणकाल में गति का अनुसरण करके लेश्या का परिवर्तन पूर्व में कहे गए प्रकार से जानना चाहिए।।१४७।।

विशेषार्थ– जयधवला टीका में कहा है कि दर्शनमोहनीय की क्षपणा करने वाले जीव के अध:करण के प्रथम समय में पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या में से जो लेश्या होती है, कृतकृत्य वेदक होने के पूर्व में एकमात्र वही लेश्या होती है, क्योंकि कृतकृत्यभाव को प्राप्त होने वाले कर्मभूमिज मनुष्य को जिस लेश्या में क्षपणा का प्रारम्भ किया उसका उत्कृष्ट अंश होता

है। पुन: उसके मध्यम अंश में अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त अवस्थित रहकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त उसके जघन्य अंशरूप से परिणमता है। उसके पश्चात् ही लेश्या बदल सकती है। इस सूत्र का दूसरा व्याख्यान इस पद्धति से है कि अध:प्रवृत्तकरण के प्रारंभ में तो कोई भी शुभ लेश्या होती है, परन्तु दर्शनमोहनीय की क्षपणा समाप्त होने पर कृतकृत्यभाव से परिणमन करनेवाले जीव की नियम से शुक्ल लेश्या ही होती है क्योंकि विशुद्धि की उत्कृष्टता को प्राप्त हुए जीव को शुक्ल लेश्या होने में कोई भी विरोध नहीं है। उसके पश्चात् उसका क्षय होने से आगम के अनुसार जो पीत और पद्मलेश्यारूप से परिवर्तन हुआ तो जब तक कृतकृत्य होकर अंतर्मुहूर्त काल नही बीतता तब तक उक्त दोनों लेश्यारूप से परिवर्तन नहीं होता। यतिवृषभ आचार्य ने कृतकृत्य सम्यग्दृष्टि की लेश्या के परिवर्तन का उल्लेख करते समय ऐसा भी कहा है कि जीव के जो लेश्या परिवर्तित होती है वह कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या रूप से परिवर्तन होता है, इससे यह स्पष्ट होता है कि इसको कृष्ण और नील लेश्या कभी भी नहीं होती है। यदि उक्त जीव के संक्लेश की बहुलता भी हो तो भी कपोत लेश्या के जघन्य अंश को छोड़कर अन्य अंशरूप से कपोत लेश्या भी नहीं होती है अथवा नील और कृष्ण लेश्या भी नहीं होती है।

कृतकृत्यवेदककाले सम्भवत्क्रियाविशेषप्रतिपादनार्थमाह–

अणुसमओवट्टणयं कदकिज्जंतो त्ति पुव्वकिरियादो।
वट्टदि उदीरणं वा असंखसमयप्पबद्धाणं[1] ।।१४८।।

अनुसमयोपवर्तनं कृतकरणीय इति पूर्वक्रियात:।
वर्तत उदीरणा वाऽसंख्यसमयप्रबद्धानाम्।।१४८।।

दर्शनमोहनीयानुभागस्यानिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागे यथा काण्डकघातं संहृत्य अनन्तगुणहान्या प्रतिसमयमपवर्तनं प्रारब्धं तथात्रापि कृतकृत्यवेदककालचरमसमयपर्यन्तमप्रतिघातं वर्तत एव। पूर्वस्य करणपरिणामविशुद्धिविशेषस्य संस्कारशेषसम्भवात् । तथा तत्रैव कृतकृत्यवेदककाले असंख्यातसमयप्रबद्धानामुदीरणापि तत्काले यावत्समयाधिका उच्छिष्टावलि–रवशिष्यते तावत्प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण वर्तते ।।१४८।।

कृतकृत्य वेदककाल में संभवती क्रियाविशेष का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(पुव्वकिरियादो)** पूर्व प्रयोग से **(कदकिज्जंतो त्ति)** कृतकृत्य वेदककाल के अंतपर्यन्त **(अणुसमओवट्टणयं)** प्रत्येक समय में अनुभाग का अपवर्तन **(वट्टदि)** होता है **(वा)** और **(असंखसमयप्पबद्धाणं)** असंख्यात समयप्रबद्धों की **(उदीरणं वट्टदि)** उदीरणा भी होती है।।१४८।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ८९

टीकार्थ– अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग में जिसप्रकार दर्शनमोहनीय के अनुभाग का काण्डकघात समाप्त करके अनन्त गुणहानिद्वारा प्रत्येक समय में अपवर्तन प्रारंभ हुआ उसीप्रकार यहाँ पर भी कृतकृत्य वेदककाल के अंतिम समय तक (प्रत्येक समय में अनुभाग का घात) निर्विघ्नरूप से होता ही है क्योंकि पूर्व के करण परिणामों की विशुद्धि विशेष के संस्कार शेष होते हैं। उसीप्रकार उस कृतकृत्य वेदककाल में असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा भी उसकाल में एक समय अधिक उच्छिष्टावलि शेष रहने तक प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित क्रम से होती है।

विशेषार्थ– कषायप्राभृतचूर्णि के अनुसार यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव चाहे संक्लेश परिणाम को प्राप्त हो चाहे विशुद्धि रूप परिणाम को प्राप्त हो तो भी उसके एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहने तक प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित श्रेणिरूप से असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण उदीरणा होती रहती है।

उदीरणाद्रव्यस्य प्रमाणं तन्निक्षेपविधानं च प्रदर्शयितुं सूत्रत्रयमाह–

उदयबहिं ओक्कट्टिय असंखगुणमुदयआवलिम्हि खिवे।
उवरिं विसेसहीणं किदकिज्जो जाव अइत्थवणं।।१४९।।

जदि संकिलेसजुत्तो विसुद्धिसहिदो अतो वि पडिसमयं।
दव्वमसंखेज्जगुणं ओक्कट्टदि णत्थि गुणसेढी।।१५०।।

जदि वि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तो वि।
उदयगुणसेढिठिदिए असंखभागो हु पडिसमयं।।१५१।।

उदयबहिरपकर्षितमसंख्यगुणमुदयावलौ क्षिपेत्।
उपरि विशेषहीनं कृतकृत्यो यावदतिस्थापनम्।।१४९।।

यदि संक्लेशयुक्तो विशुद्धिसहितोऽतोऽपि प्रतिसमयम्।
द्रव्यमसंख्येगुणमपकर्षति नास्ति गुणश्रेणी।।१५०।।

यद्यप्यसंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा तथापि ।
उदयगुणश्रेणिस्थितेरसंख्यभागो हि प्रतिसमयम् ।।१५१।।

अत्र कृतकृत्यवेदककालमात्रस्थितिषु प्रविष्टस्य किञ्चिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहाणिगुणितसमय–प्रबद्धमात्रस्यापकर्षणभागहारेण खण्डितस्यैकभागमुदयावलिबाह्यनिषेकेभ्यो गृहीत्वा पुनःपल्यासंख्यात–भागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयावल्यामुदयप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिनिषेकम–

संख्यातगुणितक्रमेण प्रक्षेपयोगेत्यादिना विधिना निक्षिपेत्। पुनस्तद्बहुभागद्रव्यमुदयावलि-न्यूनोपरितनस्थितावन्तर्मुहूर्तप्रमाणायामुपरि समयाधिकामतिस्थापनावलिं वर्जयित्वा 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादिविधिना विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्। एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि। यद्यपि विशुद्धिसंक्लेशपरावृत्तिवशेन कृतकृत्यवेदकस्य शुभाशुभलेश्यापरिणामसंक्रमो भवति तथापि प्राक्तनकरणत्रयविशुद्धिसंस्कारवशात् प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य उदीरणां कुरुते कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि:। गुणश्रेण्यायामं विना केवलमुदयावल्यामेव किञ्चिद्द्रव्यं प्रवेश्यावशिष्टस्योपरितनस्थितौ निक्षेपणमुदीरणा, इदमेव मनस्यवधार्याचार्यै: 'णत्थि गुणसेढी' इत्युदीरणालक्षणमुदीरितम्। एवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य निक्षेपे समयाधिकावल्युपरितननिषेकादपकृष्टद्रव्यस्य बहुवारमसंख्यातगुणितस्य तदानींतनोदयनिषेका-द्धीनाधिकभावशङ्कायां परिहार उच्यते – यद्यप्यसंख्येयसमयप्रबद्धानामुदीरणा चरमपूर्वपूर्वोदीरणा-द्रव्यादसंख्यातगुणितद्रव्या तथापि चरमफालिगुणश्रेण्यायातोदयनिषेकद्रव्यादसंख्यातैकभाग-मात्रमेवोदीरणाद्रव्यमुदयनिषेके दीयमानमपकर्षणभागहारेण खंडितसर्वद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागेन भक्तस्यैकभागमात्रत्वात् उदयनिषेकस्य च सर्वद्रव्यस्यासंख्यातपल्यप्रथममूलभक्तस्यैकभागमात्रत्वात्।

किं पुन: कृतकृत्यवेदकप्रथमादिसमयेषु उदीरणाद्रव्यं तत्र तत्रोदयावलिनिषेकेषु दीयमानं तत्तदुदयावलिनिषेकसत्त्वद्रव्यादसंख्यातगुणहीनमित्युच्यते। कृतकृत्यवेदककालस्य समयाधिकावलि-मात्रेऽवशिष्टे सर्वाग्रनिषेकात्पूर्वपूर्वापकृष्टद्रव्यादसंख्यातगुणितद्रव्यमपकृष्य समयोनावल्या: द्वित्रिभाग-मात्रमतिसंस्थाप्य तदधस्तने तत्त्रिभागे रूपाधिके उदयसमयात्प्रभृति इदानीमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागभक्तस्यैकभागं तद्योग्यासंख्यातसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण दत्त्वावशिष्टबहुभाग-द्रव्यं तथावलित्रिभागसमयेषु अतिस्थापनाधस्तनसमयं मुक्त्वा सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्। एषैवोत्कृष्टोदीरणा। एवमनुभागस्यानुसमयमनन्तगुणितापवर्तनेन कर्मप्रदेशानां प्रतिसमयमसंख्यात-गुणितोदीरणया च कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि: सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितिमन्तर्मुहूर्तायामामुच्छिष्टावलिं मुक्त्वा सर्वां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविनाशपूर्वकं उदयमुखेन गालयित्वा तदनन्तरसमये उदीरणारहितं केवलमनुभागानुसमयापवर्तनेनैव प्राक्तनापवर्तनक्रमविलक्षणेनोदयप्रथमसमयात्प्रभृति प्रतिसमयमनन्तगुणितक्रमेण प्रवर्तमानेन प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविनाशपूर्वकं प्रतिसमयमेकैकनिषेकं गालयित्वा तदनन्तरसमये क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जायते जीव: ।।१४९-१५१।।

उदीरणा के द्रव्य का प्रमाण और उसके निक्षेप का विधान दिखाने के लिए तीन गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ– (उदयबहिं ओक्कट्टिय) उदयावली के बाहर के द्रव्य को अपकर्षित करके **(उदयआवलिम्हि)** उदयावली में **(असंखगुणं)** असंख्यात गुणितरूप से **(खिवे)** निक्षेपण करता है। **(उवरिं)** उसके ऊपर **(किदकिज्जो)** कृतकृत्य वेदक काल में **(जाव अइत्थवणं)** अतिस्थापनावलि तक **(विसेसहीणं)** विशेषहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है।।१४९।।

कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि **(जदि संकिलेसजुत्तो अतो वि)** यदि संक्लेश युक्त हो अथवा विशुद्धि युक्त हो तो भी **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखेज्जगुणं दव्वं)** असंख्यातगुणे द्रव्य

का **(ओकट्टदि)** अपकर्षण करता है। **(गुणसेढी णत्थि)** परन्तु गुणश्रेणि नहीं होती है।

(जदि वि) यद्यपि **(असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा)** असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है **(तो वि)** तथापि **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(उदयगुणसेढिठिदिए)** उदयरूप गुणश्रेणि स्थिति के द्रव्य से (उदीरणा द्रव्य) **(असंखभागो हु)** असंख्यातवाँ भागमात्र है।।१५१।।

टीकार्थ– यहाँ कृतकृत्य वेदककालमात्र स्थिति में प्रविष्ट हुए कुछ कम डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्धमात्र द्रव्य में अपकर्षण भागहार से भाग देकर एकभाग उदयावलि के बाहर के निषेकों में से ग्रहण करके पुन: उसमें पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर एकभाग उदय के प्रथम समय से आरम्भ करके उसके अंतिम समय तक प्रत्येक निषेक में असंख्यात गुणित क्रम से 'प्रक्षेपयोग' इत्यादि विधि द्वारा निक्षेपण करें। पुन: उसका बहुभाग द्रव्य उदयावली से न्यून अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपरितन स्थिति में एक समय अधिक अतिस्थापनावलि छोड़कर 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादि विधि द्वारा विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करें। ऐसा ही द्वितीयादि समयों में भी जानना चाहिए। जब विशुद्धि और संक्लेश के परिवर्तन से कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि के शुभ और अशुभ लेश्यारूप परिणामों का संक्रमण (परिवर्तन) होता है तब भी पूर्व के तीन करण परिणामों की विशुद्धि के संस्कार से कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से द्रव्य का अपकर्षण करके उदीरणा करता है। गुणश्रेणि आयाम के बिना केवल उदयावलि में कुछ द्रव्य प्रविष्ट करके शेष रहे द्रव्य का उपरितन स्थिति में निक्षेपण करना उदीरणा है यही अभिप्राय मन में धारण करके गुणश्रेणि नहीं है, ऐसा आचार्यों ने उदीरणा का लक्षण कहा। इस प्रकार प्रत्येक समय में असंख्यात गुणितक्रम से द्रव्य का अपकर्षण करके निक्षेपण करने पर बहुत बार असंख्यातगुणित रूप एक समय अधिक आवलिप्रमाण उपरितन निषेकों में से अपकृष्ट किया द्रव्य उस काल के उदयनिषेक से हीन है या अधिक है? ऐसी शंका होने पर उसका परिहार करते है :–

यद्यपि असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा अनन्तर पूर्व–पूर्व उदीरणा द्रव्य से असंख्यात गुणी है। तथापि अंतिम फालि के गुणश्रेणि में आये हुए उदय निषेक से उदीरणा द्रव्य असंख्यातवाँ भागमात्र ही है क्योंकि उदय निषेक में देने योग्य द्रव्य सर्वद्रव्य में अपकर्षण भागहार से भागकर जो एक भाग आता है उसमें पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो एक भाग आता है उतना मात्र है और उदयनिषेक सर्वद्रव्य में असंख्यात पल्य के प्रथम वर्गमूल से भाग देने पर जो एक भाग आता है उतना है। इसलिए कृतकृत्य वेदक के प्रथमादि समयों में उदयावली निषेकों में दिया गया उदीरणा द्रव्य उस उदयावलि निषेक के सत्त्वद्रव्य से असंख्यातगुणा कम है ऐसा कहा जाता है। कृतकृत्यवेदक काल में एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहने पर सबसे अंतिम निषेक से पूर्व–पूर्व अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यातगुणित द्रव्य का अपकर्षण करके एक समय कम आवली के दो त्रिभाग प्रमाण समयों की अतिस्थापना करके उसके नीचे एक समय अधिक त्रिभाग में दिया जाता है। वहाँ अपकृष्ट द्रव्य का पल्य के असंख्यातवें भाग से भक्त एक भाग द्रव्य को उदय समय से यथायोग्य असंख्यात समय तक असंख्यातगुणित क्रम से देकर शेष रहा बहुभाग द्रव्य आवलि के त्रिभाग के समयों में अतिस्थापनावली को छोड़कर सर्वत्र विशेषहीन क्रम से देना चाहिए। यही उत्कृष्ट उदीरणा है। इस प्रकार कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि प्रत्येक समय में अनुभाग के अनन्तगुणित अपवर्तन द्वारा और प्रत्येक समय में कर्म प्रदेशों की असंख्यातगुणी उदीरणा के द्वारा उच्छिष्टावलि

को छोड़कर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण सम्यक्त्व प्रकृति की सर्वस्थिति को प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश के विनाशपूर्वक उदयमुख से नष्ट करता है। उसके अनन्तर समय में उदीरणा के बिना केवल प्रत्येक समय में पूर्व के अपवर्तन क्रम से भिन्न उदय के प्रथम समय से प्रत्येक समय में अनन्तगुणित क्रम से प्रवर्तमान ऐसे अनुभाग के अपवर्तन द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का नाश करके प्रत्येक समय में एक–एक निषेक गलाकर उसके अनन्तर समय में जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है ।।१४९–१५१।।

विशेषार्थ– कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होने के पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृति की स्थिति कृतकृत्यवेदक कालप्रमाण अन्तर्मुहूर्त ही शेष रही है। उतनी ही स्थिति में डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य स्थित है। कृतकृत्य वेदक काल में भी सम्यक्त्व प्रकृति की उदीरणा होती है। वहाँ डेढ़गुणहानि गुणित द्रव्य को अपकर्षण भागहार से भाग देकर जो एक भाग प्राप्त होता है उसमें पुनः पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर जो एक भाग आता है उसे उदयावली में असंख्यातगुणित क्रम से देता है और शेष बहुभाग द्रव्य को उपरितन स्थिति में अतिस्थापनावली छोड़कर देता है। यहाँ उदयावली में गुणश्रेणी है। उदयावली के ऊपर अलग गुणश्रेणी नहीं है। उदयावली में प्राप्त हुए द्रव्य की उदीरणा संज्ञा है इसलिए यहाँ गुणश्रेणी नहीं है ऐसा कहा है।

कृतकृत्य वेदक होने पर दीयमान द्रव्य की रचना

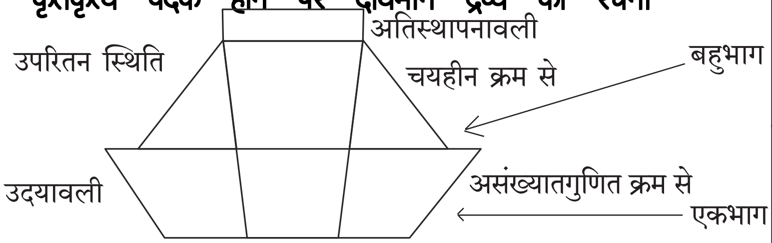

१ ⌒ स a १२– प a ७।ख।१७।ओ।प। a
स a १२– ७।ख।१७।ओ।प। a

जब कृतकृत्य वेदक काल में एक समय अधिक आवलि शेष रहती है तब तक उदीरणा होती है। उस समय अंतिम समय में स्थित निषेक में से द्रव्य का अपकर्षण करता है और अपकृष्ट द्रव्य को उदयावलि में ही देता है। वहाँ निक्षेप का प्रमाण एक समय कम आवलि अधिक एक समय और अतिस्थापना का प्रमाण एक समय कम आवलि का दो त्रिभाग है।

निक्षेप का प्रमाण = (आवलि–१ समय/३)+१ समय

अतिस्थापना का प्रमाण = (आवलि–१ समय/३)X२

उस आवलि के एक त्रिभागप्रमाण निक्षेप में भी एक भाग प्रमाण द्रव्य को प्रारंभ के यथायोग्य असंख्यात समयों में असंख्यातगुणित क्रम से देता है और बहुभाग द्रव्य को शेष बचे समयों में विशेषहीन क्रम से देता है। आवलि के त्रिभाग में भी असंख्यात समय है क्योंकि जघन्य युक्तासंख्यात समयों की एक आवली होती है उसका त्रिभाग करने पर मध्यम परीतासंख्यात संख्या आती है।

यहाँ टीका में उदयद्रव्य और उदीरणाद्रव्य की तुलना करते हुए कहा है कि उदयद्रव्य से उदीरणाद्रव्य असंख्यातगुणा हीन है क्योंकि अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में अंतिम कांडक की अंतिम फालि

का पतन हुआ उस समय उसके द्रव्य का विभाग करते समय संपूर्ण सम्यक्त्व प्रकृति के द्रव्य को असंख्यात पल्य के प्रथम वर्गमूल से भाग दिया था। अपकर्षण भागहार से भाग नहीं दिया था। यहाँ सर्वद्रव्य को अपकर्षण भागहार का भाग देने पर जो एक भाग प्रमाण द्रव्य आया है उसमें पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर जो लब्ध आया उतने द्रव्य की उदीरणा की है। इसलिए उदयद्रव्य से उदीरणा द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है।

एक समय अधिक एक आवली शेष रहने पर दीयमान द्रव्य की रचना

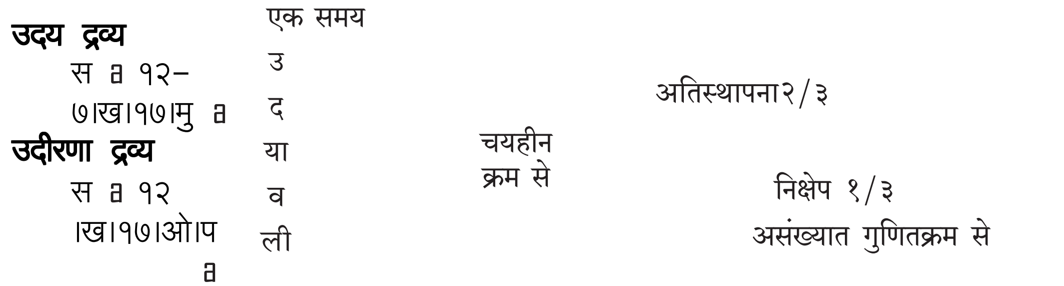

विदियकरणादिमादो कदकरणिज्जस्स पढमसमओत्ति।
वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्पबहुं[१] ।।१५२।।

द्वितीयकरणादिमात् कृतकृत्यस्य प्रथमसमय इति।
वक्ष्ये रसखण्डोत्करणकालादीनामल्पबहुत्वम्।।१५२।।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य कृतकृत्यवेदकप्रथमसमयपर्यन्तमनुभागखण्डोत्करणकालादीनां उत्कृष्टस्थितिसत्त्वपर्यन्तानां त्रयस्त्रिंशतामल्पबहुत्वपदानि वक्ष्यामीति प्रतिज्ञासूत्रमिदम् ।।१५२।।

अन्वयार्थ– **(विदियकरणादिमादो)** द्वितीय अपूर्वकरण के प्रारम्भ से **(कदकरणिज्जस्स पढमसमओत्ति)** कृतकृत्य वेदक के प्रथम समय तक **(रसखंडुक्कीरण कालादीणमप्पबहु)** अनुभाग कांडकोत्कीरणकालादि का अल्पबहुत्व **(वोच्छं)** मैं कहता हूँ ।।१५२।।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय से कृतकृत्यवेदक के प्रथम समय तक अनुभागकांडकोत्करण काल से प्रारंभ करके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व तक तैंतीस पदों का अल्पबहुत्व मैं कहता हूँ ऐसा यह प्रतिज्ञा सूत्र है ।।१५२।।

एकादशगाथासूत्रैः तान्येवाल्पबहुत्वपदानि प्रतिपाद्यन्ते ।

रसठिदिखंडुक्कीरणअद्धा अवरं वरं च अवरवरं।
सव्वत्थोवं अहियं संखेज्जगुणं विसेसहियं[२]।।१५३।।

रसस्थितिखण्डोत्करणाद्धाऽवरं वरं चावरवरं।
सर्वस्तोकमधिकं संख्येयगुणं विशेषाधिकम्।।१५३।।

---
१) जयध. पु. १३, पृ. ९०.　२) जयध. पु. १३, पृ. ९१–९२.

दर्शनमोहस्य जघन्यानुभागखण्डोत्करणकाल: सम्यक्त्वप्रकृत्यष्टवर्षस्थितिकरण–समयात्प्राक्तनानन्तरावस्थायां सम्भवन् वक्ष्यमाणद्वात्रिंशत्पदेभ्य: स्तोकोऽल्प इत्यर्थ:। ज्ञानावरणाद्या–युर्वर्जितशेषकर्मणां जघन्यानुभागखण्डोत्करणकालोऽनिवृत्तिकरणचरमभागे सम्भवन् सर्वत: स्तोकमिति सामान्येन जघन्यानुभागखण्डोत्करणकाल: संख्यातावलिमात्रोऽपि उत्तरपदापेक्षयाल्प इत्युच्यते २१ एकं पदम् १। तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारभ्यमाणोत्कृष्टानुभागखण्डोत्करणकालो विशेषाधिक: २१।५/४ विशेषप्रमाणं जघन्यानुभागखण्डोत्करणकालसंख्यातैकभागमात्रं द्वितीयं पदम् २। तस्मादनिवृत्तिकरणचरमभागे सम्भवन् जघन्यस्थितिकांडकोत्करणकाल: संख्यातगुण: २१।५।४/४ तृतीयं पदम् ३। तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये घटमान: उत्कृष्टस्थितिखण्डो–त्करणकालो विशेषाधिक: २१।५।४।५/४।४ चतुर्थं पदम् ४ ।।१५३।।

ग्यारह सूत्रों के द्वारा उन्हीं अल्पबहुत्व पदों को कहते हैं–

अन्वयार्थ– (अवरं वरं अवरवरं च रसठिदिखंडुक्कीरणअद्धा) १)जघन्य अनुभाग काण्डकोत्कीरण काल २)उत्कृष्ट अनुभाग काण्डकोत्कीरण काल ३)जघन्य स्थितिकाण्डकोत्कीरण काल ४) उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकोत्कीरण काल ये क्रमश: **(सव्वत्थोवं अहियं संखेज्जगुणं विसेसहियं)** सबसे कम, विशेष अधिक, संख्यातगुणा और विशेष अधिक हैं।।१५३।।

टीकार्थ– सम्यक्त्व प्रकृति की आठ वर्ष स्थिति करने के पूर्व अनन्तर अवस्था में होने वाला दर्शनमोहनीय का जघन्य अनुभाग कांडकोत्करण काल आगे कहे जाने वाले बत्तीस पदों से छोटा है। अनिवृत्तिकरण के अंतिम भाग में होने वाला आयु छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि कर्मों का जघन्य अनुभागकांडकोत्करण काल सबसे छोटा है। इस प्रकार सामान्य से जघन्य अनुभागखंडोत्करण काल संख्यात आवलिमात्र होने पर भी आगे के पदों की अपेक्षा छोटा है, ऐसा कहा है। पद–१।

उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रारम्भ किया जानेवाला उत्कृष्ट अनुभागखंडोत्करण काल विशेष अधिक है। २१।५/४ विशेष का प्रमाण जघन्य अनुभागखंडोत्करणकाल का संख्यातवाँ भाग है।

जघन्य अनुभागकाण्डोत्करणकाल + जघन्य अनुभाग काण्डोत्करण काल / संख्यात =उत्कृष्ट अनुभागकाण्डोत्करणकाल

२१ + २१/४ = समच्छेद करने पर २१।४/४ + २१/४ = २१।५/४ उत्कृष्ट अनुभागकाण्डोत्करणकाल

(समान संख्या निकालकर मूलराशि के ४ गुणकार में धनराशि का एक गुणकार मिलाने पर ५ गुणकार होता है। आगे जहाँ कहीं विशेष अधिक का प्रमाण कहेंगे वहाँ ऐसा ही विधान समझना।) पद –२।

उससे अनिवृत्तिकरण के अंतिम भाग में होने वाला जघन्य स्थितिकांडकोत्करणकाल संख्यातगुणा है (संख्यात की संदृष्टि ४) पद–३।

उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थिति काण्डकोत्करणकाल विशेष अधिक है पद–४ ।।१५३।।

कदकरणसम्मखवणाणियट्टिअपुव्वद्धा संखगुणिदकमा।
तत्तो गुणसेढिस्स य णिक्खेओ साहियो होदि।।१५४।।

कृतकरणसम्यग्क्षपणानिवृत्यपूर्वाद्धाः संख्यगुणितक्रमाः।
ततो गुणश्रेण्याश्च निक्षेपः साधिको भवति।।१५४।।

तस्मात्कृतकृत्यवेदककालः संख्यातगुणः इदमपवर्त्य लिखिते एवं पंचमं पदम् ५। अस्मात्सम्यक्त्वप्रकृति– क्षपणकालः अष्टवर्षकरण–प्रथमसमयादारभ्य कृतकृत्यवेदकचरमसमयपर्यन्तमुपपद्यमानः संख्यातगुणः षष्ठं पदम् ६। अस्मादनिवृत्तिकरणकालः संख्यातगुणः सप्तमं पदम् ७। तस्मादपूर्वकरणकालः संख्यातगुणः २११ **अष्टमं पदम् ८। अमुष्मादपूर्वकरणप्रथम–समये प्रारब्धगुणश्रेण्यायामो विशेषाधिकः विशेषप्रमाणमनिवृत्तिकरणकालस्त–त्संख्यातभागश्च नवमं पदम् ९।**

अन्वयार्थ– उसके पश्चात् **(कदकरणसम्मखवणाणियट्टिअपुव्वद्ध)** ५) कृतकृत्य वेदक काल ६) सम्यक्त्व प्रकृति का क्षपणाकाल (आठ वर्ष स्थिति शेष रहने के पश्चात् का काल) ७) अनिवृत्तिकरणकाल ८) अपूर्वकरण काल **(संखगुणिदकमं)** क्रम से संख्यातगुणित है। **(तत्तो)** उससे **(गुणसेढिस्स य णिक्खेओ)** ९) गुणश्रेणि का निक्षेप **(साहियो)** कुछ अधिक **(होदि)** होता है।।१५४।।

टीकार्थ–उससे कृतकृत्य वेदककाल संख्यातगुणा है [२१।५।४।५।४ / ४। ४] अपवर्तन करके लिखने पर ऐसा होता [ ] है पद–५।

उससे आठ वर्ष करने के प्रथम समय से कृतकृत्य वेदक के अंतिम समय तक का प्राप्त होने वाला सम्यक्त्व प्रकृति का क्षपणाकाल संख्यातगुणा है [२११। ४] पद–६। उससे अनिवृत्तिकरणकाल संख्यातगुणा है [। ४।४] पद– ७। उससे अपूर्वकरणकाल संख्यातगुणा है [२११। ४।४।४] पद–८। उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रारम्भ किया हुआ गुणश्रेणिआयाम विशेष अधिक है [। / २११। ४।४।४] विशेष का प्रमाण अनिवृत्तिकरण का काल और उसका संख्यातवाँ भाग है पद–९ ।।१५४।।

सम्मदुचरिमे चरिमे अडवस्ससस्सादिमे च ठिदिखंडा।
अवरवराबाहा वि य अडवस्सं संखगुणियकमा।।१५५।।

सम्यग्द्विचरमे चरमेऽष्टवर्षस्यादिमे च स्थितिखण्डानि।
अवरवराबाधापि चाष्टवर्षं संख्यातगुणितक्रमाणि।।१५५।

तस्मात्सम्यक्त्वप्रकृतेर्द्विचरमस्थितिकाण्डकायामः संख्यातगुणः | २११। ४।४।४।४ | **गुणिते एवं** | २१ | **दशमं पदम् १०। अस्मात्सम्यक्त्वप्रकृतिचरमस्थितिकांडकायामः संख्यातगुणः** | ।४ | **एकादशं पदम् ११। एतस्मादष्टवर्षप्रथमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितिकाण्डकायामः संख्यातगुणः** | ।४।४ | **द्वादशं पदम् १२। तस्मात्कृतकृत्यवेदकप्रथमसमये सम्भवज्ज्ञानावरणादि-कर्मस्थितिबन्धस्य जघन्याबाधाकालः संख्यातगुणः** | ।४।४।४ | **त्रयोदशं पदम् १३। अस्माद-पूर्वकरणप्रथमसमयसम्भवज्ज्ञानावरणादिकर्मस्थितिबन्धस्योत्कृष्टाबाधाकालः संख्यातगुणः** | ।४।४।४।४ | **एतावत्पर्यन्तं प्रागुक्तसर्वायामाः प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तमात्रा एव। चतुर्दशं पदम् १४। अमुष्मात्सम्यक्त्वप्रकृतेः खण्डितस्थित्यवशेषोऽष्टवर्षायामः संख्यातगुणः व ८। अन्तर्मुहूर्ता-द्दिनमासवर्षप्रमितसंख्यातगुणकारस्य दर्शनात् पंचदशं पदम् १५ ।।१५५।।**

अन्वयार्थ- उससे **(सम्मदुचरिमे चरिमे अडवस्ससस्सादिमे च ठिदिखंडा)** १०) सम्यक्त्व प्रकृति के द्विचरम स्थितिकांडक, ११) चरम स्थितिकांडक १२) आठ वर्ष स्थिति शेष रहने पर प्रथम स्थितिकांडकायाम **(अवरवराबाहा वि)** १३) जघन्य आबाधा १४) उत्कृष्ट आबाधा **(य)** और **(अडवस्सं)** १५) आठ वर्ष स्थिति (ये छह पद) **(संखगुणियकमा)** क्रम से संख्यातगुणे हैं।।१५५।।

टीकार्थ- उससे सम्यक्त्व प्रकृति का द्विचरम स्थितिकांडक आयाम संख्यातगुणा है। | । ४।४।४।४ | गुणकार करने पर | २१ | ऐसा उत्तर आता है पद-१०। इससे सम्यक्त्व प्रकृति का अंतिम स्थितिकांडकायाम संख्यात गुणा है | ।४ | पद-११। इससे आठ वर्ष स्थिति शेष रहने पर प्रथम समय में होने वाला सम्यक्त्व प्रकृति का स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है | ।४।४ | पद-१२। उससे कृतकृत्य वेदक के प्रथम समय में होने वाले ज्ञानावरणादि कर्मों के स्थितिबंध का जघन्य आबाधाकाल संख्यातगुणा है | ।४।४।४ | पद १३। इससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला ज्ञानावरणादि कर्मों के स्थितिबंध का उत्कृष्ट आबाधाकाल संख्यातगुणा है | ।४।४।४।४ | यहाँ तक पूर्व में कहे सभी आयाम अंतर्मुहूर्तमात्र ही है पद-१४।

इससे स्थिति खंडित होकर शेष रहा सम्यक्त्व प्रकृति का आठ वर्ष का आयाम संख्यातगुणा है क्योंकि अंतर्मुहूर्त से दिवस, महिना, वर्ष का प्रमाण संख्यात गुणकाररूप दिखता है पद–१५ ।।१५५।।

सम्मे असंखवस्सिय चरिमट्ठिदिखंडओ असंखगुणो।
मिस्से चरिमं खंडयमहियं अडवस्समेत्तेण[1]।।१५६।।

सम्येऽसंख्यवर्षे चरमस्थितिखण्डकोऽसंख्यगुणः।
मिश्रे चरमं खण्डितमधिकमष्टवर्षमात्रेण।।१५६।।

अमुष्मात्सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षावशेषकरणनिमित्तपल्यासंख्यातैकभागमात्रचरमस्थिति–काण्डकायामोऽसंख्यातगुणः [प–व ८ / a a a] षोडशं पदम् १६। तस्मात्सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतेश्चरम–काण्डकायामो विशेषाधिकः [प / a a a] विशेषप्रमाणं चोच्छिष्टावल्योनाष्टवर्षमात्रं, सप्तदशं पदम् १७ ।।१५६।।

अन्वयार्थ– उससे **(सम्मे असंखवस्सिय चरिमट्ठिदिखंडओ)** १६) सम्यक्त्व प्रकृति का असंख्यात वर्षप्रमाण अंतिम स्थितिकांडक **(असंखगुणो)** असंख्यातगुणा है। उससे **(मिस्से चरिमं खंडयं)** १७) मिश्र प्रकृति का अंतिम स्थितिकांडक **(अडवस्समेत्तेण अहियं)** आठ वर्षमात्र से अधिक है।।१५६।।

टीकार्थ– इससे सम्यक्त्व प्रकृति का आठ वर्ष शेष करने के लिए कारणभूत पल्य का असंख्यातवाँ भाग मात्र अंतिम स्थितिकांडकायाम असंख्यात गुणा है। [प–व ८ / a a a] (आठ वर्ष स्थिति छोड़कर शेष स्थिति घात करने के लिए ग्रहण करता है इसलिए पल्य के असंख्यातवें भागमात्र शेष स्थिति में से आठ वर्ष कम किए हैं।) पद–१६।

उससे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का अंतिम स्थितिकांडक–आयाम विशेष अधिक है। [प / a a a] विशेष का प्रमाण उच्छिष्टावलि से कम आठ वर्ष मात्र है पद–१७ ।।१५६।।

मिच्छे खविदे सम्मदुगाणं ताणं च मिच्छसत्तं हि।
पढमंतिमठिदिखंडा असंखगुणिदा हु दुट्ठाणे[2]।।१५७।।

मिथ्ये क्षपिते सम्यग्द्विकानां तेषां च मिथ्यसत्त्वं हि।।
प्रथमान्तिमस्थितिखण्डान्यसंख्यगुणितानि हि द्विस्थाने।।१५७।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ९५. २) जयध. पु. १३, पृ. ९५–९६

तस्मान्मिथ्यात्वे चरमस्थितिकाण्डकचरमफालिद्रव्यं मिश्रप्रकृतौ संक्रम्य क्षपिते तदनन्तरसमये प्रारब्धमिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योः प्रथमस्थितिकाण्डकायामोऽसंख्यातगुणः [प a / a a a] अष्टादशं पदम्१८। तस्मान्मिथ्यात्वद्रव्यसत्त्वे चरमकाण्डकावशेषमात्रे सति तत्काल- लांछितमिश्र-सम्यक्त्वप्रकृतिचरमस्थितिकाण्डकायामोऽसंख्यातगुणः [प a / a a] एकान्नविंशं पदम् १९ ।।१५७।।

अन्वयार्थ- उससे **(मिच्छे खविदे सम्मदुगाणं पढमठिदिखंडा)** १८) मिथ्यात्व का क्षय होने पर सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति का प्रथम स्थितिकांडक **(च)** और **(मिच्छसत्तं हि ताणं अंतिमठिदिखंडा)** १९) मिथ्यात्व का सत्त्व रहते हुए उन दोनों का (सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति का) अंतिम स्थितिकांडक **(हु दुट्ठाणे असंखगुणिदा)** ये दो स्थान असंख्यातगुणे हैं।।१५७।।

टीकार्थ- उससे चरम स्थितिकांडक की चरमफालि का द्रव्य मिश्र प्रकृति में संक्रमित करके मिथ्यात्व का क्षय करने पर उसके अनन्तर समय में प्रारंभ किया हुआ मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का प्रथम स्थितिकांडकायाम असंख्यातगुणा है [प a / a a a] (पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र है।) पद-१८। उससे मिथ्यात्व के द्रव्य का सत्त्व अंतिम कांडकप्रमाण शेष रहने पर उस समय ग्रहण किया गया मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का अंतिम कांडकायाम असंख्यातगुणा है।(यह भी पल्य का [प a / a a] असंख्यात बहुभागमात्र है, परन्तु १८ वें पद से असंख्यातगुणा है इसलिए एक असंख्यात का भागहार कम हुआ।) पद-१९।।१५७।।

मिच्छंतिमठिदिखंडो पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण।
हेट्ठिमठिदिप्पमाणेणब्भहियो होदि णियमेण[1]।।१५८।।

मिथ्यान्तिमस्थितिखण्डः पल्यासंख्येयभागमात्रेण।
अधस्तनस्थितिप्रमाणेनाभ्यधिको भवति नियमेन।।१५८।।

एतस्मान्मिथ्यात्वद्रव्यस्य चरमकाण्डकायामो विशेषाधिकः [प / a] विशेषप्रमाणं च मिथ्यात्वसत्त्वकाले मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योश्चरमकाण्डकावशिष्टाधस्तनस्थितिमात्रं विंशं पदम्२०।

अन्वयार्थ- उससे **(मिच्छंतिमठिदिखंडो)** २०) मिथ्यात्व का अंतिम स्थितिकाण्डकायाम **(पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण हेट्ठिमठिदिप्पमाणेण)** पल्य के असंख्यातवें भागमात्र नीचे की स्थिति प्रमाण से **(णियमेण)** नियम से **(अब्भहियो)** अधिक (**होदि**) होता है।।१५८।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ९६

टीकार्थ– इससे मिथ्यात्व के द्रव्य का अंतिम स्थितिकांडकायाम विशेष अधिक है विशेष का प्रमाण मिथ्यात्व के सत्त्वकाल में मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति के चरम काण्डक के घात होने पर नीचे जितनी स्थिति रही है उतना है। पद–२०।।१५८।। | प / a |

दूरावक्किट्टिपढमं ठिदिखंडमसंखसंगुणं तिण्णं।
दूरावकिट्टिहेदू ठिदिखंडं संखसंगुणियं।।१५९।।

दूरापकृष्टिप्रथमं स्थितिखण्डमसंख्यसंगुणं त्रयं।
दूरापकृष्टिहेतुः स्थितिखण्डः संख्यसंगुणितः।।१५९।।

तस्माद्दर्शनमोहत्रयस्य दूरापकृष्टिमात्रावशेषस्थितौ प्रविष्टपल्यासंख्यातबहुभागमात्र–प्रथमस्थितिकाण्डकायामोऽसंख्यातगुणः | प a / ५।५।५।५।५।a | **एकविंशं पदम् २१ । अमुष्माद्दूरापकृष्टि–स्थित्यवशेषहेतुभूतपल्यसंख्यातबहुभाग–मात्रस्थितिकाण्डकायामः संख्यातगुणः** | प ४ / ५।५।५।५ | **द्वाविशं पदम् २२ ।।१५९।।**

अन्वयार्थ– उससे **(दूरावकिट्टिपढमं तिण्णं ठिदिखंडमसंखसंगुणं)** २१) दूरापकृष्टि संज्ञक स्थिति शेष रहने के पश्चात् प्रवृत्त होने वाला मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का प्रथम स्थितिकांडक असंख्यातगुणा है। उससे **(दूरावकिट्टिहेदू ठिदिखंड)** २२) दूरापकृष्टि स्थिति शेष रहने के लिए कारणभूत स्थितिकांडक **(संखसंगुणियं)** संख्यातगुणा है।।१५९।।

टीकार्थ– उससे तीन दर्शनमोहनीय का दूरापकृष्टिमात्र स्थिति शेष रहने पर प्रविष्ट हुआ पल्य का असंख्यात बहुभाग मात्र प्रथम स्थितिकांडकायाम असंख्यातगुणित है

| प a / ५।५।५।५।५।a | (दूरापकृष्टिसत्त्व= | प / ५।५।५।५ | इसको असंख्यात का भाग देकर उसका बहुभाग यहाँ ग्रहण किया है।) पद–२१।

इससे दूरापकृष्टि स्थिति शेष रहने के लिए कारणभूत पल्य का संख्यात बहुभागमात्र स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है | प ४ / ५।५।५।५ | पद–२२ ।।१५९।।

पलिदोवमसत्तादो विदियो पल्लस्स हेदुगो जो दु।
अवरो अपुव्वपढमे ठिदिखंडो संखगुणिदकमा।।१६०।।

पलितोपमसत्त्वतो द्वितीयं पल्यस्य हेतुकं यत्तु।
अवरमपूर्वप्रथमे स्थितिखंडं संख्यगुणितक्रमम्।।१६०।।

तस्मात्पल्यमात्रावशिष्टस्थितौ प्रविष्टद्वितीयस्थितिकाण्डकायाम: संख्यातगुण: त्रयोविंशं [प ४ / ५ ।५] पदम् २३। तस्मात्पल्यमात्रावशेषकरणनिमित्तपल्यसंख्यातैकभागमात्रस्थितिकाण्डकायाम: संख्यातगुण: [प / १] पल्यप्रविष्टकाण्डकभागहारात्पल्यहेतुकाण्डकभागहारस्य संख्यात-गुणहीनत्वात् । चतुर्विंशं पदम् २४। एतस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारब्धजघन्यस्थिति-काण्डकायाम: संख्यातगुण: [प / १] पंचविंशं पदम् २५ ।।१६०।।

अन्वयार्थ– उससे **(पलिदोवमसत्तादो विदियो ठिदिखंडो)** २३) पल्योपमप्रमाण सत्त्व शेष रहने के अनन्तर होने वाला दूसरा स्थितिकांडक, उसके बाद **(पल्लस्स हेदुगो जो दु)** २४) पल्योपम स्थिति शेष रहने में कारणभूत स्थितिकांडक **(अपुव्वपढमे अवरो ठिदिखंडो)** २५) अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला जघन्य स्थितिकांडक ये तीन पद **(संखगुणिदकमा)** क्रम से संख्यातगुणे हैं।।१६०।।

टीकार्थ– उससे पल्यमात्र स्थिति शेष रहनेपर प्रविष्ट हुआ दूसरा स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है [प ४ / ५ ।५] पद–२३। (पल्यमात्र स्थिति शेष रहने पर प्रथम स्थितिकांडक संख्यात बहुभाग मात्र होता है। उसके पश्चात् पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति शेष रहती है । उसका पुन: बहुभाग ग्रहण करने के लिए ५ से भाग दिया और ४ से गुणा किया। इतना दूसरा स्थितिकांडक ग्रहण करता है) उससे पल्यमात्र स्थिति शेष रहने में कारणभूत पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है [प / १ १] क्योंकि पल्य में प्रविष्ट काण्डक भागहार से पल्य में कारणभूत कांडक का भागहार संख्यातगुणा हीन है (भागहार छोटा होने से उत्तर बड़ा आता है) पद–२४। इससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रारंभ किया जघन्य स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है। [प / १] पद–२५। ।।१६०।।

पलिदोवमसत्तादो पढमो ठिदिखंडओ दु संखगुणो।
पलिदोवमठिदिसत्तं होदि विसेसाहियं तत्तो[५]।।१६१।।

पल्योपमसत्त्वत: प्रथमं स्थितिखण्डकं तु संख्यगुणम्।
पल्योपमस्थितिसत्त्वं भवति विशेषाधिकं तत:।।१६१।।

अस्मात्पल्यमात्रावशेषस्थितौ प्रविष्टपल्यसंख्यातबहुभागमात्रप्रथमकाण्डकायाम: संख्यातगुण: [प ४ / ५] षड्विंशं पदम् २६। अमुष्मात्पल्यमात्रावशेषस्थितिसत्त्वं विशेषाधिकं [प] विशेषप्रमाणं च पल्यसंख्यातैकभागमात्रं । सप्तविंशं पदम् २७ ।

अन्वयार्थ– उससे **(पलिदोवमसत्तादो पढमो ठिदिखंडओ दु)** २६) पल्योपम स्थितिसत्त्व रहने पर प्रवृत्त होने वाला प्रथम स्थितिकांडक **(संखगुणो)** संख्यातगुणा है। **(तत्तो)** उससे **(पलिदोवमठिदिसत्तं)** २७) पल्योपम स्थितिसत्त्व **(विसेसाहियं)** विशेष अधिक **(होदि)** है।

टीकार्थ– इससे पल्यमात्र स्थिति शेष रहने पर प्रविष्ट हुआ पल्य का संख्यात बहुभाग मात्र प्रथम कांडकायाम संख्यातगुणा है [प ४ / ५] पद–२६। इससे पल्यमात्र शेष स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है [प]।विशेष का प्रमाण पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र है। पद–२७।।१६१।।

विदियकरणस्स पढमे ठिदिखंडविसेसयं तु तदियस्स।
करणस्स पढमसमये दंसणमोहस्स ठिदिसत्तं।।१६२।।

द्वितीयकरणस्य प्रथमे स्थितिखण्डविशेषकं तु तृतीयस्य।
करणस्य प्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वम्।।१६२।।

तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये जघन्योत्कृष्टकाण्डकयोर्विशेष: पल्यसंख्यातभाग–न्यूनसागरोपमपृथक्त्वमात्र: संख्यातगुण: [सा ७– प / ८ ९] अष्टाविंशं पदम् २८। एतस्मादनिवृत्तिकरणप्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं [सा ७ ल / ८] एकान्नत्रिंशं पदम् २९ ।।१६२।।

अन्वयार्थ– उससे **(विदियकरणस्स पढमे ठिदिखंडविसेसयं तु)** २८) अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिखंडविशेष (उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिकाण्डक का अन्तर संख्यात गुणा है।) उससे **(तदियस्स करणस्स)** २९) तृतीय अनिवृत्तिकरण के **(पढमसमये)** प्रथम समय में **(दंसणमोहस्स ठिदिसत्तं)** दर्शनमोहनीय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। (यह आगे की १६३ गाथा से अर्थ लगाना चाहिए।) ।।१६२।।

टीकार्थ– उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य और उत्कृष्ट काण्डक में अन्तर संख्यातगुणा है। वह प्रमाण पल्य के संख्यातवें भाग से कम सागरोपमपृथक्त्व मात्र है। [सा ७– प / ८ ९] [सागरोपमपृथक्त्व – पल्य / संख्यात] (यहाँ पृथक्त्व शब्द का अर्थ ७–८ ग्रहण करना चाहिए। उत्कृष्ट स्थितिकांडक सागरोपम पृथक्त्व मात्र है और जघन्य स्थितिकाण्डक पल्य का संख्यातवाँ भाग है। इसलिए ७–८ सागर में से पल्य का संख्यातवाँ भाग कम करने पर उत्कृष्ट व जघन्य स्थितिकांडक के अंतर का प्रमाण आता है।) पद–२८।

इससे अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में दर्शनमोहनीय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है [सा ७ ल / ८] (सागरोपमलक्षपृथक्त्व = ७/८ लाख सागरोपम) पद-२९ ।।१६२।।

दंसणमोहूणाणं बंधो सत्तो य अवर वरगो य।
संखेण य गुणियकमा तेत्तीसा एत्थ पदसंखा[१]।।१६३।।

दर्शनमोहोनानां बन्धः सत्त्वं चावरं वरकं च।
संख्येन च गुणितक्रमं त्रायस्त्रिंशदत्र पदसंख्या।।१६३।।

तस्माद्दर्शनमोहवर्जितानां ज्ञानावरणादिशेषकर्मणां जघन्यस्थितिबन्धः कृतकृत्यवेदक-प्रथमसमयसम्भवी संख्यातगुणः [सा अं को २ / ४ । ४ । ४] त्रिंशं पदम् ३० । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये तेषामेव कर्मणामुत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्यातगुणः [सा अं को २ / ४ । ४] एकत्रिंश पदम् ३१ । तस्मात्तेषामेव कर्मणामनिवृत्तिकरणचरमभागे सम्भवि जघन्य स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं [सा अं को २ / ४] द्वात्रिंशं पदम् ३२। तस्मात्तेषामेव कर्मणामपूर्वकरणप्रथमसमये सम्भवदु-त्कृष्टस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं [सा अं को २] त्रयस्त्रिंशं पदम् ३३।

एवं दर्शनमोहक्षपणावसरे सम्भवदल्पबहुत्वपदानि त्रयस्त्रिंशत्संख्यानि प्रवचनानुसारेण व्याख्यातानि।

अन्वयार्थ- उससे **(दंसणमोहूणाणं)** दर्शनमोहनीय बिना अन्य कर्मों का **(अवर वरगो य बंधो सत्तो य)** जघन्य स्थितिबंध, उत्कृष्ट स्थितिबंध, जघन्य स्थितिसत्त्व और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व **(संखेण य गुणियकमा)** क्रम से संख्यातगुणे हैं। **(एत्थ)** इस प्रकार यहाँ **(तेत्तीसा पदसंखा)** अल्पबहुत्व पद तैंतीस हैं ।।१६३।।

टीकार्थ- इससे दर्शनमोहनीय छोड़कर ज्ञानावरणादि शेष कर्मों का कृतकृत्य वेदक के प्रथम समय में होने वाला जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है [सा अं को २ / ४ । ४ । ४] (अंतःकोड़ाकोड़ी सागर) पद-३०। उससे उन्हीं कर्मों का अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है। [सा अं को २ / ४ । ४] पद-३१। उससे उन्हीं कर्मों का अनिवृत्तिकरण के अंतिम भाग में होने वाला जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। [सा अं को २ / ४] पद-३२।

उससे उन्हीं कर्मों का अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है [सा अं को २] पद-३३। इस प्रकार दर्शन मोहनीय के क्षय के समय होने वाले तैंतीस अल्पबहुत्व पद प्रवचन के अनुसार कहे हैं।।१६३।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ९९-१००.

क्षायिक सम्यक्त्व संबंधी तैंतीस अल्पबहुत्वपदों की सारणी			
पदों के नाम	**प्रमाण**	**पूर्वपद की अपेक्षा अल्पबहुत्व**	**अर्थसंदृष्टि**
१) जघन्य अनुभागखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त		
२) उत्कृष्ट अनुभागखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	। ५ ४
३) जघन्य स्थितिखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	। ५।४ ४
४) उत्कृष्ट स्थितिखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	। ५।४।५ ४ ४
५) कृतकृत्यवेदककाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
६) सम्यक्त्वप्रकृति का क्षपणाकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	।४
७) अनिवृत्तिकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	।४।४
८) अपूर्वकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	।४।४।४
९) गुणश्रेणी–आयाम	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	। ।४।४।४
१०) सम्यक्त्वप्रकृति का द्विचरम स्थितिकांडकायाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	। ।४।४।४।४ =2१
११) सम्यक्त्वप्रकृति का चरम स्थितिकांडकायाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	।४
१२) आठ वर्ष के प्रथम समय का सम्यक्त्वप्रकृति का स्थितिकांडकायाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	।४।४
१३) जघन्य आबाधाकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	।४।४।४

पदों के नाम	**प्रमाण**	**पूर्वपद की अपेक्षा अल्पबहुत्व**	**अर्थसंदृष्टि**
१४) उत्कृष्ट आबाधाकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२१।४।४।४।४
१५) आठ वर्षों का आयाम	आठ वर्ष	संख्यातगुणा	**व ८**
१६) सम्यक्त्व प्रकृति का आठ वर्ष शेष रखने के लिए कारणभूत अंतिम स्थितिकांडकायाम	पल्य का असंख्यातवाँ भाग	संख्यातगुणा	**प– व ८** a a a
१७) सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का अंतिम स्थितिकांडकायाम	पल्य का असंख्यातवाँ भाग	विशेष अधिक	**प** a a a
१८) मिथ्यात्व का क्षय करने पर मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति का प्रथम स्थितिकाण्डकायाम	पल्य का असंख्यात बहुभाग	असंख्यात गुणा	**प** a a a a
१९) मिथ्यात्व के अंतिमस्थितिकांडक के साथ ग्रहण किया मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति का अंतिम स्थितिकांडकायाम	पल्य का असंख्यात बहुभाग	असंख्यात गुणा	**प** a a a
२०) मिथ्यात्व द्रव्य का अंतिम स्थितिकांडकायाम	पल्य का असंख्यातवाँ भाग	विशेष अधिक	**प** a
२१) दूरापकृष्टि मात्र स्थिति शेष रहने पर तीन दर्शन मोहनीय का प्रथम स्थितिकांडकायाम	पल्य के संख्यातवें भाग का असंख्यात बहुभाग	असंख्यात गुणा	**प** a **५।५।५।५**a
२२) दूरापकृष्टि स्थिति शेष रखने के लिए कारणभूत स्थितिकांडकायाम	पल्य का संख्यात बहुभाग	संख्यातगुणा	**प ४** **५।५।५।५**

पदों के नाम	प्रमाण	पूर्वपद की अपेक्षा अल्पबहुत्व	अर्थसंदृष्टि
२३) पल्यमात्र स्थिति शेष रहने पर प्रविष्ट हुआ दूसरा स्थितिकांडकायाम	पल्य का संख्यात बहुभाग	संख्यातगुणा	प ४ ५।५
२४) पल्यमात्र स्थिति शेष रखने के लिए कारणभूत स्थितिकांडकायाम	पल्य का संख्यातवाँ भाग	संख्यातगुणा	प १
२५) अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य स्थितिकांडकायाम	पल्य का संख्यातवाँ भाग	संख्यातगुणा	प १
२६) पल्यमात्र स्थिति शेष रहने पर प्रविष्ट हुआ प्रथम स्थितिकांडकायाम	पल्य का संख्यात बहुभाग	संख्यातगुणा	प ४ ५
२७) पल्यमात्र स्थितिसत्त्व	पल्य	विशेष अधिक	प
२८) अपूर्वकरण के प्रथम समय में जघन्य और उत्कृष्ट कांडक का अंतर	७ से८ सागर– पल्य का संख्यातवाँ भाग	संख्यातगुणा	सा ७–प ८ १
२९) अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में दर्शनमोहनीय का स्थितिसत्त्व	सागरोपम लक्ष पृथक्त्व	संख्यातगुणा	सा ७ ल ८
३०) ज्ञानावरणादिकर्मों का कृतकृत्य वेदक के प्रथम समय में जघन्य स्थितिबंध	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा. अं. को. २ ४ । ४ । ४
३१) अपूर्वकरण के प्रथम समय में ज्ञानावरणादि कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा. अं. को. २ ४ । ४
३२) अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में ज्ञानावरणादि कर्मों का जघन्य स्थितिसत्त्व	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा. अं. को. २ ४
३३) ज्ञानावरणादि कर्मों का अपूर्वकरण के प्रथम समय में उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा. अं. को. २

क्षायिक सम्यक्त्वसंबंधी तैंतीस अल्पबहुत्वपदों की रचना–

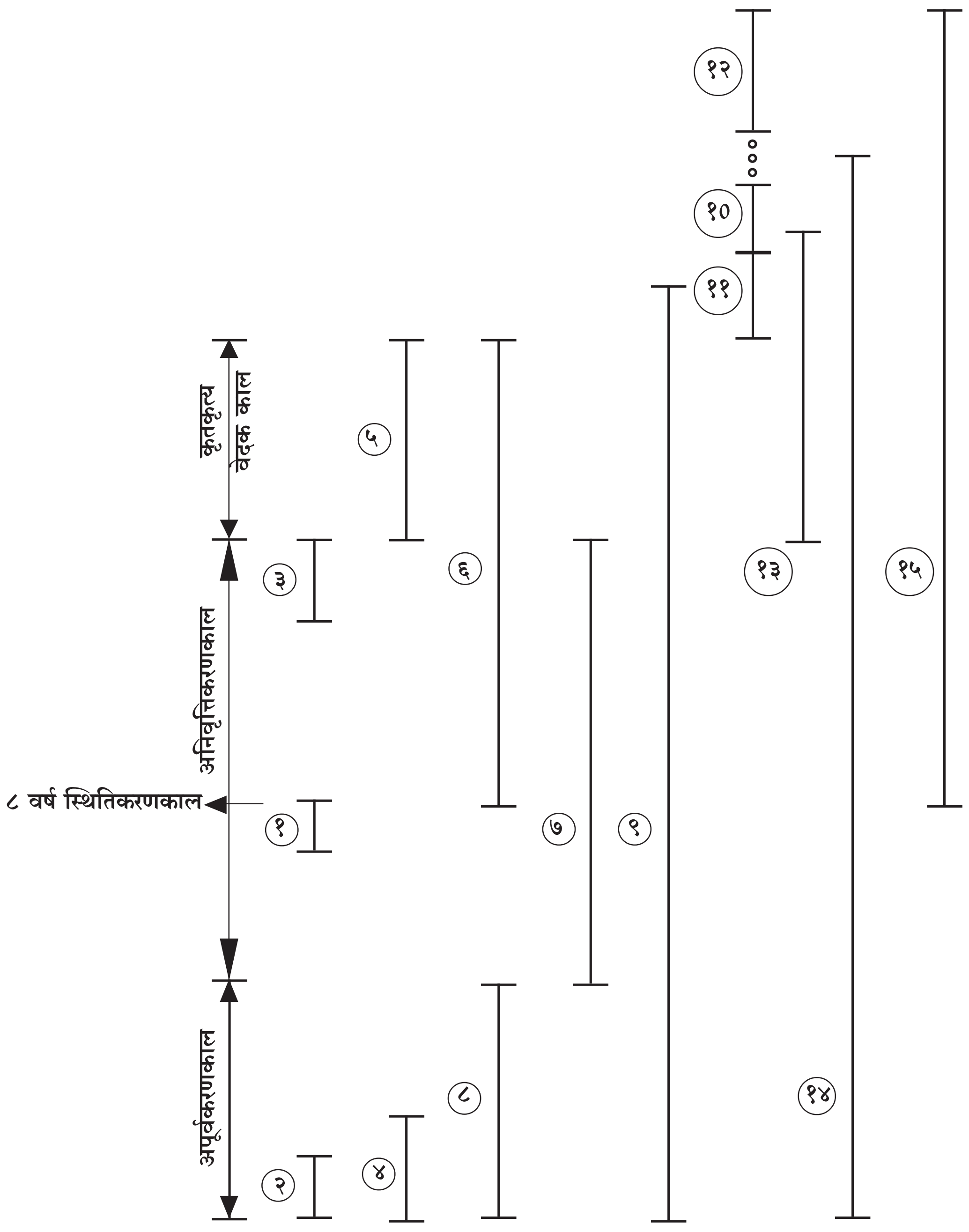

क्षायिक सम्यक्त्वसंबंधी तैंतीस अल्पबहुत्वपदों की रचना –

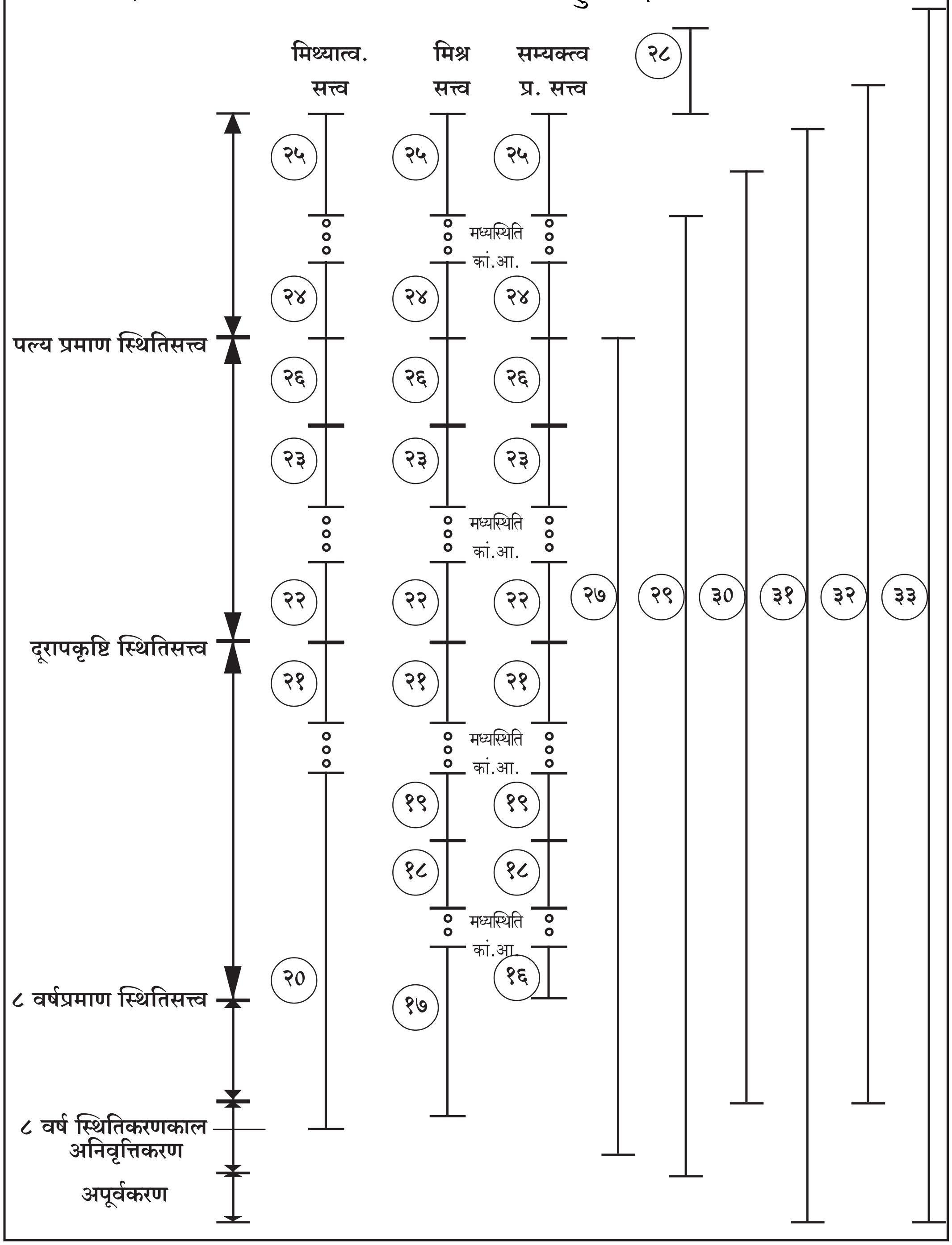

सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं।
मेरु व णिप्पकंपं सुणिम्मलं अक्खयमणंतं।।१६४।।
दंसणमोहे खविदे सिज्झदि तत्थेव[1] तदियतुरियभवे।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेससम्मेव।।१६५।।
सत्तण्हं पयडीणं खयादु अवरं तु खइयलद्धी दु।
उक्कस्सखइयलद्धी घाइचउक्कखएण हवे।।१६६।।

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम् ।
मेरुरिव निष्प्रकम्पं सुनिर्मलमक्षयमनन्तम्।।१६४।।
दर्शनमोहे क्षपिते सिद्ध्यति तत्रैव तृतीयतुर्यभवे।
नातिक्रामति तुर्यभवं न विनश्यति शेषसम्यगिव।।१६५।।
सप्तानां प्रकृतीनां क्षयादवरा तु क्षायिकलब्धिस्तु।
उत्कृष्टक्षायिकलब्धिर्घातिचतुष्कक्षयेण भवेत्।।१६६।।

सत्तह्णमित्यादिगाथात्रयस्यार्थः सुगमः किन्तु निष्प्रकम्पं निश्चलं सुनिर्मलं अतिशयेन शङ्कादिमलरहितं अक्षयं गाढं अहीनशक्तिकत्वेन शिथिलत्वाभावात्। अनन्तं अपर्यवसानं तुर्यभवं भोगभूमिभवापेक्षया। जघन्यक्षायिकलब्धिरसंयतसम्यग्दृष्टौ उत्कृष्टक्षायिकलब्धिः परमात्मनि सम्भवति।।१६४-१६६।। एवं दर्शनमोहक्षपणाटिप्पणम्।

अन्वयार्थ– (सत्तण्हं पयडीणं खयादु) अनन्तानुबन्धी चार कषाय और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियाँ ऐसी सात प्रकृतियों के क्षय से **(मेरु व णिप्पकंपं)** मेरु समान निष्प्रकंप **(सुणिम्मलं)** अतिशय निर्मल **(अक्खयं अणंतं)** अविनाशी अनन्त ऐसा **(खइयं तु सम्मत्तं)** क्षायिक सम्यक्त्व **(होदि)** होता है।।१६४।।

(दंसणमोहे खविदे) दर्शनमोह का क्षय होने पर **(तत्थेव)** उस ही भव में **(तदियतुरियभवे)** तीसरे अथवा चौथे भव में **(सिज्झदि)** सिद्ध होता है। **(तुरियभवं)** चौथे भव का **(णादिक्कदि)** उल्लंघन नहीं करता। **(सेससम्मेव)** शेष सम्यक्त्व के समान (औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के समान) **(ण विणस्सदि)** नष्ट नहीं होता हैं।।१६५।।

(सत्तण्हं पयडीणं खयादु) सात प्रकृतियों के क्षय से **(अवरं तु खइयलद्धी दु)** जघन्य क्षायिक लब्धि प्राप्त होती है। **(घाइचउक्कखएण)** चार घातिया कर्मों के क्षय से **(उक्कस्सखइयलद्धी)** उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि **(हवे)** होती है।।१६६।।

---

१) पाठभेद– एक्केव। का. ह. प्रती

टीकार्थ– 'सत्तण्हमित्यादि' तीन गाथा का अर्थ सुगम है। परन्तु निष्प्रकम्प अर्थात् निश्चल, सुनिर्मल अर्थात् अतिशयरूप से शंकादिमल से रहित, अक्षय अर्थात् गाढ़ क्योंकि शक्तिहीन न होने से शिथिलता का अभाव है। अनन्त अर्थात् अपर्यवसान (अन्तरहित)। भोगभूमि की अपेक्षा से चार भव होते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि को जघन्य क्षायिक लब्धि व परमात्मा को उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि होती है।।१६४-१६६।।

विशेषार्थ– कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि उसी भव से मोक्ष जाता है। कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि नरक अथवा देवगति में जन्म लेता है तो वह वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाता है उसकी अपेक्षा तीन भव बताये है। यदि कोई जीव क्षायिक सम्यक्त्व होने के पूर्व मिथ्यात्व अवस्था में तिर्यंचायु अथवा मनुष्यायु का बंध करता है तो वह मरणकर भोगभूमि में तिर्यंच अथवा मनुष्य होता है। वहाँ से मरणकर पहले अथवा दूसरे स्वर्ग में उत्पन्न होता है। आयु पूर्ण होने पर वहाँ से मनुष्य गति में उत्पन्न होकर उसी भव से मोक्ष चला जाता है। अत: क्षायिक सम्यग्दृष्टि के ज्यादा से ज्यादा चार भव होते हैं।

[1]उवणेउ मंगलं वो भवियजणा जिणवरस्स कमकमलजुयं।
जसकुलिसकलससत्थियससंकसंखकुसादिलक्खणभरियं।।१६७।।

उपनयतु मंगलं वो भविकजना जिनवरस्य क्रमकमलयुगम्।
झषकुलिशकलशशक्थिकशशांकशंखांकुशादिलक्षणभरितम् ।।१६७।।

अन्वयार्थ– (भवियजणा) हे भव्य जीवों **(जसकुलिसकलससत्थियस-संकसंखकुसादिलक्खणभरियं)** मत्स्य, वज्र, कलश, स्वस्तिक, चंद्रमा, शंख, अंकुश आदि लक्षणों से परिपूर्ण **(जिणवरस्स कमकमलजुयं)** जिनेन्द्र भगवान के चरणकमल युगल **(वो)** तुम्हें **(मंगलं)** मंगलता **(उवणेउ)** प्रदान करें ।।१६७।।

इति क्षायिकसम्यक्त्वप्ररूपणं समाप्तम्।

---

१) रायचंद्र जैन शास्त्रमाला के मुद्रित पुस्तक में और सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामक टीका में **'सम्मे असंखवस्सिय'** इत्यादि १५६ नं. गाथा और **'उवणेउ मंगलं वो'** इत्यादि १६७ क्र. की गाथा उपलब्ध नहीं है।

देशसंयमलब्धि–अधिकार

अथ दर्शनमोहक्षपणाविधानप्ररूपणानन्तरं देशसकलसंयमलब्धिप्ररूपणार्थमिदं सूत्रमाह–

दुविहा चरित्तलद्धी देसे सयले य देसचारित्तं[1]।
मिच्छो अयदो सयलं ते वि य देसो य लब्भेई।।१६८।।

द्विधा चारित्रलब्धिर्देशे सकले च देशचारित्रम् ।
मिथ्योऽयतः सकलं तावपि च देशश्च लभते ।।१६८।।

चारित्रस्य लब्धिः प्राप्तिः चारित्रमेव वा लब्धिः; सा द्विविधा देशेन साकल्येन च। तत्र देशचारित्रं मिथ्यादृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च लभेते । सकलचारित्रं तौ च देशसंयतश्च लभन्ते ।।१६८।।

अब दर्शन मोहनीय के क्षय के विधान का वर्णन करने के पश्चात् देशसंयम और सकलसंयम लब्धि का वर्णन करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(चरित्तलद्धी दुविहा)** चारित्रलब्धि दो प्रकार की है। **(देसे सयले य)** देशचारित्र और सकलचारित्र । **(देसचरित्तं)** देशचारित्र को **(मिच्छो अयदो)** मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि **(लब्भेई)** प्राप्त होते हैं। **(सयलं)** सकलचारित्र को **(ते वि य देसो य)** वे दोनों भी और देशसंयत भी **(लब्भेई)** प्राप्त होते हैं।।१६८।।

टीकार्थ– चारित्र की लब्धि अर्थात् प्राप्ति अथवा चारित्र ही लब्धि है। वह दो प्रकार की है – देशरूप से और सकलरूप से । उसमें से देशचारित्र को मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि प्राप्त होते हैं और सकलचारित्र को वे दोनों और देशसंयत प्राप्त होते हैं।।१६८।।

विशेषार्थ– चारित्रलब्धि के दो भेद हैं – देशचारित्र और सकलचारित्र। इनका क्रम से संयमासंयमलब्धि और संयमलब्धि भी नाम हैं। कषायप्राभृत में इन दोनों का निरूपण करने वाली मात्र एक गाथा आयी है। गाथा का भाव यह है कि संयमासंयम लब्धि और चारित्रलब्धि की उत्तरोत्तर वृद्धि अथवा वृद्धिहानि तथा पूर्वबद्ध कर्मों की उपशामना किस प्रकार होती है यह जानने योग्य है। इस गाथा की व्याख्या करते हुए जयधवला में संयमासंयम लब्धि का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है कि देशचारित्र का घात करने वाले अप्रत्याख्यानावरण कषायों के उदयाभाव से हिंसादि दोषों के एकदेश विरतिस्वरूप अणुव्रतों को प्राप्त होने वाले जीव के जो विशुद्धिरूप परिणाम होते हैं उसे देशचारित्र या संयमासंयम लब्धि कहते हैं।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. १०७.

अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशसंयम की प्रतिबन्धक है, अत: देशसंयम के काल में उसकी अनुदय लक्षण उपशामना रहती है। प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और नौ नोकषायों का उदय होने पर भी वहाँ उनका उदय सर्वघाति न होने से उनका उदय रहते हुए भी देशसंयम के होने में कोई बाधा नहीं आती। कषायप्राभृत की उक्त गाथा के तीसरे पद में 'वड्ढावड्ढी पद आया है। जयधवला में उसके दो अर्थ किये हैं। प्रथम अर्थ है कि संयमासंयम लब्धि और सकललब्धि के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रतिसमय अनन्तगुणित श्रेणिरूप से विशुद्धिरूप परिणामों में वृद्धि होती रहती है। दूसरा अर्थ यह है कि 'वड्ढावड्ढी' पद का पदच्छेद करने पर वड्ढि और अवड्ढि' ऐसे दो पद निष्पन्न होते हैं। जिसमें आये हुए अवड्ढि पद से यह अर्थ फलित होता है कि जब जीव संयमलब्धि और संयमासंयम लब्धि से गिरने के सन्मुख होता है तब संक्लेशरूप परिणामों के कारण प्रतिसमय विशुद्धिरूप परिणामों की अनन्तगुणी हानि होने लगती है। वड्ढि शब्द का अर्थ पूर्ववत् है।

संपूर्ण सावद्य से (दोषों से) विरतिलक्षण पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियों को प्राप्त होने वाले जीव के विशुद्धिरूप परिणाम होते हैं उसे संयमलब्धि समझना चाहिए, क्योंकि क्षायोपशमिक चारित्रलब्धि को संयमलब्धि कहते हैं।[1]

तत्र मिथ्यादृष्टेर्देशसंयमलब्धौ सामग्रीमाह –

अंतोमुहुत्तकाले देसवदी होहिदि त्ति मिच्छो हु।
सोसरणो सुज्झंतो करणं पि करेदि सगजोग्गं[2]।।१६९।।

अन्तर्मुहूर्तकाले देशव्रती भविष्यतीति मिथ्यो हि।
सापसरण: शुध्यन् करणान्यपि करोति स्वकयोग्यम्।।१६९।।

यस्मात्परमन्तर्मुहूर्तकालं नीत्वा मिथ्यादृष्टिर्देशव्रती भविष्यति तस्मिन् काले सुविशुद्धमिथ्यादृष्टि: प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्ध्या वर्धमान: आयुर्वर्जितकर्मणां बन्धसत्त्वयोरन्त:कोटीकोटिमात्रावशेषकरणेन स्थित्यपसरणमशुभकर्मणामनन्तैकभागमात्रावशेषकरणेनानुभागापसरणं च कुर्वन् स्वयोग्यं करणपरिणामं कुरुते ।।१६९।।

मिथ्यादृष्टि को देशसंयम की प्राप्ति में जो सामग्री होती है उसे कहते हैं–

अन्वयार्थ– (अंतोमुहुत्तकाले देसवदी होहिदि त्ति) अंतर्मुहूर्त काल के पश्चात् जो देशव्रती होगा ऐसा **(मिच्छो हु)** मिथ्यादृष्टि जीव **(सोसरणो)** अपसरण सहित **(सुज्झंतो)** शुद्ध होता हुआ **(सगजोग्गं करणं पि)** अपने योग्य करण भी **(करेदि)** करता है।।१६९।।

टीकार्थ– जिसके बाद अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत होने पर मिथ्यादृष्टि देशव्रती होगा उस काल में सुविशुद्ध मिथ्यादृष्टि प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि से बढ़ने वाला आयु

१) जयध. पु. १३, पृ. १०७ २) जयध. पु. १३, पृ. १२४.

छोड़कर अन्य कर्मों का बन्ध व सत्त्व अन्त:कोड़ाकोड़ीमात्र शेष करने के द्वारा स्थिति का अपसरण और अशुभकर्मों का अनुभाग अनन्तवाँ भागमात्र शेष करने के द्वारा अनुभाग का अपसरण करता हुआ अपने योग्य करण परिणाम करता है। ।।१६९।।

विशेषार्थ– जो मिथ्यादृष्टि जीव अंतर्मुहूर्तकाल में संयमासंयम को प्राप्त करता है वह जैसे अशुभकर्मों के अनुभाग बन्ध को द्विस्थानीय करता है वैसे ही उन कर्मों के सत्त्व को भी द्विस्थानीय करता है। इतना यहाँ अशुभकर्मों के विषय में विशेष समझना चाहिए। सातादि शुभकर्मों का अनुभागबंध और अनुभागसत्कर्म को चतु:स्थानीय करता है, क्योंकि उसका अनुभाग शुभ परिणामनिमित्तक है, परन्तु पाँच ज्ञानावरणादि अशुभ कर्मों का अनुभागबंध और अनुभाग सत्कर्म को नियम से द्विस्थानीय करता है, क्योंकि विशुद्धिरूप परिणामों के निमित्त से उन कर्मों के द्विस्थान से ऊपर के अनुभाग का घात हो जाता है।

तत्र मिथ्यादृष्टेर्देशसंयमलब्धौ सम्यक्त्वविभागेन करणपरिणामविभागप्रदर्शनार्थमिदमाह–

मिच्छो देसचरित्तं उवसमसम्मेण गेण्हमाणो हु ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा तिकरणचरिमम्हि गेण्हदि हु[1] ।।१७०।।

मिथ्यो देशचारित्रं उपशमसम्येन गृह्णन् हि ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव त्रिकरणचरमे गृह्णाति हि ।।१७०।।

यदानादिमिथ्यादृष्टिर्वा सादिमिथ्यादृष्टिर्वा जीव: औपशमिकसम्यक्त्वेन सह देशचारित्रं गृह्णान: दर्शनमोहोपशमविधानेन प्रागुक्तप्रकारेण सम्यक्त्वोत्पतौ त्रिकरणचरमसमये देशचारित्रं गृह्णाति । यथा दर्शनमोहोपशमने प्रकृतिबन्धापसरणं स्थितिबन्धापसरणं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धि: अप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुणहान्यानुभागबन्ध: अध:प्रवृत्तादिकरणपरिणामा: स्थितिकाण्डक-घातादयश्च ये कार्यविशेषा: ते सर्वेऽपि औपशमिकसम्यक्त्वचारित्रयोर्युगपद्ग्रहणेऽप्यनूनं वक्तव्या विशेषाभावादित्यभिप्राय: ।।१७०।।

उसमें मिथ्यादृष्टि को देशसंयमलब्धि प्राप्त होने पर सम्यक्त्व के विभाग से करण परिणाम का विभाग दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ–(उवसमसम्मेण) उपशम सम्यक्त्व सहित **(देसचरित्तं)** देशचारित्र को **(गेण्हमाणो हु)** ग्रहण करने वाला **(मिच्छो)** मिथ्यादृष्टि **(सम्मत्तुप्पत्तिं वा)** सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समान **(तिकरणचरिमम्हि)** तीन करण के अंतिम समय में (देशचारित्र को) **(गेण्हदि हु)** ग्रहण करता है ।।१७०।।

टीकार्थ– जब अनादि मिथ्यादृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव औपशमिक सम्यक्त्व के साथ देशचारित्र को ग्रहण करता है तब सम्यक्त्व की उत्पत्ति में पूर्व में कहे गये प्रकार

१) जयध. पु. १३, पृ. ११३.

से दर्शनमोह का उपशम विधान से तीन करण के अंतिम समय में देशचारित्र को ग्रहण करता है। जैसे दर्शनमोह के उपशमना में प्रकृतिबंधापसरण, स्थितिबंधापसरण, प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धिवृद्धि, अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रत्येक समय में अनन्तगुणी हानि से अनुभाग बन्ध, अध:प्रवृत्तादि करण परिणाम, स्थितिकाण्डक घातादि जो कार्यविशेष होते हैं, वे सभी कार्यविशेष औपशमिक सम्यक्त्व और चारित्र को एक साथ ग्रहण करते हुए भी पूर्णत: कथन करना चाहिए, क्योंकि कुछ भी विशेष नहीं है। यह अभिप्राय है ।।१७०।।

अथ सादिमिथ्यादृष्टेर्वेदकसम्यक्त्वेन सह देशचारित्रग्रहणे संभवद्विशेषप्रतिपादनार्थमिदं गाथाद्वयमाह–

मिच्छो देसचरित्तं वेदगसम्मेण गेण्हमाणो हु।
दुकरणचरिमे गेण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे[1] ।।१७१ ।।

सम्मत्तुप्पत्तिं वा थोवबहुत्तं च होदि करणाणं।
ठिदिखंडसहस्सगदे अपुव्वकरणं समप्पदि हु[2] ।।१७२ ।।

मिथ्यो देशचारित्रं वेदकसम्येन गृह्णन् हि।
द्विकरणचरमे गृह्णाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ।।१७१ ।।

सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव स्तोकबहुत्वं च भवति करणानाम्।
स्थितिखंडसहस्रगतमपूर्वकरणं समाप्यते हि ।।१७२ ।।

वेदकसम्यक्त्वयोग्य: सादिमिथ्यादृष्टिर्जीवो वेदकसम्यक्त्वेन सह देशचारित्रं गृह्णान: अध:प्रवृत्तापूर्वकरणपरिणामद्वयं प्रतिपद्यमानो गुणश्रेणिवर्जितानि स्थितिखण्डादीनि सर्वाण्यपि कार्याणि कुर्वन् अपूर्वकरणचरमसमये वेदकसम्यक्त्वं देशचारित्रं च युगपद् गृह्णाति तत्रानिवृत्तिकरणपरिणामं विनापि वेदकसम्यक्त्वदेशचारित्रप्राप्तिसम्भवात् । अध:प्रवृत्तकरणकालात् संख्यातगुणहीनोऽपूर्वकरणकाल इत्यनयो: करणपरिणामयो: काल: स्तोकबहुत्वमन्यान्यपि कार्याणि यथा सम्यक्त्वोत्पत्तौ प्रतिपादितानि तथात्रापि वेदितव्यानीत्यर्थ: । एवमपूर्वकरणकालाभ्यन्तरे संख्यातसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेषु अपूर्वकरणकाल: परिसमाप्यते । एवमसंयतसम्यग्दृष्टि–रप्यध:प्रवृत्तापूर्वकरणद्वयकालचरमसमये देशचारित्रं प्रतिपद्यते। तस्य गुणश्रेणिं विनावशिष्टसर्वकार्याणि अपूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तमविशेषेण ज्ञातव्यानि। मिथ्यादृष्टिग्रहणमुपलक्षणं तेन व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायमवलम्ब्यासंयतवेदकसम्यग्दृष्टेरपि देशचारित्रग्रहणक्रमो दर्शित: । सिद्धान्तेऽपि तथैव व्याख्यानात्। अपूर्वकरणकाले कुतो गुणश्रेण्यभाव: ? इति चेत् उपशम–सम्यक्त्वाभावात्तन्निबन्धनगुणश्रेण्यभाव:, देशसंयमस्याद्याप्यग्रहणात् तन्निमित्तकगुणश्रेणेरप्यभाव: वेदकसम्यक्त्वस्य च गुणश्रेणिहेतुत्वाभावात् इति ब्रूमहे । अनिवृत्तिकरणपरिणामं विना कथं

१) जयध. पु. १३, पृ. १२१. २) जयध. पु. १३, पृ. १२२.

देशचारित्रप्राप्तिरित्यपि नाशङ्कनीयं, कर्मणां सर्वोपशमनविधाने निर्मूलक्षयविधाने चानिवृत्तिकरण-परिणामस्य व्यापारो, न क्षयोपशमविधाने इति प्रवचने प्रतिपादितत्वात् ।।१७१-१७२।।

अब सादि मिथ्यादृष्टि को वेदक सम्यक्त्व के साथ देशचारित्र ग्रहण करने में होनेवाले विशेष का प्रतिपादन करने के लिए ये दो गाथाएँ कहते हैं -

अन्वयार्थ- **(वेदगसम्मेण)** वेदक सम्यक्त्व के साथ **(देसचरित्तं)** देशचारित्र को **(गेण्हमाणो हु)** ग्रहण करने वाला **(मिच्छो)** मिथ्यादृष्टि **(दुकरणचरिमे)** दो करणों के अंतिम समय में देशचारित्र को **(गेण्हदि)** ग्रहण करता है। **(तक्करणे)** उन करणोंमें **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि **(णत्थि)** नहीं होती। **(सम्मत्तुप्पत्तिं वा)** सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समान यहाँ भी **(करणाणं)** करणपरिणामों का **(थोवबहुत्तं)** अल्पबहुत्व **(होदि)** होता **है। (द्विदिखंडसहस्सगदे)** हजारों स्थितिकाण्डक व्यतीत करने पर **(अपुव्वकरणं)** अपूर्वकरण **(समप्पदि हु)** समाप्त होता है ।।१७१-१७२।।

टीकार्थ- वेदक सम्यक्त्व के योग्य सादि मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्व के साथ देशचारित्र को ग्रहण करने वाला अध:प्रवृत्त और अपूर्वकरण इन दो परिणामों को प्राप्त होकर गुणश्रेणी छोड़कर स्थितिखण्डादि सभी कार्य करता हुआ अपूर्वकरण के अंतिम समय में वेदक सम्यक्त्व और देशचारित्र को एक ही समय में ग्रहण करता है, क्योंकि वहाँ अनिवृत्तिकरण परिणाम के बिना भी वेदक सम्यक्त्व और देशचारित्र की प्राप्ति संभव है। अध:प्रवृत्तकरणकाल से अपूर्वकरण का काल संख्यातगुणा कम है। इसप्रकार इन दो करण परिणामों का काल, अल्पबहुत्व और अन्य कार्य जैसे सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कहे वैसे यहाँ भी जानना चाहिए। इस प्रकार अपूर्वकरण काल में संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होने पर अपूर्वकरण काल समाप्त होता है।

इसी प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि भी अध:प्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण इन दोनों कालों के अंतिम समय में देशचारित्र को प्राप्त करता है। उसके गुणश्रेणि बिना शेष सभी कार्य अपूर्वकरण के अंतिम समय तक समान रूप से जानना चाहिए। मिथ्यादृष्टि का ग्रहण उपलक्षणरूप है इसलिए 'व्याख्यान से विशेष का ज्ञान होता है' इस न्याय का आश्रय करके असंयत सम्यग्दृष्टि के देशचारित्र के ग्रहण का क्रम दिखाया है। सिद्धान्त में भी उसका प्रतिपादन किया है। इस अपूर्वकरण के काल में गुणश्रेणि का अभाव क्यों है? तो उपशम सम्यक्त्व का अभाव होने से उस निमित्तक गुणश्रेणि का भी अभाव है। वेदक सम्यक्त्व गुणश्रेणि का कारण नहीं है ऐसा हम कहते हैं। अनिवृत्तिकरण परिणाम के बिना देशचारित्र की प्राप्ति कैसे होती है? ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि कर्मों का संपूर्ण उपशम करने के विधान में और निर्मूल क्षय करने के विधान में अनिवृत्तिकरण का व्यापार है। क्षयोपशम विधान में नहीं, ऐसा प्रवचन में कहा गया है।।१७२।।

विशेषार्थ– असंयत वेदक सम्यग्दृष्टि भी दो करणों के अंतिम समय में देशचारित्र को प्राप्त होता है। मिथ्यादृष्टि के कथन से ही सिद्धान्त के अनुसार असंयत सम्यग्दृष्टि का भी ग्रहण होता है। यहाँ उपशम सम्यक्त्व का अभाव होने से उस संबंधी गुणश्रेणी नहीं है और देशचारित्र को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है अत: तत्संबंधी भी गुणश्रेणी नहीं है। उसी प्रकार वेदक सम्यक्त्व भी गुणश्रेणी का कारण नहीं है इसलिए यहाँ अपूर्वकरण में गुणश्रेणि का अभाव कहा गया है।

अथ देशसंयमकालप्राप्तितदानींतनगुणश्रेणिकरणप्रतिपादनार्थमिदमाह–

से काले देसवदी असंखसमयप्पबद्धमाहरिय।
उदयावलिस्स वाहिं गुणसेढिमवट्ठिदं कुणदि।।१७३।।

तस्मिन् काले देशव्रती असंख्यसमयप्रबद्धमाहत्य ।
उदयावलेर्बाह्यं गुणश्रेणीमवस्थितां कुरुते।।१७३।।

अपूर्वकरणचरमसमयादनन्तरसमये जीवो देशव्रती भूत्वा आयुर्वर्जितकर्मणां सत्त्वद्रव्यात् [स a १२– / ७] असंख्यातैकभागमपकृष्य [स a १२– / ७ । ओ] इदं पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागद्रव्यमुपरितनस्थितौ निक्षिपेत् । पुनस्तदेकभागमसंख्यात–लोकेन भक्त्वा तदेकभागमुदयावल्यां दत्त्वा तद्बहुभागमसंख्यातसमयप्रबद्धमात्रं गुणश्रेण्यायामे निक्षिपेत् । अयं च गुणश्रेण्यायाम: देशसंयमप्रथमसमयादारभ्य द्वितीयादिसमयेष्वप्यवस्थित एव न गलितावशेषमात्र: । एतद्गुणश्रेण्यायामप्रमाणं प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तिगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणहीनम् [२११] ।।१७३।।

अब देशसंयम के काल की प्राप्ति और उस समय के गुणश्रेणि करण का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं –

अन्वयार्थ– (से काले) उस काल में **(देसवदी)** देशव्रती **(असंखसमयप्पबद्धमाहरिय)** असंख्यात समयप्रबद्धों का अपकर्षण करके **(उदयावलिस्स वाहिं अवट्ठिदं गुणसेढिं)** उदयावलि के बाहर अवस्थित गुणश्रेणि **(कुणदि)** करता है।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के अंतिम समय के अनन्तर समय में जीव देशव्रती होकर आयु बिना अन्य कर्मों के सत्त्वद्रव्य में से [स a १२– / ७] (सत्त्वद्रव्य = कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित १२ – ,उत्कृष्ट समयप्रबद्ध स a उसमें ७ से भाग देने पर एक कर्म का सत्त्वद्रव्य आता है।) असंख्यातवें भाग का अपकर्षण करके [स a १२– / ७ । ओ] (ओ=अपकर्षण भागहार) इसमें पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर उसमें बहुभाग

द्रव्य उपरितन स्थिति में निक्षेपण करें । पुन: शेष रहे एक भाग में असंख्यात लोक का भाग देकर उसमें से एक भाग उदयावलि में देकर शेष रहा असंख्यात समयप्रबद्धमात्र बहुभाग द्रव्य गुणश्रेणी आयाम में देना चाहिए । यह गुणश्रेणि आयाम देशसंयम के प्रथम समय से आरम्भ करके द्वितीयादि समयों में भी अवस्थित है, गलितावशेषमात्र नहीं है। इस गुणश्रेणि आयाम का प्रमाण प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति सम्बन्धी गुणश्रेणि आयाम से संख्यातगुणा हीन है। २११ (प्रथमोपशम सम्यक्त्वसंबंधी गुणश्रेणी आयाम २१११ इतना है उससे संख्यातगुणा हीन होने से एक संख्यात का गुणकार कम किया है)।।१७३।।

विशेषार्थ- गुणश्रेणि दो प्रकार की होती है - एक गलितावशेष गुणश्रेणि और दूसरी अवस्थित गुणश्रेणि। गलितावशेष गुणश्रेणि तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त के जितने समय होते हैं तत्प्रमाण आयामवाली होती है। सो उदयावलि के एक-एक निषेक के गलने पर उसके प्रमाण में से एक-एक समय की कमी होती जाती है। अवस्थित गुणश्रेणि भी यद्यपि अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण आयामवाली होती है, परन्तु उसमें से उदयावलि के एक निषेक के गलने पर गुणश्रेणिशीर्ष में एक निषेक की वृद्धि होती जाती है। इसलिए इसका प्रमाण सदा स्थिर रहने से इसे अवस्थित गुणश्रेणि कहते है। संयमासंमय की उत्पत्ति काल में तो गुणश्रेणि रचना नहीं होती है। किन्तु संयमासंयम की प्राप्ति के प्रथम समय से ही अवस्थित गुणश्रेणि प्रारम्भ हो जाती है। इतना अवश्य है कि इसके उदयावलि के निषेकों को छोड़कर ऊपर के अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण निषेकों में गुणश्रेणि रचना होती है।

देशसंयमस्यावस्थाविशेषतत्कार्यविभागप्रदर्शनार्थमिदमाह-

दव्वं असंखगुणियक्कमेण एयंतवड्ढिकालो त्ति।
बहुठिदिखंडे तीदे[१] अधापवत्तो हवे देसो।।१७४।।

द्रव्यमसंख्यगुणितक्रमेणैकान्तवृद्धिकाल इति ।
बहुस्थितिखंडेऽतीतेऽधाप्रवृत्तो भवेद्देश: ।।१७४।।

अयं देशसंयत: प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानोऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं द्रव्यमसंख्यातगुणितक्रमेणापकृष्यावस्थितिगुणश्रेण्यायामे निक्षिपन् स्थितिकाण्डकादिकार्यं कुर्वन् एकान्तवृद्धिदेशसंयत इत्युच्यते । एकान्तवृद्धिकालादन्तर्मुहूर्तमात्रात्परं वृद्धिं विना अवस्थितया विशुद्ध्या परिणत: स्वस्थानदेशसंयत: अथाप्रवृत्तदेशसयंत: इत्युच्यते । तस्याथाप्रवृत्तदेशसंयतस्य कालो जघन्येनान्तर्मुहूर्त: । उत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि ।।१७४।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. १२४.

देशसंयम की अवस्थाविशेष और उसके कार्य का विभाग दिखाने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(एयंतवड्ढिकालो त्ति)** एकान्तानुवृद्धि के काल तक **(दव्वं)** द्रव्य का **(असंखगुणियक्कमेण)** असंख्यात गुणित क्रम से अपकर्षण करता है। **(बहुठिदिखंडे तीदे)** बहुत स्थितिकांडक व्यतीत होने के बाद **(अधापवत्तो देसो)** अध:प्रवृत्त देशसंयत **(हवे)** होता है ।।१७४।।

टीकार्थ– प्रत्येक समय में अनन्तगुणी विशुद्धि से बढता हुआ यह देशसंयत अन्तर्मुहूर्त तक असंख्यात गुणित क्रम से द्रव्य का अपकर्षण करके अवस्थित गुणश्रेणि आयाम में निक्षेपण करता हुआ स्थितिकांडकादि कार्य करता है उसे एकान्तवृद्धि देशसंयत ऐसा कहते हैं। अन्तर्मुहूर्त मात्र एकान्तानुवृद्धि काल के पश्चात् वृद्धि बिना अवस्थित विशुद्धि से परिणत देशसंयत को स्वस्थान देशसंयत, अथाप्रवृत्त देशसंयत ऐसा कहते हैं । उस अथाप्रवृत्त देशसंयत का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक कोटिपूर्व वर्षप्रमाण है। ।।१७४।।

विशेषार्थ– देशसंयत के दो भेद हैं – एकान्तवृद्धि देशसंयत और अथाप्रवृत्त या यथाप्रवृत्त देशसंयत । एकान्तवृद्धि देशसंयतका काल देशसंयत के प्राप्त होने के प्रथम समय से अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है। इस काल के भीतर करण परिणाम के बिना भी स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात क्रिया होती रहती है। इतना अवश्य है कि एकान्तवृद्धि का काल समाप्त होने पर स्थिति–अनुभागकाण्डक घात की क्रिया नहीं होती । मात्र गुणश्रेणि निर्जरा सब काल में होती रहती है। उसी प्रकार अनेक स्थितिखंड के द्वारा एकान्तवृद्धि का काल समाप्त होने पर विशुद्धता की वृद्धि से रहित होकर स्वस्थान देशसंयत होता है। उसको अध:प्रवृत्त देशसंयत भी कहते हैं । इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। फिर भी उत्कृष्ट काल मनुष्यों की अपेक्षा से आठ वर्ष और एक अंतर्मुहूर्त कम एक कोटिपूर्व वर्ष प्रमाण है। तिर्यंचों की अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटिपूर्व वर्षप्रमाण है।

तस्मिन्नथाप्रवृत्तदेशसंयतकाले सम्भवत्कार्यविशेषप्रतिपादनार्थमिदमाह––

ठिदिरसघादो णत्थि हु अधापवत्ताभिधाणदेसस्स।
पडिउट्ठिदे मुहुत्तस्संते ण हि तस्स करणदुगा[१] ।।१७५।।

स्थितिरसघातो नास्ति ह्यधाप्रवृत्ताभिधानदेशस्य ।
प्रतिपतिते मुहूर्तस्यान्ते न हि तस्य करणद्विकम् ।।१७५।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २६०.

अथाप्रवृत्तदेशसंयतकाले स्थितिखण्डनमनुभागखण्डनं वा नास्ति । एकान्तवृद्धिदेशसंयतचरमसमये खण्डितावशेषयावन्मात्रस्थित्यनुभागानि कर्माणि तावन्मात्राण्येव अथाप्रवृत्तदेशसंयतकाले अवतिष्ठन्त इत्यर्थः। यः पुनस्तीव्रसंक्लेशकारणबहिरङ्गद्रव्यादिनिरपेक्षः केवलान्तरङ्गकर्मोदय–जनितसंक्लेशपरिणामवशेन देशसंयमात्प्रच्युत्यासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं प्राप्यात्यल्पान्तर्मुहूर्तं तत्र स्थित्वा शीघ्रमेव देशसंयमं गृह्णाति तस्यापि स्थित्यनुभागकाण्डकघातो नास्ति करणद्वयपरिणामं विनैव देशसंयमग्रहणात् । यः पुनस्तीव्रविराधनाकारणबहिरङ्गद्रव्यादिसन्निधाने देशसंयमं सम्यक्त्वं च विराध्य मिथ्यात्वं गत्वा दीर्घमन्तर्मुहूर्तं संख्यातासंख्यातवर्षाणि वा वेदकयोग्यकालप्रमितानि स्थित्वा पुनरपि लब्धिवशेन वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत्प्रतिपद्यते तस्याधःप्रवृत्तापूर्वकरणद्वयपरिणामसम्भवात् स्थित्यनुभागकाण्डकघातोऽस्ति ।

उस अथाप्रवृत्त देशसंयत के काल में संभव होने वाले कार्य विशेष का प्रतिपादन करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– (अधापवत्ताभिधाणदेसस्स हु) अधःप्रवृत्त नाम के देशसंयत का **(ठिदिरसघादो)** स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात **(णत्थि)** नहीं होता है। **(पडिउट्ठदे मुहुत्तस्संते)** देशसंयत से गिरा और पुनः अन्तर्मुहूर्त काल में देशसंयत हुआ तो **(ण हि तस्स करणदुगा)** उसके दो करण भी नहीं होते हैं ।।१७५।।

टीकार्थ– अथःप्रवृत्त देशसंयतकाल में स्थितिखण्डन और अनुभागखण्डन नहीं होता है। एकान्तवृद्धि देशसंयत के अंतिम समय में खण्डित होकर कर्म की जितनी स्थिति और अनुभाग शेष रहा उतनी स्थिति और अनुभाग अथाप्रवृत्त देशसंयतकाल में स्थित रहता है ऐसा अर्थ है। जो जीव पुनः तीव्र संक्लेश के कारणभूत बहिरंग द्रव्यादिकों की अपेक्षा के बिना केवल अन्तरंग कर्म के उदय से उत्पन्न हुए संक्लेश परिणाम होने पर देशसंयम से च्युत होकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त होकर वहाँ अति अल्प अन्तर्मुहूर्तकाल स्थित रहकर शीघ्र ही देशसंयम को ग्रहण करता है, उसका भी स्थिति–अनुभागकाण्डकघात नहीं होता है क्योंकि वह दो करण परिणाम के बिना ही देशसंयम को ग्रहण करता है। जो पुनः तीव्र विराधना में कारणभूत बहिरंग द्रव्यादिकों का सान्निध्य होने पर देशसंयम और सम्यक्त्व की विराधना करके मिथ्यात्व में जाकर दीर्घ अन्तर्मुहूर्त अथवा संख्यात वर्ष अथवा वेदकयोग्यकाल प्रमाण असंख्यात वर्ष स्थित रहकर पुनः लब्धिवश वेदक सम्यक्त्व और संयमासंयम को युगपत् ग्रहण करता है उसके अधःप्रवृत्त और अपूर्वकरण ये दो करण परिणाम होने पर स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात होता है।।१७५।।

अथाप्रवृत्तदेशसंयतस्य गुणश्रेणिद्रव्यप्रमाणार्थमिदमाह–

देसो समये समये सुज्झंतो संकिलिस्समाणो य ।
चउवड्ढिहाणिदव्वादवट्ठिदं कुणदि गुणसेढिं[1] ।।१७६।।

देश: समये समये शुध्यन् संक्लिश्यमानश्च ।
चतुर्वृद्धिहानिद्रव्यादवस्थितां करोति गुणश्रेणीम् ।।१७६।।

अध:प्रवृत्तदेशसयंत: समयं समयं प्रति विशुद्ध्यन् वा संक्लिश्यमानो वा चतुर्वृद्धिहानिद्रव्यादवस्थितगुणश्रेणिं करोत्येव । तथाहि –

विवक्षितस्य यस्य कस्यापि कर्मण: सत्त्वद्रव्यं [स a १२– / ७] अस्मादयमथा–प्रवृत्तदेशसंयतो यदा संक्लेशपरिणामं गत्वा पुनर्विशुद्धिमापूरयति तदा तत्तद्विशुद्धि–परिणामानुसारेण कदाचिदसंख्यातभागाधिकं [स a १२–a (१) / ७ । ओ a] कदाचित् संख्यातभागाधिकं [स a १२–९ (१) / ७ । ओ ९] कदाचित्संख्यातगुणितं [स a १२–९ / ७ । ओ] कदाचिदसंख्यातगुणं वा [स a १२–a / ७ । ओ] द्रव्यमपकृष्य गुणश्रेणिनिक्षेपं करोति । यदा तु विशुद्धिहान्या संक्लेशपरिणामं गच्छति तदा तत्संक्लेशपरिणामानुसारेण कदाचिदसंख्यातभागहीनं [स a १२–a (१) / ७ । ओ a] कदाचित्संख्यातभागहीनं [स a १२–९ / ७ । ओ ९] कदाचित्संख्यातगुणहीनं [स a १२– / ७ । ओ ९] कदाचिदसंख्यातगुणहीनं [स a १२– / ७ । ओ a] वा द्रव्यमपकृष्य गुणश्रेणिनिक्षेपं करोति। विशुद्धिसंक्लेशपरिणामपरावृत्तिवशेनैवंविधद्रव्यापकर्षणसम्भवात्। एवं स्वस्थानदेशसंयतो जघन्येनान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमुत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिपर्यन्तं गुणश्रेण्यायामे द्रव्यं निक्षिपतीत्यर्थ: ।।१७६।।

अथाप्रवृत्त देशसंयत के गुणश्रेणि द्रव्य का प्रमाण कहते हैं –

अन्वयार्थ– (देसो) अथाप्रवृत्त देशसंयत **(समये समये)** समय–समय में **(सुज्झंतो)** विशुद्ध होकर **(य)** और **(संकिलिस्समाणो)** संक्लेश परिणामयुक्त होकर **(चउवड्ढि–हाणिदव्वाद्)** चार प्रकार की वृद्धि और हानिरूप द्रव्य में से **(अवट्ठिदं गुणसेढिं)** अवस्थित गुणश्रेणि **(कुणदि)** करता है । ।।१७६।।

टीकार्थ– अध:प्रवृत्त देशसंयत प्रत्येक समय में विशुद्ध अथवा संक्लेश परिणामी होकर चार वृद्धि और चार हानिरूप द्रव्य में से अवस्थित गुणश्रेणि करता ही है। इसका स्पष्टीकरण –

---

१) जयध. पु. १३, पृ. १२९–१३०.

किसी एक विवक्षित कर्म का सत्त्वद्रव्य इतना है [स a १२− / ७] (कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धह्न ७) इस द्रव्य में से अथाप्रवृत्त देशसंयत जब संक्लेश परिणाम को प्राप्त होकर पुन: विशुद्धि को प्राप्त होता है तब उस-उस विशुद्धि परिणाम का अनुसरण करके कभी असंख्यातवाँ भाग अधिक, कभी संख्यातवाँ भाग अधिक, कभी संख्यातगुणा तो कभी असंख्यात गुणा द्रव्य का अपकर्षण करके गुणश्रेणि निक्षेप करता है।

अपकृष्ट द्रव्य = [स a १२− / ७ । ओ] इसमें असंख्यातवाँ भाग अधिक करने के लिए असंख्यात का भाग देकर उतना ही मिलावे।

[स a १२− / ७ । ओ] + [स a १२− / ७ । ओ a] समच्छेद करके [स a १२−a / ७ । ओ a] + [स a १२− / ७ । ओ a]

समान संख्या एकतरफ निकाल कर धनराशि का एक गुणकार मूलराशि के असंख्यात के गुणकार में अधिक करे। [स a १२−a+१ / ७ । ओ a] = [स a १२−a (ऊपर १—) / ७ । ओ a]

इसीप्रकार संख्यातवाँ भाग अधिक की पद्धति जानना। [स a १२− / ७ । ओ १]

कभी संख्यातगुणी वृद्धि होती है [स a १२−१ / ७ । ओ १] (पूर्व अपकृष्ट द्रव्य को संख्यात गुणा किया।)

कभी असंख्यातगुणी वृद्धि होती है [स a १२−a / ७ । ओ] (पूर्व अपकृष्ट द्रव्य को असंख्यात से गुणा किया)

इस प्रकार द्रव्य का अपकर्षण करके गुणश्रेणि निक्षेप करता है। परन्तु जब विशुद्धिहानि के द्वारा संक्लेश परिणाम को प्राप्त होता है, तब उसके संक्लेश परिणाम का अनुसरण करके कभी असंख्यातवाँ भागहीन [स a १२−a (ऊपर १—) / ७ । ओ a] (ऊपर असंख्यातवाँ भाग अधिक के समान यहाँ मूल द्रव्य में से उसका ही असंख्यातवाँ भाग कम करे।) कभी संख्यातवाँ भागहीन,

[स a १२−१ / ७ । ओ १] कभी संख्यातगुणे हीन [स a १२− / ७ । ओ १] तो कभी असंख्यात गुणे हीन

[स a १२− / ७ । ओ a] द्रव्य का अपकर्षण करके गुणश्रेणि निक्षेप करता है, क्योंकि विशुद्धि और संक्लेश परिणामों के द्वारा परावृत्ति से इसप्रकार द्रव्य का अपकर्षण संभव है। इसप्रकार स्वस्थान देशसंयत जघन्य से अंतर्मुहूर्त पर्यन्त और उत्कृष्ट रूप से कुछ कम पूर्वकोटि पर्यन्त गुणश्रेणि आयाम में द्रव्य निक्षेपण करता है।

विशेषार्थ– देशसंयत का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण है। इसलिए इस काल के भीतर परिणामों में स्वभावसे संक्लेश

और विशुद्धि का क्रम चलता रहता है। तदनुसार गुणश्रेणि में निक्षिप्त होने वाले द्रव्य में भी परिवर्तन होता रहता है। इसी तथ्य को इस गाथा में स्पष्ट करके बतलाया है। यद्यपि वृद्धियाँ छह और हानियाँ छह मानी गई हैं पर यहाँ अनन्त भागवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि तथा अनन्त भागहानि और अनन्त गुणहानि इसप्रकार दो वृद्धि और दो हानि सम्भव न होने से परिणामों के विशुद्धिकाल में यथासम्भव चार वृद्धियाँ होती हैं और संक्लेश काल में यथासम्भव चार हानियाँ होती हैं। इनके विषय में अर्थसंदृष्टि से स्पष्टीकरण टीका में किया ही है।

देशसंयतस्यानुभागखण्डोत्करणकालादीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनप्रतिज्ञाप्रदर्शनार्थमिदमाह –

विदियकरणादु जावय देसस्सेयंतवड्ढिचरिमोत्ति।
अप्पाबहुगं वोच्छं रसखंडद्धाणपहुदीणं[१] ।।१७७।।

द्वितीयकरणाद् यावद् देशस्यैकान्तवृद्धिचरम इति।
अल्पबहुत्वं वक्ष्ये रसखंडाध्वानप्रभृतीनाम्।।१७७।।

अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य एकान्तवृद्धिदेशसंयतपर्यन्तं सम्भवतां जघन्यानुभाग-खण्डोत्करणकालादीनामष्टादशपदानामल्पबहुत्वं प्रवक्ष्यामीति प्रतिज्ञार्थः ।।१७७।।

देशसंयत के अनुभागखण्डोत्करणकालादि का अल्पबहुत्व कहने की प्रतिज्ञा करने के लिए यह गाथा कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(विदियकरणादु जावय देसस्सेयंतवड्ढिचरिमोत्ति)** दूसरे अपूर्वकरण से देशसंयत के एकांतवृद्धि के चरम समय तक **(रसखंडद्धाणपहुदीणं)** अनुभागखंडोत्कीरण कालादि का **(अप्पबहुगं)** अल्पबहुत्व **(वोच्छं)** मैं कहता हूँ।।१७७।।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय से एकान्तवृद्धि देशसंयतपर्यन्त संभवने वाले जघन्य अनुभागखण्डोत्करणकालादि अठारह पदों का अल्पबहुत्व मैं कहता हूँ ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

अथ तान्येवाल्पबहुत्वपदानि प्ररूपयितुं गाथाषट्कमाह–

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ।
चरिमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो संखगुणिदो हु[२] ।।१७८।।

पढमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो साहियो हवे तत्तो।
एयंतवड्ढिकालो अपुव्वकालो य संखगुणियकमा[३] ।।१७९।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. १३२. २) जयध. पु. १३, पृ. १३३. ३) जयध. पु. १३, पृ. १३४.

अवरा मिच्छतियद्धा अविरद तह देससंजमद्धा य।
छप्पि समा संखगुणा तत्तो देसस्स गुणसेढी[१]।।१८०।।

चरिमाबाहा तत्तो पढमाबाहा य संखगुणियकमा।
तत्तो असंखगुणियो चरिमट्ठिदिखंडओ णियमा[२]।।१८१।।

पल्लस्स संखभागं चरिमट्ठिदिखंडयं हवे जम्हा।
तम्हा असंखगुणियं चरिमट्ठिदिखंडयं होइ।।१८२।।

पढमे अवरो पल्लो पढमुक्कस्सं च चरिमठिदिबंधो ।
पढमो चरिमं पढमट्ठिदिसत्तं संखगुणियकमा[३]।।१८३।।

अन्तिमरसखण्डोत्करणकालतस्तु प्रथमोऽधिकः।
चरमस्थितिखण्डोत्करणकालः संख्यगुणितो हि ।।१७८।।

प्रथमस्थितिखण्डोत्करणकालः साधिको भवेत् ततः।
एकान्तवृद्धिकालोऽपूर्वकालश्च संख्यगुणितक्रमः।।१७९।।

अवरा मिथ्यात्रिकाद्धा अविरतस्तथा देशसयंमाद्धा च।
षडपि समाः संख्यगुणा ततो देशस्य गुणश्रेणी।।१८०।।

चरमाबाधा ततः प्रथमाबाधा च संख्यगुणितक्रमा।
ततोऽसंख्यगुणितश्चरमस्थितिखंडको नियमात् ।।१८१।।

पल्यस्य संख्यभागं चरमस्थितिखण्डकं भवेद् यस्मात्।
तस्मादसंख्यगुणितं चरमं स्थितिखण्डकं भवति।।१८२।।

प्रथमे अवरः पल्यः प्रथमोत्कृष्टं च चरमस्थितिबंधः।
प्रथमश्चरमं प्रथमस्थितिसत्त्वं संख्यगुणितक्रमाणि ।।१८३।।

सर्वतः स्तोको देशसंयतस्य एकान्तवृद्धिचरमसमये सम्भवजघन्यानुभागखण्डोत्करणकालः [२ ꣸] ।।१।। तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये सम्भव्युत्कृष्टानुभागखण्डोत्करणकालो विशेषाधिकः [२ ꣸ ५ / ४] ।।२।। एतस्माद्देशसंयतस्यैकान्तवृद्धिचरमसमयसम्भविजघन्यस्थितिखण्डोत्करणकालः संख्येयगुणः [२ ꣸ ५ । ४ / ४] ।।३।। तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसम्भवदुत्कृष्टस्थितिखण्डोत्करण-

---

१) जयध. पु. १३, पृ. १३४. २) जयध. पु. १३, पृ. १३५. ३) जयध. पु. १३, पृ. १३५-१३७.

कालो विशेषाधिकः [२१५।४।५ / ४ । ४] ।।४।। अस्माद्देशसंयमग्रहणप्रथमसमयादारभ्य तद्वि-शुद्धेरेकान्तवृद्धिकालः संख्येयगुणः [२११] ।।५।। एतस्माद् देशसंयतस्या-पूर्वकरणकालः संख्येयगुणः [२११।४] ।।६।। अस्मान्मिथ्यात्वस्य सम्यग्मिथ्यात्वस्य सम्यक्त्वप्रकृतिपरिणामस्यासंयमस्य देशसंयमस्य सकलसंयमस्य च जघन्यकालः संख्येयगुणः, परस्परं तु षण्णां समानः । [२११।४।४] ।।७।। अस्मादपूर्वकरणं[1] (देशसंयम)प्रथमसमये प्रारब्धो देशसंयतस्य गुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणः [२११।४।४।४] ।।८।। एतस्मादैकान्तवृद्धिचरमसमय-सम्भविजघन्यस्थितिबन्धाबाधाकालः संख्येयगुणः [२१११] ।।९।। एतस्मादपूर्वकरणप्रथम-समयसम्भव्युत्कृष्टस्थितिबन्धाबाधाकालः संख्येयगुणः [२१११।४] ।।१०।। एते प्रागुक्ताः सर्वेऽपि कालाः अन्तर्मुहूर्तमात्राः। तस्मादेकान्तवृद्धिचरमसमयसम्भविजघन्यस्थितिखण्डायामोऽसंख्यातगुणः। [प / ११] ।।११।। प्राक्तनकालस्यान्तर्मुहूर्तमात्रत्वेन चरमस्थितिखण्डायामस्य च पल्यसंख्यातभाग-मात्रत्वेन तस्मादसंख्यातगुणितत्वसम्भवात् । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसम्भविजघन्यस्थिति-खण्डायामः संख्येयगुणः [प / १] ।।१२।। अस्मात्पल्यं संख्येयगुणं [प] ।।१३।। तस्माद-पूर्वकरणप्रथमसमयसम्भ-व्युत्कृष्टस्थितिखण्डायामः संख्यातगुणः [सा ७ / ८] ।।१४।।

तस्मादेकान्तवृद्धिचरमसमयसम्भविजघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः [सा अं को २ / ४।४।४] ।।१५।।

तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसम्भव्युत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्येयगुणः [सा अं को २ / ४।४] ।।१६।।

अस्मादेकान्तवृद्धिचरमसमयसम्भविजघन्यस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं [सा अं को २ / ४] ।।१७।।

एतस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसम्भवदुत्कृष्टस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं [सा अं को २] ।।१८।।

उन्हीं (१८) अल्पबहुत्व पदों का प्ररूपण करने के लिए छह गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ– (अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ) १) अंतिम अनुभागखंडोत्कीरणकाल सबसे स्तोक है। उससे २) प्रथम अनुभागखंडोत्करणकाल अधिक है। उससे **(चरिमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो)** ३) अंतिम स्थितिखंडोत्कीरणकाल **(संखगुणिदो हु)** संख्यातगुणा है ।।१७८।।

(तत्तो) उससे **(पढमठिदिखंडुक्कीरणकालो)** ४) प्रथम स्थितिखंडोत्कीरण काल

---

१) यहांपर अपूर्वकरण के प्रथम समय में गुणश्रेणी प्रारंभ नही होती है, देशसंयम के ग्रहण के प्रथम समय से गुणश्रेणी प्रारंभ होती है अतः अपूर्वकरण के स्थान पर देशसंयम चाहिए।

(साहियो हवे) साधिक है। उससे **(एयंतवड्ढिकालो)** ५) एकान्तवृद्धिकाल **(य)** और **(अपुव्वकालो)** ६) अपूर्वकरण काल **(संखगुणियकमा)** क्रम से संख्यातगुणा हैं ।।१७९।।

(अवरा मिच्छतियद्धा) ७) जघन्य मिथ्यात्वकाल, मिश्रकाल, सम्यक्त्व काल **(अविरद)** असंयतकाल **(तह य देससंजमद्धा)** देशसंयतकाल और सकलसंयमकाल **(छप्पि)** ये छहों ही काल **(समा)** समान होकर **(संखगुणा)** अपूर्वकरण काल से संख्यातगुणे हैं। **(तत्तो)** उससे **(देसस्स गुणसेढी)** ८) देशसंयत की गुणश्रेणि संख्यातगुणी है ।।१८०।।

(तत्तो) उससे **(चरिमाबाहा)** ९) अंतिम जघन्य आबाधा **(पढमाबाहा य)** और १०) प्रथम आबाधा **(संखगुणियकमा)** क्रम से संख्यातगुणी है। **(तत्तो)** उससे **(चरिमट्ठिदिखंडओ)** ११) अंतिम स्थितिकांडकायाम **(णियमा)** नियम से **(असंखगुणियो)** असंख्यातगुणा है।।१८१।।

(जम्हा) जिस कारण **(चरिमट्ठिदिखंडयं)** अंतिम स्थितिकांडक **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवाँ भाग **(हवे)** होता है **(तम्हा)** उसी कारण **(चरिमट्ठिदिखंडयं)** अंतिम स्थितिकांडक **(असंखगुणियं)** असंख्यातगुणा **(होइ)** होता है।।१८२।।

उससे **(पढमे अवरो)** १२) अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला जघन्य स्थितिकांडक, **(पल्लो)** १३) पल्य, **(पढमुक्कस्सं)** १४) अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिकांडक, **(चरिमठिदिबंधो)** १५) अंतिम स्थितिबंध, **(पढमो)** १६) प्रथम स्थितिबंध, **(चरिमं पढमठिदिसत्तं)** १७) अंतिम स्थितिसत्त्व और १८) प्रथम स्थितिसत्त्व **(संखगुणियकमा)** ये सात पद क्रम से संख्यातगुणे हैं ।।१८३।।

टीकार्थ– देशसंयत के एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में होने वाला जघन्य अनुभागखंडोत्करण काल सबसे छोटा है [२१] पद–१। उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट अनुभाग–खंडोत्करण काल विशेष अधिक है। $\left[\frac{२१५}{४}\right]$ (प्रथम काल में संख्यात का भाग देकर उसे प्रथम काल में ही मिलाने पर विशेष अधिक दूसरे काल का प्रमाण आता है।

$[२१] + \left[\frac{२१}{४}\right] = \left[\frac{२१५}{४}\right]$ पद–२। इससे देशसंयत के एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में संभवने वाला जघन्य स्थितिखण्डोत्करणकाल संख्यातगुणा है। $\left[\frac{२१५।४}{४}\right]$ पद–३। इससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में संभवने वाला उत्कृष्ट स्थिति–खण्डोत्करण काल विशेष अधिक है $\left[\frac{२१५।४।५}{४ \; । \; ४}\right]$ पद–४। इससे देशसंयम के ग्रहण के प्रथम समय से आरम्भ करके उसकी विशुद्धि का एकान्तवृद्धि काल संख्यातगुणा है [२११] पद–५। इससे देशसंयत का अपूर्वकरणकाल संख्यातगुणा है [२११।४] पद–६। इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति परिणाम, असंयम, देशसंयम और सकलसंयम का जघन्य काल संख्यातगुणा है। परन्तु छहों का काल परस्पर समान है [२११।४।४] पद–७। इससे

अपूर्वकरण के (देशसंयम के) प्रथम समय में प्रारम्भ किया हुआ देशसंयत का गुणश्रेणिआयाम संख्यातगुणा है [२११ ।४।४।४] पद–८। इससे एकान्तवृद्धि के चरम समय में होने वाला जघन्य स्थितिबंध का आबाधाकाल संख्यातगुणा है। [२१११] पद–९। इससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिबंध का आबाधाकाल संख्यातगुणा है [२१११।४] पद–१०। ये पूर्व में कहे गए सभी काल अन्तर्मुहूर्तमात्र हैं। इससे एकान्तवृद्धि के चरम समय में होने वाला जघन्य स्थितिकांडकायाम असंख्यातगुणा है [प / ११] (पल्य का संख्यातवाँ भाग) पद–११।

क्योंकि पूर्व का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है और अंतिम स्थितिकांडकायाम पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र है। इसलिए पूर्वकाल से असंख्यातगुणापना संभव है।

उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला जघन्य स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है [प / १] पद–१२। (एक संख्यात का भागहार कम करने पर आगे की संख्या संख्यात गुणी होती है।) इससे पल्य संख्यातगुणा है [प] पद–१३।

इससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिकांडक आयाम संख्यातगुणा है। [सा ७ / ८] (७–८ सागरोपम) पद –१४। उससे एकान्त वृद्धि के अंतिम समय में होने वाला जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। [सा अं को २ / ४।४।४] पद–१५। (अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण आगे का काल संख्यातगुणा है। यह दिखाने के लिए ३ बार संख्यात से भाग दिया ।)

उससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है। [सा अं को २ / ४।४] पद–१६। इससे एकान्तवृद्धिके अंतिम समय में होने वाला जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। [सा अं को २ / ४] पद–१७। इससे अपूर्वकरण के प्रथम समय में उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। [सा अं को २] पद–१८।

AndH$aU g bH$a EH$m`Vd{ÕXeg`V VH$ hmZdmb Aën~hËd H$ 18 nX

पदों के नाम	प्रमाण	पूर्वपद की अपेक्षा अल्पबहुत्व	अर्थसंदृष्टि
१) जघन्य अनुभागखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त		२१
२) उत्कृष्ट अनुभागखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	। ५ / ४
३) जघन्य स्थितिखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	। ५।४ / ४

४) उत्कृष्ट स्थितिखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	२१। ५।४।५ ४ ४
५) एकान्तवृद्धिकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
६) अपूर्वकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२११ ।४
७) मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, असंयम, देशसंयम, सकलसंयम इनका जघन्य काल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२११ ।४ ।४
८) देशसंयत का गुणश्रेणी–आयाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२११ ।४।४।४
९) जघन्य आबाधाकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२१११
१०) उत्कृष्ट आबाधाकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२१११।४
११) एकान्तवृद्धि के अंत में होने वाला जघन्य स्थितिकांडकायाम	पल्य / संख्यात	असंख्यातगुणा	प ११
१२) अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला जघन्य स्थितिकांडकायाम	पल्य / संख्यात	संख्यातगुणा	प १
१३) पल्य	पल्य	संख्यातगुणा	प
१४) अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिकांडकायाम	७–८ सागरोपम	संख्यातगुणा	सा७ ८
१५) एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में होने वाला जघन्य स्थितिबंध	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा अं को २ ४ । ४ । ४
१६) अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट स्थितिबंध	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा अं को २ ४ । ४
१७) एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में ज्ञानावरणादिकर्मों का जघन्य स्थितिसत्त्व	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा अं को २ ४
१८)अपूर्वकरण के प्रारंभ में उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व	अन्तःको२सागर	संख्यातगुणा	सा अं को २

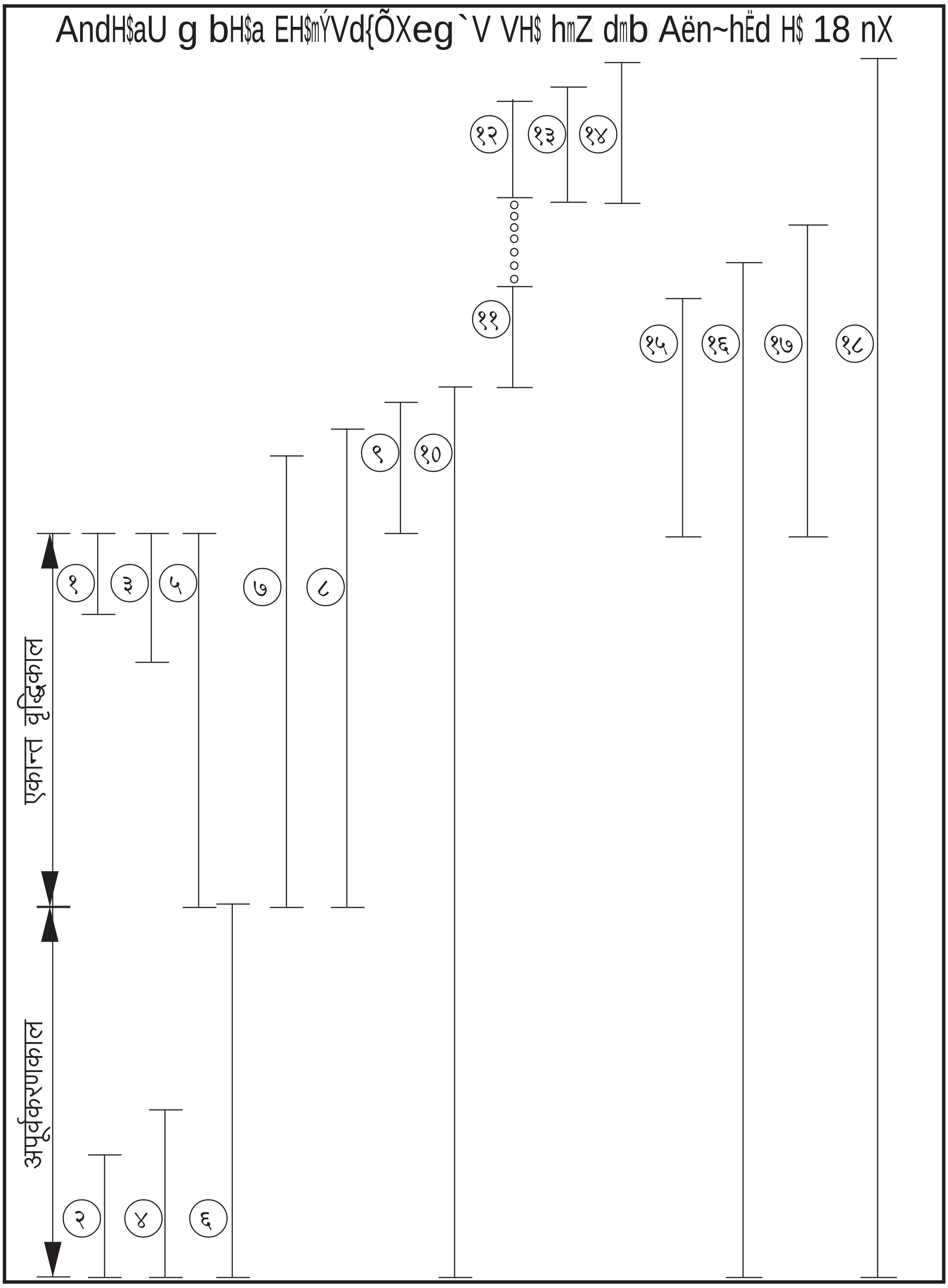
AndH$aU g bH$a EH$mÝVd{ÕXeg`V VH$ hmZ dmb Aën~hËd H$ 18 nX
एकान्त वृद्धिकाल
अपूर्वकरणकाल
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८

एवमल्पबहुत्वपदानि व्याख्याय देशसंयमस्य जघन्योत्कृष्टलब्ध्यवसरं तदल्पबहुत्वं च प्रतिपादयितुमाह-

अवरवरदेसलद्धी से काले मिच्छसंजमुववण्णे ।
अवरादु अणंतगुणा उक्कस्सा देसलद्धी दु[1] ।।१८४।।

अवरवरदेशलब्धिः स्वकाले मिथ्यसंयममुपपन्ने ।
अवरादनन्तगुणा उत्कृष्टा देशलब्धिस्तु ।।१८४।।

यो जीवो देशसंयमघातिकर्मोदयवशाद्देशसंयमात्प्रतिपतन् तत्कालचरमसमये मिथ्यात्वाभिमुखो वर्तते तस्य तत्कालचरमसमयवर्तिनो मनुष्यस्य सर्वजघन्या देशसंयमलब्धिर्भवति। यः पुनरनन्तगुणविशुद्धिवृद्ध्या देशसंयमपरमप्रकर्षं प्राप्य तदनन्तरसमये सकलसंयमं प्राप्स्यति तस्य मनुष्यस्योत्कृष्टदेशसंयमलब्धिर्भवति। एवमुक्तजघन्यदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदेभ्यः उत्कृष्टदेश-संयमाविभागप्रतिच्छेदा अनन्तानन्तगुणाः। तद्गुणकारः अनन्तानन्तगुणितसर्वजीवराशिप्रमाणः १६ख ।।१८४।।

इसप्रकार अल्पबहुत्व पदों का व्याख्यान करके देशसंयम के जघन्य और उत्कृष्ट लब्धि का समय और उसके अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं -

अन्वयार्थ- (से काले) अपने काल में **(मिच्छसंजमुववण्णे अवरवरदेसलद्धी)** मिथ्यात्व के सन्मुख होने पर जघन्य देशसंयमलब्धि और संयम को प्राप्त होते समय उत्कृष्ट देशसंयमलब्धि होती है। **(अवरादु उक्कस्सा देसलद्धी दु)** जघन्य से उत्कृष्ट देशसंयमलब्धि **(अनन्तगुणा)** अनन्तगुणी है।।१८४।।

टीकार्थ- देशसंयम का घात करने वाले कर्म के उदय से देशसंयम से च्युत होने वाला जो जीव उस देशसंयम काल के अंतिम समय में मिथ्यात्व के सन्मुख होता है उस काल के अंतिम समय में स्थित उस मनुष्य को सबसे जघन्य देशसंयमलब्धि होती है। पुनः जो अनन्तगुणी विशुद्धिवृद्धि से देशसंयम के अत्यन्त उत्कृष्टपने को प्राप्त करके उसके अनन्तर समय में सकलसंयम को प्राप्त करने वाला है उस मनुष्य को उत्कृष्ट देशसंयमलब्धि होती है। इस प्रकार कहे गए जघन्य देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेदों से उत्कृष्ट देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेद अनन्तानन्त गुणे हैं। (जीवराशि x अनंत = १६ ख. जीवराशि की संदृष्टि १६, अनन्त की संदृष्टि ख) वह गुणकार अनन्तानन्तगुणित सर्व जीवराशि प्रमाण १६ ख है।।१८४।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. १३९-१४१.

अथ जघन्यदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणप्रदर्शनार्थमिदमाह–

अवरे देसट्ठाणे होंति अणंताणि फड्डयाणि तदो।
छट्ठाणगदा सव्वे लोयाणमसंखछट्ठाणा[1]।।१८५।।

अवरे देशस्थाने भवन्त्यनन्तानि स्पर्धकानि ततः।
षट्स्थानगतानि सर्वाणि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि।।१८५।।

सर्वजघन्ये प्रागुक्ते देशसंयमस्थाने अनन्तानन्तानि स्पर्धकान्यविभागप्रतिच्छेदाः सर्वोत्कृष्टदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदेभ्योऽनन्तगुणहीनाः सन्ति । ते च जघन्यदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदाः अनन्तानन्तगुणितसर्वजीवराशिप्रमाणा इति सिद्धान्तप्रतिपादिता द्रष्टव्या : । तस्मात्सर्वजघन्य-देशसंयमस्थानात्सर्वाणि सर्वोत्कृष्टपर्यन्तदेशसंयमलब्धिस्थानानि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानानि असंख्यातलोकगुणितानि भवन्ति । एकवारषट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानानि यद्येतावन्ति

१–	१–	१–	१–	१
२	२	२	२	२
a	a	a	a	a

तदा असंख्यातलोकमात्र $\equiv$a वारेषु कियन्ति इति त्रैराशिकेन सिद्धानि प्रतिपर्वासंख्यातलोकमात्राणि । सर्वेषु पर्वसु मिलित्वाप्यसंख्यातलोकमात्राण्येव षट्स्थानपतितानि देशसंयम-लब्धिस्थानानीत्यर्थः ।। १८५ ।।

अब देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण दिखाने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(अवरे देसट्ठाणे)** जघन्य देशसंयम स्थान में **(अणंताणि फड्डयाणि)** अनन्त स्पर्धक **(होंति)** होते हैं। **(तदो)** इसलिए **(छट्ठाणगदा)** षट्स्थानपतित वृद्धियों के द्वारा प्राप्त होने वाले **(सव्वे)** सभी स्थान**(लोयाणमसंखछट्ठाणा)** असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानरूप होते हैं।।१८५।।

टीकार्थ– पूर्व में कहे गए सबसे जघन्य देशसंयम स्थान में अनन्तानन्त स्पर्धक अर्थात् अविभागप्रतिच्छेद सर्वोत्कृष्ट देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेदों से अनन्तगुणे हीन हैं। जघन्य देशसंयम के अविभागप्रतिच्छेद सर्व जीवराशि से अनन्तगुणे हैं, ऐसा सिद्धान्तशास्त्र में कहा है। सबसे जघन्य उस देशसंयम लब्धि स्थान से सबसे उत्कृष्ट देशसंयमलब्धि स्थान तक सभी देशसंयमलब्धि स्थान षट्स्थानपतित विशुद्धि की वृद्धि के द्वारा बढ़ने वाले असंख्यात लोक गुणे हैं। यदि एक बार षट्स्थानपतित देशसंयमलब्धि स्थान एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग को पाँच बार रखकर परस्पर गुणा करके जो लब्ध आता है इतने हैं, तो असंख्यात लोकमात्र बार षट्स्थानपतित में कितने स्थान होंगे ऐसा त्रैराशिक से प्रत्येक पर्व में प्रतिपातादि स्थान असंख्यात लोकमात्र सिद्ध होते हैं। सब पर्वों में मिलकर भी असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानपतित देशसंयमलब्धि स्थान हैं।

१) जयध. पु. १३, पृ. १४३–१४६.

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
एक षट्स्थान में	१-१-१-१-१ २ २ २ २ २ a a a a a इतने स्थानभेद	≡a असंख्यात लोक प्रमाण षट्स्थानों में	१-१-१-१-१ २ २ २ २ २ x ≡a a a a a a इतने स्थानभेद प्राप्त होते हैं

(सूच्यंगुल की संदृष्टि = २, असंख्यात =(a), एक अधिक = (१-), असंख्यात लोक(≡a)

अथ देशसंयमप्रकारस्वरूपं पर्वान्तरप्रमाणं च प्ररूपयितुमिदमाह-

तत्थ य पडिवायगया पडिवज्जगया त्ति अणुभयगया त्ति ।
उवरुवरिलद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा।।१८६ ।।

तत्र च प्रतिपातगता प्रतिपद्यगता इति अनुभयगता इति।
उपर्युपरि लब्धिस्थानानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि।।१८६ ।।

तत्र तेषु संयमलब्धिस्थानेषु मध्ये कानिचित्प्रतिपातगतानि कतिचित् प्रतिपद्यमान-गतानि कियंतिचिदनुभयगतानीति त्रिप्रकाराणि सर्वाण्यपि देशसंयमलब्धिस्थानानि भवन्ति । प्रतिपातस्थानानामुपर्यसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानानि अन्तरयित्वा प्रतिपद्यमानस्थानानि भवन्ति । तेषामुपर्यसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि देशसंयम-लब्धिस्थानानि अन्तरयित्वा अनुभयस्थानानि भवन्ति । तत्र प्रतिपातस्थानान्यसंख्यातलोकमात्राण्यपि सर्वतः स्तोकानि [≡a] तेभ्योऽसंख्यातलोकगुणानि प्रतिपद्यमानस्थानानि [≡a ≡a] तेभ्योऽसंख्यातलोकगुणान्यनुभयस्थानानि [≡a ≡a ≡a] इति विशेषो ज्ञातव्यः ।।१८६ ।।

अब देशसंयम के प्रकार, स्वरूप और पर्वान्तर का प्रमाण कहते हैं -

अन्वयार्थ- (तत्थ य) उन देशसंयम लब्धिस्थानों में **(पडिवायगया)** प्रतिपातगत, **(पडिवज्जगया त्ति)** प्रतिपद्यमानगत और **(अणुभयगया त्ति)** अनुभयगत **(उवरुवरि)** ऊपर-ऊपर **(लोयाणमसंखछट्ठाणा)** असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानपतित **(लद्धिठाणा)** लब्धिस्थान हैं ।।१८६।।

टीकार्थ- वहाँ उन संयमलब्धिस्थानों में कुछ प्रतिपातगत, कुछ प्रतिपद्यमानगत और कुछ अनुभयगत ऐसे तीन प्रकार के सभी देशसंयम लब्धिस्थान हैं। प्रतिपात स्थानों के ऊपर-असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानपतित देशसंयमलब्धि स्थानों का अन्तर जाकर प्रतिपद्यमानस्थान हैं। उनके ऊपर असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानपतित देशसंयमलब्धि स्थानों का अन्तर जाकर अनुभयस्थान हैं। उनमें प्रतिपातस्थान असंख्यातलोकमात्र होने पर भी सबसे कम हैं। उससे असंख्यातलोकगुणे प्रतिपद्यमान स्थान हैं। उससे असंख्यातलोकगुणे अनुभयस्थान हैं ऐसा विशेष जानना चाहिए ।।१८६।।

विशेषार्थ– देशसंयम के स्थान तीन प्रकार के हैं १) प्रतिपातगत २) प्रतिपद्यमानगत और ३) अनुभयगत। देशसंयम के स्थान अर्थात् देशसंयमरूप परिणाम की विशुद्धि के भिन्न–भिन्न प्रकार । १) देशसंयम से च्युत होने से पहले अंतिम समय में जो स्थान संभव हैं, वे प्रतिपातगतस्थान हैं । १) देशसंयम के प्राप्त होते ही पहले समय में जो स्थान संभव है, वे प्रतिपद्यमानगतस्थान हैं । २) इन दोनों के बिना अन्य समयों में होने वाले स्थान अनुभयगत हैं। वे स्थान ऊपर–ऊपर हैं।

देशसंयम लब्धिस्थानों के तीन प्रकार

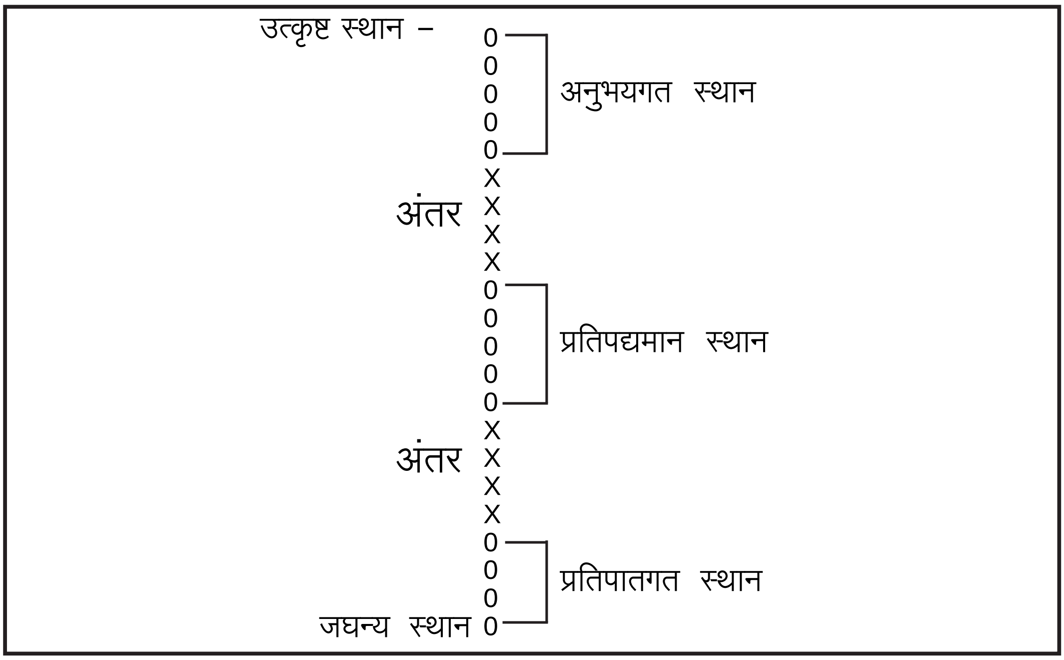

देशसंयम का जघन्य स्थान सबसे कम विशुद्धि से युक्त है वह सबसे नीचे लिखा है। उसके ऊपर अनन्तवें भाग मात्र अधिक विशुद्धि से युक्त द्वितीय स्थान लिखा है। इस प्रकार षट्स्थानपतित वृद्धि से युक्त ऊपर–ऊपर के स्थान उत्कृष्ट स्थान तक लिखे हैं। उनमें से नीचे के कुछ स्थान प्रतिपातगत जानना चाहिए। देशसंयम से नीचे गिरते समय इन प्रतिपातस्थानों में से एक जीव को कोई भी एक यथायोग्य परिणाम होता है। प्रतिपातस्थानों के ऊपर असंख्यातलोकमात्र स्थानों का अंतर है अर्थात् इस विशुद्धि को धारण करने वाला कोई भी जीव नही हैं। उसके ऊपर प्रतिपद्यमान स्थान हैं। देशसंयम को प्राप्त होते ही पहले समय में उसमें से एक जीव को विशुद्धि के अनुसार कोई एक परिणाम होगा। उसके ऊपर असंख्यातलोकमात्र स्थानों का अंतर है। उसके ऊपर अनुभयगत स्थान हैं। प्रत्येक प्रकार के स्थान असंख्यातलोकमात्र होकर भी प्रतिपातस्थान कम हैं। उससे असंख्यातलोकगुणे प्रतिपद्यमान स्थान हैं। उससे असंख्यातलोकगुणे अनुभयगत स्थान हैं।

अथ मनुष्यतिर्यग्जीवदेशसंयमलब्धिस्थानानां प्रतिपातादिभेदभिन्नानां जघन्योत्कृष्टस्थानावसरं प्ररूपयितुमिदमाह–

णरतिरिये तिरियणरे अवरं अवरं वरं वरं तिसु वि ।
लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणा होंति तम्मज्झे।।१८७।।

नरतिरश्चि तिर्यन्नरे अवरमवरं वरं वरं त्रिष्वपि।
लोकानामसंख्येयानि षट्स्थानानि भवन्ति तन्मध्ये ।।१८७।।

देशसंयमस्य सर्वजघन्यं प्रतिपातस्थानं मनुष्ये सम्भवति । ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि मनुष्यसम्बन्धीन्येव देशसंयमलब्धिस्थानान्युल्लङ्घ्य तिर्यग्जीवसम्बन्धिजघन्यप्रतिपात–स्थानं भवति। ततः परं नरतिर्यग्जीवसाधारणान्यसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानान्यतिक्रम्य तिर्यग्जीवस्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानं जायते । ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा मनुष्यस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमुत्पद्यते । ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि तत्परिणामयोग्यस्वामिनामभावादन्तरयित्वा मनुष्यस्य जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति । ततः परं मनुष्यसम्बधीन्येवासंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा तिर्यग्जीवस्य जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि नरतिर्यग्जीवसाधारणानि देशसंयमलब्धिस्थानानि गमयित्वा तिर्यग्जीवस्योत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं जायते। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि मनुष्यसम्बन्धीन्येव देशसंयमलब्धिस्थानान्युल्लङ्घ्य मनुष्यस्योत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति । ततःपरमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानानि पूर्ववदन्तरयित्वा मनुष्यस्य जघन्यमनुभयस्थानं जायते। ततःपरमसंख्यातलोकमात्राणि मनुष्यसम्बन्धीन्येव देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा तिर्यग्जीवस्य जघन्यमनुभयस्थानमुत्पद्यते। ततः परं नरतिर्यग्जीव–साधारणान्यसंख्येयलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा तिर्यग्जीवस्योत्कृष्टमनुभयस्थानमुत्पद्यते। ततः परं नरसम्बन्धीन्येवासंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानान्यतिस्थाप्य मनुष्यस्योत्कृष्टमनुभयस्थानमुत्पद्यते । यथासंख्येन नरतिरश्चोस्तिर्यन्नरयोश्च जघन्यं जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं च त्रिष्वपि प्रतिपातप्रतिपद्यमानानुभयस्थानेषु सम्भवन्ति। तेषां नरजघन्यतिर्यग्जघन्यादीनां मध्येऽन्तराले षट्स्थानपतितान्यसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि भवन्तीति गाथासूत्रव्याख्यानं निरवद्यम् ।।१८७।।

अब प्रतिपातादि भेद से भिन्न मनुष्य और तिर्यंच जीवसंबंधी देशसंयम लब्धिस्थानों में जघन्य व उत्कृष्ट स्थान किसको संभव है वह कहते हैं –

अन्वयार्थ– (तिसु वि) उन तीनों स्थानों में भी **(णरतिरिये तिरियणरे अवरं अवरं वरं वरं)** प्रथम मनुष्य जघन्य, फिर तिर्यंच जघन्य, फिर तिर्यंच उत्कृष्ट और फिर

मनुष्य का उत्कृष्ट स्थान हैं **(तम्मज्झे)** उन स्थानों के बीच में **(लोयाणमसंखेज्ञा छट्ठाणा)** असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानपतित स्थान **(होंति)** होते हैं ।।१८७।।

टीकार्थ– देशसंयम का सबसे जघन्य प्रतिपातस्थान मनुष्य में होता है। उसके बाद मनुष्यसंबंधी असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानपतित देशसंयम लब्धिस्थानों का उल्लंघन करके तिर्यंच जीव संबंधी जघन्य प्रतिपात स्थान है। उसके बाद मनुष्य व तिर्यंच जीवों में साधारण असंख्यातलोकमात्र देशसंयम लब्धिस्थानों का अतिक्रम करके तिर्यंच जीव का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान है। उसके बाद असंख्यातलोकमात्र देशसंयमलब्धि स्थान जाकर मनुष्य का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान है। उसके बाद असंख्यातलोकमात्र देशसंयमलब्धि स्थानों का उन परिणामों के योग्य स्वामी का अभाव होने से अंतर करके मनुष्य का जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान है। उसके बाद मनुष्य में ही पाये जाने वाले असंख्यातलोकमात्र देशसंयम लब्धिस्थान जाकर तिर्यंच जीव का जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान है। उसके बाद मनुष्य और तिर्यंचो में साधारण असंख्यातलोकमात्र देशसंयम लब्धिस्थान व्यतीत होने पर तिर्यंच जीव का उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान है। उसके आगे असंख्यातलोकमात्र मनुष्यसंबंधी देशसंयम लब्धिस्थान उल्लंघन करके मनुष्य का उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान है।

उसके बाद असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानपतित देशसंयम लब्धिस्थानों का पूर्व के समान ही अंतर लांघकर मनुष्यों का जघन्य अनुभयस्थान उत्पन्न होता है। उसके बाद मनुष्य संबंधी असंख्यात लोकमात्र देशसंयम लब्धिस्थान जाकर तिर्यंच जीव का जघन्य अनुभय स्थान उत्पन्न होता है। उसके बाद मनुष्य और तिर्यंच दोनों को पाये जाने वाले असंख्यात लोकमात्र देशसंयम लब्धि स्थान व्यतीत करके तिर्यंच जीव का उत्कृष्ट अनुभयस्थान उत्पन्न होता है। उसके बाद मनुष्यसंबंधी असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानपतित देशसंयम लब्धिस्थान उल्लंघन करके मनुष्य का उत्कृष्ट अनुभयस्थान उत्पन्न होता है। प्रतिपात, प्रतिपद्यमान और अनुभय इन तीनों स्थानों में क्रम से मनुष्य जघन्य, तिर्यंच जघन्य, तिर्यंच उत्कृष्ट, मनुष्य उत्कृष्ट ऐसा स्थान संभव है। उस मनुष्य जघन्य और तिर्यंच जघन्य इत्यादिक स्थानों के अंतराल में षट्स्थानपतित असंख्यातलोकमात्र देशसंयम लब्धिस्थान हैं। इस प्रकार गाथा सूत्र का निर्दोष व्याख्यान हुआ।।१८७।।

अथ प्रतिपातादीनां लक्षणं तत्स्वामिभेदं च प्रदर्शयितुमिदमाह–

पडिवाददुगवरवरं मिच्छे अयदे अणुभयगजहण्णं।
मिच्छचरविदियसमये तत्तिरियवरं तु सट्ठाणे[1] ।।१८८।।

प्रतिपातद्विकावरवरं मिथ्येऽयतेऽनुभयगजघन्यम् ।
मिथ्याचरद्वितीयसमये तत्तिर्यग्वरं तु स्वस्थाने।।१८८।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. १४९–१५३.

प्रतिपातो बहिरन्तरङ्गकारणवशेन संयमात्प्रच्यवः । स च संक्लिष्टस्य तत्कालचरमसमये विशुद्धिहान्या सर्वजघन्यदेशसंयमशक्तिकस्य मनुष्यस्य तदनन्तरसमये मिथ्यात्वं पतिपत्स्यमानस्य भवति। तत्र सम्यक्त्वदेशसंयमयोर्विनाशसम्भवात्। तथा तिर्यग्जीवस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानं सम्यक्त्वदेशसंयमाभ्यां प्रच्युत्य मिथ्यात्वं गमिष्यतो देशसंयमकालचरमसमये सम्भवति । एतच्च मनुष्यजघन्यप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं ज्ञेयम्। असंख्यातलोकवारषट्स्थान-पतितविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानत्वात्। तथा तिर्यग्जीवस्य स्वयोग्यसंक्लेशवशेन देशसंयमात्प्रच्यवमानस्य तत्कालचरमसमये उत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं प्राप्स्यतो भवति । इदमपि तिर्यग्जघन्यप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं प्राग्वज्ज्ञेयम् । तथा मनुष्यस्य देशसंयमात्प्रच्युत्य स्वयोग्यसंक्लेशवशेनानन्तरं वेदकासंयतगुणस्थानं गमिष्यतः उत्कृष्टं प्रतिपातस्थानं भवति। इदमपि तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं प्राग्वद् ज्ञेयम्। मनुष्यजघन्यप्रतिपातस्थानादारभ्य तिर्यग्जीवस्यानुत्कृष्टप्रतिपातस्थानपर्यन्तं सम्भवन्ति प्रतिपातस्थानानि मिथ्यात्वाभिमुखस्यैव देशसंयमकालचरमसमये द्रष्टव्यानि तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपातस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानपर्यन्तं सम्भवन्ति प्रतिपातस्थानानि असंयतसम्यक्त्वाभिमुखस्य स्वकालचरमसमये घटन्त इत्यर्थविशेषो ग्राह्यः । तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपातस्थानान्मनुष्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानं पूर्ववदनन्तगुणविशुद्धिकं ज्ञातव्यम्।

तथा मनुष्यस्य पूर्वं मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात्सम्यक्त्वेन सह देशसंयमं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये सम्भवज्जघन्यप्रतिपद्यमानस्थानं मनुष्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं अन्तरेऽसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानान्युल्लङ्घ्य समुत्पादात् । तथा तिर्यग्जीवस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सम्यक्त्वदेशसंयमौ युगपत् प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये वर्तमानं जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं मनुष्यजघन्यप्रतिपद्यमानादनन्तगुणविशुद्धिकं प्रतिपत्तव्यम् । तथा तिर्यग्जीवस्य प्रागसंयतसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पश्चाद्देशसंयमं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये सम्भवदुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानं तिर्यग्जघन्यप्रतिपद्यमान-स्थानात्प्राग्वदनन्तगुणविशुद्धिकं बोद्धव्यम् । तथा मनुष्यस्यासंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य देशसंयमं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये घटमानमुत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानात् पूर्ववदनन्तगुणविशुद्धिकं निश्चेतव्यम् । मनुष्यजघन्यप्रतिपद्यमानस्थानात्प्रभृति तिर्यगनुत्कृष्टप्रतिपद्यमान-स्थानपर्यन्तं सम्भवन्ति प्रतिपद्यमानस्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्येति ग्राह्यम् । तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपद्यमान-स्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानपर्यन्तं विद्यमानानि स्थानानि असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य भवन्तीति ज्ञातव्यम्।

तथा मनुष्यस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सम्यक्त्वेन सह देशसंयमं प्रतिपद्य द्वितीयसमये वर्तमानस्य जघन्यमनुभयस्थानं मनुष्योत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं अन्तरेऽसंख्यात-लोकमात्रषट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानत्वात् । तथा तिर्यग्जीवस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सम्यक्त्वेन सार्धं देशसंयमं प्रतिपद्य द्वितीयसमये वर्तमानस्य जघन्यमनुभयस्थानं मनुष्यजघन्यानुभय-

स्थानात्पूर्ववदनन्तगुणविशुद्धिकम्। तथा तिर्यग्जीवस्यासंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य देशसंयमं प्रतिपद्य एकान्तवृद्धिचरमसमये स्वगतियोग्यसर्वविशुद्धिविशिष्टस्योत्कृष्टमनुभयस्थानं तिर्यग्जघन्यानुभय-स्थानात्प्राग्वदनन्तगुणम्। तथा मनुष्यस्यासंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य देशसंयमं प्रतिपद्य एकान्तवृद्धि-चरमसमये सर्वविशुद्धिविशिष्टस्य सकलसंयमाभिमुखस्योत्कृष्टमनुभयस्थानं तिर्यगुत्कृष्टानुभय-स्थानात्प्राग्वदनन्तगुणविशुद्धिकं ग्राह्यम्। मनुष्यजघन्यानुभयस्थानादारभ्य तिर्यगनुत्कृष्टानुभय-स्थानपर्यन्तं सम्भवन्ति स्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्येति ग्राह्यम्। तिर्यगुत्कृष्टानुभयस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टानुभयस्थानपर्यन्तं दृश्यमानानि स्थानानि असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्येति सम्भावनीयम्।

प्रतिपातद्विकस्य प्रतिपातप्रतिपद्यमानयो: अवरं मिथ्यात्वे पतत: मिथ्यादृष्टिचरस्य सम्भवति वरमुत्कृष्टं देशसंयमलब्धिस्थानमसंयते पतिष्यत: असंयतचरस्य च सम्भवति। अनुभयजघन्यं मिथ्यादृष्टिचरस्य देशसंयमग्रहणद्वितीयसमये वर्तमानस्य भवति। अनुभयोत्कृष्टं तु असंयतचरस्य एकान्तवृद्धिचरमसमये मनुष्यस्य सकलसंयमाभिमुखस्य तिर्यग्जीवस्य च एकान्तवृद्धिचरमसमयरूपस्वकीयस्थाने एव स्थितस्य सम्भवतीति सूच्यते। एवं गाथासूत्रव्याख्यानं सूक्तम् ।।१८८।।

अब प्रतिपातादिक का लक्षण और उसके स्वामिभेद कहते हैं –

अन्वयार्थ– (मिच्छे अयदे) मिथ्यात्व में जाने वाले और असंयत में जाने वाले को, मिथ्यात्व में से चढ़ने वाले और असंयत में से चढ़ने वाले जीव को क्रमश: **(पडिवाददुगवरवरं)** प्रतिपात और प्रतिपद्यमान स्थान में से जघन्य और उत्कृष्ट स्थान प्राप्त होता है। **(मिच्छचरविदियसमये)** मिथ्यात्व से चढ़े हुए जीव को देशसंयम प्राप्ति के दूसरे समय में **(अणुभयगजहण्णं)** अनुभय का जघन्य स्थान प्राप्त होता है। **(तत्तिरियवरं तु सट्ठाणे)** तिर्यंच का उत्कृष्ट अनुभयस्थान स्वस्थान में ही होता है।।१८८।।

टीकार्थ– बाह्य और अन्तरंग कारण से संयम से च्युत होना प्रतिपात है। वह जघन्य प्रतिपातस्थान संक्लेशपरिणाम से युक्त, देशसंयमकाल के अंतिम समय में विशुद्धि की हानि से अनंतर समय में मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले सबसे जघन्य देशसंयमशक्ति से युक्त मनुष्य को होता है, क्योंकि वहाँ सम्यक्त्व और देशसंयम दोनों का नाश होता है। उसी प्रकार तिर्यंच जीव का जघन्य प्रतिपातस्थान सम्यक्त्व और देशसंयम से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त होनेवाले जीव को देशसंयमकाल के अंतिम समय में संभव होता है। यह स्थान मनुष्य के जघन्य प्रतिपातस्थान से अनन्तगुणी विशुद्धि सहित जानना चाहिए क्योंकि वह असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित विशुद्धिवृद्धि से बढ़ता है। उसी प्रकार तिर्यंच जीव का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान स्वयोग्य संक्लेश परिणाम से देशसंयम से च्युत होने वाले और असंयत सम्यग्दृष्टि

गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव को उस काल के अंतिम समय में होता है। यह स्थान भी पूर्व के समान ही तिर्यंच के जघन्य प्रतिपातस्थान से अनन्तगुणी विशुद्धि युक्त जानना चाहिए। उसीप्रकार देशसंयम से च्युत होकर स्वयोग्य संक्लेश से अनन्तर समय में वेदक असंयत गुणस्थान को प्राप्त होने वाले मनुष्य को उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान होता है। यह स्थान भी तिर्यंच के उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान से अनन्तगुणी विशुद्धि से युक्त पूर्व के समान जानना चाहिए।

मनुष्य के जघन्य प्रतिपातस्थान से तिर्यंच जीव के अनुत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तक पाये जाने वाले प्रतिपातस्थान मिथ्यात्व के अभिमुख जीव को ही देशसंयम काल के अंतिम समय में जानना चाहिए। तिर्यंच के उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान से आरम्भ करके मनुष्य के उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान तक पाये जाने वाले प्रतिपातस्थान असंयत सम्यक्त्व के अभिमुख होने वाले जीव को देशसंयम काल के अंतिम समय में होते है, यह अर्थ विशेष ग्रहण करना चाहिए। तिर्यंच के उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान से मनुष्य का उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान पूर्व के समान ही अनन्तगुणी विशुद्धि से युक्त जानना चाहिए।

पूर्व में मिथ्यादृष्टि होकर पश्चात् सम्यक्त्व के साथ देशसंयम को प्राप्त होने वाले मनुष्य को उसके प्रथम समय में पाया जाने वाला जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान मनुष्य के उत्कृष्ट प्रतिपात स्थान से अनन्तगुणी विशुद्धि युक्त है, क्योंकि यह स्थान बीच में असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों का उल्लंघन करके उत्पन्न होता है। उसीप्रकार मिथ्यादृष्टि से चढ़ने वाले सम्यक्त्व और देशसंयम को एक समय में प्राप्त होने वाले तिर्यंच को देशसंयम के प्रथम समय में होने वाला जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान मनुष्य के जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान से अनन्तगुणी विशुद्धि सहित जानना चाहिए। उसीप्रकार पूर्व में असंयत सम्यग्दृष्टि होकर बाद में देशसंयम को ग्रहण करनेवाले तिर्यंच जीव के उसके प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान तिर्यंच जीव के जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान से पूर्व के समान अनन्तगुणी विशुद्धिवाला जानना चाहिए। असंयत सम्यग्दृष्टि से चढ़ने वाले, देशसंयत को प्राप्त होने वाले मनुष्य के देशसंयम प्रथम समय में पाया जाने वाला उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान तिर्यंच के उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान से अनन्तगुणी विशुद्धियुक्त जानना चाहिए। मनुष्य के जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान से तिर्यंच के अनुत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान तक संभवने वाले प्रतिपद्यमान स्थान मिथ्यात्व से चढ़ने वाले को होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। तिर्यंच के उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान से मनुष्य के उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान तक पाये जाने वाले स्थान असंयत सम्यग्दृष्टि से चढ़ने वाले को होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि से चढ़ने वाले सम्यक्त्वसहित देशसंयम को प्राप्त करके द्वितीय समय में वर्तमान मनुष्य का जघन्य अनुभय स्थान मनुष्य के उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान

स्थान से अनन्तगुणी विशुद्धि सहित है क्योंकि अन्तर में असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानपतित विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ने वाला है। उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि से चढ़ने वाले सम्यक्त्व सहित देशसंयम को प्राप्त करके द्वितीय समय में स्थित तिर्यंच जीव का जघन्य अनुभय स्थान मनुष्य के जघन्य अनुभयस्थान से अनन्तगुणी विशुद्धि सहित है। उसी प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि से चढ़कर देशसंयम को ग्रहण करके एकान्तवृद्धि के चरम समय में अपनी गति के योग्य सर्व विशुद्धि से युक्त तिर्यंच का उत्कृष्ट अनुभय स्थान तिर्यंच के जघन्य अनुभय स्थान से पूर्ववत् अनन्तगुणा विशुद्ध है। उसीप्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि से चढ़कर देशसंयम को प्राप्त होकर एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में सर्व विशुद्धि से विशिष्ट सकल संयम के अभिमुख मनुष्य का उत्कृष्ट अनुभय स्थान तिर्यंच जीव के उत्कृष्ट अनुभय स्थान से पूर्व के समान अनन्तगुणी विशुद्धि युक्त ग्रहण करना चाहिए। मनुष्य के जघन्य अनुभय स्थान से आरम्भ करके तिर्यंच के अनुत्कृष्ट अनुभय स्थान तक पाये जाने वाले स्थान मिथ्यादृष्टि से चढ़ने वाले जीव को ही होते हैं ऐसा ग्रहण करें। तिर्यच के उत्कृष्ट अनुभय स्थान से मनुष्य के उत्कृष्ट अनुभय स्थान तक पाये जाने वाले अनुभय स्थान असंयत सम्यग्दृष्टि से चढ़ने वाले जीव को होते है।

प्रतिपातद्विक अर्थात् प्रतिपात व प्रतिपद्यमान स्थानों का जघन्य स्थान (क्रमशः) मिथ्यात्व में गिरने वाले और मिथ्यादृष्टि से चढ़ने वाले जीव को संभव है और उत्कृष्ट देशसंयम लब्धिस्थान असंयत में गिरने वाले जीव को प्रतिपात और असंयत से चढ़ने वाले जीव को प्रतिपद्यमान स्थान होते हैं। अनुभय का जघन्य मिथ्यादृष्टि से चढ़ने वाले देशसंयम ग्रहण के द्वितीय समय में स्थित जीव को होता है। अनुभय का उत्कृष्ट असंयत से चढ़े हुए एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में मनुष्य को संयम के सन्मुख होने पर होता है और तिर्यंच जीव को एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में अपने स्थान में स्थित होने पर होता है, ऐसा सूचित होता है। इस प्रकार गाथा सूत्र का व्याख्यान किया ।।१८८।।

विशेषार्थ– संयमासंयम से गिरने, संयमासंयम को प्राप्त करने और इन दोनों से अतिरिक्त अर्थात् गिरने और संयमासंयम को प्राप्त करने के अतिरिक्त स्वस्थान में अवस्थित रहने की अपेक्षा संयमासंयम तीन प्रकार का है। अधिकारी भेद से ये तीनों स्थान छह प्रकार के हो जाते हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यग्योनि जीव इन स्थानों को प्राप्त करते हैं। उसमें भी ये जघन्य और उत्कृष्ट रूप दोनों प्रकार के होते हैं। इस प्रकार कुल बारह भेदरूप संयमासंयमलब्धि है। उक्त अल्पबहुत्व द्वारा उसी का निर्देश किया गया है। चूर्णिसूत्र में ये स्थान तेरह निर्दिष्ट किए हैं । सो पहला स्थान ओघ से कहकर वह स्थान गिरकर मिथ्यात्व को प्राप्त होनेवाले संयतासंयत मनुष्य के सम्भव है, इसलिए चूर्णिसूत्र में मनुष्य के जघन्य प्रतिपातस्थान का निर्देश करते हुए ओघ कह कर उसी को दुहराया है। इतना यहाँ स्पष्टीकरण

के रूप में विशेष जानना चाहिए कि जहाँ तिर्यंचों के बाद मनुष्यों के प्रतिपातस्थान समाप्त होते हैं वहाँ से लेकर मनुष्यों के जघन्य प्रतिपद्यमान स्थानों के प्राप्त होने के मध्य असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर जानना चाहिए। इसीप्रकार मनुष्यों के उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान और उन्हीं के जघन्य अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपातमान स्थान के मध्य असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर जानना चाहिए। अन्तर का अर्थ है कि यहाँ जो अन्तर कहा है वह संयमासंयम लब्धि से रहित है। प्रतिपातस्थान संयमासंयम से गिरने के अंतिम समय में होते हैं। प्रतिपद्यमान स्थान संयमासंयम को प्राप्त करने के प्रथम समय में प्राप्त होते हैं तथा अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपातमान स्थान उक्त दोनों प्रकार के स्थानों के मध्य संयमासंयम में अवस्थित रहते हुए होते हैं। वैसे सब विशेषताओं का निर्देश संस्कृत और हिन्दी टीका में किया ही है। स्पष्टीकरण की दृष्टि से कुछ विशेषताओं का निर्देश यहाँ किया हैं।

अन्त में संयमासंयम लब्धि को समाप्त करते हुए चूर्णिसूत्रों के अनुसार जयधवला में जिन तथ्यों का निर्देश किया गया है उनकी मीमांसा यहाँ कर लेना आवश्यक है। यथा -१) संयतासंयत जीव अप्रत्याख्यान कषाय को नहीं वेदता क्योंकि उसके अप्रत्याख्यान कषाय की उदयशक्ति का अत्यन्त परिक्षय होता है। इससे संयमासंयम लब्धि औदयिक नहीं है यह सिद्ध होता है। २) प्रत्याख्यानावरणीय कषाय का उदय होते हुए भी वे संयमासंयम को आवृत्त नहीं करते । उनका उदय संयमासंयम का कुछ भी उपघात नहीं करता यह इसका तात्पर्य है, क्योंकि वे सकल संयम के प्रतिबन्धक होने से देशसंयम में उनका व्यापार नहीं स्वीकार किया गया है। ३) शेष चार संज्वलन और नौ नोकषाय उदीर्ण होकर वे देशसंयम को देशघाति करते हैं। इसलिए देशसंयम को क्षायोपशमिक स्वीकार किया गया है, क्योंकि वे संयमासंयम को देशघाति करते हैं इसका अर्थ है कि वे संयमासंयम को क्षायोपशमिक करते हैं। उनके उदय को देशघाति नहीं माना जाय तो संयमासंयम की उत्पत्ति का विरोध हो जाएगा। इसलिए चार संज्वलन और नौ नोकषायों के सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय होने से और उन्हीं के देशघाति स्पर्धकों का उदय होने से संयमासंयम को क्षायोपशमिक स्वीकार किया गया है।

४) संयमासंयमधारी जीव अप्रत्याख्यानावरण का तो वेदन नहीं करता है। प्रत्याख्यानावरण का वेदन करता हुआ भी वह संयमासंयम का न तो उपघात ही करता है और न अनुग्रह ही करता है। इसलिए प्रत्याख्यानावरण का वेदन करता हुआ भी वह यदि चार संज्वलन और नौ नोकषाय का वेदन न करे तो संयमासंयमलब्धि क्षायिक हो जाएगी। अर्थात् जैसे क्षायिक लब्धि एक प्रकार की होती है वैसे संयमासंयमलब्धि भी एक प्रकार की हो जाएगी। पर ऐसा सम्भव नहीं है, इसलिए वहाँ चार संज्वलन और नौ नोकषायों का उदय देशघाति होता है अत: संयमासंयम लब्धि क्षायोपशमिक होती है ऐसा स्वीकार किया गया है और क्षयोपशम के असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं, इसलिए संयमासंयम लब्धि भी असंख्यात लोकप्रमाण स्वीकार की गई है।

देशसंयम के लब्धिस्थान

अनुभय स्थान

0← मनुष्य (उत्कृष्ट) – ४ थे में से चढ़े हुए देशसंयम के एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में स्थित सकलसंयम के सन्मुख जीव को

0← तिर्यंच (उत्कृष्ट) – ४ थे में से चढ़े हुए जीव को देशसंयत के एकान्तवृद्धि के अंतिम समय में

0← तिर्यंच (जघन्य) – १ ले में से ५ वें में चढ़े हुए जीव को दूसरे समय में

0← मनुष्य (जघन्य)– १ ले में से ५ वें में चढ़े हुए जीव को दूसरे समय में

प्रतिपद्यमान स्थान

0← मनुष्य (उत्कृष्ट)– ४ थे में से ५ वें में चढ़े हुए जीव को

0← तिर्यंच (उत्कृष्ट) – ४ थे में से ५ वें में चढ़े हुए जीव को

0← तिर्यंच (जघन्य) – १ ले में से ५ वे में चढ़े हुए जीव को

0← मनुष्य (जघन्य) – १ ले में से ५ वें में चढ़े हुए जीव को

प्रतिपात स्थान

0← मनुष्य (उत्कृष्ट) – ५ वे में से ४ थे गुणस्थान में गिरनेवाले जीव को

0← तिर्यंच (उत्कृष्ट) – ५ वे में से ४ थे गुणस्थान में गिरनेवाले जीव को

0← तिर्यंच (जघन्य) – ५ वे में से १ ले गुणस्थान में गिरनेवाले जीव को

0← मनुष्य (जघन्य) – ५ वे में से १ ले गुणस्थान में गिरनेवाले जीव को

इति देशसंयमलब्धिविधानाधिकार: समाप्त: ।।

सकलसंयमलब्धि–अधिकार

अथ सकलचारित्रप्ररूपणमुपक्रममाण इदं सूत्रमाह–

सयलचरित्तं तिविहं खयउवसमि उवसमं च खइयं च[1] ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा उवसमसम्मेण गेण्हदो पढमं[2] ।।१८९।।

सकलचारित्रं त्रिविधं क्षायोपशमिकमौपशमिकं च क्षायिकं च ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिवोपशमसम्येन गृह्णतः प्रथमम् ।।१८९।।

सकलचारित्रं त्रिविधं क्षायोपशमिकमुपशमजं क्षायिकं चेति । तत्र प्रथमं क्षायोपशमिकचारित्रमुपशमजसम्यक्त्वेन सह गृह्णतो जीवस्य प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ यथा प्रक्रिया प्रागुक्ता तथैव अत्रापि निरवशेषं वक्तव्या ।।१८९।।

अब सकलचारित्र के प्ररूपण को प्रारंभ करने वाले आचार्य यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(सयलचरित्तं)** सकलचारित्र **(तिविहं)** तीन प्रकार का है – **(खयउवसमि)** क्षायोपशमिक **(उवसमं)** औपशमिक **(च)** और **(खइयं)** क्षायिक। **(उवसमसम्मेण)** औपशमिक सम्यक्त्व के समान **(पढमं)** प्रथम सकलचारित्र को (क्षायोपशमिक चारित्र को) **(गेण्हदो)** ग्रहण करने वाले जीव की विधि **(सम्मत्तुप्पत्तिं वा)** सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समान ही जानना चाहिए।।१८९।।

टीकार्थ–क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक ऐसे तीन प्रकार का सकलचारित्र है। उसमें से प्रथम क्षायोपशमिक चारित्र को औपशमिक सम्यक्त्व के साथ ग्रहण करने वाले जीव की प्रक्रिया जैसी पूर्व में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कही गयी है वैसी ही यहाँ भी संपूर्ण प्रक्रिया कथन करनी चाहिए।

विशेषार्थ– सकल सावद्य के विरतिस्वरूप पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियों को प्राप्त होने वाले मनुष्य का जो विशुद्धि रूप परिणाम होता है उसे संयमलब्धि या सकलसंयम कहते हैं। अनन्तानुबन्धी आदि १२ कषायों की उदयाभावलक्षण उपशमना के होने पर यह उत्पन्न होता है। यद्यपि यहाँ चार संज्वलन और नौ नोकषायों का उदय है परन्तु वहाँ उनके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय न रहने से उनका भी देशोपशम पाया जाता है। स्थिति उपशामना दो प्रकार से सम्भव है। एक तो अनुदयवाली पूर्वोक्त प्रकृतियों की स्थितियों का उदयरूप न होना स्थिति उपशामना है। दूसरे सभी कर्मों की अन्तःकोड़ाकोड़ी से उपरिम स्थितियों का उदयरूप न होना स्थिति उपशामना है। पूर्वोक्त बारह कषायों के अनुभाग का उदयरूप न होना अनुभाग उपशामना है तथा उदयरूप कषायों के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय न होना अनुभाग उपशामना है। ज्ञानावरणादि कर्मों

---

१) पा.भे.– सयलचरित्तं तिविहं खओवसमियुवसमं च खयियं च । का.ह.प्र. २) जयध. पु. १३ पृ.१०७ ।

के भी त्रिस्थानीय और चतु:स्थानीय अनुभाग के परित्यागपूर्वक द्विस्थानीय अनुभाग की प्राप्ति अनुभाग उपशामना है। अनुदयरूप उन्हीं पूर्वोक्त कषायों के प्रदेशों का उदय नहीं होना प्रदेश उपशामना है।

ये सब विशेषताएँ संयमासंयमलब्धि के प्राप्त होते समय भी रहती है। अन्तर केवल इतना है कि संयमासंयमलब्धि के काल में प्रत्याख्यानावरण कषाय का निरन्तर उदय रहता है। यहाँ संयमलब्धि में चार संज्वलन और नौ नोकषायों के सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावरूप क्षय और उपशम बना रहता है, इसलिए यह भी संयमासंयमलब्धि के समान क्षयोपशम भावरूप है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। संयमलब्धि उपशमरूप और क्षायिकरूप भी होती है, पर उनकी प्रकृत में विवक्षा नहीं है।

अथ वेदकयोग्यमिथ्यादृष्ट्यादीनां सकलसंयमं गृह्णतां प्रक्रियाविशेषप्रदर्शनार्थमिदमाह–

वेदगजोग्गो मिच्छो अविरददेसो य दोण्णिकरणेण।
देसवदं वा गेण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ।।१९०।।

वेदकयोग्यो मिथ्योऽविरतदेशश्च द्विकरणेन ।
देशव्रतमिव गृह्णाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ।।१९०।।

वेदकसम्यक्त्वग्रहणयोग्यो मिथ्यादृष्टिर्वा वेदकसम्यग्दृष्टिरविरतो वा देशव्रती वा देशव्रतग्रहणवदध:प्रवृत्तापूर्वकरणद्वयपरिणामैरेव सकलसंयमं गृह्णाति । तत्करणद्वयेऽपि गुणश्रेणिर्नास्ति। सकलसंयमग्रहणप्रथमसमयादारभ्य गुणश्रेण्यस्ति ।।१९०।।

अब सकलसंयम को ग्रहण करने वाले वेदक योग्य मिथ्यादृष्टिआदि कों की प्रक्रिया विशेष दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ –(वेदगजोग्गो) वेदकसम्यक्त्व ग्रहण के योग्य **(मिच्छो)** मिथ्यादृष्टि **(य)** और **(अविरददेसो)** अविरत और देशविरत **(दोण्णिकरणेण)** दोनों करणों के द्वारा **(देसवदं वा)** देशव्रत के समान संकलसंयम को **(गेण्हदि)** ग्रहण करता है **(तक्करणे)** उस करण में **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि **(णत्थि)** नहीं होती है ।।१९०।।

टीकार्थ – वेदकसम्यक्त्व के ग्रहण के योग्य मिथ्यादृष्टि अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि अविरत अथवा देशव्रती देशव्रत के ग्रहण के समान अध:प्रवृत्त और अपूर्वकरण इन दो करण परिणामों के द्वारा सकलसंयम को ग्रहण करता है। उन दोनों करणों में गुणश्रेणि नहीं होती। सकलसंयम के ग्रहण के प्रथम समय से गुणश्रेणि है ।।१९०।।

इत: परं देशसंयमवदेवात्रापि प्रक्रिया भवतीत्यतिदेशार्थमिदमाह –

एत्तो उवरिं विरदे देसो वा होदि अप्पबहुगो त्ति ।
देसो त्ति य तट्ठाणे विरदो त्ति य होदि वत्तव्वं ।।१९१।।

अत उपरि विरते देश इव भवत्यल्पबहुकत्वमिति ।
देश इति तत्स्थाने विरत इति च भवति वक्तव्यम् ।।१९१।।

इत: परमल्पबहुत्वपर्यन्तं देशसंयते यादृशी प्रक्रिया तादृश्येवात्रापि सकलसंयते भवतीति ग्राह्यम् । अयं तु विशेष:–यत्र यत्र देशसंयत इत्युच्यते तत्र तत्र स्थाने विरत इति वक्तव्यं भवति। तद्यथा–अध:प्रवृत्तकरणादीनां कालाल्पबहुत्वं सम्यक्त्वोत्पत्तिवत् स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वपूर्वकरणकाल: समाप्यते तदनन्तरसमये सकलसंयत: सन् असंख्यातसमयप्रबद्धद्रव्यमपकृष्यावस्थितगुणश्रेणिं पूर्ववत्करोति । एवं प्रतिसमयमसंख्यात–गुणक्रमेण द्रव्यमपकृष्य एकान्तवृद्धिचरमसमयपर्यन्तमवस्थितगुणश्रेणिं करोति । तत्काले बहुषु स्थितिकाण्डकसहस्रेषु गतेषु तदनन्तरसमयादारभ्य स्वस्थानसकलसंयतो भवति । तत्र स्वस्थानसकलसंयतकाले स्थित्यनुभागकाण्डकघातो नास्ति गुणश्रेणी पुनरवस्थितायामा सकलसंयमनिबन्धना प्रवर्तत एव। तदा संक्लेशस्तोकवशेन सकलसंयमात्प्रच्युत्यासंयतगुणस्थानं गत्वा तत्र कर्मस्थितिमवर्धयित्वा शीघ्रान्तर्मुहूर्तेन पुन: संयमं प्रतिपद्यमानस्याध:प्रवृत्तापूर्वकरण–परिणाम: स्थित्यनुभागखण्डनं च नास्ति । यस्तीव्रसंक्लेशेन सकलसंयमात्प्रच्युत्य मिथ्यात्वं गत्वा तत्र दीर्घमन्तर्मुहूर्तं वा चिरकालं वा स्थित्वा स्थित्यनुभागौ वर्धयित्वा पुनर्वेदकसम्यक्त्वेन सह सकलसंयमं गृह्णाति तस्याध:प्रवृत्तापूर्वकरणद्वयं स्थित्यनुभागखण्डनं च विद्यत एव। तदा विशुद्धिसंक्लेशपरावृत्तिवशेन स्वस्थानसकलसंयत: असंख्यातभागाधिकं संख्यातभागाधिकं संख्यातगुणं असंख्यातगुणं वा असंख्यातभागहीनं संख्यातभागहीनं संख्यातगुणहीनमसंख्यातगुणहीनं वा द्रव्यमपकृष्यावस्थितायामां गुणश्रेणिं करोत्येव ।

जघन्यानुभागखण्डोत्करणकाल: सर्वत: स्तोकमित्यादिषु देशपदस्थाने विरतपदं निक्षिप्याल्पबहुत्वपदान्यष्टादशापि पूर्ववद् व्याख्येयानि ।।१९१।।

यहाँ से आगे देशसंयम के समान यहाँ भी प्रक्रिया होती है इसका निर्देश करने के लिए आगे सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(एत्तो उवरिं)** यहाँ से आगे **(अप्पबहुगो त्ति)** अल्पबहुत्व तक का सभी कथन **(देसो वा)** देशचारित्र के समान **(विरदे)** विरत में **(होदि)** होता है। **(देसो त्ति य तट्ठाणे)** जहाँ देशचारित्र ऐसा शब्द है उस स्थान पर **(विरदो त्ति य)** विरत (सकलचारित्र) ऐसा **(वत्तव्वं होदि)** कथन करें ।।१९१।।

टीकार्थ– यहाँ से आगे अल्पबहुत्व पर्यंत देशसंयत में जैसी प्रक्रिया है वैसी ही प्रक्रिया यहाँ सकलसंयत में भी है ऐसा ग्रहण करें। परन्तु यह विशेष है कि जहाँ–जहाँ देशसंयत ऐसा कहा है वहाँ–वहाँ विरत ऐसा कहें। उसका खुलासा –

अध:प्रवृत्तकरणादिक के काल का अल्पबहुत्व सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समान ही है। हजारों स्थितिकांडक जाने पर अपूर्वकरण काल समाप्त होता है। उसके बाद के समय में सकलसंयत होकर असंख्यात समयप्रबद्धरूप द्रव्य का अपकर्षण करके पूर्व के समान अवस्थित गुणश्रेणि करता है। इसप्रकार प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित क्रम से द्रव्य का अपकर्षण करके एकान्तवृद्धि के अंतिम समय तक अवस्थित गुणश्रेणि करता है। उस काल में बहुत हजारों स्थितिकांडक जाने पर उसके (एकान्तवृद्धि के) अनन्तर समय से स्वस्थान सकलसंयत होता है। उस स्वस्थान सकलसंयत काल में स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होता। सकलसंयम के निमित्त से अवस्थित आयामवाली गुणश्रेणि प्रवृत्त होती है जो थोड़ा संक्लेश होने से सकलसंयम से च्युत होकर असंयत गुणस्थान को प्राप्त होकर वहाँ कर्मों की स्थिति न बढ़ाकर शीघ्र अन्तर्मुहूर्त के द्वारा पुन: संयम को ग्रहण करता है उस जीव को अध:प्रवृत्त और अपूर्वकरण परिणाम उसी प्रकार स्थितिखण्डन व अनुभागखण्ड्न नहीं होता। जो जीव तीव्र संक्लेश परिणाम होने से सकल संयम से च्युत होकर मिथ्यात्व में जाकर वहाँ दीर्घ अन्तर्मुहूर्त अथवा दीर्घकाल स्थित होकर स्थिति व अनुभाग बढ़ाकर पुन: वेदकसम्यक्त्व सहित संकलसंयम को ग्रहण करता है उसे अध:प्रवृत्तकरण व अपूर्वकरण ये दो करण होते हैं उसी प्रकार स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात भी होता है। तब विशुद्धि और संक्लेश की परावृत्ति से स्वस्थान सकलसंयत असंख्यातवें भाग अधिक अथवा संख्यातवें भाग अधिक अथवा संख्यातगुणे अथवा असंख्यातगुणे अथवा असंख्यातवें भाग हीन अथवा संख्यातवें भाग हीन अथवा संख्यातगुणे हीन अथवा असंख्यातगुणे हीन द्रव्य का अपकर्षण करके अवस्थित आयामवाली गुणश्रेणि करता ही है। जघन्य अनुभाग खण्डोत्करणकाल सबसे छोटा है इत्यादि में देशपद के स्थान में विरतपद निक्षिप्त कर अठारह अल्पबहुत्वपदों का व्याख्यान पूर्व के समान ही करें ।।१९१।।

विशेषार्थ – गाथा १९१ में यह सूचना की गई है कि देशविरत जीव की प्ररूपणा में जो प्रक्रिया की गई है वही सब संयतजीव के विषय में भी जाननी चाहिए। मात्र उसमें जहाँ–जहाँ देशविरत शब्द का प्रयोग किया गया है वहाँ–वहाँ संयतपद का प्रयोग करना चाहिए। यह उक्त सूत्रकथन का अर्थ है। हाँ, जयधवला में इस सम्बन्ध में कुछ विशेष सूचनाएँ की गई है। उनका निर्देश हम यहाँ कर देना चाहते हैं–

१) जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयम के अभिमुख होता है उसके अध:करण और अपूर्वकरण ये दो ही करण होते हैं। उसमें अध:करण के अन्त में सर्वप्रथम उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुए जीव के सम्बन्ध में जिन चार गाथाओं का उल्लेख कर आये हैं उनको लक्ष्य में रखकर

व्याख्यान करना चाहिए। इतना अवश्य है कि यहाँ उनका व्याख्यान संयम के सन्मुख हुए वेदकसम्यग्दृष्टि को लक्ष्य में रखकर करना चाहिए । विशेष व्याख्यान जयधवला (पु.१३, पृ.१५९–१६३) से जान लेना चाहिए।

२) संयम को प्राप्त होने वाले उक्त जीव के अध:करण और अपूर्वकरणमात्र ये दो करण होते हैं। इनका व्याख्यान संयमासंयम की प्राप्ति के समय जैसा कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए। इस प्रकार अपूर्वकरण की क्रिया को समाप्त कर तदनन्तर समय में यह जीव संयत हो जाता है तथा संयत होने के प्रथम समय से लेकर उसके अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए चारित्र लब्धि में वृद्धि होती जाती है। इसप्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक चारित्रलब्धि में निरन्तर वृद्धि होती जाने से उस संयम को एकान्तानुवृद्धि संयम कहते हैं तथा उस समय यह जीव अपूर्वकरण इस संज्ञावाला स्वीकार किया जाता है। कारण कि जिसप्रकार अपूर्वकरण में प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि होने से उसकी अपूर्वकरण संज्ञा है उसी प्रकार यहाँ भी प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि प्राप्त होने से उसे अपूर्वकरण कहा गया है। संयम को प्राप्त करने के सन्मुख हुए जीव की जो विशुद्धि होती है वह यहाँ होती है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। किन्तु अपूर्वकरण के समान यहाँ भी प्रतिसमय अपूर्व–अपूर्व विशुद्धि की प्राप्ति होती है। इसलिए यहाँ एकान्तानुवृद्धि संयत को अपूर्वकरण संज्ञक संयत कहा गया है।

३) गुणश्रेणि की दृष्टि से विचार करने पर संयम की प्राप्ति के पूर्व तो गुणश्रेणि रचना नहीं होती मात्र संयम प्राप्ति के प्रथम समय से लेकर संयम के निमित्त से अवस्थित गुणश्रेणि रचना प्रारम्भ हो जाती है जो एकान्तानुवृद्धि संयम के अन्त तक असंख्यात गुणितक्रम से होती रहती है। उसके बाद स्वस्थानपतित अध:प्रवृत्तसंज्ञावाले उसके विशुद्धि और संक्लेश के कारण चारित्रलब्धि में कदाचित् वृद्धि होती है, कदाचित् हानि होती है और कदाचित् वह अवस्थित रहती है। तदनुसार यहाँ चार वृद्धियाँ और हानियाँ सम्भव हैं। चार वृद्धियाँ ये हैं– असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धि। चार हानियाँ ये हैं– असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि और असंख्यात गुणहानि। प्रतिसमय विशुद्धि के समय कोई एक वृद्धि होती है और संक्लेश के समय कोई एक हानि होती है। नियम यह है कि पूर्व समय में जो संयम विशुद्धि है, उससे अगले समय में कितनी वृद्धि या हानि हुई है या वह अवस्थित रही है, तदनुसार प्रतिसमय गुणश्रेणि की रचना में भी वृद्धि–हानि होती रहती है

४) जो जीव बहुत संक्लेशरूप परिणामों के बिना परिणामवश संयम से च्युत हो असंयमपने को प्राप्त कर स्थितिसत्कर्म में वृद्धि किये बिना पुन: अन्तर्मुहूर्त में विशुद्ध होता हुआ संयम को प्राप्त होता है उसके न तो अपूर्वकरण रूप परिणाम होते हैं और नहीं स्थिति–अनुभागकाण्डकघात ही होते हैं क्योंकि पहले घातकर जो स्थिति और अनुभाग शेष रहा था वह तदवस्थ बना रहता है।

५) किन्तु जो संयत संक्लेश की बहुलतावश मिथ्यात्व सहित असंयत होकर अन्तर्मुहूर्त

के बाद या लम्बे काल के बाद पुन: संयम को प्राप्त करता है उसके पूर्वोक्त दोनों करण तथा स्थिति अनुभागकाण्डकघात अवश्य होते हैं, क्योंकि इसने मिथ्यात्व अवस्था में जो स्थिति और अनुभाग को बढ़ाया है उनका घात किये बिना पुन: संयम को ग्रहण करना इसके बन नहीं सकता है।

अथ सर्वजघन्यसकलसंयमविशुद्ध्यविभागप्रतिच्छेदप्रमाणप्रदर्शनपूर्वकं तत्सर्वस्थानसंख्यानं प्ररूपयितुमिदमाह–

अवरे विरदट्ठाणे होंति अणंताणि फड्डयाणि तदो ।
छट्ठाणगया सव्वे लोयाणमसंखछट्ठाणा ।।१९२ ।।

अवरे विरतस्थाने भवन्त्यनन्तानि स्पर्धकानि तत: ।
षट्स्थानगतानि सर्वाणि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१९२ ।।

सकलसंयमस्य सर्वजघन्यस्थाने स्पर्धकान्यविभागप्रतिच्छेदा: जीवराश्यनन्तगुणप्रमिता: सन्ति । तत: परं सर्वोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं षट्स्थानपतितवृद्धीनि सकलसंयमलब्धिस्थानानि सर्वाण्यपि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति ।।१९२ ।।

अब सबसे जघन्य संकलसंयम की विशुद्धि के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण दिखाकर उसके सभी स्थानों की संख्या का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(अवरे विरदट्ठाणे)** जघन्य विरत स्थान में **(अणंताणि फड्डयाणि)** अनन्त स्पर्धक **(होंतिं)** होते हैं। **(तदो)** उसके आगे **(छट्ठाणगया)** षट्स्थानपतित **(सव्वे)** सभी सकलसंयम लब्धिस्थान **(लोयाणमसंखछट्ठाणा)** असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानयुक्त हैं।

टीकार्थ– सकलसंयम के सबसे जघन्य स्थान में स्पर्धक अर्थात् अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण जीवराशि से अनन्तगुणा है। उसके आगे सर्वोत्कृष्ट स्थान पर्यंत षट्स्थानपतित वृद्धिवाले संकलसंयमलब्धि स्थान सभी असंख्यात लोकमात्र हैं ।।१९२।।

विशेषार्थ – गोम्मटसार जीवकांड ग्रन्थ के ज्ञानाधिकार में पर्यायसमास के स्थानों का जैसा अनुक्रम कहा है वैसे ही यहाँ संयमलब्धि स्थानों का समझना चाहिए। सबसे जघन्य सकलसंयम लब्धिस्थान सभी जीवराशि से अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदों से युक्त है। इनहीं अनन्त अविभागप्रतिच्छेदों को स्पर्धक कहते है। कारण यहाँ स्पर्धक शब्द अविभागप्रतिच्छेदों का वाचक माना है। अथवा यह जघन्य लब्धिस्थान मिथ्यात्व में गिरने के सन्मुख संयत के अंतिम समय में कषायों के अनन्त अनुभाग स्पर्धकों के उदय से उत्पन्न होता है। इसलिए कार्य में कारण का उपचार करके अनन्त स्पर्धक कहे हैं।

सकलसंयमस्य प्रतिपातादिभेदं दर्शयितुमिदमाह-

तत्थ य पडिवादगया पडिवज्जगया त्ति अणुभयगया त्ति।
उवरुवरि लद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा[1] ।।१९३।।

तत्र च प्रतिपातगता प्रतिपद्यगता इति अनुभयगता इति ।
उपर्युपरि लब्धिस्थानानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१९३।।

तत्र प्रतिपातगतानि प्रतिपद्यमानगतान्यनुभयगतानीति त्रिविधानि सकलसंयमलब्धिस्थानानि प्रत्येकमसंख्यातलोकमात्राण्युपर्युपरि तिष्ठन्ति ।।१९३।।

सकलसंयम के प्रतिपातादि भेद दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं-

अन्वयार्थ- (तत्थ य) उस सकलसंयम लब्धिस्थान में **(पडिवादगया)** प्रतिपातगत **(पडिवज्जगया त्ति)** प्रतिपद्यगत और **(अणुभयगया त्ति)** अनुभयगत ऐसे **(उवरुवरि)** ऊपर-ऊपर **(लद्धिठाणा)** लब्धिस्थान **(लोयाणमसंखछट्ठाणा)** असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानवाले हैं।

टीकार्थ- वहाँ प्रतिपातगत, प्रतिपद्यमानगत, अनुभयगत ऐसे तीन प्रकार के सकलसंयम लब्धिस्थान प्रत्येक असंख्यात लोकमात्र ऊपर-ऊपर स्थित हैं ।।१९३।।

तेषु प्रतिपातस्थानभेदं प्रदर्शयितुमिदमाह -

पडिवादगया मिच्छे अयदे देसे य होंति उवरुवरिं ।
पत्तेयमसंखमिदा लोयाणमसंखछट्ठाणा[2] ।।१९४।।

प्रतिपातगतानि मिथ्येऽयते देशे च भवन्त्युपर्युपरि ।
प्रत्येकमसंख्यमितानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।।१९४।।

मिथ्यात्वे प्रतिपाताभिमुखं सकलसंयमलब्धिस्थानं चरमसमये तीव्रसंक्लेशवशात्सर्वजघन्यं भवति । ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा तद्योग्यसंक्लेशवशेन मिथ्यात्वप्रतिपाताभिमुखं सकलसंयमलब्धिस्थानमुत्कृष्टं तच्चरमसमये भवति । ततः परमसंख्यात-लोकमात्राणि षट्स्थानान्यन्तरयित्वाऽसंयमप्रतिपाताभिमुखं जघन्यं सकलसंयमलब्धिस्थानं चरमसमये तद्योग्यसंक्लेशवशेन भवति । ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा असंयमप्रतिपाताभिमुखसकलसंयमलब्धिस्थानमुत्कृष्टं तच्चरमसमये तद्योग्यसंक्लेशवशाद् भवति ।

---

१) जयध. पु. १३ , पृ. १७५-१७९। २) जयध. पु. १३ , पृ. १८२-१८३ ।

ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानान्यतीत्य तद्योग्यसंक्लेशाद्देशसंयमप्रतिपाताभिमुखं जघन्यं सकलसंयमलब्धिस्थानं तच्चरमसमये भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा तद्योग्यसंक्लेशवशेन देशसंयमप्रतिपाताभिमुखमुत्कृष्टं सकलसंयमलब्धिस्थानं तच्चरमसमये भवति । एवं प्रतिपातस्थानानि तद्विषयस्वामिभेदात्त्रिविधानि । तत्र त्रीणि जघन्यानि तीव्रसंक्लेशाविष्टस्य भवन्ति । त्रीण्युत्कृष्टानि तद्योग्यमन्दसंक्लेशाविष्टस्य भवन्ति ।।१९४।।

उनमें प्रतिपातस्थानों के भेद दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ – संयम से **(मिच्छे अयदे देसे य)** मिथ्यात्व में, असंयत में और देशसंयत में गिरने वाले संयत के **(पडिवादगया)** प्रतिपातगत स्थान **(उवरूवरिं)** ऊपर–ऊपर **(पत्तेयं)** प्रत्येक **(असंखमिदा)** असंख्यात लोकमात्र हैं और प्रत्येक में **(लोयाणमसंखछट्ठाणा)** असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान होते हैं ।

टीकार्थ – मिथ्यात्व में गिरने के सन्मुख सकलसंयम लब्धिस्थान अंतिम समय में तीव्र संक्लेश परिणाम के कारण सबसे जघन्य होता है। उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाकर उस योग्य संक्लेश से मिथ्यात्व में प्रतिपात के सम्मुख उत्कृष्ट सकलसंयम लब्धिस्थान अंतिम समय में होता है। उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों का अंतर (उल्लंघन) कर असंयम में गिरने के सम्मुख जघन्य सकलसंयमलब्धिस्थान अंतिम समय में उसके योग्य संक्लेश से होता है । उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाने पर असंयम में प्रतिपात के सम्मुख उत्कृष्ट सकलसंयम लब्धिस्थान अंतिम समय में उसके योग्य संक्लेश से होता है। उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान उल्लंघन करके उसके योग्य संक्लेश परिणाम से देशसंयम में गिरने के अभिमुख जघन्य सकलसंयम लब्धिस्थान अंतिम समय में होता है। उसके बाद असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाने पर उसके योग्य संक्लेश से देशसंयम में प्रतिपात के अभिमुख उत्कृष्ट सकलसंयम लब्धिस्थान अंतिम समय में होता है। तीनों जघन्य स्थान तीव्र संक्लेशयुक्त जीव के होते हैं और तीनों उत्कृष्ट स्थान उसके योग्य मन्द संक्लेश से युक्त जीव के होते हैं ।।१९४।।

विशेषार्थ – संयमस्थान तीन प्रकार के हैं– प्रतिपातस्थान, उत्पादकस्थान और लब्धिस्थान। संयम के जिस स्थान के प्राप्त होने पर जीव पतन कर मिथ्यात्व, असंयम और संयमासंयम को प्राप्त करता है उसे प्रतिपातस्थान कहते हैं। जिस स्थान में जीव संयम को प्राप्त करता है उसे उत्पादक स्थान कहते हैं तथा सभी संयमस्थानों को लब्धिस्थान कहते हैं। लब्धिसार में जिन्हें अनुभय संयमस्थान कहा गया है उनसे संयमलब्धिस्थानों में यह अन्तर है कि इनमें संयमसंबंधी प्रतिपात आदि सभी संयमस्थानों को ग्रहण किया गया है तथा वहाँ संयम लब्धिस्थानों को प्रतिपातस्थान और उत्पादकस्थानों से भिन्न अप्रतिपात–अनुत्पादक

स्थानरूप से भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार जयधवला में संयमलब्धिस्थानों के दोनों अर्थ स्वीकार किये गये हैं। लब्धिसार में इन तीनों स्थानों में से प्रत्येक को असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान पतित बतलाया गया है। अल्पबहुत्व का निर्देश करते हुए जयधवला में लिखा है कि प्रतिपातस्थान असंख्यात लोक प्रमाण होकर भी सबसे थोड़े हैं। उनसे उत्पादक स्थान असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार का प्रमाण असंख्यात लोक है। उनसे लब्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण हैं। दूसरे प्रकार से अल्पबहुत्व का निर्देश करते हुए लिखा है कि प्रतिपातस्थान सबसे थोडे हैं। उनसे प्रतिपद्यमान स्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थान असंख्यातगुणे हैं तथा उनसे लब्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। तीव्रमन्दता की दृष्टि से लिखा है – मिथ्यात्व को प्राप्त करने वाले संयत का तत्प्रायोग्य संक्लेश के कारण जघन्य संयमस्थान सबसे मन्द अनुभाग वाला होता है। इससे उसी का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि यह पूर्व के संयमस्थान से असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानों को उल्लंघन कर उत्पन्न हुआ है। इसीप्रकार असंयम सम्यक्त्व और संयमासंयम को गिरकर प्राप्त होने वाले संयत का जघन्य और उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे संयम को प्राप्त होने वाले कर्मभूमिक मनुष्य का जघन्य संयमस्थान क्रमश: अनन्तगुणा है। उससे संयम को प्राप्त होने वाले अकर्मभूमिक मनुष्य का जघन्य संयमस्थान क्रमश: अनन्तगुणा है। उससे इसी का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे कर्मभूमिक का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। जयधवला के अनुसार यहाँ भरत और ऐरावत क्षेत्र में विनीत संज्ञावाला जो मध्यम खण्ड है उसमें उत्पन्न होने वाले मनुष्य कर्मभूमिक लेने चाहिए तथा शेष पाँच खण्डों में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य अकर्मभूमिक ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उन पाँच खण्डों में धर्म-कर्म की प्रवृत्ति का अभाव है।

कर्मभूमिक मनुष्यों में उक्त उत्कृष्ट संयमस्थान से सामायिक-छेदोपस्थापना संयम के सन्मुख हुए परिहारविशुद्धि संयम का जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है। यह सामायिक-छेदोपस्थापना संयम के जघन्य प्रतिपातस्थान और प्रतिपद्यमानस्थान से असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान संयमस्थान आगे जाकर वहाँ प्राप्त होने वाले संयमलब्धिस्थान के समान होकर उत्पन्न होता है। इससे उसी का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे सामायिक-छेदोपस्थाना संयम का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे सूक्ष्मसांपरायिक संयम का जघन्य और उत्कृष्ट संयम स्थान क्रमश: अनन्तगुणा है। उससे वीतराग संयम का अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्रलब्धिस्थान अनन्तगुणा है। यह एक ही प्रकार का है, क्योंकि यहाँ कषाय का सर्वथा अभाव है, इसलिए चाहे उपशान्तकषाय जीव हो, चाहे क्षीणकषाय आदि गुणस्थानों वाला जीव हो इन सबके कषाय का सर्वथा अभाव होने से इन स्थानों का चारित्रलब्धि में किसी भी प्रकार का भेद नहीं पाया जाता।

अथ प्रतिपद्यमानसकलसंयमलब्धिस्थानस्वामिभेदावधारणार्थमिदमाह -

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छअज्जे य।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि देसं वा[1]।।१९५।।

ततः प्रतिपद्यगता आर्यम्लेच्छे म्लेच्छार्ये च ।
क्रमशोऽवरमवरं वरं वरं भवति देशमिव ।।१९५।।

तस्माद् देशसंयमप्रतिपाताभिमुखोत्कृष्टप्रतिपातस्थानादसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यन्तरयित्वा मिथ्यादृष्टिचरस्यार्यखण्डजमनुष्यस्य सकलसंयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानं जघन्यं सकलसंयमलब्धिस्थानं भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यतिक्रम्य म्लेच्छभूमिजमनुष्यस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य संयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानं जघन्यं संयमलब्धिस्थानं भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा म्लेच्छभूमिजमनुष्यस्य देशसंयतचरस्य संयमग्रहणप्रथमसमये उत्कृष्टं संयमलब्धिस्थानं भवति । ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा आर्यखण्डजमनुष्यस्य देशसंयतचरस्य संयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानमुत्कृष्टं सकलसंयमलब्धिस्थानं भवति । एतान्यार्यम्लेच्छमनुष्यविषयाणि सकलसंयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानानि संयमलब्धिस्थानानि प्रतिपद्यमानस्थानानीत्युच्यन्ते । अत्रार्यम्लेच्छमध्यमस्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्य वा असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य वा देशसंयतचरस्य वा तदनुरूपविशुद्ध्या सकलसंयमं प्रतिपद्यमानस्य सम्भवन्ति । विधिनिषेधयोर्नियमावचने सम्भवप्रतिपत्तिरिति न्यायसिद्धत्वात् । अत्र जघन्यद्वयं यथायोग्यतीव्रसंक्लेशाविष्टस्य, उत्कृष्टद्वयं तु मन्दसंक्लेशाविष्टस्येति ग्राह्यं । म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं सम्भवतीति नाशंकितव्यं, दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसम्बन्धानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसम्भवात् तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात् ।।१९५।।

अब प्रतिपद्यमान सकलसंयम लब्धिस्थानों के स्वामिभेद का निर्धारण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं -

अन्वयार्थ - (तत्तो) प्रतिपातस्थानों के आगे **(पडिवज्जगया)** प्रतिपद्यगत स्थान हैं । वे **(अज्जमिलेच्छ मिलेच्छअज्जे य कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि)** आर्य मनुष्य

---

१) जयध. पु. १३ , पृ. १८३-१८५ ।

का जघन्य, म्लेच्छ मनुष्य का जघन्य, म्लेच्छ मनुष्य का उत्कृष्ट, आर्य मनुष्य का उत्कृष्ट इस क्रम से **(देसं वा)** देशसंयत के समान हैं ।।१९५।।

टीकार्थ– देशसंयम में प्रतिपात के सन्मुख उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान से असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों का अंतर करके मिथ्यादृष्टि से चढ़ा हुआ आर्यखण्ड के मनुष्य का सकल संयम ग्रहण के प्रथम समय में होने वाला जघन्य सकलसंयम लब्धिस्थान है। उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों का उल्लंघन कर मिथ्यादृष्टि से चढ़े हुए म्लेच्छभूमिज मनुष्य के संयम ग्रहण के प्रथम समय में होने वाला जघन्य संयम लब्धिस्थान होता है । उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाकर देशसंयम से चढ़े हुए म्लेच्छभूमिज मनुष्य के संयम ग्रहण के प्रथम समय में उत्कृष्ट लब्धिस्थान होता है । उससे आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाकर देशसंयत से चढ़े हुए आर्यखण्डज मनुष्य के संयम ग्रहण के प्रथम समय में होने वाला उत्कृष्ट सकलसंयम लब्धिस्थान है। इन आर्यम्लेच्छ मनुष्यसम्बन्धी संयमग्रहण के प्रथम समय में होने वाले संयमलब्धिस्थानों को प्रतिपद्यमान स्थान कहते हैं। इसमें आर्य और म्लेच्छ मनुष्यों के मध्यम स्थान मिथ्यादृष्टि से अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि से अथवा देशसंयत से चढ़े हुए और उसके योग्य विशुद्धि से संकलसंयम को प्राप्त होने वाले जीव को संभव है क्योंकि विधि अथवा निषेध का नियम नहीं कहने पर संभव का ज्ञान होता है। यह बात न्यायसिद्ध है। इसमें दो जघन्य स्थान यथायोग्य मंद संक्लेशयुक्त जीव को और दो उत्कृष्ट स्थान यथायोग्य तीव्र संक्लेशयुक्त जीव को होते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए। म्लेच्छ भूमिज मनुष्यों को संकलसंयम का ग्रहण कैसे होता है? इस प्रकार शंका नहीं करना चाहिए। दिग्विजयकाल में चक्रवर्ती के साथ आर्यखण्ड में आए हुए और जिनका चक्रवर्ती के साथ वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है ऐसे म्लेच्छ राजाओं के संयम की प्राप्ति में विरोध नहीं है अथवा चक्रवर्ती से विवाहित उनकी कन्याओं के गर्भ में उत्पन्न हुए जीव को मातृपक्ष की अपेक्षा से म्लेच्छ व्यपदेश है। उनको संयम संभव है क्योंकि ऐसी जातियों को दीक्षा की योग्यता का निषेध नहीं हैं। ।।१९५।।

विशेषार्थ– भरत, ऐरावत और विदेह के प्रत्येक क्षेत्र में छह खंड हैं। उसमें सें मध्यमखंड आर्यखंड है। वहाँ उत्पन्न हुआ मनुष्य आर्य है। मध्यमखंड छोड़कर शेष पाँच खंड म्लेच्छखंड हैं। वहाँ उत्पन्न हुए मनुष्यों को म्लेच्छ कहते हैं। उनमें धर्मकर्म की प्रवृत्ति असंभव होने से म्लेच्छपना घटित होता है। आर्यखंड के मनुष्यों को सकलसंयम की प्राप्ति होती है तथा म्लेच्छखंड से आर्यखंड में आए म्लेच्छों को भी सकलसंयम की प्राप्ति होती है।

अनुभयस्थानप्रतिपादनार्थमिदमाह –

तत्तोणुभयट्ठाणे सामाइयछेदजुगलपरिहारे।
पडिबद्धा परिणामा असंखलोगप्पमा होंति[1] ।।१९६।।

ततोनुभयस्थाने सामायिकछेदयुगलपरिहारे ।
प्रतिबद्धाः परिणामा असंख्यलोकप्रमा भवन्ति ।।१९६।।

तस्मादार्यखण्डजमनुष्यस्य प्रतिपद्यमानोत्कृष्टसंयमलब्धिस्थानादसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यन्तरयित्वा सामायिकछेदोपस्थापनसंयमद्वयसम्बन्धिजघन्यमनुभयस्थानं मिथ्यादृष्टिचरस्य संयमग्रहणद्वितीयसमये भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा परिहारविशुद्धिसंयमसम्बन्धिजघन्यसंयमस्थानं परिहारविशुद्धिसंयमात्प्रच्युत्य तच्चरमसमये वर्तमानस्य सामायिकछेदोपस्थापनसंयमयोः पतिष्यतो भवति । ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा परिहारविशुद्धिसंयमस्योत्कृष्टं संयमलब्धिस्थानं सर्वविशुद्धस्य भवति। ततः परमसंख्येय-लोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा सामायिकछेदोपस्थापनसंयमयोरुत्कृष्टमनुभयस्थानमनिवृत्ति-करणक्षपकस्य चरमसमये भवति। एवं मिथ्यात्वप्रतिपाताभिमुखसर्वजघन्यस्थानादारभ्या-नुभयोत्कृष्टसंयमलब्धिस्थानपर्यन्तं यावन्ति संयमलब्धिस्थानानि तावन्ति सर्वाण्यपि सामायिकछेदोपस्थापनसंयमद्वयसम्बन्धीनीति ज्ञातव्यम्। तानि चोत्तरोत्तरमनन्तगुणविशुद्धीनि। तत्र प्रतिपातस्थानान्यसंख्यातलोकमात्राणि सर्वतःस्तोकानि [≡a / ९।९] तेभ्यः प्रतिपद्यमान-स्थानान्यसंख्येयलोकगुणितानि [≡a ८ / ९।९] तेभ्योऽनुभयस्थानान्यसंख्यातलोकगुणितानि [≡a ८ / ९] सर्वाण्यपि सकलसंयमलब्धिस्थानानि मिलित्वासंख्येयलोकमात्राणि [≡a] भागहारभूतासं-ख्यातलोकस्य संदृष्टिः ९ ।।१९६।।

अनुभयस्थानों का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ–(तत्तो) प्रतिपद्यमान स्थानों के ऊपर **(अणुभयट्ठाणे)** अनुभयस्थानों में **(सामाइयछेदजुगलपरिहारे)** सामायिक–छेदोपस्थापना युगल व परिहारविशुद्धि चारित्र के साथ **(पडिबद्धा)** प्रतिबद्ध **(असंखलोगप्पमा)** असंख्यात लोकप्रमाण **(परिणामा)** परिणाम **(होतिं)** होते हैं ।

टीकार्थ– आर्यखण्ड के मनुष्य के प्रतिपद्यमान उत्कृष्ट संयमलब्धिस्थान से आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों का अंतर करके सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमसंबंधी

१) जयध. पु. १३ पृ. १८५–१८६ ।

जघन्य अनुभयस्थान मिथ्यादृष्टि से चढ़े हुए जीव को संयमग्रहण के द्वितीय समय में होता है। उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाने पर परिहारविशुद्धि संयम संबंधी जघन्य संयमस्थान परिहारविशुद्धिसंयम से च्युत होकर सामायिक छेदोपस्थापना संयम में गिरने वाले जीव को उसके अंतिम समय में होता है। उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाने पर परिहारविशुद्धि संयम का उत्कृष्ट संयमलब्धिस्थान सर्वविशुद्ध जीव को होता है। उसके आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान जाने पर सामायिक–छेदोपस्थापना संयम का उत्कृष्ट अनुभयस्थान अनिवृत्तिकरण क्षपक के अंतिम समय में होता है। इस प्रकार मिथ्यात्व में प्रतिपात के अभिमुख सर्वजघन्य स्थान से अनुभय उत्कृष्ट संयमलब्धिस्थान पर्यंत जितने संयम लब्धिस्थान हैं उतने सभी स्थान सामायिक छेदोपस्थापना इन दो संयम संबंधी जानना चाहिए। वे उत्तरोत्तर अनन्तगुणित विशुद्धियुक्त हैं। उसमें प्रतिपातस्थान असंख्यातलोकमात्र होकर सबसे कम हैं। उससे प्रतिपद्यमान असंख्यात लोकगुणित हैं। उससे अनुभयस्थान असंख्यात लोकगुणित हैं। सभी संयमलब्धिस्थान मिलकर भी असंख्यात लोकमात्र हैं। भागहारभूत असंख्यात लोक की संदृष्टि ९ है।

प्रतिपातस्थान	प्रतिपद्यमानस्थान	अनुभयस्थान	सर्वस्थान
≡a ९।९	≡a ८ ९।९	≡a ८ ९	≡a

सर्वस्थान में ≡a असंख्यात लोक का भाग दिया। उसका एकभाग अलग रखकर बहुभागमात्र अनुभयस्थान हैं। एकभाग ≡a / ९ बहुभाग ≡a ८ / ९ एक भाग में पुन: असंख्यात लोक का भाग देकर बहुभाग आया उतने प्रतिपद्यमान स्थान हैं। शेष रहा एकभाग प्रतिपातस्थान हैं। एक भाग का एक भाग ≡a / ९।९ एक भाग का बहुभाग ≡a ८ / ९।९

(अंकसंदृष्टि–सर्वस्थान १0000 और असंख्यात लोक १0 माना। अनुभयस्थान ९000, प्रतिपद्यमानस्थान ९00 और प्रतिपातस्थान १00 आते हैं।) ।।१९६।।

अथ सूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातचारित्रप्ररूपणार्थमिदमाह –

तत्तो य सुहुमसंजम पडिबद्धाऽसंखसमयमेत्ता हु।
तत्तो दु जहाखादं एयविहं संजमं होदि ।।१९७।।

ततश्च सूक्ष्मसंयमं प्रतिबद्धासंख्यसमयमात्रा हि ।
ततस्तु यथाख्यातमेकविधं संयमं भवति ।।१९७।।

तस्मादनिवृत्तिकरणक्षपकचरमसमयसम्भविसामायिकछेदोपस्थापनद्वयोत्कृष्टस्थानाद-संख्येयलोकमात्राणि षटस्थानान्यन्तरयित्वा उपशमश्रेण्यामवरोहणे अनिवृत्तिकरणाभिमुखं सूक्ष्मसाम्परायसंयमस्य जघन्यं स्थानं तच्चरमसमये भवति। ततः परमसंख्यातसमयमात्रस्थानानि गत्वा सूक्ष्मसाम्परायक्षपकचरमसमये सूक्ष्मसाम्परायसंयमस्योत्कृष्टं स्थानं भवति। तस्मादसंख्येय-लोकमात्राणि षट्स्थानान्यन्तरयित्वा यथाख्यातचारित्रमेकमिदं सर्वस्थानेभ्योऽनन्तगुणविशुद्धिकं सकलसंयमोत्कृष्टमुपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगकेवल्ययोगकेवलिस्वामिकं भवति, सकलचारित्र-मोहनीयप्रकृतीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपाणां सर्वोपशमात्सर्वक्षयाच्च समुद्भूतत्वात्तस्य जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थानविकल्पा न सन्तीत्येकविधत्वं प्रवचने प्रतिपादितम् ।।१९७।।

अब सूक्ष्मसांपराय व यथाख्यातचारित्र का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(तत्तो य)** उससे आगे **(सुहुमसंजम पडिबद्धा)** सूक्ष्मसांपराय संयम से संबंधित **(असंखसमयमेत्ता हु)** असंख्यात समयमात्र स्थान हैं। **(तत्तो दु)** परन्तु उससे आगे **(जहाखादं संजमं)** यथाख्यात संयम **(एयविहं)** एक प्रकार का **(होदि)** है।

टीकार्थ– उस अनिवृत्तिकरण क्षपक के अंतिम समय में होने वाले सामायिक छेदोपस्थापना युगल के उत्कृष्ट स्थान के आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों का अंतर जाकर उपशम श्रेणि उतरते समय अनिवृत्तिकरण के सन्मुख सूक्ष्मसांपराय संयम का जघन्य स्थान उसके अंतिम समय में होता है। उसके आगे असंख्यात समयमात्र स्थान जाने पर सूक्ष्मसांपराय क्षपक के अंतिम समय में सूक्ष्मसांपराय संयम का उत्कृष्ट स्थान है। उससे आगे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानों का अंतर करके यथाख्यात चारित्र का एक स्थान है। यह स्थान सभी स्थानों से अनन्तगुणा विशुद्धि वाला सकलसंयम का उत्कृष्ट स्थान है। इसके स्वामी उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवली हैं। कारण सभी चारित्रमोहनीय प्रकृतियों की प्रकृति, स्थिति अनुभाग व प्रदेशों के सर्वोपशम और क्षय से उत्पन्न होने से इसमें जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थान विकल्प नहीं हैं। इस प्रकार यथाख्यात संयम का एक प्रकारपना प्रवचन में कहा गया है।

विशेषार्थ– प्रतिपातगत, प्रतिपद्यमान और अनुभयस्थानों का दिग्दर्शक चित्र आगे दिया है। उसमें से नीचे का स्थान कम विशुद्धतायुक्त और ऊपर–ऊपर के स्थान अनन्तगुणी विशुद्धतायुक्त जानना चाहिए। चित्र नीचे से ऊपर देखें। '×' यह चिह्न अन्तर का प्रतीक है और '0' यह चिह्न संयम स्थानों का सूचक हैं।

सकलसंयमलब्धिस्थान

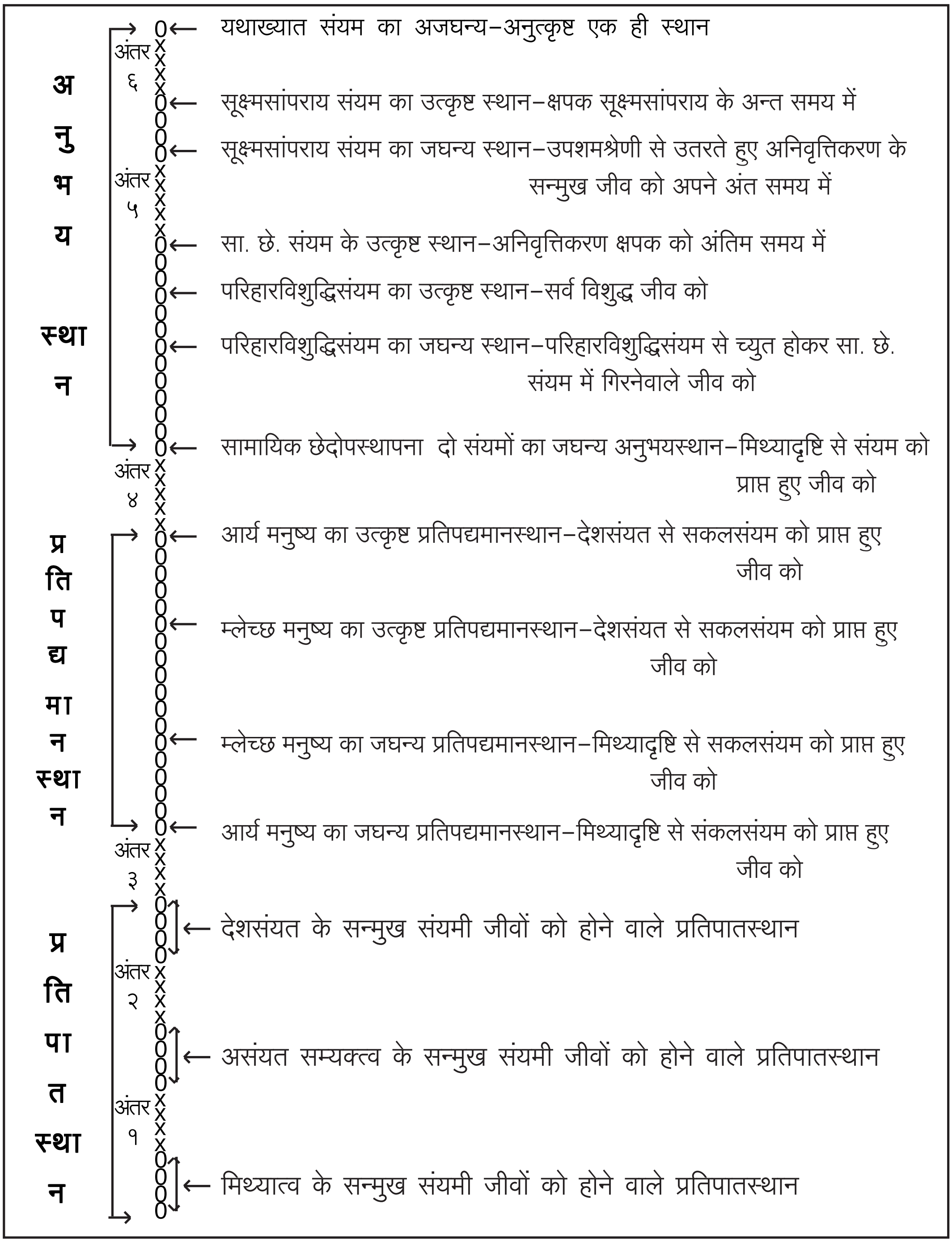

अथ सामायिकादिसंयमानां प्रतिपातस्थानादिलक्षणस्थानसंख्याऽन्तरस्थानसंख्या-स्वामिविषयविभागप्रदर्शनार्थं गाथासप्तकमाह –

पडचरिमे गहणादीसमये पडिवाददुगमणुभयं तु।
तम्मज्झे उवरिमगुणगहणाहिमुहे य देसं वा।।१९८।।

पडिवादादित्तिदयं उवरुवरिमसंखलोगगुणिदकमा।
अंतरछक्कपमाणं असंखलोगा हु देसं वा।।१९९।।

मिच्छयददेसभिण्णे पडिवादट्ठाणगे वरं अवरं।
तप्पाउग्गकिलिट्ठे तिव्वकिलिट्ठे कमे चरिमे।।२००।।

पडिवज्जजहण्णदुगं मिच्छे उक्कस्सजुगलमवि देसे।
उवरिं सामाइयदुगं तम्मज्झे होंति परिहारा ।।२०१।।

परिहारस्स जहण्णं सामायियदुगे पडंत चरिमम्हि ।
तज्जेट्ठं सट्ठाणे सव्वविसुद्धस्स तस्सेव।।२०२।।

सामायियदुगजहण्णं ओघं अणियट्टिखवगचरिमम्हि।
चरिमणियट्टिस्सुवरिं पडंत सुहुमस्स सुहुमवरं।।२०३।।

खवगसुहुमस्स चरिमे वरं जहाखादमोघजेट्ठं तं ।
पडिवाददुगा सव्वे सामाइयछेदपडिबद्धा ।।२०४।।

पतनचरमे ग्रहणादिसमये प्रतिपातादिद्विकमनुभयं तु ।
तन्मध्ये उपरिगुणग्रहणाभिमुखे च देशमिव ।।१९८।।

प्रतिपातादित्रितयमुपर्युपरिमसंख्यलोकगुणितक्रमम्।
अंतरषट्कप्रमाणमसंख्यलोका हि देशमिव ।।१९९।।

मिथ्यायतदेशभिन्ने प्रतिपातस्थानके वरमवरम् ।
तत्प्रायोग्यक्लिष्टे तीव्रक्लिष्टे क्रमेण चरमे ।।२००।।

प्रतिपद्यजघन्यद्विकं मिथ्ये उत्कृष्टयुगलमपि देशे ।
उपरि सामायिकद्विकं तन्मध्ये भवन्ति परिहाराणि ।।२०१।।

परिहारस्य जघन्यं सामायिकद्विके पततश्चरमे ।
तज्जेष्ठं स्वस्थाने सर्वविशुद्धस्य तस्यैव ।।२०२।।

सामायिकद्विकजघन्यमोघमनिवृत्तिक्षपकचरमे ।
चरमानिवृत्तेरुपरि पततः सूक्ष्मस्य सूक्ष्मावरम् ।।२०३।।

क्षपकसूक्ष्मस्य चरमे वरं यथाख्यातमोघज्येष्ठं तत् ।
प्रतिपातद्विकं सर्वाणि सामायिकच्छेदप्रतिबद्धानि ।।२०४।।

प्रतिपातप्रतिपद्यमानस्थानद्विकं यथासंख्यं पतच्चरमसमये संयमग्रहणप्रथमसमये च भवति । अनुभयस्थानं तयोः प्रतिपातस्थानप्रतिपद्यमानस्थानयोर्मध्ये उपरितनगुणस्थानाभिमुखे च भवति । एतत्सर्वं यथा देशसंयमे सविस्तरं प्रतिपादितं तथात्रापि ग्राह्यम् । प्रतिपातादित्रितयं स्वस्वजघन्यस्थानात् स्वस्वोत्कृष्टस्थानपर्यन्तमुपर्युपर्यसंख्यातलोकगुणितक्रमाण्यन्तरेषु षट्स्वपि प्रत्येकमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि देशसंयमवज्ज्ञातव्यानि । तत्र प्रतिपातस्थानेषु मिथ्यात्वासंयमदेशसंयमाभिमुखभेदभिन्नेषु जघन्यानि तीव्रसंक्लिष्टस्य चरमसमये भवन्ति। उत्कृष्टानि ततत्प्रायोग्यमन्दसंक्लिष्टस्य चरमसमये भवन्ति । तथा प्रतिपद्यमानजघन्यस्थान-द्वयमार्यम्लेच्छस्वामिकं मिथ्यादृष्टिचरस्य भवति, तदुत्कृष्टस्थानयुगलमपि देशसंयतचरस्य भवति प्रतिपद्यमानस्थानानामुपर्यनुभयस्थानानि सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयसम्बन्धीनि भवन्ति । तत्संयमद्वयस्य जघन्योत्कृष्टस्थानयोर्द्वयोर्मध्ये परिहारविशुद्धिसंयमस्थानानि भवन्ति। परिहारविशुद्धिसंयमस्य जघन्यस्थानं संक्लेशवशात्सामायिकछेदोपस्थापनद्वये पतिष्यतस्तच्चरमसमये भवति । तस्य परिहारविशुद्धिसंयमस्योत्कृष्टस्थानं स्वस्मिन्नेव सर्वविशुद्धस्याप्रमत्तस्यैकान्तवृद्धि-चरमसमये भवति । सामायिकच्छेदोपस्थापनद्वयस्य मिथ्यात्वाभिमुखं जघन्यस्थानमोघजघन्यस्थानं सर्वसंयमसामान्यजघन्यस्थानं भवतीत्यर्थः। तयोरुत्कृष्टस्थानमनिवृत्तिकरणक्षपकचरमसमये भवति । सूक्ष्मसाम्परायसंयमस्य जघन्यस्थानमुपशमश्रेण्यामवरोहणेऽनिवृत्तिकरणस्योपरि पतिष्यतः सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य चरमसमये भवति । तस्योत्कृष्टस्थानं क्षीणकषायगुणस्थानाभिमुखस्य सूक्ष्मसाम्परायक्षपकस्य चरमसमये भवति । यथाख्यातचारित्रं सर्वसंयमसामान्योत्कृष्टं तस्य जघन्यादिविकल्पाभावात् । प्रतिपातप्रतिपद्यमानस्थानानि सर्वाण्यपि सामायिकछेदोपस्थापन-संयमद्वयप्रतिबद्धान्येव नेतरसंयमसम्बन्धीनि अनुभयस्थानानि पुनः सामायिकादिसर्वसंयम-सम्बन्धीनि सम्भवन्ति । मिथ्यादृष्ट्यसंयतदेशसंयतानां सकलसंयमग्रहणकाले सामायिकछेदोप-स्थापनसंयमयोरेव प्रथमतः प्रतिपत्तिनियमात्, संयमसामान्यापेक्षया प्रतिपद्यमानस्थानानि

संयमग्रहण–प्रथमसमयवर्तीनि सामायिकछेदोपस्थापनप्रतिबद्धान्येव । तथा सामायिकछेदोपस्थापन–संयमाभ्यां प्रच्यवमानस्यैव मिथ्यात्वासंयमदेशसंयमेषु प्रतिपातः सम्भवति, न परिहारविशुद्ध्यादिसंयमेभ्यः प्रच्यवमानस्य तत्प्रतिपातः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायसंयमाभ्यां प्रच्यवमानस्य सामायिकद्विके यथाख्यातचारित्रात्प्रच्यवमानस्य सूक्ष्मसाम्परायसंयमे च प्रतिपातस्य सिद्धान्ते प्रतिपादितत्वात्।

ननु भवक्षयादुपशमश्रेण्यां मृतस्य सूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातचारित्रयोर्देवासंयते प्रतिपातोऽस्ति, अतः कथमसंयमे प्रतिपाताभावः ? इति चेत् वयमिमे ब्रूमहे–संयमघातिकषायोदयवशोत्पन्न–संक्लेशवशेन गुणस्थानाद्धाक्षयेण वाधस्तनगुणस्थानेषु प्रतिपातस्यात्र विवक्षितत्वात् । भवक्षयहेतुकः प्रतिपातःपुनरत्राविवक्षितः । तत्प्रतिपातविवक्षायां पुनर्देवासंयमाभिमुखतैव, न मिथ्यात्वदेशसंयमाभिमुखता, बद्धदेवायुष एव सकलसंयमिनः संयमकाले मृतस्य देवगतिं मुक्त्वान्यत्र गतावनुत्पादात् । देवगतौ च मिथ्यादृष्टिष्वनुत्पादात् देशसंयमस्य तत्राभावाच्च। तदेवं सामायिकादिपञ्चप्रकारसकलसंयमलब्धिस्वरूपं प्रासङ्गिकं मुख्यतस्तु प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थान–वर्तिक्षायोपशमिकसकलसंयमलब्धिस्वरूपं च सविस्तरं प्ररूपितम्।।१९८–२०४।।

सामायिकादि संयमों के प्रतिपातस्थानादिकों के लक्षण, स्थानसंख्या, अन्तरस्थानसंख्या, स्वामी और विषयों का विभाग दिखाने के लिए सात गाथाएँ कहते हैं –

अन्वयार्थ– (पडचरिमे) संयम से च्युत होते समय अंतिम समय में और **(गहणादीसमये)** संयम ग्रहण करने के प्रथम समय में क्रमशः **(पडिवाददुगं)** प्रतिपात और प्रतिपद्यमान स्थान होते हैं। **(अणुभयं तु)** अनुभयस्थान **(देसं वा)** देशसंयम के समान **(तम्मज्झे)** उन दो स्थानों के मध्य में **(य)** और **(उवरिमगुणगहणाहिमुहे)** ऊपर के गुणस्थान को ग्रहण करने के सन्मुख होने पर होते हैं।।१९८।।

(पडिवादादितिदयं) प्रतिपातादि तीन प्रकार के स्थान **(उवरुवरिं)** ऊपर–ऊपर **(असंखलोकगुणिदकमा)** क्रम से असंख्यात लोकगुणित हैं। **(अंतरछक्कपमाणं)** छह अंतरों का प्रमाण **(देसं वा)** देशसंयत के समान **(असंखलोगा हु)** असंख्यात लोकप्रमाण है ।।१९९।।

(मिच्छयददेसभिण्णे) मिथ्यात्व, असंयत और देशसंयत के सन्मुखता की अपेक्षा से भिन्न **(पडिवादट्ठाणगे)** प्रतिपातस्थानों में **(कमे)** क्रम से **(वरं)** उत्कृष्टस्थान **(तप्पाउगकिलिट्ठे)** उसके योग्य संक्लेशयुक्त जीव में और **(अवरं)** जघन्य स्थान **(तिव्वकिलिट्ठे)** तीव्रसंक्लेशयुक्त जीव में **(चरिमे)** अन्तिम समय में होता है।।२००।।

(पडिवज्जजहण्णदुगं) प्रतिपद्यमानस्थान का जघन्यद्विक (आर्य का जघन्य और म्लेच्छ का जघन्य) **(मिच्छे)** मिथ्यात्व से चढ़ने वाले जीव को होता है। **(उक्कस्सजुगलमवि)** उत्कृष्टयुगल भी (आर्य उत्कृष्ट और म्लेच्छ उत्कृष्ट) **(देसे)** देशसंयत से चढ़ने वाले को होता

है। **(उवरि)** उसके ऊपर **(सामाइयदुगं)** सामायिकद्विक के स्थान हैं। **(तम्मज्झे)** उनके मध्य में **(परिहारा)** परिहारविशुद्धि के स्थान **(होंति)** हैं ।।२०१।।

(परिहारस्स जहण्णं) परिहारविशुद्धि का जघन्य **(सामायियदुगे पडंत)** सामायिक छेदोपस्थापना में गिरने वाले जीव को **(चरिमम्हि)** अंतिम समय में होता है। **(तज्जेट्ठं)** उसका उत्कृष्ट स्थान **(तस्सेव)** उसके ही **(सट्ठाणे)** स्वस्थान में **(सव्वविसुद्धस्स)** सर्वविशुद्ध जीव को होता है।

(सामायियदुगजहण्णं) सामायिकद्विक का जघन्य स्थान **(ओघं)** सामान्य जघन्य के समान जानना चाहिए। उसका उत्कृष्ट स्थान **(अणियट्टिखवगचरिमम्हि)** अनिवृत्तिकरण क्षपक के अंतिम समय में होता है। **(सुहुमवरं)** सूक्ष्मसांपराय का जघन्यस्थान **(चरिमणियट्टिस्सुवरिं पडंत सुहुमस्स)** अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में गिरनेवाले अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपराय को होता है। ।२०३।।

(खवगसुहुमस्स चरिमे वरं) क्षपक सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में सूक्ष्म का उत्कृष्ट स्थान होता है। **(ओघजेट्ठं)** सामान्य से जो उत्कृष्ट स्थान है **(तं)** वह **(जहाखादं)** यथाख्यात संयम का जानना चाहिए। **(पडिवाददुगा)** प्रतिपातद्विक के (प्रतिपात और प्रतिपद्यमान इन दोनों के) **(सव्वे)** सभी स्थान **(सामाइयछेदपडिबद्धा)** सामायिक व छेदोपस्थापना से संबंधित हैं ।।२०४।।

टीकार्थ– प्रतिपातस्थान गिरते समय चरम समय में होता है और प्रतिपद्यमानस्थान संयमग्रहण के प्रथम समय में होता है। अनुभयस्थान उन प्रतिपात और प्रतिपद्यमान स्थानों के मध्य में और ऊपर के गुणस्थान के सन्मुख होने पर होता है। ये सभी जैसे देशसंयम में विस्तार से कहा है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिए। प्रतिपातादि तीनों स्थान अपने–अपने जघन्य स्थान से अपने–अपने उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त ऊपर–ऊपर क्रम से असंख्यात लोकगुणित छह अन्तर में प्रत्येक में असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान ये सभी देशसंयम के समान जानना चाहिए। मिथ्यात्व, असंयम व देशसंयम के सन्मुख भेद से भिन्न प्रतिपात स्थानों में जघन्य स्थान तीव्र संक्लेश परिणामी जीव के अंतिम समय में होते हैं। उत्कृष्ट स्थान उसमें योग्य मन्दसंक्लिष्ट जीव को होते हैं। आर्य व म्लेच्छ स्वामी वाले प्रतिपद्यमान के दो जघन्य स्थान मिथ्यादृष्टि से चढ़े हुए जीव को होते हैं और उन दोनों के उत्कृष्ट स्थान देशसंयत से चढ़े हुए जीव को होते हैं। प्रतिपद्यमान स्थानों के ऊपर अनुभय स्थान सामायिक छेदोपस्थापना इन दो संयमसंबंधी हैं। उन दोनों संयमों के जघन्य व उत्कृष्ट इन दो स्थानों के मध्य में परिहारविशुद्धि संयमस्थान हैं। परिहारविशुद्धि संयम का जघन्य स्थान संक्लेश से सामायिक छेदोपस्थापना इन दोनों में गिरते हुए जीव के अंतिम समय में होता है। उस परिहारविशुद्धि संयम का उत्कृष्ट स्थान अपने ही स्थान में सर्वविशुद्ध अप्रमत्त जीव को एकान्तवृद्धि के चरम समय में होता है। जो सभी संयम का जघन्य स्थान है वही सामायिक व छेदोपस्थापना

इन दोनों संयमों का मिथ्यात्व अभिमुख का जघन्य स्थान है। उन दोनों का उत्कृष्ट स्थान अनिवृत्तिकरण क्षपक के अंतिम समय में होता है।

सूक्ष्मसांपराय संयम का जघन्य स्थान उपशमश्रेणि में उतरते समय अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में गिरने वाले सूक्ष्मसांपराय उपशमक के अंतिम समय में होता है। उसका उत्कृष्ट स्थान क्षीणकषाय गुणस्थान के अभिमुख सूक्ष्मसांपराय क्षपक के अंतिम समय में होता है। सभी संयम का जो सामान्य उत्कृष्ट स्थान है वही यथाख्यात चारित्र का स्थान है क्योंकि उसमें जघन्यादि भेदों का अभाव है।

सर्व प्रतिपात व प्रतिपद्यमानस्थान सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयम संबंधी हैं, अन्य संयम सम्बन्धी नहीं हैं। पुन: अनुभय स्थान सामायिकादि सर्व संयम संबंधी होते हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि, असंयत व देशसंयत जीवों को सकलसंयम ग्रहण करते समय प्रथमत: सामायिक और छेदोपस्थापना संयम की प्राप्ति होने से संयम सामान्य अपेक्षा से कहे गए संयम ग्रहण के प्रथम समय में प्रतिपद्यमानस्थान सामायिक छेदोपस्थापना से संबंधित हैं।

उसी प्रकार सामायिक छेदोपस्थापना संयम से च्युत होनेवाले जीव का ही मिथ्यात्व, असंयम व देशसंयम में प्रतिपात संभव है। परिहारविशुद्ध्यादि संयम से च्युत होने वाले जीव को वह प्रतिपात संभव नहीं है क्योंकि परिहारविशुद्धि व सूक्ष्मसांपराय संयम से च्युत होनेवाले का सामायिकद्विक में और यथाख्यात चारित्र से च्युत होनेवाले का सूक्ष्मसांपराय संयम में प्रतिपात होता है ऐसा सिद्धान्त में कहा गया है।

शंका :– भव के क्षय से उपशमश्रेणी में मरे हुए जीव का सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात चारित्र से देव असंयत में प्रतिपात होता है तो असंयतमें प्रतिपात का अभाव कैसा कहा गया है? ऐसी शंका होने पर हम कहते हैं –

समाधान :– संयम का घात करने वाली कषाय के उदय से उत्पन्न हुए संक्लेश से अथवा गुणस्थान के काल के क्षय से नीचे के गुणस्थान में प्रतिपात की यहाँ विवक्षा है। भव के क्षय से होने वाला प्रतिपात यहाँ विवक्षित नहीं है। उस प्रतिपात की विवक्षा होने पर पुन: देव असंयम की अभिमुखता ही है। मिथ्यात्व और देशसंयम की अभिमुखता नहीं है क्योंकि जिसने देवायु का बन्ध किया है ऐसा सकलसंयमी संयम में मरा तो देवगति को छोड़कर अन्यगति में उसका उत्पाद नहीं होता है और देवगति के काल में मिथ्यादृष्टि में (उस सकलसंयमी का) उत्पाद नहीं होता है और देशसंयम का वहाँ अभाव है। इसप्रकार सामायिकादि पाँच प्रकार के संयमलब्धि का स्वरूप प्रासंगिक है। मुख्यत: यहाँ प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती क्षायोपशमिक सकलसंयम लब्धि का स्वरूप विस्तार से कहा गया है।।१९८–२०४।।

इति क्षायोपशमिकसकलचारित्रप्ररूपणं समाप्तम् ।।

चारित्रमोहोपशमनाधिकार

अथ चारित्रमोहोपशमनं परममंगलपूर्वकं प्रतिजानीते–

उवसमियसकलदोसे उवसंतकसायवीयरायांते।
उवसमगे हं पणमिय कसायउवसामणं वोच्छं[1] ।।२०५।।

उपशमितसकलदोषानुपशान्तकषायवीतरागान्तानुपशमकान् प्रणम्य कषायोपशमनं वक्ष्यामीति।

अब परम मंगलपूर्वक चारित्रमोह के उपशमन की प्रतिज्ञा करते हैं–

अन्वयार्थ– **(उवसमियसकलदोसे)** संपूर्ण दोषों का उपशमन किये हुए **(उवसंतकसायवीयरायांते)** उपशांतकषाय वीतराग पर्यन्त के **(उवसमगे)** उपशमकोंको **(पणमिय)** नमस्कार करके **(हं)** मैं (नेमिचन्द्राचार्य) **(कसायउवसामणं)** कषायों के उपशमन को (उपशमनविधि को) **(वोच्छं)** कहता हूँ।।२०५।।

टीकार्थ– जिन्होनें सभी दोषों का उपशम कर दिया है ऐसे उपशान्तकषाय वीतरागपर्यंत के उपशामकों को प्रणाम करके मैं कषायों का उपशमन कहता हूँ।।२०५।।

अथ चारित्रमोहोपशमनाभिमुखस्य स्वरूपमाह–

उवसमचरियाहिमुहो वेदगसम्मो अणं विजोयित्ता।
अंतोमुहुत्तकालं अधापवत्तोऽपमत्तो य ।।२०६।।

उपशमचारित्राभिमुखो वेदकसम्योऽनं वियोज्य।
अन्तर्मुहूर्तकालं अधाप्रवृत्तोऽप्रमत्तश्च ।।२०६।।

उपशमचारित्राभिमुखो वेदकसम्यग्दृष्टिर्जीवः प्रथममनन्तानुबन्धिचतुष्टयं प्रागुक्तविधिना विसंयोज्यान्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तमथाप्रवृत्ताप्रमत्ताभिधानः स्वस्थानाप्रमत्तः प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि कुर्वन् विश्राम्यति। ततः परं दर्शनमोहत्रयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिः सन् कश्चिज्जीवश्चारित्रमोहमुपशमयितुं प्रारभते । तस्य दर्शनमोहक्षपणाविधिः प्रागुक्त इति नेह पुनरुच्यते ।।२०६।।

---

१) यह गाथा हस्तलिखित प्रति में प्राप्त हुयी है।

अब चारित्रमोह के उपशम के सन्मुख होने वाले जीव का स्वरूप कहते हैं –

अन्वयार्थ– (उवसमचरियाहिमुहो) उपशम चारित्र के सन्मुख होने वाला **(वेदगसम्मो)** वेदक सम्यग्दृष्टि **(अणं)** अनन्तानुबन्धी का **(विजोयित्ता)** विसंयोजन करके **(अंतोमुहुत्तकालं)** अंतर्मुहूर्त कालपर्यन्त **(अधापवत्तोऽपमत्तो य)** अध:प्रवृत्त अप्रमत्त अर्थात् स्वस्थान अप्रमत्त होता है।।२०६।।

टीकार्थ– उपशम चारित्र के सन्मुख होने वाला वेदक सम्यग्दृष्टि जीव सर्वप्रथम पूर्व में कही गयी विधि से अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त अथाप्रवृत्त अप्रमत्तनामक स्वस्थान अप्रमत्त होकर प्रमत्त और अप्रमत्त में हजारों परिवर्तन करता हुआ विश्रांति लेता है। उसके पश्चात् तीन दर्शनमोह का क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर कोई जीव चारित्रमोह का उपशम करने के लिए प्रारंभ करता है। उसकी दर्शनमोह की क्षपणा विधि पूर्व में कही गयी है इसलिए यहाँ पुन: उसकी विधि नहीं कही गयी है।।२०६।।

विशेषार्थ– वेदक सम्यग्दृष्टि अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना किये बिना कषायों की उपशामना करने में प्रवृत्त नहीं होता है। कारण अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना न होने पर उसके उपशम श्रेणी पर चढ़ने के योग्य परिणाम नहीं हो सकते हैं। १)अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना अर्थात् अनंतानुबंधी के कर्मपरमाणुओं को बारह कषाय और नौ नोकषायरूप से परिणमित करना। अपने स्वत: के स्वरूप को छोड़कर अन्य प्रकृतिरूप से रहना अनन्तानुबन्धी का उपशम है और उदय में नहीं आना दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों का उपशम है। ऐसा नियम है कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि अथवा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर ही चारित्रमोहनीय की उपशमना होती है। वेदक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी चढ़ने के योग्य नहीं है।

२) **अथाप्रवृत्त अप्रमत्त/स्वस्थान अप्रमत्त –** एकान्तवृद्धि का अंतर्मुहूर्त काल पूर्ण होने के बाद विशुद्धि की वृद्धि जहाँ नियमरूप से नहीं होती उसे अथाप्रवृत्त अप्रमत्त कहते हैं।

३) **द्वितीयोपशम सम्यक्त्व –** सातवें गुणस्थान में उपशम श्रेणी चढ़ने के सन्मुख अवस्था में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से जो उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

यः पुनर्द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेनोपशमश्रेणिमारोहति तस्य दर्शनमोहोपशमविधान–प्रतिपादनार्थमिदमाह –

तत्तो तियरणविहिणा दंसणमोहं समं खु उवसमदि।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा अण्णं च[1] गुणसेढिकरणविही ।।२०७।।

ततस्त्रिकरणविधिना दर्शनमोहं समं खलूपशमयति ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिवान्यं च गुणश्रेणिकरणविधिः ।।२०७।।

ततः स्वस्थानाप्रमत्तोऽन्तर्मुहूर्तमात्रं विश्रम्य पुनर्विशुद्धिमापूरयन् करणत्रयं विधाय दर्शनमोहं युगपदेवोपशमयति । तत्रापूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य स्थित्यनुभागकाण्डकघातो गुणश्रेणिनिर्जरा च गुणसंक्रमणं विना अन्यत्सर्वं विधानकं प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पतौ यथा प्ररूपितं तथात्रापि द्रष्टव्यम्। अनन्तानुबन्धिविसंयोजनेऽपि स्थितिखण्डनादिविधानं पूर्ववदेव ज्ञातव्यम् ।।२०७।।

जो पुनः द्वितीयोपशम सम्यक्त्वसहित उपशमश्रेणी चढ़ता है उसके दर्शनमोह के उपशमना का विधान कहने के लिए आगे सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(तत्तो)** उसके बाद (अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करने के बाद) **(तियरणविहिणा)** त्रिकरण विधि द्वारा **(दंसणमोहं)** तीन दर्शनमोह का **(समं खु)** एक ही समय में **(उवसमदि)** उपशम करता है। **(गुणसेढिकरणविही)** गुणश्रेणिकरणविधि **(च)** और **(अण्णं)** अन्य विधि (स्थितिकांडकघातादि विधि) **(सम्मत्तुप्पत्तिं वा)** प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समान जानना चाहिए ।।२०७।।

टीकार्थ– उसके पश्चात् स्वस्थान अप्रमत्त अन्तर्मुहूर्त मात्र विश्रांति लेकर पुनः विशुद्धि को पूर्ण करता हुआ तीन करण करके दर्शनमोह को युगपत् उपशमित करता है। वहाँ अपूर्वकरण के प्रथम समय से स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणि निर्जरा और गुणसंक्रमण बिना अन्य सभी विधान सम्यक्त्व की उत्पत्ति में जैसा कहा है वैसा यहाँ भी जानना चाहिये। अनन्तानुबन्धी के विसंयोजन में भी स्थितिखण्डनादि विधान पूर्व के समान जानना चाहिए।

उक्तार्थमनूद्य तद्विशेषणार्थमिदमाह –

दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु ।
गुणसंकमो ण विज्जदि विज्झद वाधापवत्तं[2] च[3] ।।२०८।।

१) पा.भे.–अणं व २) पा. भे. गुणसंकमो ण विज्झादं चेवाधापवत्तं च ।। का.ह.प्र. ३) ध. पु. ६ पृ. २८९ ।

दर्शनमोहोपशमनं तत्क्षपणं वा हि भवति नवरि तु।
गुणसंक्रमो न विद्यते विध्यातं वाऽध:प्रवृत्तं च।।२०८।।

चारित्रमोहोपशमाभिमुखस्य दर्शनमोहोपशमनं वा तत्क्षपणं वा भवति नियमाभावात्। अयं तु विशेष:- दर्शनमोहोपशमनविधाने गुणसंक्रमो नास्ति, केवलं विध्यातसंक्रमो वा अथाप्रवृत्तसंक्रमो वा सम्भवति ।।२०८।।

ऊपर कहे हुए अर्थ का पुन: कथन करके उसका विशेष कहने के लिए आगे सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– (दंसणमोहुवसमणं) दर्शनमोह का उपशमन **(वा)** अथवा **(तक्खवणं)** उसका क्षपण **(होदि)** होता है। **(णवरिं तु)** परन्तु विशेष यह है कि **(गुणसंकमो)** गुणसंक्रमण **(ण विज्जदि)** नहीं होता है, **(विज्झद वाधापवत्तं च)** विध्यात संक्रमण और अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है।।२०८।।

टीकार्थ– चारित्रमोह के उपशम के अभिमुख जीव के दर्शनमोह का उपशमन अथवा उसका क्षपण होता है क्योंकि नियम का अभाव है; परन्तु यह विशेष है कि दर्शनमोह के उपशमन विधान में गुणसंक्रम नहीं होता केवल विध्यात संक्रमण अथवा अथाप्रवृत्त संक्रमण होता है।

विशेषार्थ– क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव या द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव चारित्रमोहनीय की उपशामना करने के सन्मुख होता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने का विधान पहले ही कर आये हैं। द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का निर्देश यहाँ किया जा रहा है। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणि पर नहीं चढ़ते। जो वेदक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणि पर आरोहण करता है वह पहले अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना कर अनन्तर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करने के बाद ही उपशमश्रेणि पर चढ़ने का अधिकारी होता है। इस जीव के दर्शनमोहनीय की उपशमना करते समय गुणसंक्रम नहीं होता है। उसके स्थान पर विध्यात संक्रम और यथासम्भव अध:प्रवृत्त संक्रमण होते हैं। अध:प्रवृत्त संक्रम अप्रशस्त कर्मों का होता है। विशेष व्याख्यान आगे किया ही है।

संक्रमण– 'परप्रकृतिरूप परिणमनं संक्रमणं' –परप्रकृतिरूप से परिणमन होने को संक्रमण कहते हैं।[1] **संक्रमण के भेद –** उद्वेलन, विध्यात, अध:प्रवृत्त. गुणसंक्रम और सर्वसंक्रमण ये पाँच भेद हैं।[2]

---

१) गो. कर्म. जी. प्र. ४१०/४३८. टीका. २) गो. कर्म. ४१२

उद्वेलन संक्रमण – अध:प्रवृत्तादि तीन करणरूप परिणाम के बिना ही कर्म प्रकृतियों के परमाणुओं का अन्य प्रकृतिरूप से परिणमन होना उद्वेलन संक्रमण कहलाता है।

विध्यात संक्रमण – स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणि आदि परिणाम होने के अनन्तर जीव को मन्द विशुद्धि के द्वारा बन्धरहित कर्म प्रकृतियों का जो प्रदेश संक्रमण होता है उसे विध्यात संक्रमण कहते हैं।

अध:प्रवृत्त संक्रमण – बंधरूप प्रकृतियों का अपने बंध में होने वाली प्रकृति में जो प्रदेशसंक्रमण होता है उसे अध:प्रवृत्त संक्रमण कहते हैं।

गुणसंक्रमण – जहाँ प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणि क्रम से कर्म परमाणुओं के प्रदेश अन्य प्रकृतिरूप से परिणमते हैं वह गुणसंक्रमण है।

सर्वसंक्रमण – परमुखोदय से नष्ट होने वाली प्रकृतियों के अंतिम कांडक के अन्तिम फालि के शेष रहे हुए सर्व प्रदेशों का अन्तिम समय में अन्य प्रकृतिरूप होना उसको सर्वसंक्रमण कहते हैं।

फालि – एक समय में जितने कर्मपरमाणु संक्रमित होते हैं, उसे फालि कहते हैं।

काण्डक – अनेक समयों में होनेवाले संक्रमण को कांडक कहते हैं।

यहाँ दर्शनमोहोपशमन में गुणसंक्रमण नहीं होता है। विध्यात संक्रमण होता है। अप्रशस्त कर्मों का अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है।

यद्यपि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान पर्यंत किसी भी गुणस्थान में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य को हो सकता है।[1] परन्तु चौथे, पाँचवें गुणस्थान में द्रव्यलिंगी मुनियों को ही हो सकता है, श्रावकों को नहीं। यहाँ विवक्षावश द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति अप्रमत्तसंयत नामक सातवें गुणस्थान में कही है। उसी अध:प्रवृत्त करणादि तीन करण परिणामों के द्वारा अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना, उपशमना इत्यादि भिन्न भिन्न कार्य कैसे उत्पन्न होते हैं? ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए। हर बार तीन करण परिणामों का लक्षण समान होने पर भी भिन्न–भिन्न कर्मों के विरोधी होने से उनमें भेद पाया जाता है। उत्तरोत्तर करण परिणामों में विशुद्धि भी अधिक–अधिक है। इसलिए पृथक्–पृथक् कार्यों की उत्पत्ति होती है।

---

१) ध. पु. १ पृ. २११–२१२, मूलाचार भा. २, गा. नं. १२४८ वृत्ती पृ. ३८५

तत्र तदानींतनस्थितिसत्त्वविशेषनिर्ज्ञानार्थमिदमाह –

ठिदिसत्तमपुव्वदुगे संखगुणूणं तु पढमदो चरिमं[१]।
उवसामण अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु ।।२०९।।

स्थितिसत्त्वमपूर्वद्विके संख्यगुणोनं तु प्रथमतश्चरमम् ।
उपशामनमनिवृत्तिसंख्यभागेष्वतीतेषु ।।२०९।।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयकर्मस्थितिसत्त्वात्काण्डकघातमाहात्म्येन तच्चरमसमये कर्मस्थिति–सत्त्वं संख्यातगुणहीनं भवति। एवमनिवृत्तिकरणेऽपि स्थितिसत्त्वं ज्ञातव्यम् ।।२०९।।

वहाँ उस समय के स्थितिसत्त्व का विशेषज्ञान होने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(अपुव्वदुगे)** अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण में **(पढमदो)** प्रथम समय के स्थितिसत्त्व से **(चरिमं ठिदिसत्तं)** अंतिम समय का स्थितिसत्त्व **(संखगुणूणं)** संख्यातगुणा कम होता है। **(अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु)** अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभागकाल व्यतीत होने पर **(उवसामण)** दर्शनमोहनीय का उपशमन कार्य शुरु होता है ।।२०९।।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय के कर्मस्थितिसत्त्व से काण्डकघात के माहात्म्य से अंतिम समय में कर्मस्थितिसत्त्व संख्यातगुणा कम होता है। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरण में भी स्थितिसत्त्व जानना चाहिए।।२०९।।

विशेषार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय में जो स्थितिसत्त्व होता है उसमें से हजारों स्थितिकाण्डकों का घात होने से उसके अन्त में संख्यातगुणा हीन स्थितिसत्त्व शेष रहता है। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में जो स्थितिसत्त्व शेष रहता है उसमें से हजारों स्थितिकाण्डक का घात होने से उसके अंत में संख्यातगुणा हीन स्थितिसत्त्व शेष रहता है तथा यह जीव अनिवृत्तिकरण के काल में से संख्यात बहुभाग को व्यतीत करके जब उसका एकभाग शेष रहता है तब दर्शनमोहनीयत्रिक की उपशामना का कार्य प्रारम्भ करता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि अपूर्वकरण के प्रथम समय से ही गुणश्रेणि रचना, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। यहाँ गुणश्रेणि का

१) जयध. पु. १३ पृ.२०४। ध. पु. ६ पृ. २८९।

आयाम अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल से कुछ अधिक होता है और गुणश्रेणी गलितावशेष होती है। सारांश रूप से अपूर्वकरण के प्रथम समय से १) गुणश्रेणि रचना होती है। २) स्थितिकाण्डकघात और ३) अनुभागकांडकघात होते हैं। ४) गुणश्रेणि आयाम अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण काल से थोड़ा अधिक होता है। ५) गुणश्रेणि गलितावशेष होती है।

अथानिवृत्तिकरणकालस्य संख्येयबहुभागेषु गतेषु अवशिष्टैकभागे विधीयमानं क्रियान्तरं प्रदर्शयितुमिदमाह–

सम्मस्स असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा होदि।
तत्तो मुहुत्तअंते दंसणमोहंतरं कुणइ ।।२१०।।

सम्यस्य असंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा भवति।
ततो मुहूर्तान्तो दर्शनमोहान्तरं करोति ।।२१०।।

अपूर्वकरणप्रथमसमय आरब्धा या गुणश्रेणि: साधिकापूर्वानिवृत्तिकरणकालायामा गलितावशेषप्रमाणानिवृत्तिकरणकालबहुभागपर्यन्तं प्रवर्तते । तत्रापकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यात–भागखण्डितस्य बहुभागद्रव्यमुपरितनस्थितौ निक्षिप्तम् । तदेकभागस्य पुनरसंख्यातलोकखण्डितस्य बहुभागद्रव्यं गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्तम्। तदेकभागद्रव्यमुदयावल्यां निक्षिप्तम्। एवं निक्षिप्ते उदये समयप्रबद्धस्यासंख्यातैकभागमात्रमेव द्रव्यं पतति। इदानीं पुनरनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रेऽवशिष्टे सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यादपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डितस्य बहुभागमुपरितनस्थितौ निक्षिप्य तदेकभागं पुनरपि पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्य तदेकभागं पुनरुदयावल्यां निक्षिपति।अत: कारणात्सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यस्यासंख्येया: समयप्रबद्धा उदयनिषेके निक्षिप्योदीर्यन्ते पल्यस्य भागहारभूतासंख्येयरूपबाहुल्यमाहात्म्यात्। यत्रासंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाकरणं कथ्यते तत्र पल्यासंख्यातभाग एवापकृष्टद्रव्यस्य भागहारो नासंख्यातलोक इति वचनात् । अत: परमन्तर्मुहूर्तकाले गते दर्शनमोहस्यान्तरं करोति ।।२१०।।

अब अनिवृत्तिकरणकाल में संख्यात बहुभागकाल जाने पर शेष रहे एक भाग में की जाने वाली दूसरी क्रिया दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(सम्मस्स)** सम्यक्त्व प्रकृति के **(असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा)** असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा **(होदि)** होती है। **(तत्तो)** उसके बाद **(मुहुत्तअंते)** अंतर्मुहूर्त में **(दंसणमोहंतरं)** दर्शनमोहनीय का अन्तर **(कुणइ)** करता है।।२१०।।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रारम्भ की गई अपूर्वकरणकाल, अनिवृत्तिकरणकाल और उससे थोडी अधिक आयामवाली गलितावशेष प्रमाण अनिवृत्तिकरण काल के बहुभाग पर्यन्त प्रवृत्त होती है। वहाँ अपकृष्ट किये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित करके उसका बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति में दिया । उसके एकभाग को पुनः असंख्यातलोक से खण्डित करके बहुभाग द्रव्य गुणश्रेणि आयाम में दिया व शेष रहा एकभाग द्रव्य उदयावलि में दिया। इस प्रकार निक्षिप्त करने पर उदय में समयप्रबद्धों का असंख्यातवाँ एक भाग द्रव्य मिलता है। अब पुनः अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवाँ एकभाग शेष रहने पर सम्यक्त्व प्रकृति के द्रव्य से अपकृष्ट किए द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग दे करके बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति में देता है। शेष रहे एकभाग द्रव्य को पुनः पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग गुणश्रेणि आयाम में देता है और शेष रहा एकभाग उदयावलि में निक्षिप्त करता है। इस कारण से सम्यक्त्व प्रकृति के द्रव्य में से असंख्यात समयप्रबद्ध उदयनिषेक में निक्षिप्त होकर उदीरणा को प्राप्त होते हैं क्योंकि पल्य का असंख्यातवां भाग निकालने के लिए पल्य में जिस असंख्यात से भाग दिया, वह भागहार बड़ा है। (उससे पल्य का असंख्यातवाँ भाग छोटी संख्या आती है। उससे अपकृष्ट द्रव्य को भाग देने पर उत्तर बड़ा आता है।) जहाँ पर असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा कही जाती है वहाँ पल्य का असंख्यातवाँ भाग भागहार होता है, असंख्यात लोक नहीं ऐसा वचन है। इसके बाद अन्तर्मुहूर्तकाल जाने पर दर्शनमोह का अंतर करता है।।२१०।।

विशेषार्थ– जो दर्शनमोहनीय की उपशामना कर रहा है उसके सम्यक्त्व प्रकृति के असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है। इस सम्बन्ध में चूर्णिसूत्र में बतलाया है कि दर्शनमोहनीय उपशामना संबंधी अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात बहुभाग जाने पर सम्यक्त्व के असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है। जयधवला में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि पहले असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभाग के अनुसार सब कर्मों की उदीरणा होती थी, किन्तु इस स्थान पर परिणामों के माहात्म्यवश सम्यक्त्व प्रकृति के असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने लगती है। इसी तथ्य को लब्धिसार की टीका में स्पष्ट किया गया है। बात यह है कि अपूर्वकरण के प्रथम समय से जो गुणश्रेणि रचना होती है वहाँ अपकर्षित द्रव्य में पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर बहुभागप्रमाण द्रव्य गुणश्रेणि से उपरितन स्थितियों में निक्षिप्त होता है। जो एकभाग शेष रहता है उसमें असंख्यात लोकप्रमाण समयों का भाग देने पर बहुभाग गुणश्रेणि आयाम में निक्षिप्त होता है और शेष एकभाग उदयावलि में निक्षिप्त होता है। इस प्रकार जब तक निक्षिप्त होता है तब तक उदय में समयप्रबद्ध का असंख्यात एकभाग प्रमाण द्रव्य ही पतित होता है। किन्तु अनिवृत्तिकरण का संख्यातवाँ भाग काल शेष रहने पर सम्यक्त्वप्रकृति के अपकृष्ट द्रव्य में पल्योपम के असंख्यातवें

भाग का भाग देने पर बहुभाग प्रमाण द्रव्य उपरितन स्थितियों में निक्षिप्त होता है। अवशिष्ट रहे एकभाग में पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर बहुभागप्रमाण द्रव्य गुणश्रेणि आयाम में निक्षिप्त होता है तथा शेष एकभाग द्रव्य उदयावलि में निक्षिप्त होता है। इस कारण सम्यक्त्व प्रकृति की उदयस्थिति में असंख्यात समयप्रबद्ध निक्षिप्त होकर उनकी उदीरणा होती है, क्योंकि यहाँ भागहार अल्प है, इसलिए प्रतिसमय इतने द्रव्य की उदीरणा होने लगती है। इस अन्तर्मुहूर्त के बाद अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होती है।

अथान्तरकरणप्रदर्शनार्थमाह–

अंतोमुहुत्तमेत्तं आवलिमेत्तं च सम्मतियठाणं।
मोत्तूण य पढमठिदिं दंसणमोहंतरं कुणइ[1]।।२११।।

अन्तर्मुहूर्तमात्रमावलिमात्रं च सम्यक्त्वत्रयस्थानम् ।
मुक्त्वा च प्रथमस्थितिं दर्शनमोहान्तरं कुरुते ।।२११।।

उदयवत्याः सम्यक्त्वप्रकृतेरन्तर्मुहूर्तमात्रीमनुदययोरितरयोर्मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्योश्च आवलिमात्रीं प्रथमस्थितिं मुक्त्वा उपर्यन्तर्मुहूर्तनिषेकाणामन्तरभावमन्तर्मुहूर्तेन कालेन करोति। सम्यक्त्वप्रकृतेर्गुणश्रेणिशीर्षं ततः संख्यातगुणितानुपरितनस्थितिनिषेकांश्च गृहीत्वा अन्तरं करोति, मिथ्यात्वमिश्रयोर्गलितावशेषगुणश्रेण्यायामं सर्वं,ततः संख्यातगुणितानुपरितनस्थितिनिषेकांश्च गृहीत्वा अन्तरं करोतीत्यर्थः । उपरि तिसृणां प्रकृतीनां द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकाः सदृशा एव। अधःप्रथमस्थित्यग्रनिषेकाः विसदृशा इति ग्राह्यम् ।।२११।।

अब अंतरकरण कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(सम्मतियठाणं)** सम्यक्त्वत्रय स्थान की **(अंतोमुहुत्तमेत्तं च आवलिमेत्तं)** अंतर्मुहूर्तमात्र और आवलिमात्र **(पढमठिदिं)** प्रथम स्थिति **(मोत्तूण य)** छोड़कर **(दंसणमोहंतरं)** दर्शनमोह का अंतर **(कुणइ)** करता है अर्थात् सम्यक्त्वप्रकृति की अंतर्मुहूर्तप्रमाण और मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व की आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति छोड़कर ऊपर की स्थिति का अन्तर करता है।।२११।।

टीकार्थ– उदययुक्त सम्यक्त्वप्रकृति की अन्तर्मुहूर्तमात्र और अनुदययुक्त मिथ्यात्व और मिश्रप्रकृति की आवलिमात्र प्रथम स्थिति छोड़कर ऊपर के अन्तर्मुहूर्तमात्र निषेकों का अंतरभाव अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा करता है। सम्यक्त्वप्रकृति का गुणश्रेणीशीर्ष व उससे संख्यातगुणे उपरितन स्थिति के निषेकों का ग्रहण करके अंतर करता है। मिथ्यात्व और मिश्रप्रकृति का संपूर्ण

१) जयध. पु. १३, पृ. २०५ । .

गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम व उससे संख्यातगुणे उपरितन स्थिति के निषेकों को ग्रहण करके अंतर करता है। ऊपर तीनोंही प्रकृतियों के द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक सदृश ही हैं। नीचे की प्रथम स्थिति के अग्र निषेक विसदृश ही हैं। ।।२११।।

विशेषार्थ – विवक्षित प्रमाण से सहित अंतरायाम के नीचे के निषेकों को प्रथम स्थिति कहते हैं और अंतरायाम के ऊपर समस्त निषेकों को द्वितीय स्थिति कहते हैं। जिस कर्म का अंतरकरण करना हो उसकी प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थिति को छोड़कर मध्यवर्ती अंतर्मुहूर्त मात्र स्थिति के निषेकों के अभाव करने को अंतरकरण कहते हैं। अंतर की लंबाई जो अंतर्मुहूर्त है, उसको अंतरायाम कहते हैं। (पृ. ३२६ का नक्शा देखें)

अथान्तरद्रव्यस्य निक्षेपप्रकारप्रदर्शनार्थं गाथाचतुष्टयमाह –

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदिम्मि संछुहदि दंसणतियाणं ।
उक्कीरयं तु दव्वं बंधाभावादु मिच्छस्स[1] ।।२१२।।

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ सम्पातयति दर्शनत्रयाणाम्।
उत्कीर्णं तु द्रव्यं बन्धाभावात् मिथ्यस्य ।।२१२।।

दर्शनमोहत्रयस्यान्तरे उत्कीर्णं द्रव्यमुदयवत्याः सम्यक्त्वप्रकृतेः प्रथमस्थितावेव निक्षिपति न द्वितीयस्थितौ यत्र नूतनबन्धोऽस्ति तत्र उत्कृष्य द्वितीयस्थितावपि निक्षिपति। अत्र पुनरप्रमत्तगुणस्थाने दर्शनमोहस्य बन्धाभावात् द्वितीयस्थितौ न निक्षिपतीत्यर्थः ।।२१२।।

अब अन्तरद्रव्य के निक्षेपण का विधान दिखाने के लिए चार गाथाएँ कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(दंसणतियाणं)** दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों का **(उक्कीरयं दव्वं)** उत्कीरण द्रव्य **(सम्मत्तपयडिपढमठिदिम्मि)** सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में **(संछुहदि)** देता है। **(तु)** परन्तु **(मिच्छस्स)** मिथ्यात्व के **(बंधाभावादु)** बंध का अभाव होने से (द्वितीय स्थिति में द्रव्य नहीं देता) ।।२१२।।

टीकार्थ– दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के अन्तर में से उत्कीर्ण किया द्रव्य उदय युक्त सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में ही निक्षेपण करता है, द्वितीय स्थिति में नहीं देता। जहाँ नवीन बन्ध है वहाँ उत्कर्षण करके द्वितीय स्थिति में भी निक्षेपण करता है। यहाँ अप्रमत्त गुणस्थान में दर्शनमोह के बन्ध का अभाव होने से द्वितीय स्थिति में निक्षेपण नहीं करता है।।२१२।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २०६ ।

मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति के अंतरायाम का प्रमाण

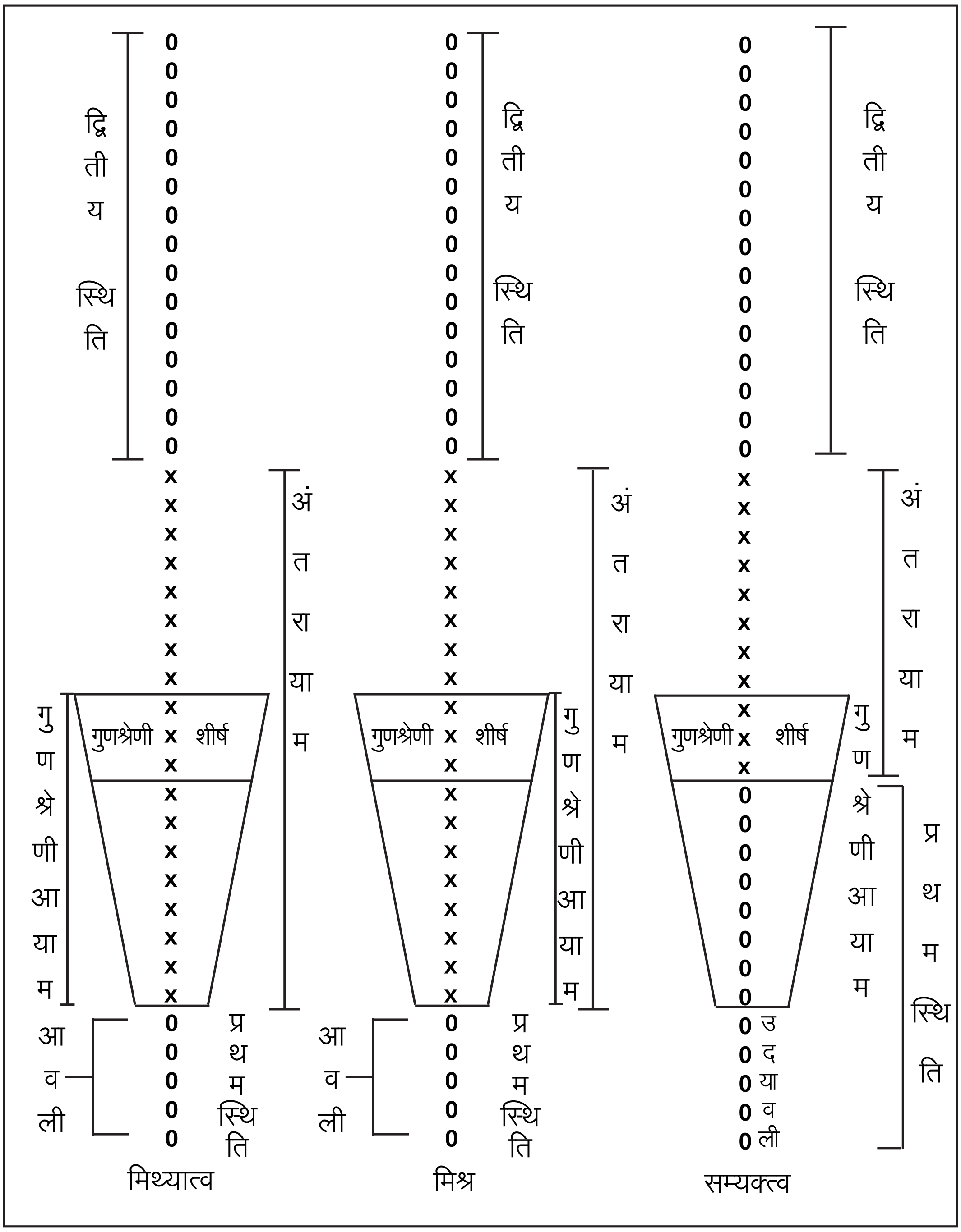

बिदियट्ठिदिस्स दव्वं ओक्कड्डिय देदि सम्मपढमम्मि ।
बिदियट्ठिदिम्हि तस्स अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि ।।२१३।।

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यमपकर्ष्य ददाति सम्यक्त्वप्रथमे ।
द्वितीयस्थितौ तस्यानुत्कीर्यमाणे ।।२१३।।

गुणश्रेणिनिर्जरार्थमुदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य सर्वत्रापकृष्टद्रव्यं पल्यासंख्यात-भागेन खण्डयित्वा बहुभागमन्तरायामं मुक्त्वा स्वस्वोपरितनद्वितीयस्थितौ निक्षिप्य शेषैकभागं पल्यासंख्यातैकभागेन खण्डयित्वा बहुभागं सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्य तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिपति । एवमन्तरस्य द्वितीयादिफालिद्रव्यं दर्शनमोहत्रयसम्बन्धि प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितावेव निक्षिपति । अन्तरे उपरि चापकृष्टद्रव्यमपि प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ अन्तरस्योपरिस्वस्वद्वितीयस्थितौ चाग्रेऽतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपति ।।२१३।।

अन्वयार्थ- (बिदियट्ठिदिस्स दव्वं) द्वितीय स्थिति का द्रव्य **(ओक्कड्डिय)** अपकर्षित करके **(सम्मपढमम्मि)** सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में और **(तस्स)** उसकी **(अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि बिदियट्ठिदिम्हि)** अनुत्कीर्यमाण द्वितीय स्थिति में अर्थात् अन्तरायाम छोड़कर ऊपर की द्वितीय स्थिति में **(देदि)** देता है।।२१३।।

टीकार्थ- गुणश्रेणि निर्जरा के लिए उदयावली के बाह्य प्रथम समय से लेकर सर्व स्थिति में से अपकर्षण किये द्रव्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग द्रव्य अन्तरायाम को छोड़कर अपनी-अपनी उपरितन द्वितीय स्थिति में देता है और शेष रहे एकभाग को पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग सम्यक्त्वप्रकृति की प्रथम स्थिति में गुणश्रेणि आयाम में देकर एक भाग उदयावलि में देता है। इसप्रकार तीनों दर्शनमोहनीय संबंधी अन्तर की द्वितीयादि फालि का द्रव्य प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से ग्रहण करके सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में निक्षेपण करता है। अन्तर का और ऊपर का अपकृष्ट द्रव्य भी प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से ग्रहण करके सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में और अंतर के ऊपर अपनी-अपनी द्वितीय स्थिति में अंतिम अतिस्थापनावली छोड़कर निक्षेपण करता है।।२१३।।

विशेषार्थ- सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का बन्ध नहीं होता, इसलिए अंतरसंबंधी स्थितियों में से उत्कीरण किये जाने वाले प्रदेशपुंज को द्वितीय स्थिति (अन्तरायाम की ऊपर स्थिति) में निक्षिप्त न कर समस्त द्रव्य को सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति (अन्तरायाम से नीचे की स्थिति) में निक्षिप्त करता है तथा सम्यक्त्व की दूसरी स्थिति के प्रदेशपुंज को अपकर्षित

कर अपनी प्रथम स्थिति में गुणश्रेणिरूप से निक्षिप्त करता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व की भी द्वितीय स्थिति के प्रदेशपुंज को अपकर्षित कर सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में गुणश्रेणिरूप से निक्षिप्त करता है तथा अतिस्थापनावली को छोड़कर आगम के अनुसार निक्षिप्त करता है, अपनी अन्तरसम्बन्धी स्थितियों में निक्षिप्त नहीं करता यह उक्त गाथा का तात्पर्य है।

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु सरिसाण मिच्छमिस्साणं ।
ठिदिदव्वं सम्मस्स य सरिसणिसेयम्हि संकमदि।।२१४।।

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिषु सदृशानां मिथ्यमिश्राणाम् ।
स्थितिद्रव्यं सम्यस्य च सदृशनिषेके संक्रामति ।।२१४।।

मिथ्यात्वमिश्रयोरुदयावलिबाह्यान्तरायामे सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिसदृशस्थितयो ये निषेकास्तानुत्कीर्य स्वसमानस्थितिषु सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिनिषेकेष्वेव निक्षिपति न तेषां निक्षेपविभागोऽस्ति तदुपरिस्थितान्तरायामनिषेकाः फालिगताः सर्वेऽपि पूर्वोक्तविधानेनैव सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ गुणश्रेण्यामुदयावल्यां च विभज्य निक्षिपतीत्यर्थः।।२१४।।

अन्वयार्थ – (सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु) सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में उसके **(सरिसाण मिच्छमिस्साणं)** समान मिथ्यात्व व मिश्र के **(ठिदिदव्वं)** स्थितिद्रव्य को **(सम्मस्स य सरिसणिसेयम्हि)** सम्यक्त्व प्रकृति के समान निषेक में **(संकमदि)** संक्रमित करता है।।२१४।।

टीकार्थ– मिथ्यात्व और मिश्र के उदयावली के बाहर अंतरायाम में सम्यक्त्वप्रकृति की प्रथम स्थिति के सदृश स्थितिवाले जो निषेक हैं उनका उत्कीरण करके अपने समान स्थितिवाले सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति के निषेकों में निक्षेपण करता है। उनका निक्षेप विभाग नहीं है। उसके ऊपर स्थित अन्तरायाम में फालिगत सर्व निषेकों का पूर्व में कहे गए विधान से सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में गुणश्रेणि में और उदयावलि में विभाग करके देता है।।२१४।।

जावंतरस्स दुचरिमफालिं पावइ इमो कमो ताव।
चरिमतिदंसणदव्वं छुहेदि सम्मस्स पढमम्हि ।।२१५।।

अंतरायाम में से उत्कीर्ण द्रव्य देने का विधान

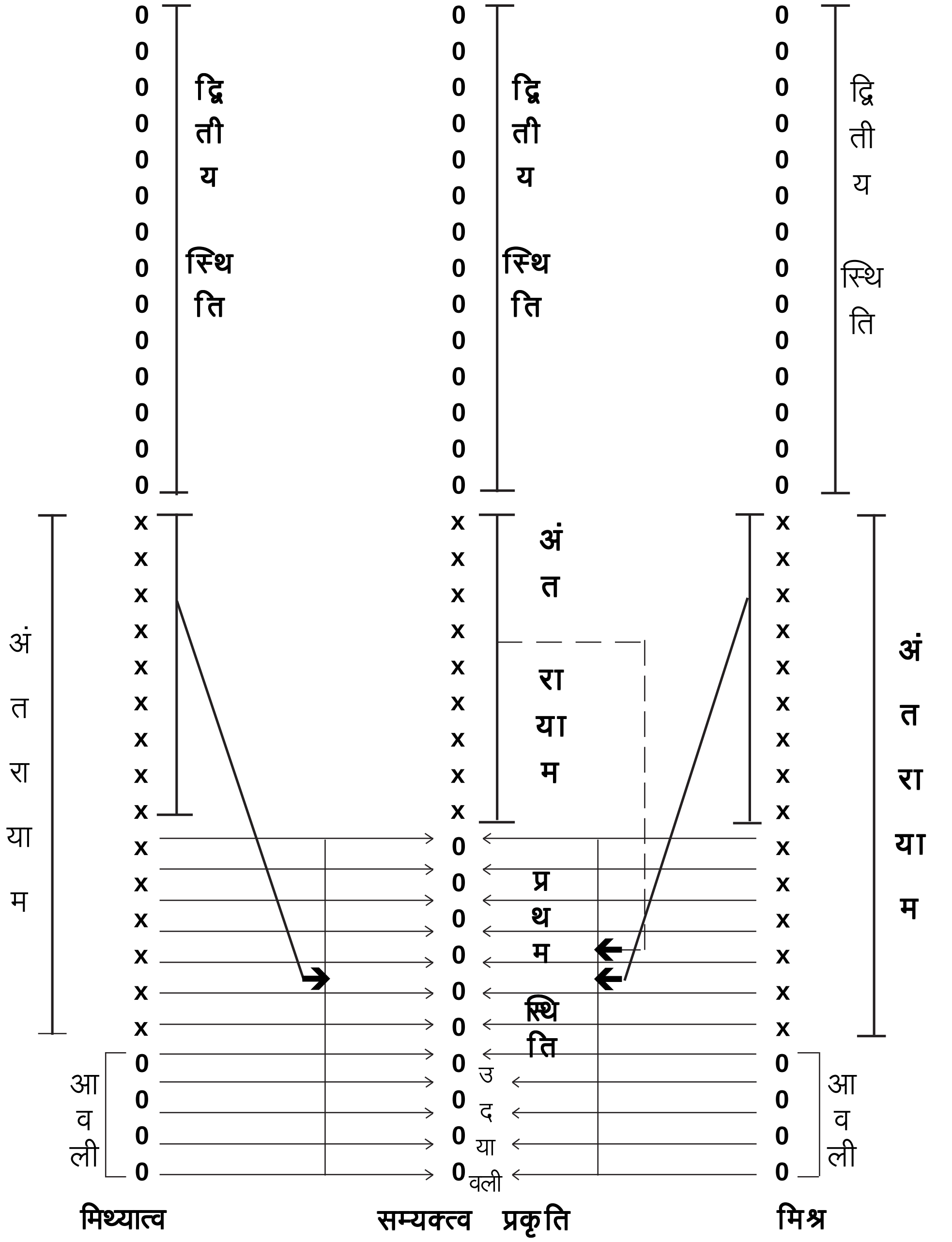

अंतर करने के लिए ग्रहण किए हुए निषेकों की संदृष्टि 'X' यह है।
शेष रखे नीचे और ऊपर के निषेकों की संदृष्टि '0' यह है।

यावदन्तरस्य द्विचरमफालिं प्राप्नोत्ययं क्रमस्तावत् ।
चरमत्रिदर्शनद्रव्यं क्षेपयति सम्यस्य प्रथमे[१] ।।२१५।।

एवं फालिद्रव्यस्यापकृष्टद्रव्यस्य च यावदन्तरद्विचरमफालिं प्राप्नोति तावदयमेव निक्षेपक्रमः। पुनर्दर्शनमोहत्रयस्य चरमफालिद्रव्यं तत्रापकृष्टद्रव्यं च सर्वं सम्यक्त्वप्रकृति-प्रथमस्थितावेव निक्षिपति न पूर्ववदपकृष्टबहुभागस्य द्वितीयस्थितौ निक्षेपः कर्तव्य इति भावः ।।२१५।।

अन्वयार्थ– **(जावंतरस्स)** जब तक अन्तर की **(दुचरिमफालिं पावइ)** द्विचरमफालि प्राप्त होती है **(ताव)** तब तक **(इमो कमो)** यह क्रम है। **(चरिमतिदंसणदव्वं)** तीनों दर्शनमोहनीय की अंतिम फालि का द्रव्य **(सम्मस्स पढमम्हि)** सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति में **(छुहेदि)** देता है।।२१५।।

टीकार्थ– इस प्रकार जब तक अन्तर की द्विचरमफालि प्राप्त होती है तब तक फालिद्रव्य और अपकृष्ट द्रव्य का यह निक्षेप क्रम है। पुनः तीन दर्शनमोहनीय की अंतिमफालि का द्रव्य और उस समय का अपकृष्ट द्रव्य सर्व सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में ही देता है। पूर्व के समान अपकृष्ट द्रव्य के बहुभाग का द्वितीय स्थिति में निक्षेपण नहीं करता है यह भाव है।।२१५।।

विशेषार्थ– दर्शनमोहत्रय की चरमफालि का द्रव्य और अपकृष्ट द्रव्य सर्व सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में निक्षेपण किया जाता है। परन्तु पूर्व के समान अपकृष्ट द्रव्य का बहुभाग द्वितीय स्थिति में निक्षिप्त नहीं किया जाता है।

अथ दर्शनमोहगुणश्रेण्यवसानकथनार्थमिदमाह –

बिदियट्ठिदिस्स दव्वं पढमट्ठिदिमेदि जाव आवलिया ।
पडिआवलिया चिट्ठदि सम्मत्तादिमठिदी ताव[२] ।।२१६।।

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यं प्रथमस्थितिमेति यावदावलिका ।
प्रत्यावलिका तिष्ठति सम्यक्त्वादिमस्थितिस्तावत् ।।२१६।।

यावत्सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिः आवलिप्रत्यावलिमात्रावशेषा भवति तावद्द्वितीय-स्थितिद्रव्यमपकर्षणवशेन प्रथमस्थितिमागच्छति तावत्पर्यन्तं दर्शनमोहस्य गुणश्रेणिः प्रवर्तते। सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ द्व्यावलिमात्रावशिष्टायां तस्य गुणश्रेणिर्नास्तीत्यर्थः। ज्ञानावरणादिशेषकर्मणां

१) जयध. पु. १३, पृ. २०६ २) जयध. पु. १३, पृ. २०६

चारित्रपरिणामनिबन्धना गुणश्रेणिः प्रवर्तत इति ग्राह्यम्। प्रथमस्थितेः समयाधिकावल्यवशेषपर्यन्तं सम्यक्त्वप्रकृतेरुदीरणा वर्तते । ततः सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितेश्चरमसमयेऽनिवृत्तिकरणकालः समाप्तो भवति। तदनन्तरमन्तरप्रथमसमये द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः ।।२१६।।

अब दर्शनमोह की गुणश्रेणि की समाप्ति का कथन करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(जाव)** जब तक **(सम्मत्तादिमठिदि)** सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति **(आवलिया पडिआवलिया)** आवली और प्रत्यावलि प्रमाण **(चिट्ठदि)** शेष रहती है **(ताव)** तब तक **(बिदियट्ठिदिस्स दव्वं)** द्वितीय स्थिति का द्रव्य **(पढमट्ठिदिमेदि)** प्रथम स्थिति में आता है।।२१६।।

टीकार्थ– जब तक सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति आवली और प्रत्यावली शेष रहती है तब तक द्वितीय स्थिति का द्रव्य अपकर्षण के द्वारा प्रथम स्थिति में आता है और तब तक ही दर्शनमोह की गुणश्रेणि प्रवृत्त होती है। सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति में दो आवलिमात्र शेष रहने पर उसकी गुणश्रेणी नहीं होती, यह अर्थ है। ज्ञानावरणादि शेष कर्मों की चारित्र परिणामों के निमित्त से गुणश्रेणि प्रवृत्त होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलि शेष रहने तक सम्यक्त्व प्रकृति की उदीरणा होती है। उसके बाद सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति के अंतिम समय में अनिवृत्तिकरणकाल समाप्त होता है। उसके बाद प्रथम समय में जीव द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होता है।।२१६।।

विशेषार्थ– १) सम्यक्त्व मोहनीय की प्रथम स्थिति की आवली और प्रत्यावली शेष रहने तक द्वितीय स्थिति के अपकर्षणवश दर्शनमोह की गुणश्रेणि होती है। २) अन्य कर्मों की गुणश्रेणि इन दो आवलियों में भी होती है। ३) सम्यक्त्व मोहनीय की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक एक आवली शेष रहने तक उदीरणा होती है।

अथ दर्शनमोहद्रव्यस्य संक्रमप्रतिपादनार्थमाह –

सम्मादिठिदिज्झीणे मिच्छदव्वादु सम्मसंमिस्से ।
गुणसंकमो ण णियमा विज्झादो संकमो होदि[1] ।।२१७।।

सम्यगादिस्थितिक्षीणे मिथ्यद्रव्यात् सम्यसंमिश्रे ।
गुणसंक्रमो न नियमात् विध्यातः संक्रमो भवति ।।२१७।।

१) जयध. पु. १३, पृ. २०७ ।

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ निरवशेषं गलितायां संजातद्वितीयोपशमसम्यक्त्वस्य जीवस्य मिथ्यात्वद्रव्यात् गुणसंक्रमेण विना सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रविध्यातसंक्रमेण भक्तैकभागमात्रं द्रव्यं गृहीत्वा सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्योः प्रतिसमयं विशेषहीनक्रमेण निक्षिपति ।।२१७।।

दर्शनमोह के द्रव्य का संक्रमण कहते हैं –

अन्वयार्थ– (सम्मादिठिदिज्झीणे) सम्यक्त्व प्रकृति की प्रथम स्थिति का क्षय होने पर **(मिच्छदव्वादु)** मिथ्यात्व के द्रव्य में से **(सम्मसंमिस्से)** सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति में **(णियमा)** नियम से **(विज्झादो संकमो)** विध्यात संक्रमण **(होदि)** होता है, **(गुणसंकमो ण)** गुणसंक्रमण नहीं होता। ।।२१७।।

टीकार्थ– सम्यक्त्वप्रकृति की प्रथम स्थिति पूर्णरूप से गलने पर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हुआ जीव मिथ्यात्व द्रव्य में से गुणसंक्रमण बिना सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र विध्यात संक्रमण भागहार से भाग देकर एकभाग मात्र द्रव्य को ग्रहण करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति में प्रत्येक समय विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करता है।।२१७।।

विशेषार्थ– प्रथमोपशम सम्यक्त्व में गुणसंक्रमण के द्वारा मिथ्यात्व का द्रव्य मिश्रप्रकृति और सम्यक्त्वप्रकृति में दिया जाता है परन्तु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में विध्यात संक्रमण के द्वारा मिथ्यात्व का द्रव्य सम्यक्त्व और मिश्रप्रकृति में दिया जाता है, क्योंकि गुणसंक्रमण में कारणभूत जीव के परिणामों का अभाव होने से यहाँ गुणसंक्रमण नहीं होता है। प्रत्येक समय में विशेषहीन क्रम से विध्यात संक्रमण होता है। यहाँ से आगे ज्ञानावरणादि कर्मों का स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होता; परन्तु संयमरूप परिणामों के निमित्त से अवस्थित आयामवाली गुणश्रेणि प्रवृत्त होती है क्योंकि करण परिणाम निमित्तक गलितावशेष गुणश्रेणि का यहाँ अन्त होता है।

अथ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिविशुद्धेरेकान्तवृद्धिकालप्रमाणं दर्शयितुमिदमाह–

सम्मत्तुप्पत्तीए गुणसंकमपूरणस्स कालादो।
संखेज्जगुणं कालं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु[1] ।।२१८।।

सम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणसंक्रमपूरणस्य कालात्।
संख्येयगुणं कालं विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धते हि।।२१८।।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणसंक्रमपूरणकालो यावदन्तर्मुहूर्तमात्रः पूर्वं प्ररूपितः तत्संख्येयभागगुणं कालमयं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिः प्रतिसमयमनन्तगुणितक्रमेण विशुद्ध्या

१) जयध. १३, पृ. २०८ ।

वर्धते। अयं च विशुद्ध्येकान्तवृद्धिकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र एव।।२१८।।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि की विशुद्धि के एकान्तवृद्धिकाल का प्रमाण दिखाने के लिए कहते हैं-

अन्वयार्थ- (सम्मत्तुप्पत्तीए) प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में **(गुणसंकमपूरणस्स कालादो)** जो गुणसंक्रमण का पूरणकाल कहा है उससे **(संखेज्जगुणं कालं)** संख्यातगुणे काल तक (यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव) **(विसोहिवड्ढीहिं)** विशुद्धि की वृद्धि से **(वड्ढदि हु)** बढ़ता है।।२१८।।

टीकार्थ- प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में गुणसंक्रमण पूरणकाल जितना अन्तर्मुहूर्त मात्र पूर्व में कहा गया है उसके संख्यातवे भाग से गुणित काल यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि प्रत्येक समय में क्रम से अनन्तगुणी विशुद्धि से बढ़ता है। इस विशुद्धि का एकान्तवृद्धिकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है। ।।२१८।।

विशेषार्थ- प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि का गुणसंक्रमपूरणकाल [२१] है और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि का एकान्तवृद्धिकाल [२११] है।

एकान्तवृद्धिकालात्परं तस्यामवस्थाविशेषं प्ररूपयितुमिदमाह-

तेण परं हायदि वा वड्ढदि तदवट्ठिदो विसुद्धीहिं।
उवसंतदंसणतियो होदि पमत्तापमत्तेसु[1]।।२१९।।

तेन परं हीयते वा वर्धते तदवस्थितो विशुद्धिभिः।
उपशान्तदर्शनत्रिको भवति प्रमत्ताप्रमत्तयोः।।२१९।।

तस्मादेकान्तवृद्धिकालात्परं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिः संक्लेशपरिणामवशात् विशुद्ध्या हीयते वा संक्लेशहान्या विशुद्ध्या वर्धते वा अयं च व्यवस्थया कियन्तमपि कालं हानिवृद्धिं विना अवस्थितो वा भवति । एवमुपशमितदर्शनमोहत्रयो जीवः संक्लेशविशुद्धिपरावृत्ति- वशेन बहुवारं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः परावर्तते ।।२१९।।

एकान्तवृद्धि के काल के बाद द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि की विशुद्धि में अवस्था विशेष का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं-

अन्वयार्थ- (उवसंतदंसणतियो) दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों का जिसने उपशमन किया है ऐसा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव **(तेण परं)** उस एकान्तवृद्धि काल के बाद

१) जयध. पु. १३ पृ. २०८ ।

(विसुद्धीहिं) विशुद्धि से **(हायदि)** हीन होता है **(वा)** अथवा **(वड्ढदि)** बढ़ता है अथवा **(तदवट्ठिदो)** अवस्थित रहता है। **(पमत्तापमत्तेसु)** प्रमत्त व अप्रमत्तगुणस्थान में परावर्तित **(होदि)** होता है। (परावर्तन करता है) ।।२१९।।

टीकार्थ– उस एकान्तवृद्धि काल के बाद द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि संक्लेश परिणाम से विशुद्धि से हीन होता है अथवा संक्लेश परिणाम की हानि से विशुद्धि से बढ़ता है अथवा कुछ काल तक हानि–वृद्धि बिना अवस्थित रहता है। इस प्रकार जिसने तीन दर्शनमोहनीय का उपशम किया है ऐसा जीव संक्लेश–विशुद्धि की परावृत्ति से अनेक बार प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में परावर्तन करता है।।२१९।।

अथ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यारोहणावसरं प्रदर्शयितुमिदमाह –

एवं पमत्तमियरपरावत्तिसहस्सयं तु कादूण।
इगवीसमोहणीयं उवसमदि ण अण्णपयडी हु[1] ।।२२०।।

एवं प्रमत्तमितरपरावृत्तिसहस्रकं तु कृत्वा।
एकविंशमोहनीयमुपशमयति नान्यप्रकृतीर्हु ।।२२०।।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेणायं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्ति–सहस्राणि कृत्वा द्वादशकषायनवनोकषायभेदभिन्नमेकविंशतिप्रकृतिकं चारित्रमोहनीयमेवोपशमयि–तुमुपक्रमते नान्यकर्मप्रकृतीस्तासामुपशमकरणाभावात् ।।२२०।।

अब द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणि पर चढ़ने का अवसर दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(एवं)** इस प्रकार **(पमत्तमियरपरावत्तिसहस्सयं तु कादूण)** प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानों में हजारों परावर्तन करके **(इगवीसमोहणीयं)** मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का **(उवसमदि)** उपशम करता है, **(ण अण्णपयडी हु)** अन्य प्रकृतियों का उपशम नहीं करता है।।२२०।।

टीकार्थ– इस प्रकार पूर्व में कहे गए प्रकार से यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में हजारों बार परावर्तन करता है और बारह कषाय व नौ नोकषाय ऐसी कुल चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों की उपशमना करने का उपक्रम करता है, क्योंकि अन्य प्रकृतियों के उपशम करने का अभाव है ।।२२०।।

विशेषार्थ– उक्त विधि से यह जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर विशुद्धि और संक्लेशवश हजारों बार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानों में परावर्तन कर और क्रमश: सातिशय

१) जयध. पु. १३ पृ. २१० ।

अप्रमत्तसंयत होकर उपशम श्रेणि पर आरोहण कर चारित्रमोहनीय की अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क आदि २१ प्रकृतियों का उपशमन करता है। यहाँ अन्य प्रकृतियों का उपशमन नहीं होता है क्योंकि मोहनीय कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्मों के तीन करणपूर्वक उपशमविधि का निषेध है। उसमें यह जीव सर्वप्रथम अध:करण को प्राप्त करता है । इसके अन्त में कार्यविशेष आदि को सूचित करने वाली चार गाथाओं में निर्दिष्ट सभी बातों का खुलासा जयधवला पु.१३ पृ. २१४-२२२ में किया ही है सो उसे वहाँ से जान लेना चाहिए। यहाँ मुख्यतया उपशमश्रेणि में होनेवाले उपयोग और वेद के विषय में विचार करना है। जयधवला में उपयोग के प्रसंग से दो उपदेशों का निर्देश किया है। प्रथम उपदेश के अनुसार श्रुतज्ञानोपयोगी जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ता है ऐसा बतलाया है तथा दूसरे उपदेश के अनुसार श्रुतज्ञान, मतिज्ञान तथा चक्षु-अचक्षुदर्शनोपयोगवाला जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ता है ऐसा कहा है। किन्तु यह विवक्षा भेद से कहा गया है। जैसे आगम में सामायिक और छेदोपस्थापना संयम को मिला कर कथन किया जाता है वैसे ही इन दोनों ज्ञानों के विषय में भी जानना चाहिए। इतना ही नहीं आगम में श्रुतज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान के होने पर पिछले श्रुतज्ञान को उपचार से मतिज्ञान भी स्वीकार किया गया है। इसलिए जिन आचार्यों ने श्रुतज्ञान के अतिरिक्त मतिज्ञान तथा चक्षु-अचक्षु दर्शनोपयोग से उपशमश्रेणि पर आरोहण करना स्वीकार किया है, सम्भवत: उन्होंने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर उक्त निर्देश किया होगा। अब वेद के विषय में खुलासा करते हैं- वस्तुत: वेद तो भावनिक्षेप का विषयभूत भाववेद एक ही प्रकार का है और इसीलिए मूल सिद्धान्त ग्रन्थों में एकमात्र यही वेद स्वीकार किया गया है। लौकिक परिपाटी को ध्यान में रखकर साम्य की दृष्टि से उत्तर काल में ही वेद के भाववेद और द्रव्यवेद ऐसे दो भेद स्वीकार कर लिए गये हैं।

एवं कृतपरिकरस्याप्रमत्तसंयतस्योपशमश्रेण्यारोहणे क्रियाविशेषविषयानधिकारानुद्देष्टुमिदमाह-

तिकरण बंधोसरणं कमकरणं देसघादिकरणं च।
अंतरकरणं उवसमकरणं उवसामणे होंति।।२२१।।

त्रिकरणं बंधापसरणं क्रमकरणं देशघातिकरणं च ।
अन्तरकरणमुपशमकरणमुपशामने भवन्ति ।।२२१।।

चारित्रमोहोपशमने कर्तव्ये अध:प्रवृत्तकरणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं स्थितिबन्धापसरणं क्रमकरणं देशघातिकरणमन्तरकरणमुपशमकरणं चेत्यष्टाधिकारा भवन्ति। तेष्वध:प्रवृत्तकरणं सातिशयाप्रमत्तसंयत: कुरुते। तत्करणस्य लक्षणं तत्र क्रियमाणकार्याणि च यथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखसातिशयमिथ्यादृष्टेर्भणितानि तथैवात्रापि भणितव्यानि। अयं

तु विशेषः– संयमयोग्यप्रकृतिबन्धोदयौ, अनन्तानुबन्धिचतुष्कनरकतिर्यगायुर्वर्जितसर्वप्रकृतिसत्त्वं चावसरे वक्तव्यम् ।।२२१।।

जिसने तैयारी की है ऐसे अप्रमत्तसंयत के उपशमश्रेणि पर चढ़ने के विषय में क्रिया विशेष विषयक अधिकारों को कहने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(उवसामणे)** चारित्रमोह के उपशमन में **(तिकरण)** तीन करण, **(बंधोसरणं)** बंधापसरण, **(कमकरणं)** क्रमकरण, **(देसघादिकरणं)** देशघातिकरण, **(अंतरकरणं)** अंतरकरण **(च)** और **(उवसमकरणं)** उपशमकरण **(होंति)** होते हैं ।।२२१।।

टीकार्थ– चारित्रमोह का उपशमन करने में अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, स्थितिबंधापसरण, क्रमकरण, देशघातिकरण, अन्तरकरण और उपशमकरण ये आठ अधिकार हैं। उनमें अध:प्रवृत्तकरण सातिशय अप्रमत्तसंयत करता है। उस करण का लक्षण व उस समय किए जाने वाले कार्य जिसप्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख होने वाले सातिशय मिथ्यादृष्टि को कहे गये हैं उसके समान यहाँ भी कहना चाहिए, परन्तु यह विशेष है कि संयम के योग्य प्रकृतियों का बन्ध व उदय, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नरकायु, तिर्यंचायु रहित सर्व प्रकृतियों का सत्त्व योग्य स्थान पर कहना चाहिए।

विशेषार्थ– उपशमश्रेणी में १. अध:प्रवृत्तकरण, २. अपूर्वकरण, ३. अनिवृत्तिकरण, ४. स्थितिबंधापसरण. ५. क्रमकरण, ६. देशघातिकरण, ७. अंतरकरण और ८. उपशमकरण ये कार्य होते हैं।

अथापूर्वकरणकार्यविशेषप्रतिपादनार्थमिदं गाथाद्वयमाह–

बिदियकरणादिसमये उवसंततिदंसणे जहण्णेण।
पल्लस्स संखभागं उक्कस्सं सायरपुधत्तं[1] ।।२२२।।

द्वितीयकरणादिसमये उपशान्तत्रिदर्शने जघन्येन ।
पल्यस्य संख्यभागमुत्कृष्टं सागरपृथक्त्वम् ।।२२२।।

अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टेर्जघन्यं स्थितिकाण्डकं पल्यसंख्यातभागमात्रं, उत्कृष्टं सागरोपमपृथक्त्वप्रमाणम् ।।२२२।।

अब अपूर्वकरण के कार्यविशेष का प्रतिपादन करने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(उवसंततिदंसणे)** जिसने तीन दर्शनमोहनीय का उपशम किया है ऐसे

१) जयध. पु. १३ पृ. २२३ ।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि का **(बिदियकरणादिसमये)** द्वितीय अपूर्वकरण के प्रथम समय में (स्थितिकांडक) **(जहण्णेण)** जघन्य से **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवाँ भाग और **(उक्कस्सं)** उत्कृष्ट **(सायरपुधत्तं)** सागरपृथक्त्व होता है।।२२२।।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय में होने वाला द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थितिकांडक पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र और उत्कृष्ट स्थितिकांडक सागरोपमपृथक्त्व प्रमाण होता है। ।।२२२।।

ठिदिखंडयं तु खइये वरावरं पल्लसंखभागो दु।
ठिदिबंधोसरणं पुण वरावरं तत्तियं होदि[1] ।।२२३।।

स्थितिखंडकं तु क्षायिके वरावरं पल्यसंख्यभागस्तु।
स्थितिबंधापसरणं पुनो वरावरं तावत्कं भवति।।२२३।।

तस्मिन्नेवापूर्वकरणप्रथमसमये वर्तमानस्य चारित्रमोहोपशमकस्य क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्जघन्यमुत्कृष्टं च स्थितिकाण्डकं पल्यसंख्यातभागमात्रमेव तथापि जघन्यादुष्कृष्टं संख्यातगुणितं दर्शनमोहक्षपणकाले विशुद्धिविशेषेण कर्मस्थितेर्बहुशः खण्डितत्वात्, स्थित्यनुसारेण च काण्डकाल्पबहुत्वस्य न्याय्यत्वात् । स्थितिबन्धापसरणं पुनरुपशमसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च पल्यसंख्यातभागमात्रमेव। तत्रापि जघन्यादुत्कृष्टं संख्यातगुणितमपि पल्यसंख्यातभागमात्रमेव ।।२२३।।

अन्वयार्थ– (खइये) क्षायिक सम्यग्दृष्टि में **(वरावरं)** उत्कृष्ट व जघन्य **(ठिदिखंडयं)** स्थितिकांडक **(पल्लसंखभागो दु)** पल्य का संख्यातवाँ भाग है **(पुण)** पुनः **(वरावरं)** जघन्य व उत्कृष्ट **(ठिदिबंधोसरणं)** स्थितिबंधापसरण **(तत्तियं)** उतना ही अर्थात् पल्य का संख्यातवाँ भाग ही **(होदि)** होता है ।।२२३।।

टीकार्थ– उस अपूर्वकरण के प्रथम समय में चारित्रमोह का उपशम करने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि का जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकांडक पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र ही है; तथापि जघन्य से उत्कृष्ट संख्यातगुणा है, क्योंकि दर्शनमोह के क्षपणाकाल में विशुद्धि विशेष से कर्मस्थिति अनेक बार खण्डित होती है और स्थिति का अनुसरण करके काण्डक कम ज्यादा होता है यह न्याय है। पुनः स्थितिबंधापसरण उपशम सम्यग्दृष्टि का और क्षायिक सम्यग्दृष्टि का पल्य का संख्यातवाँ भाग मात्र ही होता है, वहाँ भी जघन्य से उत्कृष्ट संख्यातगुणा होने पर भी पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र ही है। ।।२२३।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २२२ ।

अथानुभागकाण्डकादिनिर्देशार्थमिदमाह –

असुहाणं रसखंडणमणंतभागा ण खंडमियराणं।
अंतोकोडाकोडी सत्तं बंधं च तट्ठाणे[1]।।२२४।।

अशुभानां रसखंडनमनन्तभागा न खण्डमितरेषाम् ।
अन्त:कोटाकोटि: सत्त्वं बन्धश्च तत्स्थाने ।।२२४।।

अशुभानां प्रकृतीनामनुभागस्यानन्तबहुभागमात्रमनुभागकाण्डकमपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारभ्यते न पुन: शुभानां प्रकृतीनां विशुद्ध्या शुभप्रकृत्यनुभागस्य खण्डनायोगात् । तत्र प्रथमादिनिषेकाणामनुभागविभाग: किञ्चित्प्रदर्श्यते । तद्यथा–

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणां मध्ये विवक्षितैककर्मण: सत्त्वद्रव्यमिदं

स ∂ १२–
७

अस्मिन्नानागुणहानिगतसर्वनिषेकेषु विभज्य दीयमाने 'साहियदिवड्ढ-गुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यायातं प्रथमनिषेकद्रव्यमिदं

स ∂ १२–
७ । १२

अस्मिन्ननुभागविषयानन्तनानागुणहानिगतवर्गणासु विभज्य दीयमाने 'साहियदिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनन्तात्मकसाधिकद्व्यर्धगुणहान्या भक्ते आयातं प्रथमवर्गणाद्रव्यमिदं

स ∂ १२–
७।१२।ख३
२

इतो द्वितीयादिवर्गणासु द्रव्यं विशेषहीनक्रमेण दीयते । एवं द्वितीयादिगुणहानिष्वर्धार्धक्रमेण प्रथमादिवर्गणाद्रव्यमवतिष्ठते । तत्र चरमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणाद्रव्यमानीयते। तद्यथा–

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्ये अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धेन भक्ते चरमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्यमागच्छति रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकानां भागहारत्वेनान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धोत्पत्ते:

स ∂ १२–
७।१२।ख३ अ
२ २

अस्मिन् रूपोनगुणहानिमात्रचयेष्वपनीतेषु चरमगुणहानिचरमवर्गणाद्रव्यमायाति।

स ∂ १२– गु (१—)
७।१२।ख३ अ गु २
२ २

एवं द्वितीयादिनिषेकद्रव्येष्वप्यनुभागविभागेन तिर्यग्रचनायां प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाप्रभृति-चरमगुणहानिचरमवर्गणापर्यन्तं वर्गणाद्रव्यमानेतव्यम्। कर्मस्थितिचरमगुणहानिचरमनिषेकद्रव्यमिदं–

स ∂ १२– गु (१—)
७।१२।प गु २
व २

अस्मिन्ननुभागसम्बन्ध्यनन्तनानागुणहानिवर्गणासु विभज्य दीयमाने 'साहियदिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनुभागस्यानन्तात्मकद्व्यर्धगुणहान्या भक्ते अनुभागस्य प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्यमागच्छति

१) जयध. पु. १३ पृ. २२४ ।

[स a १२– / ७।१२।ख३ प / २ व] एवं द्वितीयादिगुणहानिष्वनुभागसम्बन्धिनीषु तिर्यग्प्रचितासु वर्गणाद्रव्यमर्धार्ध-क्रमेणागच्छति। अनुभागस्य प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्ये अनन्तात्मकान्योन्याभ्यस्त-राश्यर्धेन भक्ते अनुभागस्य चरमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्यमागच्छति पूर्ववत् [स a १२– / ७।१२।प।ख३ अ / व २ २] अस्मिन् रूपोनगुणहानिमात्रचयेष्वपनीतेषु अनुभागस्य चरमगुणहानि-चरमवर्गणाद्रव्यं भवति। [स a १२– गु^१– / ७।१२।प।ख३ अ गु २ / व २ २] इत्थं सर्वनिषेक-सत्त्वानुभागावस्थितिर्ज्ञातव्या। अत्र तात्कालिकानुभागसत्त्वं ९ ना अनन्तेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमात्रमनुभागकाण्डकं [९ ना ख / ख] पुनस्तदेकभागमनन्तेन खण्डयित्वा एकभागमात्रमतिस्थाप्य [९ ना / ख ख] बहुभागमात्रानुभागसत्त्वे [९ ना ख / ख ख] पूर्वखण्डितानुभागकर्मपरमाणुद्रव्यं निक्षिपति, अवशिष्टानुभागरूपेण तद्द्रव्यं परिणमयतीत्यर्थः। अपूर्वकरणप्रथमसमये आयुर्वर्जितकर्मणां स्थितिसत्त्वं स्थितिबन्धश्च अन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमित एव [सा अं को २ / ४] स्थितिबन्धात् स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं [सा अं को २] अयमेव विशेषः। ।।२२४।।

अब अनुभागकाण्डकादि का निर्देश करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(असुहाणं)** अशुभ कर्मों का **(अणंतभागा)** अनन्त बहुभागप्रमाण **(रसखंडणं)** अनुभागकांडक होता है। **(इयराणं खंडं ण)** इतर अर्थात् शुभ प्रकृतियों का अनुभागकांडकघात नहीं होता है। **(तट्ठाणे)** उस स्थान में (अपूर्वकरण के प्रथम समय में) **(सत्तं बंध च)** कर्मों का सत्त्व और कर्मों का बन्ध **(अंतोकोडाकोडी)** अंत:कोड़ाकोड़ी सागर होता है। ।।२२४।।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के प्रथम समय में अशुभप्रकृतियों के अनुभाग का अनन्त बहुभागमात्र अनुभागकांडक प्रारम्भ होता है। शुभ प्रकृतियों का अनुभागकांडक नहीं होता, क्योंकि विशुद्धि के द्वारा शुभ प्रकृतियों के अनुभाग का खंडन नहीं होता। वहाँ प्रथमादि निषेकों के अनुभाग का विभाग किंचित् दिखाते हैं। उसका खुलासा–

आयुकर्म छोड़कर सात कर्मों में से विवक्षित एक कर्म का यह सत्त्वद्रव्य है– [स a १२– / ७] (कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध ÷ ७) यह द्रव्य नानागुणहानि के सभी निषेकों में विभाग करके दिया जाता है। $\frac{\text{सर्वद्रव्य}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि}}$ = प्रथम निषेक आता है।

इसप्रकार आया हुआ प्रथम निषेक का द्रव्य

स a १२–
७ । १२

इस द्रव्य को अनुभाग विषयक अनन्त नानागुणहानिगत वर्गणाओं में विभाग करके देने पर प्रथम निषेक के द्रव्य को अनन्तात्मक साधिक डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर प्रथम वर्गणा का द्रव्य आता है।

$$\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि आयाम}} = \text{प्रथम वर्गणा}$$

स a १२–
७।१२।ख३
२

(अनुभाग का गुणहानि आयाम = **ख** (अनंत), डेढ़ गुणहानि = **ख ३/२** साधिक करने के लिए खडी रेखा । दी है।)

अंकगणित **६३०० ह्न** $\frac{१५७५}{१२८}$ **= ५१२** प्रथम वर्गणा। डेढ़ गुणहानि का प्रमाण १२ है, उसमें अधिक का प्रमाण ३९ह्न१२८ लेना चाहिए।

(सर्व सत्त्वद्रव्य स्थितिसंबंधी नानागुणहानियों के निषेकों में विभक्त है। उसके प्रत्येक निषेक में अनुभाग की अपेक्षा से नाना गुणहानियाँ होती हैं। गुणहानि में स्पर्धक हैं। स्पर्धकों में वर्गणाएँ हैं अर्थात् प्रत्येक निषेक में अनेक प्रकार की शक्ति है।

इसके बाद द्वितीयादि वर्गणाओं में विशेषहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है। इस प्रकार द्वितीयादि गुणहानियों में प्रथमादि वर्गणाओं का द्रव्य अर्ध–अर्ध क्रम से स्थित रहता है। उसमें से चरम गुणहानि के चरम स्पर्धक की चरम वर्गणा का द्रव्य लाते हैं। उसका खुलासा –

प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा में अन्योन्यभ्यस्त राशि के अर्ध से भाग देने पर चरम गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य आता है। एक कम नाना गुणहानिमात्र दो अंक रखकर परस्पर गुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्त राशि के अर्धराशि की उत्पत्ति होती है।

$$\text{चरम गुणहानि की प्रथम वर्गणा} = \frac{\text{प्र. गुणहानिकी प्र. वर्गणा}}{\frac{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि}}{२}} =$$

स a १२–
७।१२।ख३ अ
२ २

अंकगणित में = ५१२ह्न३२=१६ चरम गुणहानि की प्रथम वर्गणा। नाना गुणहानि= ६। इसलिए २×२×२×२×२×२ = ६४ अन्योन्याभ्यस्त राशि। ६४ह्न२=३२।

प्रथम वर्गणा में एक कम गुणहानि मात्र चय कम करने पर अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा का द्रव्य आता है। (अथवा एक अधिक गुणहानि प्रमाण चय यह अंतिम वर्गणा का प्रमाण आता है। यहाँ संदृष्टि में इसकी ही संदृष्टि है)

$$\text{चय} = \frac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}} =$$

स a १२–
७।१२।ख३ ।अ।गु २
२ २

अंकगणित १६ह्न१६ = १ चय

चय × (गुणहानि आयाम+१) = अन्तिम वर्गणा

१
स a १२- गु
७।१२।ख३ अ गु २
२ २

अंकगणित- गुणहानि आयाम ८+१ = ९ १×९ =९ अन्तिमवर्गणा

इसप्रकार द्वितीयादि निषेक द्रव्यों में भी अनुभाग के विभाग से तिर्यक् रचना में प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा से अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा तक वर्गणाओं का द्रव्य लाना चाहिए।

कर्मस्थिति की चरम गुणहानि के अंतिम निषेक का द्रव्य = प्र. गु. अंतिम निषेक / अन्योन्याभ्यस्त राशि ÷२ =

१
स a १२- गु
७।१२।प गु २
व २

पल्य के अर्धच्छेद - वर्गशलाका के अर्धच्छेद = नाना गुणहानी

नाना गुणहानि प्रमाण बार दो का अंक रखकर परस्पर गुणा करने पर अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण वर्गशलाका से भाजित पल्य आता है। स्थिति की अपेक्षा से अन्योन्याभ्यस्त राशि = पल्य / वर्गशलाका संदृष्टि- प / व

चरम गुणहानि का प्रथम निषेक = प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक / अन्योन्याभ्यस्त राशि ÷२ =

स a १२-
७।१२।प
व २

चय = प्रथम निषेक / २ गुणहानि =

स a १२-
७।१२।प गु २
व २

चय × (गुणहानि आयाम+१) = अन्तिम निषेक

१
स a १२- गु
७।१२।प गु २
व २

इस अंतिम निषेक को अनुभाग संबंधी अनन्त नाना गुणहानियों की वर्गणाओं में विभाग करके देवे संपूर्ण निषेक द्रव्य को अनुभाग की अनन्तात्मक डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर अनुभाग की प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य आता है। प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा =

स a १२-
७।१२।ख३ प
२ व

(ऊपर के अंतिम निषेक के द्रव्य में भागहार २ का और २ गुणकार का और गुणहानिरूप भागहार और १ अधिक गुणहानिरूप गुणकार का अपवर्तन किया। १ अधिक को नहीं गिना।)

इसप्रकार अनुभाग संबंधी तिर्यक् रची हुई द्वितीयादि गुणहानियों में वर्गणाद्रव्य क्रम से आधा आधा आता है। अनुभाग की प्रथम वर्गणा में अनन्तस्वरूप अन्योन्याभ्यस्तराशि के आधे

से भाग देने पर अनुभाग की अंतिम गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य आता है।

अंतिम गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य =

स a १२–
७।१२।प। ख३ अ
व २ २

(इसका खुलासा पूर्व के समान ही जाननाचाहिहैं)

इसमें एक कम गुणहानिमात्र चय कम करने पर अनुभाग की अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा का द्रव्य आता है। (अथवा एक अधिक पद × चय = अंतिम वर्गणा)

स a १२– गु १
७।१२।प। ख३ अ गु २
व २ २

इसप्रकार सभी निषेक सत्त्व के अनुभाग की अवस्थिति जाननी चाहिए। यहाँ तात्कालिक अनुभाग सत्त्व ९ ना (स्पर्धकशलाका × नानागुणहानि) इसको अनन्त से भाग देकर उसका बहुभाग मात्र अनुभागकाण्डक के लिए ग्रहण करता है।

९ ना ख
ख

पुनः एकभाग को अनन्त से भाग देकर एक भागमात्र

९ ना
ख ख

अतिस्थापनावलि छोड़कर बहुभागमात्र

९ ना ख १
ख ख

अनुभाग सत्त्व में खण्डित अनुभाग के कर्म परमाणु द्रव्य का निक्षेपण करता है अर्थात् शेष रहे अनुभागरूप से वह द्रव्य परिणमित होता है।

अपूर्वकरण के प्रथम समय में आयुकर्म छोड़कर अन्य कर्मों का स्थितिसत्त्व और स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण ही है।

सा अं को २
४

यह विशेष है कि स्थितिबंध से स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा

सा अं को २

है। ।।२२४।।

विशेषार्थ– प्रत्येक समय में यह जीव एक समयप्रबद्धप्रमाण कर्मपरमाणुओं का बंध करता है। उसकी जितनी स्थिति बांधी है उतनी स्थिति के समयों में उस परमाणुओं का चय हीन क्रम से विभाग होता है। स्थिति के एक–एक समय में जितने परमाणु बँटवारे में आते हैं उसको निषेक कहते हैं। उस प्रत्येक निषेक में अनन्त कर्म परमाणु प्राप्त होते हैं। उन सभी परमाणुओं का अनुभाग समान नहीं होता। उस एक निषेक के परमाणुओं का कम ज्यादा अनुभागानुसार अनन्तगुणहानियों में विभाग होता है। बाँधे गए सभी समयप्रबद्ध सत्ता में रहते हैं। वह सत्त्वद्रव्य भी चयहीन क्रम से नाना गुणहानियों में स्थित होता है। विवक्षित कर्म के सभी सत्त्वरूप द्रव्य में स्थितिसंबंधी साधिक डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर प्रथम निषेक का द्रव्य आता है। स्थितिसंबंधी गुणहानि–आयाम का प्रमाण पल्य का असंख्यातवाँ भाग अर्थात् असंख्यात है। प्रथम निषेक में एक–एक चय कम करने पर द्वितीयादि निषेकों का प्रमाण आता है।

स्थितिसंबंधी एक-एक निषेकों में अनुभाग की अपेक्षा से नानागुणहानि की रचना होती है। अर्थात् एक निषेक में अनुभाग संबंधी वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि, नाना गुणहानि की रचना होती है। स्थितिसंबंधी जो प्रथम निषेक का प्रमाण है, उसमें अनुभाग संबंधी डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर प्रथम गुणहानि के प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के परमाणुओं का प्रमाण आता है। सबसे कम अविभागप्रतिच्छेद जिस परमाणु में होते हैं उसको जघन्य वर्ग कहते हैं। जघन्य वर्ग रूप परमाणुओं के समूह को प्रथम वर्गणा कहते हैं। प्रथम वर्गणा में सबसे अधिक परमाणु होते हैं और शक्ति सबसे कम होती है। द्वितीयादि वर्गणाओं में एक-एक चय घटते क्रम से परमाणुओं का प्रमाण आता है। जहाँ प्रथम वर्गणा के परमाणुओं का प्रमाण आधा होता है वहाँ दूसरी गुणहानि का प्रारम्भ होता है। इसलिए द्वितीयादि गुणहानियों में पूर्व-पूर्व की गुणहानि की वर्गणाओं से अर्ध-अर्ध क्रम से वर्गणा द्रव्यों का प्रमाण आता है। प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा के द्रव्य में अनुभाग संबंधी अन्योन्याभ्यस्त राशि के अर्ध प्रमाण से भाग देने पर अंतिम गुणहानि की प्रथम वर्गणा का द्रव्य आता है। इसमें एक कम गुणहानि प्रमाण चय कम करने पर अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा का प्रमाण आता है।

उदाहरणार्थ -स्थिति के प्रथम निषेक का प्रमाण बारह हजार सात सौ (१२७००) माना। अनुभागसंबंधी गुणहानिआयाम का प्रमाण (८), डेढ़ गुणहानि का प्रमाण बारह (१२) ,साधिक का प्रमाण १०३ ÷ २५६ माना।

$$\frac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि आयाम}} = \text{प्रथम वर्गणा}; \quad \frac{१२७००}{१२\frac{१०३}{२५६}} = \frac{१२७००}{\frac{(१२\times२५६)+१०३}{२५६}}$$

$$= \frac{१२७००\times२५६}{३०७२+१०३} = \frac{१२७००\times२५६}{३१७५} = १०२४ = \text{प्रथम वर्गणा}$$

$$\frac{\text{प्रथम वर्गणा}}{\text{दो गुणहानि}} = \text{चय}; \quad \frac{१०२४}{१६} = ६४;$$

प्रथम वर्गणा में एक-एक चय कम करने पर द्वितीयादि वर्गणाओं का प्रमाण आता है। अतः १०२४-६४=९६० द्वितीय वर्गणा। १२७०० इस प्रथम निषेक में अंक संदृष्टि से ७ गुणहानियाँ होती हैं।

प्रथम गुणहानि - १०२४, ९६०, ८९६, ८३२, ७६८, ७०४, ६४०, ५७६

द्वितीय गुणहानि - ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८

इस प्रकार अर्द्ध-अर्द्ध क्रम से तृतीयादि गुणहानियों का प्रमाण जानना चाहिए।

चरम गुणहानि की प्रथम वर्गणा $= \dfrac{\text{प्र. गुणहानि प्र. वर्गणा}}{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि ह्न२}} = \dfrac{\text{१०२४}}{\text{१२८ह्न२}} = \text{१६}$

नाना गुणहानि का जितना प्रमाण आता है उतनी बार २ का अंक रखकर परस्पर गुणाकार करने पर अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण आता है। यहाँ नानागुणहानि ७ हैं। इसलिए २x२x२x२x२x२x२= १२८ अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण। १६ह्न१६=१ अंतिम गुणहानि का चय।
चय × (गुणहानि आयाम+१) = अन्तिम वर्गणा = १×(८+१)=९
अंतिम गुणहानि– १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९

प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा से द्वितीयादि वर्गणा के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेद एक–एक अधिक होते हैं। जिस वर्गणा तक एक–एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक होते हैं वहाँ तक के वर्गणाओं के समूह को एक स्पर्धक कहते हैं। प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा से दूसरे, तीसरे, चौथे आदि स्पर्धकों की प्रथम वर्गणा के वर्गों में क्रम से दुगुने, तिगुने, चौगुने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। द्वितीयादि वर्गणाओं के परमाणु में एक–एक अविभागप्रतिच्छेद बढ़ता जाता है। (इसका चित्र प्रस्तावना पृ. १४ पर देखे) विवक्षित स्पर्धक की वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण निकालने के लिए प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों में विवक्षित स्पर्धक की संख्या से गुणा करें। उसके बीच की वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण निकालना हो तो जितनेवीं वर्गणा हो उसमें से एक कम करके उतना प्रमाण प्रथम वर्गणा में अधिक करें। जिसप्रकार प्रथम स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण ९ माना।
पाँचवें स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण = ९×५=४५
पाँचवें स्पर्धक की चौथी वर्गणा का प्रमाण = (९×५)+ (४–१) = ४५+३=४८

इस प्रकार स्थिति के प्रथम निषेक में अनुभाग का विभाग कहा। इसीप्रकार स्थिति के दूसरे निषेक से अंतिम गुणहानि के अंतिम निषेक तक प्रत्येक निषेक में अनुभाग का विभाग जानना। इसका अर्थ यह है कि एक समय में उदय आने योग्य निषेक में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट पर्यंत सभी प्रकार की शक्ति होती है।

अथापूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जरानिरूपणार्थमिदमाह –

उदयावलिस्स बाहिं गलिदवसेसा अपुव्वअणियट्टी।
सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी होदि तट्ठाणे।।२२५।।

उदयावलेर्बाह्यं गलितावशेषाऽपूर्वानिवृत्तेः ।
सूक्ष्माद्धातोऽधिका गुणश्रेणी भवति तत्स्थाने ।।२२५।।

उदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य अपूर्वानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानकालेभ्य उपशान्तकषायकालसंख्यातैकभागमात्रेणाभ्यधिकायामा गुणश्रेण्यपूर्वकरणप्रथमसमये गलितावशेष-प्रमाणा प्रारब्धा । सा च आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुदयावलिबाह्यद्रव्यमपकृष्य प्रागुक्तविधानेन निक्षेपस्वरूपा। नपुंसकवेदादिप्रकृतीनां गुणसंक्रमोऽप्यत्रैव प्रारब्धः । बन्धवत्प्रकृतीनां गुणसंक्रमो नास्ति । एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि स्थितिकाण्डकादिविधानं पूर्वोक्तक्रमेणैव ज्ञातव्यम् ।।२२५।।

अब अपूर्वकरण के प्रथम समय में गुणश्रेणि निर्जरा का निरूपण करने के लिए कहते हैं –

अन्वयार्थ– (तट्ठाणे) उस स्थान में अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय **में (उदयावलिस्स बाहिं)** उदयावली के बाहर **(अपुव्व अणियट्टी सुहुमद्धादो अहिया)** अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण व सूक्ष्मसांपराय इन तीनों कालों से अधिक **(गलिदवसेसा)** गलितावशेष **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि **(होदि)** होती है।।२२५।।

टीकार्थ– उदयावली के बाहर प्रथम समय से अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानों के काल से उपशान्तकषाय के काल के संख्यातवें भागमात्र से अधिक आयामवाली गलितावशेष प्रमाण गुणश्रेणि अपूर्वकरणकाल के प्रथम समय में प्रारम्भ हुई। आयुकर्म छोड़कर सात कर्मों के उदयावली के बाह्य द्रव्य का अपकर्षण करके पूर्व में कहे गये विधान से निक्षेपण होता है। नपुंसकवेदादि प्रकृतियों का गुणसंक्रमण भी यहीं शुरू हुआ। बन्धयुक्त प्रकृतियों का गुणसंक्रमण नहीं होता। इसप्रकार द्वितीयादि समयों में भी स्थितिकांडकादि विधान पूर्वोक्त क्रम से ही जानना चाहिए। ।।२२५।।

विशेषार्थ– उपशमश्रेणि पर आरोहण करने वाला जीव अपूर्वकरण के प्रथम समय में उपरिम शेष स्थितियों के प्रदेश पुंज का अपकर्षण कर उदयावली के बाहर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण गुणश्रेणि रचना करता है, जो अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय के काल से कुछ अधिक है। जयधवला में इस आयाम को अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल से कुछ अधिक बतलाया है सो जानकर समझ लेना चाहिए। यहाँ पर नहीं बंधने वाली अप्रशस्त नपुंसकवेद आदि प्रकृतियों के गुणसंक्रम को प्रारम्भ करता है। इसी प्रकार अपूर्वकरण के दूसरे समय में भी जानना चाहिए। तब प्रथम समय में प्रारम्भ हुआ वही स्थितिकाण्डक, वही स्थितिबन्ध और वही अनुभागकाण्डक भी होता है। इतना विशेष है कि यहाँ गुणश्रेणि गलितावशेष होती है। इस प्रकार हजारों अनुभाग काण्डकघातों के समाप्त होने पर यहीं पर उनके साथ प्रथम स्थितिकाण्डक, स्थितिबन्धकाल और अन्य अनुभागकाण्डक समाप्त होता है।

अथापूर्वकरणे बन्धोदयव्युच्छित्तिविभागप्रदर्शनार्थमिदमाह –

पढमे छट्ठे चरिमे बंधे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा।
छण्णोकसायउदयो अपुव्वचरिमम्हि वोच्छिण्णो[1]।।२२६।।

प्रथमे षट्के चरमे बंधे द्विकं त्रिंशच्चतस्रो व्युच्छिन्नाः।
षण्णोकषायोदयोऽपूर्वचरमे हि व्युच्छिन्नः।।२२६।।

अपूर्वकरणकालस्य सप्तभागेषु प्रथमभागे द्वयोर्निद्राप्रचलयोर्बन्धो व्युच्छिन्नः । षष्ठे भागे तीर्थकरत्वादीनां त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धो व्युच्छिन्नः । सप्तमभागचरमसमये हास्यादिचतुःप्रकृतीनां बन्धो व्युच्छिन्नः । हास्यादिषण्णोकषायाणामुदयः अपूर्वकरणचरमसमये व्युच्छिन्नः ।।२२६।।

अब अपूर्वकरण में बन्ध व उदय व्युच्छित्ति का विभाग दिखाने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(पढमे दुग)** अपूर्वकरण के प्रथम भाग में दो प्रकृतियाँ, **(छट्ठे तीस)** छठे भाग में तीस प्रकृतियाँ, **(चरिमे चदुर)** अंतिम सातवें भाग में चार प्रकृतियाँ **(बंधे वोच्छिण्णा)** बंध से व्युच्छिन्न होती है। **(अपुव्वचरिमम्हि)** अपूर्वकरण के अंतिम समय में**(छण्णोकसायउदयो)** छह नोकषायों का उदय **(वोच्छिण्णो)** व्युच्छिन्न होता है।।।२२६।।

टीकार्थ– अपूर्वकरण के सातभागों में से प्रथम भाग में निद्रा व प्रचला इन दो प्रकृतियों का बंध नष्ट हुआ। छठे भाग में तीर्थंकरत्वादि तीस प्रकृतियों के बंध का अभाव हुआ। सातवें भाग के अंतिम समय में हास्यादि चार प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति हुई। अपूर्वकरण के अंतिम समय में हास्यादि छह नोकषायों की उदयव्युच्छित्ति हुई।।।२२६।।

विशेषार्थ– जब अपूर्वकरण में हजारों स्थितिकांडकघात होते हैं तब इस जीव की सर्वप्रथम निद्रा और प्रचला इन प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरण गुणस्थान में प्रविष्ट हुए संयमी जीव की जिस काल में निद्रा और प्रचला की बंधव्युच्छित्ति होती है वह काल सबसे अल्प है, जो अपूर्वकरणकाल के सातवें भाग प्रमाण है। उसके आगे अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत होने पर परभव सम्बन्धी गोत्र संज्ञा वाली प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है। यहाँ नामकर्म की जिन प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती हैं वे ये हैं –देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक–आहारक–तैजस–कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक–आहारक शरीर आंगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर इस प्रकार अधिक से अधिक इन तीस प्रकृतियों की और कम से

१) जयध. पु. १३ पृ. २२५–२२८ । २) जयध. पु. १२ पृ. २२७

कम आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकर के बिना २७ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है तथा अकेले तीर्थंकर के बिना २९ की अथवा आहारकद्विक के बिना २८ की बन्धव्युच्छित्ति होती है, क्योंकि इन तीन प्रकृतियों के बन्ध का नियम नहीं है।

शंका– नामकर्म की प्रकृतियों में यश:कीर्ति भी सम्मिलित है, इसलिए चूर्णिसूत्र में सामान्य से नामकर्म की प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति का उल्लेख होने से यश:कीर्ति की बन्धव्युच्छित्ति का भी प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान– नहीं, उसे छोड़कर शेष प्रकृतियों की यहाँ बन्धव्युच्छित्ति होती है, क्योंकि उसकी बन्धव्युच्छित्ति सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में होती है।

इन सब प्रकृतियों के बन्धव्युच्छित्ति के काल के अल्पबहुत्व का निर्देश करते हुए यहाँ बतलाया है कि अपूर्वकरण गुणस्थान में प्रविष्ट हुए जीव के जिस स्थान में निद्रा–प्रचला की बन्धव्युच्छित्ति होती है वहाँ तक का काल सबसे थोड़ा है जो अपूर्वकरण के पूरे काल के सातवे भाग प्रमाण है। उससे परभव सम्बन्धी नामकर्म की प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति का काल संख्यातगुणा है जो अपूर्वकरण के ६/७ भाग प्रमाण है। तदनन्तर अपूर्वकरण के अंतिम समय में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा की बन्धव्युच्छित्ति होती है। सर्वत्र स्थितिकाण्डकघात आदि का विधान सुगम है। यहीं पर छह नोकषायों की उदयव्युच्छित्ति होती है।

अथानिवृत्तिकरणे क्रियमाणव्यापारान्तरप्ररूपणार्थमिदमाह–

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णट्ठिदिखंडपहुदिमारभइ[1]।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा[2] ।।२२७।।

अनिवृत्तेश्च प्रथमेऽन्यस्थितिखण्डप्रभृतिमारभते ।
उपशमनं निधत्तिर्निकाचना तत्र व्युच्छिन्नाः ।।२२७।।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये अन्यान्येव स्थितिखण्डस्थितिबन्धापसरणानुभाग–खण्डान्यपूर्वकरणचरमसमयसम्भवविलक्षणानि प्रारभते चारित्रमोहोपशमकः। तत्रैव सर्व–कर्मणामुपशमनिधत्तिनिकाचनकरणानि विनष्टानि। 'अपुव्वकरणेत्ति दसकरणा' इति व्युच्छित्तिनियमकथनादनिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्य सर्वकर्माण्युदये संक्रमोदययोरुत्कर्षणा–पकर्षणसंक्रमोदयेषु च निक्षेप्तुं शक्यानि जातानीत्यर्थः ।।२२७।।

अब अनिवृत्तिकरण में की जाने वाली दूसरी क्रियाओं का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र

१) पा. भे. अणं ठिदिखंडपहुदिमाढवइ । का. ह. प्र.   २) जयध. पु. १३ पृ. २२९–२३१।

कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(अणियट्टिस्स य पढमे)** अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में **(अण्णट्ठिदिखंडपहुदिं)** अन्य स्थितिकांडकों आदि का **(आरभइ)** प्रारम्भ करता है। **(तत्थ)** वहाँ **(उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा)** उपशामना, निधत्ति और निकाचना की **(वोच्छिण्णा)** व्युच्छित्ति हुई।।२२७।।

टीकार्थ– चारित्रमोह का उपशम करने वाला अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में, अपूर्वकरण के अंतिम समयमें होने वाले स्थितिखंडादिक से विलक्षण अन्य ही स्थितिकांडक, स्थितिबंधापसरण, और अनुभागकांडक प्रारंभ करता है। वहीं पर सर्व कर्मों की उपशामना, निधत्ति और निकाचना नष्ट हो गयी। अपूर्वकरण तक दश करण होते हैं इस व्युच्छित्ति के नियम कथन से अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय से लेकर सब कर्मों को उदय में, संक्रमण और उदय में, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण और उदय में देना शक्य होता है। ।।२२७।।

विशेषार्थ– इस गाथा की टीका में गोम्मटसार कर्मकाण्ड की **'संकमकरणूणा'** इत्यादि गाथा ४४१ का **'अपुव्वकरणेत्ति दसकरणा'** इस प्रकार अन्तिम पाद उद्धृत किया है। सो ठीक ही है कि अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अप्रशस्त उपशमकरण, निधत्तिकरण और निकाचनकरण की व्युच्छित्ति हो जाती है। जो कर्म अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृति संक्रमण के योग्य होकर भी उदीरणा के अयोग्य होता है (उदयस्थिति में अपकर्षित होने के अयोग्य होता है) उसकी अप्रशस्त उपशमकरण संज्ञा है। जो कर्म अपकर्षण और उत्कर्षण के योग्य होकर भी उदीरणा और परप्रकृति संक्रमणरूप न हो उन्हें निधत्तिकरण कहते हैं तथा जो कर्म इन चारों के अयोग्य होकर तदवस्थ रहते हैं इनको निकाचनकरण कहते हैं। ये तीन करण हैं। इनकी यहाँ व्युच्छित्ति हो जाने से जो कर्म इन तीनों करणरूप से थे उन कर्मों का अब अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय से उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण और परप्रकृति संक्रम होने लगता है। शेष कथन सुगम है। सारांश–

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में १) स्थितिखंड २) स्थितिबंधापसरण और ३) अनुभागकांडक नवीन आरम्भ करता है। ४) सभी कर्मों के उपशमकरण, निधत्तिकरण, निकाचन करण की व्युच्छित्ति होती है।

अथ तस्मिन्नेवानिवृत्तिकरणप्रथमसमये कर्मणां स्थितिसत्त्वबन्धप्रमाणनिर्देशार्थमिदमाह–

अंतोकोडाकोडी अंतोकोडी य सत्त बंधं च।
सत्तण्हं पयडीणं अणियट्टीकरणपढमम्हि[१] ।।२२८।।

---

१) जयध. पु. १३ पृ. २३१-१३२ ।

अन्त:कोटाकोटिरन्त:कोटिश्च सत्त्वं बन्धश्च ।
सप्तानां प्रकृतीनामनिवृत्तिकरणप्रथमे ।।२२८।।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये आयुर्वर्जितसप्तकर्मणां स्थितिसत्त्वमन्त:कोटीकोटिप्रमितं [सा अं को २ / ४] स्थितिबन्धश्चान्त:कोटिप्रमित: [सा अं को] ।अपूर्वकरणकालकृत-स्थितिखण्डस्थितिबन्धापसरणसंख्यातसहस्रमाहात्म्यात् ।।२२८।।

अब उस अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में कर्मों के स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध के प्रमाण का निर्देश करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(अणियट्टीकरणपढमम्हि)** अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में **(सत्तण्हं पयडीणं)** सात प्रकृतियों का **(सत्त)** सत्त्व **(अंतोकोडाकोडी)** अंत: कोटाकोटी सागर **(य)** और **(बंधं)** बन्ध **(अंतोकोडी)** अंत:कोटी सागर होता है।।२२८।।

टीकार्थ– अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में आयुकर्म को छोड़कर सात कर्मों का स्थितिसत्त्व अंत:कोटाकोटी प्रमाण [सा अं को २ / ४] और स्थितिबंध अंत:कोटी प्रमाण [सा अं को] होता है क्योंकि अपूर्वकरण काल में संख्यात हजार स्थितिकांडक व स्थितिबंधापसरण होते हैं।।२२८।।

अथ तस्मिन्नेवानिवृत्तिकरणकाले स्थितिबन्धापसरणक्रमेण स्थितिबन्धक्रमं प्रदर्शयितुं गाथात्रयमाह–

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा ।
तत्थ असण्णिस्स ठिदीसरिस ट्ठिदिबंधणं होदि[1] ।।२२९।।

स्थितिबन्धसहस्रगते संख्येया बादरे गता भागा:।
तत्रासञ्ज्ञिन: स्थितिसदृशं स्थितिबन्धनं भवति ।।२२९।।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तमन्तर्मुहूर्तं प्रति पल्यसंख्यातभागमात्र-स्थितिबन्धापसरणक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु तत्करणकालस्य संख्यातबहुभागा यदा गच्छन्ति तदा असंज्ञिस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति। सहस्रसागरोपमप्रतिभागेन नामगोत्रयोर्द्विसप्तमभागप्रमित: ज्ञानदर्शनावरणान्तरायसातवेदनीयानां स्थितिबन्ध: सागरोपम-सहस्रत्रिसप्तमभागप्रमित: चारित्रमोहस्य स्थितिबन्ध: सागरोपमसहस्रचतु:सप्तमभागप्रमितो भवतीत्यर्थ:। एवं वैंशतिकत्रैंशत्कचत्वारिंशत्ककर्मणां प्रतिभागक्रम उत्तरत्रापि ज्ञातव्य: ।।२२९।।

---

१) जयध. पु. १३ पृ. २३२ ।

अब उस अनिवृत्तिकरणकाल में स्थितिबंधापसरण के क्रम से स्थितिबंध का क्रम दिखाने के लिए तीन गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(ठिदिबंधसहस्सगदे)** हजारों स्थितिबंध होने पर **(बादरे)** अनिवृत्तिकरण बादर गुणस्थान का **(संखेज्जा भागा)** संख्यात बहुभाग काल **(गदा)** बीत गया **(तत्थ)** वहां **(असण्णिस्स ठिदीसरिस)** असंज्ञी के स्थितिबंध के समान **(ट्ठिदिबंधणं)** स्थितिबंध **(होदि)** होता है। ।।२२९।।

टीकार्थ– अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय से प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त में पल्य के संख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्धापसरण के क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर जब उस करणकाल का संख्यात बहुभाग जाता है तब असंज्ञी के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है। हजार सागरोपम के प्रतिभाग से नाम–गोत्र का दो सप्तमांश भागप्रमाण, ज्ञानावरण–दर्शनावरण–अन्तराय–साता वेदनीय का स्थितिबंध हजार सागरोपम का तीन सप्तमांश भागप्रमाण, चारित्रमोहनीय का स्थितिबंध हजार सागरोपम का चार सप्तमांश भागप्रमाण होता है। इसप्रकार वीसिय, तीसिय और चालीसिय कर्मों का प्रतिभाग क्रम आगे भी जानना चाहिए। ।।२२९।।

विशेषार्थ– १) वीसिय अर्थात् २० कोटाकोटी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले नाम और गोत्र कर्म २) तीसिय अर्थात् ३० कोटाकोटी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और वेदनीय कर्म ३) चालीसिय अर्थात् चालीस कोटाकोटी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाला चारित्र मोहनीय कर्म ।

ठिदिबंधपुधत्तगदे पत्तेयं चदुर तिय बियेइंदी ।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव[1] ।।२३०।।

स्थितिबन्धपृथक्त्वगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्व्येकेति ।
स्थितिबन्धसमो भवति हि स्थितिबन्धोऽनुक्रमेणैव ।।२३०।।

ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु चतुरिन्द्रियस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति । नामगोत्रादिकर्मणां सागरोपमशतस्य द्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागप्रमित स्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः। ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु त्रीन्द्रियस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति । प्रागुक्तवैंशतिकादीनां कर्मणां पञ्चाशत्सागरोपमद्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागप्रमितः इत्यर्थः । इतः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु द्वीन्द्रियस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति। पूर्वोक्तत्रिस्थानकर्मणां पञ्चविंशतिसागरोपमद्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागप्रमितः स्थितिबन्धो भवतीत्यभिप्रायः। ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु एकेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशः स्थितिबन्धो भवति । वीसियतीसियचालिसियसंकेतितानां कर्मणामेकसागरोपमद्विसप्तमत्रिसप्तम–

१) जयध. पु. १३ पृ. २३३ ।

चतु:सप्तमभागप्रमित: स्थितिबन्धो भवतीति निर्णय: । पृथक्त्वशब्दस्य बहुत्ववाचित्वेन प्रत्येकं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेष्विति व्याख्यायते ।।२३०।।

अन्वयार्थ– उसके पश्चात् **(पत्तेयं)** प्रत्येक स्थान में **(ठिदिबंधपुधत्तगदे)** पृथक्त्व (संख्यात हजार) स्थितिबंध जाने पर **(अणुक्कमेणेव)** अनुक्रम से ही **(चदुर)** चतुरिन्द्रिय **(तिय)** त्रीन्द्रिय **(बियेइंदि)** द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रियों के **(ठिदिबंधसमं)** स्थितिबंध के समान **(होदि हु)** (स्थितिबंध) होता है। ।।२३०।।

टीकार्थ– उसके बाद संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर चतुरिन्द्रियों के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है। अर्थात् नाम–गोत्रादि कर्मों का क्रम से (बीसिय, तीसिय और चालीसिय का) सौ सागरोपम का दो सप्तमांश भाग, तीन सप्तमांश भाग, चार सप्तमांश भाग, स्थितिबंध होता है। उसके बाद संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर त्रीन्द्रियों के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है अर्थात् पूर्व में कहे गये वीसियादि कर्मों का स्थितिबंध पचास सागरोपम का दो सप्तमांश भाग, तीन सप्तमांश भाग, चार सप्तमांश भाग होता है। इसके आगे संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर द्वीन्द्रियों के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता हैं। पूर्व में कहे गये तीन स्थानवाले कर्मों का पच्चीस सागरोपम का दो सप्तमांश, तीन सप्तमांश, चार सप्तमांश भाग प्रमाण स्थितिबंध होता है। उसके आगे संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर एकेन्द्रियों के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है अर्थात् वीसिय, तीसिय, चालीसिय के द्वारा संकेत किए कर्मों का स्थितिबंध एक सागरोपम के दो सप्तमांश भाग, तीन सप्तमांश भाग, चार सप्तमांश भाग प्रमाण होता है यह निर्णय है। पृथक्त्वशब्द बहुत्ववाची होने से प्रत्येक संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर ऐसा व्याख्यान करते हैं। ।।२३०।।

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे दु ठिदिबंधे[1] ।
पल्लेक्कदिवड्ढदुगे ठिदिबंधो वीसियतियाणं ।।२३१।।

एकेन्द्रियस्थितित: संख्यसहस्रे गते तु स्थितिबन्धे ।
पल्यैकद्व्यर्धद्विके स्थितिबन्धो विंशतित्रिकाणाम् ।।२३१।।

तत: परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु नामगोत्रयो: पल्यमात्र:, त्रिघातिवेदनीयानां सार्धपल्यमात्र: चारित्रमोहस्य पल्यद्वयप्रमित: स्थितिबन्धो भवति । असंज्ञ्यादिषु सर्वत्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबन्धस्य मिथ्यात्वस्य यदि सहस्रसागरोपमस्थितिं बध्नाति जीवस्तदा विंशतिसागरोपमकोटीकोटिस्थितिबन्धयोर्नामगोत्रयो: कियतीं स्थितिं बध्नातीति त्रैराशिकेन फलगुणितेच्छाप्रमाणेन भक्त्वा अपवर्तितसहस्रसागरोपमद्विसप्तमभागप्रमितो नामगोत्रयो:

१) जयध. पु. १३ पृ. २३४ ।

स्थितिबन्धो लभ्यते। एवं त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिबन्धानां त्रिघातिसातवेदनीयानां सहस्रसागरोपमत्रिसप्तमभागप्रमितश्चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिबन्धस्य चारित्रमोहस्य सहस्रसागरोपमचतु:सप्तमभागप्रमितश्च स्थितिबन्ध: असंज्ञिजीवे आनेतव्य: । अत: उत्तरत्रापि चतुरिन्द्रियादिषु अनेनैव त्रैराशिकविधानेन तत्र तत्र स्थितिबन्धप्रमाणमानेतव्यम् ।।२३१ ।।

अन्वयार्थ– **(एइंदियट्ठिदीदो)** एकेन्द्रिय समान स्थितिबंध के आगे **(संखसहस्से)** संख्यात हजार **(ठिदिबंधे)** स्थितिबंध **(गदे दु)** व्यतीत होने पर **(वीसियतियाणं)** वीसियत्रिक का अर्थात् वीसिय, तीसिय और चालीसिय का क्रम से **(पल्लोकदिवड्ढदुगे)** एक पल्य, डेढ़ पल्य और दो पल्य **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध होता है। ।।२३१।।

टीकार्थ– उसके बाद संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर नाम–गोत्र का पल्यमात्र, तीन घाति और वेदनीय का डेढ़ पल्यमात्र, चारित्रमोह का दो पल्य प्रमाण स्थितिबंध होता है। असंज्ञी आदि में सर्वत्र सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिबंधयुक्त मिथ्यात्व की जो जीव हजार सागरोपम स्थिति बांधता है तो बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिबन्धयुक्त नाम–गोत्र की कितनी स्थिति बांधता है, इस प्रकार त्रैराशिक द्वारा फलराशि में इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाण राशि से भाग देकर अपवर्तन करने पर हजार सागरोपम का दो सप्तमांश भागप्रमाण नाम–गोत्र का स्थितिबंध प्राप्त होता है। इसके समान तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थितिबन्ध युक्त तीन घाति और साता वेदनीय का हजार सागरोपम का तीन सप्तमांश भागप्रमाण व चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिबंधयुक्त चारित्रमोह का हजार सागरोपम का चार सप्तमांश भागप्रमाण स्थितिबंध असंज्ञी जीव में लाना चाहिए। इसके आगे भी चतुरिन्द्रिय आदिकों में इसी त्रैराशिक विधान से वहाँ–वहाँ स्थितिबन्ध का प्रमाण लाना चाहिए। ।।२३१।।

गाथा २२९,२३० और २३१ का सार

कर्म	एकेंद्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रींद्रिय	चतुरिंद्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय
चालीसिय	सा x ४ ७	सा २५ x ४ ७	सा ५० x ४ ७	सा १०० x ४ ७	सा १००० x ४ ७
तीसिय	सा x ३ ७	सा २५ x ३ ७	सा ५० x ३ ७	सा १०० x ३ ७	सा १००० x ३ ७
वीसिय	सा x २ ७	सा २५ x २ ७	सा ५० x २ ७	सा १०० x २ ७	सा १००० x २ ७

अथ पल्यमात्रपल्यसंख्यातभागमात्रसंख्यातवर्षसहस्रमात्रस्थितिबन्धानां त्रयाणामुत्पत्तेः प्राक्स्थितिबन्धापसरणप्रमाणनिर्देशार्थमिदमाह–

पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं असंखगुणहीणं।
बंधोसरणं पल्लं पल्लासंखं ति संखवस्सं ति।।२३२।।

पल्यस्य संख्यभागं संख्यगुणोनमसंख्यगुणहीनम् ।
बन्धापसरणं पल्यं पल्यासंख्यमिति संख्यवर्षमिति।।२३२।।

अन्तःकोटीकोटिमात्रस्थितिबन्धात्प्रभृतिपल्योत्पत्तिपर्यन्तं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं स्थितिबन्धापसरणं भवति, पल्यमात्रस्थितिबन्धात्प्रभृति पल्यसंख्यातबहुभागमात्रं स्थितिबन्धापसरणं भवति।पल्यस्थितेरनन्तरं दूरापकृष्टिस्थितिपर्यन्तं संख्यातगुणहीनां पल्यसंख्यातैकभागमात्रीं स्थितिं बध्नातीत्यर्थः । दूरापकृष्टिस्थितेः प्रभृति संख्यातवर्षसहस्रमात्रस्थितिबन्धोत्पत्तिपर्यन्तं पल्यासंख्यातबहुभागमात्रं स्थितिबन्धापसरणं भवति । दूरापकृष्टेरनन्तरं संख्यातसहस्रमात्रस्थिति–बन्धपर्यन्तं असंख्यातगुणहीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रीं स्थितिं बध्नातीत्यर्थः। संखगुणूणम–संखगुणहीनमित्यत्र गुणशब्दस्य बहुभागवाचित्वात् ।।२३२।।

अब पल्यमात्र, पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र, संख्यात हजार वर्षमात्र इन तीन स्थितिबन्ध की उत्पत्ति के पूर्व स्थितिबंधापसरण के प्रमाण का निर्देश करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(पल्लं)** पल्यस्थिति पर्यन्त **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य का संख्यातवाँ भाग **(बंधोसरणं)** बंधापसरण होता है। **(पल्लासंखं ति)** पल्य का असंख्यातवाँ भाग स्थितिबंध होने तक **(संखगुणूणं)** संख्यातगुणा हीन अर्थात् पल्य का संख्यात बहुभागप्रमाण बंधापसरण होता है। **(संखवस्सं ति)** संख्यातवर्ष स्थितिबंध होने तक **(असंखगुणहीणं)** असंख्यातगुणा हीन बंधापसरण होता है। ।।२३२।।

टीकार्थ– अन्तःकोटाकोटीमात्र स्थितिबंध से पल्य की उत्पत्ति होने तक पल्य का संख्यातवाँ एक भागमात्र स्थितिबंधापसरण होता है। पल्यमात्र स्थितिबंध होने से पल्य का संख्यात बहुभागमात्र स्थितिबंधापसरण होता है। पल्य स्थिति के बाद दूरापकृष्टि स्थिति पर्यन्त संख्यात गुणाहीन पल्य का संख्यातवाँ एक भागमात्र स्थिति बांधता है। दूरापकृष्टि स्थितिबंध से संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध होने तक पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र स्थितिबंधापसरण होता है। दूरापकृष्टि के बाद संख्यात हजार स्थितिबंध होने तक असंख्यातगुणा हीन पल्य का असंख्यातवाँ भाग मात्र स्थिति बांधता है। **'संखगुणूणं' 'असंखगुणहीणं'** में गुणशब्द का अर्थ बहुभाग ऐसा है। (गुणशब्द बहुभाग का वाचक है)।।२३२।।

विशेषार्थ– इस गाथा में मुख्यता से कहाँ कितना स्थितिबंधापसरण होता है इसका विचार किया है। उपशमश्रेणि में अपूर्वकरण के प्रथम समय से स्थितिबंधापसरण का प्रमाण पल्य के संख्यातवें भागमात्र है। जब तक स्थिति घटकर पल्यप्रमाण नहीं प्राप्त होती तब तक यह क्रम चालू रहता है। उसके बाद दूरापकृष्टिप्रमाण स्थिति प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर शेष रही स्थिति का संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिबंधापसरण होता है। उसके बाद संख्यात वर्षप्रमाण स्थिति के प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर शेष रही स्थिति का असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिबंधापसरण होता है। यह उक्त गाथा का तात्पर्य है।

स्थितिबंधापसरण का प्रमाण	कहाँ से लेकर कहाँ तक स्थिति का प्रमाण
१. पल्य का संख्यातवाँ भाग	अत:कोटाकोटी स्थितिबंध से पल्यमात्र-स्थितिबंध तक
२. शेष स्थिति का संख्यात बहुभाग	पल्यमात्र स्थितिबंध से दूरापकृष्टि स्थितिबंध तक
३. शेष स्थिति का असंख्यात बहुभाग	दूरापकृष्टि स्थितिबंध से संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध तक

अथ स्थितिबन्धक्रमकरणकाले स्थितिबन्धानां प्रमाणप्रदर्शनार्थमिदमाह –

एवं पल्ले जादे बीसीया तीसिया य मोहो य ।
पल्लासंखं च कमे बंधेण य वीसियतियाओ[1] ।।२३३।।

एवं पल्ये जाते बीसिया तीसिया च मोहश्च ।
पल्यासंख्यं च क्रमे बन्धेन च वीसियत्रिका:।।२३३।।

एवमुक्तप्रकारेण वीसियतीसियमोहनीयानां पल्यजातस्थितिबन्धात्परं क्रमेण संख्यातसहस्र–स्थितिबन्धापसरणै: क्रमकरणकालावसाने पल्यासंख्यातैकभागमात्र: स्थितिबन्धो भवति।

तद्यथा– वीसियतीसियमोहानां पल्यद्व्यर्धपल्यद्वयपल्यमात्रस्थितिबन्धेभ्य: परं संख्यातसहस्रेषु नामगोत्रयो: पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु तीसियमोहयो: पल्यसंख्यातैकभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियादीनां यथासंख्यं पल्यसंख्यातैकभागमात्रपल्यमात्रत्रिभागाधिकपल्यमात्रा: स्थितिबन्धा एकस्मिन् काले जायन्ते । तत: परं संख्यातसहस्रेषु वीसियतीसिययो: पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु मोहस्य पल्यसंख्यातैकभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियादीनां यथासंख्यं

१) जयध. पु. १३, पृ. २४०.

पल्यसंख्यातैकभागमात्रपल्यमात्रस्थितिबन्धा जायन्ते । वीसियस्थितिबन्धात् तीसियस्थितिबन्धः संख्येयगुण इति विशेषो ज्ञेयः । ततः परं संख्यातसहस्रेषु त्रयाणामपि पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु नामगोत्रयोर्दूरापकृष्टिसंज्ञश्चरमः पल्यसंख्यातैकभागमात्रः, तीसियमोहयोः यथायोग्यपल्यसंख्यातैकभागमात्रौ च स्थितिबन्धा जायन्ते । तीसियस्थितिबन्धात् चालीसियस्थितिबन्धः संख्यातगुणः इत्ययं विशेषो द्रष्टव्यः । ततः परं संख्यातसहस्रेषु वीसियस्य पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु तीसियमोहयोः पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु नामगोत्रयोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः तीसियस्य दूरापकृष्टिसंज्ञश्चरमः पल्यसंख्यातैकभागमात्रः मोहस्य च यथायोग्यपल्यसंख्यातैकभागमात्रः स्थितिबन्धा जायन्ते । तीसियबन्धात् चालीसियबन्धः संख्यातगुण इत्ययं विशेषो ज्ञातव्यः । ततः परं संख्यातसहस्रेषु वीसियतीसिययोः पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु मोहस्य पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियतीसिययोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रौ मोहस्य दूरापकृष्टिसंज्ञश्चरमः पल्यसंख्यातैकभागमात्रश्च स्थितिबन्धा युगपज्जायन्ते । वीसियबन्धात्तीसियबन्धोऽसंख्यातगुण इति विशेषः । ततः परं संख्यातसहस्रेषु त्रयाणामपि पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियादीनां त्रयाणामपि पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धाः सम्भवन्ति । वीसियबन्धात्तीसियबन्धोऽसंख्येयगुणः। ततः मोहस्थितिबन्धोऽसंख्यातगुण इत्ययं विशेषो ज्ञेयः ।।२३३।।

अब स्थितिबंध के क्रमकरणकाल में स्थितिबंध का प्रमाण दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– (एवं) इसप्रकार **(पल्ले जादे)** पल्यप्रमाण स्थितिबंध होने पर **(बीसिया तीसिया य मोहो य)** वीसिय, तीसिय व मोह ऐसा **(बंधेण कमे)** स्थितिबंध की अपेक्षा से क्रम है **(च)** और **(पल्लासंखं)** पल्य का असंख्यातवाँ भाग स्थितिबंध होने पर भी **(विसियतियाओ बंधेण कमे)** वीसियत्रिक का बंध की अपेक्षा से यह क्रम है। ।।२३३।।

टीकार्थ– इस प्रकार ऊपर कहे गये प्रकार से वीसिय, तीसिय और मोहनीय का पल्यप्रमाण स्थितिबंध होने के बाद क्रम से संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणों के द्वारा क्रमकरण काल के अंत में पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध होता है। उसका खुलासा–

वीसिय, तीसीय व मोह के क्रम से एक पल्य, डेढ़ पल्य और दो पल्य मात्र स्थितिबंध होने के बाद नाम–गोत्र का पल्य का संख्यात बहुभागमात्र और तीसिय, मोह के पल्य का संख्यातवाँ भाग मात्र ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होने पर वीसियादिकों का क्रम से, पल्य का संख्यातवाँ एक भागमात्र, एक पल्य मात्र, त्रिभाग अधिक पल्यमात्र स्थितिबंध एक ही समय में होते हैं। उसके बाद वीसिय और तीसिय का पल्य का संख्यात बहुभागमात्र और

मोह का पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर वीसिय और तीसिय का यथायोग्य पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र और मोह का पल्यमात्र स्थितिबंध होता है। वीसिय के स्थितिबंध से तीसिय का स्थितिबंध संख्यातगुणा होता है। यह विशेष जानना चाहिए। उसके बाद तीनों का भी पल्य का संख्यात बहुभागप्रमाण संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर नाम–गोत्र का पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र अंतिम दूरापकृष्टि नाम का स्थितिबंध होता है। तीसिय व मोहनीय का यथायोग्य पल्य का संख्यातवाँ एकभाग मात्र स्थितिबंध होता है। तीसिय के स्थितिबन्ध से चालीसिय का स्थितिबंध संख्यातगुणा है। यह विशेष जानना चाहिए। उसके बाद वीसिय के पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र और तीसिय व मोहनीय के पल्य का संख्यात बहुभागमात्र संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने के बाद नाम–गोत्र का पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध होता है और तीसिय का दूरापकृष्टि नाम का पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र और मोहनीय का यथायोग्य पल्य का संख्यातवां भागमात्र स्थितिबंध होता है। तीसियबंध से चालीसिय का स्थितिबंध संख्यातगुणा होता है। यह विशेष जानना चाहिए। उसके बाद वीसिय और तीसिय के पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र और मोह का पल्य का संख्यात बहुभागमात्र संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर वीसिय और तीसिय का पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र और मोह का दूरापकृष्टि नाम का अंतिम पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध एक ही समय में होता है। वीसियबंध से तीसियबंध असंख्यातगुणा होता है यह विशेष है। उसके बाद तीनों के भी पल्य का असंख्यात बहुभाग प्रमाण संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर वीसियादिक तीनों का भी पल्य का असंख्यातवाँ भाग मात्र स्थितिबंध संभव होता है। वीसियबन्ध से तीसिय का बंध असंख्यातगुणा होता है। उससे मोह का स्थितिबंध असंख्यातगुणा है। यह विशेष जानना चाहिए। ।।२३३।।

विशेषार्थ– पल्यप्रमाण स्थितिबंध होने तक वीसिय से डेढ़गुणा तीसिय का और वीसिय से दो गुणा चालीसिय का बंध होता है। इसलिए जब वीसिय का एक पल्यप्रमाण स्थितिबंध होता है तब तीसिय का डेढ़ पल्य और चालीसिय का दो पल्य स्थितिबंध होता है। पल्यप्रमाण स्थितिबंध होने पर आगे संख्यात बहुभाग स्थितिबंध कम होता जाता है और संख्यातवाँ भाग स्थितिबंध होता है। दूरापकृष्टि स्थितिबंध प्राप्त होने तक ऐसा जानना चाहिए। उसके बाद असंख्यात बहुभाग का अपसरण होकर असंख्यातवाँ भाग प्रमाण स्थितिबंध होता है। कितना स्थितिबंध होने के बाद कितना स्थितिबंध कम होता है इसका चित्र अगले पृष्ठ पर दिया है। उसमें पहली पंक्ति में स्थितिबंध का प्रमाण व दूसरी पंक्ति में स्थितिबंधापसरण का प्रमाण दिया है। चित्र नीचे से ऊपर देखें।

स्थितिबंधापसरणका क्रम

वीसिय	तीसिय	चालीसिय
पल्य का असंख्यातवाँ भाग पल्य का असंख्यात बहुभाग पल्य का असंख्यातवाँ भाग पल्य का असंख्यात बहुभाग पल्य का असंख्यातवाँ भाग पल्य का असंख्यात बहुभाग **दूरापकृष्टी** पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग **पल्य**	पल्य का असंख्यातवाँ भाग पल्य का असंख्यात बहुभाग पल्य का असंख्यातवाँ भाग पल्य का असंख्यात बहुभाग **दूरापकृष्टी** पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग **पल्य** पल्य का संख्यातवाँ भाग डेढ़ पल्य	पल्य का असंख्यातवाँ भाग पल्य का असंख्यात बहुभाग **दूरापकृष्टी** पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग पल्य का संख्यातवाँ भाग पल्य का संख्यात बहुभाग **पल्य** पल्य का संख्यातवाँ भाग त्रिभाग अधिक पल्य पल्य का संख्यातवाँ भाग दो पल्य
स्थितिबंध का प्रमाण / **स्थितिबंधापसरण प्रमाण**	**स्थितिबंध का प्रमाण** / **स्थितिबंधापसरण प्रमाण**	**स्थितिबंध का प्रमाण** / **स्थितिबंधापसरण प्रमाण**

अथात: परं वीसियादीनां क्रमव्यत्यासप्रदर्शनार्थमिदमाह–

मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि।।२३४।।

मोहगपल्यासंख्यस्थितिबन्धसहस्रकेष्वतीतेषु ।
मोहस्तीसियमधस्तनोऽसंख्यगुणहीनकं भवति ।।२३४।।

वीसियादीनां त्रयाणामपि पल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिबन्धात्परं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियमोहतीसियानां स्वस्वप्राक्तनानन्तरस्थितिबन्धेभ्य असंख्येयगुणहीना: पल्यासंख्यातैकभागमात्रा: स्थितिबन्धा जायन्ते । तत्र सर्वत: स्तोकं वीसियस्थितिबन्ध:। ततोऽसंख्येयगुणो मोहस्थितिबन्धस्तस्मादसंख्येयगुणस्तीसियस्थितिबन्ध: इदानींतनविशुद्धिविशेषकृतस्थितिबन्धापसरणमाहात्म्यात् पूर्वक्रमं परित्यज्य तीसियस्थितिबन्धस्याधो मोहस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो जात इति क्रमव्यत्ययोऽत्र ज्ञातव्य:।

अब यहाँ से आगे वीसियादिकों की क्रमविपरीतता दिखलाने के लिए आगे सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– (मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु) मोह का पल्य का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण ऐसे हजारों स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(मोहो तीसिय हेट्ठा)** मोहनीय तीसिय के नीचे **(असंखगुणहीणयं)** असंख्यातगुणा हीन **(होदि)** होता है । ।।२३४।।

टीकार्थ– वीसियादिक तीनों के भी पल्य का असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध होने के बाद आगे पल्य के असंख्यात बहुभागमात्र ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर वीसिय, मोहनीय व तीसिय का अपने–अपने अनन्तर पूर्व स्थितिबंध से असंख्यात गुणाहीन पल्य का असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबंध होता है। उसमें से सबसे कम वीसिय का स्थितिबंध होता है। उससे असंख्यातगुणा तीसिय का स्थितिबंध होता है। अभी के विशुद्धि विशेष से हुए स्थितिबंधापसरण के माहात्म्य से पूर्व का क्रम छोड़कर तीसिय स्थितिबंध के नीचे मोह का स्थितिबंध असंख्यातगुणा हीन हुआ। यह विपरीत क्रम यहाँ जानना चाहिए। ।।२३४।।

विशेषार्थ– पूर्व में वीसिय, तीसिय, चालीसिय ऐसा बंध का क्रम होता है। अब वीसिय, चालीसिय, तीसिय ऐसा क्रम हुआ।

अथ क्रमान्तरज्ञापनार्थमिदमाह –

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठा वि।
एक्कसराहे मोहो असंखगुणहीणयं होदि ।।२३५।।

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वीसियानामधस्तनोऽपि ।
एकसमये मोहोऽसंख्यगुणहीनको भवति[1] ।।२३५।।

ततः परं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहवीसियतीसियानां स्थितिबन्धाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रा जायन्ते। तत्र सर्वत स्तोकं मोहस्थितिबन्धः । ततोऽसंख्येयगुणो वीसियस्थितिबन्धः । ततोऽसंख्येयगुणस्तीसियस्थितिबन्धः। अद्यतनविशुद्धिविशेषजनितस्थितिबन्धापसरणमाहात्म्याद्वीसियस्थितिबन्धस्याधोऽसंख्येयगुणहीनो मोहस्थितिबन्धो जायत इति पूर्वक्रमादयमन्य एव क्रमो जात इति ज्ञेयम् ।।२३५।।

अब दूसरा क्रम कहने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– (तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे) उतने मात्र (संख्यात हजार) बंध व्यतीत होने पर **(वीसियाण हेट्ठा वि)** वीसिय के भी नीचे **(मोहो)** मोह का स्थितिबन्ध **(एक्कसराहो)**[2] एकसाथ **(असंखगुणहीणयं)** असंख्यातगुणा हीन **(होदि)** होता है। ।।२३५।।

टीकार्थ– उसके पश्चात् पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होने पर मोह, वीसिय और तीसिय का पल्य का असंख्यातवां एकभाग प्रमाण स्थितिबंध होता है। उसमें से सबसे कम मोह का स्थितिबंध होता है। उससे असंख्यातगुणा वीसिय का स्थितिबन्ध होता है। उससे असंख्यातगुणा तीसिय का स्थितिबन्ध होता है। अभी की विशुद्धि विशेष से उत्पन्न हुए स्थितिबंधापसरण के माहात्म्य से वीसिय स्थितिबंध के नीचे असंख्यातगुणा हीन मोह का स्थितिबंध होता है। इस प्रकार पूर्वक्रम की अपेक्षा यह अलग क्रम हुआ ऐसा जानना चाहिए। ।।२३५।।

विशेषार्थ– मोहनीय, वीसिय, तीसिय ऐसा बंध का क्रम हुआ।

पुनरपि क्रमान्तरज्ञापनार्थमिदमाह–

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति[3] ।।२३६।।

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वेदनीयाधस्तनात् ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवन्ति ।।२३६।।

ततः संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहवीसियतीसियवेदनीयानां पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धा जायन्ते । तत्र सर्वतः स्तोकं मोहस्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणो वीसियस्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणो घातित्रयस्थितिबन्धः।

---

१)जयध.पु.१३.पृ.२४४। २)एकसदृश एकशराघात इत्यर्थः। लब्धिसार रतनचंद मुख्तार ३)जयध. पु. १३ . पृ. २४५।

ततोऽसंख्येयगुणो वेदनीयस्थितिबन्धः । अत्रापि विशुद्धिमाहात्म्यात्सातवेदनीयस्थितिबन्धस्याधोऽसंख्येयगुणहीनो घातित्रयस्थितिबन्धो ज्ञातव्य इति क्रमान्तरं ज्ञेयम् ।।२३६।।

पुनः दूसरा क्रम दिखलाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे)** उतने मात्र (संख्यात हजार) स्थितिबन्ध व्यतीत होने पर **(वेयणीयहेट्ठादु)** वेदनीय के नीचे **(तीसियघादितियाओ)** तीसिय तीन घातियों के **(असंखगुणहीणया)** असंख्यातगुणे हीन स्थितिबन्ध **(होंति)** होते हैं ।।२३६।।

टीकार्थ– उसके बाद पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होने पर मोहनीय, वीसिय, तीसिय व वेदनीय के पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिबंध होते हैं। उसमें सबसे कम मोह का स्थितिबन्ध होता है। उससे असंख्यातगुणित तीन घाति का स्थितिबंध होता है, उससे असंख्यातगुणित वेदनीय का स्थितिबंध होता है। यहाँ पर भी विशुद्धि के माहात्म्य से साता वेदनीय के स्थितिबंध के नीचे असंख्यातगुणा हीन तीन घाति का स्थितिबंध जानना चाहिए। इसप्रकार दूसरा क्रम जानना चाहिए। ।।२३६।।

विशेषार्थ– मोहनीय, वीसिय, तीसिय–तीन घाति, वेदनीय ऐसा स्थितिबंध का क्रम हुआ।

पुनरपि क्रमभेदप्रदर्शनार्थमिदमाह–

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ।।२३७।।

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वीसियानामधस्तात् ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवन्ति ।।२३७।।

ततः परं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धा पल्यासंख्यातैकभागमात्रा जायन्ते । तत्र सर्वतः स्तोकं मोहस्थितिबन्धः । ततोऽसंख्येयगुणस्तीसियस्थितिबन्धः। ततः असंख्येयगुणो वीसियस्थितिबन्धः। ततः स्वार्धेनाधिको वेदनीयस्थितिबन्धः। वीसियस्थितीनामीदृशे स्थितिबन्धे [प / a ५] तीसियस्थितीनां कीदृश इति त्रैराशिकसिद्धोऽयं [प ३ / a ५ २] वेदनीयस्थितिबन्धः,अत्रापि विशुद्धिविशेषनिबन्धनस्थितिबन्धापसरणवशाद्वेदनीयस्थितिबन्धस्याधः संख्यातभागहीनो वीसियस्थितिबन्धो जातः। तस्याधोऽसंख्येयगुणहीनो घातित्रयस्थितिबन्धो जातस्तस्याप्यधोऽसंख्येयगुणहीनो मोहस्थितिबन्धो जात इतीदृशः क्रमभेदो ज्ञातव्यः।।२३७।।

पुनः क्रमभेद दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– (तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे) उतने मात्र अर्थात् संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत होने पर **(वीसियाण हेट्ठादु)** वीसिय के नीचे **(तीसियघादितियाओ)** तीसिय–तीन घाति कर्मों के स्थितिबंध **(असंखगुणहीणया)** असंख्यात गुणे हीन **(होंति)** होते हैं। ।।२३७।।

टीकार्थ– उसके बाद पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर मोहनीय, तीसिय, वीसिय और वेदनीय का स्थितिबंध पल्य के असंख्यातवें भागमात्र होता है। उसमें सबसे कम मोहनीय का स्थितिबंध होता है। उससे तीसिय का स्थितिबंध असंख्यातगुणा होता है। उससे वीसिय का स्थितिबंध असंख्यातगुणा होता है। उससे अर्द्ध से अधिक वेदनीय का स्थितिबंध होता है।

यदि वीसिय स्थितियुक्त कर्मों का इतना स्थितिबंध होता है [प / a ५] $\left(\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात पाँच बार}}\right)$

तो तीसिय स्थितिवालों का कितना स्थितिबंध होता है? ऐसे त्रैराशिक से सिद्ध वेदनीय का स्थितिबन्ध [प ३ / a ५ २] इतना अर्थात् नाम–गोत्र से डेढ़गुणा होता है।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
२०	प / a ५	३०	(प × ३०) / (a ५ × २०) = प ३ / a ५ २

यहां भी विशुद्धि विशेष के निमित्त से स्थितिबंधापसरण होने से वेदनीय के स्थितिबन्ध के नीचे संख्यात भाग हीन वीसिय का स्थितिबन्ध हुआ। उसके भी नीचे असंख्यातगुणा हीन तीन घातियों का स्थितिबंध हुआ। उसके भी नीचे असंख्यातगुणा हीन मोहनीय का स्थितिबंध हुआ। इस प्रकार यह क्रमभेद जानना चाहिए। ।।२३७।।

विशेषार्थ– अब मोह, तीसिय, वीसिय, वेदनीय ऐसा स्थितिबंध का क्रम हुआ।

अथ इदमेव क्रमकरणमुपसंहरन्निदमाह –

तक्काले वेयणियं णामागोदादु साहियं होदि ।
इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो जादो।।२३८।।

तत्काले वेदनीयं नामगोत्रतः साधिकं भवति ।
इति मोहतीसवीसियवेदनीयानां क्रमो जातः ।।२३८।।

तस्मिन् मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धक्रमकरणकाले वेदनीयस्थितिबन्धो नामगोत्रस्थितिबन्धात्साधिको भवति । अतः परमनेनैव क्रमेणान्तर्मुहूर्तपर्यन्तं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्वस्वयोग्य-पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धाः क्रमकरणावसाने जायन्ते । पूर्वसूचितसंख्यातवर्षसहस्र-मात्रस्थितिबन्धोऽत्रावसरे न सम्भवति । अन्तरकरणात्परमेव तस्य सम्भव इति क्रमकरणावसाने प्रतिपादितः । सर्वेषां कर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्यातसहस्रमात्रस्थितिकाण्डकघातसद्भावेऽप्यन्तः-कोटीकोटिप्रमाणमेवोपशमश्रेण्यां दीर्घस्थितिकाण्डकघातासम्भवात् । एवमनुभागकाण्डकघात-गुणश्रेणिनिर्जरादिविधानमप्यस्मिन्नवसरे प्रवर्तत एवेति ज्ञातव्यम् ।।२३८।।

अब इस क्रमकरण का उपसंहार करते हुए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(तक्काले)** उस समय में (क्रमकरणकाल में) **(णामागोदादु)** नाम–गोत्र से **(वेयणियं)** वेदनीय का स्थितिबंध **(साहियं)** साधिक **(होदि)** होता है। **(इदि)** इस प्रकार **(मोहतीसवीसियवेयणियाणं)** मोहनीय, तीसिय, वीसिय, वेदनीय का **(कमो)** क्रम **(जादो)** हुआ। ।।२३८।।

टीकार्थ– उस मोहनीय, तीसिय, वीसिय और वेदनीय के स्थितिबंध के क्रमकरणकाल में वेदनीय का स्थितिबंध नाम–गोत्र से अधिक होता है। इसके पश्चात् इस क्रम से अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पल्य का असंख्यात बहुभागप्रमाण संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर क्रमकरण के अंत में मोह, तीसिय, वीसिय और वेदनीय का अपने–अपने योग्य पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध होता है। पूर्व में सूचित किया संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध इस जगह नहीं होता। अन्तरकरण के बाद ही वह संभव है ऐसा कहा गया है। सभी कर्मों का स्थितिसत्त्व संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होकर भी अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण ही है क्योंकि उपशम श्रेणि में दीर्घ स्थितिकांडकघात नहीं होता है। इस प्रकार अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणि निर्जरा इत्यादि का विधान भी यहाँ प्रवृत्त है ही ऐसा जानना चाहिए।।२३८।।

क्रमकरण का निर्देश

क्र.	कर्मों के नाम			
४	मोहनीय	तीन घाति	वीसिय	वेदनीय
३	मोहनीय	वीसिय	तीन घाति	वेदनीय
२	मोहनीय	वीसिय	तीसिय चतुष्क	
१	वीसिय	मोहनीय	तीसिय चतुष्क	
पूर्वक्रम	वीसिय	तीसिय चतुष्क	मोहनीय	

कर्म के स्थितिबन्ध का क्रम कैसा बदलता गया है यह ऊपर सारणी में स्पष्ट किया है। सारणी नीचे से ऊपर देखना है।

अथ क्रमकरणावसाने सम्भवत्क्रियान्तरप्रदर्शनार्थमाह–

तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधो ।
तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयबद्धाणं[1]।।२३९।।

अतीते बन्धसहस्रे पल्यासंख्येयं तु स्थितिबन्धः।
तत्रासंख्येयानामुदीरणा समयबद्धानाम् ।।२३९।।

मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धक्रमप्रारम्भात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु अतीतेषु यदा क्रमकरणावसाने मोहादीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धा जाता तदाऽसंख्येयसमयप्रबद्धानामुदीरणा भवति। इतः पूर्वमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डितस्य बहुभागद्रव्यमुपरितनस्थितौ निक्षिप्य तदेकभागं पुनरसंख्यातलोकेन खण्डयित्वा तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्य तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिपतीति समयप्रबद्धासंख्यातैकभागमात्र–मेवोदीरणाद्रव्यम् । इदानीं पुनरसंख्यातलोकभागहारं त्यक्त्वा पल्यासंख्यातभागेन खण्डितैकभाग–मुदयावल्यां निक्षिपतीति असंख्येयसमयप्रबद्धमात्रमुदीरणाद्रव्यमित्यर्थः ।।२३९।।

अब क्रमकरण के अंत में सम्भव अन्य क्रिया दिखाने के लिए कहते हैं –

अन्वयार्थ–(बंधसहस्से तीदे) संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधो)** पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध होता है। **(तत्थ)** वहाँ **(असंखेज्जाणं समयबद्धाणं)** असंख्यात समयप्रबद्धों की **(उदीरणा)** उदीरणा होती है।।२३९।।

टीकार्थ–मोह–तीसिय–वीसिय–वेदनीय के स्थितिबंध का क्रम प्रारम्भ होने पर आगे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण होने पर जब क्रमकरण के अंत में मोहादिकों के पल्य के असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबंध हुए तब असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है। इससे पूर्व में अपकृष्ट द्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित करके बहुभाग द्रव्य उपरितन स्थिति में देकर उस एकभाग को पुनः असंख्यात लोक से खंडित करके उसका बहुभाग द्रव्य गुणश्रेणि आयाम में देकर शेष रहे एकभाग द्रव्य का उदयावली में निक्षेपण करता है। इस प्रकार समयप्रबद्ध का असंख्यातवाँ भागमात्र उदीरणा द्रव्य होता है। अब पुनः असंख्यात लोक का भागहार छोड़कर पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित करके एकभागमात्र का

---

१) जयध. पु. १३ पृ. २४८–२४९ ।

उदयावली में निक्षेपण करता है। इसलिए उदीरणा द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण है।।२३९।।

विशेषार्थ– क्रमकरण के अंत में मोहादिकों का स्थितिबंध पल्य का असंख्यातवाँ भाग होता है और असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है।

देशघातिकरणका निर्देश –

ठिदिबंधसहस्सगदे मणदाणा तेत्तिये वि ओहिदुगं।
लाभं व पुणो वि सुदं अचक्खु भोगं पुणो चक्खु[1] ।।२४०।।
पुणरवि मदि–परिभोगं पुणरवि विरियं कमेण अणुभागो ।
बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधो[2]।।२४१।।

स्थितिबन्धसहस्रगते मनोदाने तावन्मात्रेऽप्यवधिद्विकम् ।
लाभो वा पुनरपि श्रुतमचक्षुर्भोगं पुनश्चक्षुः।।२४०।।
पुनरपि मतिपरिभोगं पुनरपि वीर्यं क्रमेणानुभागः।
बन्धेन देशघातिः पल्यासंख्यं तु स्थितिबन्धः।।२४१।।

असंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणाप्रारम्भात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मनःपर्ययज्ञानावरणीयदानान्तराययोः सर्वघातिस्थानानुभागबन्धं परित्यज्य देशघाति–स्पर्धकरूपद्विस्थानानुभागं बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणलाभान्तरायाणां देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु श्रुतज्ञानावरणाचक्षुर्दर्शनावरणभोगान्तरायाणां देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु चक्षुर्दर्शनावरणस्य देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति। ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मतिज्ञानावरणोपभोगान्तराययोर्देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति। ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीर्यान्तरायस्य देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति। अस्माद्देश–घातिकरणप्रारम्भात्प्रागवस्थायां संसारावस्थायां च सर्वघातिस्पर्धकानुभागमेव बध्नातीत्यर्थः। चतुःसंज्वलनपुंवेदानां देशघातिस्पर्धकानुभागबन्धः कुतो न कथित इति नाशङ्कितव्यम्, संयमासंयमग्रहणात्प्रभृति तेषां देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागबन्धस्यैव प्रतिसमयमनन्तगुणहान्या वर्तमानत्वात् सत्कर्मानुभागः पुनः सर्वघातिस्पर्धकद्विस्थानरूप एव प्रवर्तते, तस्य देशघातिकरणा–भावात्। एवं देशघातिकरणपर्यवसानेऽपि मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धः

१) जयध. पु. १३ पृ. २४९– २५१ । २) जयध. पु. १३ पृ. २५१ ।

स्वस्वयोग्यपल्यासंख्यातभागमात्रो भवति ।।२४०-२४१ ।।

अब देशघातिकरण कहते हैं –

अन्वयार्थ–(ठिदिबंधसहस्सगदे) संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत होने पर **(मणदाणा)** मन:पर्यय ज्ञानावरण और दानान्तराय का **(अणुभागो बंधेण देसघादि)** अनुभागबंध देशघाति होता है। **(तेत्तिये वि)** उतने ही अर्थात् संख्यात हजार स्थितिबंध होनेपर **(ओहिदुगं)** अवधिद्विक अर्थात् अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और **(लाभं व)** लाभान्तराय **(पुणो वि)** उसके पश्चात् **(सुदं अचक्खु भोगं)** श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शन और भोगांतराय **(पुणो)** पुन: **(चक्खु)** चक्षुदर्शनावरण **(पुणरवि मदि परिभोगं)** पुन: मतिज्ञानावरण व परिभोगान्तराय **(पुणरवि)** पुन: **(विरियं)** वीर्यान्तराय का **(कमेण)** क्रम से **(बंधेण देसघादी अणुभागो)** बंध की अपेक्षा से अनुभाग देशघाति होता है अर्थात् देशघाति स्पर्धकों का ही बंध होता है। **(तु)** परन्तु **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(पल्लासंखं)** पल्य का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण ही होता है।।२४०-२४१।।

टीकार्थ– असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा प्रारंभ होने के बाद संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर मन:पर्यय ज्ञानावरणीय और दानान्तराय कर्मों का सर्वघाति स्थानरूप अनुभागबंध छोड़कर देशघाति स्पर्धकरूप द्विस्थान अनुभाग बांधता है। उसके बाद संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण व लाभान्तराय का देशघाति स्पर्धक रूप द्विस्थान अनुभाग बांधता है। उसके बाद संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण व भोगान्तराय का देशघातिस्पर्धकरूप द्विस्थान अनुभाग बाँधता है। उसके आगे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर चक्षुदर्शनावरण का देशघाति स्पर्धकरूप द्विस्थान अनुभाग बाँधता है। उसके बाद आगे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर मतिज्ञानावरण और उपभोगान्तराय का देशघाति स्पर्धक रूप द्विस्थान अनुभाग बांधता है। उसके आगे संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर वीर्यान्तराय का देशघाति स्पर्धकरूप द्विस्थान अनुभाग बांधता है। इस देशघातिकरण के प्रारम्भ से पूर्व की अवस्था में और संसार अवस्था में सर्वघातिस्पर्धकरूप अनुभाग ही बांधता है यह अर्थ है। चार संज्वलन और पुरूषवेद का देशघातिस्पर्धकरूप अनुभागबंध क्यों नहीं कहा ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि संयमासंयम के ग्रहण से ही उसके देशघातिस्पर्धकरूप अनुभागबंध प्रत्येक समय में अनन्तगुणहानिरूप से वर्तमान है। सत्कर्मरूप अनुभाग पुन: सर्वघातिस्पर्धक द्विस्थानरूप रहता ही है, क्योंकि उसके देशघातिकरण का अभाव है। इस प्रकार देशघातिकरण के अंत में भी मोहनीय, तीसिय, वीसिय और वेदनीय का स्थितिबंध अपने-अपने योग्य पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र होता है।।२४०-२४१।।

विशेषार्थ– देशघातिकरण में जो क्रम कहा है वह शक्ति की अपेक्षा से है। कम शक्तियुक्त

का देशघातिकरण प्रथम होता है बाद में उत्तरोत्तर अधिक शक्तियुक्त प्रकृतियों का देशघातिकरण होता है। उसका क्रम निम्नलिखित है–

१) संख्यात हजार बंधापसरण होने पर मन:पर्ययज्ञानावरण, दानान्तराय का देशघातिकरण होता है।
२) संख्यात हजार बंधापसरण होने पर अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभांतराय का देशघातिकरण होता है।
३) संख्यात हजार बंधापसरण होने पर श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तराय का देशघातिकरण होता है।
४) संख्यात हजार बंधापसरण होने पर चक्षुदर्शनावरण का देशघातिकरण होता है।
५) संख्यात हजार बंधापसरण होने पर मतिज्ञानावरण, परिभोगान्तराय का देशघातिकरण होता है।
६) संख्यात हजार बंधापसरण होने पर वीर्यान्तराय का देशघातिकरण होता है।

अथान्तरकरणनिरूपणार्थं गाथाचतुष्टयमाह –

तो देसघादिकरणादुवरिं तु गदेसु तेत्तियपदेसु।
इगिवीसमोहणीयांतरकरणं करेदीदि[1] ।।२४२।।

अतो देशघातिकरणादुपरि तु गतेषु तावत्कपदेषु ।
एकविंशमोहनीयानामन्तरकरणं करोतीति ।।२४२।।

ततो देशघातिकरणस्योपरि संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेष्वनन्तानु–बन्धिवर्जितद्वादशकषायाणां नवनोकषायाणां च चारित्रमोहप्रकृतीनां मिलित्वैकविंश–तेरन्तरकरणं करोत्यनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्त्युपशमक: ।।२४२।।

अब अंतरकरण का निरूपण करने के लिए चार गाथाएँ कहते है–

अन्वयार्थ– **(तो देसघादिकरणादुवरिं तु)** उस देशघातिकरण के पश्चात् **(तेत्तियपदेसु गदेसु)** उतने पद जाने पर अर्थात् संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर **(इगिवीसमोहणीयाणं अंतरकरणं)** इक्कीस मोहनीय प्रकृतियों का अंतर **(करेदीदि)** करता है। ।।२४२।।

टीकार्थ–अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशमक उस देशघातिकरण के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर अनन्तानुबन्धी छोड़कर बारह कषाय और नौ नोकषाय ऐसी कुल चारित्रमोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का अंतरकरण करता है। ।।२४२।।

---

१) जयध. पु. १३ पृ. २५२–२५३ ।

संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तं दोण्हं ।
सेसाणं पढमठिदिं ठवेदि अंतोमुहुत्तमावलियं[१]।।२४३।।

संज्वलनानामेकं वेदानामेकं उदेति तत् द्वयो:।
शेषाणां प्रथमस्थितिं स्थापयति अंतर्मुहूर्तमावलिकाम्।।२४३।।

संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां मध्ये एकतम: कषाय: स्त्रीपुंनपुंसकवेदानां चैकतमो वेद उदेति। एकतमकषायवेदोदयेन श्रेणिमारोहति संयत इत्यर्थ:। ततस्तयोरुदयमानयो: कषायवेदयो: प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं शेषाणामुदयरहितानां कषायवेदानां प्रथमस्थिति- मावलिमात्रीं स्थापयत्यन्तरकरणप्रारम्भक: । तावन्मात्रनिषेकान् मुक्त्वा तदुपरितननिषेकाणामन्तरं करोतीत्यर्थ:।।२४३।।

अन्वयार्थ- **(संजलणाणं एक्कं)** संज्वलन चार कषायों में से एक कषाय और **(वेदाणेक्कं)** तीन वेदों में से एक वेद **(उदेदि)** उदय में आता है। **(तं दोण्हं)** उस उदययुक्त दो प्रकृतियों की **(अंतोमुहुत्तं)** अंतर्मुहूर्तप्रमाण और **(सेसाणं)** शेष प्रकृतियों की **(आवलियं)** आवलिप्रमाण **(पढमठिदिं)** प्रथम स्थिति **(ठवेदि)** स्थापित करता है।।२४३।।

टीकार्थ-संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ में से कोई भी एक कषाय और स्त्री, पुरूष और नपुंसक वेद में से कोई भी एक वेद उदय में आता है अर्थात् किसी भी एक कषाय व एक वेद के उदय से संयत श्रेणि चढ़ता है। इसलिए अंतरकरण की प्रारंभ करने वाला उपशमक उस उदयमान कषाय व वेदों की प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र और शेष उदयरहित कषाय और वेद की प्रथम स्थिति आवलिमात्र स्थापित करता है अर्थात् उतने मात्र निषेकों को छोड़कर उसके ऊपर के निषेकों का अन्तर करता है।।२४३।।

उवरि समं उक्कीरइ हेट्ठा विसमं तु मज्झिमपमाणं ।
तद्दुगपढमठिदीदो संखेज्जगुणं हवे णियमा[२]।।२४४।।

उपरि सममुत्कीर्यतेऽधस्तने विषमं तु मध्यमप्रमाणं।
तद्द्विकप्रथमस्थितित: संख्येयगुणं भवेन्नियमात्।।२४४।।

अन्तरायामस्याग्रनिषेका उदयानुदयप्रकृतीनां सर्वासामपि सदृशा एवोत्कीर्यन्ते, अन्तरो- परितनद्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकाणां सदृशत्वात् । अन्तरायामस्याधस्तनचरमनिषेका उदयरहित- प्रकृतीनामन्योन्यं सदृशा एव । उदयवत्प्रकृत्योश्च परस्परं सदृशा एव । उदयमानानुदयप्रकृत्योस्तु विसदृशा अन्तर्मुहूर्तावलिमात्रप्रथमस्थितिवैषम्यवशात् । एवंविधान्तरायामप्रमाणं च ताभ्यां

१) पा.भे. उवरि समं उक्कीरदि हेट्ठा णो समं तु मज्झिमयाणं। का. ह. प्र. २) जयध. पु. १३ पृ. २५४ ।

द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्तावलिमात्रीभ्यां प्रथमस्थितिभ्यां संख्यातगुणितमेव भवति। उदयमान-प्रकृत्योर्गुणश्रेणिशीर्षनिषेकान् ततः संख्येयगुणोपरितनस्थितिनिषेकांश्चान्तर्मुहूर्तमात्रान् गृहीत्वान्तरं करोतीत्यर्थः ।।२४४।।

अन्वयार्थ– अन्तरायाम के **(उवरि)** ऊपर के निषेक **(समं)** समान **(उक्कीरइ)** उत्कीरण करता है **(तु)** परन्तु **(हेट्ठा)** नीचे के निषेक (उदयमान और अनुदयमान प्रकृतियों के) **(विसमं)** विषम(असमान) उत्कीरण करता है। प्रथम स्थिति के ऊपर (द्वितीय स्थिति के नीचे) **(मज्झिमपमाणं)** मध्यप्रमाण **(तदुगपढमठिदीदो)** उन दो प्रथम स्थितियों से (अन्तर्मुहूर्त व आवलिप्रमाण स्थिति से) **(णियमा)** नियम से **(संखेज्जगुणं)** संख्यातगुणा **(हवे)** होता है। ।।२४४।।

टीकार्थ– उदय व अनुदयरूप सभी प्रकृतियों के अन्तरायाम के अग्र (अंतिम) निषेक समान ही उत्कीरण किए जाते हैं क्योंकि अन्तरायाम के ऊपर की द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक समान हैं। अन्तरायाम के नीचे अंतिम निषेक सभी उदयरहित प्रकृतियों के परस्पर समान ही हैं और उदयमान प्रकृतियों के परस्पर समान ही हैं। परन्तु उदयमान और अनुदयमान प्रकृतियों के परस्पर असमान हैं, क्योंकि (उदयमान प्रकृतियों की) प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तमात्र और (अनुदयमान प्रकृतियों की) आवलिमात्र होने से विषम है। इस प्रकार के अन्तरायाम का प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र और आवलिमात्र दोनों प्रथम स्थितियों से संख्यातगुणा ही है। उदयमान प्रकृतियों के गुणश्रेणिशीर्ष निषेकों को और उससे संख्यातगुणे उपरितन स्थिति के अन्तर्मुहूर्तमात्र निषेकों को ग्रहण करके अंतर करता है ऐसा अर्थ है।।२४४।।

विशेषार्थ– नपुंसकवेद का उपशमन काल, स्त्रीवेद का उपशमनकाल और सात नोकषायों का उपशमन काल इन तीनों कालों को मिलाकर जितना प्रमाण होता है, उतना पुरूषवेद की प्रथम स्थिति का प्रमाण है। परन्तु संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति पुरुषवेद की प्रथम स्थिति से कुछ कम तीसरा भागप्रमाण अधिक है।[1] इसलिए उदययुक्त पुरुषवेद और उदययुक्त कषाय के अंतरायाम के नीचे के निषेक समान हो नहीं सकते। यहाँ अन्तर्मुहूर्त की अपेक्षा सदृश कहा है।

अंतरपढमे अण्णो ठिदिबंधो ठिदिरसाण खंडो य ।
एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरसमत्ती[2] ।।२४५।।

अन्तरप्रथमेऽन्यः स्थितिबन्धः स्थितिरसयोः खण्डश्च ।
एकस्थितिखण्डोत्करणकालेऽन्तरसमाप्तिः।।२४५।।

---

१) जयध. पु. १३ पृ. २५३-२५४

२) जयध. पु. १३ पृ. २५५-२५६ ।

अन्तरकरणप्रथमसमये अन्य एव स्थितिबन्धः प्राक्तनस्थितिबन्धादसंख्यातगुणहीनः, स्थितिखण्डं चान्यदेव प्राक्तनस्थितिखण्डाद्विशेषहीनं अन्यदेवानुभागखण्डं च प्राक्तनानुभाग-खण्डादनन्तगुणहीनं प्रारभ्यते। एवंविधैकस्थितिखण्डोत्करणकालसमेनान्तर्मुहूर्तेनान्तरसमाप्तिर्भवति। तत्समाप्तौ च प्रकृतसमस्थितिखण्डोत्करणं संख्यातसहस्रानुभागखण्डोत्करणानि च युगपत् समाप्यन्त इत्यर्थः ।।२४५।।

अन्वयार्थ-(अंतरपढमे) अंतरकरण के प्रथम समय में **(अण्णो ठिदिबंधो)** अन्य स्थितिबन्ध, **(ठिदिरसाण खंडो य)** अन्य स्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडक होता है। **(एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले)** एक स्थितिकांडकोत्कीरण काल में **(अंतरसमत्ती)** अंतरकार्य की समाप्ति होती है।।२४५।।

टीकार्थ-अन्तरकरण के प्रथम समय में पूर्व के स्थितिबंध से असंख्यातगुणा हीन अन्य ही स्थितिबंध होता है। पूर्व के स्थितिखंड से विशेषहीन अन्य ही स्थितिकांडक और पूर्व के अनुभागखंड से अनन्तगुणा हीन अन्य ही अनुभागकांडक शुरू होता है। इस प्रकार एक स्थितिखण्डोत्करण काल के समान अन्तर्मुहूर्त द्वारा अंतरकार्य की समाप्ति होती है। अंतरकरण की समाप्ति होने पर प्रकृत समान स्थितिकांडकोत्कीरण और संख्यात हजार अनुभागकाण्डकोत्कीरण एक ही समय में समाप्त होते हैं ऐसा अर्थ है। ।।२४५।।

अथान्तरोत्कीर्णद्रव्यनिक्षेपनिरूपणार्थं गाथात्रयमाह -

अंतरहेदुक्कीरिददव्वं तं अंतरम्हि ण य देदि।
बंधताणंतरजं बंधाणं विदियगे देदि[1] ।।२४६।।

अन्तरहेतूत्कीरितद्रव्यं तदन्तरे न च ददाति ।
बध्यमानानामन्तरजं बन्धानां द्वितीयके ददाति ।।२४६।।

अन्तरनिमित्तमन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यमन्तरायामस्थितिषु नैव निक्षिपति। पुनः केवलबध्यमानप्रकृतीनां स्त्रीनपुंसकवेदयोरन्यतरोदयेन संज्वलनकषायाणामन्यतमोदयेन च श्रेणिमारूढस्य पुंवेदशेषत्रिसंज्वलनानामन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यं तात्कालिके स्वस्वबन्धे आबाधां मुक्त्वा द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकादारभ्य चरमपर्यन्तं यथायोग्यमुत्कर्षणवशेन निक्षिपति । उदीयमानेतर (वेद) कषाययोः प्रथमस्थितौ चापकर्षणवशेन निक्षिपतीत्ययं विशेषः सिद्धान्तानुसारेण ज्ञातव्यः ।।२४६।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २६० ।

अब अंतर के उत्कीर्ण द्रव्य के निक्षेपण का निरूपण करने के लिए तीन गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(तं अंतरहेदुक्कीरिददव्वं) अंतर के लिए उत्कीरण किया वह द्रव्य **(अंतरम्हि)** अंतरायाम में **(ण य देदि)** नहीं देता। **(बंधताणं अंतरजं)** केवल बध्यमान प्रकृतियों के अंतर का द्रव्य **(बंधाणं विदियगे)** बंध की द्वितीय स्थिति में **(देदि)** देता है।।२४६।।

टीकार्थ–अंतर के लिए अंतरायाम के उत्कीर्ण द्रव्य को अन्तरायाम की स्थितियों में निक्षेपण नहीं करता है। पुनः स्त्री और नपुंसक वेद में से किसी एक वेद के उदय से और संज्वलन कषाय में से किसी एक कषाय के उदय से श्रेणी चढ़ने वाले जीव के केवल बध्यमान पुरुषवेद और शेष तीन संज्वलन के अन्तरायाम का उत्कीर्ण द्रव्य उत्कर्षण करके उस काल में होने वाले अपने बंध में आबाधा छोड़कर द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक से यथायोग्य अंतिम निषेक तक देता है। उदीयमान अन्य वेद और कषाय की प्रथम स्थिति में अपकर्षण करके देता है। यह विशेष सिद्धान्तानुसार जानना चाहिए ।।२४६।।

उदयिल्लाणंतरजं सगपढमे देदि बंधविदिये च[1] ।
उभयाणंतरदव्वं पढमे विदिये च संछुहदि[2] ।।२४७।।

उदयमानयोरन्तरजं स्वकप्रथमे ददाति बन्धद्वितीये च ।
उभयानामन्तरद्रव्यं प्रथमे द्वितीये च संक्षिपति ।।२४७।।

केवलमुदयमानयोः स्त्रीनपुंसकवेदयोरन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यं स्वस्वप्रथमस्थिता–वपकृष्य निक्षिपति । बध्यमानेतर (वेद) कषायाणां द्वितीयस्थितौ चोत्कृष्य निक्षिपति तत उदयमानकषायस्य प्रथमस्थितौ चापकृष्य संक्रमयतीत्ययं विशेषोऽपि सिद्धान्तोक्तः सम्प्रधार्यः। पुनर्बन्धोदयवतोः पुंवेदान्यतमकषाययोरन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यमपकृष्योदयमानप्रकृतिप्रथमस्थितौ निक्षिपति बध्यमानप्रकृतिद्वितीयस्थितौ चोत्कृष्य निक्षिपति। अत्रापि परप्रकृतिप्रथमद्वितीययोः स्थित्योरपकर्षणोत्कर्षणवशेन संक्रमयतीत्ययमपि विशेषः कृतान्तसिद्धो बोद्धव्यः ।।२४७।।

अन्वयार्थ–(उदयिल्लाणंतरजं) केवल उदयमान प्रकृति के अंतर का द्रव्य **(सगपढमे)** अपनी प्रथम स्थिति में **(च)** और **(बंधविदिये)** बंध की (बध्यमान प्रकृति की) द्वितीय स्थिति में **(देदि)** देता है **(उभयाणंतरदव्वं)** उभय अर्थात् बंध और उदयसहित प्रकृतियों का अंतरद्रव्य **(पढमे)** प्रथम स्थिति में **(च)** और **(विदिये)** द्वितीय स्थिति में **(संछुहदि)** देता है।।२४७।।

टीकार्थ–केवल उदयमान स्त्री और नपुंसक वेद के अंतरायाम का उत्कीर्ण द्रव्य अपकर्षण

१) जयध. पु. १३ पृ. २६० । २) जयध. पु. १३, पृ. २५६.

करके अपनी-अपनी प्रथम स्थिति में देता है और उत्कर्षण करके बध्यमान अन्य वेद और कषायों की द्वितीय स्थिति में देता है और उदयमान कषाय की प्रथम स्थिति में अपकर्षण करके संक्रमित करता है। यह सिद्धान्त में कहा गया विशेष भी जानना चाहिए। पुन: बन्ध और उदयमान पुरुषवेद और किसी भी एक कषाय के अन्तरायाम का उत्कीर्ण द्रव्य अपकर्षण करके उदयमान प्रकृति की प्रथम स्थिति में देता है और उत्कर्षण करके बध्यमान प्रकृति की द्वितीय स्थिति में देता है। यहाँ भी परप्रकृति की प्रथम और द्वितीय स्थिति में अपकर्षण और उत्कर्षण करके संक्रमित करता है। यह विशेष भी सिद्धान्त में सिद्ध है ऐसा जानना चाहिए। ।।२४७।।

अणुभयगाणंतरजं बंधंताणं च विदियगे देदि[1]।
एवं अंतरकरणं सिज्झदि अंतोमुहुत्तेण ।।२४८।।

अनुभयकानामन्तरजं बध्यमानानां च द्वितीयके ददाति ।
एवमन्तरकरणं सिद्ध्यत्यन्तर्मुहूर्तेन ।।२४८।।

बन्धोदयरहितानां मध्यमाष्टकषायहास्यादिषण्णोकषायाणामन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यं तात्कालिकोदयमानप्रकृतिप्रथमस्थितावपकृष्य संक्रमयति । बध्यमानप्रकृतिद्वितीयस्थितौ चोत्कृष्य संक्रमयति । सर्वत्र बन्धरहितानामन्तरद्रव्यं स्वद्वितीयस्थितौ न निक्षिपति । उदयरहितानामन्तरद्रव्यं स्वप्रथमस्थितौ न निक्षिपतीति विशेषो निर्णेतव्य: । एवमन्तर्मुहूर्तकालेनान्तरकरणं सिध्यति। अत्रान्तरकरणप्रारम्भसमयादारभ्य प्रथमस्थित्यन्तरायामाववस्थितप्रमाणौ द्रष्टव्यौ । उदयावल्यां एकस्मिन् समये गलिते गुणश्रेणीसमयस्यैकस्योदयावल्यां प्रवेशात् । तदैवान्तरायामसमयस्यैकस्य गुणश्रेण्यायामे प्रवेशात् । तदैव च द्वितीयस्थितिनिषेकस्यैकस्यान्तरायामे प्रवेशात्। एवं द्वितीयस्थितिरेव हीयते प्रथमस्थित्यन्तरायामौ तदवस्थावेवेति निश्चेतव्यम् ।।२४८।।

अन्वयार्थ-(अणुभयगाणंतरजं) अनुभय अर्थात् बंध-उदयरहित प्रकृतियों के अंतर का द्रव्य **(बंधंताणं विदियगे)** बध्यमान प्रकृतियों की द्वितीय स्थिति में **(देदि)** देता है **(च)** और उदयमान प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में देता है। **(एवं)** इस प्रकार **(अंत्तोमुहुत्तेण)** अंतर्मुहूर्त द्वारा **(अंतरकरणं)** अंतरकरण **(सिज्झदि)** सिद्ध होता है।।२४८।।

टीकार्थ- बन्ध और उदयरहित मध्यम आठ कषाय (अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय) और हास्यादि छह नोकषायों के अन्तरायाम का उत्कीर्ण द्रव्य उस काल में उदयरूप प्रकृतियों की प्रथम स्थिति में अपकर्षण करके संक्रमित करता है और उत्कर्षण

१) जयध. पु. १३, पृ. २५९ ।

करके बध्यमान प्रकृतियों की द्वितीय स्थिति में संक्रमित करता है। सभी जगह बंधरहित प्रकृतियों का अंतरद्रव्य अपनी द्वितीय स्थिति में नहीं देता। उदयरहित प्रकृतियों का अंतरद्रव्य अपनी प्रथम स्थिति में नहीं देता ऐसा विशेष निर्णय करना चाहिए। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा अंतरकरण सिद्ध होता है। यहाँ अंतरकरण के प्रथम समय से प्रथम स्थिति और अंतरायाम का प्रमाण अवस्थित जानना चाहिए अर्थात् जितना है उतना ही रहता है क्योंकि उदयावली का एक समय गलनेपर गुणश्रेणि का एक समय उदयावली में प्रवेश करता है, (उसी समय अंतरायामका एक समय गुणश्रेणि आयाम में मिलता है) और उसी समय में द्वितीय स्थिति का एक निषेक अन्तरायाम में प्रवेश करता है। इसप्रकार द्वितीय स्थिति ही कम होती है। प्रथम स्थिति और अन्तरायाम अवस्थित रहते हैं ऐसा निश्चय करना चाहिए।।२४८।।

विशेषार्थ– १. जयधवला में जिन प्रकृतियों का अन्तरकरण होता है उनकी अन्तरसंबंधी स्थितियों का कहाँ किस प्रकार निक्षेप होता है इसका विशेष खुलासा इसप्रकार किया है– अन्तर करने वाला जो जीव जिन कर्मों को बांधता है और वेदता है उन कर्मों के अन्तर को प्राप्त होने वाली स्थितियों में से उत्कीर्ण होने वाले प्रदेशपुंज को अपनी प्रथम स्थिति में निक्षिप्त करता है और आबाधा को छोड़कर द्वितीय स्थिति में भी निक्षिप्त करता है, किन्तु अन्तर संबंधी स्थितियों में निक्षिप्त नहीं करता, क्योंकि उनके कर्मपुंज में से वे स्थितियाँ रिक्त होने वाली हैं, इसलिए उनमें निक्षिप्त नहीं करता। इस विषय में कुछ आचार्य ऐसा व्याख्यान करते हैं कि जब तक अन्तर सम्बन्धी द्विचरम फालि का अस्तित्व रहता है तब तक स्वस्थान में भी अपकर्षण सम्बन्धी अतिस्थापनावली को छोड़कर अन्तर सम्बन्धी स्थितियों में भी निक्षिप्त करता है। उनके व्याख्यान के अनुसार भी सर्वत्र यह कथन करना चाहिए।

२. जो कर्म नहीं बंधते और नहीं वेदे जाते वे आठ कषाय और छह नोकषाय हैं। सो उनकी अन्तर स्थितियों में से उत्कीर्ण होने वाले प्रदेशपुंज को अपनी स्थितियों में नहीं देता है, किन्तु बंधने वाली प्रकृतियों की द्वितीय स्थिति में उत्कर्षण द्वारा बन्ध के प्रथम समय में निक्षिप्त करता है तथा बंधने वाली और नहीं बंधने वाली जिन प्रकृतियों की प्रथम स्थिति है उनमें भी यथासम्भव अपकर्षण और परप्रकृति संक्रम द्वारा निक्षिप्त करता है, परन्तु स्वस्थान में निक्षिप्त नहीं करता है।

३. जो कर्मपुंज नहीं बंधते किन्तु वेदे जाते हैं जैसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियों को अपनी–अपनी प्रथम स्थिति में अपकर्षण करके निक्षिप्त करता है तथा जिन संज्वलन प्रकृतियों का उदय हो उनकी प्रथम स्थिति में आगमानुसार अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण द्वारा निक्षिप्त करता है तथा बन्ध की अपेक्षा उत्कर्षण करके द्वितीय

अंतरायाम में से उत्कीर्ण द्रव्य देने का विधान

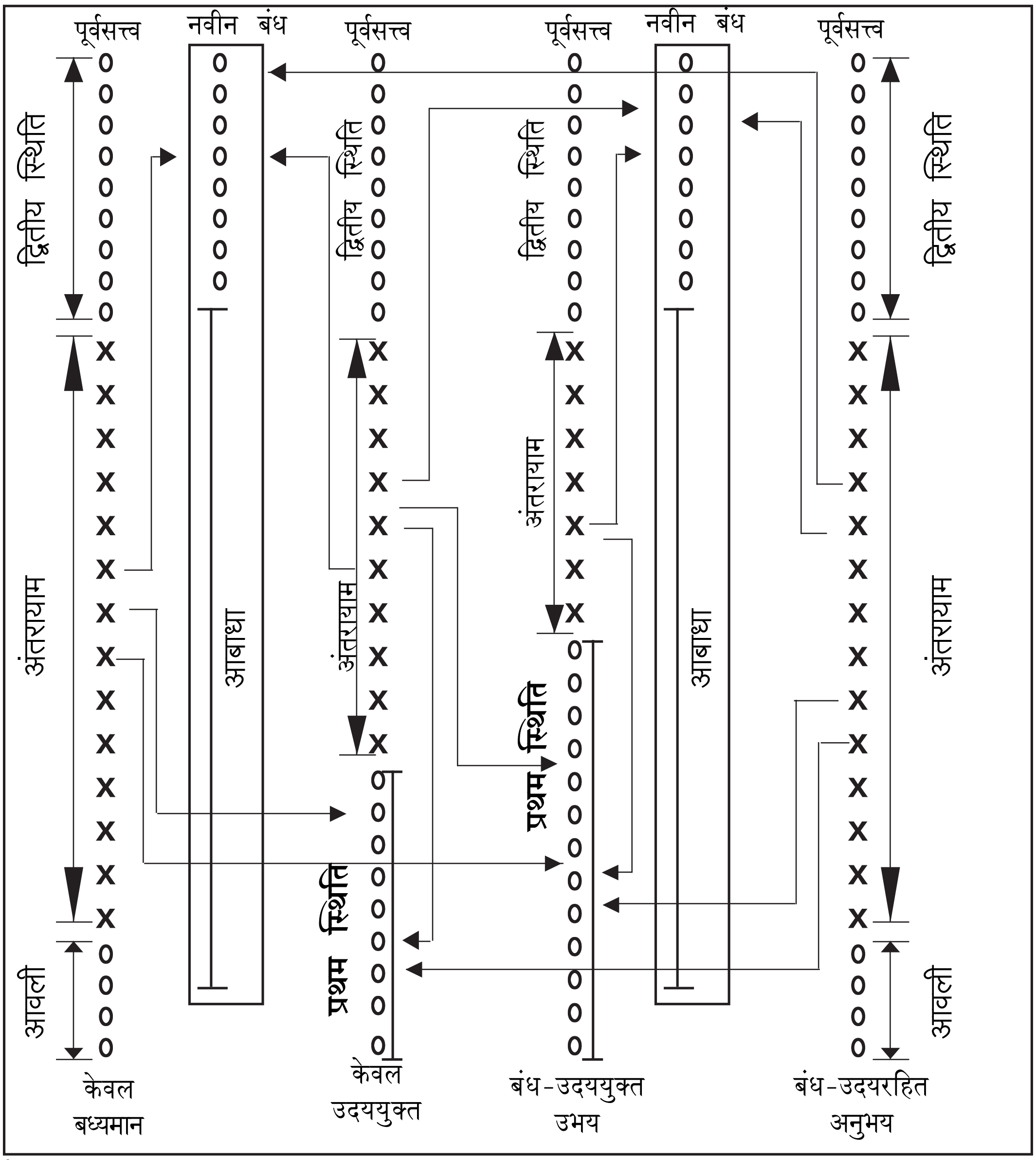

केवल बध्यमान–अन्य तीन कषाय और पुरुषवेद (स्त्री अथवा नपुंसक वेद से चढ़ने वाले की अपेक्षा से)

केवल उदययुक्त– स्त्रीवेद अथवा नपुंसकवेद (स्त्री अथवा नपुंसक वेद से चढ़ने वाले की अपेक्षा से)

उभय– एक कषाय और पुरुषवेद (पुरुषवेद से चढ़ने वाले की अपेक्षा से)

अनुभय– ८ कषाय, ६ नोकषाय, पुरुषवेद से चढ़ने वाले की अपेक्षा से स्त्रीवेद और नपुंसक वेद।

स्थिति में भी निक्षिप्त करता है।

४. जिन कर्मों को मात्र बांधता है, वेदता नहीं जैसे परोदय की विवक्षा में पुरुषवेद और संज्वलन में से तीन संज्वलन इनका केवल बन्ध होता है, उदय नहीं होता उनकी अन्तर स्थितियों में से उत्कीर्ण होने वाले प्रदेशपुंज को उत्कर्षण द्वारा अपनी द्वितीय स्थिति में निक्षिप्त करता है तथा उदययुक्त बन्ध को प्राप्त होने वाली प्रकृतियों की प्रथम और द्वितीय स्थिति में निक्षिप्त करता है तथा जिनका उदय नहीं होता, किन्तु बन्ध होता है उनकी दूसरी स्थिति में भी निक्षिप्त करता है। यहाँ प्रथम स्थिति और अंतरायाम अवस्थित हैं, परन्तु द्वितीय स्थिति ही कम होती है।

अथान्तरकरणनिष्पत्त्यनन्तरसमये संभवत्क्रियाविशेषप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह–

सत्तकरणाणि अंतरकदपढमे होंति मोहणीयस्स।
इगिठाणियबंधुदओ ठिदिबंधो संखवस्सं च ।।२४९।।

अणुपुव्वीसंकमणं लोहस्स असंकमं च संढस्स।
पढमोवसामकरणं छावलितीदेसुदीरणदा[1] ।।२५०।।

सप्तकरणान्यन्तरकृतप्रथमे भवन्ति मोहनीयस्य।
एकस्थानको बन्धोदय: स्थितिबन्ध: संख्यवर्षं च ।।२४९।।

आनुपूर्वीसंक्रमणं लोभस्यासंक्रमं च षण्ढस्य ।
प्रथमोपशमकरणं षडावल्यतीतेषूदीरणता ।।२५०।।

अन्तरकृतस्य निष्ठितान्तरकरणस्य प्रथमे अनन्तरसमये सप्तकरणानि युगपदेव प्रारभ्यन्ते। तत्र पूर्वमन्तरसमाप्तिपर्यन्तं चारित्रमोहस्य द्विस्थानानुभागबन्ध: प्रवृत्त:, इदानीं लतासमानैक–स्थानानुभागबन्धस्तस्य प्रवर्तते इत्येकं करणम्।१। तथा मोहनीयस्य द्विस्थानानुभागोदय: पूर्वमन्तरकरणचरमसमयपर्यन्तमायात: इदानीं पुनस्तस्य लतासमानैकस्थानानुभागोदय एव प्रवर्तत इत्यपरं करणम् ।२। तथा पूर्वमन्तरकरणकालसमाप्तिपर्यन्तमसंख्येयवर्षमात्रो मोहस्य स्थितिबन्ध: प्रवृत्त:, इदानीं पुनरपसरणमाहात्म्यात्संख्येयवर्षमात्रस्तस्य स्थितिबन्ध: प्रारब्ध इत्यन्यत्करणम् । ३ । तथा पूर्वमन्तरकरणकालपरिसमाप्तिपर्यन्तं चारित्रमोहस्य नपुंसकवेदादिप्रकृतीनां यत्र तत्रापि द्रव्यसंक्रम: प्रवृत्त इदानीं पुनर्वक्ष्यमाणया प्रतिनियतानुपूर्व्या तद्द्रव्यं संक्रामति।

तद्यथा– स्त्रीनपुंसकवेदप्रकृत्योर्द्रव्यं नियमेन पुंवेद एव संक्रामति । पुंवेदहास्यादिषण्णोकषाया–

१) जयध. पु. १३ पृ. २६३ ।

प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधद्वयद्रव्यं नियमेन संज्वलनक्रोधे एव संक्रामति । संज्वलनक्रोधा-प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमानद्वयद्रव्यं नियमेन संज्वलनमाने एव संक्रामति । संज्वलनमानाप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमायाद्वयद्रव्यं नियमेन संज्वलनमायाद्रव्ये एव संक्रामति ।संज्वलनमायाप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानलोभद्वयद्रव्यं संज्वलनलोभे एव नियमतः संक्रामति इत्यानुपूर्व्या संक्रमो नामैकं करणम् ।४। तथा पूर्वमन्तरकरणसमाप्तिपर्यन्तं संज्वलनलोभस्य शेषसंज्वलनपुंवेदेषु यथासंभवं संक्रमः प्रवृत्तः, इदानीं पुनः संज्वलनलोभस्य कुत्रापि संक्रमो नास्त्येवेत्यपरं करणम् ।५। तथा इदानीं प्रथमं नपुंसकवेदस्यैवोपशमनक्रिया प्रारभ्यते तदुपशमनानन्तरमेवेतरप्रकृतीनामुपशमन-विधानात् इत्येतदेकं करणम् ।६। तथा पूर्वमन्तरकरणसमाप्तिपर्यन्तं प्रतिसमयबध्यमानसमयप्रबद्धो अचलावल्यतिक्रमे उदीरयितुं शक्यः प्रवृत्तः इदानीं पुनर्बध्यमानानां मोहस्य वा ज्ञानावरणादिकर्मणां वा समयप्रबद्धो बन्धप्रथमसमयादारभ्य षट्स्वावलीषु गतास्वेवोदीरयितुं शक्यो नैकसमयोना-स्वपीत्यन्यत्करणम् ।७। अधुनातननूतनबन्धस्य तथाविधस्वभावसम्भवात् ।।२४९-२५०।।

अब अन्तरकरण की निष्पत्ति के अनन्तर समय में संभव होने वाली क्रिया विशेषों को दिखाने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं-

अन्वयार्थ-(यंतरकदपढमे) अंतरकरण होने पर प्रथम समय में **(मोहणीयस्स)** मोहनीय के **(सत्तकरणाणि)** सात करण **(होंति)** होते हैं। **(इगिठाणियबंधुदओ)** १) एक-स्थानीय बंध २) एकस्थानीय उदय **(संखवस्सं ठिदिबंधो)** ३) मोहनीय कर्म का संख्यातवर्ष स्थितिबन्ध **(अणुपुव्वीसंकमणं)** ४) मोहनीय का आनुपूर्वी संक्रमण **(च)** और **(लोहस्स असंकमं)** ५)संज्वलन लोभ का असंक्रमण **(संढस्स पढमोवसामकरणं)** ६)नपुंसकवेद की उपशमक्रिया का प्रारम्भ **(च)** और **(छावलितीदेसुदीरणदा)** ७) छह आवलि जाने पर मोहनीय की उदीरणा ।।२४९-२५०।।

टीकार्थ- अन्तरकरण समाप्त होने पर अनन्तर प्रथम समय में एक ही समय में सात करण शुरू होते हैं। १) पूर्व के अन्तरकरण की समाप्ति तक चारित्रमोह का द्विस्थानीय (लता-दारुरूप) अनुभागबन्ध प्रवृत्त होता है। अब उसका लता समान एकस्थानीय अनुभागबंध प्रवृत्त होता है २) अन्तरकरण की समाप्ति तक पूर्व में मोहनीय का द्विस्थान अनुभाग का उदय होता था अब उसका लता समान एकस्थानीय अनुभाग-उदय प्रवृत्त होता है। ३) तथा पूर्व में अन्तरकरण काल की समाप्ति तक मोहनीय का असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबन्ध प्रवृत्त होता है। अब पुनः अपसरण के माहात्म्य से उसका संख्यात वर्षमात्र स्थितिबन्ध शुरू हुआ। ४) तथा पूर्व में अन्तरकरणकाल की समाप्ति तक चारित्रमोह की नपुंसकवेदादि प्रकृतियों का जहाँ तहाँ द्रव्य संक्रमित होता था। अब पुनः आगे कहे गये प्रतिनियत आनुपूर्वी से उस द्रव्य का संक्रमण होता है। उसका खुलासा- स्त्री व नपुंसकवेद प्रकृतियों का द्रव्य नियम से पुरुषवेद

में ही संक्रमित होता है। पुरुषवेद, हास्यादि छह नोकषाय, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान इन दो क्रोधों का द्रव्य नियम से संज्वलन क्रोध में ही संक्रमित होता है। संज्वलन क्रोध, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो मान का द्रव्य नियम से संज्वलन मान में ही संक्रमित होता है, संज्वलनमान, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो माया का द्रव्य नियम से संज्वलन माया में ही संक्रमित होता है। संज्वलन माया, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो लोभ का द्रव्य नियम से संज्वलन लोभ में ही संक्रमित होता है। इसप्रकार आनुपूर्वी संक्रम नाम का एक करण है ५) तथा पूर्व में अन्तरकरण की समाप्ति तक संज्वलन लोभ का शेष संज्वलन कषाय और पुरुषवेद में यथासंभव संक्रम होता था। अब पुनः संज्वलन लोभ का कही भी संक्रम नहीं होता। ६) अब प्रथम नपुंसकवेद की उपशमन क्रिया शुरू होती है क्योंकि उसके उपशमन के बाद ही अन्य प्रकृतियों के उपशमन का विधान है। ७) पूर्व में अन्तरकरण की समाप्ति तक प्रत्येक समय में बांधे जाने वाले समयप्रबद्ध की अचलावली व्यतीत होने पर उदीरणा शक्य थी। अब बांधे जाने वाले मोहनीय और ज्ञानावरणादि कर्मों के समयप्रबद्ध की बन्ध के प्रथम समय से छह आवलि जाने पर ही उदीरणा होना शक्य है। एक समय कम होने पर भी उदीरणा नहीं होती क्योंकि अब नवीन बंध का उसी प्रकार का स्वभाव है।।२४९-२५०।।

विशेषार्थ– यह जीव अन्तरकरण समाप्ति के काल से लेकर जो सात करण प्रारम्भ करता है उनका खुलासा इस प्रकार है–

१) उनमें से प्रथम करण मोहनीय कर्म का आनुपूर्वी संक्रम है। खुलासा इस प्रकार है– स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के प्रदेशपुंज को यहाँ से लेकर पुरुषवेद में संक्रमित करता है। पुरुषवेद, छह नोकषाय तथा प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध को क्रोध संज्वलन में संक्रमित करता है, अन्य किसी में नहीं। क्रोध संज्वलन और प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण दोनों प्रकार के मान को संज्वलन मान में, संज्वलन मान और प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण दोनों प्रकार की माया को संज्वलन माया में तथा संज्वलन माया और दोनों प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण प्रकार के लोभ को संज्वलन लोभ में संक्रमित करता है, यह आनुपूर्वी संक्रम है।

२) लोभ का असंक्रम यह दूसरा करण है। अन्तरकरण के बाद लोभ संज्वलन का संक्रम नहीं होता यह इसका तात्पर्य है।

३) मोहनीय का एक स्थानीय बन्ध होता है यह तीसरा करण है। यद्यपि इससे पूर्व मोहनीय का द्विस्थानीय बन्ध होता था किन्तु अन्तरकरण के बाद वह एक स्थानीय होने लगता है।

४) नपुंसकवेद का प्रथम समय उपशामक यह चौथा करण है, क्योंकि प्रथम ही आयुक्त करण के द्वारा नपुंसकवेद की यहाँ से उपशमन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

५) छह आवलियों के जाने पर उदीरणा यह पाँचवा करण है। साधारणत: बन्धावली के बाद उदीरणा होने लगती है। परन्तु यहाँ पर उसके विरुद्ध यह कहा गया है कि छह आवलियों के जाने पर उदीरणा होती है सो ऐसा स्वभाव ही है। वैसे कल्पित उदाहरण द्वारा कषायप्राभृत चूर्णि में इसे स्पष्ट किया गया है। परन्तु वह उदाहरण मात्र समझाने के लिए ही दिया गया है। उसे जयधवला पु.१३ पृ.२६७ आदि से जान लेना चाहिए।

६) मोहनीय कर्म का एकस्थानीय उदय होने लगता है इसका तात्पर्य यह है कि अन्तरकरण के पहले मोहनीय का जो देशघाति द्विस्थानीय उदय होता रहा वह अन्तरकरण के बाद एक स्थानीय होने लगता है।

७) अन्तरकरण के बाद मोहनीय कर्म का स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण होने लगता है यह सातवाँ करण है। आशय यह है कि अन्तरकरण के पहले मोहनीय का असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता था, वह अन्तरकरण के बाद घटकर संख्यातवर्षप्रमाण हो जाता है जो उत्तरोत्तर घटकर दसवें गुणस्थान के अंतिम समय में अन्तर्मुहूर्त मात्र रह जाता है। इतना विशेष समझना चाहिए कि अन्तरकरण के बाद शेष कर्मों का स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण होने में कोई बाधा नहीं है।

अथ चारित्रमोहोपशमनप्रक्रमप्रदर्शनार्थमिदमाह–

अंतरपढमादु कमे एक्केक्कं सत्त चदुसु तिय पयडिं ।
सममुवसामदि णवकं समऊणावलिदुगं वज्जं ।।२५१।।

अन्तरप्रथमात् क्रमेणैकैकं सप्त चतुर्षु त्रयी प्रकृतिम् ।
सममुपशमयति नवकं समयोनावलिद्विकं वर्ज्यम् ।।२५१।।

अन्तरकरणसमाप्त्यनन्तरसमयादारभ्य क्रमेणान्तर्मुहूर्तेनान्तर्मुहूर्तेन कालेन एकामेकां सप्त चतुर्ष्वन्तर्मुहूर्तेषु त्रयीं त्रयीं प्रकृतिं समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धान् वर्जयित्वा–ऽयमनिवृत्तिकरणविशुद्धिसंयत उपशमयति कषायत्रयं वा परेणान्तर्मुहूर्तेन युगपदुपशमयतीति विशेषो ग्राह्य: ।।२५१।।

अब चारित्रमोह की उपशामना का क्रम दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(अंतरपढमादु) अंतरकरण समाप्त होने पर प्रथम समय से **(कमे)** क्रम से **(एक्केक्कं)** एक, एक, **(सत्त)** सात प्रकृतियाँ, **(चदुसु तिय पयडिं)** चार बार तीन–तीन प्रकृतियाँ **(समऊणावलिदुगं णवकं वज्जं)** एक समय कम दो आवलि प्रमाण नवक

समयप्रबद्ध छोड़कर **(सममुवसामदि)** युगपत् उपशमित करता है।।२५१।।

टीकार्थ– यह अनिवृत्तिकरण विशुद्धि संयत अंतरकरण की समाप्ति के अनन्तर समय से क्रम से अन्तर्मुहूर्त–अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा एक, एक, सात, चार अन्तर्मुहूर्त द्वारा तीन–तीन प्रकृतियों का एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्धों को छोड़कर उपशमन करता है अथवा तीन कषायों का दूसरे अन्तर्मुहूर्त के द्वारा युगपत् उपशमन करता है। यह विशेष ग्रहण करना चाहिए।।२५१।।

ता एवोपशम्यमानाः प्रकृतीरुद्दिशति –

एय णउंसयवेदं इत्थिवेदं तहेव एयं च ।
सत्तेव णोकसाया कोहादितियं तु पयडीओ[1]।।२५२।।

एको नपुंसकवेदः स्त्रीवेदस्तथैवैकश्च ।
सप्तैव नोकषायाः क्रोधादित्रयं तु प्रकृतयः।।२५२।।

एको नपुंसकवेदस्तथैवैकः स्त्रीवेदः सप्त नोकषाया हास्यादयः षट् पुंवेदश्चेति क्रोधत्रयं मानत्रयं मायात्रयं लोभत्रयं चेत्युपशम्यमानाः प्रकृतयः क्रमेण ज्ञातव्याः ।।२५२।।
उन उपशम्यमान प्रकृतियों को कहते हैं–

अन्वयार्थ–(एय णउंसयवेदं) एक नपुंसकवेद **(च)** और **(तहेव)** उसीप्रकार **(एयं इत्थिवेदं)** एक स्त्रीवेद **(सत्तेव णोकसाया)** सात नोकषाय (दो वेद छोड़कर) **(कोहादितियं)** क्रोधादिक तीन **(पयडिओ)** प्रकृतियाँ हैं।।२५२।।

टीकार्थ– एक नपुंसकवेद, एक स्त्रीवेद, हास्यादि छह व पुरूषवेद ऐसी सात नोकषाय, तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया और तीन लोभ ऐसी उपशम्यमान प्रकृतियाँ क्रम से जानना चाहिए।।२५२।।

विशेषार्थ– अन्तरकरण के बाद मोहनीय कर्म का १ नपुंसक वेद, २ स्त्रीवेद, ७ नोकषाय, ३ क्रोध, ३ मान, ३माया और ३ लोभ इन २१ प्रकृतियों का किस क्रम से और कितने काल में उपशमन अर्थात् सर्वोपशम करता है? उस विषय में इस गाथा में निर्देश किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण आचार्य स्वयं आगे करेंगे ही।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २७२ – ३१८ ।

अथ प्रथमोद्दिष्टस्य नपुंसकवेदस्योपशमनविधानं प्रदर्शयितुमिदमाह–

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणविहाणकमे।
णुवसामेदि हु संढं उवसंतं जाव ण च अण्णं[१] ।।२५३।।

अन्तरकृतप्रथमतः प्रतिसमयमसंख्यगुणविधानक्रमे।
नोपशाम्यति हि षण्ढमुपशान्तं यावन्न चान्यम् ।।२५३।।

अन्तरनिष्ठापनानन्तरसमयात्प्रभृति प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण नपुंसकवेदद्रव्यं गुणसंक्रमभागहारासंख्यातभागेन खण्डयित्वा एकं खण्डमुपशमयति यावन्नपुंसकवेदोपशमसमाप्तिर्भवति तावदन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं कामप्यन्यां प्रकृतिं नोपशमयति । कर्मणः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामुदीरणाशतैरप्युदयायोग्यतया सदवस्थाकरणमुपशमनं सर्वत्र ज्ञेयम्। तत्र नपुंसकवेदस्य प्रथमसमये उपशमनफालिद्रव्यमिदं

स a १२–।४२
७ । १० । ४८ । गु
a

द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणमुपशमनफालिद्रव्यमिदं

स a १२–।४२
७ । १० । ४८ । गु
a a

तृतीयसमये ततोऽसंख्येयगुणमुपशमनफालिद्रव्यमिदं

स a १२–।४२
७ । १० । ४८ । गु
a a a

एवमन्तर्मुहूर्तमात्रोपशमनकालचरमसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण नपुंसकवेदमुपशमयतीत्यर्थः।।२५३।।

अब प्रथम कहे गए नपुंसकवेद के उपशमन का विधान दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(अंतरकदपढमादो) अंतर करने पर प्रथम समय से **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखगुणविहाणकमे)** असंख्यातगुणितक्रम से **(जाव)** जब तक **(संढं हु)** नपुंसक वेद का **(ण उवसंतं)** उपशम नहीं होता तब तक **(अण्णं च)** अन्यकर्म का **(ण उवसामेदि)** उपशमन नहीं करता। ।।२५३।।

टीकार्थ– अन्तरकरण की समाप्ति होने पर अनन्तर समय से प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से नपुंसकवेद के द्रव्य को गुणसंक्रम भागहार के असंख्यातवें भाग से खण्डित करके एक भाग का उपशमन करता है। जब तक नपुंसकवेद के उपशम की समाप्ति होती है तब तक अन्तर्मुहूर्तकाल तक अन्य किसी भी प्रकृति का उपशमन नहीं करता ।

१) जयध. पु. १३, पृ. २७२–२७३

कर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेशों का सैकड़ों उदीरणाओं के द्वारा भी उदय के योग्य न होकर सद्वस्थारूप करना वह उपशमन है ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए ।

नपुंसकवेद का प्रथम समय में उपशमन फालिद्रव्य = $\dfrac{\text{नपुंसक वेद का द्रव्य}}{\text{गुणसंक्रमण भागहार का असंख्यातवाँ भाग}}$

नपुंसकवेदका द्रव्य = [स a १२–।४२ / ७।१०।४८] (वेद का द्रव्य निकालने के लिए प्रथम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध में ७ से भाग देने पर मोहनीय का द्रव्य आया । उसमें पुनः २ से भाग देने पर नोकषाय का द्रव्य आता है। उसका पुनः ५ नोकषाय से (हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, वेद) भाग देने पर वेद का द्रव्य आता है। वेद का द्रव्य ३ वेदों में विभाग करने के लिए ४८ से भाग दिया । उसमें ४२ भाग प्रमाण नपुंसकवेद का द्रव्य आता है। उसमें गुणसंक्रमण भागहार के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर उपशमन फालि का द्रव्य आता है। द्वितीय समय में उससे असंख्यात गुणित उपशमन फालि का द्रव्य आता है। [स a १२–।४२ / ७।१०।४८ गु a]

द्वितीय समय में उससे असंख्यातगुणा उपशमन फालि का द्रव्य है– [स a १२–।४२ / ७।१०।४८ गु aa] (असंख्यातगुणा दिखाने के लिए गुणसंक्रमण भागहार में पुनः असंख्यात से भाग देने पर भागहार छोटा होने से लब्ध बड़ा आता है।)

तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणा उपशमनफालि का द्रव्य है। [स a १२–।४२ / ७।१०।४८ गु aaa]

इसप्रकार अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमन काल के अंतिम समय तक असंख्यात गुणा क्रम से नपुंसक वेद का उपशमन करता है यह अर्थ है।।।२५३।।

विशेषार्थ– नपुंसकवेद का उपशमन करते समय विवक्षित प्रकृतियों की उदय और उदीरणा होती रहती है। जैसे जो जीव क्रोध संज्वलन और पुरुषवेद के उदय में श्रेणि आरोहण करता है उसके इन दो प्रकृतियों की उदय और उदीरणा होती है। अन्य वेद और कोई एक कषाय के उदय से श्रेणि पर चढ़ने वाले के उनकी उदय–उदीरणा होती है। गाथा २५३ में इष्ट की उदय उदीरणा होती है उसका यही आशय है तथा नपुंसकवेद को उपशमाते समय जो उसका अन्य प्रकृतियों में संक्रम होता है वह गुणसंक्रम होने से प्रत्येक समय में असंख्यातगुणे कर्म पुंज का संक्रम होता है और प्रतिसमय संक्रम को प्राप्त होने वाले कर्मपुंज से असंख्यातगुणित कर्मपुंज को उपशमाता है। जब नपुंसकवेद का उपशम करता है तब शेष कर्मों की उपशम क्रिया नहीं होती।

अथोदीरणादिद्रव्याल्पबहुत्वप्रदर्शनार्थमिदमाह–

संढादिमउवसमगे इट्ठस्स उदीरणा य उदओ य ।
संढादो संकमिदं उवसमियमसंखगुणियकमा[1] ।।२५४।।

षण्ढादिमोपशामक इष्टस्योदीरणा चोदयश्च ।
षण्ढात् संक्रमितमुपशमितमसंख्यगुणितक्रमः ।।२५४।।

नपुंसकवेदोपशमकस्य प्रथमसमये विवक्षितस्योदयप्राप्तस्य पुंवेदस्योदीरणाद्रव्यमिदं [स a १२–।२ / ७।१०।४८ ओ प प / a a a] तत्कालापकृष्टस्य पल्यासंख्यातैकभागेन भक्तस्य बहुभागमुपरितनस्थितौ दत्त्वा तदेकभागं पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं गुणश्रेण्यां निक्षिप्य तदेकभागस्यैवोदयनिक्षेपणात् । तस्मादुदीरणाद्रव्यात्तदात्वे पुंवेदस्यैवोदयमानं द्रव्यमसंख्यातगुणं [स a १२–।२ / ७।१०।४८ ओ प ८५ / a a] गुणश्रेण्यां प्राग्निक्षिप्तपल्यासंख्यातबहुभागमात्रत्वात् । तस्मादुदयद्रव्यान्नपुंसकवेदस्य संक्रमणद्रव्यमसंख्यातगुणं [स a १२–।४२ / ७।१०।४८ गु] तद्भागहारादसंख्यातगुणहीनेन गुणसंक्रमभागहारेण खण्डितैकभागमात्रत्वात् तदात्वे नपुंसकवेदस्योपशमनफालिद्रव्यमसंख्यातगुणं [स a १२–।४२ / ७।१०।४८ गु / a] तद्भागहारादसंख्यातगुणहीनेन भागहारेण खण्डितैकभागमात्रत्वात्। एवं द्वितीयादिसमयेषु चरमसमयपर्यन्तेषूदीरणाद्रव्यचतुष्टयाल्पबहुत्वं नेतव्यम् ।।२५४।।

अब उदीरणादि द्रव्य का अल्पबहुत्व दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(संढादिमउवसमगे)** नपुंसकवेद के उपशमक के प्रथम समय में **(इट्ठस्स)** विवक्षित जिसका उदय हो उसका **(उदीरणा)** उदीरणा द्रव्य **(य)** और **(उदओ य)** उदयद्रव्य, **(संढादो संकमिदं)** नपुंसकवेद में से अन्य प्रकृति में संक्रमित होने वाला द्रव्य, **(उवसमियं)** नपुंसकवेद का उपशमित होने वाला द्रव्य **(असंखगुणियकमा)** क्रम से असंख्यातगुणित हैं।।२५४।।

टीकार्थ– नपुंसकवेद के उपशमक के प्रथम समय में विवक्षित उदयप्राप्त पुरुषवेद का उदीरणा द्रव्य इतना है। [स a १२–।२ / ७।१०।४८ ओ प प / a a a] (गुणश्रेणी के लिए अपकर्षण किये द्रव्य से उदयावलि में प्राप्त हुआ द्रव्य ही उदीरणा द्रव्य समझे। क्योंकि) उसकाल में अपकृष्ट द्रव्य में पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २७२–२७४

बहुभाग उपरितन स्थिति में देकर एकभाग को पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग गुणश्रेणि में देता है और एकभाग ही उदयावली में देता है। उस उदीरणा द्रव्य से उसकाल में पुरुषवेद का उदयमान द्रव्य असंख्यातगुणा है क्योंकि

स a १२–।२
७।१०।४८ ओ प ८५
a a

गुणश्रेणि में पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभागमात्र द्रव्य निक्षिप्त होता है। उस उदयद्रव्य से नपुंसकवेद का संक्रमण–द्रव्य असंख्यातगुणा है, क्योंकि

स a १२–।४२
७।१०।४८।गु

उस भागहार से (गुणश्रेणि में द्रव्य देने के लिए जो अपकर्षण भागहार है उससे) असंख्यात गुणेहीन गुणसंक्रमभागहार से खण्डित एक भागमात्र संक्रमण द्रव्य है। उसी समय में नपुंसकवेद का उपशमन फालिद्रव्य असंख्यातगुणा है।

स a १२–।४२
७।१०।४८।गु
a

क्योंकि गुणसंक्रमणभागहार से असंख्यातगुणे हीन भागहार से खण्डित एक भागमात्र उपशमन द्रव्य है इसप्रकार द्वितीयादि समय से अंतिम समयतक उदीरणादि चार द्रव्यों का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।।२५४।।

विशेषार्थ – नपुंसकवेद के उपशमनकाल के प्रथम समय में जिस वेद का उदय हो उसका उदीरणा द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण होने पर भी आगे कहे गये पदों की अपेक्षा से सबसे कम है। उससे उदय द्रव्य असंख्यातगुणा है क्योंकि उदीरणा द्रव्य तो एक समय में अपकृष्ट द्रव्य के एकभाग के एकभाग प्रमाण है और पूर्व के अन्तर्मुहूर्त काल में गुणश्रेणिरूप से संचित हुआ सभी द्रव्य उस समय में उदय में आ रहा है और गुणश्रेणि में बहुभाग द्रव्य प्राप्त हुआ है। इसलिए उदीरणा द्रव्य से उदय द्रव्य असंख्यातगुणा है। उदयद्रव्य से नपुंसकवेद का संक्रमण द्रव्य असंख्यातगुणा है क्योंकि अपकर्षण संबंधी भागहार से गुणसंक्रमण भागहार असंख्यातगुणा हीन है। संक्रमणद्रव्य से उस समय में नपुंसकवेद का उपशमित होने वाला द्रव्य असंख्यातगुणा है, क्योंकि गुणसंक्रमण सम्बन्धी भागहार से उपशमनसंबंधी भागहार असंख्यातगुणा हीन है। इसप्रकार उदीरणा द्रव्य, उदय द्रव्य,संकमण द्रव्य और उपशमन द्रव्य का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

अस्मिन्नवसरे स्थितिखण्डादिसम्भवासम्भवप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह –

अंतरकरणादुवरिं ठिदिरसखंडा ण मोहणीयस्स।
ठिदिबंधोसरणं पुण संखेज्जगुणेण हीणकमं[1] ।।२५५।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २७५.

अन्तरकरणादुपरि स्थितिरसखण्डा न मोहनीयस्य।
स्थितिबन्धापसरणं पुनः संख्यगुणेन हीनक्रमम्।।२५५।।

अन्तरकरणस्योपरि नपुंसकवेदोपशमनप्रथमसमयादारभ्य मोहनीयस्य स्थितिखण्डन-मनुभागखण्डनं च नास्ति उपशम्यमानकर्मस्थितेः काण्डकघातो नास्तीति परमगुरूपदेशात् । तर्ह्यनुपशम्यमानमोहप्रकृतीनां स्थितिकाण्डकघातो भवेदिति नाशङ्कितव्यं उपशमनकाले मोहप्रकृतीनां सर्वासामपि स्थितिः सदृश्येवेति च परमागमसम्प्रदायस्य परमगुरुपर्वक्रमायातस्य सद्भावात् स्थित्यनुसारित्वादनुभागस्यापि खण्डनं विना तादृगवस्थं सिद्धमेव । मोहनीयस्य स्थितिबन्धापसरणं पुनः संख्यातगुणहीनक्रमेण वर्तते । अंतरकरणसमाप्त्यनंतरं संख्यातसहस्रवर्षमात्रस्थितिबन्धसम्भवात् तदनुसारेण स्थितिबन्धापसरणस्य तत्संख्यातबहुभागमात्रस्य स्थितिबन्धं प्रति संख्यातगुण-हीनत्वोपपत्तेः ।।२५५।।

उस काल में स्थितिकांडकादि में से क्या संभव है और क्या संभव नहीं है यह दिखाने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं -

अन्वयार्थ-(अंतरकरणादुवरिं) अंतरकरण के बाद **(मोहणीयस्स)** मोहनीय के **(ठिदिरसखंडा ण)** स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात नहीं होते हैं। **(पुण)** पुनः **(ठिदिबंधोसरणं)** स्थितिबंधापसरण **(संखेज्जगुणेण हीणकमं)** क्रम से संख्यातगुणा हीन होता है।।२५५।।

टीकार्थ-अंतरकरण के बाद नपुंसकवेद के उपशमन के प्रथम समय से मोहनीय का स्थितिखण्डन और अनुभागखण्डन नहीं होता है, क्योंकि उपशम्यमान कर्मस्थिति का कांडकघात नहीं होता ऐसा परमगुरु का उपदेश है। तो फिर अनुपशम्यमान मोह प्रकृति का स्थितिकांडकघात होगा ऐसी शंका नहीं करें क्योंकि उपशमन काल में सभी मोह प्रकृति की स्थिति समान ही है। ऐसा परमगुरु का परंपराक्रम से आया परमागम संप्रदाय है। स्थिति का अनुसरण करने से अनुभाग का भी खण्डन न होकर अवस्थित रहना सिद्ध है। मोहनीय का स्थितिबंधापसरण पुनः संख्यातगुणा हीनक्रम से होता है। अन्तरकरण की समाप्ति होने के बाद संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध होनेसे उसके अनुसार स्थितिबन्धापसरण संख्यात बहुभागमात्र होता है अतः स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है यह बात युक्तियुक्त है।।२५५।।

विशेषार्थ- १) अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होने के बाद मोहनीय की किसी भी प्रकृति का स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता। इसका विशेष स्पष्टीकरण करते हुए जयधवला में जो कुछ लिखा है उसका भाव यह है कि यदि अन्तरकरण क्रिया होने के बाद नपुंसकवेद या चारित्रमोहसम्बन्धी अन्य प्रकृति का स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डक घात स्वीकार किया जाय तो उस-उस प्रकृति की उपशमाने की क्रिया सम्पन्न होने के पूर्व

उस प्रकृति के जिन प्रदेशपुंजों को नहीं उपशमाया गया है उसके साथ जो प्रदेशपुंज उपशमाये जा चुके हैं उनके भी स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात का प्रसंग प्राप्त होता है। किन्तु उपशमाये गये प्रदेशपुंज का न तो स्थितिकाण्डकघात ही सम्भव है और न अनुभागकाण्डकघात ही सम्भव है, क्योंकि उनका प्रशस्त उपशामना द्वारा उपशम हुआ है।

२) उक्त तथ्य के समर्थन में दूसरा तर्क यह दिया गया है कि यदि उपशमाई जाने वाली प्रकृति को छोडकर उस समय नहीं उपशमायी जानेवाली मोह प्रकृतियों का स्थितिकाण्डक घात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया जाता है तो उपशम श्रेणि में बारह कषाय और नौ नोकषयों की स्थितियों में विषमता हो जाएगी जो युक्त नहीं है, क्योंकि इन कर्मों की उपशान्त अवस्था में स्थिति सदृश रहती है। ऐसा गुरु परम्परा से उपदेश चला आ रहा है।

३) साथ ही आगम प्रमाण से भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है कि माया वेदक के कार्यों का उल्लेख करते हुए जो चूर्णिसूत्र आये हैं उनमें जहाँ मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष कर्मों का स्थितिबन्ध के साथ स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया है वहाँ माया संज्वलन और लोभ संज्वलन का मात्र स्थितिबन्ध तो स्वीकार किया है पर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं स्वीकार किया है। इस प्रकार उक्त तर्क और प्रमाण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होने के बाद मोहनीय की किसी भी प्रकृति का स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता ।

जत्तो पाये होदि हु ठिदिबंधो संखवस्समेत्तं तु ।
तत्तो संखगुणूणं बंधोसरणं तु पयडीणं ।।२५६।।

यत: प्रायेण भवति हि स्थितिबन्ध: संख्यवर्षमात्रस्तु ।
तत: संख्यगुणोनं बन्धापसरणं तु प्रकृतीनाम् ।।२५६।।

यत: कारणात्संख्यातसहस्रवर्षमात्र: स्थितिबन्ध: प्रायेण भवति तत: कारणात् संख्यातगुणोनं स्थितिबन्धापसरणं बध्यमानप्रकृतीनां भवतीति सूत्रोक्तत्वात्—

स्थितिबन्ध:	व १000	व १000 ९ ५	व १000 ९ ५५
स्थितिबन्धापसरणप्रमाणं	व १000 ९ ४ ५	व १000 ९ ४ ५५	व १000 ९ ४ ५५५

मोहनीयवर्ज्यानां ज्ञानावरणादिशेषकर्मणां स्थितिबन्ध: अन्तरकरणचरमसमयस्थितिबन्धाद–

संख्यातगुणहीन:पल्यासंख्यातबहुभागमात्रस्यापसरणात् । तत्र तीसियानां स्थितिबन्ध: पल्यासंख्यातैकभागमात्रोऽपि सर्वत: स्तोक: $\frac{\text{प}}{\text{a a}}$ **अस्मादसंख्येयगुणो वीसियानां स्थितिबन्ध:** $\frac{\text{प}}{\text{a}}$ **अस्मादस्यैवार्धेनाधिको वेदनीयस्य स्थितिबन्ध:** $\frac{\text{प ३}}{\text{a २}}$ ।।२५६।।

अन्वयार्थ– **(जत्तो)** जिस कारण से **(संखवस्समेत्तं)** संख्यात वर्षमात्र **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(पाये)** प्राय: **(होदि हु)** होता है। **(तत्तो)** इसलिए **(पयडीणं तु)** प्रकृतियों का **(संखगुणूणं)** संख्यातगुणा हीन **(बंधोसरणं)** स्थितिबंधापसरण होता है।।२५६।।

टीकार्थ– जिस कारण से संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध प्राय: होता है उस कारण से बध्यमान प्रकृतियों का संख्यातगुणा हीन स्थितिबंधापसरण होता है ऐसा सूत्र में कहा गया है। स्थितिबंध का प्रमाण– व १००० ९ (संख्यात हजार वर्ष)। स्थितिबंध के प्रमाण में संख्यात से भाग देकर उसके बहुभाग का अपसरण होता है। संख्यात की संख्या ५ मानी और बहुभाग ४ स्थितिबंधापसरण का प्रमाण – $\frac{\text{व १००० ९ ४}}{\text{५}}$ शेष स्थितिबंध का प्रमाण – $\frac{\text{व १००० ९}}{\text{५}}$

(बहुभाग का अपसरण होकर एक भाग रहा उतना ही बंध होता है।)

स्थितिबंधापसरण – $\frac{\text{व १००० ९ ४}}{\text{५ ५}}$ (ऊपर के स्थितिबंध में पुन: संख्यात का भाग देकर जो बहुभाग आया उतना अपसरण होता है और एक भाग शेष रहा उतना आगे बन्ध होता है।)

स्थितिबन्ध – $\frac{\text{व १००० ९}}{\text{५ ५}}$ स्थितिबंधापसरण – $\frac{\text{व १००० ९ ४}}{\text{५ ५ ५}}$

(पुन: ऊपर के स्थितिबन्ध को संख्यात से भाग देकर जो बहुभाग आता है उतना अपसरण होता है) मोहनीय को छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि कर्मों का स्थितिबंध अन्तरकरण के अंतिम समय के स्थितिबन्ध से असंख्यातगुणा हीन होता है क्योंकि पल्य के असंख्यात बहुभागमात्र का अपसरण होता है। उसमें से तीसिय का स्थितिबंध पल्य का असंख्यातवां भागमात्र होकर सबसे कम है। $\frac{\text{प}}{\text{a a}}$ इससे वीसिय का असंख्यातगुणा है। $\frac{\text{प}}{\text{a}}$ इसके अर्ध से अधिक वेदनीय का स्थितिबंध है। $\frac{\text{प ३}}{\text{a २}}$ अर्थात् वीसिय से डेढ़गुणा वेदनीय का स्थितिबंध होता है ।।२५६।।

अथोपरि भविष्यत्स्थितिबन्धापसरणप्रमाणावधारणार्थमाह –

वस्साणं बत्तीसादुवरिं अंतोमुहुत्तपरिमाणं।
ठिदिबंधाणोसरणं अवरट्ठिदिबंधणं जाव[1] ।।२५७।।

वर्षाणां द्वात्रिंशदुपर्यन्तर्मुहूर्तपरिमाणम् ।
स्थितिबन्धानामपसरणमवरस्थितिबन्धनं यावत् ।।२५७।।

द्वात्रिंशद्वर्षमात्रस्थितिबन्धस्योपरि अन्तर्मुहूर्तपरिमाणं स्थितिबन्धापसरणं सर्वजघन्यस्थितिबन्ध-पर्यन्तं भवतीति ज्ञातव्यम् ।।२५७।।

अब इसके बाद होने वाले स्थितिबंधापसरण के प्रमाण का अवधारण करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– (वस्साणं बत्तीसादुवरिं) बत्तीस वर्ष स्थितिबंध होने के बाद **(अवरट्ठिदिबंधणं जाव)** जघन्य स्थितिबन्ध होने तक **(अंतोमुहुत्तपरिमाणं)** अंतर्मुहूर्त प्रमाण **(ठिदिबंधाणोसरणं)** स्थितिबंधापसरण होता है।।२५७।।

टीकार्थ– बत्तीस वर्षमात्र स्थितिबंध के बाद सबसे जघन्य स्थितिबंध होने तक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिबंधापसरण होता है ऐसा जानना चाहिए।।२५७।।

अथ स्थितिबन्धापसरणविषयनिर्देशार्थमिदमाह–

ठिदिबंधाणोसरणं एयं समयप्पबद्धमहिकिच्चा।
उत्तं णाणादो पुण ण च उत्तं अणुववत्तीदो[2] ।।२५८।।

स्थितिबन्धानामपसरणमेकं समयप्रबद्धमधिकृत्य ।
उक्तं नानातः पुनो न चोक्तमनुपपत्तितः ।।२५८।।

विवक्षितापसरणेनापसृत्य विवक्षितस्थितिबन्धप्रथमसमये बध्यमानमेकं समयप्रबद्ध-मधिकृत्य विवक्षितं स्थितिबन्धापसरणमुक्तं न पुनरन्तर्मुहूर्तकाले द्वितीयादिसमयेषु बध्यमानसमयप्रबद्धानां प्रत्येकं स्थितिबन्धापसरणमन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं समस्थितिबन्धाभ्युपगमेन नानासमयप्रबद्धानधिकृत्य स्थितिबन्धापसरणानुपपत्तेः। अनेनान्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तमेकेनैव स्थिति-बन्धापसरणेन प्राक्तनस्थितिबन्धादपसृत्य समस्थितीनेव समयप्रबद्धान् बध्नातीत्ययमर्थो ज्ञाप्यते ।।२५८।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २८९ । २) जयध. पु. १३, पृ. २८९ ।

अब स्थितिबंधापसरण के विषय का निर्देश करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(एयं समयपबद्धं अहिकिच्चा)** एक समयप्रबद्ध का आश्रय करके **(ठिदिबंधाणोसरणं)** स्थितिबंधापसरण **(उत्तं)** कहा गया **(पुण)** पुनः **(णाणादो)** नाना समय–प्रबद्ध की अपेक्षा से **(ण च उत्तं)** स्थितिबन्धापसरण नहीं कहा **(अणुववत्तीदो)** क्योंकि प्रत्येक समय में स्थितिबंधापसरण का अभाव है।।२५८।।

टीकार्थ– विवक्षित अपसरण के द्वारा कम करके विवक्षित स्थितिबंध के प्रथम समय में बांधे जाने वाले एक समयप्रबद्ध का आश्रय करके विवक्षित स्थितिबंधापसरण कहा है। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल में द्वितीयादि समय में बांधे जानेवाले समयप्रबद्धो में से प्रत्येक का स्थितिबंधापसरण नहीं कहा गया क्योंकि अन्तर्मुहूर्त काल तक समान स्थितिबन्ध स्वीकारने पर नाना समयप्रबद्धों की अपेक्षा से स्थितिबंधापसरण का अभाव है। इससे अन्तर्मुहूर्तकाल तक एक स्थितिबंधापसरण के द्वारा पूर्व के स्थितिबंध में अपसरण करके समान स्थितियुक्त समयप्रबद्धों को बाँधता है, यह अर्थ निकलता है।।२५८।।

अथ नपुंसकवेदोपशमनानन्तरकालभाविक्रियान्तरप्रदर्शनार्थमिदमाह–

एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु।
संढुवसमिदे तत्तो इत्थिं च तहेव उवसमदि।।२५९।।

एवं संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रकेष्वतीतेषु ।
षण्ढोपशमिते ततः स्त्रीं च तथैवोपशमयति ।।२५९।।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु अन्तर्मुहूर्तकालेन नपुंसकवेदे उपशमिते ततः परं स्त्रीवेदमपि नपुंसकवेदोपशमनप्रकारेणैवान्तर्मुहूर्तकालेनोप–शमयति । अत्र स्त्रीवेदद्रव्यं संस्थाप्य ततः संक्रमफालिद्रव्यमुपशमनफालिद्रव्यं च गृहीत्वा उदयमानप्रकृतेरुदीरणाद्रव्यमुदयद्रव्यं च संस्थाप्य पूर्ववदल्पबहुत्वं वक्तव्यम् । प्रतिसमय–मसंख्यातगुणितक्रमश्च ज्ञातव्य इत्यर्थः । मोहवर्जितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां स्थित्यनुभाग–खण्डनं नपुंसकवेदोपशमनकालचरमसमयस्थित्यनुभागखण्डनादन्यदेव स्त्रीवेदोपशमनकालप्रथमसमये प्रारभ्यते । स्थितिबन्धस्त्वायुर्वर्जितसर्वकर्मणां प्राक्तनस्थितिबन्धादन्य एव प्रारभ्यते ।।२५९।।

अब नपुंसकवेद के उपशमन के पश्चात् के काल में होने वाली दूसरी क्रियाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(एवं)** इसप्रकार **(संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु)** संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत होने पर **(संढुवसमिदे)** नपुंसकवेद का उपशम होता है **(च)** और **(तत्तो)** उसके बाद **(तहेव)** उसके समान **(इत्थिं)** स्त्रीवेद का **(उवसमदि)** उपशम करता है।।२५९।।

टीकार्थ–इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा नपुंसकवेद का उपशमन होने पर उसके बाद अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा नपुंसकवेद के उपशमन के समान ही स्त्रीवेद का भी उपशमन करता है। यहाँ स्त्रीवेद का द्रव्य स्थापित करके उससे संक्रमफालि का द्रव्य व उपशमनफालि का द्रव्य ग्रहण करके उदयमान प्रकृति का उदीरणा द्रव्य व उदयद्रव्य स्थापित कर पूर्व के समान अल्पबहुत्व का कथन करना चाहिए और प्रत्येक समय में असंख्यातगुणा क्रम जानना चाहिए। स्त्रीवेद के उपशमन काल के प्रथम समय में मोह छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि कर्मों का स्थितिखण्डन व अनुभागखंडन नपुंसकवेद के उपशमनकाल के अंतिम समय में होने वाले स्थितिखण्डन और अनुभागखण्डन से अन्य ही शुरू होते हैं। आयुकर्म छोड़कर अन्य सर्व कर्मों का स्थितिबन्ध पूर्व के स्थितिबंध से अन्य ही शुरू होता है।।२५९।।

विशेषार्थ– कषायप्राभृत के चूर्णिसूत्र में नपुंसकवेद का आयुक्तकरण उपशामक होता है यह कहा है। जयधवला टीका में आयुक्तकरण का अर्थ उद्यतकरण और प्रारम्भकरण किया है। इसका तात्पर्य इतना है कि जैसे ही यह जीव चारित्रमोहनीय की अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न कर लेता है, उसके बाद दूसरे समय में ही वह नपुंसकवेद की उपशमन क्रिया का प्रारम्भ कर देता है और जिस समय नपुंसकवेद की उपशमन क्रिया सम्पन्न होती है उसके अनन्तर समय से स्त्रीवेद की उपशमन क्रिया प्रारम्भ होती है।

अथ स्त्रीवेदोपशमनकाले कार्यविशेषप्रतिपादनार्थमिदमाह–

थीयद्धासंखेज्जदिभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो ।
संखवुदं रसबंधो विकेवलणाणेगठाणं तु[1] ।।२६०।।

स्त्र्यद्धा संख्येयभागेऽपगते त्रिघातिस्थितिबन्धः।
संख्यातं रसबन्धो विकेवलज्ञानैकस्थानं तु।।२६०।।

स्त्रीवेदोपशमनकालस्य संख्यातैकभागे गते सति मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वतः स्तोकः संख्यातसहस्रवर्षमात्रः। ततः संख्येयगुणः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो घातित्रयस्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणः पल्यासंख्यातैकभागमात्रो नामगोत्रस्थितिबन्धः । ततः साधिकः सातवेदनीय–स्थितिबन्धः। तदैव केवलज्ञानदर्शनावरणद्वयरहितस्य घातित्रयस्य लतासमानैकस्थानानु–भागबन्धश्च भवति। एवं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु अन्तर्मुहूर्तकालेन स्त्रीवेदोऽप्युप–शमितो भवति ।।२६०।।

१) जयध. पु. १३, पृ. २८० ।

अब स्त्रीवेद के उपशमनकाल में कार्यविशेष का प्रतिपादन करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(थीयद्धासंखेज्जदिभागेपगदे) स्त्रीवेद के उपशमन काल का संख्यातवाँ भाग जाने पर **(तिघादिठिदिबंधो)** तीन घाति का स्थितिबन्ध **(संखवुदं)** संख्यातवर्ष होता है। **(विकेवलणाणेगठाणं तु)** केवलज्ञान और केवलदर्शन छोड़कर शेष तीन घातियों का एकस्थानीय **(रसबंधो)** अनुभागबंध होता है।।२६०।।

टीकार्थ–स्त्रीवेद के उपशमन काल का संख्यातवाँ भाग जाने पर मोहनीय का स्थितिबन्ध सबसे कम संख्यात हजार वर्षमात्र होता है। उससे तीन घातियों का स्थितिबन्ध संख्यातगुणा संख्यात हजार वर्षमात्र होता है। उससे असंख्यातगुणा ऐसा पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र नामगोत्र का स्थितिबन्ध होता है। उससे कुछ अधिक सातावेदनीय का स्थितिबंध होता है। उसी समय केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण से रहित तीन घातियों का लता समान एक स्थानीय अनुभागबन्ध होता है। इसप्रकार संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा स्त्रीवेद उपशमित होता है।।२६०।।

विशेषार्थ– स्त्रीवेद के उपशमन करने के काल में से संख्यातवें भाग प्रमाण काल के जाने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय की १४ प्रकृतियों का स्थितिबन्ध पहले जो असंख्यात वर्षप्रमाण होता था वह न होकर अब संख्यात वर्ष प्रमाण होने लगता है तथा अनुभागबन्ध इससे पहले जो द्विस्थानीय होता था उसके स्थान पर लतारूप एक स्थानीय होने लगता है। मात्र केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण के अनुभागबन्ध के लिए यह नियम लागू नहीं है।।२६०।।

स्त्रीवेदोपशमनानन्तरकालभाविक्रियाविशेषप्ररूपणार्थमिदमाह–

थीउवसमिदाणंतरसमयादो सत्तणोकसायाणं ।
उवसमगो तस्सद्धा संखेज्जदिमे गदे तत्तो[1] ।।२६१।।

स्त्र्युपशमितानन्तरसमयात् सप्तनोकषायाणाम् ।
उपशामकस्तस्याद्धा संख्याते गते ततः ।।२६१।।

स्त्रीवेदोपशमनानन्तरसमयादारभ्य पुंवेदषण्णोकषायप्रकृतीरुपशमयति ।।२६१।।

स्त्रीवेदके उपशमन के अनन्तर काल में होने वाले क्रियाविशेषोंका प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २८२ ।

अन्वयार्थ–(थीउवसमिदाणंतरसमयादो) स्त्रीवेद का उपशमन होने के बाद के समय से**(सत्तणोकसायाणं)** सात नोकषायों का **(उवसमगो)** उपशामक होता है। **(तत्तो)** उसके बाद **(तस्सद्धा)** उसका काल **(संखेज्जदिमे गदे)** संख्यातवाँ भाग जाने पर– ।।२६१।।

टीकार्थ– स्त्रीवेद का उपशमन होने पर अनन्तर समय से पुरुषवेद व छह नोकषाय प्रकृतियों का उपशमन करता है।।२६१।।

तदुपशमनकालस्यान्तर्मुहूर्तस्य संख्यातैकभागे गते ततः परं सम्भविकार्यविशेषप्रतिपाद–नार्थमिदमाह–

णामदुगवेयणीयट्ठिदिबंधो संखवस्सयं होदि।
एवं सत्तकसाया उवसंता सेसभागंते[1] ।।२६२।।

नामद्रिकवेदनीयस्थितिबन्धः संख्यवर्षको भवति ।
एवं सप्तकषाया उपशान्ताः शेषभागान्ते ।।२६२।।

सप्तनोकषायोपशमनकालसंख्यातबहुभागावशेषावसरे सर्वतः स्तोकः संख्यातसहस्र–वर्षमात्रो मोहस्थितिबन्धः । ततः संख्येयगुणः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो घातित्रयस्थितिबन्धः। ततः संख्यातगुणः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो वीसियस्थितिबन्धः । ततः साधिकः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो वेदनीयस्थितिबन्धश्च भवति । एवं नपुंसकवेदोपशमनप्रकारेणैव सप्त नोकषायाः संख्यातसहस्र–स्थितिबन्धेषु गतेषु अवशेषबहुभागचरमसमये उपशमिता भवन्ति ।।२६२।।

उस अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमन काल का संख्यातवाँ एकभाग जाने पर उसके बाद होने वाले कार्यविशेष का प्रतिपादन करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ–(णामदुगवेयणीयट्ठिदिबंधो) नाम, गोत्र और वेदनीय का स्थितिबन्ध **(संखवस्सयं)** संख्यात वर्ष **(होदि)** होता है। **(एवं)** इसीप्रकार **(सेसभागन्ते)** शेष भाग के अंत में **(सत्तकसाया)** सात नोकषाय **(उवसंता)** उपशमित होती हैं।।२६२।।

टीकार्थ–सात नोकषाय के उपशमनकाल का संख्यात बहुभाग शेष रहता है उस समय सबसे कम संख्यात हजार वर्षमात्र मोहनीय का स्थितिबंध होता है। उससे संख्यातगुणा संख्यात हजार वर्षमात्र तीन घाति का स्थितिबंध होता है। उससे संख्यातगुणा संख्यात हजार वर्षमात्र वीसिय का स्थितिबन्ध होता है। उससे अधिक संख्यात हजार वर्षमात्र वेदनीय का स्थितिबंध होता है। इस प्रकार नपुंसकवेद के उपशमन प्रकार से ही संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर शेष रहे बहुभाग के अंतिम समय में सात नोकषायें उपशमित होती हैं। ।।२६२।।

---

१) जयध. पु. १३ पृ. २८४ ।

अत्र सम्भवद्विशेषप्रदर्शनार्थमिदमाह–

णवरि य पुंवेदस्स य णवकं समऊणदोण्णिआवलियं ।
मुच्चा सेसं सव्वं उवसंतं होदि तच्चरिमे[1] ।।२६३।।

नवरि च पुंवेदस्य च नवकं समयोनद्व्यावलिकाम् ।
मुक्त्वा शेषं सर्वमुपशान्तं भवति तच्चरमे ।।२६३।।

पुंवेदनवकबन्धस्य समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धान् वर्जयित्वा शेषं पुंवेदद्रव्यं सर्वमपि तदुपशमनकालचरमसमये उपशमितं भवतीत्ययं विशेषो द्रष्टव्यः । पुंवेदसत्त्वद्रव्योपशमनकालचरमसमये समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धानामुपशमनवर्जितमवस्थानं कथमिति चेदुच्यते, तद्यथा–

पुंवेदोपशमनकालाभ्यन्तरे आवलिद्वयेऽवशिष्टे द्विचरमावलिप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य बन्धप्रथमसमयादारभ्य बन्धावलिचरमसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति । सर्वत्र नवकबन्धस्याचलावलिव्यतिक्रमे सत्येवोपशमनापकर्षणादिक्रियासम्भवो न बन्धावल्यामिति परमागमसम्प्रदायाद्बन्धावल्यां व्यतिक्रान्तायां तदनन्तरचरमोपशमनावल्यां प्रथमसमयादारभ्य समयं प्रत्येकैकफाल्युपशमनविधानेन उपशमनावलिचरमसमये चरमफालिद्रव्यं सर्वसंक्रमेणोपशमितम्। द्विचरमावलिद्वितीयसमये बद्धसमयप्रबद्धस्योपशमनकालचरमावलिप्रथमसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति। ततः परं समयं प्रत्येकैकफालिद्रव्योपशमनविधानेनोपशमनावलिचरमसमये चरमफालिद्रव्यं वर्जयित्वा शेषं सर्वमुपशमितम्। पुनः द्विचरमावलितृतीयसमये बद्धसमयप्रबद्धस्योपशमन–चरमावलिद्वितीयसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति । ततः परं समयं प्रत्येकैकफाल्युपशमनविधानेन चरमफालिद्विचरमफालिद्वयं वर्जयित्वा शेषं सर्वमुपशमितम् ।

एवमनेन क्रमेण गत्वा द्विचरमावलिचरमसमये बद्धसमयप्रबद्धस्योपशमनचरमावलि–द्विचरमसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति । ततः परं चरमसमये एकफालिद्रव्यमुपशमितम्, अवशिष्टं सर्वद्रव्यमनुपशमितमास्ते, तत उपशमनकालचरमावल्यां बद्धसमयप्रबद्धानामावलिमात्राणा–मुपशमनचरमावलिचरमसमये किंचिदपि द्रव्यं नोपशमितं तेषामद्यापि बन्धावलिव्यति–क्रमाभावात् । पुनरुपरितनोच्छिष्टावल्यां पुंवेदस्य बन्ध एव नास्ति, उदयोऽपि नास्ति । एवं पुंवेदोपशमनकालचरमसमये द्विचरमावलिद्वितीयादिसमयबद्धसमयप्रबद्धाः समयोनावलिमात्राश्च–रमावलिबद्धसमयप्रबद्धाः सम्पूर्णावलिमात्रास्ते सर्वेऽपि मिलित्वा समयोनद्व्यावलिमात्राः समयप्रबद्धा अनुपशमिता अवतिष्ठन्ते द्विचरमावलिप्रथमसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य पुंवेदोपशमन–

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २८४ ।

कालचरमावलिचरमसमये सर्वात्मनोपशमितत्वात्। द्वितीयादिसमयबद्धसमयप्रबद्धानां किञ्चिन्न्यूनत्वेऽपि एकदेशविकृतमनन्यवद्भवतीति न्यायेन सर्वेऽपि पुंवेदनवकबन्धसमयप्रबद्धाः समयोनद्व्यावलिमात्राः पुंवेदोपशमनकालचरमसमये उपशमनवर्जिताः सन्तीति श्रीमन्माधवचन्द्र–त्रैविद्यदेवानां तात्पर्यव्याख्यानम् ।।२६३।।

								0
							0	१
						0	१	२
					0	१	२	३
				0	१	२	३	४
			0	१	२	३	४	४
उच्छिष्टावलिः		0	१	२	३	४	४	४
	0	१	२	३	४	४	४	४
उपशमनावलिः	१	२	३	४	४	४	४	
चरमावलिः	२	३	४	४	४	४		
	३	४	४	४	४			
	४	४	४	४				
बंधावलिः	४	४	४					
द्विचरमावलिः	४	४						
	४							

यहाँ (सात नोकषाय–उपशमनकाल के अंतिम समय में) होने वाला विशेष दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(णवरि य) विशेष यह है कि **(पुंवेदस्स य)** पुरुषवेद का **(समऊणदोण्णि–आवलियं)** एक समय कम दो आवलिमात्र **(णवकं)** नवक समयप्रबद्ध **(मुच्चा)** छोड़कर **(सेसं**

सव्वं) शेष सर्व द्रव्य **(तच्चरिमे)** उसके अंतिम समय में **(उवसंतं)** उपशांत **(होदि)** होता है।।२६३।।

टीकार्थ–सात नोकषाय के उपशमनकाल के अंतिम समय में पुरुषवेद के नवक बन्ध के एक समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्धों को छोड़कर शेष पुरुषवेद का सभी द्रव्य उपशमित होता है यह विशेष जानना चाहिए। पुरुषवेद के सत्त्वद्रव्य के उपशमनकाल के अंतिम समय में एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्धों का उपशमन न होकर अवस्थान कैसे? वह कहते हैं–

पुरुषवेद के उपशमन काल में दो आवली शेष रहने पर द्विचरम आवली के प्रथम समय में बांधा गया समयप्रबद्ध का बन्ध के प्रथमसमय से बन्धावलि के चरम समय तक उपशमन नहीं होता। सब जगह नवकबन्ध की अचलावली व्यतीत होने पर उपशमन, अपकर्षणादि क्रिया संभव है, बन्धावली में नहीं ऐसा परमागम का सम्प्रदाय है। बन्धावली उल्लंघन करने पर उसके अनन्तर अंतिम उपशमनावली में एक–एक समय में एक–एक फालि का उपशमन विधान से उपशमनावली के अंतिम समय में चरमफालि का द्रव्य सर्वसंक्रमण द्वारा उपशमित हुआ।

द्विचरमावलि के द्वितीय समय में बाँधे गये समयप्रबद्ध का उपशमनकाल के अंतिम आवली के प्रथम समय तक उपशमन नहीं होता। उसके बाद एक–एक समय में एक–एक फालि का उपशमन विधान से उपशमनावली के अंतिम समय में अंतिम फालि का द्रव्य छोडकर शेष सभी द्रव्य उपशमित हुआ। इस प्रकार इस क्रम से जाकर द्विचरम आवली के अंतिम समय में बाँधे गये समयप्रबद्ध का उपशमन के चरम आवली के द्विचरम समय तक उपशमन नहीं होता। उसके बाद अंतिम समय में एक फालि का द्रव्य उपशमित हुआ। शेष सभी द्रव्य अनुपशमित रहता है। उसके बाद उपशमन काल की अंतिम आवली में बांधे गये आवलिमात्र समयप्रबद्धों का उपशमन अंतिम आवली के अंतिम समय में कुछ भी द्रव्य उपशमित नहीं हुआ क्योंकि अद्यापि उसकी बंधावली उल्लंघी नहीं है। पुनः ऊपर की उच्छिष्टावली में पुरुषवेद का बन्ध भी नहीं, उदय भी नहीं। इस प्रकार पुरुषवेद के उपशमन काल के अंतिम समय में द्विचरमावली के द्वितीयादि समयों में बांधे गये एक समय कम आवलिमात्र समयप्रबद्ध और अंतिम आवली में बांधे गये सम्पूर्ण आवली मात्र समयप्रबद्ध सभी मिलकर एक समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्ध अनुपशमित रहते हैं क्योंकि द्विचरमावली के प्रथम समय में बाँधा गया समयप्रबद्ध पुरुषवेद के उपशमन काल के अंतिम समय में सर्वरूप से उपशमित हुआ है। द्वितीयादि समय में बाँधे गये समयप्रबद्धों में से कुछ कम होने पर भी एकदेशविकृत होने पर भी सभी विकृत कहा जाता है। इस न्याय से पुरुषवेद का एक समय कम दो आवली मात्र नवीन बाँधा गया समयप्रबद्ध सर्व ही पुरुषवेद के उपशमनकाल के अंतिम समय में उपशमन

से रहित है। ऐसा श्रीमान् माधवचन्द्रत्रैविद्यदेव के व्याख्यान का तात्पर्य है।।२६३।।

विशेषार्थ– पुरुषवेद का उपशम करने वाला जीव छह नोकषाय के साथ ही उसका उपशम करता है। मात्र इसके उदय और बन्ध की व्युच्छित्ति एक साथ होने से छह नोकषायों के साथ इसका उपशमन होने पर भी एक समय कम दो आवलि प्रमाण नवकबन्धरूप समयप्रबद्ध शेष रहते हैं, जिनका उपशमन बाद में होता है। खुलासा इस प्रकार है–ऐसा नियम है कि नये कर्म का बन्ध होने पर एक आवली काल तक तो वह तदवस्थ रहता है। इस नियम के अनुसार पुरुषवेद के उपशम होने की अंतिम उपशमनावलि के अंतिम समय में पुरुषवेद का एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहता है, क्योंकि पुरुषवेद की उपान्त्य उपशमनावलि में पुरूषवेद के आवली प्रमाण नवक समयप्रबद्धों मे से प्रथम समयप्रबद्ध की एक–एक फालि का अन्तिम उपशमनावलि के प्रत्येक समय में उपशम होकर तदनन्तर उच्छिष्टावलि के प्रथम समय में वह पूरा उपशांत रहता है। यह तो उपान्त्य उपशमनावलि के प्रथम समय में बँधे हुए समयप्रबद्ध के उपशमन की व्यवस्था है। इसीप्रकार उपान्त्य उपशमनावलि के दूसरे समय में बंधे हुए समयप्रबद्ध का अंतिम उपशमनावलि के द्वितीय समय से उपशमन प्रारम्भ होकर अंतिम एक फालि को छोड़कर शेष समस्त द्रव्य उपशान्त हो जाता है।

इसी प्रकार उपान्त्य उपशमनावलि के तीसरे समय में बँधे हुए समयप्रबद्ध का अंतिम उपशमनावलि के तीसरे समय से उपशमन प्रारम्भ होकर अन्तिम दो फालियों को छोड़कर उसके अंतिम समय में शेष समस्त द्रव्य उपशान्त हो जाता है। इसीप्रकार उपान्त्य उपशमनावलि के अंतिम समय तक बँधे हुए समयप्रबद्ध का विचार कर लेना चाहिए। साथ ही इतना विशेष जानना चाहिए कि अंतिम उपशमनावलि के प्रत्येक समय में बँधे हुए प्रत्येक समयप्रबद्ध की उसी आवलि के भीतर उपशमन क्रिया नहीं होती, इसलिए एक तो अन्तिम उपशमनावलि के अंतिम समय के बाद प्रथम समय में उपान्त्य उपशमनावलि सम्बन्धी एक समयप्रबद्ध कम एक आवलिप्रमाण समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं। दूसरे अंतिम उपशमनावलि सम्बन्धी समस्त समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं। इस प्रकार पुरुषवेद से उपशमश्रेणि पर चढ़े हुए जीव के उसके अंतिम समय में एक समय कम दो आवली प्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं। यह सूत्रगाथा में कहा गया है और यह इसलिए बन जाता है कि पुरुषवेद के बन्ध और उदय की व्युच्छित्ति तो एक साथ होती ही है। साथ उक्त नवक समयप्रबद्धों को छोड़कर शेष पुरुषवेद सम्बन्धी पूरे द्रव्य की उपशमना का भी वही अंतिम समय है। मूल में अंक संदृष्टि दी ही है। उसमें आवलि के लिए तथा एक समयप्रबद्ध की समस्त फालियों के लिए

४ अंक कल्पित किये गये है। '0' शून्य पूरे समयप्रबद्ध के उपशम होने को सूचित करने के लिए कल्पित किया गया है। संदृष्टि में उपान्त्य उपशमनावलि को बन्धावलि, अंतिम उपशमनावलि को उपशमनावलि और उसके बाद की आवलि को उच्छिष्टावली कहा गया है।

अथ पुंवेदोपशमनकालचरमसमये स्थितिबंधप्रमाणप्ररूपणार्थमिदमाह–

तच्चरिमे पुंबंधो सोलसवस्साणि संजलणगाणं।
तद्दुगुणं सेसाणं संखेज्जसहस्सवस्साणि[1] ।।२६४।।

तच्चरमे पुंबंध: षोडशवर्षाणि संज्वलनकानाम् ।
तद्द्विगुणं शेषाणां संख्यसहस्रवर्षाणि ।।२६४।।

तस्य पुंवेदोपशमनकालस्य सवेदानिवृत्तिकरणस्य चरमसमये षोडशवर्षमात्र: पुंवेदस्थितिबन्ध:। संज्वलनचतुष्टयस्य स्थितिबन्धो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमित: । घातित्रयस्य संख्यातसहस्र–वर्षमात्र: स्थितिबन्ध:। तत: संख्येयगुणो नामगोत्रयो: संख्यातसहस्रवर्षमात्र: स्थितिबन्ध:। तत: साधिको वेदनीयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्र: स्थितिबन्ध: ।।२६४।।

अब पुंवेद के उपशमनकाल के अंतिम समय में स्थितिबन्ध के प्रमाण का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– (तच्चरिमे) पुरुषवेद के उपशमनकाल के अंतिम समय में **(पुंबंधो)** पुरूषवेद का बंध **(सोलसवस्साणि)** सोलह वर्ष और **(संजलणगाणं)** संज्वलन का स्थितिबन्ध**(तद्दुगुणं)** उसका दुगुणा अर्थात् बत्तीस वर्ष, **(सेसाणं)**शेष कर्मों का स्थितिबन्ध **(संखेज्जसहस्सवस्साणि)** संख्यात हजार वर्ष होता है।।२६४।।

टीकार्थ– उस पुरुषवेद के उपशमनकाल के सवेद अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में सोलह वर्षमात्र पुरुषवेद का स्थितिबंध होता है। संज्वलन चतुष्टय का स्थितिबन्ध बत्तीस वर्षप्रमाण होता है। तीन घातियों का संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध होता है। उससे संख्यात–गुणा नाम–गोत्र का संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है। वेदनीय का उससे अधिक संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है ।।२६४।।

विशेषार्थ–पुरुषवेद के उपशमनकाल तक सवेद अनिवृत्तिकरण के चरम समय में १)पुरुषवेद का स्थितिबंध १६ वर्षमात्र २) संज्वलन चतुष्टय का स्थितिबंध ३२ वर्षमात्र ३) तीन घातियों का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षमात्र ४) नामगोत्र का स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षमात्र ५) वेदनीय का स्थितिबंध नामगोत्र से डेढ़गुणा संख्यात हजार वर्षमात्र होता है।

१) जयध. पु. १३, पृ. २८५ ।

अथ पुंवेदस्य प्रथमस्थितौ आवलिद्वयावशेषायां सम्भवत्क्रियान्तरप्रतिपादनार्थमिदमाह–

पुरिसस्स य पढमठिदी आवलिदोसुवरिदासु आगाला।
पडिआगाला छिण्णा पडियावलियादुदीरणदा[१] ।।२६५।।

पुरुषस्य च प्रथमस्थितिरावलिद्वयोरुपरतयोरागालाः ।
प्रत्यागालाश्छिन्नाः प्रत्यावलिकात उदीरणता ।।२६५।।

पुंवेदस्य प्रथमस्थितिः क्रमेण गलित्वा यदा द्व्यावलिमात्रावशेषा भवति तदा आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ। आवलिद्वयावशेषप्रथमसमयात्प्रभृति गुणश्रेणिनिर्जरापि व्युच्छिन्ना किन्तु तदैवोदयावलिबाह्योपरितनावलिद्रव्यस्योदयावल्यामुदीरणापि पूर्वोक्तलक्षणा प्रारब्धा।।२६५।।

अब पुरूषवेद की प्रथम स्थिति में दो आवलि शेष रहने पर होने वाली दूसरी क्रियायों का प्रतिपादन करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– (पुरिसस्स य पढमठिदी) पुरुषवेद की प्रथम स्थिति **(आवलिदोसुवरिदासु)** दो आवलि शेष रहने पर **(आगाला पडिआगाला)** आगाल और प्रत्यागाल **(छिण्णा)** नष्ट होते हैं। **(पडियावलियादुदीरणदा)** केवल प्रत्यावलि में से उदीरणा होती है।।२६५।।

टीकार्थ– पुरुषवेद की प्रथम स्थिति क्रम से गलकर जब दो आवलिमात्र शेष रहती है तब आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न होते हैं। दो आवलि शेष रहने पर प्रथम समय से गुणश्रेणी निर्जरा भी व्युच्छिन्न होती है। परन्तु उस समय में उदयावली के बाह्य ऊपर की आवलि के द्रव्य की उदयावलि में पूर्व में जिसका लक्षण कहा गया है ऐसी उदीरणा शुरू होती है।।२६५।।

विशेषार्थ– पुरुषवेद की कितनी स्थिति शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते हैं इसका समाधान जयधवला में दो प्रकार से किया गया है। प्रथम समाधान के अनुसार तो यह बतलाया गया है कि पुरूषवेद की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक दो आवलियाँ शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते हैं। पूरी दो आवलि प्रमाण स्थिति के शेष रहने पर उन दोनों की व्युच्छित्ति हो जाती है, किन्तु दूसरी व्याख्या के अनुसार दो आवलि प्रमाण प्रथम स्थिति के शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते रहते हैं। किन्तु एक समय कम दो आवलि प्रमाण प्रथम स्थिति के शेष रहने पर वे दोनों व्युच्छिन्न हो जाते हैं। इस पर

१) जयध. पु. १३, पृ. २८५ ।

प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो सूत्र में यह क्यों कहा कि जब पुरुषवेद की प्रथम स्थिति दो आवलि प्रमाण शेष रहती है तब आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। इसका समाधान यह कहकर किया है कि यह कथन उत्पादानुच्छेद नय का आश्रय लेकर किया जाता है, क्योंकि उत्पादानुच्छेद के अनुसार विवक्षित वस्तु के सद्भाव का जो अंतिम समय है उस समय में ही उसके अभाव का प्रतिपादन किया जाता है। जैसे मिथ्यात्व गुणस्थान में जिन १६ प्रकृतियों का बन्ध होता है, इस नय के अनुसार वहीं उनकी बन्धव्युच्छित्ति कही जाती है। प्रथम स्थिति में स्थित द्रव्य का उत्कर्षण कर द्वितीय स्थिति में निक्षेप करना आगाल है और द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण कर प्रथम स्थिति में निक्षिप्त करना प्रत्यागाल है। यहीं प्रत्यावलि में से प्रतिसमय असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है।

अन्तरकरणसमाप्त्यनन्तरसमयादारभ्य संक्रमविशेषप्ररूपणार्थमिदमाह–

अंतरकदादु छण्णोकसायदव्वं ण पुरिसगे देदि।
देदि हु संजलणस्स य कोधे अणुपुव्विसंकमदो।।२६६।।

अंतरकृतात् षण्णोकषायद्रव्यं न पुरुषके ददाति ।
ददाति हि संज्वलनस्य च क्रोध आनुपूर्विसंक्रमतः।।२६६।।

अन्तरकृतादन्तरकरणसमाप्तिसमयात्परं हास्यादिषण्णोकषायद्रव्यं पुंवेदे न संक्रामत्येव अपि तु संज्वलनक्रोधे एव संक्रामति पूर्वोद्दिष्टानुपूर्वीसंक्रमानतिक्रमात् ।।२६६।।

अन्तरकरण की समाप्ति के अनन्तर समय से संक्रमविशेष का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(अंतरकदादु) अंतरकरण होने के बाद **(छण्णोकसायदव्वं)** छह नोकषायों का द्रव्य **(पुरिसगे)** पुरुषवेद में **(ण देदि)** नहीं देता है। **(अणुपुव्विसंकमदो)** आनुपूर्वी संक्रमण होने से **(संजलणस्स य कोधे)** संज्वलन क्रोध में **(देदि हु)** देता है।।२६६।।

टीकार्थ– अन्तरकरण की समाप्ति के बाद हास्यादि छह नोकषायों का द्रव्य पुरुषवेद में संक्रमित नहीं होता है; परन्तु संज्वलन क्रोध में ही संक्रमित होता है क्योंकि पूर्व में कहे गए आनुपूर्वी संक्रमण का उल्लंघन नहीं होता। ।।२६६।।

विशेषार्थ– टीका में कहे गये अनुसार हास्यादि छह नोकषायों का द्रव्य पुरुषवेद में संक्रमित नहीं करके संज्वलन क्रोध में संक्रमित करना यह आनुपूर्वी संक्रमण है।

अथ पुंवेदनवकबन्धद्रव्यस्योपशमनविधानप्ररूपणार्थमिदमाह–

पुरिसस्स उत्तणवकं असंखगुणियक्कमेण उवसमदि।
संकमदि हु हीणकमेणधापवत्तेण हारेण[१]।।२६७।।

पुरुषस्य उक्तनवकमसंख्यगुणितक्रमेणोपशमयति।
संक्रमति हि हीनक्रमेणाध:प्रवृत्तेन हारेण ।।२६७।।

पुंवेदस्य प्रागुक्तनवकबन्धद्रव्यं समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धप्रमितं [१ — / स a ४।२− / ७ । २] पुंवेदानिवृत्तिचरमसमये अनुपशमितं सदवतिष्ठते । पुनरपगतवेदप्रथमसमये पुंवेदोपशमनकालद्विचरमावलिद्वितीयसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य सर्वात्मनोपशमितत्वात् द्विसमयोन– द्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धरूपं पुंवेदनवकबन्धसत्त्वमनुपशमितमास्ते । तस्मिन्नपगतवेदप्रथमसमये व्यतिक्रान्तबन्धावलिसमयप्रबद्धस्य यावदुपशमितं द्रव्यं [स a / ७ । २ गु] तदनन्तरद्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणं द्रव्यमुपशमयति [स a / ७ । २ गु / a] एवं चरमफालिपर्यन्तम– संख्यातगुणितक्रमेणोपशमनद्रव्यं ज्ञातव्यम् । एवमितरेषामपि समयप्रबद्धानां स्वस्वबन्धावलिव्यतिक्रान्तसमयादारभ्य प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमनफालिद्रव्यं नेतव्यम् । एवमपगतवेदप्रथमसमयादारभ्य समयोनद्व्यावलिमात्रकाले सर्वं पुंवेदनवकबन्धद्रव्यमुपशमितं भवतीति ज्ञातव्यम् । एको नवकबन्धसमयप्रबद्ध: एकावलिमात्रकाले उपशमितो भवति । अत एवावलिसमयमात्राणि एकसमयप्रबद्धफालिद्रव्याणि कृतानि तान्यङ्कसंदृष्ट्या एतावन्ति ।४। तथा पुंवेदनवकबन्धस्यैकसमयप्रबद्धद्रव्यं [स a / ७ । २] अपगतवेदप्रथमसमये अथाप्रवृत्त– भागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागद्रव्यं संज्वलन– क्रोधद्रव्ये संक्रमयति [स a / ७।२।अ] अवशिष्टं तद्बहुभागद्रव्यं पुनरप्यथाप्रवृत्तभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागद्रव्यं द्वितीयसमये संक्रमयति [स a अ / ७।२।अ अ] अवशिष्टं तद्बहुभागद्रव्यं पुनरप्यथाप्रवृत्तभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागद्रव्यं तृतीयसमये संक्रमयति [स a अ अ / ७।२।अ अ अ] एवमनेन क्रमेण समयोनद्व्यावलिचरमसमयपर्यन्तं विशेषहीनं द्रव्यं संक्रमयति । तथा पुन: पुंवेदनवकबन्धस्यापरं समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातभागहीनक्रमेण संक्रमयति, पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयं संख्यातभागहीनक्रमेण, पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं संख्यातगुणहीनक्रमेण संक्रमयति, पुनरपरं समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातगुणहीनक्रमेण संक्रमयति । तथा पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातभागवृद्धिक्रमेण, पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं

१) जयध. पु. १३, पृ. २८७–२८९

संख्यातभागवृद्धिक्रमेण, पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं संख्यातगुणवृद्धिक्रमेण पुनरेकं समयप्रबद्ध-द्रव्यमसंख्यातगुणवृद्धिक्रमेण संक्रमयति । चतु:स्थानपतितहानिवृद्धिपरिणतयोगसंचितसमयप्रबद्धानां द्रव्यहीनाधिकभावमाश्रित्य तत्संक्रमणद्रव्यस्यापि चतु:स्थानहानिवृद्धिक्रमस्य प्रवचनयुक्त्या प्रवृत्तिप्रदर्शनात् ।।२६७।।

अब पुरुषवेद के नवकबन्धद्रव्य के उपशमनविधान का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं-

अन्वयार्थ-(पुरिसस्स) पुरुषवेद के **(उत्तणवकं)** उक्त नवक समयप्रबद्ध द्रव्य को **(असंखगुणियक्कमेण)** असंख्यातगुणित क्रम से **(उवसमदि)** उपशमाता है परन्तु **(अधापवत्तेण हारेण)** अध:प्रवृत्त भागहार के द्वारा **(हीणकमेण)** हीनक्रम से **(संकमदि)** संक्रमित करता है। ।।२६७।।

टीकार्थ-पुरुषवेद का पूर्व में कहा गया एक समय कम दो आवलि मात्र समयप्रबद्ध प्रमाण नवकद्रव्य [स a ४।२- / ७ । २] (आवलि की संदृष्टि ४. दो आवलि = ४x२, एक कम की संदृष्टि ऐसी मोहनीय द्रव्य [स a / ७] कषाय और नोकषायों में विभाग करने के लिए २ से भाग देने पर [स a / ७ २] पुरुषवेद का द्रव्य आता है।) पुरुषवेद युक्त (सवेदभाग) अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में अनुपशमित रहता है। पुन: अपगतवेद के प्रथम समय में पुरुषवेद के उपशमनकाल के द्विचरमावलि के[1] द्वितीय समय में बाँधा गया समयप्रबद्ध सर्वरूप से उपशमित होने से दो समय कम दो आवलिमात्र समयप्रबद्ध रूप पुरुषवेद का नवकबन्ध-सत्त्वद्रव्य अनुपशमित रहता है। उस अपगतवेद के प्रथम समय में जिस समयप्रबद्ध की बन्धावलि व्यतीत हुई उसका जितना द्रव्य उपशमित होता उसके पश्चात् द्वितीय समय में उससे असंख्यातगुणित द्रव्य उपशमित होता है। प्रथम समय में उपशमित द्रव्य [स a / ७ । २ गु]

$$\text{एक समयप्रबद्ध के एक फालि का द्रव्य} = \frac{\text{एक समयप्रबद्ध}}{\text{गुणसंक्रमणभागहार}}$$

द्वितीय समय में उपशमित द्रव्य असंख्यातगुणा [स a / ७ । २ गु / a] (असंख्यातगुणा करने के लिए भागहार में असंख्यात से भाग दिया)

इसप्रकार चरमफालि पर्यन्त असंख्यातगुणित क्रम से उपशमन द्रव्य जानना चाहिए। इसके समान अन्य समयप्रबद्धों का भी अपनी बंधावलि बीतने पर प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित क्रम से उपशमनफालि का द्रव्य जानना चाहिए। इस प्रकार अपगतवेद के प्रथम समय से लेकर एक समय कम दो आवलिमात्र काल में सर्व पुरुषवेद का नवक बन्धद्रव्य उपशमित होता है ऐसा जानना चाहिए।

नवीन बांधा हुआ एक समयप्रबद्ध एक आवलिमात्र काल में उपशमित होता है इसलिए जितने आवलि के समय उतनी एक समयप्रबद्ध की फालियाँ होती हैं। अंकसंदृष्टि से वह ४ है। उतना ही पुरुषवेद के नवक बन्ध के एक समयप्रबद्ध का द्रव्य [स a / ७ । २] अपगतवेद के प्रथम समय में अथाप्रवृत्तभागहार से खण्डित करके उसके एकभाग द्रव्य को संज्वलन क्रोध के द्रव्य में संक्रमित करता है। [स a / ७।२।अ] (अ = अथाप्रवृत्तभागहार) शेष रहे बहुभागद्रव्य को पुनः अथाप्रवृत्त भागहार से खण्डित करके उसके एकभाग द्रव्य को द्वितीय समय में संक्रमित करता है। [स a अ / ७।२।अ अ] शेष रहे बहुभागद्रव्य को पुनः अथाप्रवृत्त–भागहार से खण्डित करके उसके एकभाग द्रव्य को तीसरे समय में संक्रमित करता है। [स a अ अ / ७।२।अ अ अ] इसप्रकार इस क्रम से एक समय कम दो आवलि के अंतिम समय तक विशेषहीन द्रव्य संक्रमित करता है। पुनः उसीप्रकार पुरुषवेद के नवकबंध के दूसरे समयप्रबद्ध द्रव्य को प्रत्येक समय में असंख्यातवें भागहीन क्रम से संक्रमित करता है। पुनः अन्य समयप्रबद्ध को प्रत्येक समय में संख्यातवें भागहीन क्रम से पुनः अन्य समयप्रबद्ध द्रव्य को संख्यातगुणे हीन क्रम से, पुनः दूसरे समयप्रबद्ध द्रव्य को प्रत्येक समय में असंख्यातगुणे हीनक्रम से संक्रमित करता है। उसीप्रकार पुनः अन्य समयप्रबद्ध द्रव्य को प्रत्येक समय में असंख्यात भागवृद्धि क्रम से, पुनः अन्य समयप्रबद्ध द्रव्य को संख्यात भागवृद्धि क्रम से, पुनः दूसरे समयप्रबद्ध को संख्यातगुणे वृद्धि क्रम से, पुनः एक समयप्रबद्ध द्रव्य को असंख्यातगुणे वृद्धि क्रम से संक्रमित करता है क्योंकि चतुःस्थानपतित हानि वृद्धि से परिणत योग से संचित किये समयप्रबद्धों के हीन और अधिक द्रव्यभाव का आश्रय करके उसके संक्रमण द्रव्य के भी चतुःस्थान हानि वृद्धि क्रम की प्रवृत्ति प्रवचन की युक्ति से दिखायी है।।२६७।।

विशेषार्थ – अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग के अन्तिम समय में पुरुषवेद का जो एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशमित होकर अवशिष्ट रहा था जो कि अवेदभाग के प्रथम समय में एक समय कम होकर दो समय कम दो आवलि प्रमाण अनुपशमित अवस्था में अवशिष्ट रहता है उसका इतने ही काल के भीतर एक तो उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूप से उपशम करता है और दूसरे अधःप्रवृत्त संक्रम के द्वारा उसका क्रोध संज्वलन में संक्रम करता है। पुरुषवेद की उसके सवेदभाग के अंतिम समय में बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है। अतः जब यहाँ पुरुषवेद का बन्ध ही नहीं होता ऐसी अवस्था में उसका गुणसंक्रम न कहकर अधःप्रवृत्तसंक्रम क्यों स्वीकार किया गया है, क्योंकि ऐसा नियम है कि जिस प्रकृति का बन्ध होता हो उसी का अधःप्रवृत्त संक्रमण सम्भव है, यह एक प्रश्न है। समाधान यह है कि बन्ध की व्युच्छित्ति हो जाने पर भी पुरुषवेद और तीन संज्वलन

आदि के नवक बन्ध का अध:प्रवृत्त संक्रमण होता है ऐसा स्वीकार किया गया है। संक्रमण विधि का खुलासा इस प्रकार है– पहले समय में विवक्षित समयप्रबद्ध में से जितने द्रव्य का संक्रम और उपशम हुआ उतने द्रव्य को उस समयप्रबद्ध में से कम कर दूसरे समय में जो बहुभाग प्रमाण द्रव्य शेष बचा उसमें अध:प्रवृत्त संक्रमण का भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त होता है उसका उस दूसरे समय में संक्रम करता है। इसीप्रकार तृतीयादि समयों में भी जान लेना चाहिए। यह संक्रम प्रकृत में एक समयप्रबद्ध की अपेक्षा स्वीकार किया गया है, नाना समयप्रबद्धों की अपेक्षा नहीं, इसलिए यहाँ योग के अनुसार चार वृद्धि और चार हानि सम्भव न होकर उत्तरोत्तर विशेषहीन होकर ही संक्रम होता है ऐसा स्वीकार किया गया है।

अथापगतवेदस्य प्रथमसमये स्थितिबन्धप्रमाणप्रदर्शनार्थमिदमाह –

पढमावेदे संजलणाणं अंतोमुहुत्तपरिहीणं ।
वस्साणं बत्तीसं संखसहस्सियरगाण ठिदिबंधो ।।२६८।।

प्रथमावेदे संज्वलनानामन्तर्मुहूर्तपरिहीनम्।
वर्षाणां द्वात्रिंशत् संख्यसहस्रमितरेषां स्थितिबन्धः ।।२६८।।

प्रथमसमयवर्तिन्यपगतवेदे संज्वलनक्रोधादिचतुष्टयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तहीनो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमितः। सवेदचरमसमयवर्तिनः प्राक्तनस्थितिबन्धात्संपूर्णद्वात्रिंशद्वर्षमात्रादन्तर्मुहूर्तस्थितिबन्धापसरणवशेनापगतवेदप्रथमसमये एवंविधस्थितिबन्धस्य युक्तत्वात् । शेषकर्मणां तीसियवीसियवेदनीयानां प्राक्तनस्थितिबन्धात्संख्यातगुणहीनः स्थितिबन्धः संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव पूर्वोक्ताल्पबहुत्वविधानेन ज्ञातव्यः ।।२६८।।

अब अपगतवेद के प्रथम समय में स्थितिबन्ध का प्रमाण दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(पढमावेदे) अवेद के प्रथम समय में **(संजलणाणं)** संज्वलन कषाय का **(अंतोमुहुत्तपरिहीणं)** अंतर्मुहूर्त कम **(वस्साणं बत्तीस)** बत्तीस वर्षप्रमाण और **(इयरगाण)** अन्य कर्मों का **(संखसहस्स)** संख्यात हजार वर्ष प्रमाण **(ठिदिबंधो)** स्थितिबन्ध होता है।।२६८।।

टीकार्थ– अपगतवेद के प्रथम समय में संज्वलन क्रोधादि चार कषायों का स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त कम बत्तीस वर्ष प्रमाण होता है क्योंकि सवेद के अंतिम समय में होने वाले संपूर्ण बत्तीस वर्षप्रमाण पूर्व स्थितिबन्ध से अन्तर्मुहूर्त स्थिति का बन्धापसरण होने से अपगतवेद के प्रथम समय में इसप्रकार का स्थितिबन्ध होना युक्त ही है। शेष तीसिय, वीसिय और वेदनीय कर्मों का पूर्व के स्थितिबंध से संख्यातगुणा हीन संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है। पूर्व के समान ही अल्पबहुत्व भी जानना चाहिए। ।।२६८।।

अथापगतवेदस्य सम्भवत्क्रियान्तरप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह–

पढमावेदो तिविहं कोहं उवसमदि पुव्वपढमठिदी ।
समयाहियआवलियं जाव य तक्कालठिदिबंधो[1] ।।२६९।।

प्रथमावेदस्त्रिविधं क्रोधमुपशमयति पूर्वप्रथमस्थितिः ।
समयाधिकावलिकां यावच्च तत्कालस्थितिबन्धः ।।२६९।।

प्रथमसमयवर्त्यपगतवेदानिवृत्तिकरणविशुद्धिसंयतः तत्कालप्रथमसमयादारभ्य पुंवेदनवकबन्धेन सहाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधत्रयमुपशमयति। तत्र संज्वलनक्रोधस्योदयमानस्य पूर्वमन्तरकरणप्रारम्भे स्थापितान्तर्मुहूर्तमात्री प्रथमस्थितिः पुंवेदप्रथमस्थितेर्विशेषाधिका सैवेदानीमपि गलितावशेषप्रमाणा समयाधिकावलिमात्रावशेषा यावत्तावत्प्रवर्तते । उच्छिष्टावल्याः प्रथमस्थितिव्यपदेशासम्भवात् । उपरि मानादीनां यथाभिनवा प्रथमस्थितिः करिष्यति तथा संज्वलनक्रोधस्य नूतनप्रथमस्थितिकरणानुपपत्तेश्च । संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ यदा आवलिप्रत्यावलिद्वयमवशिष्यते तदा आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ । तदैव संज्वलनक्रोधस्य गुणश्रेणिनिर्जरापि व्युच्छिन्ना केवलं प्रागुक्तक्रमेण प्रत्यावलिद्रव्यस्योदीरणा भवति ।।२६९।।

अब अपगत वेद में होनेवाली दूसरी क्रियाओं को दिखाने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं–
अन्वयार्थ–(पढमावेदो) प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी **(तिविहं कोहं)** तीन प्रकार के क्रोध को **(उवसमदि)** उपशमित करता है। **(समयाहिय आवलियं जाव)** एक समय अधिक आवलि शेष रहने तक **(पुव्वपढमठिदि)** पूर्व की ही प्रथम स्थिति रहती है **(य)** और **(तक्कालठिदिबंधो)** उस काल में स्थितिबन्ध (आगे गाथा में कहते हैं) ।।२६९।।

टीकार्थ– प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी अनिवृत्तिकरण विशुद्ध संयत अपगतवेद के प्रथम समय से पुरुषवेद के नवकबन्ध के समान अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन इन तीन क्रोध का उपशम करता है। वहाँ उदयमान संज्वलन क्रोध की पूर्व में अन्तरकरण के प्रारम्भ में स्थापन की गयी अंतर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति पुरुषवेद की प्रथम स्थिति से विशेष अधिक होती है। वही अब भी गलकर जितनी शेष रहेगी उतनी एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहने तक प्रवृत्त होती है। क्योंकि उच्छिष्टावलि को प्रथम स्थिति यह संज्ञा संभव नहीं है और ऊपर मानादि कषायों की जैसे नवीन प्रथम स्थिति करेगा वैसी संज्वलन क्रोध की नवीन प्रथम स्थिति नहीं करता। संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में जब आवलि और प्रत्यावलि ऐसी दो आवलि शेष रहती है तब आगाल–प्रत्यागाल

१) जयध. पु. १३, पृ. २९२

की व्युच्छित्ति होती है। उसी समय में संज्वलन क्रोध की गुणश्रेणि निर्जरा भी बंद होती है। केवल पूर्व में कहे गये क्रम से प्रत्यावलि के द्रव्य की उदीरणा होती है।।२६९।।

विशेषार्थ– पुरुषवेद के पूर्व के सत्कर्म के उपशान्त होने पर उसके नवकबन्ध को क्रम से उपशमाता हुआ ही अपगतवेदी जीव प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान और संज्वलनरूप तीन क्रोध की उपशमविधि प्रारम्भ करता है। इस जीव ने पहले जो अन्तरकरण क्रिया करते हुए क्रोध संज्वलन की प्रथम स्थिति पुरुषवेद की प्रथमस्थिति से साधिक स्थापित की थी, वह प्रथमस्थिति अपगत वेद के प्रथम समय में गलित होकर जितनी शेष बची वही प्रथमस्थिति यहाँ प्रवृत्त रहती है। जिसप्रकार आगे मानादिक की उपशामना करते समय अपूर्व प्रथमस्थिति स्थापित की जाती है उसी प्रकार यहाँ पर तीन क्रोध के उपशमाने के लिए अपूर्व प्रथमस्थिति नहीं स्थापित की जाती किन्तु पहले जो प्रथमस्थिति रची थी वही पुरानी प्रथमस्थिति तीन क्रोध के उपशमाने तक शुरु रहती है। इस क्रम से जब क्रोध संज्वलन की प्रथमस्थिति उदयावलि और प्रत्यावलिप्रमाण शेष रहती है तब आगाल–प्रत्यागाल की व्युच्छित्ति हो जाती है। यह कथन यहाँ उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा किया है, क्योंकि यहाँ पर दो आवलियों से एक समय कम दो आवलियाँ ली गई है। आगाल–प्रत्यागाल की व्युच्छित्ति हो जाने पर क्रोध संज्वलन का गुणश्रेणिनिक्षेप नहीं होता, क्योंकि सबसे जघन्य गुणश्रेणिआयाम एक आवलिप्रमाण है उससे कम नहीं । इसलिए प्रत्यावलि में से ही प्रदेशपुंज का अपकर्षण कर वह जीव असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा करता है।

तस्य क्रोधत्रयस्योपशमनकालचरमसमये संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितौ समयाधिकावलि–मात्रावशेषे कर्मणां स्थितिबन्ध ईदृशो भवतीति वक्ष्यते–

संजलणचउक्काणं मासचउक्कं तु सेसपयडीणं।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ।।२७०।।

संज्वलनचतुष्काणां मासचतुष्कं तु शेषप्रकृतीनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवन्ति नियमेन ।।२७०।।

संज्वलनक्रोधादिचतुष्टयस्यापगतवेदप्रथमसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिबन्धापसरणेषु संख्यातसहस्रेषु गतेषु क्रोधत्रयोपशमनकालचरमसमये स्थितिबन्धश्चतुर्मासमात्रः । शेषकर्मणां तीसियवीसियवेदनीयानां प्राक्तनस्थितिबन्धात्संख्यातगुणहीनोऽपि संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव पूर्वोक्ताल्पबहुत्वक्रमेण प्रवर्तते ।।२७०।।

उन तीन क्रोध के उपशमनकाल के अंतिम समय में अथवा संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहने पर कर्मों का स्थितिबन्ध इसप्रकार का

होता है यह कहते हैं –

अन्वयार्थ– (संजलणचउक्काणं) संज्वलनचतुष्क का स्थितिबंध **(मासचउक्कं)** चार माह **(सेसपयडीणं तु)** और शेष प्रकृतियों का स्थितिबंध **(वस्साणं संखेज्जसहस्साणि)** संख्यात हजार वर्ष **(णियमेन)** नियम से **(हवंति)** होता है।।२७०।।

टीकार्थ–अपगतवेद के प्रथम समय से अन्तर्मुहूर्तमात्र आयामवाले संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण व्यतीत होने पर तीन क्रोध के उपशमन काल के अंतिम समय में संज्वलन क्रोधादि चार कषायों का स्थितिबन्ध चार माह होता है। शेष तीसिय, वीसिय व वेदनीय कर्मों का स्थितिबन्ध पूर्व के स्थितिबन्ध से संख्यातगुणा हीन होकर भी संख्यात हजार वर्षमात्र ही पूर्वोक्त अल्पबहुत्व क्रम से प्रवृत्त होता है।।२७०।।

अथ क्रोधद्रव्यस्य संक्रमविशेषप्रदर्शनार्थमिदमाह–

कोहदुगं संजलणगकोहे संछुहदि जाव पढमठिदी ।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु माणसंजलणे[1] ।।२७१।।

क्रोधद्विकं संज्वलनकक्रोधे संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकं तूपरि संक्रामति हि मानसंज्वलने ।।२७१।।

अपगतवेदे प्रथमसमयादारभ्य संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितिरावलित्रयावशेषा यावद्भवति तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधद्वयद्रव्यं गुणसंक्रमेण गृहीत्वा संज्वलनक्रोधे संक्रमयति । तत्र प्रथमा संक्रमणावलिः, द्वितीया उपशमनावलिः, तृतीया उच्छिष्टावलिरिति व्यपदिश्यते । ततःपरं तद्द्रव्यं संक्रमणावलिचरमसमयपर्यन्तं संज्वलनमाने संक्रमयति ।।२७१।।

अब क्रोधद्रव्य का संक्रमणविशेष दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(जाव पढमठिदी) जब तक प्रथमस्थिति **(आवलितियं)** तीन आवलि शेष रहती है तब तक **(कोहदुगं)** दो क्रोध को (अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान क्रोध को) **(संजलणगकोहे)** संज्वलन क्रोध में **(संछुहदि)** संक्रमित करता है, **(तु उवरिं)** परन्तु उसके बाद **(माण संजलणे)** संज्वलन मान में **(संछुहदि हु)** संक्रमित करता है।।२७१।।

टीकार्थ– अपगतवेद में प्रथम समय से जब तक संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति तीन आवलि शेष रहती है तब तक अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान इन दो क्रोध के द्रव्य को गुणसंक्रमण भागहार से ग्रहण करके संज्वलन क्रोध में संक्रमित करता है। उसमें से प्रथम आवलि संक्रमणावलि, दूसरी उपशमनावलि, तीसरी उच्छिष्टावलि ऐसे उनके नाम हैं। उसके

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २९३–२९४ ।

बाद उस द्रव्य को संक्रमणावलि के अंतिम समय तक संज्वलन मान को संक्रमित करता है।।२७१।।

विशेषार्थ– क्रोध संज्वलन की प्रथम स्थिति तीन आवलि प्राप्त होने तक ही अप्रत्याख्यान क्रोध और प्रत्याख्यान क्रोध का संज्वलन क्रोध में संक्रमण होता है। उसमें एक समय कम होने पर उक्त दोनों क्रोधों का संज्वलन मान में संक्रम होने लगता है। इस प्रकार जब क्रोध संज्वलन की प्रथमस्थिति उच्छिष्टावलिमात्र शेष रहती है तब क्रोध संज्वलन की बन्धव्युच्छित्ति और उदय–व्युच्छित्ति हो जाती है। ऐसा होने पर भी चूर्णिसूत्र में जो यह कहा है कि जब क्रोध संज्वलन की प्रथमस्थिति में एक समय कम एक आवलि काल शेष रहता है तब क्रोध संज्वलन के बन्ध–उदय की व्युच्छित्ति हो जाती है सो यहाँ पूरी उच्छिष्टावलि न कहकर एक समय कम उच्छिष्टावलि इसलिए कही कि जिस समय क्रोध की उदयव्युच्छित्ति होती है उसी समय उदयव्युच्छित्ति के कारण प्रथम निषेक का मानसंज्वलन के उदय में स्तिबुक संक्रमण के द्वारा संक्रमित हो जाने पर उच्छिष्टावलि में एक समय कम हो जाता है। क्रोध की प्रथम स्थिति में तीन आवलि शेष रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–

१) संक्रमणावलि २) उपशमनावलि और ३) उच्छिष्टावलि।

अथ उपशमनावलिचरमसमये सम्भवत्क्रियाविशेषप्ररूपणार्थमिदमाह–

कोहस्स य पढमठिदी आवलिसेसे तिकोहमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति कोहस्स ।।२७२।।

क्रोधस्य च प्रथमस्थितिरावलिशेषं त्रिक्रोधमुपशान्तं ।
न च नवकं तत्रान्तिमबन्धोदयौ भवतः क्रोधस्य ।।२७२।।

संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ उच्छिष्टावलिमात्रावशेषायामुपशमनावलिचरमसमये क्रोधत्रयद्रव्यं समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धनवकबन्धं मुक्त्वा पूर्वोक्तविधानेन चरमफालिरूपेण निरवशेषं स्वस्थाने एवोपशमयति। तस्मिन्नेवोपशमनावलिचरमसमये संज्वलनक्रोधस्य बन्धोदयौ युगपदेव व्युच्छिन्नौ । तस्मिन्नेवसमये संज्वलनक्रोधस्योच्छिष्टावलिप्रथमनिषेकः संज्वलनमाने थिउक्कसंक्रमेण संक्रम्योदयमागमिष्यति अतः कारणात् संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितौ समयोनोच्छिष्टावलिरवशिष्टेति ग्राह्यम् । एवं क्रोधत्रयमुपशमितम् ।।२७२।।

अब उपशमनावलि के अंतिम समय में संभवने वाले क्रियाविशेष का निरूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(कोहस्स य पढमठिदी)** क्रोध की प्रथम स्थिति **(आवलिसेसे)** एक आवलि शेष रहने पर **(तिकोहं)** तीनों क्रोध **(उवसंतं)** उपशान्त हुए, **(णवकं ण य)** परन्तु

नवक समयप्रबद्ध उपशांत नहीं हुआ। **(तत्थ)** वहाँ **(कोहस्स)** क्रोध का **(अंतिमबंधुदया)** अंतिम बंध व अंतिम उदय **(होंति)** होता है। ।।२७२।।

टीकार्थ–संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति उच्छिष्टावलिमात्र शेष रहनेपर उपशमनावलि के अंतिम समय में एक समय कम दो आवलि मात्र नवक बन्ध समयप्रबद्धों को छोड़कर शेष तीन क्रोध का द्रव्य पूर्व में कहे गए विधान से चरमफालिरूप से संपूर्णरूप से अपने स्थान में ही उपशमित होता है। उस उपशमनावलि के अंतिम समय में संज्वलन क्रोध की बंधव्युच्छित्ति व उदयव्युच्छित्ति एक ही समय में होती है। उस समय में संज्वलन क्रोध की उच्छिष्टावलि का प्रथम निषेक संज्वलन मान में स्तिबुक संक्रमण से संक्रमित होकर उदय में आयेगा। इसलिए संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में एक समय कम उच्छिष्टावलि शेष रही ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार तीन क्रोध का उपशमन हुआ।।२७२।।

विशेषार्थ– जिस समय उपशमनावलि समाप्त होकर उच्छिष्टावलि प्रारम्भ होती है उसी समय तीनों प्रकार के क्रोध के उपशम होने के साथ नवक समयप्रबद्धों को छोड़कर क्रोधसंज्वलन का बन्ध और उदयव्युच्छिन्न होते हैं। यहाँ जो तीनों प्रकार के उपशमनावलि के अन्त में उपशम होने का विधान किया है सो उसका तात्पर्य यह है कि तीनों प्रकार के क्रोधों का प्रशस्त उपशमन विधि के द्वारा उनके पूरे द्रव्य का स्वस्थान में ही उपशम हो जाता है, जिनका उपशम होने के प्रथम समय से असंख्यात गुणित श्रेणिरूप से उपशम होता है और उपशमनावलि के अन्त में उनका पूरा द्रव्य उपशमित हो जाता है। यत: उपशमनावलि का अन्त होकर जिस समय उसका अभाव है वही उच्छिष्टावलि के प्रारम्भ होने का प्रथम समय है, इसलिए उपशमनावलि के अंतिम समय की अपेक्षा विचार करने पर उस समय नवक समयप्रबद्ध एक समय कम दो आवलि प्रमाण शेष बचता है और उच्छिष्टावलि के प्रथम समय की अपेक्षा विचार करने पर वह दो समय कम दो आवलि प्रमाण शेष बचता है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। विशेष व्याख्यान पुरुषवेद के समय कर आये हैं।

अथ मानत्रयोपशमनविधानप्रदर्शनार्थं गाथापञ्चकमाह–

से काले माणस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
पढमट्ठिदिम्मि दव्वं असंखगुणियक्कमे देदि।।२७३।।

तस्मिन् काले मानस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
प्रथमस्थितौ द्रव्यमसंख्यगुणितक्रमेण ददाति ।।२७३।।

क्रोधत्रयोपशमनानन्तरसमये अयमनिवृत्तिकरणसंयतः संज्वलनमानस्यान्तर्मुहूर्तमात्र–प्रथमस्थितेः कारको वेदकश्च भवति। तद्यथा– संज्वलनमानस्य द्वितीयस्थितौ स्थितसत्त्वद्रव्या–दस्मात् $\frac{\text{स a।१२-}}{\text{७।८}}$ **अपकर्षणभागहारखण्डितैकभागं गृहीत्वा पुनः पल्यासंख्यातभागेन खंडयित्वा तदेकभागमुदयावलिप्रथमसमयादारभ्य इदानीं क्रियमाणप्रथमस्थिति–चरमसमयपर्यन्तं प्रक्षेपयोगेत्यादिना प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपति । पुनः पल्यासंख्यातबहुभागं द्वितीयस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनेन विशेषहीनक्रमेण उपर्यतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपति । पुनर्द्वितीयादिसमयेष्वपि प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यादसंख्येय–गुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य प्रागुक्तप्रकारेण प्रथमद्वितीयस्थित्योर्निक्षिपति। प्रतिसमयं प्रथमस्थिति–प्रथमनिषेकमेकैकमुदयमानमनुभवति च ।।२७३।।**

अब तीन मान का उपशमनविधान दिखाने के लिए पाँच गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(से काले) उस काल में **(माणस्स य)** संज्वलन मान की **(पढमट्ठिदिकारवेदगो)** प्रथम स्थिति का कारक व वेदक (कर्ता व भोक्ता) **(होदि)** होता है। **(पढमठिदिम्मि)** प्रथम स्थिति में **(दव्वं)** द्रव्य **(असंखगुणियक्कमे)** असंख्यातगुणित क्रम से **(देदि)** देता है।।२७३।।

टीकार्थ–तीन क्रोध का उपशमन होने पर अनन्तर समय में यह अनिवृत्तिकरण संयत संज्वलन मान की अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति का कारक और वेदक होता है। उसका खुलासा– संज्वलन मान की द्वितीय स्थिति में स्थित सत्त्वद्रव्य में $\frac{\text{स a।१२-}}{\text{७।८}}$ (सत्त्वद्रव्य में ७ से भाग देने पर मोहनीय कर्म का द्रव्य आता है। उसमें पुनः २ से भाग देने पर कषायों का द्रव्य आता है और उसमें पुनः ४ से भाग देने पर एक मान कषाय का द्रव्य आता है।) अपकर्षण भागहार से भाग देकर एकभाग ग्रहण करके पुनः उसको पल्य के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उसके एक भाग का उदयावलि के प्रथम समय से अभी बतायी गयी प्रथमस्थिति के अंतिम समय तक 'प्रक्षेपयोग' इत्यादि विधि से प्रत्येक निषेक में असंख्यात गुणितक्रम से निक्षेपण करता है। पुनः पल्य के असंख्यात बहुभाग द्रव्य का द्वितीय स्थिति में **'दिवड्ढगुणहानि भाजिदे पढमा'** इस विधि से विशेषहीन क्रम से ऊपर अतिस्थापनावलि छोड़कर निक्षेपण करता है। पुनः द्वितीयादि समयों में भी प्रथम समय में अपकृष्ट किए द्रव्य से असंख्यात गुणितक्रम से द्रव्य का अपकर्षण करके पूर्व में कहे गये प्रकार से प्रथम व द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है। प्रत्येक समय में उदय में आये प्रथम स्थिति के एक–एक प्रथम निषेक का अनुभव करता है।।२७३।।

विशेषार्थ– जिस समय में तीन क्रोध का उपशम होता है उसके बाद के समय में प्रथम स्थिति करने के साथ उसी समय उसका वेदक भी होता है। तात्पर्य यह है कि इससे पहले मान संज्वलन की प्रथमस्थिति गलकर समाप्त हो जाती है, क्योंकि उपशमश्रेणि में क्रोधवेदक जीव क्रोध की प्रथमस्थिति को छोड़कर शेष तीन कषायों की प्रथमस्थिति एक आवलिप्रमाण रखता

है जो इस समय नहीं पाई जाती क्योंकि एक आवलि काल में स्तिबुक संक्रमण द्वारा क्रोधरूप होकर वह गल चुकी है। इसलिए वह मान संज्वलन की द्वितीय स्थिति में से प्रतिसमय असंख्यात कर्म पुंज का अपकर्षण कर उसके उदय समय से निक्षेप करता है, इसीलिए ही यहाँ इस जीव को प्रथमस्थिति का कारक और वेदक कहा है।

पढमट्ठिदिसीसादो विदियादिम्हि य असंखगुणहीणं।
तत्तो विसेसहीणं जाव अइच्छावणमपत्तं[1] ।।२७४।।

प्रथमस्थितिशीर्षतो द्वितीयादौ चासंख्यगुणहीनम् ।
ततो विशेषहीनं यावदतिस्थापनमप्राप्तम् ।।२७४।।

प्रथमस्थितिचरमसमयनिक्षिप्तद्रव्यात् द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं, प्रथमस्थितिशीर्षद्रव्यस्य पल्यभागहारभूतासंख्यातरूपबाहुल्यविशेषादसंख्यातसमयप्रबद्धमात्रत्वात्। द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकनिक्षिप्तद्रव्यस्य च द्व्यर्धगुणहान्यपकर्षणभागहारभक्तत्वेनैकसमय-प्रबद्धासंख्येयभागमात्रत्वात् । ततो द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेकद्रव्यादुपरितननिषेकेषु विशेषहीनक्र-मेणातिस्थापनावलेरधो निक्षिप्तद्रव्यं विशेषतोऽसंख्येयगुणहीनमेव । संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितिकरण-वेदनप्रथमसमयादारभ्य मानत्रयस्य द्वितीयस्थितिद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमयति। तदैव संज्वलनक्रोधस्य समयोनोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकद्रव्यमपि संज्वलनमानस्योदयावल्यां समस्थितिनिषेकेषु प्रतिसमयमेकैकनिषेकक्रमेण संक्रम्य उदयमागमिष्यति । संज्वलनक्रोधोच्छिष्टा-वलिनिषेकाः मानोदयावलिनिषेकेषु संक्रम्य अनन्तरानन्तरसमयेषूदयमागच्छन्तीति तात्पर्यम्। अयमेव थिउक्कसंक्रम इति भण्यते ।।२७४।।

अन्वयार्थ-(पढमट्ठिदिसीसादो) प्रथमस्थिति के शीर्ष से (अंतिम निषेक से) **(विदियादिम्हि य)** द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में **(असंखगुणहीणं)** असंख्यातगुणा कम द्रव्य देता है। **(तत्तो)** उसके बाद **(जाव अइच्छावणमपत्तं)** जब तक अतिस्थापना प्राप्त नहीं होती तब तक **(विसेसहीणं)** विशेषहीनरूप से देता है।।२७४।।

टीकार्थ-प्रथम स्थिति के अंतिम समय में दिए गए द्रव्य से द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में दिया गया द्रव्य असंख्यातगुणा कम है। प्रथमस्थिति शीर्षद्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध मात्र है क्योंकि पल्य का भागहारभूत असंख्यात संख्या बड़ी है। (उससे पल्य का असंख्यातवाँ भाग छोटा आया और उस पल्य के असंख्यातवें भाग से सत्त्वद्रव्य में भाग देने पर एकभाग बड़ा आया) और द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में निक्षिप्त किया द्रव्य एक समयप्रबद्ध का असंख्यातवाँ भाग है क्योंकि बहुभाग द्रव्य में डेढ़गुणहानिरूप अपकर्षण भागहार से भाग देने पर प्रथम निषेक का द्रव्य आता है। (भागहार बड़ा होनेसे द्रव्य कम आता है) उसके पश्चात् द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेकद्रव्य

१) जयध. पु. १३, पृ. २९६

से ऊपर के निषेकों में विशेषहीन क्रम से अतिस्थापनावलि के नीचे निक्षिप्त किया द्रव्य विशेषरूप से असंख्यातगुणा हीन ही है। संज्वलन मान की प्रथम स्थिति के करण और वेदन के प्रथम समय से तीन मान की द्वितीय स्थिति का द्रव्य प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से उपशमाता है। उसी समय में संज्वलन क्रोध का एक समय कम उच्छिष्टावलिमात्र निषेकद्रव्य भी समान स्थितियुक्त संज्वलन मान की उदयावलि के निषेकों में प्रत्येक समय में एक–एक निषेक क्रम से संक्रमित होकर उदय में आयेगा। संज्वलन क्रोध की उच्छिष्टावलि के निषेक मान की उदयावलि के निषेकों में संक्रमित होकर अनंतर–अनंतर समयों में उदय में आते हैं, यह तात्पर्य है। इसे ही **'थिउक्कसंक्रम'** ऐसा कहते हैं ।।२७४।।

विशेषार्थ– यहाँ पुरुषवेद से उपशमश्रेणि पर चढ़ने वाला जीव जब मान संज्वलन की प्रथम स्थिति करता है उस समय से अपकर्षित द्रव्य का निक्षेपण किस विधि से होता है इसे स्पष्ट करने के लिए यह गाथा कही गयी है। गाथा में केवल यह कहा गया है कि प्रथम स्थिति के शीर्ष से द्वितीय स्थिति में असंख्यातगुणे हीन द्रव्य का निक्षेप करता है तथा उसके आगे अतिस्थापनावलि के पूर्वतक विशेषहीन द्रव्य का निक्षेप करता है। आशय यह है कि जिस समय यह जीव मान संज्वलन की प्रथम स्थिति करता है उस समय उदयस्थिति में सबसे कम प्रदेशपुंज का निक्षेप करता है। उसके बाद की स्थिति से लेकर गुणश्रेणिशीर्ष के प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे–असंख्यातगुणे द्रव्य का निक्षेप करता है। उसके बाद द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में प्रथम स्थिति के शीर्ष से असंख्यात गुणे हीनद्रव्य का निक्षेप करता है तथा उसके बाद अतिस्थापनावलि के प्राप्त होने के पूर्व तक विशेषहीन–विशेषहीन द्रव्य का निक्षेप करता है। यह क्रम प्रतिसमय चलता रहता है। यहाँ प्रथमस्थिति एक आवलि अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होती है। इसे समझकर इस निक्षेप–विधि को जानना चाहिए। प्रति समय प्रथम स्थिति में और द्वितीय स्थिति में कितने द्रव्य का निक्षेप होता है इसे टीका से जान लेना चाहिए। तथा माया संज्वलन के सम्बन्ध में भी मान संज्वलन के समान कथन कर लेना चाहिए।

माणस्स य पढमठिदी सेसे समयाहिया तु आवलियं ।
तियसंजलणगबंधो दुमास सेसाण कोह आलावो[१] ।।२७५।।

मानस्य च प्रथमस्थितिः शेषे समयाधिकां त्वावलिकाम् ।
त्रिकसंज्वलनकबन्धो द्विमासं शेषाणां क्रोधआलापः ।।२७५।।

संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावल्यामवशिष्टायां उपशमनादिविधानैः

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २९९.

संख्यातसहस्रस्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मानोपशमनकालचरमसमये संज्वलनमानमायालोभानां स्थितिबन्धो मासद्वयप्रमितो भवति । शेषकर्मणां स्थितिबन्धः संख्यातगुणहीनोऽपि क्रोधालापवत्तीसियादीनां पूर्वोक्ताल्पबहुत्वयुक्तः संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव ।।२७५।।

अन्वयार्थ– (माणस्स य पढमठिदि) मान की प्रथम स्थिति **(समयाहिया तु आवलियं)** एक समय अधिक आवलिप्रमाण **(सेसे)** शेष रहने पर **(तियसंजलणगबंधो)** तीन संज्वलन का स्थितिबन्ध **(दुमास)** दो मास होता है और **(सेसाण)** शेष कर्मों का स्थितिबंध **(कोह आलावो)** क्रोध के आलाप के समान अर्थात् संख्यात हजार वर्ष होता है।।२७५।।

टीकार्थ– संज्वलन मान की प्रथम स्थिति एक समय अधिक आवलि शेष रहने पर उपशमनादि विधान द्वारा संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर मान के उपशमनकाल के अंतिम समय में संज्वलन मान, माया व लोभ का स्थितिबंध दो माह होता है। शेष कर्मों का स्थितिबन्ध संख्यातगुणा कम होकर भी क्रोध के उपशमन काल के अंत में कहे गये के समान तीसियादिकों का पूर्वोक्त अल्पबहुत्व से सहित संख्यात हजार वर्षमात्र ही होता है। (तीसिय का सबसे कम, उससे नाम–गोत्र का संख्यातगुणा, उससे वेदनीय का ड्ेढ़गुणा होता है।)

माणदुगं संजलणगमाणे संछुहदि जाव पढमठिदि ।
आवलितियं तु उवरिं मायासंजलणगे य संछुहदि[1] ।।२७६।।

मानद्विकं संज्वलनकमाने संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रयं तूपरि मायासंज्वलनके च संक्रामति ।।२७६।।

संज्वलनमानप्रथमस्थितौ यावदावलित्रयमवशिष्यते तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमानद्वयद्रव्यं संज्वलनमाने एव पूर्वोक्तविधानेन संक्रामति । ततः परं संक्रमणावलिचरमसमयपर्यन्तं तद्द्वयद्रव्यं संज्वलनमायाद्रव्ये एव संक्रामति । संज्वलनमानद्रव्यं तु नियमेन संज्वलनमायायामेव संक्रामति ।।२७६।।

अन्वयार्थ–(जाव पढमठिदी आवलितियं) जब तक प्रथम स्थिति तीन आवलि रहती है तब तक **(माणदुगं)** दो मान का **(संजलणमाणे)** संज्वलन मान में **(संछुहदि)** संक्रमण करता है, **(तु उवरिं)** परन्तु उसके बाद **(मायासंजलणगे य)** माया संज्वलन में **(संछुहदि)** संक्रमण करता है।।२७६।।

टीकार्थ : संज्वलन मान की प्रथम स्थिति में जब तक तीन आवलि शेष रहती

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २९८

है तब तक अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दोनों मानों का द्रव्य संज्वलन मान में ही पूर्व में कहे गए विधान से संक्रमित करता है। उसके बाद संक्रमणावलि के अंतिम समय तक उन दोनों का द्रव्य संज्वलन माया द्रव्य में ही संक्रमित करता है। परन्तु संज्वलन मान द्रव्य का नियम से संज्वलन माया में ही संक्रमण करता है।।२७६।।

माणस्स य पढमठिदी आवलिसेसे तिमाणमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति माणस्स[१] ।।२७७।।

मानस्य च प्रथमस्थितावावलिशेषे त्रिमानमुपशान्तम् ।
न च नवकं तत्रान्तिमबन्धोदयौ भवतो मानस्य ।।२७७।।

एवं मानत्रयद्रव्यं संज्वलनमानप्रथमस्थितावावलिमात्रावशेषायामुपशमनावलिचरमसमये समयोनद्व्यावलिमात्रसंज्वलनमाननवकबन्धसमयप्रबद्धान् मुक्त्वा सर्वमुपशमितं भवति । तस्मिन्नेवोपशमनावलिचरमसमये संज्वलनमानस्य बन्धोदयौ युगपद् व्युच्छिन्नौ । पूर्ववन्मानत्रयस्योच्छिष्टावलिप्रथमनिषेको मायायां थिउक्कसंक्रमेण संक्रम्योदेष्यतीति विशेषो ज्ञातव्यः ।।२७७।।

अन्वयार्थ-(माणस्स य पढमठिदी) मान की प्रथम स्थिति **(आवलिसेसे)** एक आवलि शेष रहने पर **(तिमाणं)** तीन मान का द्रव्य **(उवसंतं)** उपशान्त हुआ। **(ण य णवकं)** नवक समयप्रबद्ध का द्रव्य उपशान्त नहीं हुआ। **(तत्थ)** वहाँ **(माणस्स)** मान का **(अंतिमबंधुदया)** अंतिम बंध व अंतिम उदय **(होंति)** होता है।।२७७।।

टीकार्थ- इस प्रकार संज्वलन मान की प्रथम स्थिति में आवलिमात्र शेष रहने पर उपशमनावलि के अंतिम समय में एक समय कम दो आवलिमात्र संज्वलन मान के नवक बन्ध समयप्रबद्धों को छोड़कर तीन मान का सर्व द्रव्य उपशमित होता है। उस उपशमनावलि के अंतिम समय में संज्वलन मान का बन्ध व उदय एक ही समय व्युच्छिन्न होता है। पूर्व के समान ही तीन मान की उच्छिष्टावलि का प्रथम निषेक माया में **'थिउक्कसंक्रमण से'** संक्रमित होकर उदय में आता है ऐसा विशेष जानना चाहिए।।२७७।।

से काले मायाए पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि।
माणस्स य आलाओ दव्वस्स विभंजणो तत्थ[२] ।।२७८।।

तस्मिन् काले मायायाः प्रथमस्थितिकारवेदको भवति।
मानस्य चालापो द्रव्यस्य विभञ्जनस्तत्र ।।२७८।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. २९९ /पृ. २५९-६०

२) जयध. पु. १३, पृ. ३००

मानत्रयोपशमनानन्तरसमये मायासंज्वलनस्य प्रथमस्थितेः कारको वेदकश्च भवति। तत्र संज्वलनमायाद्रव्यस्यापकर्षणनिक्षेपविभागो मानद्रव्यवदालाप्यतां विशेषाभावात् । तदैव संज्वलनमानोच्छिष्टावलिनिषेकाः थिउक्कसंक्रमेण संज्वलनमायोदयावलिनिषेकेषु समस्थितिकेषु संक्रम्योदेष्यन्ति । संज्वलनमानस्य समयोनद्व्यावलिमात्रा नवकबन्धसमयप्रबद्धाश्च तदैव समयोनद्व्यावलिमात्रकालेनोपशाम्यन्ते ।।२७८।।

अन्वयार्थ-(से काले) उस काल में **(मायाए)** माया की **(पढमट्ठिदिकारवेदगो)** प्रथम स्थिति का कारक और वेदक **(होदि)** होता है। **(तत्थ)** वहाँ **(दव्वस्स विभंजणो)** द्रव्य का विभाजन **(माणस्स य आलाओ)** मान द्रव्य के समान कहना चाहिए।।२७८।।

टीकार्थ- तीन मान के उपशमन के अनन्तर समय में माया संज्वलन की प्रथम स्थिति का कारक और वेदक होता है। वहाँ संज्वलन माया द्रव्य का अपकर्षण व निक्षेप विभाग मान द्रव्य के समान ही कथन करना चाहिए क्योंकि यहाँ विशेष नहीं है। उस समय में संज्वलन मान के उच्छिष्टावलि के निषेक **'थिउक्कसंक्रमण'** द्वारा समान स्थिति वाले संज्वलन माया की उदयावलि के निषकों में संक्रमित होकर उदय में आते हैं। संज्वलन मान के एक समय कम दो आवलिमात्र नवीन बांधे हुए समयप्रबद्ध उसी समय एक समय कम दो आवलिमात्र काल द्वारा उपशमित होते हैं।।२७८।।

अथ मायात्रयोपशमनविधानार्थं गाथाचतुष्टयमाह-

मायाए पढमठिदी सेसे समयाहियं तु आवलियं ।
मायालोहगबंधो मासं सेसाण कोह आलाओ[१] ।।२७९।।

मायायाः प्रथमस्थितौ शेषे समयाधिकां त्वावलिकाम् ।
मायालोभगबन्धो मासं शेषाणां क्रोध आलापः ।।२७९।।

मायासंज्वलनस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावल्यामवशिष्टायां संज्वलनमायालोभयोः स्थितिबन्धो मासमात्रः शेषकर्मणां क्रोधवदालापः कर्तव्यः पूर्वोक्ताल्पबहुत्वेन संख्यातवर्षसहस्रमात्रः स्थितिबन्ध इत्यर्थः ।।२७९।।

अब तीन माया के उपशमन के विधान के लिए चार गाथाएँ कहते हैं -

अन्वयार्थ-(मायाए पढमठिदी) माया की प्रथम स्थिति **(समयाहियं तु आवलियं)**

१) जयध. पु. १३, पृ. ३०३

एक समय अधिक आवलि **(सेसे)** शेष रहने पर **(मायालोहगबंधो)** माया और लोभ का स्थितिबन्ध **(मासं)** एक माह होता है और **(सेसाण)** शेष कर्मों का **(कोह आलावो)** क्रोध के समान आलाप (कथन) जानना चाहिए।।२७९।।

टीकार्थ–संज्वलन माया की प्रथम स्थिति में एक समय अधिक आवलि शेष रहने पर संज्वलन माया और लोभ का स्थितिबंध एक माह मात्र होता है। शेष कर्मों का क्रोध के समान आलाप करना चाहिए अर्थात् पूर्व में कहे गए अल्पबहुत्व से संख्यात हजार वर्ष मात्र स्थितिबंध होता है ऐसा अर्थ है।।२७९।।

मायदुगं संजलणगमायाए छुहदि जाव पढमठिदी ।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु लोहसंजलणे।।२८०।।

मायाद्विकं संज्वलनगमायायां संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकं तूपरि संक्रामति हि लोभसञ्ज्वलने ।।२८०।।

मायासंज्वलनप्रथमस्थितौ आवलित्रयं यावदवशिष्यते तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान–मायाद्वयद्रव्यं मायासंज्वलने एव संक्रामति । ततः परं संक्रमणावल्यां संज्वलनलोभे संक्रामति ।।२८०।।

अन्वयार्थ–(जाव पढमठिदी आवलितियं) जब तक प्रथम स्थिति तीन आवलि रहती है तब तक **(मायदुगं)** दो माया का द्रव्य **(संजलणगमायाए)** संज्वलन माया में **(छुहदि)** संक्रमित करता है **(तु उवरिं)** परन्तु उसके बाद**(लोहसंजलणे)** संज्वलन लोभ में **(संछुहदि हु)** संक्रमित करता है।।२८०।।

टीकार्थ– माया संज्वलन की प्रथम स्थिति में जब तक तीन आवलि शेष रहती है तब तक अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान इन दो माया का द्रव्य संज्वलन माया में संक्रमित करता है। उसके बाद संक्रमणावलि में वह द्रव्य संज्वलन लोभ में संक्रमित करता है।।२८०।।

मायाए पढमठिदी आवलिसेसे त्ति मायमुवसंतं।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति मायाए।।२८१।।

मायायाः प्रथमस्थितावावलिशेष इति मायमुपशान्तम् ।
न च नवकं तत्रान्तिमबन्धोदयौ भवतो मायायाः ।।२८१।।

संज्वलनमायाप्रथमस्थितौ आवलिमात्रावशिष्टायामुपशमनावलिचरमसमये मायात्रयं समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धान् मुक्त्वा अन्यत्सर्वं सर्वात्मनोपशमितं भवति।

तस्मिन्नेव समये उच्छिष्टावलिप्रथमनिषेकः संज्वलनलोभोदयावलिप्रथमनिषेके थिउक्कसंक्रमेण संक्रामति। तस्मिन्नेव समये मायासंज्वलनस्य बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ ।।२८१।।

अन्वयार्थ– **(मायाए पढमठिदि)** माया की प्रथम स्थिति **(आवलिसेसेत्ति)** एक आवलि शेष रहनेपर **(मायं उवसंतं)** माया का उपशमन हुआ, **(ण य णवकं)** नवक समयप्रबद्धों का उपशमन नहीं हुआ। **(तत्थ)** वहाँ **(मायाए)** माया का **(अंतिमबंधुदया)** अंतिम बंध और अंतिम उदय **(होंति)** होता है।।२८१।।

टीकार्थ– संज्वलन माया की प्रथम स्थिति में आवलिमात्र शेष रहनेपर उपशमनावलि के अंतिम समय में एक समय कम दो आवलिमात्र नवकबन्ध समयप्रबद्धों को छोड़कर शेष तीन माया का सर्वद्रव्य सर्वरूप से उपशमित होता है। उसी समय में उच्छिष्टावलि का प्रथम निषेक संज्वलन लोभ की उदयावलि के प्रथम निषेक में **'थिउक्कसंक्रमण'** से संक्रमित होता है। उस ही समय में संज्वलन माया के बंध व उदय की व्युच्छित्ति होती है।।२८१।।

अथ लोभत्रयोपशमनविधानप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह–

से काले लोहस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
तं पुण बादरलोहो माणं वा होदि णिक्खेओ[1]।।२८२।।

स्वे काले लोभस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
स पुनो बादरलोभो मान इव वा भवति निक्षेपः।।२८२।।

मायात्रयोपशमनानन्तरसमये लोभत्रयोपशमनं प्रारभमाणः संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितेः कारको वेदकश्च भवति । स पुनरनिवृत्तिकरणो बादरलोभोदयमनुभवन् बादरसाम्पराय इत्युच्यते । अत्र संज्वलनलोभद्रव्यादपकृष्य प्रथमस्थितौ निक्षेपः संज्वलनमानप्रथमस्थितिनिक्षेपवत् कर्तव्यः। तस्मिन्नेव समये मायासंज्वलनस्य समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धान् पूर्वोक्तविधानेनोपशमयति समयोनोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकांश्च प्राग्वत्स्थितोक्तसंक्रमेण संज्वलन–लोभे संक्रमयति।।२८२।।

अब तीन लोभ की उपशमना का विधान कहने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(से काले)**उस काल में **(लोभस्स य)** (वह अनिवृत्तिकरण बादरसांपराय जीव) संज्वलन लोभ की **(पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि)** प्रथम स्थिति का कारक व वेदक **(होदि)** होता है। **(पुण)** पुनः **(तं)** वह **(बादरलोहो)** बादर लोभ है उसका **(माणं वा)** मान कषाय के समान ही **(णिक्खेओ)** निक्षेप **(होदि)** होता है।।२८२।।

१) जयध. पु. १३, पृ. ३०४

क्रोध के उदय से श्रेणी चढ़ने वाला जीव क्रम से सर्व कषायों की अंतरायाम में प्रथम स्थिति स्थापन करता है। उसका नक्शा

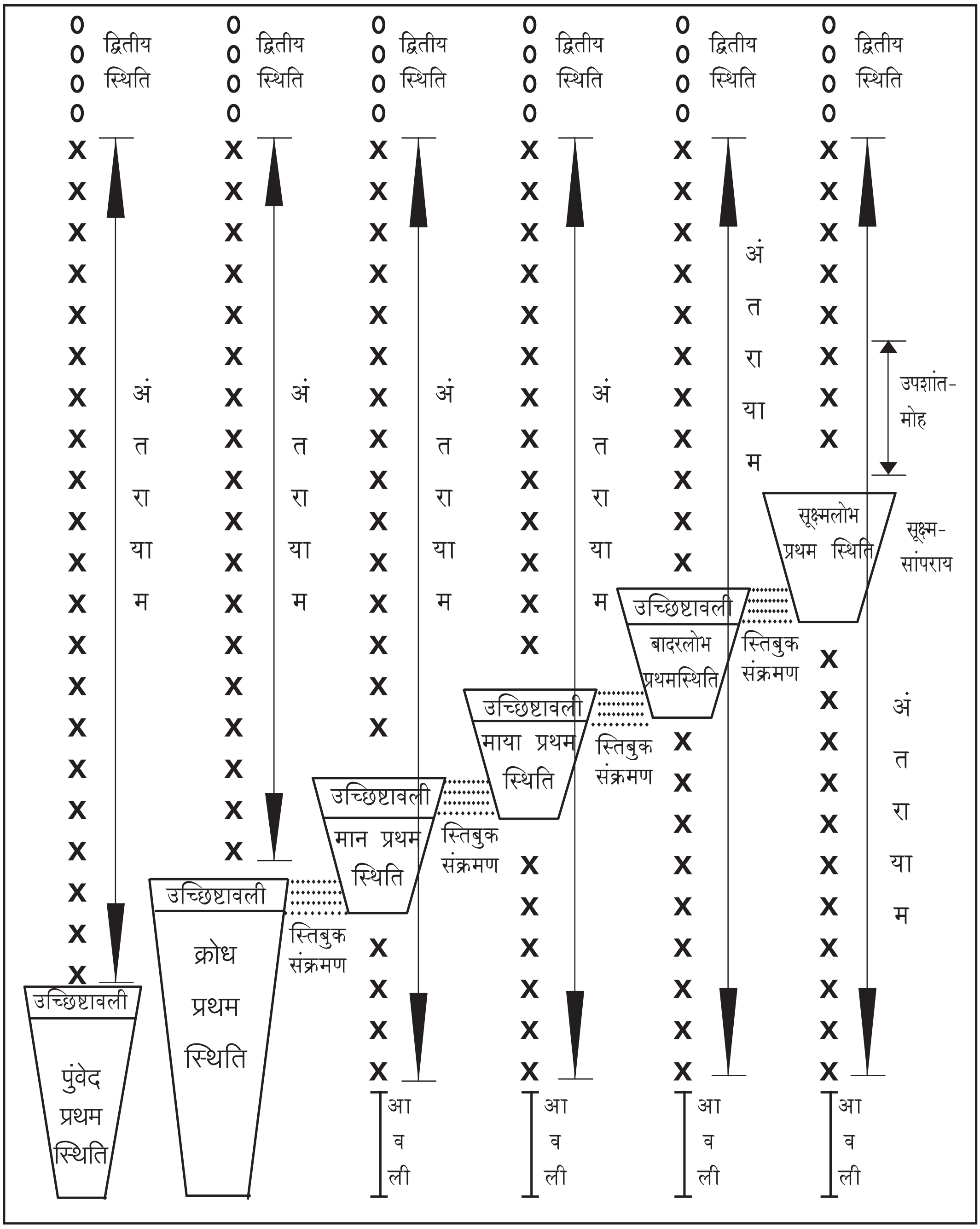

टीकार्थ– तीन माया के उपशमन के अनन्तर समय में तीन लोभ के उपशमन का प्रारम्भ करने वाला संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति का कारक व वेदक होता है। पुन: वह अनिवृत्तिकरण जीव बादर लोभ के उदय का अनुभव करने वाला बादरसाम्पराय कहा जाता है। यहाँ संज्वलन लोभ द्रव्य में से अपकर्षण करके प्रथम स्थिति में निक्षेप संज्वलन मान की प्रथम स्थिति के निक्षेप के समान ही करना चाहिए। उस समय में संज्वलन माया के एक समय कम दो आवलिमात्र नवकबन्ध समयप्रबद्धों को पूर्व में कहे गए विधान से उपशमाता है और एक समय कम उच्छिष्टावलि मात्र निषेकों को पूर्व के समान ही स्तिबुक संक्रमण द्वारा लोभ में संक्रमित करता है।।२८२।।

पढमट्ठिदिअद्धंते लोहस्स य होदि दिणपुधत्तं तु ।
वस्ससहस्सपुधत्तं सेसाणं होदि ठिदिबंधो ।।२८३।।

प्रथमस्थित्यर्धान्ते लोभस्य च भवति दिनपृथक्त्वं तु ।
वर्षसहस्रपृथक्त्वं शेषाणां भवति स्थितिबन्धः ।।२८३।।

मायात्रयोपशमनानन्तरसमयादारभ्य संज्वलनबादरलोभवेदककालोऽनिवृत्तिकरणचरमसमयपर्यन्तो भवति । ततः परं सूक्ष्मसाम्पराय[1]चरमसमयपर्यन्तः संज्वलनसूक्ष्मलोभवेदककालो भवति । उभयोऽपि मिलित्वा लोभवेदकाद्धेति उच्यते । स च लोभवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः तस्य संदृष्टिः [२९] इदं संख्यातेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं [१ ⌒ / २९९ / ९] त्रिषु स्थानेषु विभज्य स्थापयेत्

२९९ / ९३	२९९ / ९३	२९९ / ९३

पुनस्तदेकभागं संख्यातेन खण्डयित्वा बहुभागं प्रथमस्थाने दद्यात् [२९९ / ९९] पुनरवशिष्टैकभागं अपरेण संख्यातेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं द्वितीयस्थाने दद्यात् [२९९ / ९९९] तदेकभागं तृतीयस्थाने दद्यात् स्थानत्रयसंदृष्टिः–

२९९ / ९३	२९९ / ९३	२९९ / ९३
२९९ / ९९	२९९ / ९९९	२९ / ९९९

अत्र प्रथमभागः संज्वलनबादरलोभवेदकाद्धाप्रथमार्धः । द्वितीयो भागः सूक्ष्मकृष्टिकरणकालः। तृतीयो भागः सूक्ष्मकृष्टिवेदककालः। स एव सूक्ष्मसाम्परायकालः । अत्र प्रथमद्वितीयभागयोर्मेलने लोभवेदकाद्धा द्वित्रिभागमात्रं

साधिकं प्रथमस्थितिप्रमाणं भवति [। / २ २ / ३] तद्यथा–प्रथमद्वितीयभागयोः तावद्बहुभागं – मिलितमिदं [१ ⌓ / २ ९ ९ २ / ९ ३] अत्रैतावदृणं [२ ९ । १ । २ / ९ ३] प्रक्षिप्यापवर्तिते एवं [२ ९ । २ / ३] द्वितीयभागविशेषधने [२ ९ ९ / ९ ९ ९] एतावदृणं [२ ९ / ९ ९ ९] प्रक्षिप्यापवर्त्य [२ ९ / ९ ९] प्रथमभागविशेष–धने प्रक्षिप्यापवर्तिते एवं [२ ९ / ९] अस्मिन् त्रिभिः समच्छेदीकृते [२ ९ ३ / ९ ३] द्वितीयऋणेन साधिकं प्रथमऋणं [। / २ ९ । १ । २ / ९ ३] विशोध्यावशिष्टं धनं पूर्वानीतप्रथमद्वितीयभागद्वयबहुभागद्रव्ये लोभ–वेदकाद्धा द्वित्रिभागमात्रे प्रक्षिपेत् [। / २ ९ २ / ३] इयमावल्यधिकसंज्वलनबादरलोभ–प्रथमस्थितिर्भवति । एतस्याः प्रथमार्धो लोभवेदककालस्य साधिकत्रिभागमात्रो भवति । तथाहि–

प्रथमभागबहुभागद्रव्ये [२ ९ ९ / ९ ३] एतावदृणं [२ ९ । १ / ९ ३ / १ ⌓] प्रक्षिप्यापवर्तिते लोभवेदकाद्धा–त्रिभागो भवति [२ ९ / ३] पुनः प्रथमभागविशेषधने [१ ⌓ / २ ९ / ९ ९] एतावदृणं [२ ९ । १ / ९ ९] प्रक्षिप्याप–वर्तिते [२ ९ / ९] अस्मिन् त्रिभिः समच्छेदीकृते द्वितीयऋणेन साधिकं प्रथमऋणं [। / २ ९ । १ / ९ ३] विशोध्यावशिष्टं [२ ९ २ / ९ ३] प्रागानीतलोभवेदकाद्धात्रिभागे प्रक्षिपेत् [। / २ ९ । १ / ३] एवंकृते लोभ–वेदकाद्धा साधिकत्रिभागमात्रः बादरसंज्वलनलोभप्रथमस्थितिप्रथमार्द्धो भवति । तच्चरमसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो दिनपृथक्त्वं शेषकर्मणां स्थितिबन्धः पूर्वोक्ताल्पबहुत्वेन वर्षसहस्रपृथक्त्वमात्रः ।।२८३।।

अन्वयार्थ–(पढमट्ठिदि अद्धंते) बादरलोभ की प्रथम स्थिति के अर्ध के अंत में **(लोहस्स य)** लोभ का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबन्ध **(दिणपुधत्तं)** दिवस पृथक्त्व **(होदि)** होता है, **(तु)** परन्तु **(सेसाणं)** शेष कर्मों का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबंध **(वस्ससहस्सपुधत्तं)** हजार वर्ष पृथक्त्व **(होदि)** होता है।।२८३।।

टीकार्थ– तीन माया के उपशमन के अनन्तर समय से अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक संज्वलन बादर लोभ का वेदककाल है। दोनों मिलकर लोभ का वेदककाल कहा जाता है और वह लोभवेदक काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। उसकी संदृष्टि [२] इसमें संख्यात से भाग देकर उसके बहुभाग को तीन स्थानों में विभाग करके स्थापन करना चाहिए। बहुभाग यह है [१ ⌓ / २९९ / ९]

(उसके समान तीन भाग करने के लिए तीन का भाग दिया है।) [२९९ / ९३] [२९९ / ९३] [२९९ / ९३]

पुन: उसके एक भाग में संख्यात से भाग देकर उसका बहुभाग प्रथम स्थान में देना चाहिए। [२९९ / ९९] पुन: शेष रहे एक भाग को दूसरे संख्यात से भाग देकर उसका बहुभाग द्वितीय स्थान में देना [२९९ / ९९९] चाहिए। उसका शेष रहा हुआ एक भाग तृतीय स्थान में देना चाहिए।

तीन स्थानों की संदृष्टि –

बहुभाग के समान तीन भाग	२९९ / ९३	२९९ / ९३	९ ⌓ २९९ / ९३
एक भाग के बहुभाग और शेष एक भाग–	२९९ / ९९	२९९ / ९९९	२९ / ९९९

इसमें प्रथम भाग संज्वलन बादर लोभ के वेदककाल का प्रथमार्ध है। दूसरा भाग सूक्ष्म कृष्टिकरणकाल है। तीसरा भाग सूक्ष्मकृष्टिवेदककाल है। वही सूक्ष्मसाम्पराय का काल है।

यहाँ प्रथम और दूसरे भाग के मिलाने पर लोभवेदककाल का कुछ अधिक दो त्रिभागमात्र (बादरलोभ की) प्रथम स्थिति का प्रमाण है। [। / २९२ / ३]

उसका खुलासा – प्रथम और द्वितीय भाग का बहुभाग मिलानेपर ऐसा आता है। [२९९ २ / ९३] (दो समान संख्याओं को मिलाने के लिए उस संख्या में दो से गुणा करने पर लब्ध आता है।) इसमें इतना ऋण [२९।१।२ / ९३] मिलाने पर ऐसा [२९९।२ / ९३] आता है। संख्यात का अपवर्तन करने पर [२९।२ / ३] यह उत्तर आता है। द्वितीय भाग के विशेषधन में

[१ ⏜ / २ ९ / ९९९] इतना ऋण [२ ९ / ९९९] मिलाकर [२ ९ ९ / ९ ९ ९] (एक घाटि का जितना प्रमाण है उतना ऋण मिलाने पर एक घाटि का प्रमाण कम हुआ)

संख्यात का अपवर्तन करने पर [२ ९ / ९ ९] ऐसा आता है। यह द्रव्य प्रथम भाग के विशेषधन में

मिलाकर [२ (१ ⏜ / ९) / ९९] + [२ / ९९] = [२ ९ ९ / ९ ९] अपवर्तन करनेपर [२ ९ / ९] ऐसा आता है।

दो बहुभागों का जोड़	प्रथम और द्वितीय भाग का विशेषधनों का जोड़
२ ९ २ / ३	२ ९ / ९

इन दोनों का योग करने के लिए तीन से समच्छेद किया। [२ ९ ३ / ९ ३] प्रथम ऋण में [२ ९ । १ । २ / ९ ३]

द्वितीय ऋण साधिक किया [२ ९ । १ । २ (।) / ९ ३] (पूर्व में विशेषधन में मिलाया हुआ ऋण) और वह ऋण धन में से कम करके रहा हुआ धन पूर्व में लाये हुए प्रथम व द्वितीय भाग के बहुभाग द्रव्य में लोभवेदककाल के दो त्रिभाग में मिलावें। [२ ९ । २ (।) / ३] यह आवलि से अधिक संज्वलन बादरलोभ की प्रथम स्थिति है। इसका प्रथम अर्ध लोभवेदककाल का साधिक त्रिभाग है। उसका स्पष्टीकरण –

प्रथम भाग के बहुभाग द्रव्य में [१ ⏜ / २ ९ ९ / ९ ३] १ ⏜ इतना ऋण [२ ९ । १ / ९ ३] निक्षिप्त कर अपवर्तन करने

पर लोभवेदककाल का त्रिभाग होता है। [२ ९ ९ / ९ ३] = [२ ९ / ३] पुनः प्रथम भाग के विशेषधन में

[२ ९ ९ / ९ ९] इतना ऋण [२ ९ / ९ ९] निक्षिप्त कर अपवर्तन किया [२ ९ ९ / ९ ९] = [२ ९ / ९] इतना आया।

इसमें तीन से समच्छेद करके [२ ९ ३ / ९ ३] इसमें से द्वितीय ऋण से साधिक प्रथम ऋण [२ ९ । १ (।) / ९ ३]

कम करके शेष रहा धन [२ ९ २ / ९ ३] लोभवेदककाल के त्रिभाग में मिलावें। [२ ९ । १ (।) / ३]

ऐसा करने पर लोभवेदककाल साधिक त्रिभागमात्र अर्थात् बादर संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति का प्रथमार्द्ध है। उसके अंतिम समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व और शेष कर्मों का स्थितिबन्ध पूर्व में कहे गए अल्पबहुत्व से पृथक्त्व हजार वर्ष होता है।।२८३।।

विशेषार्थ– माया के उपशमन के अनन्तर समय से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के अंतिम समय तक लोभवेदककाल है। वह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। इसका प्रथम दो तिहाई भाग बादरलोभ वेदककाल हैं। तीसरा त्रिभाग सूक्ष्मलोभवेदक काल है। यही सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का काल है। तीन भाग करने का विधान अर्थसंदृष्टि से संस्कृत टीका में दिखाया है। उसे समझाने के लिए अंकसंदृष्टि यहाँ दिखायी जाती है। अन्तर्मुहूर्त का प्रमाण २५६ समय और संख्यात का प्रमाण ४ माना। अन्तर्मुहूर्तह्नसंख्यात = २५६ह्न४=६४ एक भाग १९२ बहुभाग। बहुभाग के समान तीन भाग करके (६४,६४,६४) तीन जगह स्थापन करे। शेष रहे (६४) एक भाग में संख्यात का भाग देकर उसका बहुभाग १६x३=४८ प्रथम समान भाग में मिलाया। यह बादर लोभ वेदककाल का प्रथम अर्ध है। पुनः शेष एक भाग में संख्यात का भाग देकर बहुभाग दूसरे समान भाग में मिलाया। यह लोभवेदककाल का द्वितीयार्ध अर्थात् सूक्ष्मकृष्टि करणकाल है। शेष रहा एक भाग (४) तीसरे समान भाग में मिलाया। (६४+४=६८) यह सूक्ष्मकृष्टि वेदककाल है।

	बादर लोभ का प्रथमार्ध	सूक्ष्मकृष्टिकरणकाल	सूक्ष्मकृष्टिवेदककाल
बहुभाग के समानभाग	६४	६४	६४
एक भाग का बहुभाग	४८	१२	४
कुल–	११२	७६	६८

प्रथम दो काल मिलकर लोभवेदककाल का $\frac{१}{३}$ साधिक दो तिहाई भाग होता है। ११२+७६=१८८। २५६ का त्रिभाग ८५ और , दो तिहाई भाग १७० $\frac{२}{३}$ उससे यह अधिक है इसलिए साधिक दो तिहाई भाग ऐसा कहा है। इससे आवलि अधिक बादर लोभ की प्रथम स्थिति स्थापन करता है। इस प्रथम स्थिति का प्रथमार्द्ध लोभवेदककाल का साधिक त्रिभाग है। २५६ का त्रिभाग ८५ $\frac{१}{३}$ होता है। यहाँ प्रथमार्द्ध ११२ आया है। इसलिए उसमें साधिक त्रिभाग कहा है। प्रथमार्द्ध के अंत समय में संज्वलन लोभ का दिन पृथक्त्व और अन्य कर्मों का पृथक्त्व हजार वर्ष स्थितिबन्ध होता है।

अथ संज्वलनलोभानुभागसत्त्वस्य कृष्टिकरणप्ररूपणार्थमिदमाह–

विदियद्धे लोभावरफड्डयहेट्ठा करेदि रसकिट्टिं ।
इगिफड्डयवग्गणगदसंखाणमणंतभागमिदं ।।२८४।।

द्वितीयार्धे लोभावरस्पर्धकाधस्तनां करोति रसकृष्टिम् ।
एकस्पर्धकवर्गणागतं संख्यानामनन्तभागमिदम् ।।२८४।।

संज्वलनलोभप्रथमस्थितेः प्रथमार्धं पूर्वोक्तविधानेन गालयित्वा तद्द्वितीयार्धप्रथम–समये संज्वलनलोभानुभागसत्त्वस्य जघन्यस्पर्धकादिवर्गणाविभागप्रतिच्छेदाः प्रतिपरमाणु जीवराशेरनन्तगुणाः सन्ति १६ ख । एतेषां वर्ग इति संज्ञा व । एवंविधसर्वजघन्यशक्तियुक्तानां सदृशधनानां कार्मणपरमाणूनां प्रथमपुञ्जः आदिवर्गणा भवति। तद्यथा–

लोभसंज्वलनसर्वसत्त्वद्रव्यमिदं [स a १२– / ७।८] अस्मिन्ननुभागसम्बन्धिसाधिकद्व्यर्धगुणहान्या भक्ते आदिवर्गणा भवति [स a १२– / ७।८।खख ३/२] तस्यां द्विगुणगुणहान्या भक्तायां विशेषो भवति [स a १२– / ७।८।खख ३/२।खख२] अयं लघुसंदृष्टिनिमित्तं व वि इति स्थाप्यते। अस्मिन्ननुभागसम्बन्धिद्विगुणगुणहान्या गुणिते आदिवर्गणा जायते व वि ख ख २। अत्र लघुसंदृष्ट्यर्थं गुणहानेरष्टाङ्क संस्थाप्य ८ द्वाभ्यां गुणयित्वा ८ । २ तेन षोडशामङ्केन विशेषे गुणिते आदिवर्गणान्यास एवंविधो भवति व वि १६ । इदं लघुसंदृष्टिनिमित्तं व इति स्थापयित्वा पुनरनुभागसम्बन्धिसाधिकद्व्यर्धगुणहान्या गुणिते संज्वलनलोभसर्वसत्त्वमागच्छति [व १२] अस्माद् द्वितीयार्धप्रथमसमये द्रव्यमपकृष्य संज्वलनलोभजघन्यस्पर्धकलतासमानादिवर्गणाविभागप्रतिच्छेदेभ्यः अधस्तादनन्तगुणहीना-विभागप्रतिच्छेदतया एकस्पर्धकवर्गणाशलाकानन्तैकभागप्रमिताः [४/ख] अनुभागसूक्ष्मकृष्टीः करोति। उपशमश्रेण्यां बादरकृष्टिविधानासम्भवात्। अन्तर्मुहूर्तकाल-निर्वर्त्यमानानुभाग-काण्डकघातं विना इदानीं प्रतिसमयं सर्वजघन्यशक्त्यनन्तैकभागप्रमितत्वेन कृष्टिघातं कर्तुं प्रारभत इत्यर्थः ।।२८४।।

अब संज्वलन लोभ के अनुभागसत्त्व के कृष्टिकरण का प्ररूपण करने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ–(विदियद्धे) बादर संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति के दूसरे अर्धभाग में **(लोभावरफड्ढयहेट्ठा)** लोभ के जघन्य स्पर्धक के नीचे **(रसकिट्टिं)** अनुभागकृष्टि **(करेदि)** करता है। **(इदं)** यह कृष्टि **(इगिफड्ढयवग्गणगदसंखाणमणंतभागं)** एक स्पर्धक की वर्गणासंख्या का अनन्तवाँ भागप्रमाण है।।२८४।।

टीकार्थ– बादर संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति का प्रथम अर्धभाग पूर्वोक्त विधान से बिताकर उसके द्वितीय अर्धभाग के प्रथम समय में (क्या होता है वह आगे कहते हैं।) संज्वलन लोभ के अनुभागसत्त्व के जघन्य स्पर्धक की आदि वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद प्रत्येक परमाणु में जीवराशि से अनन्तगुणे हैं। उसकी संदृष्टि **१६ ख** (जीवराशि = १६, अनन्त = **ख**) इसकी वर्ग ऐसी संज्ञा है। इस प्रकार की सर्वजघन्य शक्ति से युक्त सदृशधनयुक्त कार्मण परमाणुओं का प्रथमपुंज अर्थात् आदिवर्गणा होती है। उसका स्पष्टीकरण –

संज्वलन लोभ का यह सर्व सत्त्वद्रव्य **स a १२– / ७।८** $\dfrac{\text{समयप्रबद्ध X डेढ़गुणहानि}}{\text{७ (कर्म) X २(कषाय, नोकषाय) X ४(कषाय)}}$

इसमें अनुभाग सम्बन्धी साधिक डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर प्रथम वर्गणा आती है। **स a १२– / ७।८ ।ख ख ३/२** (अनुभाग संबंधी गुणहानि आयाम ख ख। डेढ़गुणित= $\frac{३}{२}$ साधिक की संदृष्टि– ऊपर खड़ी रेखा '।') प्रथम वर्गणा में दो गुणहानि से भाग देने पर विशेष (चय) आता है। **स a १२– / ७।८ ।ख ख ३/२ ।ख ख २** इसकी लघुसंदृष्टि करने के लिए **व वि** ऐसी संदृष्टि स्थापित की जाती है। इसमें अनुभाग सम्बन्धी दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम वर्गणा आती है। **व वि ख ख २**

यहाँ लघुसंदृष्टि के लिए गुणहानि का अष्टांक स्थापित करके ८ को २ से गुणा करके ८X२=१६। इस १६ अंक से चय में गुणा करने पर प्रथम वर्गणा का न्यास **व वि १६** ऐसा होता है। पुन: लघुसंदृष्टि के लिए 'व' ऐसा स्थापन करके पुन: अनुभाग संबंधी साधिक डेढ़ गुणहानि से गुणा करने पर संज्वलन लोभ का **व १२** सर्वद्रव्य आता है। इसमें से द्वितीय अर्धभाग के प्रथम समय में द्रव्य का अपकर्षण करके संज्वलन लोभ के जघन्य स्पर्धकरूप लतासमान प्रथम वर्गणा के अविभागप्रतिच्छेद से नीचे अनन्तगुणे हीन अविभागप्रतिच्छेदरूप से एक स्पर्धकशलाका की वर्गणाशलाका का अनन्तवाँ भागप्रमाण (वर्गणाशलाका = ४) अनुभाग की सूक्ष्मकृष्टि करता है क्योंकि उपशमश्रेणि में **४/ख** बादर कृष्टि का विधान नहीं है। अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा होनेवाले अनुभागकांडकघात बिना अब प्रत्येक समय में सर्व जघन्य शक्ति का (जघन्य शक्ति व उसका अनन्तवाँ भाग) **व/ख** अनन्तवाँ भागप्रमाणरूप से कृष्टिघात करने के लिए प्रारम्भ करता है।।२८४।।

विशेषार्थ– लोभ कषाय का जितना वेदककाल है उसमें से अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक यह जीव बादर लोभ का वेदन करता है। बादर लोभ स्पर्धकगत होता है। उसको सूक्ष्म करने की प्रक्रिया का नाम ही सूक्ष्मकृष्टिकरण कहलाता है। उपशमश्रेणि में स्पर्धकगत लोभ का बादर कृष्टिकरण न होकर सीधा सूक्ष्मकृष्टिकरण होता है। अब देखना यह है कि अनिवृत्तिकरण के किस काल में यह सूक्ष्मकरण क्रिया संपन्न होती है। इसी का निर्देश करते हुए यह बतलाया गया है कि बादरलोभ का जितना वेदनकाल है उसके प्रथमार्ध में मात्र स्पर्धकगत लोभ का ही वेदन होता है और द्वितीयार्ध में स्पर्धकगत लोभ का वेदन करते हुए जघन्य स्पर्धकगत लोभ के द्वारा कृष्टिकरण की क्रिया सम्पन्न होती है। आशय यह है कि लोभ संज्वलन का जो जघन्य स्पर्धकगत अनुभाग है उसे अपकर्षण

द्वारा अनन्तगुणा हीन करके सूक्ष्मकृष्टियों की रचना करता है। यहाँ अनुभाग का काण्डकघात न होकर प्रतिसमय उसकी उक्त विधि से अपवर्तना होती है।

अथ द्वितीयार्धप्रथमसमये कृष्ट्यर्थमपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपविधानार्थमिदमाह–

ओक्कट्टिदइगिभागं पल्लासंखेज्जखंडिदिगिभागं ।
देदि सुहुमासु किट्टिसु फड्डयगे सेसबहुभागं[1] ।।२८५।।

अपकर्षितैकभागं पल्यासंख्येयखण्डितैकभागम् ।
ददाति सूक्ष्मासु कृष्टिषु स्पर्धके शेषबहुभागम् ।।२८५।।

संज्वलनलोभसर्वसत्त्वमिदं [व १२] अपकर्षणभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागं गृहीत्वा पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं पृथक् संस्थाप्य [व १२ प / ओ प a] तदेकभागं अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदेत्यादि सूत्राभिप्रायेण एकस्पर्धकवर्गणा–नन्तैकभागमात्रकृष्ट्यायामेन खण्डयित्वा पुना रूपोनकृष्ट्यायामार्धन्यूनद्विगुण–गुणहान्या विभज्य द्विगुणगुणहान्या गुणिते आदिवर्गणाप्रमाणं द्रव्यं प्रथमकृष्टौ निक्षिपति [व १२।१६ / ओ प।४।१६–४ / a ख ख २] इयमेव प्रथमसमये क्रियमाणकृष्टीनां जघन्या कृष्टिः । तच्छक्तिप्रमाणं पुनः पूर्वस्पर्धकसर्वजघन्यवर्गस्य प्रथमसमयकृष्ट्यायाममात्रवारा–नन्तरूपखण्डितस्यैकभागमात्रं [व / ख ४ / ख] । पुनः प्रथमकृष्टिद्रव्ये एकचयेन [व १२ / ओ प।४।१६–४ / a ख ख २] अनेन हीने द्वितीयकृष्टिद्रव्यं भवति [व १२।१६–१ / ओ प।४।१६–४ / a ख ख २] एवं तच्छक्तिप्रमाणं पुनः प्रथमकृष्टिशक्तेरनन्तगुणं भवति [व ख १ / ख ४ / ख] एवं तृतीयादिकृष्टिषु निक्षिप्यमाण–द्रव्यं एकैकचयहीनं सद्गत्वा रूपोनकृष्ट्यायाम–मात्रचयन्यूनप्रथमकृष्टिद्रव्यप्रमितं चरमकृष्टिद्रव्यं भवति [व १२ ।१६– ४ / ओ प।४।१६–४ ख / a ख ख २] तृतीयादिकृष्टिद्रव्याणामविभागप्रतिच्छेदाः रूपोन–कृष्टिगच्छसंख्यावारा–नन्तरूपगुणितजघन्यकृष्ट्यनुभागप्रतिच्छेदप्रमिताः गच्छन्ति। एवं गत्वा चरमकृष्ट्यविभागप्रतिच्छेदाः रूपोनकृष्ट्यायाम–मात्रवारानन्तगुणितप्रथमकृष्ट्यविभागप्रतिच्छेदमात्रा भवन्ति [व ख ४ / ख ४ ख / ख] अपवर्तिते पूर्वस्पर्धक–सर्वजघन्यवर्गानन्तैकभागप्रमिताः [व / ख] एताः संज्वलनलोभ–द्रव्यस्य प्रथमसमय–

१) जयध. पु. १३, पृ. ३०८–३०९

सूक्ष्मकृष्टय:। पुन: पृथक्संस्थापितबहुभागद्रव्यं [व १२ प / ओ प a / a] **पूर्वस्पर्धकनानागुणहानिषु निक्षिप्यते। तद्यथा– तद्बहुभागद्रव्यमनुभागसम्बन्धि–द्व्यर्धगुणहान्या विभज्य एकभागं प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकादिवर्गणायां निक्षिप्यते** [व १२ प १६ / a / ओ प १२ १६ / a] **पुनर्द्वितीयादिवर्गणासु द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्गणापर्यन्तासु एकैकोत्तर–चयहीनं द्रव्यं निक्षिप्यते । पुनर्द्वितीयादिगुणहानीनां द्वितीयवर्गणास्वपि पूर्वगुणहानिचयार्द्धार्द्धमात्रै: एकाद्यकोत्तरचयैर्हीनं द्रव्यं निक्षिप्य चरमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणायां तद्गुणहानिचयै: रूपोनगुणहानिमात्रैर्हीनं द्रव्यं निक्षिप्यते। एवं निक्षिप्ते अपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागभक्तस्य बहुभागद्रव्यं समाप्तं भवति। सूक्ष्मचरमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यात् पूर्वस्पर्धकरूपसत्त्वद्रव्यस्य प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तद्रव्यमनन्तगुणहीनं, अनुभागसम्बन्धिद्व्यर्धगुणहानिभागहारमाहात्म्यात् । कृष्टिशब्दस्यार्थ उच्यते–कर्शनं कृष्टि: कर्मपरमाणुशक्तेस्तनूकरणमित्यर्थ: । कृश तनूकरणे इति धात्वर्थमाश्रित्य प्रतिपादनात् । अथवा कृष्यते तनूक्रियते इति कृष्टि: प्रतिसमयं पूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणा–शक्तेरनन्तगुणहीनशक्तिवर्गणाकृष्टिरिति भावार्थ: ।।२८५।।**

अब दूसरे अर्धभाग के प्रथम समय में कृष्टि के लिए अपकर्षण किये हुये द्रव्य के निक्षेप का विधान कहने के लिए यह सूत्र कहते हैं –

अन्वयार्थ–(ओक्कट्टिदइगिभागं) अपकर्षण किये हुये एक भाग में **(पल्लासंखेज्जखंडिदिगिभागं)** पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर उसका एक भाग **(सुहुमासु किट्टिसु)** सूक्ष्मकृष्टियों में **(देदि)** देता है। **(सेसबहुभागं)** शेष रहा बहुभाग **(फड्डयगे)** स्पर्धकों में देता है।।२८५।।

टीकार्थ– संज्वलन लोभ के सर्व सत्त्वद्रव्य में [व १२] अपकर्षण भागहार से भाग [व १२ / ओ] देकर उसका एक भाग ग्रहण करके पुन: उसमें पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर [व १२ / ओ प / a] उसका बहुभाग अलग रखकर [व १२ प / ओ प a / a] उसके एकभाग में **'अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिद...'** इत्यादि सूत्र में कहे गए अभिप्राय के अनुसार एक स्पर्धक में जितनी वर्गणाएँ होती है उसका अनन्तवाँ एकभाग मात्र ऐसे कृष्टिआयाम से भाग देकर पुन: उसमें एक कम कृष्टिआयाम के अर्ध से कम दो गुणहानि से भाग देकर दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम वर्गणाप्रमाण द्रव्य प्रथम कृष्टि में देता है।

$\dfrac{\text{अपकृष्ट एकभाग}}{\text{कृष्टिआयाम}}$ = मध्यमधन = $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२}}{\text{ओ प } \underset{a}{} \text{ } \dfrac{४}{\text{ख}}}}$ (कृष्टिआयाम = $\dfrac{४}{\text{ख}}$)

$\dfrac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \dfrac{(\text{कृष्टिआयाम}-1)}{२}}$ = चय $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२}}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$ चय x २ गुणहानि= प्रथम कृष्टिद्रव्य $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२}|१६}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$

यही प्रथम समय में की गयी कृष्टियों मे से जघन्य कृष्टि है। उसकी शक्ति का प्रमाण पुन: स्पर्धक के सबसे जघन्य वर्ग को प्रथम समय में जितना कृष्टिआयाम का प्रमाण है उतनी बार अनन्त से भाग देने पर जो प्रमाण आता है उतना है।

$\dfrac{\text{जघन्य वर्ग के अविभागप्रतिच्छेद}}{\text{अनन्त का भाग कृष्टिआयाम बार}}$ = जघन्य कृष्टि की शक्ति $\boxed{\dfrac{\text{व}}{\text{ख}^{\frac{४}{\text{ख}}}}}$

पुन: प्रथम कृष्टिद्रव्य में एक चय कम करने पर द्वितीय कृष्टि का द्रव्य आता है।

प्रथम कृष्टिद्रव्य−१ चय = द्वितीय कृष्टिद्रव्य $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२}|१६}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$ − $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२}}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$ = $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२}|१६-१}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$

(दोनों संख्याओं में छेद समान हैं इसलिए समान संख्या रखकर धनराशि के शेष रहे १६ गुणकार में ऋणराशि का एक गुणकार कम किया है)

उसकी शक्ति का प्रमाण प्रथम कृष्टि की शक्ति से अनन्तगुणा है। $\boxed{\dfrac{\text{व ख } १}{\text{ख}^{\frac{४}{\text{ख}}}}}$ (प्रथम कृष्टि की शक्ति में एक बार अनन्त से गुणा किया) इसप्रकार तृतीयादि कृष्टियों में दिया गया द्रव्य एक-एक चयहीन होकर एक कम कृष्टिआयाममात्र चय प्रथम कृष्टिद्रव्य से कम होने पर चरम कृष्टि का द्रव्य आता है।

प्रथम कृष्टि का द्रव्य−एक कम कृष्टिआयामप्रमाण चय = अंतिम कृष्टि का द्रव्य

$\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२}|१६}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$ − $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२} \;\; ४}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; \text{ख} \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$ = $\boxed{\dfrac{\text{व } \overset{|}{१२} \;\; |१६- \; ४}{\text{ओ प}|४|१६-४ \;\; \text{ख} \;\; a\,\text{ख} \;\; \text{ख } २}}$

(दोनों संख्याओं में समान संख्या अलग रखकर धनराशि के शेष रहे गुणकार १६ में

से ऋणराशि का रहा [४ / ख] यह गुणकार कम किया।)

अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण–जितने नंबर की कृष्टि है उसमें से एक कम करके उतनी बार अनन्त से जघन्य कृष्टि के अविभाग प्रतिच्छेदों को गुणा करने पर तृतीयादि कृष्टिद्रव्य के अविभागप्रतिच्छेद आते हैं। इस प्रकार प्रथम कृष्टि के अविभागप्रतिच्छेदों को एक कम कृष्टि आयाम प्रमाण बार अनन्त से गुणा करने पर अंतिम कृष्टि के अविभागप्रतिच्छेद आते हैं।

[व ख ४ / ख ४ ख / ख] इसका अपवर्तन करने पर पूर्वस्पर्धक के सबसे जघन्य वर्ग से अनन्तवें भागप्रमाण अविभागप्रतिच्छेद हैं। (उदा. कृष्टि आयाम ५ माना। एक कम कृष्टिप्रमाण बार अनन्त से गुणा किया और कृष्टि [व / ख] आयामप्रमाण बार अनन्त से भाग दिया।

[व ख ख ख ख / ख ख ख ख ख] अपवर्तन करनेपर अनन्तवाँ भाग [व / ख] रहा) ये संज्वलन लोभद्रव्य के प्रथम समय में की गयी सूक्ष्मकृष्टियाँ हैं।

पुन: अलग रखा हुआ बहुभाग द्रव्य [व १२ प / ओ प] पूर्वस्पर्धक की नानागुणहानियों में दिया जाता है। उसका स्पष्टीकरण –उस बहुभाग द्रव्य अनुभागसंबंधी (साधिक) डेढ़गुणहानि से भाग देकर उसका एकभाग प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्धक की आदिवर्गणा में दिया जाता है।

[व १२ प १६ / ओ प १२ १६] (चय निकालने के लिए दो गुणहानि से भाग दिया और प्रथम वर्गणा का प्रमाण निकालने के लिए पुन: दो गुणहानि से गुणा किया।)

पुन: द्वितीयादि वर्गणाओं में द्वितीय गुणहानि की प्रथम वर्गणा तक एक–एक चयहीन क्रम से द्रव्य दिया जाता है। पुन: द्वितीयादि गुणहानि की द्वितीयादि वर्गणाओं में भी पूर्व गुणहानि के चय के अर्ध–अर्ध प्रमाण एक–एक चय कम द्रव्य के क्रम से निक्षेपण किया जाता है। चरम गुणहानिके चरम स्पर्धक की चरम वर्गणा में एक कम गुणहानि आयामप्रमाण उस गुणहानि का चय कम करके द्रव्य का निक्षेपण किया जाता है। इसप्रकार निक्षेपण करने पर पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर आया हुआ अपकृष्टद्रव्य का बहुभाग समाप्त होता है। अंतिम सूक्ष्मकृष्टि में निक्षिप्त किए द्रव्य से पूर्वस्पर्धकरूप सत्त्वद्रव्य की प्रथम गुणहानि के जघन्य स्पर्धक की प्रथम वर्गणा में निक्षिप्त किया द्रव्य अनन्तगुणा कम है क्योंकि अनुभागसंबंधी डेढ़गुणहानि का भागहार बड़ा है।

कृष्टि शब्द का अर्थ कहते हैं– 'कर्शनं कृष्टि:' अर्थात् कर्मपरमाणु की शक्ति कृश करना 'कृश तनूकरणे' इस धातु के अर्थ का आश्रय लेकर प्रतिपादन किया है अथवा कृश किया जाता है उसे कृष्टि कहते हैं । प्रत्येक समय में पूर्व स्पर्धक की जघन्य वर्गणाशक्ति से अनन्तगुणा हीन शक्तिरूप जो वर्गणा है वही कृष्टि है।।२८५।।

अथ कृष्टिकरणकालद्वितीयादिसमयेषु अपकृष्टद्रव्यप्रमाणादिविधानार्थमिदमाह–

पडिसमयमसंखगुणा दव्वादु असंखगुणविहीणकमे ।
पुव्वगहेट्ठा हेट्ठा करेदि किट्टिं स चरिमो त्ति[1] ।।२८६।।

प्रतिसमयमसंख्यगुणाद् द्रव्यादसंख्यगुणविहीनक्रमेण ।
पूर्वगाधस्तनामधस्तनां करोति कृष्टिं स चरम इति ।।२८६।।

कृष्टिकरणकाले द्वितीयसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयं पूर्वपूर्वसमयापकृष्टद्रव्यादसंख्यातगुणं द्रव्यं संज्वलनलोभपूर्वस्पर्धकसर्वसत्त्वद्रव्यादपकृष्य प्रथमादिसमयकृतकृष्ट्यायामादसंख्येयगुणहीनायामक्रमेण द्वितीयादिसमयेषु पूर्वपूर्वकृष्ट्यनुभागादधोनन्तगुणहीनशक्त्यात्मिका अपूर्वाः कृष्टीः करोति । तत्र कृष्टिकरणकालस्य द्वितीयसमये प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यात् [व १२ / ओ] अस्मादसंख्येयगुणं द्रव्यं [व १२ a / ओ] संज्वलनलोभपूर्वस्पर्धकसर्वसत्त्वद्रव्यादपकृष्य पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं [व १२ a प / ओ प a a] पूर्वस्पर्धकनिक्षेपसम्बन्धीति पृथक् संस्थाप्य तदेकभागद्रव्यमिदं [व १२ a / ओ प a] गृहीत्वा, अत्र किंचिद्द्रव्यं प्रथमसमयकृतजघन्यकृष्टेरधोऽनन्तगुणहीनशक्तिकापूर्वकृष्टिरूपेण निक्षिपति अवशिष्टं च द्रव्यं प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिशक्तिसमानशक्तिककृष्टिरूपेण निक्षिपति ।।२८६।।

अब कृष्टिकरण काल के द्वितीयादि समयों में अपकृष्ट द्रव्य के प्रमाणादिक के विधान के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– कृष्टिकरणकाल में **(स)** वह जीव द्वितीय समय से **(चरिमो त्ति)** अंतिम समय तक **(पडिसमयं)** प्रत्येक समय में **(असंखगुणा दव्वादु)** असंख्यातगुणे द्रव्य से **(असंखगुणविहीणकमे)** असंख्यातगुणे हीनक्रम से **(पुव्वगहेट्ठा हेट्ठा)** पूर्व कृष्टि के नीचे-नीचे **(किट्टिं)** कृष्टि **(करेदि)** करता है।।२८६।।

टीकार्थ– कृष्टिकरणकाल के द्वितीय समय से आरम्भ करके उसके अंतिम समय तक प्रत्येक समय में पूर्व-पूर्व समय के अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यातगुणे द्रव्य को संज्वलन लोभ के पूर्व स्पर्धकरूप सर्व सत्त्वद्रव्य से अपकर्षित करता है और प्रथमादि समयों में की गई कृष्टि-आयाम से असंख्यातगुणा हीन आयाम क्रम से द्वितीयादि समयों में पूर्व-पूर्व कृष्टि के अनुभाग से नीचे अनन्तगुणा हीन शक्तिस्वरूप अपूर्व कृष्टियों को करता है।

उसमें से कृष्टिकरणकाल के द्वितीय समय में, प्रथम समय में अपकर्षित किये

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ३०९-३१०

द्रव्य से [व १२ / ओ] असंख्यातगुणित द्रव्य [व १२ a / ओ] संज्वलन लोभ के पूर्वस्पर्धकरूप सर्व सत्त्वद्रव्य से अपकर्षित करके पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित करके उसका बहुभाग [व १२a प / ओ प a / a] पूर्वस्पर्धकों में देने के लिए अलग रखकर उसका एकभाग [व १२a / ओ प / a] द्रव्य ग्रहण करके यहाँ कुछ द्रव्य प्रथम समय में की हुई जघन्य कृष्टि के नीचे अनन्तगुणाहीन शक्तिरूप अपूर्व कृष्टिरूप से देता है और शेष रहा द्रव्य प्रथम समय में की गई पूर्व कृष्टि की शक्तिसमान शक्तियुक्त कृष्टिरूप से देता है अर्थात् पूर्वकृष्टियों में देता है। ।।२८६।।

अथ द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टिद्रव्यस्य चतुर्द्रव्यविभागादिप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह–

हेट्ठासीसे उभयगदव्वविसेसे य हेट्ठकिट्टिम्मि ।
मज्झिमखंडे दव्वं विभज्ज विदियादिसमयेसु ।।२८७।।

अधस्तनशीर्ष उभयगद्रव्यविशेषे चाधस्तनकृष्टौ ।
मध्यमखंडे द्रव्यं विभज्य द्वितीयादिसमयेषु ।।२८७।।

कृष्टिकरणकालस्य द्वितीयसमये अपकृष्टकृष्टिद्रव्यं अधस्तनशीर्षविशेषेषु उभय-द्रव्यविशेषेष्वधस्तनकृष्टिषु मध्यमखण्डेषु चतुर्धा विभज्य निक्षिपति । तद्यथा–

प्रथमसमयकृतकृष्टिद्रव्यविशेषोऽयं [व १२ / ओ प।४।१६–४ / a ख ख २] इममेवादिं चोत्तरं च कृत्वा रूपोनप्रथमसमयकृष्ट्यायामं गच्छं कृत्वा पदमेगेण विहीणमित्यादिना संकलनसूत्रेणानीतं चयधनमिदं [व १२ ४ ४ / ओ प।४।१६–४ ख २ ख / a ख ख २] एतदधस्तनशीर्षविशेषेषु निक्षिप्यमाणं द्वितीयसमयापकृष्ट-द्रव्याद् गृहीत्वा संस्थाप्यम्। प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिषु जघन्यकृष्टिद्रव्यमिदं [व १२।१६ / ओ प।४।१६–४ / a ख ख २] एतत्प्रमाणं द्रव्यं द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टिषु प्रतिकृष्टि निक्षिप्यमाणं समपट्टिकारूपापूर्वकृष्ट्यायामेनासंख्यातापकर्षणभागहारखंडितपूर्वकृष्ट्या-यामैकभागमात्रेण त्रैराशिकयुक्त्या गुणितमधस्तनापूर्वकृष्टिसर्वद्रव्यमिदं [व १२ ।१६ ४ / ओ प।४।१६–४ ख ओ a / a ख ख२] अत्रैकस्यां कृष्टौ प्र १ एतावति द्रव्ये निक्षिप्ते फ

(व १२।१६ / ओ प।४।१६-४ / a ख ख २) एतावतीष्वपूर्वकृष्टिषु इ (४ / ख ओ a) निक्षिप्यमाणं कियदिति त्रैराशिकमिदं, एवमानीताधस्तनापूर्वकृष्टिद्रव्यं द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टिद्रव्याद् गृहीत्वा पृथक् संस्थाप्यम् । पुनः प्रथमद्वितीयसमययोरपकृष्टद्रव्ये (व १२ / ओ प / a) (व १२ a / ओ प / a) मेलयित्वा (व १२ a १— / ओ प / a) प्रथमद्वितीयसमयकृतकृष्ट्यायामद्वयेन मिलितेनानेन (४ / ख) 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे' त्यादिविधानेनोभय-समयद्रव्यं खंडयित्वा रूपोनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायामार्धन्यूनद्विगुणगुणहान्या भक्ते उभयद्रव्य-विशेषो भवति (व १२ a १— / ओ प।४।१६-४ / a ख ख २) इममेवादिमुत्तरं च कृत्वा पूर्वापूर्वकृष्ट्यायामद्वयमात्रं गच्छं कृत्वा 'पदमेगेण विहीण' मित्यादिसूत्रेणानीतमुभयद्रव्यविशेष-समस्तधनं (व १२ a १— ४ ४ / ओ प।४।१६-४ ख २ ख / a ख ख २) द्वितीयसमयापकृष्टद्रव्याद् गृहीत्वा पृथक्संस्थाप्यम् । एतैरधस्तन-शीर्षविशेषाधस्तनकृष्ट्युभयविशेषद्रव्यैस्त्रिभिर्हीनं द्वितीय-समयापकृष्टकृष्टिद्रव्यमिदं (व १२ a≡ / ओ प / a) मध्यमखंडसमपट्टिकाद्रव्यं भवति । अस्मिन् द्रव्ये पूर्वापूर्वकृष्ट्यायामद्वय-मात्रेषु (४ / ख) मध्यमखंडेषु एतावति द्रव्येऽपि निक्षिप्ते (व १२ a≡ / ओ प / a) एकस्मिन् खण्डे कियदिति त्रैराशिकसिद्धेन पूर्वापूर्वकृष्टिद्वयायामेन भक्ते एकखण्डसम्बन्धिद्रव्यमागच्छति (व १२ a≡ / ओ प ४ / a ख) अस्मिन् सर्वेषां मध्यमखण्डानां सदृशत्वात् पूर्वापूर्वकृष्टिद्वयायामेन गुणिते समस्तमध्यमखण्डद्वयद्रव्यं भवति (व १२ a≡ ४ / ओ प ४ ख / a ख) इदमन्यत्र संस्थाप्यम् ।।२८७।।

अब द्वितीय समय में अपकर्षण किए कृष्टिद्रव्य के चार विभाग दिखाने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं-

अन्वयार्थ- (विदियादिसमयेसु) द्वितीयादि समयों में **(दव्वं)** अपकर्षित द्रव्य **(हेट्ठासीसे)** अधस्तनशीर्ष में, **(उभयगदव्वविसेसे)** उभयद्रव्यविशेष में, **(हेट्ठकिट्टिम्मि)** अधस्तनकृष्टी में **(य)** और **(मज्झिमखंडे)** मध्यमखण्ड में **(विभज्ज)** विभाग करके देता है।

टीकार्थ- कृष्टिकरणकाल के दूसरे समय में अपकर्षित की गयी कृष्टि के द्रव्य का अधस्तनशीर्ष विशेषों में, उभयद्रव्य विशेषों में, अधस्तनकृष्टियों में और मध्यमखंडों में इस प्रकार

चार प्रकार से विभाग करके निक्षेपण करता है। उसका स्पष्टीकरण–

१.अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य– प्रथम समय में किये गये कृष्टिद्रव्य का यह चय है। (यह संदृष्टि गाथा न. २८४ में देखें)

व १२
ओ प ।४।१६–४
a ख ख २

इसको ही आदि और उत्तर करके एक कम प्रथम समय के कृष्टिआयाम को गच्छ करके 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि संकलन सूत्रानुसार आया हुआ चयधन = $\frac{(\text{गच्छ}-1)}{2}$ x चय x पद

व १२ ४ ४
ओ प ।४।१६–४ ख २ ख
a ख ख २

(यहाँ $\frac{(\text{गच्छ}-1)}{2}$ इसकी संदृष्टि [४ / ख २] पद= [४ / ख] चय का प्रमाण ऊपर दिया है।)

यह अधस्तनशीर्षविशेषों में दिया जाने वाला चयधन द्वितीय समय के अपकृष्ट द्रव्य से ग्रहण करके स्थापित करना चाहिए।

२. अधस्तनकृष्टिद्रव्य (अपूर्वकृष्टिद्रव्य) –

व १२।१६
ओ प ।४।१६–४
a ख ख २

प्रथम समय में की गई कृष्टियों में से यह जघन्य कृष्टि का द्रव्य है। इतना प्रमाण द्रव्य द्वितीय समय में की गयी अपूर्वकृष्टि के प्रत्येक कृष्टि में दिया जाता है। इस प्रकार जघन्य कृष्टि द्रव्य में, असंख्यात अपकर्षण भागहार से खंडित पूर्वकृष्टि–आयाम के एक भागमात्र अपूर्वकृष्टि आयाम से गुणा करने पर समपट्टिकारूप अधस्तन अपूर्वकृष्टि का सर्वद्रव्य आता है। अर्थात्

पूर्वकृष्टि की जघन्य कृष्टि x अपूर्वकृष्टि का आयाम= अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य

[व १२।१६ / ओ प ।४।१६–४ / a ख ख २] x [४ / ख ओ a] = [व १२ ।१६ ४ / ओ प ।४।१६–४ ख ओ a / a ख ख २]

अपूर्वकृष्टि का आयाम = $\frac{\text{पूर्वकृष्टि का आयाम}}{\text{अपकर्षणभागहार x असंख्यात}}$ = [४ / ख ओ a] पूर्वकृष्टि का आयाम = [४ / ख]

त्रैराशिक– एक कृष्टि में इतना [व १२।१६ / ओ प ।४।१६–४ / a ख ख २] द्रव्य निक्षिप्त होता है तो इतनी [४ / ख ओ a]

अपूर्वकृष्टियों में कितना द्रव्य निक्षिप्त होता है? यह त्रैराशिक है। इसप्रकार आया हुआ अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य द्वितीय समय के अपकृष्ट कृष्टिद्रव्य से ग्रहण करके अलग रखे।

३.उभयद्रव्यविशेष –

पुन: प्रथम और द्वितीय समय के अपकृष्ट द्रव्य को मिलाये।

प्रथम समय का अपकृष्टद्रव्य + द्वितीय समय का अपकृष्टद्रव्य= उभय समय का अपकृष्टद्रव्य

| व १२ / ओ प / a | + | व १२ a / ओ प / a | = | व १२ a १— / ओ प / a |

(दोनों संख्याओं में समान संख्या एक तरफ निकाल कर शेष रहे असंख्यात के गुणकार के ऊपर धनराशि का एक गुणकार अधिक किया)

प्रथम और द्वितीय समय में किये गये कृष्टिआयाम से | ४ / ख | **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिद'** इत्यादि विधान से उभय समय के द्रव्य को खंडित करके उसमें एक कम पूर्व–अपूर्व कृष्टिआयाम के अर्ध से कम दो गुणहानि से भाग देने पर उभय द्रव्य विशेष आता है।

चय निकालने की विधि–

$$\frac{\text{सर्वधन}}{\text{गच्छ}} = \text{मध्यमधन}; \qquad \frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \frac{(\text{गच्छ}-1)}{2}} = \text{चय};$$

| व १२ a १— / ओ प ।४ ।१६–४ / a ख ख २ |

सर्वधन = | व १२ a १— / ओ प / a | इसको गच्छ | ४ / ख | से भाग देने पर मध्यमधन आया। पुन: उसको दो गुणहानि में से एक कम पद के आधे को घटा करके भाग देने पर चय आया। इस उभय द्रव्य विशेष को आदि और उत्तर करके (प्रथम संख्या को आदि कहते हैं और जितनी संख्या से आगे संख्या बढ़ती जाती है उसे उत्तर कहते हैं। यहाँ चय का जितना प्रमाण है वही प्रथम संख्या है और उतना ही चय आगे बढ़ता गया इसलिए वही उत्तर है) पूर्वअपूर्वकृष्टि आयामको गच्छ करके **'पदमेगेण विहीणं'** इत्यादि सूत्र से आये उभय द्रव्य विशेष का सर्वधन–

$$\left[\left\{\frac{\text{पद}-1}{2} \times \text{चय}\right\} + \text{आदि}\right] \times \text{पद} = \text{सर्वधन}$$

| व १२ a १— ४ ४ / ओ प ।४ ।१६–४ ख २ ख / a ख ख २ |

इतना धन द्वितीय समय के अपकृष्ट द्रव्य में से ग्रहण करके अलग रखें।

४. मध्यमखंडद्रव्य– अधस्तनशीर्षविशेष, अधस्तन कृष्टि, उभयविशेषद्रव्य इन तीनों द्रव्यों से रहित द्वितीय समय के अपकृष्ट कृष्टि का द्रव्य मध्यम खंडरूप समपट्टिका द्रव्य है।

| व १२ a≡
ओ प
a |

(तीन द्रव्य अलग करने के लिए आड़ी तीन रेखाएँ हैं।) पूर्व–अपूर्व दोनों कृष्टिआयामप्रमाण | ४
ख | मध्यम खंडों में जब इतना द्रव्य | व १२ a≡
ओ प
a | निक्षिप्त होता है तो एक खंड में कितना द्रव्य निक्षिप्त होता है ऐसे त्रैराशिक से सिद्ध पूर्वापूर्वकृष्टिद्रय आयाम से सर्व मध्यमखंड द्रव्य को भाग देने पर एक खंड संबंधी द्रव्य आता है।

| व १२ a≡
ओ प ४
a ख |

सभी मध्यमखंड समान होने से इस द्रव्य को पूर्वापूर्वकृष्टिद्रय आयाम से गुणा करनेपर संपूर्ण पूर्वापूर्वकृष्टि का मध्यमखंड द्रव्य आता है।

| व १२ a≡ ४
ओ प ४ ख
a ख |

यह द्रव्य अन्य जगह स्थापन करे।२८७।।

विशेषार्थ – द्वितीय समय में कृष्टि के लिए अपकृष्ट किये द्रव्य के चार विभाग हैं। १) अधस्तनशीर्षविशेष २) अधस्तन अपूर्वकृष्टि ३) उभयद्रव्यविशेष ४) मध्यमखंड

१) अधस्तनशीर्षविशेष–

पूर्व समय में की गयी कृष्टि में द्रव्य उत्तरोत्तर एक–एक चय हीन है। पूर्वकृष्टियों में जो चय का प्रमाण है उतना द्वितीय कृष्टि में एक चय, तृतीय कृष्टि में दो चय, चौथी कृष्टि में तीन चय इसप्रकार क्रम से एक–एक बढ़ते चयक्रम से द्वितीयादि कृष्टियों में मिलाने पर सर्व कृष्टियाँ प्रथम कृष्टिसमान होती हैं। इसप्रकार सर्व पूर्व कृष्टियाँ समान बनाने के लिए जितना द्रव्य दिया उसको अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य कहते हैं।

जैसे– अंकसंदृष्टि से प्रथम समय में की गयी कृष्टियाँ =८; प्रथम समय का अपकृष्ट द्रव्य =२०० माना।

$$\frac{\text{पूर्वसमयकृत कृष्टिद्रव्य}}{\text{कृष्टि गच्छ}} = \text{मध्यमधन}; \qquad \frac{२००}{८} = २५ \text{ मध्यमधन};$$

$$\text{पूर्वकृष्टि का चय} = \frac{\text{मध्यमधन}}{\text{दो गुणहानि} - \frac{\text{गच्छ}-१}{२}} = \frac{२५}{१६ - \frac{८-१}{२}} = \frac{२५}{१६ - \frac{७}{२}}$$

$$= \frac{२५}{\frac{३२-७}{२}} = \frac{२५}{\frac{२५}{२}} = \frac{२५}{१} \times \frac{२}{२५} = २ \text{ चय}$$

अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य देने पर पूर्वकृष्टियाँ

प्रथम समयकृत कृष्टि

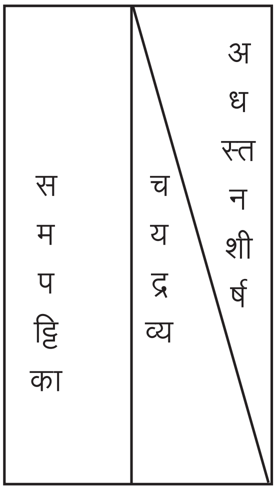

कृ.क्र.	पूर्वकृष्टि का द्रव्य	अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य	सर्वत्र समद्रव्य
८	१८	७ x २ = १४	३२
७	२०	६ x २ = १२	३२
६	२२	५ x २ = १०	३२
५	२४	४ x २ = ८	३२
४	२६	३ x २ = ६	३२
३	२८	२ x २ = ४	३२
२	३०	१ x २ = २	३२
१	३२		३२
		कुल द्रव्य= ५६	

समस्त अधस्तनशीर्ष विशेषधन निकालने का सूत्र $= \left[\left\{\frac{\text{पद}-१}{२} \times \text{चय}\right\} + \text{आदि}\right] \times \text{पद}$

यहाँ अंकसंदृष्टि से पद ७ होता है क्योंकि प्रथम कृष्टि में चय नहीं मिलाया। उससे एक पद कम हुआ। दूसरी कृष्टि में एक चय मिलाया इसलिए 'एक चय' आदि का प्रमाण है। उत्तरोत्तर एक-एक चय बढ़ता गया है। इसलिए चय ही उत्तर है ।

ऊपर के सूत्रानुसार $\left[\left\{\frac{७-१}{२} \times २\right\} + २\right] \times ७ = \left[\left\{\frac{६}{२} \times २\right\} + २\right] \times ७$

$= \left\{६ + २\right\} \times ७ = ८ \times ७ = \boxed{५६}$ इसलिए कुल अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य $\boxed{५६}$ जानना चाहिए।

२)अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य-

पूर्वकृष्टियों में प्रथम कृष्टि का जितना प्रमाण है उतना ही द्रव्य दूसरे समय में की गई सर्व अपूर्वकृष्टियों में समपट्टिकारूप देना। इस समपट्टिकारूप द्रव्य को अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य

कहते हैं। यह द्रव्य देने पर अपूर्वकृष्टियाँ प्रथम पूर्वकृष्टि के समान होती हैं।
जैसे – अंकसंदृष्टि से अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण ४। प्रथम पूर्वकृष्टि के द्रव्य का प्रमाण३२।

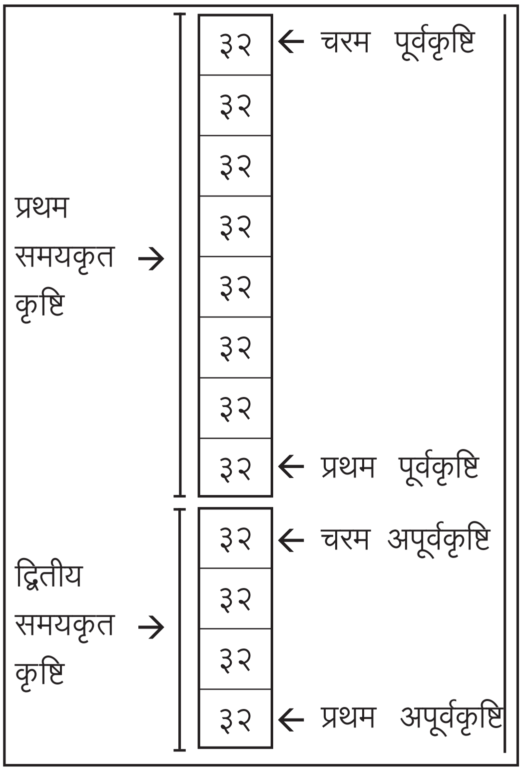

$$\text{अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण} = \frac{\text{पूर्वकृष्टियों का प्रमाण}}{\text{अपकर्षणभागहार x असंख्यात}}$$

यहाँ असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का प्रमाण २ माना है। इसलिए

$$= \frac{८}{२} = ४$$

अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण = ४

अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य = प्रथम पूर्वकृष्टि का द्रव्य x अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण =३२ x ४ = १२८

३) उभयद्रव्यविशेषद्रव्य –

पूर्व–अपूर्व कृष्टियों में चयहीन क्रमरूप गोपुच्छ करने के लिए उभयकृष्टि संबंधी चय का प्रमाण लाकर अंतिम पूर्वकृष्टि में एक चय उसके नीचे उपान्त्य कृष्टि में दो चय इस क्रम से एक–एक अधिक–अधिक करते हुए प्रथम अपूर्वकृष्टि तक देना। इस दिये गए सर्व द्रव्य को उभय द्रव्यविशेष द्रव्य कहते हैं। यह देने पर पूर्व–अपूर्व कृष्टियाँ एक गोपुच्छाकाररूप होती हैं।

इसका प्रमाण प्राप्त करने के लिए पूर्वकृष्टि का द्रव्य और अपूर्वकृष्टि का सर्वद्रव्य दोनों मिलकर जो द्रव्य आया उसमें पूर्व–अपूर्व कृष्टियों के जोड़रूप गच्छ से भाग देने पर मध्यम धन आता है। इसमें एक कम गच्छ के अर्ध से हीन दो गुणहानि से भाग देने पर चय का प्रमाण आता हैं।

जैसे–अंकसंदृष्टि से दूसरे समय में अपकृष्ट द्रव्य =४२४० माना।

दोनों कृष्टियों का मिलकर द्रव्य = पूर्वकृष्टिद्रव्य + अपूर्वकृष्टिद्रव्य =२०० + ४२४० = ४४४०

पूर्व–अपूर्वकृष्टियों का प्रमाण = पूर्वकृष्टियाँ+अपूर्वकृष्टियाँ = ८ + ४ = १२

$$\text{मध्यमधन} = \frac{\text{पूर्वापूर्वकृष्टिद्रव्य}}{\text{पूर्वापूर्वकृष्टियों का आयाम}} = \frac{४४४०}{१२} = ३७०$$

$$\frac{\text{मध्यमधन}}{\text{दो गुणहानि}- \frac{\text{गच्छ}-१}{२}} = \text{चय}$$

(यहाँ गुणहानि का प्रमाण १२ है इसलिए दो गुणहानि = २४)

$$\frac{३७०}{२४- \frac{१२-१}{२}} = \frac{३७०}{२४-\frac{११}{२}} = \frac{३७०}{\frac{४८}{२} - \frac{११}{२}} = \frac{३७०}{\frac{३७}{२}} = \frac{३७० \times २}{३७}$$

$$=१० \times २ = \boxed{२०} \text{ उभयद्रव्यविशेष}$$

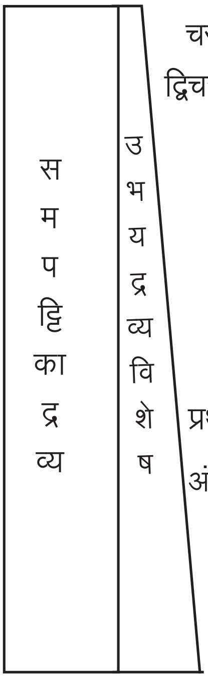

	कृ.क्र.	समपट्टिका द्रव्य	उभयद्रव्यविशेषद्रव्य	कुल द्रव्य
चरम पूर्वकृष्टि →	८	३२	१ x २० = २०	५२
द्विचरमपूर्वकृष्टि →	७	३२	२ x २० = ४०	७२
	६	३२	३ x २० = ६०	९२
	५	३२	४ x २० = ८०	११२
	४	३२	५ x २० = १००	१३२
	३	३२	६ x २० = १२०	१५२
	२	३२	७ x २० = १४०	१७२
प्रथम पूर्वकृष्टि →	१	३२	८ x २० = १६०	१९२
अंतिम अपूर्वकृष्टि →	४	३२	९ x २० = १८०	२१२
	३	३२	१० x २० = २००	२३२
	२	३२	११ x २० = २२०	२५२
प्रथम अपूर्वकृष्टि →	१	३२	१२ x २० = २४०	२७२

कुल उभयद्रव्यविशेषद्रव्य निकालने का सूत्र =

$$\left[\left\{\frac{\text{पद}-१}{२} \times \text{चय}\right\} + \text{आदि}\right] \times \text{पद};\quad \text{पद} = १२;\quad \text{चय} = २०;\quad \text{आदि} = २०$$

$$= \left[\left\{\frac{१२-१}{२} \times २०\right\} + २०\right] \times १२ = \left[\left\{\frac{११}{२} \times २०\right\} + २०\right] \times १२$$

$$= \left\{ ११०+२० \right\} \times १२ = १३० \times १२ = \boxed{१५६०}$$ समस्त उभयद्रव्यविशेषद्रव्य

४)मध्यमखंडद्रव्य-

विवक्षित समय में कृष्टि के लिए अपकृष्ट द्रव्य में से अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य, अधस्तन कृष्टिद्रव्य और उभयद्रव्यविशेषद्रव्य घटा करके शेष द्रव्य को सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में समान विभाग करके देना यही मध्यमखंड द्रव्य है। यह द्रव्य देने पर सर्व अपकृष्टद्रव्य समाप्त होता है और पूर्व-अपूर्व कृष्टियों में चयहीन क्रम से द्रव्य रहता है। जैसे- द्वितीय समय में अपकृष्ट द्रव्य=४२४०, मध्यमखंडद्रव्य= द्वितीयसमय अपकृष्ट द्रव्य - (अधस्तन शीर्षविशेषद्रव्य + अधस्तनकृष्टिद्रव्य+ उभयद्रव्यविशेषद्रव्य)= ४२४०-(५६+१२८+१५६०) =४२४०-$\boxed{१७४४}$ = २४९६

$$\frac{\text{समस्त मध्यमखंडद्रव्य}}{\text{पूर्व-अपूर्वकृष्टिआयाम}} = \text{एक मध्यमखंडद्रव्य} = \frac{२४९६}{१२} = \boxed{२०८}$$

इतना द्रव्य सर्व पूर्व-अपूर्व कृष्टि के प्रत्येक कृष्टि में प्राप्त होता है।

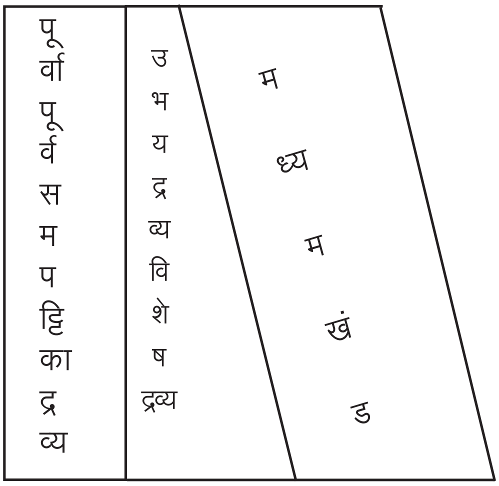

	कृ. क्र.	प्राप्त हुआ सर्वद्रव्य
चरम पूर्वकृष्टि→	१२	५२+२०८=२६०
	११	७२+२०८=२८०
	१०	९२+२०८=३००
	९	११२+२०८=३२०
	८	१३२+२०८=३४०
	७	१५२+२०८=३६०
	६	१७२+२०८=३८०
प्रथम पूर्वकृष्टि→	५	१९२+२०८=४००
चरम अपूर्वकृष्टि→	४	२१२+२०८=४२०
	३	२३२+२०८=४४०
	२	२५२+२०८=४६०
प्रथम अपूर्वकृष्टि→	१	२७२+२०८=४८०

इस अंकसंदृष्टि के समान अर्थसंदृष्टि भी समझना चाहिए। वह अर्थसंदृष्टि टीका में कही गयी है। इसप्रकार यहाँ द्वितीय समय में कृष्टिरूप होने योग्य द्रव्य में बुद्धिकल्पना से अधस्तनशीर्ष विशेषादि चार प्रकार का द्रव्य भिन्न-भिन्न स्थापित किया। कौनसी कृष्टि में कितना द्रव्य प्राप्त होता है इसकी कल्पना आने के लिए इसप्रकार विभाग किया है। वास्तव में उस उस कृष्टिरूप परिणमने योग्य द्रव्य एकसाथ ही कृष्टिरूप परिणमित होता है। इसी प्रकार तृतीयादि समयों में भी कृष्टिरूप होने योग्य द्रव्य का विधान जानना चाहिए।

अर्थसंदृष्टि की अपेक्षा से चार प्रकार के द्रव्य की संदृष्टि-

१)अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य= पूर्वकृष्टिचय x $\frac{(\text{पूर्वकृष्टिआयाम}-१)}{२}$ x पूर्वकृष्टिआयाम

[व १२ / ओ प।४।१६-४ / a ख ख २] x [४ / ख २] x [४ / ख] = [व १२ ४ ४ / ओ प।४।१६-४ ख२ख / a ख ख२]

२) अधस्तनअपूर्वकृष्टिद्रव्य=पूर्व जघन्य कृष्टिद्रव्य x अपूर्वकृष्टि का आयाम

[व १२।१६ / ओ प।४।१६-४ / a ख ख २] x [४ / खओ a] = [व १२।१६ ४ / ओ प।४।१६-४ खओ a / a ख ख २]

३)उभयद्रव्यविशेषद्रव्य= उभयकृष्टिचय x $\frac{(\text{उभयकृष्टि का आयाम}-१)}{२}$ x उभयकृष्टि का आयाम

[व १२ a / ओ प।४।१६-४ / a ख ख २] x [४ / ख २] x [४ / ख] = [व १२ a ४ ४ / ओ प।४।१६-४ ख२ख / a ख ख२]

४) मध्यमखंडद्रव्य= द्वितीय समय का अपकृष्ट द्रव्य - ऊपर के तीन द्रव्य

[व १२ a / ओ प / a] - ≡ = [व १२ a≡ / ओ प / a]

हेट्ठासीसं थोवं उभयविसेसं तदो असंखगुणं।
हेट्ठा अणंतगुणिदं मज्झिमखंडं असंखगुणं।।२८८।।

अधस्तनशीर्षं स्तोकमुभयविशेषं ततोऽसंख्यगुणम् ।
अधस्तनमनंतगुणितं मध्यमखंडमसंख्यगुणम् ।।२८८।।

एतेषु चतुर्षु द्रव्येषु मध्ये सर्वतः स्तोकमधस्तनशीर्षविशेषसमस्तधनं गुणकारभागहारभूतयोः पूर्वकृष्ट्यायामयोः सदृशापवर्तनात् रूपोनपूर्वकृष्ट्यायाम-चतुर्गुणगुणहान्योश्च यथासम्भवमपवर्तितत्वात् । एवमन्यत्राप्यपवर्तनं यथायोग्यं ज्ञातव्यम्। एतस्मादधस्तनशीर्षद्रव्यादुभयद्रव्यविशेषसमस्तधनमसंख्येयगुणं अस्मादधनस्तनापूर्वकृष्टिसमस्तद्रव्यमनंतगुणं अस्मान्मध्यमखण्ड समस्तधनमसंख्येयगुणं ।।२८८।।

व १२ / ओ प ख ख ४ / a

व १२ a १ / ओ प ख ख ४ / a

व १२ / ओ प ओ a / a

व १२ a≡ / ओ प / a

अन्वयार्थ– पूर्वोक्त चार प्रकार के द्रव्य में **(हेट्ठासीसं थोवं)** अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य सबसे कम है। **(तदो)** उससे **(उभयविसेसं)** उभय विशेषद्रव्य **(असंखगुणं)** असंख्यातगुणित है। उससे **(हेट्ठा)** अधस्तन कृष्टिद्रव्य **(अणंतगुणिदं)** अनन्तगुणित है। उससे **(मज्झिमखंडं)** मध्यमखंड **(असंखगुणं)** असंख्यातगुणित है।।२८८।।

टीकार्थ–इन चार द्रव्यों में सबसे कम अधस्तनशीर्षविशेष का सर्वधन है।

व १२ / ओ प ख ख ४ / a

(पूर्व में कहा गया अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य ऐसा होता है। इसमें गुणकार व भागहारभूत पूर्वकृष्टिआयाम सदृश है इसलिए उसका अपवर्तन (सरलरूप) किया।

व १२ ४ ४ / ओ प।४।१६–४ ख २ ख / a ख ख २

भागहार में दो गुणहानि अंकसंदृष्टि की अपेक्षा से १६ लिखी है। अर्थसंदृष्टि की अपेक्षा से **ख ख २** ऐसी और गुणकारभूत **४ / ख** इसको २ का भागहार था। उससे गुणा करने पर **ख ख ४** भागहार हुआ । दो गुणहानि में घटाया हुआ ऋण और ऊपर का गुणकार इसको किंचित् जानकर गिना नहीं और अपवर्तन किया इसलिए पूर्वोक्त अधस्तनशीर्षद्रव्य रहा) इस अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य से उभयद्रव्यविशेष सर्वधन असंख्यातगुणित है। इसका भी ऊपर के समान अपवर्तन करना चाहिए।

व १२ a १ / ओ प ख ख ४ / a

इससे अधस्तन अपूर्वकृष्टि सर्व द्रव्य अनन्तगुणा है।

व १२।१६ ४
ओ प।४।१६-४ ख ओ a
a ख ख २

(पूर्वोक्त अधस्तनकृष्टिद्रव्य में गुणकारभूत और भागहारभूत पूर्वकृष्टि-आयाम सदृश है इसलिए अपवर्तन करना चाहिए। गुणकारभूत और भागहारभूत दो गुणहानि का भी अपवर्तन करें। भागहारभूत दो गुणहानि का ऋणद्रव्य किंचित् जानकर गिना नहीं। अपवर्तन करके

व १२
ओ प ओ a
a

इतना अधस्तन अपूर्वकृष्टि द्रव्य शेष रहा। उभयद्रव्यविशेष में अनन्त का भागहार है। अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य में असंख्यात का भागहार है। अतः उभयद्रव्यविशेष से अधस्तन अपूर्वकृष्टिद्रव्य अनंतगुणा सिद्ध होता है।) इससे मध्यमखंड समस्तधन

व १२ a≡
ओ प
a

असंख्यातगुणा है (अपूर्वकृष्टिद्रव्य में असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार का भाग है और मध्यमखंड द्रव्य में वह भागहार नहीं है, असंख्यात का गुणकार है इसलिए अपूर्वकृष्टिद्रव्य से मध्यमखंडद्रव्य असंख्यातगुणा है यह बात सिद्ध है।) ।।२८८।।

अथोक्तचतुर्द्रव्याणां पूर्वापूर्वकृष्टिषु निक्षेपप्रदर्शनार्थमिदमाह-

अवरे बहुगं देदि हु विसेसहीणक्कमेण चरिमोत्ति।
तत्तो णंतगुणूणं विसेसहीणं तु फड्ढयगे।।२८९।।

अवरस्मिन् बहुकं ददाति हि विशेषहीनक्रमेण चरम इति ।
ततोऽनंतगुणोनं विशेषहीनं तु स्पर्धके ।।२८९।।

द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टीनां मध्ये जघन्यकृष्टौ बहुद्रव्यं ददाति । पुनर्द्वितीयापूर्वकृष्ट्यादिषु पूर्वकृष्टिचरमकृष्टिपर्यन्तासु कृष्टिषु विशेषहीनक्रमेण द्रव्यं निक्षिपति । तस्मात्पूर्वचरम-कृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यात्पूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तद्रव्यमनन्तगुणहीनम् । ततः परं द्वितीयादिवर्गणासु नानागुणहानिसम्बन्धिनीषु चरमगुणहानिचरमवर्गणापर्यन्तासु तत्तद्गुणहानिगतविशेषहीनक्रमेण द्रव्यं ददाति । अत्र द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टिसम्बन्धिद्रव्यस्य

व १२ a
ओ प
a

प्रथमद्वितीयसमयकृतपूर्वापूर्वकृष्टिषु निक्षेपविधानविशेषोऽस्ति । तं श्रीमाधवचन्द्र-त्रैविद्यदेवपरमोपदेशानुसारेण वयं व्याख्यास्यामः । तद्यथा-द्वितीयसमयकृता पूर्वकृष्टीनां मध्ये जघन्यकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यं मुक्त्वा अवशिष्टद्रव्यत्रये अधस्तनकृष्टिद्रव्यात्

व १२।१६ ४
ओ प।४।१६-४ ख ओ a
a ख ख २

अस्मादेककृष्टिद्रव्यं

व १२ a≡ ४
ओ प ४ ख
a ख

मध्यमखंडद्रव्यात्

व १२।१६ ४
ओ प।४।१६-४ ख ओ a ४
a ख ख २
ख ओ a

अस्मादेकखंडद्रव्यं

व १२ ∂≡ / ओ प ४ / ∂ ख उभयद्रव्यविशेषद्रव्यादस्मात् व १२ ∂ १— ४ ४ / ओ प।४।१६–४ ख २ ख / ∂ ख ख २ पूर्वापूर्वकृष्ट्यायाम-

द्वयमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा व १२ ∂ १— ४ / ओ प।४।१६–४ ख / ∂ ख ख २ निक्षिपति, अतएव जघन्यकृष्टौ निक्षिप्तं द्रव्यं बहुकमित्युक्तम्। पुनरधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्याद्रूपोनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाम-मात्रविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टीनां द्वितीयकृष्टौ निक्षिपति। अतएव जघन्यकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यादिदमेकेनोभयद्रव्यविशेषेण हीनमित्युक्तम्। पुनरधस्तनकृष्टिद्रव्यादेक-कृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्याद् द्विरूपोनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाममात्र-विशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टीनां तृतीयकृष्टौ निक्षिपति। इदमपि द्वितीयकृष्टि-निक्षिप्तद्रव्याद्विशेषहीनं भवति। एवं चतुर्थादिषु द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टिचरमकृष्टिपर्यन्ता-स्वपूर्वकृष्टिष्वधस्तनकृष्टिद्रव्यादेकैककृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्डद्रव्यादेकैकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्य-विशेषद्रव्यादधोऽतीतकृष्ट्यायामन्यूनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा तत्र तत्र निक्षिपति।तत्राधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्या-द्रूपोनापूर्वकृष्ट्यायामन्यूनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टौ निक्षिपति। एवं निक्षिप्तेऽधस्तनकृष्टिद्रव्यं सर्वं समाप्तम्। एवं त्रिद्रव्यन्यासः कथितः। पुनर्मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादपूर्वकृष्ट्यायाममात्र-न्यूनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टीनां जघन्यकृष्टौ निक्षिपति। इदमपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यादसंख्येयभागेनानन्तभागेन च हीनं द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टि-द्रव्यादसंख्येयभागमात्रेणाधस्तनकृष्ट्येककृष्टिद्रव्येण सर्वद्रव्यादनन्तैकभागमात्रेणैकेनोभयद्रव्य-विशेषेण च हीनत्वात्। एवं पूर्वकृष्टिप्रथमकृष्टौ द्विद्रव्यन्यासो जातः। पुनरधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यादेक-विशेषं मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादतीतकृष्ट्यायामन्यूनपूर्वापूर्व-कृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टीनां द्वितीयकृष्टौ निक्षिपति। इदं पूर्वकृष्टिप्रथमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यात्कियता न्यूनमिति चेत् उभयद्रव्यविशेषस्यासंख्येयभागमात्रेणा-धस्तनशीर्षविशेषेण व १२ / ओ प।४।१६–४ / ∂ ख ख २ न्यूनोभयद्रव्यविशेषेणैकेन व १२ ∂ १— / ओ प।४।१६–४ / ∂ ख ख २

हीनं पूर्वकृष्टिद्वितीयादिकृष्टिष्वधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यस्य निक्षेपसम्भवात् । पुनरधस्तनशीर्षविशेषद्रव्याद् द्वौ विशेषौ मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादतीतकृष्ट्यायामन्यूनपूर्वापूर्व-कृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टीनां तृतीयकृष्टौ निक्षिपति । अत्रापि पूर्ववद्धनर्णविवरणं ज्ञातव्यम् । एवं पूर्वकृष्टीनां चतुर्थकृष्ट्यादिषु चरमकृष्टिपर्यन्तासु पूर्वकृष्टिषु प्रतिकृष्ट्यधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यादतीतपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखण्डद्रव्यादेकैकखण्ड-द्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादतीतकृष्ट्यायामन्यूनसर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा निक्षिपति। पूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टौ अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यादवशिष्टान् रूपोनपूर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान् मध्यमखण्डद्रव्यादवशिष्टमेकखण्डद्रव्यं उभयद्रव्यविशेषद्रव्यादवशिष्टमेकविशेषं च गृहीत्वा निक्षिपति । एवं निक्षिप्तद्रव्यत्रयं समाप्तं भवति । इति द्रव्यन्यासो जातः । एवं निक्षिप्ते सति प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिद्रव्येण सह द्रव्यमेकगोपुच्छाकारेणावतिष्ठते । तद्यथा—

प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिद्रव्ये अस्मिन्नधस्तनशीर्षविशेषद्रव्ये अधस्तनकृष्टिद्रव्ये च युक्ते पूर्वापूर्वकृष्टिमात्रायामं समपट्टिकाधनमित्थं भवति—

व १२।१६ ४
ओ प।४।१६-४ ख
ꕠ ख ख २

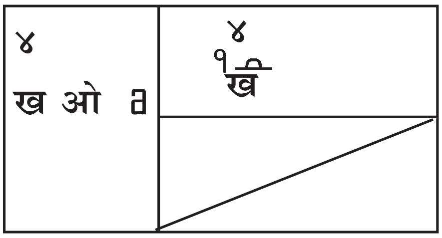

पुनरुभयद्रव्यविशेषद्रव्या-दस्मात्

व १२ ꕠ १— ४ ४
ओ प।४।१६-४ ख २ ख
ꕠ ख ख २

गुणकारभूतासंख्यातोपरिस्थिताधिकरूपप्रमाणं प्रथम-समयकृतकृष्टिद्रव्यसम्बन्धिविशेषद्रव्यमात्रं गृहीत्वा

व १२ ४ ४
ओ प।४।१६-४ ख २ ख
ꕠ ख ख २

पूर्वापूर्वकृष्ट्या-यामद्रव्याधस्तनसर्वजघन्यकृष्टौ सर्वकृष्ट्यायाममात्रविशेषान्निक्षिपति- द्वितीयादिकृष्टिष्वेकैकविशेषहीनक्रमेण निक्षिप्य सर्वचरमकृष्टावेकविशेषमात्रं

व १२ ४
ओ प।४।१६-४ ख
ꕠ ख ख २

निक्षिपति । एवं निक्षिप्ते अधस्तनशीर्षविशेष-मात्रद्रव्याधस्तनकृष्टिद्रव्योभयविशेषद्रव्यगुणकार-भूतासंख्यातोपरिस्थैकरूपसम्बन्धिविशेषद्रव्यैस्त्रिभिः साधिकं प्रथमसमयकृत-

व १२
ओ प।४।१६-४
ꕠ ख ख २

कृष्टिद्रव्यमितं पूर्वापूर्वकृष्ट्यायामसहितमेकगोपुच्छद्रव्यं भवति –

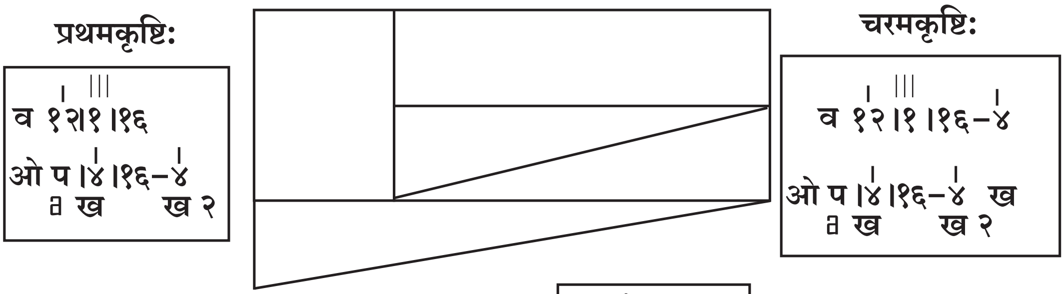

पुनर्मध्यमखण्डसर्वद्रव्यमात्रे समपट्टिकाद्रव्ये सम्बन्धिविशेषद्रव्यम्

व १२ a ४ ४
ओ प ।४ ।१६–४ ख २ ख
a ख ख २

याममात्रविशेषान् निक्षिप्य सर्वचरम-

व १२ a≡ ४
ओ प ४ ख
a ख

द्वितीयसमयकृतकृष्टिद्रव्य-सर्वजघन्यकृष्टौ सर्वकृष्ट्या-निक्षिप्य द्वितीयादिकृष्टिष्वेकैकविशेषहीनक्रमेण कृष्टावशिष्टैकविशेषमात्रं निक्षिपति।

व १२ a
ओ प ।४ ।१६–४
a ख ख २

एवं निक्षिप्ते द्वितीयसमयकृतकृष्टिद्रव्यं अधस्तनशीर्षाधस्तनकृष्ट्युभयविशेष-गुणकारभूतासंख्यातोपरिस्थैकरूपसम्बन्धिविशेषद्रव्यैस्त्रिभिर्न्यूनं पूर्वापूर्व-कृष्ट्यायामसहितैकगोपुच्छाकारं भवति—

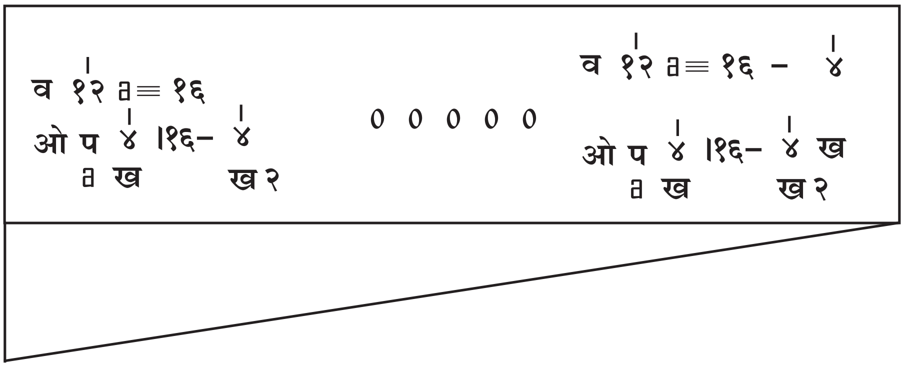

अस्मिन् प्राक्तनगोपुच्छद्रव्यस्योपरि स्थापिते प्रथमद्वितीयसमयकृतकृष्टिद्रव्यं सर्वमप्येकगोपुच्छाकारं दृश्यं भवति । पूर्वाचार्यैः सर्वत्र तथैव सम्मतत्वात् । तन्न्यासः

प्रथम-कृष्टिः [व १२ a १/— १६ / ओ प ४ ।१६- ४ / a ख ख २] ० ० ० ० चरम-कृष्टिः [व १२ a १/— १६ ४ / ओ प ४ ।१६- ४ ख / a ख ख २] [1] ॥२८९॥

अब पूर्वोक्त चार द्रव्यों का पूर्वापूर्वकृष्टियों में निक्षेप दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं-

अन्वयार्थ-(हु) निश्चय से **(अवरे)** जघन्य कृष्टि में **(बहुगं)** अधिक द्रव्य **(देदि)** देता है। **(चरिमोत्ति)** उसके बाद अंतिम कृष्टि तक **(विसेसहीणक्कमेण)** विशेषहीन क्रम से द्रव्य देता है। **(तत्तो)** उसके बाद **(फड्ढयगे तु)** जघन्य स्पर्धक में **(णंतगुणूणं)** अनन्तगुणा हीन देता है और उसके बाद अंतपर्यन्त **(विसेसहीणं)** क्रम से विशेषहीन द्रव्य देता है।।२८९।।

टीकार्थ-दूसरे समय में की गई अपूर्वकृष्टियोंके जघन्य कृष्टि में अधिक द्रव्य देता है। पुनः द्वितीय अपूर्वकृष्टि से पूर्व कृष्टि की अंतिम कृष्टिपर्यंत की कृष्टियों में विशेष (चय) हीन क्रम से द्रव्य देता है। उसके पश्चात् पूर्व चरम कृष्टि में निक्षिप्त किये द्रव्य से पूर्व स्पर्धक की आदि वर्गणा में निक्षिप्त किया द्रव्य अनन्तगुणा हीन है। उसके पश्चात् द्वितीयादि वर्गणाओं में नानागुणहानि सम्बन्धी अंतिम गुणहानि की अंतिम वर्गणा तक उस-उस गुणहानि को चयहीन क्रम से द्रव्य देता है। यहाँ द्वितीय समय में अपकर्षित किए गए कृष्टिसंबंधी द्रव्य का [व १२ a / ओ प / a] प्रथम और द्वितीय समय में की गयी पूर्व और अपूर्व कृष्टियों में निक्षेपण कराने के लिए विशेष विधान है। वह श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेव के परम उपदेशानुसार हम कहते हैं-

द्वितीय समय में की गयी अपूर्वकृष्टियों में से जघन्य कृष्टि में अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य छोड़कर शेष तीन द्रव्यों में से अधस्तनकृष्टिद्रव्य से एक कृष्टि का द्रव्य (अपूर्वकृष्टि के सर्वधन को अपूर्वकृष्टि के आयाम से भाग देने पर एक कृष्टि का द्रव्य आता है। अपूर्वकृष्टि का आयाम इतना है [४ / ख ओ a] इसलिए अधस्तन अपूर्वकृष्टि के धन को इससे भाग दिया।) मध्यमखंड द्रव्य में से [व १२ a≡ / ओ प / a] एक खंड का द्रव्य [व १२ a≡ / ओ प ४ / a ख] (शेष द्रव्य में अपूर्वकृष्टिआयाम से भाग दिया तो एक खंड का द्रव्य आता है) और उभयद्रव्य-विशेष में से पूर्वापूर्वकृष्टिद्रव्य आयाम प्रमाण विशेषों को ग्रहण करके [व १२ a १/— ४ ४ / ओ प ।४ ।१६-४ ख २ ख / a ख ख २]

---

१) **टिप्पणी-** यह संदृष्टि मुद्रित पुस्तक में २९० (२८९) गाथा की टीका में दी है; परंतु इसका अवलोकन करने पर सर्व द्रव्य देने पर जो प्रथम कृष्टि व अंतिम कृष्टि का प्रमाण आता है वही इसमें है इसलिए हमने यह संदृष्टि इस टीका में ली है। २९० गाथा में इसका प्रयोजन भासित नहीं होता। इसपर ज्ञानी लोग विचार करें।

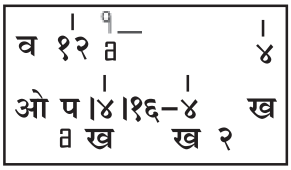

(उभयविशेष x पूर्वापूर्व कृष्टियों का आयाम) देता है। इसलिए जघन्य कृष्टि में निक्षिप्त द्रव्य ज्यादा है ऐसा कहा गया है। पुनः अधस्तनकृष्टिद्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से एक कम पूर्व–अपूर्वकृष्टि आयाममात्र विशेषों को ग्रहण करके द्वितीय समय में की गयी अपूर्वकृष्टियों की द्वितीय कृष्टि में देता है इसलिए जघन्य कृष्टि में निक्षिप्त किये द्रव्य से (द्वितीय कृष्टि में निक्षिप्त किया गया) यह द्रव्य एक उभय द्रव्य से विशेष हीन है ऐसा कहा है। पुनः अधस्तन कृष्टिद्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखण्डद्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से दो कम पूर्व–अपूर्व कृष्टिआयाममात्र विशेषों को ग्रहण करके दूसरे समय में की गयी अपूर्वकृष्टियों की तीसरी कृष्टि में देता है। यह द्रव्य भी द्वितीय कृष्टि में निक्षिप्त किये द्रव्य से विशेषहीन है। इसप्रकार चौथी कृष्टि से दूसरे समय में की गई अपूर्वकृष्टियों की अंतिम कृष्टि तक अपूर्वकृष्टियों में अधस्तनकृष्टिद्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंड द्रव्य में से एक खण्ड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से नीचे अतीत पूर्वकृष्टिआयाम से कम पूर्वापूर्वकृष्टि आयाममात्र विशेषों को ग्रहण करके उस–उस कृष्टि में देता है। अधस्तन कृष्टि द्रव्य में से एक कृष्टि का द्रव्य, मध्यमखंडद्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्यविशेषद्रव्य में से एक कम अपूर्वकृष्टिआयाम से न्यून पूर्व–अपूर्व कृष्टिआयाममात्र विशेषों को (अपूर्वकृष्टि आयाम से एक कम करके आयी संख्या पूर्वापूर्वकृष्टियों के आयाम में से कम करें, जितना लब्ध आता है उतने विशेषों को) ग्रहण करके द्वितीय समय में की गई अपूर्व कृष्टियों की अंतिम कृष्टि में देता है। ऐसा निक्षेपण करने पर अधस्तन कृष्टि का सर्वद्रव्य समाप्त होता है। इसप्रकार तीन द्रव्यों को देने का विधान कहा है। पुनः मध्यमखंड द्रव्य में से एक खंड का द्रव्य और उभयद्रव्य विशेषद्रव्य में से अपूर्वकृष्टिआयाम से कम पूर्वापूर्वकृष्टि–आयामप्रमाण विशेषों को (अर्थात् पूर्वकृष्टि आयामप्रमाण विशेषों को) ग्रहण करके प्रथम समय में की गई कृष्टियों में से जघन्य कृष्टि में देता है। यह द्रव्य अपूर्वकृष्टि की अंतिम कृष्टि में निक्षिप्त किये गये द्रव्य से असंख्यातवें भाग से और अनन्तवें भाग से हीन है क्योंकि द्वितीय समय के अपकृष्ट कृष्टिद्रव्य का असंख्यातवाँ भागमात्र ऐसे अधस्तनकृष्टि के एक कृष्टिद्रव्य से और सर्वद्रव्य का अनन्तवाँ भागमात्र ऐसे उभयद्रव्यविशेष से हीन है। इसप्रकार पूर्वकृष्टि की प्रथमकृष्टि में दो द्रव्यों का न्यास (निक्षेप) हुआ।

पुनः अधस्तनशीर्षविशेषद्रव्य से एक विशेष, मध्यमखंड द्रव्य से एकखंड द्रव्य और उभयद्रव्यविशेष से अतीत कृष्टिआयाम से हीन पूर्वापूर्वकृष्टि आयाममात्र विशेषों को ग्रहण करके

प्रथम समय में की गई पूर्व कृष्टियों की द्वितीय कृष्टि में निक्षिप्त करता है। यह द्रव्य पूर्व कृष्टियों की प्रथम कृष्टि में निक्षिप्त द्रव्य से कितना कम है? ऐसा पूछने पर कहा है कि उभयद्रव्यविशेष का असंख्यातवाँ भागमात्र ऐसे अधस्तनशीर्षविशेष से हीन एक उभयद्रव्यविशेष से कम है। (अर्थात् एक उभयद्रव्यविशेष में से एक अधस्तनशीर्षविशेष कम करें। जितना शेष रहा उतना द्रव्य प्रथम कृष्टि से द्वितीयकृष्टि में कम है) क्योंकि पूर्वकृष्टि की द्वितीयादि कृष्टियों में अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य का निक्षेप होता है।

अधस्तनशीर्षविशेष– व १२ / ओ प ।४ ।१६–४ / a ख ख २

उभयद्रव्यविशेष– व १२ a १ / ओ प ।४ ।१६–४ / a ख ख २

पुन: अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य में से दो विशेष, मध्यमखण्ड द्रव्य में से एक खण्डद्रव्य और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से अतीत कृष्टिआयाम से हीन पूर्वापूर्वकृष्टि आयाममात्र विशेषों को ग्रहण करके प्रथम समय में की गई पूर्व कृष्टियों की तीसरी कृष्टि में देता है। यहाँ भी पूर्व के समान ही धन व ऋण का विवरण जानना चाहिये। इसप्रकार पूर्व कृष्टि की चौथी कृष्टि को आदि करके अंतिम कृष्टि तक पूर्व कृष्टियों की प्रत्येक कृष्टि में अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य में से अतीत पूर्व कृष्टि आयाममात्र (उदा. पूर्व कृष्टि की तीसरी कृष्टि हो तो दो विशेष, चौथी हो तो तीन विशेष) विशेषों को, मध्यमखंड द्रव्य में से एक-एक खण्ड द्रव्य को और उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से अतीत कृष्टिआयाम से हीन सर्वकृष्टि आयाममात्र विशेषों को ग्रहण करके निक्षेपण करता है। पूर्वकृष्टियों की अंतिम कृष्टि में अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य में से शेष रहे एक कम पूर्व कृष्टिआयाम मात्र विशेषों को, मध्यम खंड द्रव्य में से शेष रहे एक खण्ड द्रव्य को, उभयद्रव्यविशेष द्रव्य में से शेष रहे एक विशेष को ग्रहण करके निक्षेपण करता है। इस प्रकार निक्षिप्त तीन द्रव्य समाप्त होते हैं। इस प्रकार द्रव्य का न्यास हुआ। इस प्रकार निक्षेपण करने पर प्रथम समय में की गई कृष्टिद्रव्य के साथ द्रव्य एक गोपुच्छाकार से रहता है। उसका खुलासा–

प्रथम समय में किए गए पूर्वकृष्टि द्रव्य में यह अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य व अधस्तन कृष्टिद्रव्य जोड़ने पर पूर्व-अपूर्व कृष्टिआयामप्रमाण समपट्टिकाधन प्राप्त होता है।

अपूर्वकृष्टि आयाम
४
ख ओ a

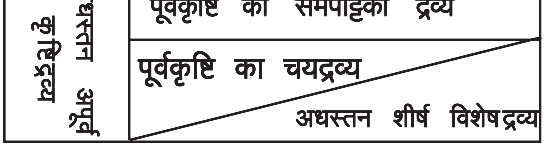

पूर्वकृष्टि आयाम
४
ख

पूर्वकृष्टि की जघन्य कृष्टि का द्रव्य x पूर्वापूर्वकृष्टि आयाम = पूर्वापूर्वकृष्टि का समपट्टिकाधन

व १२।१६ ओ प।४।१६-४ a ख ख २	x	४ ख	=	व १२।१६ ४ ओ प।४।१६-४ ख a ख ख २

पुनः

व १२ १/a ४ ४ ओ प।४।१६-४ ख २ ख a ख ख २

इस उभयद्रव्य विशेष द्रव्य में से गुणकारभूत असंख्यात के ऊपर जो एक अधिक का प्रमाण है उसमें से प्रथम समयकृत कृष्टि द्रव्य सम्बन्धी विशेष द्रव्य मात्र को ग्रहण करके (असंख्यात गुणकार के ऊपर जो एक अधिक है उसका

व १२।१ ४ ४ ओ प।४।१६-४ ख २ ख a ख ख २

यह प्रमाण है। असंख्यात गुणकार छोड़कर सर्व गुणकार और भागहार एक संख्या के भी होते हैं)। पूर्वापूर्व कृष्टि द्व्रय आयाम के नीचे की सबसे जघन्य कृष्टि में सर्व कृष्टिआयाम प्रमाण विशेषों को देता है।

व १२।१ ४ ओ प।४।१६-४ ख a ख ख २

द्वितीयादि कृष्टियों में एक-एक विशेष हीन क्रम से निक्षेपण करके सबसे अंतिम कृष्टि में एक विशेषमात्र देता है।

व १२।१ ओ प।४।१६-४ a ख ख २

इसप्रकार निक्षेपण करने पर अधस्तनशीर्ष विशेषमात्र द्रव्य, अधस्तन कृष्टिद्रव्य और उभयविशेषद्रव्य के गुणकारभूत असंख्यात के ऊपर स्थित एक अधिक संबंधी विशेष द्रव्य इन तीन द्रव्य से अधिक प्रथम समय में किया कृष्टिद्रव्यप्रमाण पूर्व-अपूर्वकृष्टि आयाम से सहित एक गोपुच्छ द्रव्य होता है।

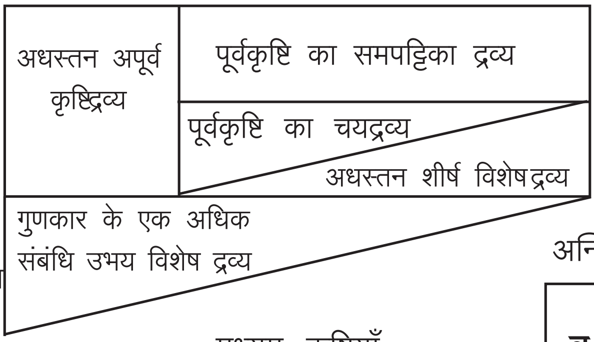

प्रथम कृष्टि का द्रव्य

व १२।१।१६ ओ प।४।१६-४ a ख ख २

मध्यम कृष्टियाँ

0 0 0 0 0 0

अन्तिम कृष्टि का द्रव्य

व १२।१।१६ - ४ ओ प।४।१६-४ ख a ख ख २

(एक उभयद्रव्यविशेष को दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम कृष्टि का द्रव्य आता है। उसमें तीन द्रव्य जोड़ने के लिए १ के ऊपर तीन रेखाएँ ।।। दी गयी हैं। प्रथम कृष्टि से एक कम सर्वकृष्टि आयामप्रमाण चय कम करने पर अंतिम कृष्टि का द्रव्य आता है।)

पुनः मध्यमखण्ड सर्वद्रव्य मात्र समपट्टिका द्रव्य में द्वितीय 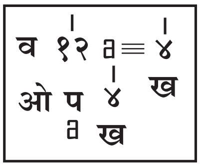 समय में अपकृष्ट किया गया कृष्टि संबंधी विशेष द्रव्य इतना है। (असंख्यात गुणकार का उभयविशेष 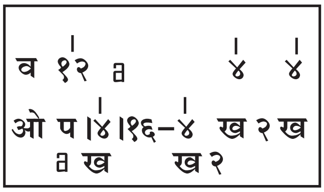 द्रव्य) इस द्रव्य में से जघन्य कृष्टि में सर्वकृष्टि–आयाममात्र विशेषों का निक्षेपण करके द्वितीयादि कृष्टियों में एक–एक चयहीन क्रम से निक्षेपण करके सबसे अंतिम कृष्टि में शेष रहे एक विशेषमात्र द्रव्य का ही निक्षेपण करता है। इसप्रकार निक्षेपण करने पर अधस्तन शीर्षद्रव्य, अधस्तनकृष्टि द्रव्य और उभय विशेष के गुणकारभूत असंख्यात के ऊपर स्थित होने वाले एक अधिक संबंधी विशेष द्रव्य इन तीन द्रव्यों से हीन द्वितीय समयकृत द्रव्य पूर्वापूर्वकृष्टि आयाम सहित एक गोपुच्छाकार होता है।

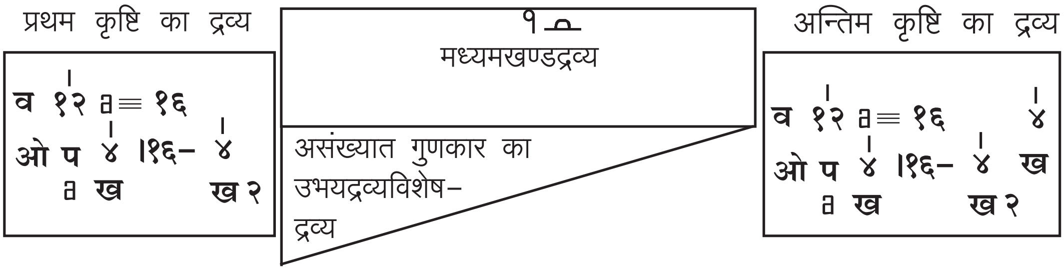

इस गोपुच्छाकार को पूर्व के गोपुच्छद्रव्य के ऊपर स्थापित करने पर प्रथम और द्वितीय समय में की गई कृष्टि का द्रव्य सब मिलकर भी एक गोपुच्छाकाररूप से दिखता है। पूर्वआचार्यों ने सर्वत्र उसी प्रकार ही माना है। उसकी रचना–

पूर्व अपूर्व कृष्टियों के

प्रथम कृष्टि का द्रव्य समस्तद्रव्य का एक गोपुच्छाकार अन्तिम कृष्टि का द्रव्य

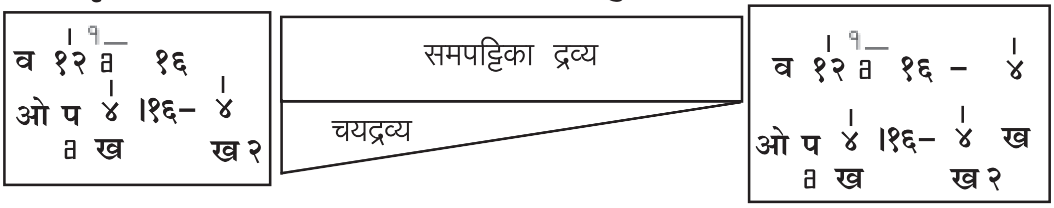

विशेषार्थ–

अपूर्व और पूर्व कृष्टियों में देयद्रव्य का प्रमाण

पूर्वकृष्टि क्र.	अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य	उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	मध्यम–खंड	कुल देयद्रव्य	नीचे की कृष्टि से ऊपर की कृष्टि में कम मिले हुए द्रव्य का प्रमाण
८ वी	७ x २=१४	१ x २०	१ x २०८	२४२	१ उ.द्र.वि.–१ अध.शी.वि. =२०–२=१८
७ वी	६ x २=१२	२ x २०	१ x २०८	२६०	१ उ.द्र.वि.–१ अध.शी.वि. =२०–२=१८
६ वी	५ x २=१०	३ x २०	१ x २०८	२७८	१ उ.द्र.वि.–१ अध.शी.वि. =२०–२=१८
५ वी	४ x २=८	४ x २०	१ x २०८	२९६	१ उ.द्र.वि.–१ अध.शी.वि. =२०–२=१८
४ थी	३ x २=६	५ x २०	१ x २०८	३१४	१ उ.द्र.वि.–१ अध.शी.वि. =२०–२=१८
३ री	२ x २=४	६ x २०	१ x २०८	३३२	१ उ.द्र.वि.–१ अध.शी.वि. =२०–२=१८
२ री	१ x २=२	७ x २०	१ x २०८	३५०	१ उ.द्र.वि.–१ अध.शी.वि. =२०–२=१८
१ ली		८ x २०	१ x २०८	३६८	१ अपू.कृ.+१ उ.द्र.वि. =३२+२०=५२
अपूर्व–कृष्टि क्र.	अपूर्वकृष्टिद्रव्य				
४ थी	१ x ३२=३२	९ x २०	१ x २०८	४२०	१ उभयद्रव्यविशेष =२०
३ री	१ x ३२=३२	१० x २०	१ x २०८	४४०	१ उभयद्रव्यविशेष =२०
२ री	१ x ३२=३२	११ x २०	१ x २०८	४६०	१ उभयद्रव्यविशेष =२०
१ ली	१ x ३२=३२	१२ x २०	१ x २०८	४८०	

गाथा २८७ के विशेषार्थ में जो अंकसंदृष्टि दी है उसके अनुसार द्रव्य का प्रमाण ग्रहण करके ऊपर की सारणी तैयार की है।

२८५ गाथा से २८९ तक की गाथा में जिन बातों का निर्देश किया है उनमें से कुछ बातों का खुलासा इस प्रकार है–

१) अपकर्षित द्रव्य में से कितना भाग कृष्टियों को प्राप्त होता है और कितना भाग स्पर्धकरूप रहता है।

२) पिछले समय में जो सूक्ष्म कृष्टियाँ की जाती थी उनको पूर्वकृष्टि कहा गया है और उत्तरोत्तर वर्तमान समय में जो सूक्ष्म कृष्टियाँ की जाती हैं उन्हें अपूर्वकृष्टि कहा गया है।

३) बादरलोभ से सूक्ष्मलोभ में बहुत ही कम फलदान शक्ति रह जाती है इसीलिए स्पर्धकगत

अनुभाग से कृष्टिगत अनुभाग की नीचे रचना करता है यह कहा गया है।

४) प्रथम समय में जितने द्रव्य का अपकर्षण करता है उससे दूसरे समय में पूर्व और अपूर्व कृष्टियों में सिंचन करने के लिए असंख्यातगुणे द्रव्य का अपकर्षण करता है। उसमें प्रथम समय की अंतिम कृष्टि में जितने प्रदेशपुंज का निक्षेपण होता है उससे दूसरे समय की प्रथम जघन्य कृष्टि में असंख्यातगुणे द्रव्य का निक्षेपण होता है। आगे अंतिम अपूर्व कृष्टि तक उत्तरोत्तर विशेषहीन-विशेषहीन द्रव्य का निक्षेपण होता है। उसके बाद प्रथम समय में रची गई कृष्टियों में जो जघन्य कृष्टि है उसमें विशेष हीन द्रव्य देता है। इसके आगे ओघ उत्कृष्ट कृष्टि की अपेक्षा प्रथम समय में रची गई कृष्टियों में अंतिम कृष्टि के प्राप्त होने तक सर्वत्र अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेष हीन द्रव्य देता है। पुनः उससे जघन्य स्पर्धक की आदि वर्गणा में अनन्त गुणा हीन प्रदेश-विन्यास करता है। पुनः उससे उत्कृष्ट स्पर्धक से नीचे जघन्य अतिस्थापनाप्रमाण स्पर्धक छोड़कर स्थित हुए वहाँ के स्पर्धक की उत्कृष्ट वर्गणा के प्राप्त होने तक अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेष हीन प्रदेश विन्यास करता है।

५) यहाँ जिस प्रकार दूसरे समय में प्रदेश विन्यास का क्रम बतलाया है उसी प्रकार शेष समयों में भी जानना चाहिए।

६) यह दीयमान द्रव्य की श्रेणिप्ररूपणा है। दृश्यमान द्रव्य की श्रेणिप्ररूपणा करने पर प्रथम कृष्टि में दृश्यमान द्रव्य बहुत है। उससे दूसरी कृष्टि में अनन्तवें भागप्रमाण विशेषहीन है। इसी प्रकार अंतिम कृष्टि के प्राप्त होने तक विशेषहीन-विशेषहीन द्रव्य जानना चाहिए।

अथ निक्षेपद्रव्यस्य पूर्वापूर्वकृष्टिसन्धिगतविशेषं प्ररूपयति-

णवरि असंखाणंतिमभागूणं पुव्वकिट्टिसंधीसु ।
हेट्ठिमखंडपमाणेणेव विसेसेण हीणादो ।।२९०।।

नवर्यसंख्यातानन्तिमभागोनं पूर्वकृष्टिसंधिषु ।
अधस्तनखंडप्रमाणेनैव विशेषेण हीनात् ।।२९०।।

अयं तु विशेषः द्वितीयादिसमयेषु कृष्टिद्रव्यनिक्षेपे पूर्वापूर्वकृष्टिसन्धिषु अपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यात् पूर्वकृष्टिप्रथमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यमसंख्येयभागेनानन्तभागेन च न्यूनं-

व १२।१६ ओ प।४।१६-४ ā ख ख २	व १२ ā १ ओ प।४।१६-४ ā ख ख २

एकाधस्तनकृष्टिद्रव्येणैकोभयद्रव्यविशेषेण[१] च हीनत्वात् । अयमर्थः प्राक् सप्रपञ्चं व्याख्यात इति नेह प्रतन्यते ।।२९०।।

---

१) हिन्दी पुस्तक में इस गाथा की टीका में जो संदृष्टि है वह यहाँ पूर्व गाथा की टीका में दी गयी है और उसके स्थान पर यह संदृष्टि होनी चाहिए क्योंकि यहाँ अधस्तन अपूर्व कृष्टिद्रव्य व उभयद्रव्यविशेषका द्रव्य दिखाना है।

अब निक्षेपद्रव्य का पूर्व और अपूर्व कृष्टियों की संधि में पाया जाने वाला विशेष कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(णवरि)** विशेष यह है कि **(पुव्वकिट्टिसंधीसु)** पूर्वकृष्टि की संधि में **(हेट्ठिमखंडपमाणेणेव)** एक अधस्तनखंडप्रमाण से और **(विसेसेण)** एक उभयविशेष से द्रव्य **(हीणादो)** कम होने से (अपूर्वकृष्टियों की अंतिम कृष्टि से पूर्व कृष्टियों की प्रथम कृष्टि में द्रव्य) **(असंखाणंतिमभागूणं)** असंख्यातवाँ भागहीन और अनन्तवाँ भागहीन प्राप्त होता है ।।२९०।।

टीकार्थ – परन्तु यह विशेष है कि द्वितीयादि समयों में कृष्टि में द्रव्य का निक्षेप करते समय पूर्व और अपूर्व कृष्टियों की संधि में अपूर्वकृष्टियों की अंतिम कृष्टि में निक्षिप्त द्रव्य से पूर्व कृष्टियों की प्रथमकृष्टि में निक्षिप्त द्रव्य असंख्यातवें भाग से और अनन्तवें भाग से हीन है क्योंकि एक अधस्तनकृष्टि द्रव्य से और एक उभयद्रव्यविशेष से द्रव्य हीन है। यह अर्थ पूर्व में विस्तार से कहा है। इसलिए यहाँ उसका विस्तार नहीं करते।।२९०।।

विशेषार्थ–अपूर्वअन्तिम कृष्टि में मिले हुए द्रव्यप्रमाण से पूर्वकृष्टि की प्रथमकृष्टि में अधस्तनखंड नहीं मिला और एक उभयद्रव्यविशेष कम मिला है। अधस्तनकृष्टिद्रव्य सर्वद्रव्य के असंख्यातवें भाग है और उभयद्रव्यविशेष सर्वद्रव्य का अनन्तवाँ भाग है। इसलिए असंख्यातवाँ भाग हीन और अनन्तवाँ भाग हीन द्रव्य मिला है ऐसा कहा है।

अथ कृष्टीनां शक्त्यल्पबहुत्वप्रदर्शनार्थमाह–

अवरादो चरिमोत्ति य अणंतगुणिदक्कमादु सत्तीदो ।
इदि किट्टीकरणद्धा बादरलोहस्स विदियद्धं[1] ।।२९१।।

अवरस्माच्चरम इति चानंतगुणितक्रमात् शक्तित:।
इति कृष्टिकरणाद्धा बादरलोभस्य द्वितीयार्धम् ।।२९१।।

अपूर्वकृष्टिजघन्यकृष्ट्यविभागप्रतिच्छेदेभ्य: [व / ख ४ / ख] द्वितीयादिकृष्टय: पूर्वकृष्टिचरमकृष्टिपर्यन्ता अनन्तानन्तगुणितशक्तयो गच्छन्ति। तत्र तच्चरमकृष्टौ रूपोनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाममात्र–वारानन्तगुणकारैर्गुणितमविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं [व ख ४ / ख ४ ख / ख] अपवर्तिते एवं भवति [व / ख] एवं तृतीयादिसमयेषु कृष्टिकरणकालचरमसमयपर्यन्तेषु असंख्यातगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य पूर्वापूर्वकृष्टिषु प्रागुक्तविधानेन द्रव्यनिक्षेपं करोति इत्युक्तप्रकारेण सूक्ष्मकृष्टिकरणे सति

१) जयध. पु. १३, पृ. ३१४–३१५

बादरलोभवेदककालस्य द्वितीयार्धमात्रसूक्ष्मकृष्टिकरणकालो गच्छति । यथा क्षपकश्रेण्यां पूर्वापूर्वस्पर्धकद्रव्यं सर्वमपि गृहीत्वा कृष्टी: करोति तथोपशमश्रेण्यां, किंतु पूर्वस्पर्धकद्रव्यात् कृष्टिकरणकालयोग्यमसंख्यातैकभागमात्रं द्रव्यमपकृष्य सूक्ष्मकृष्टी: करोति । शेषबहुभागमात्र-स्पर्धकद्रव्यं स्वस्थाने एवोपशमयतीत्यर्थविशेषो ज्ञातव्य: ।।२९१ ।।

अब कृष्टियों की शक्ति का अल्पबहुत्व दिखाने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(अवरादो)** जघन्य कृष्टि से **(चरिमोत्ति य)** अंतिम कृष्टि तक **(सत्तीदो)** शक्ति की अपेक्षा से **(अणंतगुणिदक्कमादु)** अनन्तगुणित क्रम से कृष्टियाँ हैं। **(इदि)** इसप्रकार **(बादरलोहस्स विदियद्धं)** बादरलोभ का द्वितीय अर्धभागरूप **(किट्टीकरणद्धा)** कृष्टिकरण-काल समाप्त होता है ।।२९१।।

टीकार्थ– अपूर्वकृष्टि की जघन्य कृष्टि के अविभागप्रतिच्छेदोंसे जघन्य वर्गणा की संदृष्टि व है। उसमें एकबार अनन्त से भाग देने पर [व ख । ४ ख] (पूर्वस्पर्धक की पूर्वकृष्टियों की अंतिम कृष्टि की शक्ति आती है। उसमें पुन: अनन्त से भाग देने पर नीचे-नीचे की कृष्टियों की शक्ति आती है। इसलिए जघन्य वर्गणा में पूर्वापूर्वकृष्टि आयाममात्र बार अनन्त से भाग देने पर अपूर्वकृष्टि की जघन्य कृष्टि की शक्ति आती है। इसलिए यहाँ ख के बादमें [। ४ ख] यह लिखा है। उतनी बार अनन्त का भागहार जानना चाहिए।)द्वितीयादि कृष्टि पूर्वकृष्टि की अंतिम कृष्टि तक (एक से एक कृष्टि) अनन्तानन्तगुणित शक्तिरूप है। उसमें से उसकी अंतिम कृष्टि में एक कम पूर्व-अपूर्वकृष्टि आयाममात्र बार अनन्त गुणकार से गुणित अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण है। [व ख । ४ ख । ४ ख ख] अपवर्तन करने पर [व ख] ऐसा होता है। इस प्रकार तृतीयादि समयों में कृष्टिकरण-काल के अंतिम समय तक असंख्यातगुणित क्रम से द्रव्य का अपकर्षण करके पूर्व और अपूर्वकृष्टियों में पूर्व में कहे गए विधान से द्रव्य का निक्षेप करता है। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से सूक्ष्म कृष्टि करने पर बादरलोभवेदककाल का द्वितीय अर्धभागमात्र सूक्ष्मकृष्टिकरणकाल व्यतीत होता है। जिस प्रकार क्षपकश्रेणि में पूर्व और अपूर्व स्पर्धक द्रव्य सर्व ग्रहण करके कृष्टि करता है उसीप्रकार उपशमश्रेणि में भी कृष्टि करता है, परन्तु पूर्व स्पर्धक द्रव्य में से कृष्टिकरणकाल के योग्य असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य का अपकर्षण करके सूक्ष्मकृष्टियाँ करता है। शेष बहुभागमात्र स्पर्धक द्रव्य का अपने स्थान में ही उपशमन करता है यह अर्थ विशेष जानना चाहिए। ।।२९१।।

विशेषार्थ– उपशमश्रेणि में संज्वलन लोभ की की गई कृष्टियों की शक्ति विशेष का विचार करते हुए श्री जयधवला में बतलाया है कि 'जघन्य कृष्टि में सबसे स्तोक शक्ति

होती है इसका आशय यह है कि कृष्टि की अपेक्षा सदृश धन (शक्ति) वाले परमाणु को छोड़कर वहाँ एक परमाणु के अविभागप्रतिच्छेदों को ग्रहण कर एक कृष्टि होती है। यह सबसे स्तोक है तथा इससे दूसरी कृष्टि अनन्तगुणी होती है। सो यहाँ भी एक परमाणु में जितने अविभागप्रतिच्छेद हों उनका समूह लेना चाहिए'। इस प्रकार एक-एक परमाणु को ही ग्रहण कर अन्तिम कृष्टि के प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर अनन्तगुणित क्रम से अविभागप्रतिच्छेद जानने चाहिए। अथवा 'जघन्य कृष्टि स्तोक शक्तिवाली होती है।' इस पद का यह अर्थ करना चाहिए कि जघन्य कृष्टि में सदृशधन (शक्ति) वाले परमाणु होते हैं, वे सब मिलकर जघन्य कृष्टि कहलाती है। वह सबसे स्तोक होती है। इससे दूसरी कृष्टि अनन्तगुणी होती है। यहाँ भी सदृशधन (शक्ति) वाले परमाणुओं की एक कृष्टि ग्रहण की गई है। इसी प्रकार अन्तिम कृष्टि के प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इन्हें कृष्टि इसलिए कहा गया है, कि इनमें अविभाग प्रतिच्छदों की उत्तरोत्तर क्रमवृद्धि नहीं पाई जाती। यहाँ अंतिम कृष्टि की शक्ति की अपेक्षा जितना प्रमाण है उससे जघन्य स्पर्धक की प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है, द्वितीयादि वर्गणाओं का इसी क्रम से विचार कर लेना चाहिए।

इस प्रसंग में इतना विशेष जानना चाहिए कि जिस प्रकार क्षपकश्रेणि में पूर्व और अपूर्व स्पर्धकों का अपवर्तन होकर मात्र कृष्टियों की ही रचना करता है वैसा उपशमश्रेणि में नहीं करता, किन्तु सभी पूर्व स्पर्धकों के जहाँ के तहाँ रहते हुए उन्हीं सब स्पर्धकों में से असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य का अपकर्षण कर एक स्पर्धक की वर्गणाओं के अनन्तवें भागप्रमाण कृष्टियों की रचना करता है।

अथ कृष्टिकरणकाले स्थितिबंधप्रमाणप्ररूपणार्थं गाथात्रयमाह-

विदियद्धा संखेज्जाभागेसु गदेसु लोभठिदिबंधो।
अंतोमुहुत्तमेत्तं दिवसपुधत्तं तिघादीणं[1]।।२९२।।

द्वितीयाद्धा संख्येयभागेषु गतेषु लोभस्थितिबन्धः
अन्तर्मुहूर्तमात्रं दिवसपृथक्त्वं त्रिघातिनाम् ।।२९२।।

[१ ⌂ / २१।१ / ३।१] **संज्वलनलोभप्रथमस्थितेर्द्वितीयार्धमात्रकृष्टिकरणकालस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु तद्बहुभागचरमसमये संज्वलनलोभस्यांतर्मुहूर्तमात्रस्थितिबंधः** [२ १] **घातित्रयस्य स्थितिबंधो दिवसपृथक्त्वमात्रः** [दि ७ / ८] **।।२९२।।**

अब कृष्टिकरणकाल में स्थितिबंध का प्रमाण कहने के लिए तीन गाथाएँ कहते हैं-

अन्वयार्थ- (विदियद्धा) बादरलोभ का द्वितीय अर्धकाल **(संखेज्जाभागेसु गदेसु)**

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ३१५-३१६

संख्यात बहुभाग मात्र व्यतीत होने पर **(लोभठिदिबंधो)** लोभ का स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तमेत्तं)** अंतर्मुहूर्त प्रमाण होता है और **(तिघादीणं)** तीन घातियों का स्थितिबंध **(दिवसपुधत्तं)** दिवसपृथक्त्व प्रमाण होता है। ।।२९२।।

टीकार्थ– संज्वलनलोभ की प्रथम स्थिति का द्वितीय अर्धमात्र कृष्टिकरणकाल का संख्यात बहुभागकाल [१ ⌒ / २९।९ / ३।९] अंतर्मुहूर्तमात्र [२ ९] जाने पर उस बहुभाग के अंतिम समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबंध होता है और तीन घातियों का स्थितिबंध दिवसपृथक्त्वमात्र (७–८ दिन) होता है (कृष्टिकरण का काल अंतर्मुहूर्त (२९)है। यह पूर्ण लोभ वेदककाल अपेक्षा से तीसरा भाग है। इसलिए उसकी संदृष्टि [२ ९ / ३] यह है। उसका संख्यात बहुभाग ग्रहण करने के लिए संख्यात से भाग दिया और एक कम संख्यात से गुणा किया)।।२९२।।

किट्टीकरणद्धाए जाव दुचरिमं तु होदि ठिदिबंधो ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि अघादिठिदिबंधो[१] ।।२९३।।

कृष्टिकरणाद्धाया यावद् द्विचरमं तु भवति स्थितिबन्धः ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राण्यघातिस्थितिबन्धः ।।२९३।।

कृष्टिकरणकालस्य द्विचरमसमयं यावदघातित्रयस्य पूर्ववत्संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव स्थितिबन्धः। एवमुक्ताः संज्वलनलोभादीनां स्थितिबन्धाः कृष्टिकरणकालद्विचरमसमयपर्यन्तं समबन्धा एव गच्छन्ति ।।२९३।।

अन्वयार्थ– **(किट्टीकरणद्धाए)** कृष्टिकरणकाल के **(जाव दुचरिमं तु)** द्विचरम स्थितिबंध तक पूर्व के समान ही **(ठिदिबंधो होदि)** स्थितिबंध होता है। **(अघादिठिदिबंधो)** अघाति कर्मों का स्थितिबंध **(वस्साणं संखेज्जसहस्साणि)** संख्यात हजार वर्ष होता है। ।।२९३।।

टीकार्थ– कृष्टिकरणकाल के द्विचरम समय तक तीन अघातियों का पूर्व के समान ही संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबंध होता है। इसप्रकार कहे गये संज्वलन लोभादिकों के स्थितिबंध कृष्टिकरणकाल के द्विचरम समय तक समानरूप ही होते हैं। ।।२९३।।

विशेषार्थ– यहाँ द्विचरम समय तक इसका अर्थ द्विचरम स्थितिबंध तक ग्रहण करना चाहिए क्योंकि स्थितिबंध एक–एक अंतर्मुहूर्त तक समान होता है। अंतिम समय में स्थितिबंधकाल समाप्त होता है। इसलिए द्विचरम समय में स्थितिबंधकाल समाप्त नहीं होगा।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ३१६

किट्टीयद्धाचरिमे लोभस्संतोमुहुत्तियं बंधो।
दिवसंतो घादीणं वेवस्संतो अघादीणं[१] ।।२९४।।

कृष्टयद्धाचरमे लोभस्यान्तर्मुहूर्तकं बन्धः।
दिवसान्तो घातिनां द्विवर्षान्तोऽघातिनाम् ।।२९४।।

कृष्टिकरणकालस्य चरमसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धः अनन्तरातीतस्थिति-बन्धात्संख्यातगुणहीनोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव [२] घातित्रयस्यानंतरातीतस्थितिबन्धात्संख्यात-गुणहीनोप्येकदिवसस्यान्तरे एव न समो नाप्यधिक इत्यर्थः [ती दि १-] अघातित्रयस्यानन्तरातीतस्थिति-बन्धात्संख्यातगुणहीनोऽपि वर्षद्वयस्यान्तरे एव न समो नाप्यधिक इत्यर्थः [वी व २-] [वे व २-३ / २] एते उपशमकानिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितिबन्धाः क्षपकानिवृत्तिकरणचरमसमय-लोभादिस्थितिबन्धेभ्यो द्विगुणप्रमाणा इति ग्राह्यम् ।।२९४।।

अन्वयार्थ- **(किट्टीयद्धाचरिमे)** कृष्टिकरणकाल के अंतिम समय में **(लोभस्स)** संज्वलन लोभ का **(अंतोमुहुत्तियं बंधो)** अंतर्मुहूर्तमात्र स्थितिबंध होता है। **(घादीणं)** घाति कर्मों का **(दिवसंतो)** दिन के अंदर अर्थात् कुछ कम एक दिन और **(अघादीणं)** अघाति कर्मों का **(वेवस्संतो)** दो वर्ष के अंदर अर्थात् कुछ कम दो वर्ष स्थितिबंध होता है। ।।२९४।।

टीकार्थ-कृष्टिकरणकाल के अंतिम समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबंध पूर्व अनन्तर स्थितिबंध से संख्यातगुणा कम होकर भी अंतर्मुहूर्तमात्र ही होता [२९] है। तीन घातियों का स्थितिबंध अनन्तर पूर्व स्थितिबंध से संख्यातगुणा कम होकर भी एक दिन के अंदर होता है, समान भी नहीं होता है और अधिक भी नहीं होता है ऐसा अर्थ है [**ती. दि १-**] (**ती** का अर्थ तीन घाति कर्म, **दि** अर्थात् दिन और कुछ कम के लिए **१** के आगे आड़ी रेखा दी है।) तीन अघातियों का स्थितिबंध अनन्तर पूर्व बंध से संख्यातगुणा कम होकर भी दो वर्ष के अंदर होता है। समान भी नहीं होता और अधिक भी नहीं होता ऐसा अर्थ है [**वी व २-**](कुछ कम दो वर्ष)।

[वे व २-३ / २] (वेदनीयका वीसिय से डेढ़गुणा होता है।) यह उपशमक अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय का स्थितिबंध क्षपक अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय के लोभादि स्थितिबंध से दुगुणा प्रमाणरूप ग्रहण करना चाहिए। ।।२९४।।

विशेषार्थ- गाथा का प्रथम पाद 'किट्टीयद्धाचरिमे' है, उसका यहाँ 'बादर सांपराय के अंतिम समय में' ऐसा अर्थ करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ३१६-३१७

अथ संक्रमकालावधिनिर्देशार्थमाह–

विदियद्धा परिसेसे समऊणावलितियेसु लोभदुगं।
सट्ठाणे उवसमदि हु ण देदि संजलणलोहम्मि।।२९५।।

द्वितीयार्धे परिशेषे समयोनावलित्रिकेषु लोभद्विकम्।
स्वस्थान उपशाम्यति हि न ददाति संज्वलनलोभे।।२९५।।

संज्वलनलोभप्रथमस्थितिद्वितीयार्द्धे समयोनावलित्रयेऽवशिष्टे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-लोभद्वयद्रव्यं संज्वलनलोभे न संक्रामति । संक्रमणावलिप्रथमसमये एतत्संक्रमणस्य विश्रान्त-त्वात्, किन्तु तल्लोभद्वयद्रव्यं स्वस्वस्थाने एवोपशाम्यति। संक्रमणावलौ गतायां प्रथमस्थित्यावलि-द्वयेऽवशिष्टे आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ प्रत्यावलिचरमसमयपर्यन्तमुदीरणा वर्तते ।।२९५।।

अब संक्रमण काल की अवधि का निर्देश करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(विदियद्धा)** द्वितीय अर्धभाग में **(समऊणावलितियेसु परिसेसे)** एक समय कम तीन आवलि शेष रहने पर **(हु)** निश्चय से **(लोभदुगं)** अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ को **(सट्ठाणे)** अपने स्थान में ही **(उवसमदि)** उपशमित करता है। **(संजलणलोहम्मि)** संज्वलन लोभ में **(ण देदि)** नहीं देता अर्थात् संक्रमित नहीं करता। ।।२९५।।

टीकार्थ– संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति के द्वितीय अर्धभाग में एक समय कम तीन आवलि शेष रहने पर अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान इन दो लोभ का द्रव्य संज्वलन लोभ में संक्रमित नहीं होता है क्योंकि संक्रमणावलि के प्रथम समय में यह संक्रमण रूक जाता है परन्तु उस लोभद्वय का द्रव्य अपने-अपने स्थान में ही उपशमित होता है। संक्रमणावलि जाने पर प्रथम स्थिति में दो आवलि शेष रहने पर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न होते हैं। प्रत्यावलि के अंतिम समय तक उदीरणा होती है। ।।२९५।।

विशेषार्थ– कृष्टिकरण के काल में एक समय कम तीन आवलि के शेष रहने पर अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ का संज्वलन लोभ में संक्रम नहीं होता है क्योंकि इस समय संक्रमणावलि और उपशमनावलि का पूर्ण होना असम्भव है। इसलिए इनकी स्वस्थान में ही उपशमन क्रिया होती है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जब संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति में दो आवलि काल शेष रह जाता है तब आगाल और प्रत्यागाल की व्युच्छित्ति हो जाती है तथा प्रत्यावलि के अंतिम समय में लोभ संज्वलन की जघन्य उदीरणा होती है।

अथ लोभत्रयोपशमनावधिनिर्ज्ञानार्थमाह–

बादरलोभादिठिदी आवलिसेसे तिलोहमुवसंतं।
णवकं किट्टिं मुच्चा सो चरिमो थूलसंपराओ य[1] ।।२९६।।

बादरलोभादिस्थितावावलिशेषे त्रिलोभमुपशान्तम् ।
नवकं कृष्टिं मुक्त्वा स चरमः स्थूलसाम्परायश्च ।।२९६।।

संज्वलनबादरलोभस्य प्रथमस्थितौ उच्छिष्टावलिमात्रेऽवशिष्टे उपशमनावलिचरमसमये लोभत्रयद्रव्यं सर्वमप्युपशमितं भवति । तत्र सूक्ष्मकृष्टिगतद्रव्यं समयोनद्व्यावलिमात्रसमय-प्रबद्धनवकबन्धद्रव्यं उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकद्रव्यं च नोपशमयति। एतद्द्रव्यत्रयं मुक्त्वा लोभत्रयस्य सर्वमपि सत्त्वद्रव्यमुपशमितमित्यर्थः। स एव कृष्टिकरणकालचरमसमये वर्तमानोऽनिवृत्तिकरणश्चरमसमयबादरसाम्पराय इत्युच्यते ।।२९६।।

अब तीन लोभों के उपशमन की अवधि का निर्णय करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(बादरलोभादिठिदी)** बादर लोभ की प्रथम स्थिति **(आवलिसेसे)** एक आवलि शेष रहने पर **(णवकं)** नवक समयप्रबद्ध **(य)** और **(किट्टिं)** कृष्टिद्रव्य **(मुच्चा)** छोड़कर शेष सर्व **(तिलोहं)** तीन लोभ का द्रव्य **(उवसंतं)** उपशमित हुआ। **(सो)** वह **(चरिमो)** चरम समयवर्ती **(थूलसंपराओ)** बादरसांपराय गुणस्थानवर्ती जीव है। ।।२९६।।

टीकार्थ– बादर संज्वलन लोभ की प्रथम स्थिति उच्छिष्टावलिमात्र शेष रहने पर उपशमनावलिके अंतिम समय में तीन लोभ का सर्वद्रव्य उपशमित होता है। उसमें से सूक्ष्मकृष्टिगत द्रव्य, एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्ध द्रव्य और उच्छिष्टावलिमात्र निषेकद्रव्य उपशमित नहीं होता। ये तीन द्रव्य छोड़कर तीन लोभ का सर्व सत्त्वद्रव्य उपशमित होता है। उस कृष्टिकरण काल के अंतिम समय में वर्तमान जीव को चरम समयवर्ती अनिवृत्तिकरण बादरसांपराय ऐसा कहते हैं। ।।२९६।।

विशेषार्थ– जब प्रत्यावलि में एक समय शेष रहता है तब लोभ संज्वलन का स्पर्धकगत सर्व प्रदेशपुंज और संपूर्ण अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानरूप दो प्रकार का लोभ उपशान्त होता है। मात्र एक समय कम दो आवलि प्रमाण नवक समयप्रबद्ध द्रव्य, उच्छिष्टावलि मात्र निषेक द्रव्य और सूक्ष्मकृष्टिगत द्रव्य उपशांत नहीं होता। उसमें से नवक समयप्रबद्ध द्रव्य और सूक्ष्मकृष्टिगत द्रव्य को सूक्ष्म सांपराय में उपशमित किया जाता है। इसप्रकार कृष्टिकरण के अंतिम समय तक बादर सांपराय गुणस्थान होता है। ।।२९६।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ३१८-३१९

अथ सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने क्रियमाणकार्यविशेषप्रतिपादनार्थमाह–

से काले किट्टिस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
लोहगपढमठिदीदो अद्धं किंचूणयं एत्थ ।।२९७।।

स्वे काले कृष्टेश्च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
लोभगप्रथमस्थितितोऽर्धं किञ्चिदूनकमत्र ।।२९७।।

अनिवृत्तिकरणकालसमाप्त्यनन्तरसमये प्रथमसमयवर्तिसूक्ष्मसाम्परायः अन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिस्थितसकलसूक्ष्मकृष्टिद्रव्यादस्मात् [स a१२– a २९ / ७।८।ओ।प] अपकर्षणभागहारखंडितैकभागमात्रद्रव्यं गृहीत्वा [स a१२– a २९ / ७।८।ओ।प।ओ] इदं पुनः पल्यासंख्यातैकभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमुपरितनस्थितौ निक्षिपेत् [स a१२– a २९ प / ७।८।ओ।प।ओ।प a] पुनस्तदेकभागमिमं [स a१२– a २९ / ७।८।ओ।प।ओ।प] गृहीत्वा बादरलोभवेदककालात्किंचिन्न्यूनतृतीयभागमात्री [२९।१/३] मन्तर्मुहूर्तायामां प्रथमस्थितिं कुर्वाणः प्रक्षेपयोगेत्यादिना प्रथमनिषेकादारभ्य प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेणोदयाद्यवस्थितगुणश्रेण्यायामे निक्षिपति। पुनः पल्यासंख्यातबहुभागमन्तर्मुहूर्तायामायामुपरितनस्थितौ अद्धाणेण सव्वधणेत्यादिना विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्
तन्न्यासोऽयं–

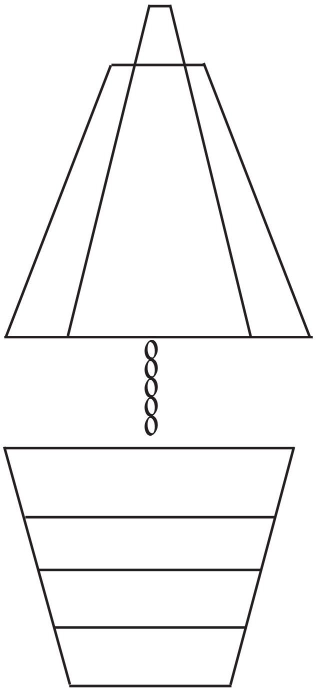

[स a१२– a २९ १६–२९–४ / ७।८।ओ।प।ओ।२९–४।१६–२९–४ / २]

[स a१२– a २९ १६ / ७।८।ओ।प।ओ।२९–४।१६–२९–४ / २]

[स a१२– a २ ६४ / ७।८।ओ।प।ओ।प ८५]

१६
४

[स a१२– a २९ १ / ७।८।ओ।प।ओ।प ८५]

द्वितीयादिसमयेष्वपि सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितं कृष्टिद्रव्यमपकृष्य उक्तविधानेन प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च निक्षिपति । एवं बादरलोभप्रथमस्थितेः किञ्चिन्न्यूनद्वितीयार्धमात्रीं सूक्ष्मकृष्टीनां प्रथमस्थितिं [२ ।१– / ३] करोतीत्यर्थः। ज्ञानावरणादिकर्मणां अपूर्वकरणप्रथमसमयारब्धा गलितावशेषा सूक्ष्मसाम्परायकालाद्विशेषाधिकायामा पूर्ववदेव प्रवर्तते । तस्मिन्नेव सूक्ष्म–साम्परायप्रथमसमये उदयागतं सूक्ष्मकृष्टिद्रव्यं वेदयति ।।२९७।।

अब सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में (अनिवृत्तिकरण की समाप्ति होने के बाद के समय में) किये जाने वाले कार्य विशेष का प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ–(से काले) अपने काल में **(किट्टिस्स य)** कृष्टि का **(पढमट्ठिदिकारवेदगो)** प्रथम स्थिति का कारक और वेदक **(होदि)**होता है। **(एत्थ)** यहाँ वह प्रथम स्थिति **(लोहगपढमठिदीदो)** लोभ की प्रथम स्थिति से **(किंचूणयं अद्धं)** कुछ कम अर्धभागप्रमाण है। ।।२९७।।

टीकार्थ– अनिवृत्तिकरणकाल की समाप्ति के अनन्तर समय में प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसांपराय जीव अंतर्मुहूर्तमात्र स्थिति में स्थित संपूर्ण सूक्ष्मकृष्टिद्रव्य में से [स a१२– a २९ (ऊपर: । १ ‿) / ७।८।ओ।प / a] (कृष्टिकरण काल के प्रथम समय में कृष्टिरूप हुआ द्रव्य = सर्व सत्त्व द्रव्य / (अपकर्षण भागहार x पल्य / असंख्यात) [स a१२– / ७।८।ओ।प / a] इसको एक कम अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतनी बार असंख्यात से गुणा करने पर कृष्टि–करण के अंतिम समय के कृष्टिरूप द्रव्य का प्रमाण आता है। अंतिम समय का कृष्टिरूप द्रव्य=प्रथम समय का कृष्टिद्रव्य x एक कम कृष्टिकरणकाल प्रमाण बार असंख्यात। इसमें पूर्व के सब समयों का द्रव्य मिलाने पर समस्त कृष्टिद्रव्य आता है। पूर्व सर्व समयों का द्रव्य मिलाने के लिए कुछ अधिक की संदृष्टि की है।) [स a१२– a२९ / ७।८।ओ।प / a]

अपकर्षण भागहार से खंडित एक भागमात्र द्रव्य ग्रहण करके [स a१२– a २९ / ७।८।ओ।प।ओ / a] कृष्टिद्रव्य / अपकर्षण भागहार इसको पुन: पल्य के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उसका बहुभाग उपरितन स्थिति में देवें। बहुभाग यह है [स a१२– a २९ प / ७।८।ओ।प।ओ।प a / a a] पुन: उसका यह एकभाग [स a१२– a २९ / ७।८।ओ।प।ओ।प / a a] ग्रहण करके बादरलोभ वेदक काल से कुछ कम तृतीय भाग मात्र [२९।१– / ३] अन्तर्मुहूर्त आयामवाली प्रथम स्थिति करने वाला **'प्रक्षेपयोग'** इत्यादि विधान से प्रथम निषेक से आरम्भ करके प्रत्येक निषेक में असंख्यातगुणा क्रम से उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम में निक्षेपण करता

है। पुन: पल्य का असंख्यात बहुभाग मात्र द्रव्य अन्तर्मुहूर्त आयामवाली उपरितन स्थिति में 'अद्धाणेण सव्वधण' इत्यादि विधानपूर्वक विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करना चाहिए। उसकी रचना–

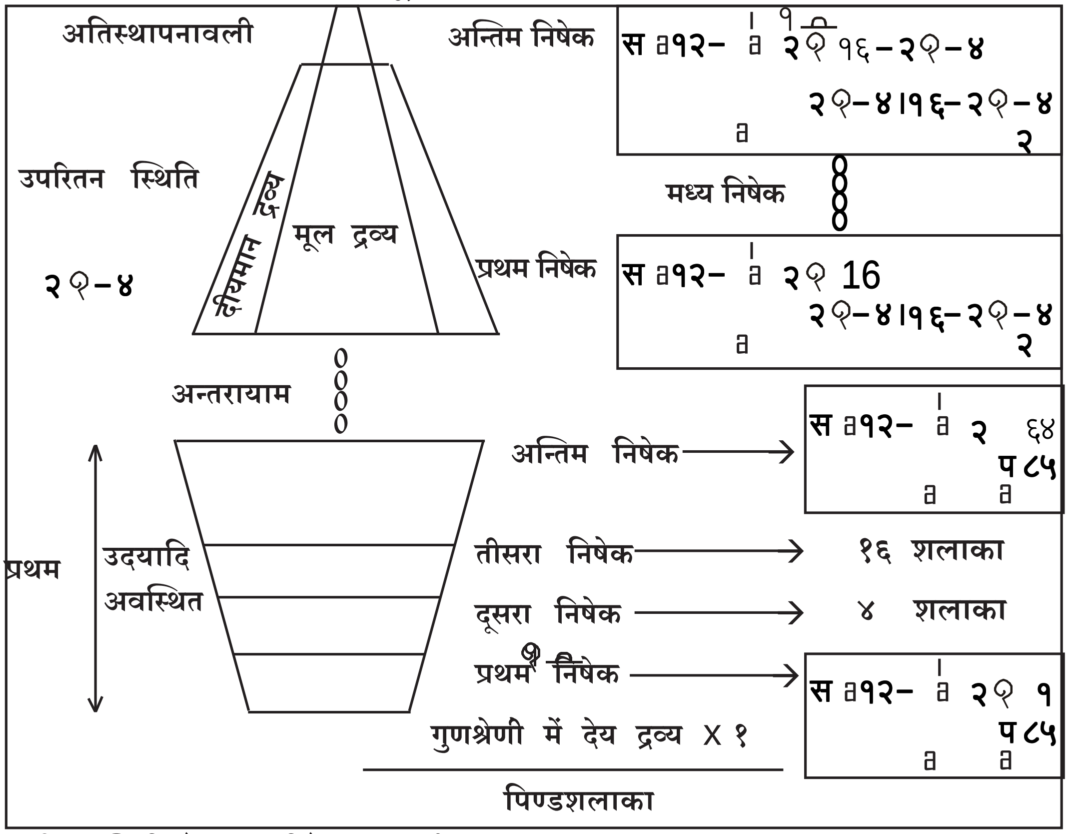

उपरितन स्थिति के प्रथम निषेक का स्पष्टीकरण–

प्रथम निषेक में देने योग्य द्रव्य निकालने के लिए प्रथम सर्वधन को अध्वान से (गच्छ से) भाग दिया। यहाँ गच्छ (अन्तर्मुहूर्त–अतिस्थापनावलि) है। सूक्ष्मकृष्टि का द्रव्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति में स्थित है। इसलिए गच्छ अंतर्मुहूर्त है किन्तु अतिस्थापनावलि में द्रव्य दिया नहीं जाता

इसलिए उसमें से आवलि कम करके उपरितन स्थिति का प्रमाण **२ –४** इतना है।

$$\frac{\text{उपरितन स्थिति में देयद्रव्य}}{\text{गच्छ}} = \text{मध्यमधन}; \qquad \frac{\text{मध्यमधन}}{\text{निषेकहार} - \frac{(\text{गच्छ}-१)}{२}} = \text{चय}$$

चय X दो गुणहानि = प्रथम निषेक

स a१२– a २ प / ७।८।ओ।प।ओ।प a a a

उपरितनस्थिति में देय द्रव्य पल्य के असंख्यातवें भागरूप भागहार का और एक कम पल्य के असंख्यातवें भागरूप गुणकार का अपवर्तन किया। गुणकार के एक कम को गिना नहीं।

मध्यम धन
स a१२– a २९ (१/२)
७।८।ओ।प।ओ।२९–४
(a)

चय
स a१२– a २९
७।८।ओ।प।ओ।२९–४।१६–२९–४
(a) (२)

प्रथम निषेक में देयद्रव्य=
स a१२– a २९ १६
७।८।ओ।प।ओ।२९–४।१६–२९–४
(a) (२)

अन्तिम निषेक में देनेयोग्य द्रव्य =
प्रथम निषेक का द्रव्य – एक कम गच्छमात्र चय
स a१२– a २९ १६–२९–४
७।८।ओ।प।ओ।२९–४।१६–२९–४
(a)

द्वितीयादि समयों में भी सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय तक असंख्यात गुणित कृष्टिद्रव्य का अपकर्षण करके पूर्व में कहे गये विधान से प्रथम स्थिति में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है। इस प्रकार बादरलोभ की प्रथम स्थिति का कुछ कम दूसरे अर्ध प्रमाण सूक्ष्मकृष्टियों की प्रथम स्थिति करता है। २९।१/३– (संपूर्ण लोभवेदक काल का कुछ कम तीसरा भागप्रमाण सूक्ष्मसांपराय का वेदककाल है। उतनी ही सूक्ष्मलोभ की प्रथम स्थिति करता है। ज्ञानावरणादि कर्मों की अपूर्वकरण के प्रथम समय में आरंभ की गई सूक्ष्मसांपरायकाल से विशेष अधिक आयामवाली गलितावशेष गुणश्रेणि पूर्व के समान ही प्रवृत्त होती है। उसी सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में उदयागत सूक्ष्मकृष्टि का द्रव्य भोगता है। ।।२९७।।

विशेषार्थ– श्री जयधवला में बतलाया है कि जब यह जीव सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान को प्राप्त होता है तब उसके प्रथम समय में द्वितीय स्थिति में से कृष्टिगत द्रव्य में अपकर्षण भागहार का भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे ग्रहण कर उसके द्वारा प्रथम स्थिति करता है। इसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। नियम है कि क्रोधकषाय के उदय से उपशमश्रेणि पर चढ़कर जो जीव लोभवेदककाल को प्राप्त होता है, ऐसे बादर साम्परायिक की जो लोभवेदककाल से साधिक दो बटे तीन भागप्रमाण प्रथम स्थिति होती है उससे कुछ कम अर्धभाग प्रमाण सूक्ष्मसांपरायिक जीवकी प्रथम स्थिति होती है। जितनी यह प्रथम स्थिति है उतना ही सूक्ष्मसांपरायिक का काल है। यह उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि है। परन्तु ज्ञानावरणादि कर्मों की गुणश्रेणि गलितावशेष है जिसका काल सूक्ष्मसांपरायिक के काल से कुछ अधिक है क्योंकि इन कर्मों की अपूर्वकरण के प्रथम समय में जो गुणश्रेणि रचना प्रारम्भ हुई थी, यहाँ वह इतनी ही अवशिष्ट रहती है।

अथ सूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये निषेकगतसूक्ष्मकृष्टीनां उदयानुदयविभागप्रदर्शनार्थ-मिदमाह-

पढमे चरिमे समये कदकिट्टीणग्गदो दु आदीदो ।
मुच्चा असंखभागं उदेदि सुहुमादिमे सव्वे[1] ।।२९८।।

प्रथमे चरमे समये कृतकृष्टीनामग्रतस्त्वादितः।
मुक्त्वाऽसंख्यभागमुदेति सूक्ष्मादिमे सर्वे ।।२९८।।

सूक्ष्मकृष्टिकरणकालस्य प्रथमसमये कृतानां सूक्ष्मकृष्टीनां पल्यासंख्यातैकभाग-मात्रकृष्टयः स्वस्वरूपेण नोदयमागच्छन्ति शेषास्तद्बहुभागाः द्वितीयादिद्विचरमपर्यन्तेषु समयेषु कृतकृष्टयः चरमसमयकृतकृष्टीनां पल्यासंख्यातबहुभागमात्रकृष्टयश्च स्वस्वशक्तियुक्ता एवोदय-मागच्छन्ति। चरमसमयकृतकृष्टीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रकृष्टयस्तु स्वस्वशक्तिरूपेण नोदयमागच्छन्ति। या उदयमनागताः प्रथमसमयकृतकृष्टीनां चरमकृष्टेरारभ्य पल्यासंख्यातैक-भागप्रमिताः कृष्टयस्ताः स्वस्वरूपं परित्यज्य स्वस्वशक्तेरनन्तगुणहीनशक्तिरूपतया परिणम्योदय-मागच्छन्ति। याश्चानुदयप्राप्ताश्चरमसमयकृतकृष्टीनां जघन्यकृष्टेरारभ्य पल्यासंख्यातैक-भागप्रमाणाः कृष्टयः ताश्च स्वस्वरूपं परित्यज्य स्वस्वशक्तेरनन्तगुणशक्त्यात्मतया परिणम्य मध्यमकृष्टिस्वरूपेणोदयमागच्छन्तीति तात्पर्यम् । तत्र सकलकृष्टिप्रमाणमिदं [४ / ख] पल्यासंख्या-तैकभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमात्र्यः सूक्ष्मकृष्टयः [४ प / ख प a / a] स्वस्वशक्ति रूपेणैवोदय-मागच्छन्ति। शेषैकभागं पुनः पल्यासंख्यातैकभागेन खंडयित्वा तदेकभागं पृथक् संस्थाप्य [४ / ख प प / a a] तद्बहुभागं [४ प / ख प प a / a a] द्वाभ्यां खण्डयित्वा एकार्धप्रमिताः [४ प / ख प प a २ / a a] चरमसमयकृतानुदयकृष्टयो भवन्ति। पुनरवशिष्टार्धे प्राक्पृथक्संस्थापितपल्यासंख्यातैकभागे प्रक्षिप्ते प्रथमसमयकृतानुदयकृष्टिप्रमाणं भवति। तत्र सर्वतः स्तोकाश्चरमसमयकृतानुदयकृष्टयः [४ २ / ख प ५ / a] ततो विशेषाधिकाः प्रथमसमयकृतानुदयकृष्टयः [४ ३ / ख प ५ / a] ततोऽसंख्येयगुणाः प्रथमसमयोदयागतकृष्टयः [४ प / ख प a / a] प्रथमचरम-समयकृतानुदयकृष्टीना-मधिकागमननिमित्तपल्यासंख्यात भागहारस्य लघुसंदृष्ट्यर्थं पञ्चाङ्कः स्थापितः तत्र प्रथमचरमसमयकृतानुदयकृष्टिषु विभञ्जनक्रमोऽर्थसन्दृष्ट्युक्तप्रकारेण कर्तव्यः ।।२९८।।

1) जयध. पु. १३, पृ. ३२०-३२३

अब सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में निषेकगत सूक्ष्मकृष्टियों के उदय और अनुदय का विभाग दिखाने के लिए यह सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ– कृष्टिकरण काल के **(पढमे समये)** प्रथम समय में **(कदकिट्टीणग्गदो दु)** की गई कृष्टियों की अग्र कृष्टि से **(असंखभागं मुचा)** असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों को छोड़कर और **(चरिमे समये कदकिट्टीण आदीदो असंखभागं मुच्चा)** अंतिम समय में की गई कृष्टियों की प्रथम कृष्टि से असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियों को छोड़कर **(सव्वे)** शेष सर्व कृष्टियाँ **(सुहुमादिमे)** सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में **(उदेदि)** उदय में आती हैं। ।।२९८।।

टीकार्थ– सूक्ष्मकृष्टिकरणकाल के प्रथम समय में की गई सूक्ष्मकृष्टियों में से पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र कृष्टियाँ स्वस्वरूप से उदय में नहीं आती। शेष रही हुई बहुभाग कृष्टियाँ, द्वितीय समय से द्विचरम समय तक की गयी सर्व कृष्टियाँ, अंतिम समय में की गयी कृष्टियों में से पल्य का असंख्यात बहुभागमात्र कृष्टियाँ अपनी–अपनी शक्ति से युक्त ही उदय में आती हैं। अंतिम समय में की गई कृष्टियों में से पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र कृष्टियाँ अपनी–अपनी शक्तिरूप से उदय में नहीं आती। जो उदय में नहीं आयी हुई प्रथम समय में की गई कृष्टियों की चरम कृष्टि से पल्य का असंख्यातवाँ भागप्रमाण कृष्टियाँ हैं वे स्वस्वरूप को छोड़कर अपनी–अपनी शक्ति का अनन्तगुणा हीन शक्तिरूप से परिणमित होकर उदय में आती हैं और जो अनुदयप्राप्त अंतिम समय में की गयी कृष्टियों की जघन्य कृष्टि से पल्य का असंख्यातवां भागप्रमाण कृष्टियाँ हैं वे स्वस्वरूप को छोड़कर अपनी–अपनी शक्ति से अनन्तगुणा शक्तिस्वरूप से परिणमित होकर मध्यम कृष्टिस्वरूप से उदय में आती हैं यह तात्पर्य है। उसमें संपूर्ण कृष्टियों का [। ४ / ख] यह प्रमाण है। उसको पल्य के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उसके बहुभागमात्र सूक्ष्म कृष्टियाँ [। ४ प / ख प a a] स्वस्वशक्तिरूप से उदय में आती हैं। पुनः रहे हुए एक भाग को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर उसके एकभाग का प्रमाण [। ४ / ख प प a a] अलग रखकर उसके बहुभाग को [। ४ प / ख प प a a a] दो से भाग देने पर उसका एक अर्ध–भागप्रमाण [। ४ प / ख प प a २ a a] कृष्टियाँ अंतिम समय में की गई अनुदयकृष्टियाँ है। पुनः रहे हुए अर्धभाग में पूर्व में रखा हुआ पल्य का असंख्यातवाँ भाग मिलाने पर प्रथम समय में की गयी अनुदय कृष्टियों का प्रमाण होता है। उसमें से सबसे कम अंतिम समय में की गयी अनुदयकृष्टियाँ हैं। (एक भागरूप अनुदयकृष्टियों में से अंतिम समय की अनुदयकृष्टि निकालने के लिए ५ का भाग दिया और २ से गुणा किया अर्थात् दो पंचमांश नीचे की कृष्टियाँ अनुदयरूप हैं। [। ४ २ / ख प ५ a]

उससे विशेष अधिक प्रथम समय में की गयी अनुदय कृष्टियाँ हैं। [४̄ ३ / ख प ५ / a] (ऊपर की अनुदयरूप कृष्टियाँ तीन पंचमांश भागमात्र हैं) उससे असंख्यातगुणा प्रथम समय में उदयप्राप्त कृष्टियाँ हैं। [४̄ प / ख प a / a] पहले और अंतिम समय में की गयी अनुदय कृष्टियों का अधिक प्रमाण लाने में कारणभूत पल्य के असंख्यातवें भागरूप भागहार की लघुसंदृष्टि करने के लिए पाँच का अंक रखा हैं। उसमें से पहले और अंतिम समय में की गयी अनुदयकृष्टियों का विभागक्रम अर्थसंदृष्टि में कहे गए प्रकार से करना चाहिए। ।।२९८।।

विशेषार्थ– अंकसंदृष्टि की अपेक्षा से सर्व कृष्टियों का प्रमाण एक हजार(१000) माना। पल्य के असंख्यातवें भाग का प्रमाण ५ माना है। १000÷५=२00 एकभाग। शेष रही बहुभाग प्रमाण आठ सौ (८00)मध्य की उदयरूप कृष्टियाँ है। एकभाग दो सौ में पुन: पाँच से भाग देने पर चालीस आया। (२00÷५=४0) उसको अलग रखकर शेष रहे एक सौ साठ(१६0) को दो से भाग दिया।(१६0÷२=८0) एक भागमात्र अस्सी कृष्टियाँ अंत समय में की गयी अनुदयरूप कृष्टियाँ हैं। शेष रही अर्धभागरूप ८0 कृष्टियों में पूर्व में अलग रखी एक भागरूप चालीस मिलाने पर (८0+४0=१२0) एक सौ बीस कृष्टियाँ प्रथम समय में की गयी अनुदयरूप कृष्टियाँ हैं।

सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में उदय व अनुदय कृष्टियाँ

अर्थ. सं.	अंक सं.
४̄ ३ / ख प ५ / a	१२0
४̄ प / ख प a / a	८00
४̄ २ / ख प ५ / a	८0

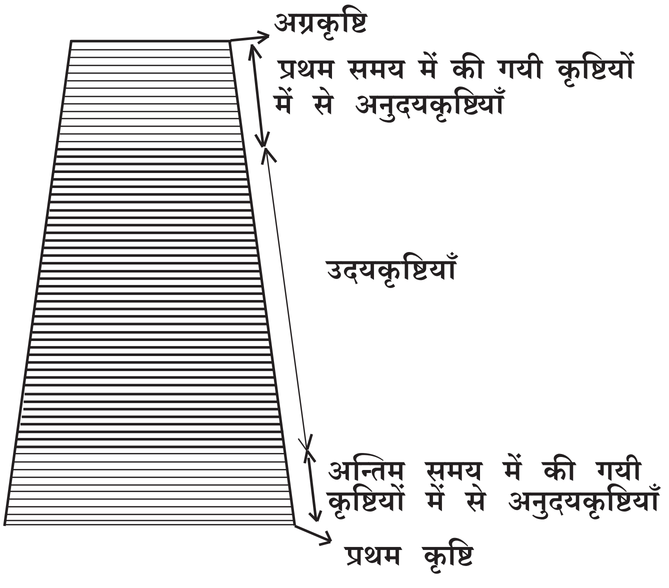

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में कहाँ किन कृष्टियों का वेदन होता हैं इसे स्पष्ट करते हुए श्री जयधवला में बतलाया है–

१) सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में उपशामक जीव नीचे और ऊपर की असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों को छोड़कर शेष सब कृष्टियों का प्रथम समय में वेदन करता है। सब कृष्टियों में से प्रदेशपुंज के असंख्यातवें भाग का अपकर्षण कर वेदन करता हुआ मध्यम कृष्टिरूप से वेदन करता है। यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

२) कृष्टिकरण काल के भीतर प्रथम समय और अंतिम समय को छोड़कर शेष समयों में जिन कृष्टियों को किया है वे सभी सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में उदीर्ण हो जाती हैं। यह सब सदृशधन को लक्ष्य में रखकर कहा है, अन्यथा उन सभी का प्रथम समय में पूरी तरह से उदीर्ण होने का प्रसंग आता है, परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि उनमें अपकर्षण भागहार का भाग देने पर जो एकभाग प्राप्त होता है उतने ही सदृश धनवाले परमाणुपुंज का अपकर्षण होकर उदय देखा जाता है।

३) उसीप्रकार कृष्टिकरण के प्रथम समय में जो कृष्टियाँ की गई हैं उनमें सें उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में उदीर्ण हो जाती हैं किन्तु यह कथन सदृश धन को लक्ष्य में रखकर किया गया है, क्योंकि एक समय में सब कृष्टियों की उदीरणा होना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रथम समय में जितनी कृष्टियाँ की गई हैं उनमें पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे उतनी कृष्टियाँ सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में उदीर्ण होती हैं।

४) कृष्टिकरण के अंतिम समय में जो कृष्टियाँ की गई है उनमें पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण जघन्य कृष्टि से लेकर अधस्तन असंख्यातवें भाग प्रमाण कृष्टियों को छोड़कर शेष सभी कृष्टियाँ सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में उदीर्ण होती हैं। इससे सिद्ध हुआ कि सूक्ष्मसांपराय संयत जीव अपने प्रथम समय में सभी कृष्टियों के असंख्यात बहुभागप्रमाण कृष्टियों का वेदन करता है। इतनी विशेषता है कि कृष्टिकरण के प्रथम समय में जो कृष्टियाँ की जाती हैं उनमें से नहीं वेदे जाने वाली उपरिम असंख्यातवें भाग के भीतर की कृष्टियाँ अपकर्षण द्वारा अनन्तगुणी हीन होकर मध्यम कृष्टिरूप से वेदी जाती हैं तथा कृष्टिकरण के अंतिम समय में रची गयी कृष्टियों में से जघन्य कृष्टि से लेकर नहीं वेदे जाने वाली अधस्तन असंख्यातवें भाग के भीतर की कृष्टियाँ अनन्तगुणी होकर मध्यम कृष्टिरूप से वेदी जाती हैं।

अथ सूक्ष्मसाम्परायस्य द्वितीयादिसमयेषु उदयानुदयकृष्टिविभागप्रदर्शनार्थमाह–

बिदियादिसु समयेसु हि छंडदि यग्गादसंखभागं तु।
आफुंददि हु अपुव्वा हेट्ठा दु असंखभागं तु[1] ।।२९९।।

द्वितीयादिषु समयेषु हि त्यजति चाग्रादसंख्यभागं तु ।
आस्पृशति ह्यपूर्वा अधस्तनास्त्वसंख्यभागं तु ।।२९९।।

सूक्ष्मसाम्परायस्य द्वितीयसमये प्रथमसमयोदयकृष्टीनामग्रकृष्टेरारभ्य –

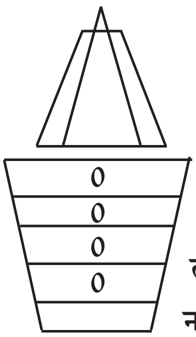

अनुदय कृष्टि (४ २ / ख प५ / a)	उदय कृष्टि (४ प / ख प a / a)	अनुदय कृष्टि (४ ३ / ख प५ / a)

प्रथमसमयोपरितनानुदयकृष्टिपल्यासंख्यातैकभागमात्रीः कृष्टीः (४ ३ / ख प५ प / a a) तावत्यः कृष्टयो नोदयमागच्छन्तीत्यर्थः । प्रतिसमयमुदयकृष्टीनाम–नन्तगुणहीनशक्तिकत्वान्यथानुपपत्तेः । पुनः प्रतिसमयाधस्तनानुदयकृष्टिपल्यासंख्यातैकभागमात्रापूर्वकृष्टीः (४ २ / ख प५ प / a a) आस्पृशति अवष्टभ्य गृह्णातीत्यर्थः, तावन्मात्र्यः कृष्टयः उदयमागच्छन्तीत्युक्तं भवति । एवं द्वितीयसमये उदयकृष्टयः प्रथमसमयो–दयकृष्टिभ्यो विशेषहीनाः अवष्टभ्य गृहीताः कृष्टीरेताः। (४ २ / ख प५ प / a a) मुक्तकृष्टिष्वेतासु (४ ३ / ख प५ प / a a) विशोध्यावशिष्टेन प्रथमसमयानुदयकृष्टिपल्यासंख्या–तैकभागमात्रेण (४ १ / ख प५ प / a a) विशेषेण हीना द्वितीयसमयोदयकृष्टय इत्यर्थः । एवं तृतीयादिसमयेषु सूक्ष्म–साम्परायचरमसमयपर्यन्तेषु पूर्वपूर्वहानिविशेषपल्यासंख्यातैकभागमात्रविशेषेण हीनाः कृष्टयः प्रतिसमयमुदयमागच्छन्तीति ज्ञातव्यम् ।।२९९।।

अब सूक्ष्मसांपराय के द्वितीयादि समयों में उदय–अनुदय कृष्टियों का विभाग दिखाने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(बिदियादिसु समयेसु हि)** द्वितीयादि समयों में **(य अग्गाद असंखभागं तु)** अग्रकृष्टि से असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों को **(छंडदि)** छोड़ता है **(तु)** परन्तु **(हेट्ठा)** नीचे **(अपुव्वा)**अपूर्व **(असंखभागं तु)**असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियों को **(आफुंददि हु)**ग्रहण करता है। ।।२९९।।

१) जयध. पु. १३, पृ. ३२४

टीकार्थ–सूक्ष्मसांपराय के द्वितीय समय में प्रथम समय की उदयकृष्टियों की अग्रकृष्टि से प्रथम समय की ऊपर की अनुदय कृष्टियों के पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ [४ ३ ख प५ प a a] $\frac{\text{प्रथम समय की ऊपर की अनुदय कृष्टियाँ}}{\text{पल्य का असंख्यातवाँ भाग}}$ छोड़ता है अर्थात् उतनी कृष्टियाँ उदय में नहीं आती है क्योंकि प्रत्येक समय में उदयकृष्टियों का अनन्तगुणा हीन शक्तिरूप होना अन्यथा घटित हो नहीं सकता। पुन: प्रत्येक समय में नीचे की अनुदय कृष्टियों में से पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र अपूर्वकृष्टियों को [४ २ ख प५ प a a] $\frac{\text{प्रथम समय की नीचे की अनुदय कृष्टियाँ}}{\text{पल्य का असंख्यातवाँ भाग}}$ स्पर्श करता है अर्थात् उन्हें ग्रहण करता है। उतनी मात्र कृष्टियाँ (नवीन) उदय में आती हैं ऐसा कहा है।

इस प्रकार द्वितीय समय की उदयकृष्टियाँ प्रथम समय की उदयकृष्टियों से विशेष कम हैं।द्वितीय समय की उदयकृष्टियाँ नयी [४ २ ख प५ प a a] ग्रहण की गयी कृष्टियाँ ऊपर की नयी छोड़ी गयी कृष्टियों [४ ३ ख प५ प a a] में से कम करने पर शेष रही कृष्टियों से अर्थात् प्रथम समय की अनुदयकृष्टियों के पल्य के असंख्यातवें भागमात्र [४ १ ख प५ प a a] विशेष से हीन हैं।

इसप्रकार तृतीयादि समय से सूक्ष्मसांपराय के चरम समय तक विशेषहीन क्रम से प्रत्येक समय में कृष्टियाँ उदय में आती हैं। विशेष का प्रमाण जितनी पूर्व समय में कम हुई थी उसको पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देने पर जो एक भाग आता है उतना जानना चाहिए। ।।२९९।।

विशेषार्थ–सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के दूसरे समय में जो कृष्टियाँ प्रथम समय में उदीर्ण हुई उसके सबसे ऊपर के भाग में स्थित कृष्टि से शुरूआत करके नीचे के असंख्यातवें भाग को छोड़कर अधस्तन बहुभागप्रमाण कृष्टियों का वेदन करता है। उसके समान नीचे के प्रथम समय में अनुदीर्ण हुई कृष्टियों के असंख्यातवें भाग प्रमाण अपूर्व कृष्टियों का वेदन करता है। प्रथम समय में जितनी कृष्टियों का वेदन होता है उससे दूसरे समय में वेदन की जाने वाली कृष्टियाँ असंख्यातवें भाग प्रमाण कम हैं। इस प्रकार तीसरे समय से सूक्ष्म सांपराय के अंतिम समय तक जानना चाहिए।

प्रथम समय में ऊपर की अनुदय कृष्टियाँ १२० मानी हैं। उसको माने हुए पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण पाँच से भाग देने पर १२०÷५= २४ आता है। पूर्व समय की उदयकृष्टियों की अग्रकृष्टि से २४ कृष्टियाँ दूसरे समय में नयी अनुदयरूप कृष्टियाँ हैं। पुन: प्रथम समय की नीचे की अनुदय कृष्टियाँ ८० मानी हैं। उसमें ५ का भाग देने पर ८०÷५= १६ आते हैं। अनुदयकृष्टियों में से नीचे की ६४ कृष्टियाँ छोड़कर उसके ऊपर की १६ पूर्व समय की अनुदय कृष्टियाँ दूसरे समय में उदय में आती हैं। इस प्रकार ऊपर की २४ कृष्टियाँ नयी अनुदयरूप हुई और नीचे की १६ कृष्टियाँ नयी उदयरूप हुई।इसलिए २४−१६= ८ कृष्टियाँ दूसरे समय में उदय से कम हुई। यह संख्या प्रथम समय की २०० अनुदय कृष्टियों को ५ से भाग देकर जो एक भाग आता है उसे पुन: ५ से भाग देकर जो एक भाग आता है उतनी है। २००÷५=४०,४०÷५=८। प्रथम समय में उदयकृष्टियाँ ८०० हैं और द्वितीय समय में उदयकृष्टियाँ ७९२ हुई।

सूक्ष्मसांपराय के द्वितीय समय में उदय और अनुदय कृष्टियाँ

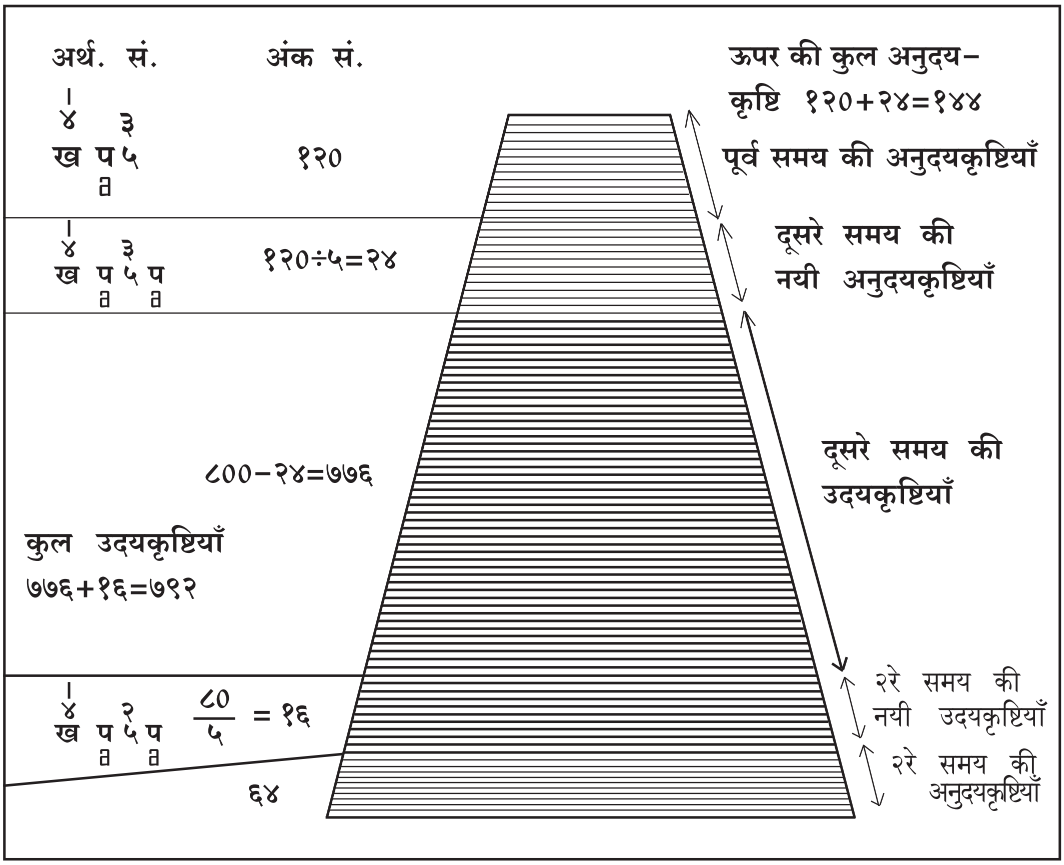

अथ सूक्ष्मकृष्टिद्रव्योपशमनविधानप्ररूपणार्थमाह–

किट्टिं सुहुमादीदो चरिमो त्ति असंखगुणिदसेढीए ।
उवसमदि हु तच्चरिमे अवरट्ठिदिबंधणं छण्हं[1] ।।३००।।

कृष्टिं सूक्ष्मादितश्चरम इत्यसंख्यगुणितश्रेण्या: ।
उपशमयति हि तच्चरमेऽवरस्थितिबन्धनं षण्णाम् ।।३००।।

सूक्ष्मसाम्परायस्य प्रथमसमये सकलसूक्ष्मकृष्टिद्रव्यस्य पल्यासंख्यातैकभागमात्रं 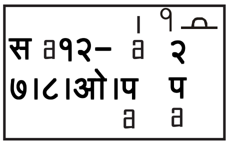 **उपशमयति । द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणं द्रव्यमुपशमयति** 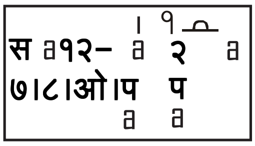 **एवं तृतीयादिसमयेष्वसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमय्य चरमसमये चरमफालिद्रव्यं** 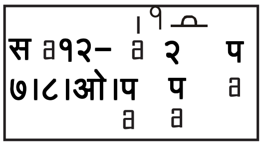 **उपशमयति । ये च समयोनद्व्यावलिमात्रसंज्वलनलोभनवकबन्धसमय– प्रबद्धास्ते च सूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयादारभ्य समयं समयं प्रत्यसंख्यातगुणितक्रमेणोपशाम्यन्ते। सूक्ष्मसाम्परायचरमसमये षण्णामायुर्मोहवर्ज्यानां कर्मणां जघन्यस्थितिबन्धो भवति ।।३००।।**

अब सूक्ष्मकृष्टि के द्रव्य के उपशमनविधान का प्ररूपण करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– (सुहुमादिदो चरिमो त्ति) सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय से अंतिम समय तक **(असंखगुणिदसेढीए)**असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से **(किट्टिं)** कृष्टियों का **(उवसमदि हु)** उपशमन करता है। **(तच्चरिमे)** उसके अंतिम समय में **(छण्हं)** छह कर्मों का (आयु और मोह छोड़कर) **(अवरट्ठिदिबंधणं)** जघन्य स्थितिबंध होता है। ।।३००।।

टीकार्थ– सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में संपूर्ण सूक्ष्मकृष्टि द्रव्य में से पल्य के असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य का 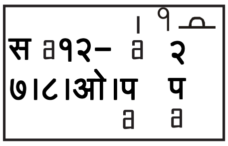 (संपूर्ण कृष्टिद्रव्य / पल्य का असंख्यातवाँ भाग) उपशमन करता है। द्वितीय समय में उससे असंख्यातगुणित द्रव्य का उपशमन करता है। 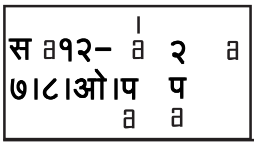 (प्रथम समय के उपशमित द्रव्य को असंख्यात से गुणा किया।) इस प्रकार तृतीयादि समयों में असंख्यातगुणित क्रम से उपशमन करके

1) जयध. पु. १३, पृ. ३२३–३२४

अंतिम समय में अंतिम फालिद्रव्य का बहुभाग का) उपशमन करता है और जो संज्वलन लोभ का नवकबंध समयप्रबद्ध

| १ ‒
स a१२– a २ प
७।८।ओ।प प a
a a

(कृष्टिद्रव्य के असंख्यात एक समय कम दो आवलिमात्र है वह सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय से प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से उपशमित किया जाता है। सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में आयु और मोहनीय को छोड़कर छह कर्मों का जघन्य स्थितिबंध होता है। ।।३००।।

अथ तत्स्थितिबन्धविशेषनिर्णयार्थमाह–

अंतोमुहुत्तमेत्तं घादितियाणं जहण्णठिदिबंधो ।
णामदुग वेयणीये सोलस चउवीस य मुहुत्ता[१] ।।३०१।।

अन्तर्मुहूर्तमात्रं घातित्रयाणां जघन्यस्थितिबन्धः ।
नामद्विकवेदनीये षोडश चतुर्विंशश्च मुहूर्ताः ।।३०१।।

सूक्ष्मसांपरायचरमसमये त्रयाणां घातिकर्मणां ज्ञानदर्शनावरणांतरायाणां जघन्य-स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः, नामगोत्रयोः षोडशमुहूर्तप्रमितः सातवेदनीयस्य चतुर्विंशति-मुहूर्तमात्रः स्थितिबन्धो भवति।ये पूर्वमुच्छिष्टावलिमात्रनिषेकाः बादरसंज्वलनलोभस्य स्पर्धक-गतास्त्यक्तास्ते च पूर्वोक्तस्थितोक्तसंक्रमविधानेन कृष्टिरूपतया परिणम्योदयमागच्छन्ति ।।३०१।।

अब उन कर्मों के स्थितिबन्ध का विशेष निर्णय करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(घादितियाणं)** तीन घातिकर्मों का **(जहण्णठिदिबंधो)** जघन्य स्थितिबन्ध **(अंतोमुहुत्तमेत्तं)** अंतर्मुहूर्तमात्र **(णामदुग)** नाम और गोत्र कर्म का **(सोलस मुहुत्ता)** सोलह मुहूर्त **(य)** और **(वेयणीये)** वेदनीय कर्म का **(चउवीस मुहुत्ता)** चौबीस मुहूर्त होता है।।।३०१।।

टीकार्थ– सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातिया कर्मों का जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तमात्र, नाम और गोत्र का सोलह मुहूर्तप्रमाण और साता वेदनीय का चौबीस मुहूर्तप्रमाण स्थितिबंध होता है। जो पूर्व में बादर संज्वलन लोभ के स्पर्धकगत उच्छिष्टावलिमात्र निषेक छोड़े थे वे पूर्व में कहे गए स्तिबुकसंक्रमण विधान से कृष्टिरूप से परिणमित होकर उदय में आते हैं। ।।३०१।।

अथ पूर्वोक्तार्थोपसंहारं गाथाद्वयेनाह–

पुरिसादीणुच्छिट्ठं समऊणावलिगदं तु पच्चिहिदि ।
सोदयपढमट्ठिदिणा कोहादीकिट्टियंताणं[२] ।।३०२।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ३२५-३२६ २) जयध. पु. १३, पृ. ३२४

अंतरकरण से मोहनीयादि कर्मों के स्थितिबंध का प्रमाण

पद	मोहनीय	तीसिय	बीसिय
सूक्ष्मसांपराय का अंतिम समय	x	अंतर्मुहूर्त	१६ मुहूर्त नाम गोत्र २४ मुहूर्त वेदनीय
कृष्टिकरण का अंतिम समय	अंतर्मुहूर्त	१ दिन के भीतर	२ वर्ष के भीतर
बादर लोभ के द्वितीय अर्ध का बहुभाग जानेपर	अंतर्मुहूर्त	दिन पृथक्त्व	संख्यात हजार वर्ष
बादर लोभ के प्रथम अर्ध का अंतिम समय	दिनपृथक्त्व	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष
माया कषाय के उपशमन का अंतिम समय	१ माह	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष
मान कषाय के उपशमन का अंतिम समय	२ माह	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष
क्रोध कषाय के उपशमन का अंतिम समय	४ माह	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष
क्रोधकषाय के उपशमनकाल का प्रथम समय (अपगत वेद का प्रथम समय)	अंतर्मुहूर्त कम ३२ वर्ष	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष
सात नोकषायों के उपशमन का अंतिम समय	१६ वर्ष पुंवेद ३२ वर्ष संज्वलन	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष
सात नोकषायों के उपशमनकाल का संख्यातवाँ भाग व्यतीत होने पर	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष
स्त्रीवेद के उपशमनकाल का संख्यातवाँ भाग व्यतीत होने पर प्रथम समय	संख्यात हजार वर्ष	संख्यात हजार वर्ष	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
अंतरकरण का अंतिम समय	संख्यात हजार वर्ष	पल्य का असंख्यातवाँ भाग	पल्य का असंख्यातवाँ भाग
स्थितिबंध का समय	**मोहनीय**	**तीन घाति**	**नाम,गोत्र, वेदनीय**

नोट- काल ऊपर-ऊपर है इसलिए नीचे से ऊपर सारणी दी गयी है इसलिए सारणी नीचे से ऊपर देखे।

पुरुषादीनामुच्छिष्टं समयोनावलिगतं तु पक्ष्यति ।
स्वोदयप्रथमस्थितिना क्रोधादिकृष्ट्यन्तानाम् ।।३०२।।

पुंवेदादीनां समयोनावलिमात्रनिषेकद्रव्यमुच्छिष्टावलिसंज्ञं क्रोधादिसूक्ष्मकृष्टिपर्यन्तानां स्वोदयप्रथमस्थितिनिषेकैः सह तद्रूपेण परिणम्य पक्ष्यति उदेष्यतीत्यर्थः ।।३०२।।

अब पूर्व में कहे गये अर्थ का उपसंहार दो गाथाओं के द्वारा करते हैं–

अन्वयार्थ– **(पुरिसादीण)** पुरुषवेदादिकों के **(उच्छिट्ठं)** शेष रहे **(समऊणावलिगदं तु)** एक समय कम आवलि प्रमाण निषेक **(कोहादीकिट्टियंताणं)** क्रोधादि से कृष्टि तक की **(सोदयपढमट्ठिदिणा)** स्वोदयरूप प्रथम स्थिति के साथ **(पच्चिहिदि)** उदय में आयेंगे। ।।३०२।।

टीकार्थ– पुरुषवेदादिकों की उच्छिष्टावलि नाम का एक समय कम आवलिमात्र निषेकों का द्रव्य क्रोध से सूक्ष्मकृष्टि तक के स्व उदयरूप प्रथम स्थिति के निषेकों के साथ उसी रूप परिणमित होकर उदयरूप होगा ऐसा अर्थ है। ।।३०२।।

विशेषार्थ– पुरुषवेद के उच्छिष्टावलिमात्र शेष निषेक संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में उसीरूप परिणमित होकर उदय में आते हैं। इसीप्रकार संज्वलन क्रोध के संज्वलन मान में, मान के माया में, माया के बादर लोभ में, बादर लोभ के सूक्ष्मकृष्टि में परिणमित होकर उदयरूप होते हैं ऐसा गाथा का भाव है।

पुरिसादो लोहगयं णवकं समऊण दोण्णि आवलियं ।
उवसमदि हु कोहादीकिट्टीअंतेसु ठाणेसु।।३०३।।

पुरुषाल्लोभगतं नवकं समयोने द्वयावलिके ।
उपशाम्यति हि क्रोधादिकृष्ट्यन्तेषु स्थानेषु ।।३०३।।

पुंवेदादीनां लोभपर्यन्तानां समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धद्रव्यं क्रोधादिकृष्टि-पर्यन्तोपशमनकालेषु प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमयति । सूक्ष्मकृष्टिप्रथमस्थितौ आवलिद्वये अवशिष्टे आगालप्रत्यागालव्युच्छेदो भवति । समयाधिकावलिमात्रेऽवशिष्टे पूर्ववज्जघन्योदीरणा भवति उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकाश्च स्वस्थाने एवाकर्मरूपतया परिणम्य गलन्ति ।।३०३।।

अन्वयार्थ–(पुरिसादो लोहगयं) पुरुषवेद से लोभ तक के **(समऊण दोण्णि आवलियं)** एक समय कम दो आवलिमात्र **(णवकं)** नवक समयप्रबद्ध **(कोहादीकिट्टीअंतेसु ठाणेसु)** क्रोध को आदि करके कृष्टि तक के स्थान में **(उवसमदि हु)**उपशमित होते हैं।।।३०३।।

टीकार्थ–पुरुषवेद से लेकर लोभ तक के एक समय कम दो आवलिमात्र नवक समयप्रबद्ध द्रव्य का क्रोधादि कृष्टि तक के उपशमनकाल में प्रत्येक समय में असंख्यातगुणित क्रम से उपशमन करता है। सूक्ष्मकृष्टि की प्रथम स्थिति में दो आवलि शेष रहने पर आगाल और प्रत्यागाल का उच्छेद होता है। एक समय अधिक आवलिमात्र शेष रहने पर पूर्ववत् जघन्य उदीरणा होती है और उच्छिष्टावलि मात्र निषेक अपने स्थान में ही अकर्मरूप से परिणमित होकर गलते हैं। ।।३०३।।

एवं सूक्ष्मसाम्परायचरमसमये सर्वकृष्टिद्रव्यमुपशमय्य तदनन्तरसमये उपशान्तकषायो भवतीत्याह–

उवसंतपढमसमये उवसंतं सयलमोहणीयं तु।
मोहस्सुदयाभावा सव्वत्थ समाणपरिणामो[1] ।।३०४।।

उपशांतप्रथमसमये उपशांतं सकलमोहनीयं तु ।
मोहस्योदयाभावात् सर्वत्र समानपरिणामः ।।३०४।।

उपशान्तकषायस्य प्रथमसमये सकलं चारित्रमोहनीयं बन्धोदयसंक्रमोदीरणोत्कर्षणापकर्षणादिसर्वेषां करणानामनुद्भूतिवशेन सर्वात्मनोपशमितं, उदयादिषु निक्षेप्तुमशक्यमित्यर्थः। तस्योपशान्तकषायस्य प्रथमसमयादारभ्य स्वचरमसमयपर्यन्ते अन्तर्मुहूर्तमात्रे गुणस्थानकाले समान एव प्रतिसमयमवस्थितः विशुद्धिपरिणामो भवति। विशुद्धिविकल्पकरणस्य कषायोदयस्य तस्मिन्नत्यन्ताभावात् तत एव प्रतिसमयमेकादृशविशुद्धिरूपं यथाख्यातचारित्रमुपशान्तकषाये भवतीति प्रवचने प्रतिपादितम् ।।३०४।।

इस प्रकार सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय में सर्व कृष्टियों के द्रव्य को उपशमित करके उसके अनन्तर समय में उपशान्तकषाय होता है ऐसा कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(उवसंतपढमसमये)** उपशान्तकषाय के प्रथम समय में **(सयलमोहनीयं तु)** सम्पूर्ण मोहनीय **(उवसंतं)** उपशान्त हुआ। **(मोहस्सुदयाभावा)** मोह के उदय का अभाव होने से **(सव्वत्थ)** सर्वत्र **(समाणपरिणामो)** समान परिणाम है। ।।३०४ ।।

टीकार्थ– उपशान्तकषाय के प्रथम समय में संपूर्ण चारित्र मोहनीय के बन्ध, उदय, संक्रमण, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण इत्यादि सर्व करणों की उत्पत्ति न होने से सर्वरूप से उपशमित हुआ अर्थात् उदयादि में देने के लिए अशक्य है। उस उपशान्त कषाय के प्रथम

१) जयध. पु. १३, पृ. ३२६-३२७

समय से अपने अंतिम समय तक अन्तर्मुहूर्त मात्र गुणस्थानकाल में प्रत्येक समय में अवस्थित ही विशुद्ध परिणाम होते हैं। इसका कारण विशुद्धि में भेद करने वाले कषाय के उदय का वहाँ अत्यन्त अभाव है। इसीलिए प्रत्येक समय में एक समान विशुद्धिरूप यथाख्यात चारित्र उपशान्तकषाय गुणस्थान में होता है ऐसा प्रवचन में कहा है। ।।३०४।।

अथोपशान्तकषायकालप्रमाणप्रदर्शनार्थमाह–

अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसंतकसायवीयरायद्धा ।
गुणसेढीदीहत्तं तस्सद्धा संखभागो दु ।।३०५।।

अन्तर्मुहूर्तमात्रमुपशान्तकषायवीतरागाद्धा ।
गुणश्रेणीदीर्घत्वं तस्याद्धा संख्यभागस्तु ।।३०५।।

उपशान्ता अनुद्भूता: कषाया: यस्यासौ उपशान्तकषाय: । वीतोऽपगतो राग: संक्लेशपरिणामो यस्मादसौ वीतराग:, उपशान्तकषायश्चासौ वीतरागश्च उपशान्तकषाय–वीतरागस्तस्याद्धा गुणस्थानकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र एव तत: परं कषायाणां नियमेनोदयसम्भवात्। द्रव्यकर्मोदये सति संक्लेशपरिणामलक्षणभावकर्मण: सम्भवेन तयो: कार्यकारणभावप्रसिद्धे:। सोऽयमुपशान्तकषाय: प्रथमसमये आयुर्मोहनीयवर्जितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां द्रव्यं सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यादसंख्यातगुणितमपकृष्य स्वगुणस्थानकालस्य संख्यातैकभागमात्रे आयामे उदयावलिप्रथमसमयादारभ्य प्रक्षेपयोगेत्यादिगुणश्रेणिविधानेन निक्षिपति ।।३०५।।

अब उपशान्तकषाय के काल का प्रमाण दिखाने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ–(उवसंतकसायवीयरायद्धा) उपशान्तकषाय वीतराग गुणस्थान का काल **(अंतोमुहुत्तमेत्तं)** अन्तर्मुहूर्त मात्र है। **(दु)** परन्तु **(गुणसेढीदीहत्तं)** गुणश्रेणी का आयाम **(तस्सद्धा संखभागो दु)** उस गुणस्थानकाल का संख्यातवाँ भागमात्र है। ।।३०५।।

टीकार्थ– उपशान्त अर्थात् उत्पन्न नहीं हुई हैं कषायें जिसकी वह उपशांतकषाय है। दूर हुआ है राग अर्थात् संक्लेश परिणाम जिसमें से वह वीतराग है। जो उपशान्तकषाय और वीतराग है वह उपशान्तकषाय–वीतराग है। उस गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है क्योंकि उसके बाद नियम से कषायों का उदय संभव है। द्रव्यकर्म का उदय होने पर संक्लेश परिणाम लक्षण भावकर्म की उत्पत्ति होती है क्योंकि उन दोनों में कार्यकारण भाव की प्रसिद्धि है। वह यह उपशान्तकषाय जीव प्रथम समय में आयु और मोहनीय कर्म छोड़कर ज्ञानावरणादि

कर्मों के द्रव्य का सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में अपकर्षित किये गुणश्रेणि द्रव्य से असंख्यात गुणित अपकर्षण करके अपने गुणस्थान काल के संख्यातवें भागमात्र आयाम में उदयावलि के प्रथम समय से 'प्रक्षेपयोग' इत्यादि गुणश्रेणिविधान से निक्षेपण करता है। ।।३०५।।

विशेषार्थ– ग्यारहवें गुणस्थान का नाम उपशान्तकषाय वीतराग है। जिसकी कषाय उपशान्त हो गई है अर्थात् उद्रेक को नहीं प्राप्त होती है उसे उपशान्तकषाय कहते हैं तथा जिसके कषाय के निमित्त से शुभाशुभ परिणाम का अभाव हो गया है उसे वीतराग कहते हैं। इस प्रकार जो उपशान्तकषायपूर्वक वीतराग अवस्था को प्राप्त हुआ है, उसे उपशान्तकषाय–वीतराग गुणस्थान वाला कहते हैं। यहाँ ज्ञानावरणादि तीन घातिया कर्मों का उदय रहने पर भी कषाय के निमित्त से होने वाले परिणाम का सर्वथा अभाव है यह इसका तात्पर्य है। जिस जल में कतकफल डालने पर जल बिलकुल निर्मल हो जाता है, उसमें कर्दम सर्वथा उपशान्त रहता है ऐसा यह वीतराग परिणाम है, क्योंकि कर्मबन्ध के हेतुभूत शुभाशुभ परिणामों का यहाँ अभाव ही रहता है। ऐसा यह उपशान्तकषायवीतराग गुणस्थान है।

इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। इसमें जो गुणश्रेणि रचना होती है वह उपशान्तकषाय गुणस्थान के काल से संख्यातवें भाग प्रमाण काल वाली होती है। उससे अपूर्वकरण में की गई गुणश्रेणि का शीर्ष संख्यातगुणा होता है। सूक्ष्मसाम्पराय में अंतिम समय में गुणश्रेणि को जितना द्रव्य प्राप्त होता है उससे इसके प्रथम समय में असंख्यातगुणा द्रव्य प्राप्त होता है। आयुकर्म में तो गुणश्रेणि रचना होती ही नहीं। मोहनीय कर्म का उपशम हो जाने से यहाँ मोहनीय कर्म की गुणश्रेणि रचना का भी सर्वथा अभाव है। मात्र ज्ञानावरणादि कर्मों की ही गुणश्रेणि रचना होती है। इस गाथा का यह आशय है।

अमुमेवार्थमभिव्यक्तुमाह–

उदयादिअवट्ठिदगा गुणसेढी दव्वमवि अवट्ठिदगं ।
पढमगुणसेढिसीसे उदये जेट्ठं पदेसुदयं ।।३०६।।

उदयाद्यवस्थितका गुणश्रेणी द्रव्यमप्यवस्थितकम् ।
प्रथमगुणश्रेणिशीर्षे उदये ज्येष्ठं प्रदेशोदयम् ।।३०६।।

उपशान्तकषायेण प्रथमसमये उदयावलिप्रथमसमयादारभ्य यावन्मात्रायामा गुणश्रेणी विहिता द्वितीयादिसमयेष्वपि तावन्मात्रायामा एव गुणश्रेणिर्विधीयते। उदयावल्या–मेकस्मिन् समये गलिते उपरितनस्थितावेकस्मिन् समये गुणश्रेणिद्रव्यनिक्षेपप्रतिज्ञानात् । अत एवोदयाद्यवस्थितगुणश्रेणिः प्रतिसमयं प्रवर्तत इत्युक्तम् । उपशान्तकषायेण प्रथमसमये

ज्ञानावरणादिकर्मद्रव्यं यावन्मात्रमपकृष्य गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्तं तावन्मात्रमेव प्रतिसमयं द्रव्यमपकृष्य निक्षिपति नोनाधिकं प्रतिसमयमवस्थितविशुद्धिपरिणामनिबन्धनस्य द्रव्यापकर्षणस्य प्रतिसमयं हानिवृद्ध्यभावात् । अत एव द्रव्यमप्यवस्थितमित्युक्तम् । यदा उपशान्तकषायेण प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षसमयः उदयमागच्छति तदा तस्मिन् समये उत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति । तद्यथा–

प्रथमसमयापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यस्य चरमनिषेकः [स a१२–६४ / ७।ओ।प ८५ / a] द्वितीयसमयापकृष्ट–द्रव्यस्य द्विचरमनिषेकः [स a१२–१६ / ७।ओ।प ८५ / a] एवं तृतीयसमयादिसाम्प्रतिकगुणश्रेण्यायामचरमसमय–पर्यन्तापकृष्टगुणश्रेणि–द्रव्याणां त्रिचरमादिप्रथमनिषेकपर्यन्ताश्च सर्वे निषेकाः साम्प्रतिकगुणश्रेण्यायामसमयप्रमिताः पुञ्जीकृताः एकसमयापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यमात्रं द्रव्यं [स a१२– / ७।ओ।प / a] एतच्च तत्कालावस्थितसत्त्वगोपुच्छद्रव्येण [स a१२–१ १६।२१ / ७१ ओ १२।१६।४] अनेन साधिकमुदेतीति। ननु प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षस्य उपरि–तनसमयेष्वपि तत्र तत्रोदयमानं द्रव्यं एकसमयापकृष्टद्रव्यमात्रमेव सम्भवति, ततः कारणात्कथं प्रथमसमय–कृतगुणश्रेणिशीर्षसमये एवोत्कृष्टप्रदेशोदयः सम्भवतीति नाशङ्कितव्यं, उपरितनसमयेषूदयमागते–ष्वेकसमयापकृष्टद्रव्यमात्रस्य समानत्वेऽपि प्रथमसमयकृतगुणश्रेणीशीर्षसमयसत्त्वगोपुच्छद्रव्यात् उत्तरोत्तरसमयसत्त्वगोपुच्छद्रव्याणामेकैकचयहीनत्वेन तत्र तत्रोदयद्रव्यस्य किञ्चिन्न्यूनत्वात्। अथापूर्वकरणप्रथमादिसमयकृतगलितावशेषगुणश्रेणीशीर्षसमये साम्प्रतिकगुणश्रेण्यायामाभ्यन्तर–वर्तिन्युदयागते तदा बहुभिः प्राक्तनगुणश्रेणीनिषेकैः तात्कालिकसत्त्वगोपुच्छद्रव्येण चाभ्यधिकं बहुतरद्रव्यमुदयमागमिष्यतीत्यपि न मन्तव्यं सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयपर्यन्तनिक्षिप्तप्राक्तनगुण–श्रेणिद्रव्यात्सर्वस्मादपि उपशान्तकषायविशुद्धिमाहात्म्येन साम्प्रतापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यजघन्यनिषेक–स्याप्यसंख्येयगुणत्वसम्भवात् । अतः कारणादधस्तनोपरितनसमयोदयनिषेकेभ्यः प्रथमसमयकृतगुण–श्रेणीशीर्षसमयोदयनिषेकद्रव्यं बहुतरमिति सूक्तम् ।।३०६।।

इस ही अर्थ को व्यक्त करने के लिए कहते हैं–

अन्वयार्थ– उपशान्तमोह गुणस्थान में **(उदयादिअवट्ठिदगा)** उदयादि अवस्थित **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि है। **(दव्वमवि)** द्रव्य भी **(अवट्ठिदगं)** अवस्थित ही है। **(पढमगुणसेढिसीसे उदये)** उपशान्तकषाय के प्रथम समय में की गई गुणश्रेणि के शीर्ष का उदय होने पर **(जेट्ठं)** उत्कृष्ट **(पदेसुदयं)** प्रदेशोदय होता है। ।।३०६।।

टीकार्थ– उपशान्तकषाय जीव ने प्रथम समय में उदयावलि के प्रथम समय से

आरम्भ करके जितनी आयामवाली गुणश्रेणि की है द्वितीयादि समयों में भी उतनी ही आयामवाली गुणश्रेणि करता है। उदयावलि में से एक समय गलने पर उपरितन स्थिति के एक समय में गुणश्रेणि का द्रव्य देने की प्रतिज्ञा है। इसीलिए उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि प्रत्येक समय में प्रवृत्त होती है ऐसा कहा गया है। उपशान्तकषाय जीव ने प्रथम समय में ज्ञानावरणादि कर्मों का जितना द्रव्य अपकर्षण करके गुणश्रेणिआयाम में दिया उतना ही द्रव्य प्रत्येक समय में अपकर्षण करके देता है, कम–ज्यादा नहीं देता है क्योंकि प्रत्येक समय में विशुद्ध परिणाम अवस्थित है। इसलिए उस निमित्त से प्रत्येक समय में द्रव्य के अपकर्षण में वृद्धिहानि का अभाव है। उससे द्रव्य भी अवस्थित है ऐसा कहा गया है। जब उपशान्तकषाय जीव के प्रथम समय में किया गया गुणश्रेणिशीर्ष का समय उदय में आता है तब उस समय में उत्कृष्ट प्रदेशोदय होता है। उसका स्पष्टीकरण–

प्रथम समय में अपकृष्ट गुणश्रेणि द्रव्य का अन्तिम निषेक ऐसा– [स a१२–६४ / ७।ओ।प a ८५] है। द्वितीय समय में अपकृष्ट द्रव्य का द्विचरम निषेक ऐसा [स a१२–१६ / ७।ओ।प a ८५] इसप्रकार तृतीयादि समय से वर्तमान गुणश्रेणिआयाम के अंतिम समय तक अपकृष्ट गुणश्रेणि द्रव्य के द्विचरमादि से प्रथम निषेक१ तक वर्तमान गुणश्रेणी–आयाम के समयप्रमाण सर्व निषेक एकत्र किए तो वे एक समय में अपकृष्ट गुणश्रेणि का जितना द्रव्य है उतना ही [स a१२– / ७।ओ।प a] द्रव्य होता है। यह द्रव्य उस काल का स्थितिसत्त्वरूप गोपुच्छाकार द्रव्य से अधिक होकर उदय में आता है। [स a१२–१ १६।२१ / ७१ ओ १२।१६।४]

शंका– प्रथम समय में किये गए गुणश्रेणिशीर्ष के ऊपर के समयों में उस–उस समय में उदय में आने वाला द्रव्य भी एक समय में अपकर्षण किये द्रव्य ही संभव है। उस कारण के समान से प्रथम समय में किए गए गुणश्रेणिशीर्ष के समय में ही उत्कृष्ट प्रदेश उदय कैसे संभव है ?

समाधान– ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए क्योंकि उदय में प्राप्त हुए ऊपर के समयों में एक समय में अपकृष्ट द्रव्यमात्र की समानता होने पर भी प्रथम समय में किए गए गुणश्रेणिशीर्ष समय में सत्त्वरुप गोपुच्छद्रव्य से उत्तरोत्तर समय गोपुच्छद्रव्य एक–एक चय से हीन है इसलिए उस–उस समय का द्रव्य कुछ कम है।

शंका – अपूर्वकरण के प्रथमादि समयों में की गई गलितावशेष गुणश्रेणिशीर्ष का समय जो कि वर्तमान गुणश्रेणि के आयाम में ही है वह उदय में आने पर वहाँ पूर्व के बहुत गुणश्रेणि निषेकों से और तात्कालिक सत्त्वरुप गोपुच्छ द्रव्य से अधिक, बहुत द्रव्य उदय में आता है।

समाधान– ऐसा भी नही मानना चाहिये क्योंकि सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय तक निक्षिप्त पूर्व गुणश्रेणी द्रव्य से उपशान्त कषाय की विशुद्धि के माहात्म्य से वर्तमान में अपकर्षित गुणश्रेणिद्रव्य का जघन्य निषेक भी असंख्यातगुणा है। इस कारण से नीचे के और ऊपर के समयों के उदयनिषेकों से प्रथम समय में किये गुणश्रेणीशीर्ष के समय का उदयनिषेक द्रव्य अधिक है। (आकृति पृ. ४७८ यहाँ लेना है।) ।।३०६।।

विशेषार्थ– पहले अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर सूक्ष्मसांपराय के अन्तिम समय तक मोहनीय को छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि कर्मों का गुणश्रेणि निक्षेप उदयावलि के बादर गलितावशेष होता रहा, किन्तु यहाँ उपशान्तकषाय गुणस्थान में वह उदय समय से लेकर होने लगता है तथा यहाँ अवस्थित परिणाम होने से गुणश्रेणि रचना और उसमें प्रति समय होनेवाला प्रदेशपुंज का निक्षेप अवस्थित रूप से ही होता है। यह क्रम उपशांतकषाय के अंतिम समय तक चलता रहता है। एक बात और यह है कि उपशान्तकषाय के प्रथम समय में जो गुणश्रेणिशीर्ष की रचना हुई उसकी अग्र स्थिति का उदय होने पर ज्ञानावरणादि कर्मों का उत्कृष्ट प्रदेश उदय होता है, क्योंकि यहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संचित हुई गुणश्रेणि गोपुच्छाओं का एक साथ उदय देखा जाता है। यद्यपि इसके आगे भी प्रत्येक समय में उतनी ही गोपुच्छाएँ एक साथ उपलब्ध होती हैं, किन्तु आगे प्रकृत गोपुच्छाओं की अपेक्षा प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर एक–एक गोपुच्छा विशेष की हानि देखी जाती है, इसलिए उपशान्तकषाय के प्रथम समय में किए गए गुणश्रेणिशीर्ष का जिस समय उदय होता है उसी समय उत्कृष्ट प्रदेशउदय होता है। ऐसा समझना चाहिए।

अथोपशान्तकषाये एकोन्नषष्ट्युदयप्रकृत्यनुभागविभागप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह–

णामधुवोदयबारस सुभगति गोदेक्क विग्घपणगं च ।
केवल णिद्दाजुयलं चेदे परिणामपच्चया होंति ।।३०७।।

नामध्रुवोदयद्वादश सुभगत्रि गोत्रैकं विघ्नपञ्चकं च ।
केवलं निद्रायुगलं चैते परिणामप्रत्यया भवन्ति ।।३०७।।

उपशान्तकषाये नामकर्मणो ध्रुवोदयप्रकृतयस्तैजसकार्मणशरीरवर्णगन्धरसस्पर्श–स्थिरास्थिरशुभाशुभागुरुलघुनिर्माणनामानो द्वादश, सुभगादेययशस्कीर्तय: उच्चैर्गोत्रं पञ्चान्तरायप्रकृतय: केवलज्ञानावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं निद्रा प्रचला चेति पञ्चविंशतिप्रकृतय: परिणामप्रत्यया: आत्मनो विशुद्धिसंक्लेशपरिणामहानिवृद्ध्यनुसारेण एतत्प्रकृत्यनुभागस्य हानिवृद्धिसद्भावात् ।।३०७।।

उपशांतकषाय गुणस्थान में उदयादि अवस्थित गुणश्रेणी और उत्कृष्ट प्रदेशउदय का नक्शा

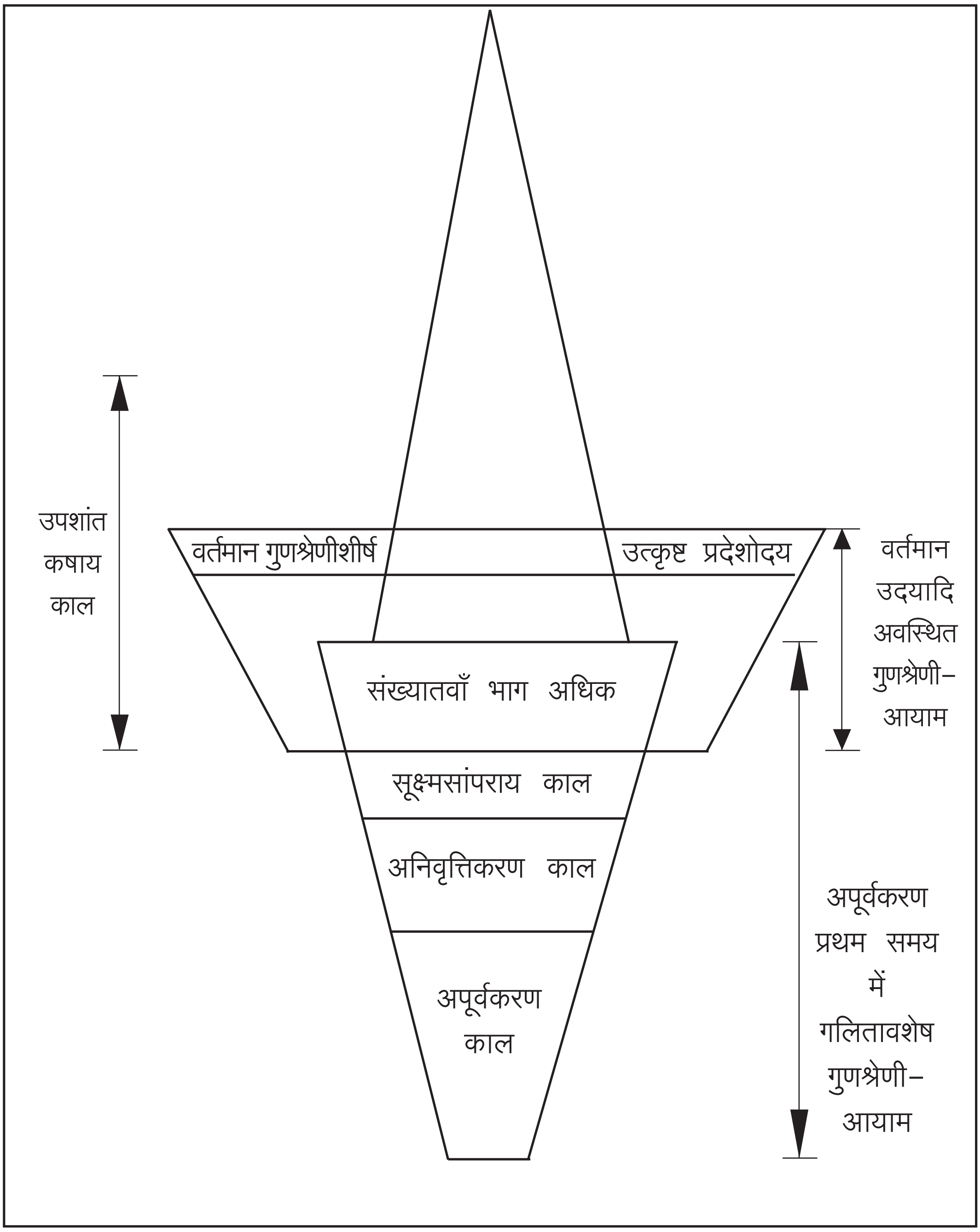

अब उपशान्तकषाय गुणस्थान में उनसठ उदय प्रकृतियों के अनुभाग का विभाग दिखाने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(णामधुवोदयबारस)** नामकर्म की ध्रुवोदयी बारह प्रकृतियाँ **(सुभगति)** सुभगत्रिक अर्थात् सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, **(गोदेक्क)** एक उच्च गोत्र, **(विग्घपणगं)** पाँच अन्तराय, **(केवल)** केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण **(च)** और **(णिद्दाजुयलं)** निद्रायुगल अर्थात् निद्रा, प्रचला **(एदे)** ये प्रकृतियाँ **(परिणामपच्चया)** परिणामप्रत्यय **(होंति)** है।।।३०७।।

टीकार्थ–उपशान्तकषाय गुणस्थान में नामकर्म की तैजस, कार्मणशरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण ये ध्रुवोदयी १२ प्रकृतियाँ, सुभग, आदेय, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र, अन्तराय की पाँच प्रकृतियाँ, केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, निद्रा और प्रचला ये पच्चीस (२५) प्रकृतियाँ परिणामप्रत्यय हैं क्योंकि आत्मा की विशुद्धि और संक्लेश परिणाम की हानि और वृद्धि का अनुसरण करके इन प्रकृतियों के अनुभाग की हानि और वृद्धि संभव है। ।।३०७।।

तेसिं रसवेदमवट्ठाणं भवपच्चया हु सेसाओ ।
चोत्तीसा उवसंते तेसिं तिट्ठाण रसवेद[१] ।।३०८।।

तेषां रसवेदमवस्थानं भवप्रत्यया हि शेषाः ।
चतुस्त्रिंशदुपशान्ते तेषां त्रिस्थानं रसवेदम् ।।३०८।।

तासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनुभागोदयः उपशान्तकषाये प्रथमसमयादारभ्य तत्कालचरमसमयपर्यन्तमवस्थित एव तत्र यथाख्यातविशुद्धिचारित्रस्य प्रतिसमयं हानिवृद्धिभ्यां विनावस्थितत्वेन तत्कर्मप्रकृत्यनुभागोदयस्यापि हानिवृद्धिभ्यां विना अवस्थितत्वसिद्धेः । शेषा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचतुष्टयं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणत्रयं सातासातवेदनीयद्वयं मनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गाद्यसंहननत्रयषट्संस्थानोपघातपरघातो–च्छ्वासविहायोगतिद्वयप्रत्येकत्रसबादरपर्याप्तस्वरद्वयनामप्रकृतयश्चतुर्विंशतिरिति चतुस्त्रिंशत्प्रकृतयो भवप्रत्ययाः ३४ । एतासामनुभागस्य विशुद्धिसंक्लेशपरिणामहानिवृद्धिनिरपेक्षतया विवक्षित–भवाश्रयेणैव षट्स्थानपतितहानिवृद्धिसम्भवात् । अतः कारणादवस्थितविशुद्धिपरिणामेऽप्युप–शान्तकषाये एतच्चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां अनुभागोदयस्त्रिस्थानसम्भवी भवति कदाचिद्धीयते कदाचिद्वर्धते कदाचिद्धानिवृद्धिभ्यां विना एकादृश एवावतिष्ठते इत्यर्थः । एवं चारित्रमोहनीय–स्यैकविंशतिप्रकृतीनामुपशमनविधानमुपशान्तकषायगुणस्थानचरमसमयपर्यन्तं समाप्तम् ।।३०८।।

---

१) जयध. पु. १३, पृ. ३३०–३३३

अन्वयार्थ–(उवसंते) उपशान्तकषाय में **(तेसिं)** उन परिणामप्रत्यय पच्चीस (२५) प्रकृतियों के **(रसवेद)** अनुभाग का उदय **(अवट्ठाणं)** अवस्थित है। **(सेसाओ चोत्तिसा)** शेष रही चौंतीस प्रकृतियाँ **(भवपच्चया हु)** भवप्रत्यय हैं। **(तेसिं)** उनके **(रसवेदं)** अनुभाग का उदय **(तिट्ठाण)**तीन स्थानरूप है। (हानि, वृद्धि और अवस्थित ऐसे तीन रूप है।)

टीकार्थ–उन पच्चीस प्रकृतियों के अनुभाग का उदय उपशान्तकषाय गुणस्थान में प्रथम समय से उस काल के अंतिम समय तक अवस्थित है क्योंकि वहाँ यथाख्यात चारित्र की विशुद्धि प्रत्येक समय में हानि–वृद्धि बिना अवस्थित होने से उन कर्मप्रकृतियों के अनुभाग का उदय भी हानि और वृद्धि बिना अवस्थित है इसकी सिद्धि होती है। शेष रही ज्ञानावरण की मति–श्रुत–अवधि–मनःपर्यय ये चार प्रकृतियाँ, दर्शनावरण की चक्षु–अचक्षु–अवधि ये तीन प्रकृतियाँ, साता वेदनीय, आसाता वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, प्रथम तीन संहनन, छह संस्थान, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, प्रत्येक, त्रस, बादर, पर्याप्त, दो स्वर ये नामकर्म की चौंतीस प्रकृतियाँ भवप्रत्यय हैं क्योंकि विशुद्धि और संक्लेश परिणाम की हानि और वृद्धि की अपेक्षा नहीं करके इन प्रकृतियों के अनुभाग में विवक्षित भव के आश्रय से ही षट्स्थान पतित हानिवृद्धि संभव होती है। इस कारण से उपशान्तकषाय में विशुद्धि परिणाम अवस्थित होने पर भी इन चौंतीस प्रकृतियों के अनुभाग का उदय तीन स्थानरूप संभव होता है। कभी कम होता है, कभी बढता है, कभी हानिवृद्धि बिना एकसम ही रहता है, ऐसा अर्थ है। इस प्रकार चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के उपशमन का विधान उपशान्तकषाय गुणस्थान के अंतिम समय तक समाप्त होता है।।।३०८।।

विशेषार्थ – यहाँ गाथा ३०६ और ३०७ में जो परिणामप्रत्यय और भवप्रत्यय प्रकृतियाँ गिनायी हैं उनमें से जितनी परिणामप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं उनमें से कितनी प्रकृतियों का यह जीव अवस्थित वेदक होता है और किन प्रकृतियों का उदय षड्गुणीहानिवृद्धि को लिए हुए होता है, इसका विशेष स्पष्टीकरण चूर्णिसूत्रों के आधार से जयधवला में विशेषरूप से किया गया है जो इस प्रकार है–

१) केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण के अनुभाग के उदय की अपेक्षा से यह जीव अवस्थित वेदक होता है, क्योंकि यहाँ अवस्थित परिणाम पाये जाते हैं।

२) निद्रा और प्रचला प्रकृतियाँ अध्रुवोदयरूप हैं। इसलिए इनके उदयकाल तक यह जीव अवस्थित वेदक रहता है।

३) पाँच अंतराय, यद्यपि लब्धिकर्मांश प्रकृतियाँ हैं, फिर भी यहाँ अवस्थित परिणाम

होने से यह जीव इनका अवस्थित वेदक ही होता है। क्षयोपशमवश यहाँ इनकी छह वृद्धि और छह हानि नहीं होती है।

४) मतिज्ञानावरण आदि चार ज्ञानावरण और तीन दर्शनावरण ये भी लब्धिकर्मांश प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि क्षयोपशमवश इनकी भी लब्धिकर्मांश संज्ञा है। यत: इनका क्षयोपशम एक समान नहीं रहता इसलिए इनका अनुभागोदय छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थान को लिए हुए होता है। यद्यपि इनकी परिणामप्रत्यय प्रकृतियों में गणना होती है तो भी इनके अनुभागोदय में छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थान सम्भव हैं ऐसा आगम का उपदेश है। उदाहरणार्थ– उपशान्तकषाय में यदि अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम नहीं है तो उसका अवस्थित उदय होता है, क्योंकि वहाँ उसके अनवस्थित उदय का कोई कारण नहीं उपलब्ध होता है। यदि उसका क्षयोपशम है तो उसका अनुभागोदय यथासम्भव छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थित होता है, क्योंकि देशावधि और परमावधि के असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा अवधिज्ञानावरण के अनुभागोदय में उक्त वृद्धि–हानि और अवस्थान सम्भव हैं। हाँ, जिन जीवों के सर्वावधि ही पाई जाती है वहाँ अवधिज्ञानावरण का यह जीव अवस्थित वेदक होता है। इसी प्रकार मन:पर्ययज्ञानावरण की अपेक्षा तथा शेष ज्ञानावरण और दर्शनावरण का आगम के अनुसार कथन करना चाहिए।

५. नामकर्म और गोत्रकर्म की यहाँ जो परिणामप्रत्यय प्रकृतियाँ है उनका भी उपशान्त कषाय जीव अवस्थित वेदक होता है। ११वें गुणस्थान की नामकर्म की उदय प्रकृतियाँ ये हैं– मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, छह संस्थानों में से कोई एक, औदारिक शरीर अंगोपांग, प्रारम्भ के तीन संहननों में से कोई एक संहनन वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्‌वास, दो विहायोगति में से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर और दु:स्वर में से कोई एक, आदेय, यश:कीर्ति और निर्माण। उनमें से तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ–अशुभ, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति और निर्माण, तथा उच्चगोत्र ये सब परिणामप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं। अत: इनका अवस्थित वेदक होता है। शेष जितनी अघाति कर्म सम्बन्धी साता वेदनीय आदि भवप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं उनकी छह वृद्धि, छह हानिरूप तथा अवस्थित वेदक होता है।

अथेदानीमुपशान्तकषायस्य प्रतिपातविधिं प्ररूपयन् गाथाद्वयमाह–

उवसंते पडिवडिदे भवक्खये देवपढमसमयम्हि।
उग्घाडिदाणि सव्वा वि करणाणि हवंति णियमेण।।३०९।।

उपशान्ते प्रतिपतिते भवक्षये देवप्रथमसमये।
उद्घाटितानि सर्वाण्यपि करणानि भवन्ति नियमेन।।३०९।।

उपशान्तकषायपरिणामस्य द्विविधः प्रतिपातः भवक्षयहेतुः उपशमनकालक्षयनिमित्तकश्चेति। तत्र भवक्षये उपशान्तकषायगुणस्थानकाले प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यन्ते यत्र वा तत्र वा आयुःक्षये सति उपशान्तकषायकाले मृत्वा देवासंयतगुणस्थाने प्रतिपतति । एवं प्रतिपतिते तस्मिन्नेवासंयतप्रथमसमये सर्वाण्यपि बन्धनोदीरणासंक्रमणादीनि करणानि नियमेनोद्घाटितानि स्वस्वरूपेण प्रवृत्तानि भवन्ति। यथाख्यातचारित्रविशुद्धिबलेनोपशान्तकषाये उपशमितानां तेषां पुनर्देवासंयते संक्लेशवशेनानुपशमनरूपोद्घाटनसम्भवात् ।।३०९।।

अब उपशान्तकषाय से गिरने की विधि का प्ररूपण दो गाथाओं के द्वारा कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(भवक्खये)** भव का क्षय होने पर **(उवसंते पडिवडिदे)** उपशान्तकषाय से गिरने पर **(देवपढमसमयम्हि)** देवगति में उत्पन्न होता है। वहाँ प्रथम समय में **(णियमेण)** नियम से **(सव्वा वि)** सभी **(करणाणि)** करण **(उग्घाडिदाणि)** उद्घाटित होते हैं। (प्रवृत्त होते हैं)

टीकार्थ–उपशान्तकषाय का प्रतिपात(गिरना) दो प्रकार का है–१) भवक्षयनिमित्तक २)उपशमकालक्षयनिमित्तक। उसमें से भव का क्षय होने पर अर्थात् उपशान्तकषाय गुणस्थान के काल में प्रथम समय से अंतिम समय तक कहीं भी आयु का क्षय होने पर उपशान्तकषाय में मरकर देव में असंयतगुणस्थान में गिरता है। इस प्रकार गिरे हुए उस असंयत के प्रथम समय में बन्ध, उदीरणा, संक्रमण इत्यादि सभी करण नियम से उद्घाटित होते हैं अर्थात् अपने-अपने रूप से प्रवृत्त होते हैं क्योंकि यथाख्यातचारित्र की विशुद्धि के बल से उपशान्त कषाय में उपशमित हुए उनका पुनः देव असंयत में संक्लेश परिणाम के कारण उपशमन का अभावरूप उद्घाटन होता है।।।३०९।।

विशेषार्थ– जो जीव ग्यारहवें गुणस्थान से किसी भी समय आयु का अन्त होने पर मरकर देव होता है, उसमें जन्म के प्रथम समय से ही नियम से चौथा गुणस्थान होता है, अतः बन्धकरण आदि आठ करणों की व्युच्छित्ति होकर जो चारित्रमोहनीय का सर्वोपशम

हुआ था उसका यहाँ उपशम हो जाने से बन्ध करण आदि सभी करण उद्घाटित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जिन कर्मों का देव अविरत सम्यग्दृष्टि के बन्ध सम्भव है उनका बन्ध होने लगता है, विवक्षित कर्मों में से जिनकी उदीरणा सम्भव है उनकी उदीरणा होने लगती हैं। इसी प्रकार अपकर्षण, उत्कर्षण, अप्रशस्त, उपशम आदि के विषय में भी जान लेना चाहिए।

सोदीरणाण दव्वं देदि हु उदयावलिम्हि इयरं तु।
उदयावलिबाहिरगोउंछाये देदि सेढीये[1] ।।३१०।।

सोदीरणानां द्रव्यं ददाति ह्युदयावलावितरत्तु ।
उदयावलिबाह्यगोपुच्छायां ददाति श्रेण्याम् ।।३१०।।

भवक्षयादुपशान्तकषायगुणस्थानात्प्रतिपतितदेवासंयतः प्रथमसमये उदयवतामप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभानामन्यतमस्य कषायस्य पुंवेदहास्यरतीनां भयजुगुप्सयोर्यथासम्भवमन्यतरस्य च द्रव्यमपकृष्य [स a १२- ७।ओ] इदं पुनरसंख्यातलोकेन खण्डयित्वा एकभागमुदयावल्यां दत्त्वा [स a १२- ७।ओ ≡ a] तद्बहुभाग मुदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्यान्तरायामे द्वितीयस्थितौ च 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे' इत्यादिविधानेन विशेषहीनक्रमेण ददाति। उदयरहितानां नपुंसकवेदादीनां मोहप्रकृतीनां द्रव्यमपकृष्य [स a १२- ७।ओ] उदयावलिबाह्यनिषेकेषु अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन विशेषहीनक्रमेण प्रतिनिषेकं ददाति। अनेन विधानेन चारित्रमोहस्यान्तरं पूरयतीत्यर्थः ।।३१०।।

अन्वयार्थ– (सोदीरणाण दव्वं) उदीरणासहित (उदय सहित) प्रकृतियों का द्रव्य **(उदयावलिम्हि)** उदयावलि में **(देदि हु)** देता है। **(तु)** परन्तु **(इयरं)** इतर अनुदय प्रकृतियों का द्रव्य और उदय प्रकृतियों का शेष रहा द्रव्य **(उदयावलिबाहिरगोउंछाये)** उदयावलि के बाहर गोपुच्छाकार **(सेढीये)** श्रेणिरूप से **(देदि)** देता है।।३१०।।

टीकार्थ– भव का क्षय होने से उपशान्तकषाय गुणस्थान से गिरा हुआ देव असंयत प्रथम समय में उदययुक्त अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान संज्वलन क्रोध, मान, माया और

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ४६

लोभ कषाय में से कोई भी एक कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति और जुगुप्सा में से यथासम्भव जिसका उदय हो उस प्रकृति के द्रव्य का अपकर्षण करके [स a १२– ७।ओ] (मोहनीय का द्रव्य / अपकर्षण भागहार) इसको पुन: असंख्यात लोक से ≡ a खंडित करके एक भाग [स a १२– ७।ओ ≡ a] उदयावलि में देकर शेष रहा बहुभाग उदयावलि के बाहर प्रथम समय से अन्तरायाम में और द्वितीय स्थिति में **'दिवड्ढगुणहानि भाजिदे पढमा'** 'सर्वधन में डेढ़ गुणहानि से भाग देने पर प्रथम निषेक आता है ' इत्यादि विधान से विशेषहीन क्रम से देता है। उदयरहित नपुंसकवेदादिक मोह प्रकृति के द्रव्य का अपकर्षण करके [स a १२– ७।ओ] उदयावलि के बाहर के निषेकों में अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में पूर्व में कहे गये विधान से विशेष–हीनक्रम से प्रत्येक निषेक में देता है। इस क्रम से चारित्रमोहनीय का अन्तर भरता है यह अर्थ है। ।।३१०।।

अथोपशमनाद्धाक्षयनिबन्धनं प्रतिपातं प्रारभमाण इदमाह–

अद्धाखए पडंतो अधापवत्तो त्ति पडदि हु कमेण।
सुज्झंतो आरोहदि पडदि हु सो संकिलिस्संतो[1] ।।३११।।

अद्धाक्षये पतन् अध:प्रवृत्त इति पतति हि क्रमेण ।
शुद्ध्यन्नारोहति पतति स संक्लिश्यन् ।।३११।।

आयुषि सत्यद्धाक्षयेऽन्तर्मुहूर्तमात्रोपशान्तकषायगुणस्थानकालावसाने सति प्रतिपतन् स उपशान्तकषाय: प्रथमं नियमेन सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने प्रतिपतति । ततोऽनन्तरमनिवृत्तिकरणगुणस्थाने प्रतिपतति । तदन्वपूर्वकरणगुणस्थाने प्रतिपतति । तत: पश्चादप्रमत्तगुणस्थाने अध:प्रवृत्तकरणपरिणामे प्रतिपतति। एवमध:प्रवृत्तकरणपर्यन्तमनेनैव क्रमेण प्रतिपातो नान्यथेति निश्चेतव्यम् । य: पुन: शुद्ध्यन् वर्धमानविशुद्धिपरिणाम: उत्तरोत्तरगुणस्थानान्यारोहति स एव कषायोदयवशात् विशुद्धिहान्या संक्लिश्यमान: अधोऽधो गुणस्थानेषु प्रतिपतति न पुनरुपशान्तकषायस्यैवंविधारोहणप्रतिपातौ सम्भवतस्तस्य स्वगुणस्थानकालचरमसमयपर्यन्तमवस्थितपरिणामत्वेन विशुद्धिसंक्लेशयो–र्हानिवृद्धिपरावृत्त्यसम्भवात् । ननूपशान्तकषायस्यावस्थितविशुद्धिपरिणामत्वात् कथं प्रतिपात: सम्भवतीति नाशङ्कनीयं, उपशान्तकषायगुणस्थानकालस्यान्तर्मुहूर्तात्परं नियमेन प्रक्षयादुपशमन–कालक्षयहेतुकप्रतिपातस्य सम्भवाविरोधात् ।अतएवायं प्रतिपातोऽद्धाक्षयहेतुक एव न विशुद्धि–परिणामहानिनिबन्धनो नाप्यन्यनिमित्तक इति ।।३११।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ४७

अब उपशमनकाल के क्षय के निमित्त से होने वाले प्रतिपात को प्रारंभ करते हुए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(अद्धाखए पडंतो)** उपशमनकाल के क्षय से गिरने वाला **(कमेण)** गुणस्थान क्रम से **(अद्धापवत्तो त्ति)** अध:प्रवृत्तकरण पर्यन्त **(पडदि)** गिरता है। **(सुज्झंतो)** विशुद्ध होता हुआ **(आरोहदि)** चढता है। **(सो)** वह जीव **(संकिलिस्संतो)** संक्लेश परिणाम से युक्त होकर **(पडदि हु)** गिरता है।। ३११।।

टीकार्थ–आयु रहते हुए अन्तर्मुहूर्त मात्र उपशान्तकषाय के गुणस्थान का काल समाप्त होने पर गिरने वाला उपशान्तकषाय जीव पहले नियम से सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में गिरता है। उसके बाद अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में गिरता है। उसके पश्चात् अपूर्वकरण गुणस्थान में गिरता है। उसके बाद अप्रमत्तगुणस्थान में अध:प्रवृत्तकरण परिणाम में गिरता है। इस प्रकार अध:प्रवृत्तकरण पर्यन्त इसी क्रम से प्रतिपात है, दूसरे प्रकार से नहीं ऐसा निश्चय करना चाहिए। जो पुन: शुद्ध होता हुआ विशुद्ध परिणाम से बढ़ता हुआ ऊपर–ऊपर के गुणस्थान में चढ़ता है वही जीव कषाय के उदय से विशुद्धि की हानि से संक्लेशयुक्त होकर नीचे–नीचे के गुणस्थानों में गिरता है। पुन: उपशान्तकषाय जीव का इस प्रकार चढ़ना–उतरना संभव नहीं है क्योंकि अपने गुणस्थानकाल के अंतिम समय पर्यन्त अवस्थित परिणाम होने से विशुद्धि और संक्लेश परिणाम में हानि और वृद्धि का परिवर्तन नहीं होता है।

शंका– उपशान्तकषाय के अवस्थित विशुद्ध परिणाम होने से प्रतिपात कैसे संभव है?

समाधान– ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपशान्तकषाय गुणस्थान के काल के बाद नियम से क्षय होने से उपशमनकाल के क्षय के निमित्त से प्रतिपात होने में विरोध नहीं है। इसीलिए यह प्रतिपात कालक्षय निमित्तक है। विशुद्धपरिणाम की हानि के निमित्त से अथवा अन्य किसी भी निमित्त से नहीं होता है।।३११।।

विशेषार्थ– ग्यारहवाँ गुणस्थानवाला जीव एक तो भव का अन्त होने से गिरता है और दूसरे सर्वोपशम का जो अन्तर्मुहूर्त काल है उसका अन्त होने से गिरता है। ग्यारहवें गुणस्थान से गिरने का अन्य कोई कारण नहीं है। ऐसा यहाँ स्पष्ट समझना चाहिए। ऐसा जीव सातवें गुणस्थान तक क्रम से उतरता है उसके बाद परिणामों के अनुसार गिरना–चढ़ना होता है। इसे इस टीका में बतलाया है।

अथ सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने प्रतिपतितस्य क्रियाविशेषप्रतिपादनार्थं गाथाचतुष्टयमाह–

सुहुमप्पविट्ठसमये णट्ठुवसामण तिलोहगुणसेढी ।
सुहुमद्धादो अहिया अवट्ठिदा मोहगुणसेढी ।।३१२।।

सूक्ष्मप्रविष्टसमये नष्टोपशमनत्रिलोभगुणश्रेणी ।
सूक्ष्माद्धातोऽधिकाऽवस्थिता मोहगुणश्रेणी[1] ।।३१२।।

सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टसमये तद्गुणस्थानप्रथमसमये विनष्टोपशमनकरणानां त्रयाणां अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनलोभानां गुणश्रेणि: प्रारभ्यते । तद्गुणश्रेण्यायामश्चारोहक-सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानकालादावलिमात्रेणाभ्यधिक: [१— / २] एवं मोहनीयस्य गुणश्रेणिरस्मिन्नवसरे अवस्थितायामैव ग्राह्या ।।३१२।।

अब सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में गिरने की क्रियाविशेष का प्ररूपण करने के लिए चार गाथाएँ कहते हैं-

अन्वयार्थ-(सुहुमप्पविट्ठसमये) सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में प्रविष्ट हुए समय में **(णट्ठुवसामण तिलोहगुणसेढी)** जिनका उपशमकरण नष्ट हुआ है ऐसी तीन लोभ की गुणश्रेणियाँ होती हैं। **(सुहुमद्धादो अहिया)** सूक्ष्मसाम्पराय के काल से अधिक आयामवाली **(अवट्ठिदा मोहगुणसेढी)** मोह की अवस्थित गुणश्रेणि होती है।।३१२।।

टीकार्थ- सूक्ष्मसाम्पराय में प्रविष्ट हुए समय में अर्थात् उस गुणस्थान के प्रथम समय में जिनका उपशमनकरण नष्ट हुआ है ऐसी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन-इन तीन लोभ की गुणश्रेणि शुरु होती है और उस गुणश्रेणि का आयाम चढ़ने वाले सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के काल से आवलिमात्र से अधिक है [१— / २९]। (एक अधिक अर्थात् एक आवलि से अधिक समझना चाहिए।) इस समय मोहनीय की गुणश्रेणि अवस्थित आयामवाली ग्रहण करनी चाहिए।।३१२।।

उदयाणं उदयादो सेसाणं उदयबाहिरे देदि ।
छण्हं बाहिरसेसेऽपुव्वतिगादहियणिक्खेओ[2] ।।३१३।।

उदयानामुदयत: शेषाणामुदयबाह्ये ददाति ।
षण्णां बाह्यशेषेऽपूर्वत्रिकादधिकनिक्षेप: ।।३१३।।

तत्र तावदुदयवत: संज्वलनलोभस्य द्वितीयस्थितौ स्थितं कृष्टिगतं द्रव्यमपकृष्य पल्यासंख्यातभागखण्डितैकभागमात्रमुदयसमयादारभ्य गुणश्रेण्यायामचरमसमयपर्यन्तम-संख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य पुनस्तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेणीशीर्षस्योपर्यन्तरायाममुल्लङ्घ्य द्वितीयस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे' त्यादिना विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । उदयरहितयो-रप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभयोर्द्वितीयस्थितौ स्थितं द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य

१) जयध. पु. १४, पृ. ४८
२) जयध. पु. १४, पृ. ४९ ते ५१

गुणश्रेण्यायामचरमसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण तदुपर्यन्तरायाममुल्लङ्घ्य द्वितीयस्थितौ पूर्ववद्विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । एवमुत्तरत्राप्युदयानुदयवतोर्गुणश्रेणिनिक्षेपक्रमो वेदितव्यः। पुनः षण्णामायुर्मोहवर्जितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां द्रव्यमपकृष्य पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागं पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिप्य बहुभागं गुणश्रेण्यायामे अवरोहकसूक्ष्मसाम्परायानिवृत्त्यपूर्वकरणकालेभ्यो विशेषाधिकमात्रे गलितावशेषे असंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य अवशिष्टबहुभागमुपरितनस्थितौ पूर्ववद्विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्।

अन्वयार्थ–(उदयाणं) उदययुक्त प्रकृतियों का द्रव्य **(उदयादो)** उदयसमय से और **(सेसाणं)** शेष प्रकृतियों का द्रव्य **(उदयबाहिरे)** उदयावलि के बाहर **(देदि)** देता है। **(छण्हं)** छह कर्मों का **(बाहिरसेसे)** उदयावलि के बाहर **(अपुव्वतिगादहियणिक्खेओ)** अपूर्वत्रिक अर्थात् अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसांपराय इन तीन कालों से अधिक गुणश्रेणि निक्षेप होता है।।३१३।।

टीकार्थ– वहाँ प्रथम उदयसहित संज्वलन लोभ की द्वितीय स्थिति में स्थित कृष्टिगत द्रव्य का अपकर्षण करके पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित एक भाग का उदय से आरम्भ करके गुणश्रेणि आयाम के अंतिम समय पर्यन्त असंख्यातगुणित क्रम से निक्षेपण करे और उसके बहुभाग द्रव्य का गुणश्रेणिशीर्ष के ऊपर अन्तरायाम का उल्लंघन करके द्वितीय स्थिति में **'दिवड्ढगुणहाणि भाजिदे'** इत्यादि विधान से विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करना चाहिए।

उदयरहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ की द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावलि के बाहर प्रथम समय से गुणश्रेणिआयाम के अंतिम समय तक असंख्यातगुणित क्रम से और उसके ऊपर अन्तरायाम का उल्लंघन करके द्वितीय स्थिति में पूर्व के समान विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करना चाहिए। इसी प्रकार आगे भी उदयवान् और अनुदयवान् प्रकृतियों की गुणश्रेणि में निक्षेप क्रम जानना चाहिए। पुनः आयु और मोह छोड़कर ज्ञानावरणादि छह कर्मों के द्रव्य का अपकर्षण करके उसको पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर उसका एकभाग पुनः पल्य के असंख्यातवें भाग से खंडित करना चाहिए और उसके एक भाग का उदयावलि में निक्षेपण करके बहुभाग का उतरने वाले के सूक्ष्मसांपराय, अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरणकाल से विशेष अधिक प्रमाण गलितावशेष गुणश्रेणि–आयाम में असंख्यात गुणितक्रम से निक्षेपण करना चाहिए और शेष रहे बहुभाग का उपरितन स्थिति में पूर्व के समान विशेषहीन क्रम से निक्षेपण करना चाहिए। ।।३१३।।

विशेषार्थ– उपशान्तकषाय से गिरकर और सूक्ष्मसांपराय में आकर उसके प्रथम समय में किसकी किस प्रकार की गुणश्रेणि रचना होती है, इसे स्पष्ट करते हुए श्री जयधवला में बतलाया है कि–

अवरोहक सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में गुणश्रेणी रचना

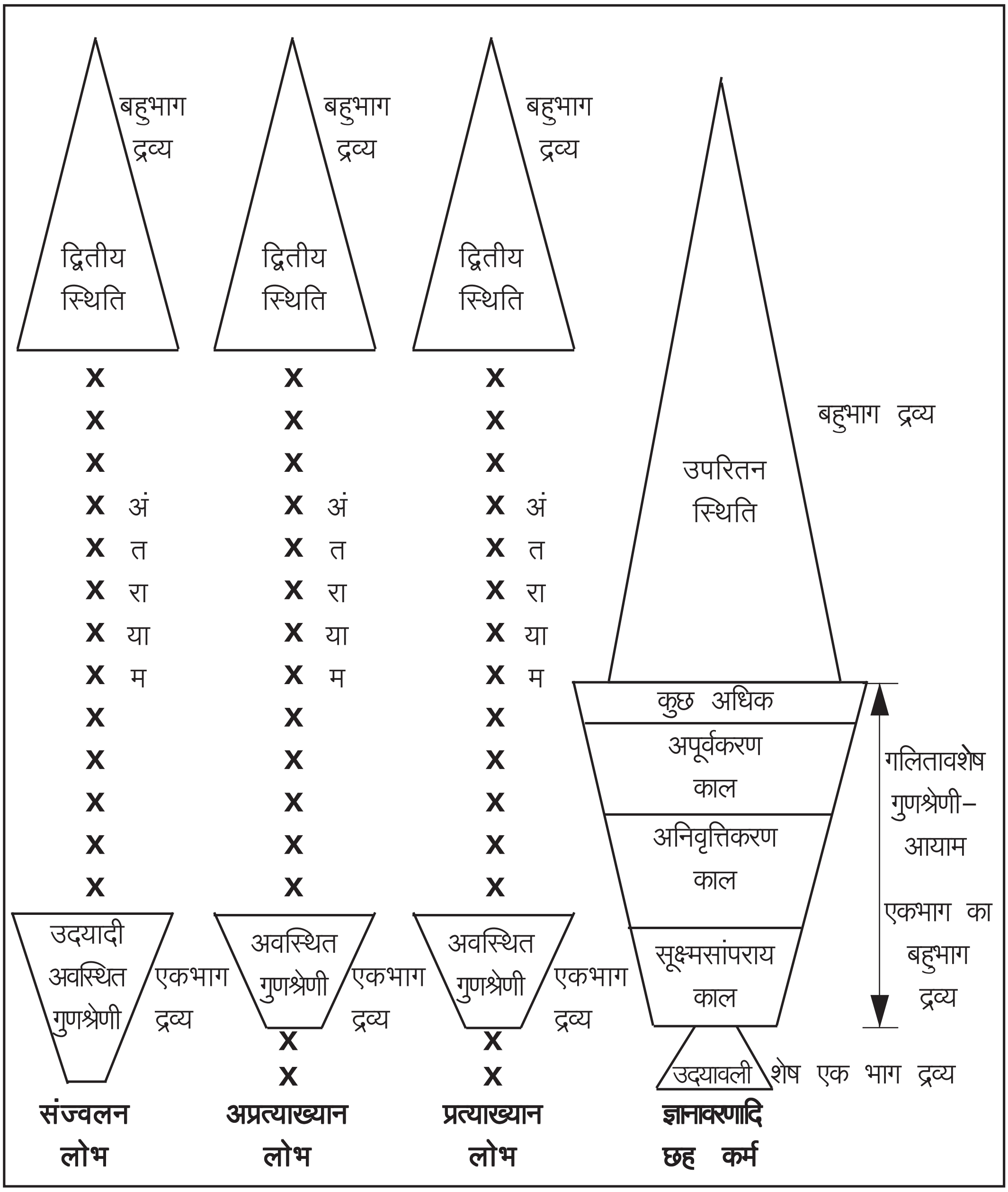

संज्वलन मायादि कषायों का उदय प्रारंभ होने पर इसी प्रकार छह, नौ और बारह कषायों की गुणश्रेणि रचना और ज्ञानावरणादि कर्मों की गुणश्रेणी रचना जाननी चाहिए।

१) संज्वलन लोभ की उदयादि गुणश्रेणि रचना होती है। सो लोभ के वेदक कालप्रमाण जो कृष्टि है सो कुछ अधिक प्रमाण को लिए हुए इसकी गुणश्रेणि रचना होती है। यहाँ कुछ अधिक से एक आवलि काल लेना चाहिए। यह अवस्थित गुणश्रेणि है।

२) अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान इन दो लोभों की भी इतने कालप्रमाण गुणश्रेणि रचना होती है किन्तु उसका निक्षेप उदयावलि बाह्य होता है। यह भी अवस्थित गुणश्रेणि है।

३) आयुकर्म को छोड़कर शेष कर्मों का गुणश्रेणि निक्षेप है तथा इनकी गलितावशेष गुणश्रेणि रचना होती है। इसलिए प्रतिसमय एक-एक निषेक के गलित होने पर जितनी गुणश्रेणि शेष रहती है उसी में निक्षेप होता है।

४) ग्यारहवें गुणस्थान से पतन होने पर सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में जो तीन लोभों का प्रशस्त उपशमन द्वारा उपशम हुआ था उनकी यहाँ प्रशस्त उपशामना समाप्त हो जाती है, इसलिए यहाँ इनकी अपकर्षण आदि क्रिया के होने में कोई बाधा नहीं आती।

ओदरसुहुमादीए बंधो अंतोमुहुत्त बत्तीसं ।
अडदालं च मुहुत्ता तिघादिणामदुगवेयणीयाणं[1] ।।३१४।।

अवतरसूक्ष्मादिके बन्धोऽन्तर्मुहूर्तं द्वात्रिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशच्च मुहूर्तास्त्रिघातिनामद्विकवेदनीयानाम् ।।३१४।।

उपशान्तकषायगुणस्थानादवतीर्णसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये घातित्रयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः। नामगोत्रयोर्द्वात्रिंशन्मुहूर्तमात्रः। वेदनीयस्याष्टचत्वारिंशन्मुहूर्तमात्रः । आरोहणे सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये स्थितिबन्धात् अवरोहणे तत्प्रथमसमये स्थितिबन्धो द्विगुण इति सिद्धान्ते प्रतिपादितत्वात्। एवमवरोहकसूक्ष्मसाम्परायस्य प्रथमसमये क्रियाविशेषः प्रतिपादितः ।।३१४।।

अन्वयार्थ-(ओदरसुहुमादिए) उतरने वाले सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में **(तिघादिणामदुगवेयणीयाणं)** तीन घाति, नामद्विक (नाम और गोत्र) और वेदनीय कर्मों का (क्रम से) **(अंतोमुहुत्तं अडदालं च मुहुत्ता)** अन्तर्मुहूर्त, बत्तीस मुहूर्त और अड़तालीस मुहूर्त **(बंधो)** स्थितिबंध होता है।।३१४।।

टीकार्थ- उपशान्तकषाय गुणस्थान से उतरे हुए सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में तीन घातियों का स्थितिबन्ध अन्तमुहूर्त प्रमाण होता है। नाम और गोत्र का बत्तीस मुहूर्त और वेदनीय

१) जयध. पु. १४, पृ. ५२

का अड़तालीस मुहूर्त होता है। चढ़ते समय सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में होने वाले स्थितिबंध से उतरते समय उसके प्रथम समय में स्थितिबंध दुगुणा होता है। ऐसा सिद्धान्त में कहा है। इस प्रकार उतरने वाले सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में क्रियाविशेष कहा है। ।।३१४।।

गुणसेढी सत्थेदररसबंधो उवसमादु विवरीयं ।
पढमुदओ किट्टीणमसंखाभागा विसेसअहियकमा ।।३१५।।

गुणश्रेणी शस्तेतररसबन्ध उपशमाद् विपरीतम् ।
प्रथमोदयः कृष्टीनामसंख्यभागा विशेषाधिकक्रमाः ।।३१५।।

अवरोहकसूक्ष्मसाम्परायस्य द्वितीयादिसमयेषु प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुण-हीनं द्रव्यमपकृष्य मोहस्येतरकर्मणां च गुणश्रेणीं करोति । गुणश्रेणिनिर्जराकारणस्यावरोहणे विशुद्धिपरिणामस्य प्रतिसमयमनन्तगुणहीनत्वसम्भवात्। सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां ज्ञानावरणाद्य-प्रशस्तप्रकृतीनां चानुभागबंधस्तत्प्रथमसमयानुभागबन्धाद्यथासंख्यमनन्तगुणहीनोऽनन्तगुणश्च प्रतिसमयं वेदितव्यः । तत्कारणस्य विशुद्धिसंक्लेशस्य चानन्तगुणहानिवृद्धिसम्भवात् । अत एवोपशमादुपशम-श्रेण्यारोहणात्तदवरोहणे विपरीतमित्युक्तम् । स्थितिबन्धस्तु अन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं तादृश एव। पुनरन्तर्मुहूर्तेऽन्तमुहूर्ते आरोहकस्थितिबन्धात् द्विगुणं वर्धते तच्चरमसमयं यावत्। अवरोहकसूक्ष्म-साम्परायप्रथमसमये उदयनिषेककृष्टीनां पल्यासंख्यातभागखण्डितबहुभागमात्र्यो मध्यमकृष्टयः 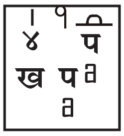

उदयमागच्छन्ति । तदेकभागस्य पुनरसंख्यातभागाः द्विपञ्चमभागमात्र्यः कृष्टय आदिकृष्टेरारभ्यानुदयाः 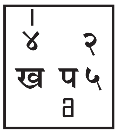

उपरि च तत्त्रिपञ्चमभागमात्र्यः कृष्टयोऽग्रकृष्टे-रारभ्यानुदयाः 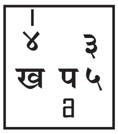

तासामाद्यन्तकृष्टीनां स्वस्वरूपं परित्यज्य मध्यमकृष्टिस्वरूपेण परिणम्योदयो भवतीत्यर्थः। पुनर्द्वितीयसमये आदिकृष्टीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रीः 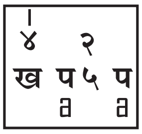

कृष्टीस्त्यक्त्वाग्रकृष्टीनां पल्यासंख्यातै-कभागमात्रीः कृष्टीः 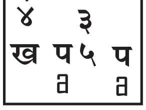

गृहीत्वा मध्यमकृष्टय उदयमागच्छन्ति। तत्र ऋणात् 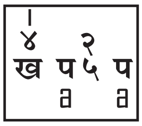

अस्माद्धनमिदं 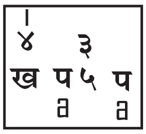

अभ्यधिकमिति धनर्णयोर्विवरे शेष 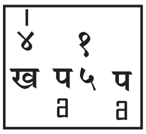

प्रमाणेन प्रथमसमयोदय-कृष्टिभ्यो द्वितीयसमयोदयकृष्टयो विशेषाधिकाः 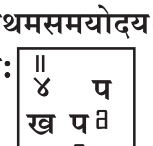

एवं तृतीयादिसमयेष्वपि तच्चरमसमय पर्यन्तेषु विशेषाधिकाः कृष्टयः उदयमागच्छन्ति। अत एव प्रतिसमयमनन्तगुणानु-भागोदयः कृष्टीनां ज्ञातव्यः । एवमनेन क्रमेण सूक्ष्मसाम्परायकालो गतः।।३१५।।

अन्वयार्थ– उतरने वाले सूक्ष्मसांपराय के द्वितीयादि समयों में **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि

(गुणश्रेणि के लिए अपकृष्ट द्रव्य)और **(सत्थेदररसबंधो)** प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागबन्ध **(उवसमादु)** उपशम से (चढ़ने वाले से) **(विवरीयं)** विपरीत होता है। **(किट्टीणं)** कृष्टियों का **(पढमुदओ)** प्रथम समय में उदय **(असंखभागा)** असंख्यात बहुभागमात्र है। (और द्वितीयादि समयों में) **(विसेसअहियकमा)** विशेष अधिक क्रम से उदय होता है।।३१५।।

टीकार्थ–उतरने वाले सूक्ष्मसांपराय के द्वितीयादि समयों में प्रथम समय के अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यातगुणे हीन द्रव्य का अपकर्षण करके मोह और अन्य कर्मों की गुणश्रेणि करता है क्योंकि उतरते समय गुणश्रेणि निर्जरा में कारणभूत विशुद्ध परिणामों की अनन्तगुणी हानि होती है। प्रत्येक समय में सातादि प्रकृतियों का अनुभागबन्ध प्रथम समय के अनुभागबन्ध से अनन्तगुणा हीन होता है और ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग बन्ध प्रथम समय के अनुभागबन्ध से अनन्तगुणा होता है ऐसा जानना चाहिए क्योंकि उसमें कारणभूत विशुद्ध परिणामों की अनन्तगुणहानि और संक्लेश परिणामों की अनन्तगुणी वृद्धि संभव है। इसीलिए उपशमश्रेणि चढ़ने की अपेक्षा उतरने पर विपरीत होता है ऐसा कहा है। स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त उतना ही (पूर्वगाथा में कहे समान ही) होता है। पुन: अंतिम समय पर्यन्त एक–एक अन्तर्मुहूर्त में चढ़ने वाले के स्थितिबन्ध से दुगुना बढ़ता है। उतरने वाले सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में उदयनिषेक कृष्टियों में से पल्य के१असंख्यातवें भाग से खण्डित करके आयी हुई बहुभागमात्र मध्यम कृष्टियाँ [। ४ प / ख प a / a] उदय में आती हैं। उसमें से एकभाग का असंख्यातवाँ भाग अर्थात् दो पंचमांश भाग मात्र प्रथम कृष्टि से लेकर कृष्टियाँ उदयरूप [। ४ २ / ख प ५ / a] हैं और ऊपर तीन पंचमांश भागमात्र अग्र कृष्टि से लेकर कृष्टियाँ [। ४ ३ / ख प ५ / a] अनुदयरूप हैं। उन प्रारंभ की और अंतिम कृष्टियों का स्वस्वरूप को छोड़कर मध्यमकृष्टिरूप से परिणमन होकर उदय होता है। पुन: दूसरे समय में आदि कृष्टियों में से पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र कृष्टियाँ [। ४ २ / ख प ५ प / a a] (पहले समय में जो नीचे की अनुदयकृष्टियाँ थी उसमें पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग दिया) छोड़कर के पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र कृष्टियाँ [। ४ ३ / ख प ५ प / a a] (जो ऊपर की अनुदयकृष्टियाँ थी उसमें पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग दिया) ग्रहण करके मध्यम कृष्टियाँ उदय में आती हैं। वहाँ इस [। ४ २ / ख प ५ प / a a] ऋण से यह धन [। ४ ३ / ख प ५ प / a a] अधिक है। धन में से ऋण कम करने पर

शेष रहे हुए 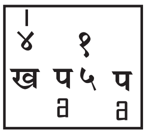 इस प्रमाण से प्रथम समय की उदय कृष्टियों से द्वितीय समय की उदयकृष्टियाँ विशेष अधिक हैं। (विशेष अधिक के लिए संदृष्टि के ऊपर पुनः एक खड़ी रेखा की है।) इस प्रकार तृतीयादि समयों में भी उसके अंतिम समय–पर्यन्त विशेष अधिक कृष्टियाँ उदय में आती हैं। इसलिए प्रत्येक समय में कृष्टियों का अनन्तगुणा अनुभागोदय जानना चाहिए। इस प्रकार इस क्रम से सूक्ष्मसाम्परायकाल व्यतीत हुआ।।३१५।।

विशेषार्थ– जो जीव उपशान्तकषाय गुणस्थान से च्युत होकर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान को प्राप्त होता है उसके संक्लेश में वृद्धि होने के कारण अप्रशस्त पाँच ज्ञानावरणादि कर्मों का प्रथमादि समयों से द्वितीयादि समयों में अनन्तगुणा अनुभागबन्ध होता है। यह व्यवस्था सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय तक जाननी चाहिए तथा इस गुणस्थान के काल में संख्यात हजार स्थितिबंध की अपेक्षा यहाँ दूना स्थितिबंध जानना चाहिए। इन विशेषताओं के अतिरिक्त यहाँ ये आवश्यक होते हैं –

१) लोभवेदककाल अर्थात् सूक्ष्म और बादर लोभवेदक काल के प्रथम त्रिभाग में अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय काल के भीतर सभी कृष्टियों में से असंख्यात बहुभागप्रमाण कृष्टियों की उदीरणा होती है। पहले कृष्टिकरण के काल में जो कृष्टियाँ की गई थी उनमें से अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भाग को छोड़कर मध्यम कृष्टिरूप से असंख्यातवाँ भाग तब उदीरित होता है यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

२) दूसरी विशेषता यह है कि उतरते समय सूक्ष्मसांपराय जीव प्रथम समय में स्तोक कृष्टियों का वेदन करता है। दूसरे समय में असंख्यातवें भाग अधिक कृष्टियों का वेदन करता है। ऐसा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के अंतिम समय तक जानना चाहिए।

३) सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में चढ़ते समय विशुद्धि के कारण जैसे विशेष हानिरूप से कृष्टियों का वेदन करता है वैसे ही उतरते समय संक्लेश के कारण असंख्यात भागवृद्धि रूप से कृष्टियों का वेदन करता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। यह सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय तक जानना चाहिए।

अंकसंदृष्टि– माना कि कृष्टियाँ १000 हैं । उसको पाँच का भाग देने पर दो सौ (२००) एक भाग आया और बहुभाग ८००(१000–२००=८००) आया। मध्य की आठसौ (८००) कृष्टियाँ उदयरूप जानना चाहिए। शेष रहा एक भागरूप २०० को ५ से भाग देनेपर चालीस (४०) आया। वह एक भाग अलग रखा। बहुभाग एक सौ साठ (१६०) के दो समान भाग किये उसका एक

भाग अस्सी (८०) कृष्टियाँ जघन्य कृष्टि से नीचे की कृष्टियाँ अनुदयरूप हैं। दूसरे अस्सी (८०) रूप एक भाग में अलग रखा हुआ एक भाग चालीस (४०) मिलाने पर एक सौ बीस (१२०) कृष्टियाँ अंतकृष्टि से ऊपर की कृष्टियाँ अनुदयरूप हैं।

पुन: दूसरे समय में पहले समय में जो ऊपर की अनुदयरूप एक सौ बीस (१२०) कृष्टियाँ थी। उस में पाँच का भाग देने पर चौवीस (२४) आया। इतनी ऊपर की नवीन उदयरूप कृष्टियाँ हुई और नीचे की अस्सी(८०)कृष्टियाँ थी उसमें पाँच से भाग देने पर सोलह(१६) आया। इतनी नवीन अनुदयरूप कृष्टियाँ हुई। इसप्रकार चौवीस(२४) नवीन उदयरूप कृष्टियों में सोलह (१६) नवीन अनुदयरूप कृष्टियाँ कम करनेपर आठ (८) कृष्टियाँ नवीन उदयरूप बढ़ गयी इसलिए उदयरूप कृष्टियाँ आठसौ आठ (८०८) हुई और अनुदयरूप कृष्टियाँ एक सौ बानवे (१९२)हुई।

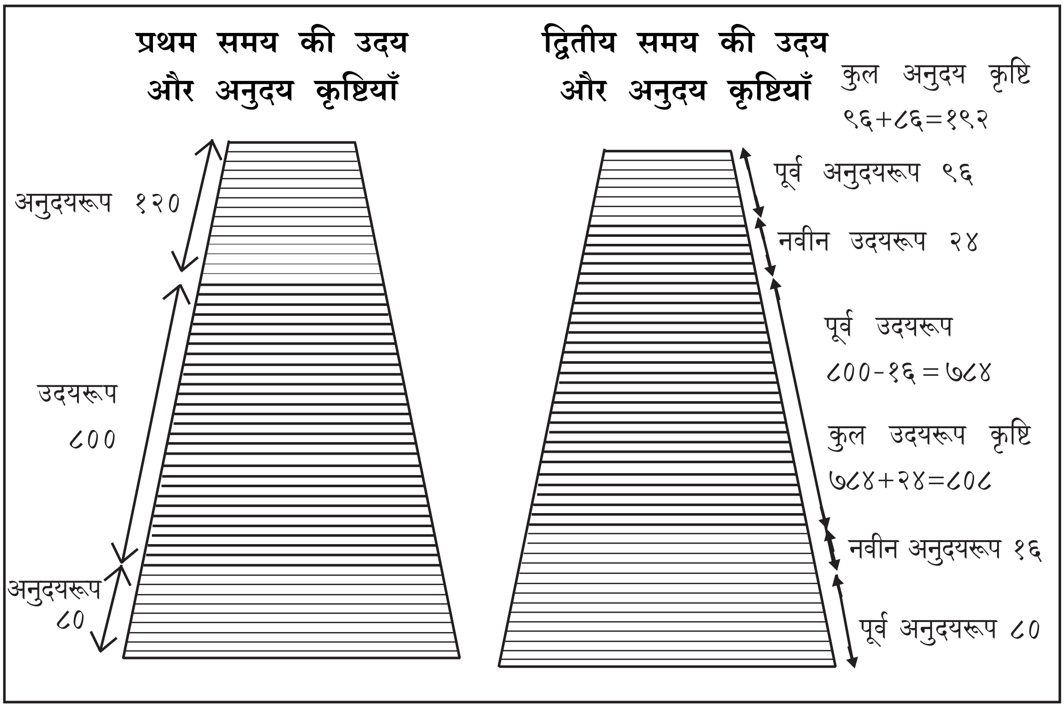

इसी प्रकार तृतीयादि समयों में ऊपर की अधिक अनुभागवाली अनुदयकृष्टियों का उदय होने लगता है और नीचे की कम अनुभागवाली उदयरूप कृष्टियों का अनुदय होने लगता है। संक्लेश की वृद्धि और विशुद्धि की हानि होने से ऐसा होता है।

अथावरोहकस्यानिवृत्तिकरणबादरसाम्परायगुणस्थाने क्रियाविशेषं प्रदर्शयन् गाथाद्वयमाह–

बादरपढमे किट्टी मोहस्स य आणुपुव्विसंकमणं ।
णट्ठं ण च उच्छिट्ठं फड्ढयलोहं तु वेदयदि[१] ।।३१६।।

बादरप्रथमे कृष्टिर्मोहस्य चानुपूर्विसंक्रमणम् ।
नष्टं न चोच्छिष्टं स्पर्धकलोभं तु वेदयति ।।३१६।।

अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये सूक्ष्मकृष्टयः उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकान् वर्जयित्वा सर्वाः स्वरूपेण विनष्टाः सूक्ष्मकृष्टिशक्तितोऽनन्तगुणशक्तियुक्तस्पर्धकस्वरूपेणैकस्मिन् समये परिणमिता इत्यर्थः । उच्छिष्टावलिमात्रनिषेककृष्टयस्तु प्रतिसमयमेकैकनिषेकप्रमाणेन उदयमानस्पर्धकनिषेकेषु स्थितोक्तसंक्रमेण तद्रूपतया परिणम्योदेष्यन्ति । तस्मिन्नेव प्रथमसमये मोहस्यानुपूर्विसंक्रमश्च नष्टः । अयं तु विशेषः–

अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभद्वयस्य संज्वलनलोभे बध्यमाने यद्यपि संक्रमः प्रारब्धस्तथापि तदविवक्षया संज्वलनलोभस्य बध्यमानसजातीयकषायान्तरासम्भवात् आनुपूर्वी संक्रमो व्यक्त्यपेक्षया न विनष्टः । शक्त्यपेक्षया संज्वलनलोभद्रव्यस्याप्यनानुपूर्व्या परप्रकृतिसंक्रमपरिणामः सञ्जातः । सूक्ष्मसाम्पराये तु मोहस्य बन्धाभावात् संक्रमो न सम्भवत्येवेति। तथैव स्पर्धकगतं बादरसंज्वलनलोभमुदयमानमनुभवन् जीवो बादरसाम्परायानिवृत्तिकरणप्रथमसमये संज्वलनलोभद्रव्यमपकृष्य उदयसमयादारभ्य बादरलोभवेदककालसाधिकद्वित्रिभागमात्रे आवल्यभ्यधिके [२ ॥२/३] अवस्थितायामे प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपति। प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानलोभद्वयद्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्ये पूर्वोक्तायामे असंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपति। द्वितीयादिसमयेषु पुनरसंख्येयगुणहीनं द्रव्यमपकृष्यावस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति।।

अब उतरने वाले जीव के अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय गुणस्थान में क्रियाविशेष दिखाने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(बादरपढमे) अनिवृत्तिकरण बादर साम्पराय के प्रथम समय **में (किट्टी)** सूक्ष्म कृष्टियाँ **(य)** और **(मोहस्स आणुपुव्विसंकमणं)** मोह का आनुपूर्वी संक्रमण **(णट्ठं)** नष्ट हुआ। **(तु)** परन्तु **(उच्छिट्ठं)** उच्छिष्टावलि मात्र निषेक **(ण)** नष्ट नहीं हुए। **(च)** और वहाँ **(फड्ढयलोहं)** स्पर्धकगत लोभ का **(वेदयदि)** वेदन करता है।।३१६।।

टीकार्थ–अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय के प्रथम समय में उच्छिष्टावलि मात्र निषेकों

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ५५–५६–५७

को छोड़कर सर्व सूक्ष्मकृष्टियाँ स्वरूप से नष्ट हुई अर्थात् एक ही समय में सूक्ष्मकृष्टियों की शक्ति से अनन्तगुणी शक्ति से युक्त स्पर्धकस्वरूप से परिणमित हुई। उच्छिष्टावलिमात्र निषेक कृष्टियाँ प्रत्येक समय में एक–एक निषेकप्रमाण से उदयरूप से परिणमित होकर उदय में आती हैं और उसके प्रथम समय में मोह का आनुपूर्वी संक्रम भी नष्ट हुआ। परन्तु यह विशेष है कि अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ का बध्यमान संज्वलन लोभ में यद्यपि संक्रमण हुआ तथापि आनुपूर्वी संक्रम में उसकी विवक्षा नहीं है, इसलिए संज्वलन लोभ का बध्यमान सजातीय दूसरी कषायों का अभाव होने से आनुपूर्वी संक्रमण व्यक्ति अपेक्षा से नष्ट नहीं हुआ। शक्ति अपेक्षा से संज्वलन लोभ के द्रव्य का भी आनुपूर्वी से रहित अन्य प्रकृतिरूप से संक्रमण होने का परिणाम हुआ है। सूक्ष्मसाम्पराय में मोह के बंध का अभाव होने से संक्रमण संभव ही नहीं है। तथा स्पर्धकगत उदयमान बादर संज्वलन लोभ का अनुभव करने वाला जीव बादर साम्पराय अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में संज्वलन लोभ के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयसमय से बादर लोभवेदककाल का कुछ अधिक दो त्रिभागमात्र और आवलि अधिक अवस्थित आयाम में प्रत्येक निषेक में असंख्यातगुणित क्रम से निक्षेपण करता है [२१ ॥ २/३] (बादर लोभ का वेदककाल = [२१] ऊपर दो रेखाएँ है उसमें से प्रथम रेखा आवलि अधिक के लिए है और दूसरी रेखा दो त्रिभाग में कुछ अधिक है, उसके लिए दी है।)

अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावलि के बाहर पूर्वोक्त आयाम में असंख्यातगुणित क्रम से निक्षेपण करता है। द्वितीयादि समयों में पुन: असंख्यातगुणे कम द्रव्य का अपकर्षण करके अवस्थित आयाम में गुणश्रेणि करता है ।।३१६।।

ओदरबादरपढमे लोहस्संतोमुहत्तियो बंधो ।
दुदिणंतो घादितिये चउवस्संतो अघादितिये[१] ।।३१७।।

अवतरबादरप्रथमे लोभस्यान्तर्मुहूर्तको बन्ध: ।
द्विदिनान्तो घातित्रिके चतुर्वर्षान्तोऽघातित्रये ।।३१७।।

अवतारकबादरसाम्परायानिवृतिकरणप्रथमसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तमात्र:, स चारोहकतच्चरमसमयस्थितिबन्धाद् द्विगुण: । ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां किञ्चिन्न्यूनदिनद्वयमात्र:। नामगोत्रयो: किञ्चिन्न्यूनचतुर्वर्षमात्र: । वेदनीयस्य तीसियप्रतिभागत्वाद् द्व्यर्धगुणितकिञ्चिन्न्यून–

१) जयध. पु. १४, पृ. ५८

चतुर्वर्षमात्रः। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे समबन्धकाले गते पुनः संज्वलनलोभस्थितिबन्धो विशेषाधिकः [२९२] घातित्रयस्य दिनपृथक्त्वं [दि ७/८] अघातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः [व १०००९] एवं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु उत्कृष्योत्कृष्य संवृत्तेषु यदा लोभवेदककाल– [२९३/३] द्वितीयत्रिभागस्य [२९१/३] संख्येयभागो गतः [२९१/९३] तदा संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो मुहूर्तमात्रपृथक्त्वं [मु ७/८] घातित्रयस्य वर्षसहस्रपृथक्त्वं [व १००० ७/८] अघातित्रयस्य संख्येयसहस्र–वर्षमात्रः [व १०००९९] एवं स्थितिबन्धसहस्रेपु गतेषु लोभवेदककालः समाप्तो भवति।अयं विशेषः–आरोहकस्य लोभवेदककालादवरोहकस्य लोभवेदककालः किञ्चिन्न्यून इति ज्ञातव्यम्। एवं सर्वत्र मायावेदकादिकालेषु अपि आरोहककालादवरोहकस्य किञ्चिन्न्यूनता द्रष्टव्या।।३१७।।

अन्वयार्थ–(ओदरबादरपढमे) उतरने वाले बादर सांपराय के प्रथम समय में **(लोहस्स)** लोभ का **(बंधो)** स्थितिबंध **(अंतोमुहुत्तियो)** अंतर्मुहूर्त मात्र **(घादितिये)** तीन घातियों का **(दुदिणंतो)** दो दिन के भीतर और **(अघादितिये)** तीन अघातियों का **(चउवस्संतो)** चार वर्ष के भीतर होता है।।३१७।।

टीकार्थ– उतरने वाले अनिवृत्तिकरण बादर साम्पराय के प्रथम समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त मात्र है। वह स्थितिबंध चढ़ने वाले के अंतिम समय के स्थितिबंध से दुगुना है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का स्थितिबंध कुछ कम दो दिवस मात्र होता है। नाम और गोत्र का स्थितिबन्ध कुछ कम चार वर्षमात्र होता है। वेदनीय का तीसिय प्रतिभाग होने से डेढ़गुणित कुछ कम चार वर्षमात्र होता है। (अर्थात् कुछ कम छह वर्षमात्र होता है।) उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त मात्र समान बन्ध का काल जाने पर पुनः संज्वलन लोभ का स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। [२९२] तीन घाति का दिवस पृथक्त्व (७–८ दिवस) तीन अघाति का संख्यात हजार वर्षमात्र। [व १०००९] इस प्रकार संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबंध बढ़ा–बढ़ाकर होने पर जब लोभवेदक काल के द्वितीय त्रिभाग का [२९३/३] (लोभवेदक काल के तीन भाग करने के लिए तीन से भाग दिया और तीन से गुणा किया। उसका दो तिहाई भाग ग्रहण करने के लिए त्रिभाग लिखा है।) द्वितीय त्रिभाग का संख्यातवाँ [२९१/९३] भाग गया तब संज्वलन लोभ का स्थितिबन्ध पृथक्त्व मुहूर्त मात्र (७–८ मुहूर्त), तीन घातियों का पृथक्त्व हजार वर्ष (७–८ हजार वर्ष) तीन अघातियों का संख्यात हजार वर्ष [व १०००९९] होता है। इसप्रकार हजारों स्थितिबन्ध

जाने पर लोभवेदककाल समाप्त होता है। विशेष यह है कि आरोहक के लोभवेदककाल से अवरोहक का लोभवेदककाल कुछ कम है ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार माया वेदकादि कालों में भी आरोहक काल से अवरोहक का काल कुछ कम जानना चाहिए।।३१७।।

अथावरोहकानिवृत्तिकरणबादरसाम्परायस्य मायावेदककाले क्रियाविशेषप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह–

ओदरमायापढमे मायातिण्हं च लोभतिण्हं च।
ओदरमायावेदगकालादहियो दु गुणसेढी[१] ।।३१८।।

अवतरमायाप्रथमे मायात्रयाणां च लोभत्रयाणां च ।
अवतरमायावेदककालादधिका तु गुणश्रेणी ।।३१८।।

लोभवेदककालसमाप्त्यनन्तरं मायावेदककालप्रथमसमये अवतारकानिवृत्तिकरण:, अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनमायात्रयद्रव्यं तत्तद्द्वितीयस्थितेरपकृष्य उदयवतो मायासंज्वलनस्य उदयसमयादारभ्यावतारकमायावेदककालादावल्यधिके [१—/२१] अवस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति। उदयरहितस्य मायाद्वयस्य उदयावलिबाह्ये तावन्मात्रायामे २१ अवस्थितगुणश्रेणिं करोति । तथा उदयरहितस्य लोभत्रयस्यापि द्वितीयस्थितिद्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्ये संज्वलनमाया–वेदककाल २१ मात्रे अवस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति । ज्ञानावरणादिशेषकर्मणां प्रागुक्तायामे गलितावशेषगुणश्रेणिं करोति । तस्मिन्नेव मायावेदकप्रथमसमये लोभत्रयद्रव्यं मायाद्वयद्रव्यं च मायासंज्वलने संक्रामति तस्य बन्धसम्भवात् । तथा त्रिविधमायाद्रव्यं द्विविधलोभद्रव्यं च लोभसंज्वलने संक्रामति, तस्यापि बन्धसम्भवात् । बन्धरहितेषु न संक्रामति अनानुपूर्वीसंक्रम–प्रतिज्ञानादेवंविधसंस्थूलसंक्रमणसम्भव: ।।३१८।।

अब उतरने वाला अनिवृत्तिकरण बादर साम्पराय के मायावेदककाल में क्रिया विशेष दिखाने के लिए दो गाथाए कहते हैं–

अन्वयार्थ– **(ओदरमायापढमे)** उतरने वाले मायावेदककाल के प्रथम समय में **(माया तिण्हं)** तीन माया **(च)** और **(लोभतिण्हं च)** तीन लोभ की **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि **(ओदरमायावेदगकालादहियो दु)** उतरने वाले के मायावेदककाल से अधिक करता है।।३१८।।

टीकार्थ– लोभवेदककाल की समाप्ति के पश्चात् मायावेदककाल के प्रथम समय में उतरने वाला अनिवृत्तिकरण जीव अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन तीन माया का द्रव्य उस–उस की द्वितीय स्थिति से अपकर्षित करके उदयवान माया संज्वलन की उदयसमय

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ६१–६२–६३ ।

से उतरने वाले के माया वेदककाल से एक आवलि अधिक [१— २१] अवस्थित आयाम में गुणश्रेणि करता है। उदयरहित दो माया की उदयावली के बाहर उतने मात्र आयाम में [२१] अवस्थित गुणश्रेणी करता है। उसके समान उदयरहित तीन लोभों की भी द्वितीय स्थिति का द्रव्य अपकर्षित करके उदयावलि के बाहर संज्वलन मायावेदककाल मात्र [२१] अवस्थित आयाम में गुणश्रेणि करता है। ज्ञानावरणादि शेष कर्मों की पूर्व में कहे गए आयाम में गलितावशेष गुणश्रेणि करता है। उसी मायावेदक के प्रथम समय में तीन लोभ का द्रव्य और दो माया का द्रव्य संज्वलन माया में संक्रमित करता है क्योंकि उसका बन्ध संभव है। तथा तीन प्रकार के माया का और दो प्रकार के लोभ का द्रव्य संज्वलन लोभ में संक्रमित करता है क्योंकि उसका बन्ध भी संभव है। बन्धरहित प्रकृति में संक्रमण नहीं होता। आनुपूर्वी से रहित संक्रम की प्रतिज्ञा करने से इसप्रकार का स्थूल संक्रमण संभव है।।३१८।।

ओदरमायापढमे मायालोभे दुमासठिदिबंधो ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि[१] ।।३१९।।

अवतरमायाप्रथमे मायालोभे द्विमासस्थितिबन्धः।
षण्णां पुनो वर्षाणां संख्येयसहस्रमात्राणि ।।३१९।।

अवतारकमायावेदकप्रथमसमये संज्वलनमायालोभयोः स्थितिबन्धो द्विमासमात्रः। घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः, अघातित्रयस्य ततः संख्येयगुणः। एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु मायावेदककालः समाप्तो भवति ।।३१९।।

अन्वयार्थ–(ओदरमायापढमे) उतरने वाले के मायावेदककाल के प्रथम समय में **(मायालोभे)** माया व लोभ का **(दुमासठिदिबंधो)** स्थितिबन्ध दो माह होता है। **(पुण)** पुनः **(छण्हं)** शेष छह कर्मों का **(वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि)** स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षमात्र होता है।

टीकार्थ–उतरने वाले माया वेदककाल के प्रथम समय में संज्वलन माया व लोभ का स्थितिबन्ध दो माह मात्र होता है। तीन घातियों का संख्यात हजार वर्षमात्र, तीन अघातियों का उससे संख्यातगुणा होता है। इस प्रकार हजारों स्थितिबन्ध जानेपर मायावेदक काल समाप्त होता है ।।३१९।।

विशेषार्थ– उपशमश्रेणि चढ़ने वाला मायावेदककाल के अंतिम समय में संज्वलन लोभ का स्थितिबंध एक माह करता है। अब उतरने वाला इससे दुगुणा अर्थात् दो माह करता है क्योंकि चढ़ने वाले के परिणाम से उतरने वाले के परिणाम कम विशुद्ध होते हैं। इसके अनुसार

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ६३ २) जयध. पु. १४, पृ. ६५

गिरनेरूप परिणामों की विशेषता से शेष छह कर्मों का स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है। चढ़ने वाले का प्रत्येक स्थितिबंध संख्यातहीन क्रम से होता है परन्तु उतरने वाले का ज्ञानावरणादिकों का प्रत्येक स्थितिबंध संख्यात गुणित वृद्धिक्रम से होता है। चढ़ने वाले के मोहनीय का प्रत्येक स्थितिबंध विशेष हीन क्रम से होता है और उतरने वाले के मोहनीय का प्रत्येक स्थितिबंध विशेष अधिकक्रम से होता है। इसलिए यहाँ मोहनीय को छोड़कर अन्य कर्मों का स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है और मोहनीय का विशेष अधिक होता है।

अथ मानवेदकस्य क्रियाविशेषं प्ररूपयन् गाथाद्वयमाह–

ओदरगमाणपढमे तेत्तियमाणादियाण पयडीणं ।
ओदरगमाणवेदगकालादहिओ दु गुणसेढी[२] ।।३२०।।

अवतरकमानप्रथमे तावन्मानादिकानां प्रकृतीनाम् ।
अवतरकमानवेदककालादधिका तु गुणश्रेणी ।।३२०।।

अयमवतारकानिवृत्तिकरणो मायावेदककालपरिसमाप्त्यनन्तरसमये संज्वलनमानद्रव्यमपकृष्य उदयसमयादारभ्य मानवेदककालादावलिकाभ्यधिके अवस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति । मध्यममानद्वयस्य मायात्रयस्य लोभत्रयस्य च द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्ये तावन्मात्रायामे अवस्थितगुणश्रेणिं करोति । तस्मिन्नेव मानवेदकप्रथमसमये नवविधकषायद्रव्यमनानुपूर्व्या बध्यमानलोभमायामानेषु संक्रामति ।।३२०।।

अब मानवेदक की क्रियाविशेष का प्ररूपण करते हुए दो गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(ओदरगमाणपढमे) अवतारक के मानवेदक के प्रथम समय में **(तेत्तियमाणदियाण पयडीणं)** उतनी मानादिक प्रकृतियों का **(ओदरगमाणवेदक–कालादहियं दु)** अवतारक मानवेदककाल से अधिक **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि करता है ।।३२०।।

टीकार्थ– यह अवतारक अनिवृत्तिकरण जीव मायावेदककाल की समाप्ति के अनंतर समय में संज्वलन मान के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयसमय से आरम्भ करके मानवेदककाल से आवलि अधिक प्रमाण अवस्थित आयाम में गुणश्रेणि करता है। मध्यम दो मान, तीन माया और तीन लोभ के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावलि के बाहर उतनेमात्र आयाम में अवस्थित गुणश्रेणि करता है। उस मानवेदक के प्रथम समय में नौ प्रकार के कषाय का द्रव्य आनुपूर्वी से रहित बध्यमान लोभ, माया और मान कषाय में संक्रमित करता है।।३२०।।

ओदरगमाणपढमे चउमासा माणपहुदिठिदिबंधो ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि[1] ।।३२१।।

अवतरकमानप्रथमे चतुर्मासा मानप्रभृतिस्थितिबन्धः ।
षण्णां पुनो वर्षाणां संख्येयसहस्रमात्राणि ।।३२१।।

तस्मिन्नेव मानवेदकप्रथमसमये संज्वलनमानमायालोभानां स्थितिबन्धश्चतुर्मासमात्रः। घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः । अघातित्रयस्य ततः संख्येयगुणः। एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु मानवेदककालः समाप्तो भवति ।।३२१।।

अन्वयार्थ– (ओदरगमाणपढमे) अवतारक (उतरने वाले) मानवेदककाल के प्रथम समय में **(माणपहुदिठिदिबंधो)** मानादिक कषायों का स्थितिबन्ध **(चउमासा)** चार माह और **(छण्हं पुण)** पुनः छह कर्मों का **(वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि)** संख्यात हजार वर्षमात्र होता है।।३२१।।

टीकार्थ– उस मानवेदककाल के प्रथम समय में संज्वलन मान, माया, लोभ का स्थितिबन्ध चार माह होता है। तीन घातियों का संख्यात हजार वर्ष और तीन अघातियों का उससे संख्यातगुणा होता है। इसप्रकार हजारों स्थितिबंध जाने पर मानवेदक काल समाप्त होता है ।।३२१।।

अथानिवृत्तिकरणबादरसाम्परायस्य संज्वलनक्रोधे प्रतिपातप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह–

ओदरगकोहपढमे छक्कम्मसमाणया हु गुणसेढी ।
बारकसायाणं पुण एत्तो गलिदावसेसं तु[2] ।।३२२।।

अवतरकक्रोधप्रथमे षट्कर्मसमानिका हि गुणश्रेणी ।
द्वादशकषायाणां पुनरितो गलितावशेषं तु ।।३२२।।

संज्वलनमानवेदककालसमाप्त्यनन्तरं सोऽयमवतारकोऽनिवृत्तिकरणः संज्वलनक्रोधोदय–प्रथमसमये ज्ञानावरणादिषट्कर्मणां प्रागुपक्रान्तेनावतारकानिवृत्त्यपूर्वकरणकालद्वयाद्विशेषाधिक–गलितावशेषगुणश्रेण्यायामेन समाने आयामे द्वादशकषायाणां गुणश्रेणिं गलितावशेषां करोति। इतः पूर्वं मोहनीयस्यावस्थितायामा गुणश्रेणी कृता। इदानीं पुनर्गलितावशेषायामा प्रारब्धेत्ययं विशेषः। यस्य कषायस्योदयेनोपशमश्रेणीमारूढो जीवः पुनरवतरणे तस्य कषायस्य उदयसमयादारभ्य गलितावशेषगुणश्रेणिरन्तरापूरं च क्रियते। तत्रोदयवतः संज्वलनक्रोधस्य द्रव्यमपकृष्य [स a१२– ७।८।ओ] पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभाग [स a१२– ७।८।ओ।प a] मुदयादिगुणश्रेण्यायामे निक्षिपति ।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ६६ २) जयध. पु. १४, पृ. ६६–६८

पुनर्द्वितीयस्थितौ प्रथमनिषेकद्रव्यं [स a१२– / ७।८।१२] पदहतमुखमादिधनमित्यनेनान्तर्मुहूर्तमात्रान्तरायामेन गुणयित्वा लब्धं समपट्टिकाधनं [स a१२– २१ / ७।८।१२] द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके द्विगुणगुणहान्या विभज्य द्वाभ्यां गुणिते [७।८।१२] अधस्तनगुणहानिचयो भवति । सैकपदाहतपददलचयहतमुत्तरधनमित्यानीतं चयधनं [स a१२–२ २१।२१ / ७।८।१२।१६।२] इदं प्रागानीते समपट्टिकाधने साधिकं कुर्यात् [स a१२– २१ / ७।८।१२] एतावद्– द्रव्यमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डित– बहुभागद्रव्यात् गृहीत्वा 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे' त्यादिविधिना विशेषहीनक्रमेणान्तरायामे निक्षिपेत् । अवशिष्टबहुभागद्रव्यं [स a१२– प– / ७।८।ओ।प a a] द्वितीयस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादिविधिना नानागुणहानिषु विशेषहीनक्रमेण तत्तदपकृष्टनिषेकमतिस्थापनावलिमात्रेणाप्राप्य निक्षिपति । एवं निक्षिप्ते गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यादन्तरायामप्रथमसमयनिक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनम् । अन्तरायाम–चरमसमयनिक्षिप्तद्रव्याद् द्वितीयस्थितिप्रथमसमयनिक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं द्रष्टव्यम् । एवमुदय–रहितानां शेषैकादशकषायाणां द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च द्रव्यत्रयनिक्षेपविधिः कर्तव्यः ।

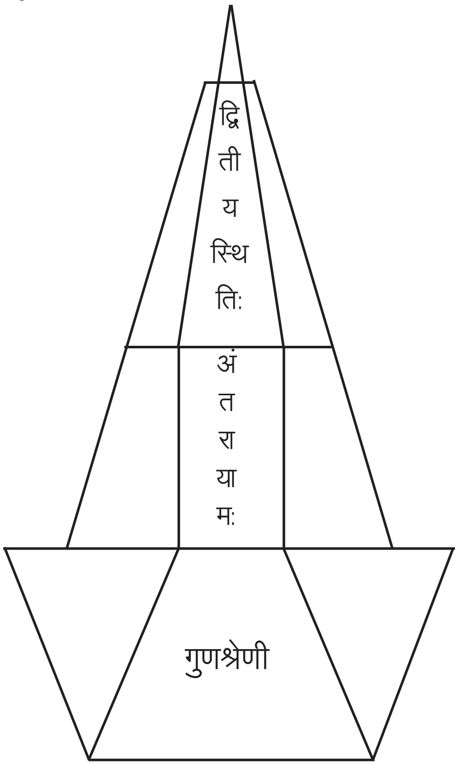

[स a१२– १६– ८ / ७।८।ओ।१२।प १६ a २]

०

[स a१२– १६ / ७।८।ओ।१२।१६]

[स a१२– २१ ।१६–२ / ७।८।१२।२१ ।१६– २१ २]

०

[स a१२– २१ ।१६ / ७।८।१२।२१ ।१६– २१ २]

[स a१२– ६४ / ७।८।ओ।प।८५ a]

० [स a१२– १ / ७।८।ओ।प।८५ a]

संज्वलनमानादित्रयद्रव्ये स a१२-३ / ७।८ **सर्वघातिमध्यमकषायाष्टकद्रव्येण तदनन्तैकभागमात्रेण** स a१२-८ / ७।ख।१७ **साधिकशेषैकादशकषायद्रव्यमित्थं भवति** स a१२-३ / ७।८ **अस्मादपकृष्य गुणश्रेण्यादिषु निक्षिपतीत्यर्थः । संज्वलनक्रोधोदय-प्रथमसमये द्वादश - कषायाणां द्रव्यं बध्यमानेषु संज्वलनक्रोधादिषु चतुर्षु अनानुपूर्व्या संक्रामति ।।३२२।।**

अब अनिवृत्तिकरण बादरसांपराय का संज्वलन क्रोध में प्रतिपात का प्ररूपण करने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं-

अन्वयार्थ-(ओदरगकोहपढमे) उतरने वाले क्रोधवेदककाल के प्रथम समय में **(छक्कम्म-समाणया हु)** छह कर्मों के समान **(बारकसायाणं)** बारह कषायों की **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि करता है। **(पुण तु)** परन्तु **(एत्तो)** यहाँ से **(गलिदावसेसं)** गलितावशेष गुणश्रेणि है ।।३२२।।

टीकार्थ-संज्वलन मानवेदककाल की समाप्ति के पश्चात् वह यह अवतारक (उतरने वाला) अनिवृत्तिकरण जीव संज्वलन क्रोध के उदय के प्रथम समय में ज्ञानावरणादि छह कर्मों की पूर्व में प्रारंभ की गयी उतरने वाले अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरण इन दो कालों से विशेष अधिक गलितावशेष गुणश्रेणि करता है। इसके पूर्व में मोहनीय की अवस्थित आयामवाली गुणश्रेणि की थी, अब पुनः गलितावशेष आयामवाली गुणश्रेणि प्रारम्भ की, यह विशेष है। जिस कषाय के उदय से जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा पुनः उतरने वाला उस कषाय के उदय समय से गलितावशेष गुणश्रेणि करता है और अन्तरायाम को भरता है। वहाँ उदयवान संज्वलन क्रोध के द्रव्य का अपकर्षण करके स a१२- / ७।८।ओ। $\left(\frac{\text{कषाय का सत्त्वद्रव्य}}{\text{अपकर्षण भागहार}}\right)$

पुनः उसमें पल्य के असंख्यातवें भाग से खंडित करके उसका एक भाग स a१२- / ७।८।ओ।प / a उदयादि गुणश्रेणि आयाम में देता है। पुनः द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक का द्रव्य स a१२- / ७।८।१२ $\left(\frac{\text{कषाय का सत्त्वद्रव्य}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि}}\right)$ इसमें **'पदहतमुखमादिधनं'** (मुख में पद से गुणा करने पर आदिधन आता है।) इस सूत्रनुसार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरायाम से गुणा करनेपर जो लब्ध आता है वह समपट्टिका धन होता स a१२-२ / ७।८।१२ है । (प्रथम निषेक x अन्तर्मुहूर्त) द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक को दो गुणहानि का भाग देनेपर चय आता है, पुनः उसे दो से गुणा करने पर नीचे की गुणहानि का चय आता है। **'सैकपदाहतपददलचयहतमुत्तरधनम्'** इस सूत्र के अनुसार पद में एक मिलाकर उसमें पद के अर्द्ध से और चय से गुणा करने पर चयधन आता है।

(पद+१) x $\frac{\text{पद}}{२}$ x चय = चयधन

चय x (पद+१) x (पद ÷ २)

स a१२-२ x (२ +१) x २१ =
७।८।१२।१६ २

| स a१२-२ २ १।२१ |
| ७।८।१२।१६ ।२ |

यह चयधन पूर्व में आये हुए समपट्टिका धन में अधिक करे। स a१२- २१ / ७।८।१२ (अधिक करने के लिए ऊपर खड़ी रेखा की है) इतना द्रव्य अपकृष्ट द्रव्य को पल्यके असंख्यातवें भाग से भाग देकर आये हुए बहुभाग द्रव्य में से **'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिद'** इत्यादि विधि से ग्रहण करके विशेषहीन क्रम से अन्तरायाम में निक्षेपण करें शेष रहा बहुभाग द्रव्य स a१२- १ प a / ७।८।ओ। प a संदृष्टि '–' यह (अन्तरायाम में दिया गया द्रव्य कम करने के लिए कुछ कम की है।) विधि से द्वितीय स्थिति में **'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा'** इत्यादि नाना गुणहानियों में विशेषहीन क्रम से उस-उस अपकृष्ट निषेक के नीचे अतिस्थापनावलि छोड़कर निक्षेपण करता है। इस प्रकार निक्षेपण करने पर गुणश्रेणि-शीर्ष में दिये गये द्रव्य से अन्तरायाम के प्रथम समय में निक्षिप्त किया गया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन है। अंतरायाम के अंतिम समय में निक्षिप्त किये गये द्रव्य से स्थिति के प्रथम समय में निक्षिप्त किया द्रव्य असंख्यातगुणा हीन जानना चाहिए। इस प्रकार उदयरहित शेष ग्यारह कषायों का द्रव्य अपकर्षित करके उदयावलि के बाहर गुणश्रेणिआयाम में, अन्तरायाम में और द्वितीय स्थिति में ऐसे तीन द्रव्यों की निक्षेप विधि करना चाहिए।

आकृति के सामने की संदृष्टियों का स्पष्टीकरण-

आकृति के सामने गुणश्रेणि का प्रथम और अंतिम निषेक, अन्तरायाम का प्रथम और अंतिम निषेक और उपरितन स्थिति के प्रथम और अंतिम निषेक में देयद्रव्य का प्रमाण दिखाया है।

गुणश्रेणी का प्रथम निषेक = $\frac{\text{गुणश्रेणी का देयद्रव्य x १ गुणकार}}{\text{गुणकारों का जोड़}}$

| स a१२-१ |
| ७।८।ओ।प।८५ a |

गुणश्रेणी का देयद्रव्य = $\frac{\text{अपकृष्ट द्रव्य}}{\text{पल्य का असंख्यातवाँ भाग}}$

| स a१२- |
| ७।८।ओ।प। a |

गुणकारों का जोड़ = ८५

गुणश्रेणी का अंतिम निषेक = $\frac{\text{गुणश्रेणी का देयद्रव्य x ६४ गुणकार}}{\text{गुणकारों का जोड़}}$

| स a१२-६४ |
| ७।८।ओ।प।८५ a |

अंतरायाम का प्रथम निषेक = $\dfrac{\text{अंतरायाम का देयद्रव्य x दो गुणहानि}}{\text{अंतरायाम x दो गुणहानि} - \left(\dfrac{\text{अंतरायाम}-१}{२}\right)}$

स a१२–२ ।१६ १
७।८।१२।२१ ।१६–२१ / २

अंतरायाम में देने योग्य द्रव्य ऊपर टीका में कहा है वह जान लेना। उसमें अंतरायाम से भाग देने पर मध्यम धन आता है। मध्यम धन में एक कम पद के अर्ध से न्यून २ गुणहानि से भाग देने पर चय आता है। चय में दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम निषेक आता है। उसकी संदृष्टि ऊपर दिखायी है।

अन्तरायाम का अंतिम निषेक=अन्तरायाम का प्रथम निषेक–(पद–१x चय)

स a१२–२१ ।१६–२१
७।८।१२।२१ ।१६–२१ / २

यहाँ पद अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अंतरायाम है। उसमें से एक कम करके उतने चय प्रथम निषेक में से घटा दिये।

द्वितीय स्थिति का प्रथम निषेक = $\dfrac{\text{द्वितीय स्थिति का देयद्रव्य x दो गुणहानि}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि x दो गुणहानि}}$

स a१२– १६
७।८।ओ।१२।१६

द्वितीय स्थिति में देने योग्य द्रव्य अपकृष्ट द्रव्य का बहुभाग है यह ऊपर टीका में कहा है। उसमें पल्य के असंख्यातवें भाग का भागहार और एक कम और कुछ कम पल्य के असंख्यातवें भाग का गुणकार है। कुछ कम को नहीं गिनकर उसका अपवर्तन करना चाहिए। अपवर्तन करने पर द्वितीय स्थिति में देयद्रव्य इतना रहता (स a१२– / ७।८।ओ) है। इसमें साधिक डेढ़गुणहानि स१२ भाग देने पर प्रथम निषेक आता है। उसमें पुन: दो से भाग देने पर चय आता है और पुन: दो गुणहानि से गुणा करने पर प्रथम निषेक आता है। उसकी संदृष्टि ऊपर दिखायी है।

द्वितीय स्थिति में नानागुणहानियाँ है इसलिए द्वितीय स्थिति का अंतिम निषेक अर्थात् अंतिम गुणहानि का अंतिम निषेक होता है। अंतिम गुणहानि का अंतिम निषेक निकालने के लिए पहले अंतिम गुणहानि का प्रथम निषेक निकालना चाहिए।

अंतिम गुणहानि का प्रथम निषेक = $\dfrac{\text{प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक}}{\text{अन्योन्याभ्यस्तराशि} \div २}$

स a१२– १६
७।८।ओ।१२।प १६
a २

यहाँ अन्योन्याभ्यस्त राशि का प्रमाण पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। उसके आधे से प्रथम गुणहानि के प्रथम निषेक में भाग देने पर अंतिम गुणहानि का प्रथम निषेक आता है। उसमें से एक कम

गुणहानिप्रमाण चय कम करने पर अंतिम निषेक का प्रमाण आता है। गुणहानि का प्रमाण ८ है। अंतिम गुणहानि का अंतिम निषेक = अंतिम गुणहानि का प्रथम निषेक – (पद–१ x चय)

स a१२– १६– ८ ७।८।ओ।१२।प १६ a २

यहाँ पद अर्थात् एक गुणहानि का प्रमाण है। (गाथा क्र. ७१ से ७३ व गाथा क्र. १०४ में कही गयी अंकसंदृष्टि समझना चाहिए।)

संज्वलन मानादि तीन द्रव्य में [स a१२–३ / ७।८] (एक कषाय का द्रव्य x ३ = तीन कषायों का द्रव्य)

उसका अनन्तवाँ भागमात्र सर्वघातिरूप आठ मध्यम कषायों का द्रव्य साधिक करने पर [स a१२–८ / ७।ख।१७] ११ कषायों का द्रव्य ऐसा होता है– [स a१२–३ / ७।८] इस द्रव्य में से अपकर्षित करके गुणश्रेणि आदिक में निक्षेपण करता है ऐसा अर्थ है।

संज्वलन क्रोध के उदय के प्रथम समय में १२ कषायों का द्रव्य बध्यमान संज्वलन क्रोधादिक चार कषायों में आनुपूर्वीरहित संक्रमित होता है।।३२२।।

विशेषार्थ– उपशमश्रेणि से उतरते समय जब यह जीव क्रोध संज्वलन के वेदन के प्रथम समय में स्थित होता है तब ज्ञानावरणादि कर्मों के साथ बारह कषायों का गलितावशेष गुणश्रेणिनिक्षेप होता है तथा जब इसप्रकार का गुणश्रेणिनिक्षेप होता है तभी अन्तर को भरा जाता है। उसको भरने की प्रक्रिया यह है कि बारह कषाय के द्रव्यों का अपकर्षण करता हुआ गुणश्रेणिनिक्षेप के साथ अन्तर को पूरते हुए क्रोध संज्वलन के द्रव्य को उदय में थोड़ा देता है। उससे ऊपर ज्ञानावरणादि कर्मों के पूर्व निक्षिप्त गुणश्रेणिशीर्ष के प्राप्त होने तक असंख्यातगुणे द्रव्य का निक्षेप करता है। उससे आगे अंतर सम्बन्धी अंतिम स्थिति के प्राप्त होने तक विशेषहीन क्रम से द्रव्य देता है। उससे आगे द्वितीय स्थिति के प्रथम निषेक में असंख्यातगुणे द्रव्य का निक्षेप करता है। उससे आगे अपनी–अपनी अतिस्थापनावलि के प्राप्त होने तक विशेष हीन क्रम से द्रव्य का निक्षेप करता है। इसी प्रकार शेष कषायों के अन्तर को पूरा करता है। इतनी विशेषता है कि उनके द्रव्य का उदयावलि के बाहर निक्षेप करता है। आगे सात नोकषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद को अपने–अपने अन्तर को पूरा करने का विधान भी इसी प्रकार करना चाहिए। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जिस कषाय के उदय से श्रेणि चढ़े उसका अपकर्षण होने पर क्रोधकषाय के समान ही गुणश्रेणि–निक्षेप और अन्तर को भरने की विधि कहनी चाहिए।।३२२।।

ओदरगकोहपढमे संजलणाणं तु अट्ठमासठिदी ।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि[1] ।।३२३।।

अवतरकक्रोधप्रथमे संज्वलनानां त्वष्टमासस्थितिः ।
षण्णां पुनो वर्षाणां संख्येयसहस्रमात्राणि ।।३२३।।

अवतारकानिवृत्तिकरणः संज्वलनक्रोधोदयप्रथमसमये संज्वलनचतुष्टयस्य स्थितिबन्धोऽष्ट-मासमात्रः। घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः। ततः संख्येयगुणो नामगोत्रयोः। ततः द्व्यर्धगुणितो वेदनीयस्य ।।३२३।।

अन्वयार्थ– (ओदरगकोहपढमे) उतरनेवाले क्रोधवेदक के प्रथम समय में **(संजलणाणंतु)** संज्वलन कषायों का **(अट्ठमासठिदी)** आठ माह प्रमाण स्थितिबंध होता है। **(छण्हं पुण)** पुनः छह कर्मों का **(वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि)** संख्यात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबंध होता है।।३२३।।

टीकार्थ– उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण के संज्वलन क्रोध के उदय के प्रथम समय में संज्वलन चार कषायों का स्थितिबन्ध आठ माह प्रमाण होता है। तीन घातियों का संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है। उससे संख्यात गुणा नाम और गोत्र का और उससे डेढ़गुणा वेदनीय का स्थितिबंध होता है।

विशेषार्थ–उपशमश्रेणि चढ़ने वाले को क्रोधवेदककाल के अंतिम समय में संज्वलन चतुष्क का चार माह स्थितिबंध होता था इसलिए उतरने वाले को क्रोधवेदक के प्रथम समय में उससे दुगुणा अर्थात् आठ माह प्रमाण होता है और शेष कर्मों का संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है।

अथावतारकानिवृत्तिकरणस्य पुंवेदोदयकाले सम्भवत्क्रियाविशेषान् गाथाचतुष्टयेनाह–

ओदरगपुरिसपढमे सत्तकसाया पणट्ठउवसमणा ।
उणवीसकसायाणं छक्कम्माणं समाणगुणसेढी[2] ।।३२४।।

अवतरकपुरुषप्रथमे सप्तकषायाः प्रणष्टोपशमकाः ।
एकोनविंशकषायाणां षट्कर्मणां समानगुणश्रेणी ।।३२४।।

संज्वलनक्रोधवेदककाले पुंवेदोदयप्रथमसमये युगपदेव पुंवेदो हास्यादिषण्णोकषायाश्च प्रणष्टोपशमनकरणाः सञ्जाताः। तदैव द्वादशकषायाणां सप्तनोकषायाणां च ज्ञानावरणादिषट्कर्मगुणश्रेण्यायामसमानेन आयामेन गुणश्रेणिं करोति । तत्रोदयवतोः पुंवेदसंज्वलनक्रोधयोः द्रव्यमपकृष्य उदयादिगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च संज्वलनक्रोधोक्तप्रकारेण द्रव्यनिक्षेपं करोति । उदयरहितानां शेषकषायनोकषायाणां द्रव्यमपकृष्य

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ६८–६९ २) जयध. पु. १४, पृ. ७०

उदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तप्रकारेण निक्षिपति । तदैव सप्तनोकषायाणामनानुपूर्व्या संक्रमोऽपि पूर्ववज्ज्ञातव्यः । तदैव पुंवेदस्य बन्धोऽपि प्रारब्धः ।।३२४।।

अब उतरने वाले अनिवृत्तिकरण के पुरुषवेद के उदयकाल में पाये जाने वाले क्रियाविशेष को चार गाथाओं द्वारा कहते हैं –

अन्वयार्थ–(ओदरगपुरिसपढमे) उतरने वाले पुरुषवेद के प्रथम समय **में (सत्तकसाया)** सात नोकषायों की **(पणट्ठउवसमणा)** उपशामना नष्ट हुई। **(उणवीसकसायाणं)** उन्नीस कषायों की (१२ कषाय + ७ नोकषायों की) **(छक्कम्माणं)** छह कर्मों के **(समाणगुणसेढी)** समान गुणश्रेणि होती है।।३२४।।

टीकार्थ–संज्वलन क्रोध के वेदककाल में पुरुषवेद के उदय के प्रथम समय में एक ही समय में पुरुषवेद और हास्यादि छह नोकषायों का उपशमनकरण नष्ट हुआ। उसी समय बारह कषाय और सात नोकषायों की ज्ञानावरणादि छह कर्मों के गुणश्रेणि आयाम के समान आयाम से गुणश्रेणि करता है। वहाँ उदयवान पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयादि गुणश्रेणि आयाम में, अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में संज्वलन क्रोध के समय कहे गए प्रकार से द्रव्य का निक्षेप करता है। उदयरहित शेष कषाय व नोकषायों के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावलि के बाहर गुणश्रेणिआयाम में, अन्तरायाम में और द्वितीय स्थिति में पूर्वोक्त प्रकार से देता है। उस समय सात नोकषायों का आनुपूर्वी से रहित संक्रम भी पूर्व के समान जानना चाहिए। उसी समय पुरुषवेद का बन्ध भी शुरु होता है।।३२४।।

विशेषार्थ–मोहनीय कर्म की चार प्रकृतियों के बन्ध के अंतिम समय में ही अपगतवेद पर्याय का व्यय होकर अनन्तर समय में सवेद भाग प्रारंभ होकर पुरुषवेद का उदय और बंध होने लगता है। मोहनीय की पाँच प्रकृतियों का बंध शुरु होता है। पुरुषवेदसहित ६ नोकषायों की प्रशस्त उपशामना नष्ट होकर संक्रमण और उत्कर्षण होने लगता है। सात नोकषायों का अन्तरायाम भरता है।।।३२४।।

पुसंजलणिदराणं वस्सा बत्तीसयं तु चउसट्ठी ।
संखेज्जसहस्साणि य तक्काले होदि ठिदिबंधो[१] ।।३२५।।

पुंसंज्वलनेतरेषां वर्षाणि द्वात्रिंशच्चतुःषष्टिः ।
संख्येयसहस्राणि च तत्काले भवति स्थितिबन्धः ।।३२५।।

अवतारकस्य पुंवेदोदयप्रथमसमये पुंवेदस्य द्वात्रिंशद्वर्षमात्रः स्थितिबन्धः । संज्वलनचतुष्कस्य

१) जयध. पु. १४, पृ. ७०

च चतु:षष्टिवर्षमात्रः । घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः । नामगोत्रयोस्ततः संख्येयगुणः। वेदनीयस्य ततो द्व्यर्धगुणः ।।३२५।।

अन्वयार्थ–(तक्काले) उस काल में **(पुसंजलणिदराणं)** पुरुषवेद, संज्वलन कषाय और अन्य कर्मों का **(ठिदिबन्धो)** स्थितिबंध क्रमशः **(बत्तीसयं तु चउसट्ठी य संखेज्जसहस्साणि वस्सा)** बत्तीस वर्ष, चौसठ वर्ष और संख्यात हजार वर्ष होता है। ।।३२५।।

टीकार्थ–उतरने वाले जीव को पुरुषवेद के प्रथम समय में पुरुषवेद का बत्तीस वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है और संज्वलन चतुष्क का चौसठ वर्षमात्र होता है। तीन घातियों का संख्यात हजार वर्ष, नाम–गोत्र का उससे संख्यातगुणा, वेदनीय का उससे डेढ़गुणा स्थितिबन्ध होता है। ।।३२५।।

पुरिसे दु अणुवसंते इत्थी उवसंतगोत्ति अद्धाए ।
संखाभागासु गदेससंखवस्सं अघादिठिदिबंधो[1] ।।३२६।।

पुरुषे त्वनुपशान्ते स्त्र्युपशान्तका इत्यद्धायाः ।
संख्यभागेषु गतेष्वसंख्यवर्षमघातिस्थितिबन्धः ।।३२६।।

पुंवेदोदयकालेऽन्तर्मुहूर्तमात्रे यावत् स्त्रीवेदोपशमनं न विनश्यति तावत्काले संख्यातभागेषु गतेषु अघातिकर्मणां स्थितिबन्धोऽसंख्यातवर्षमात्रः ।।३२६।।

अन्वयार्थ– (पुरिसे दु अणुवसंते) पुरुषवेद अनुपशान्त होने पर **(इत्थी उवसंतगो त्ति)** स्त्रीवेद जब तक उपशान्त है तब तक **(अद्धाए)** नीचे के काल का **(संखाभागासु गदेस)** संख्यात बहुभाग जाने पर **(अघादिठिदिबंधो)** अघातिकर्मों का स्थितिबंध **(असंखवस्सं)** असंख्यात वर्ष प्रमाण होता है। ।।३२६।।

टीकार्थ– पुरुषवेद के उदयकाल में जब तक स्त्रीवेद का उपशमन नष्ट नहीं होता है तब तक उस अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में संख्यात बहुभाग काल जाने पर अघातिकर्मों का स्थितिबंध असंख्यात वर्ष प्रमाण होता है। ।।३२६।।

णवरि य णामदुगाणं वीसियपडिभागदो हवे बंधो ।
तीसियपडिभागेण य बंधो पुण वेयणीयस्स ।।३२७।।

नवरि च नामद्विकयोर्वीसियप्रतिभागतो भवेद् बन्धः ।
तीसियप्रतिभागेन च बन्धः पुनो वेदनीयस्य ।।३२७।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ७१–७२ ।

तत्र नामगोत्रयो: पल्यासंख्यातैकभागमात्र: स्थितिबन्ध: । वीसियस्थितिबन्धे एतावति तीसियस्थितिबंध: कियानिति त्रैराशिकसिद्धो वेदनीयस्थितिबन्धो द्व्यर्धगुणितपल्यासंख्यात–भागमात्र:

प्र	फ	इ	लब्ध
२०	प / a	३०	प ३ / a २

घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्र: स्थितिबन्ध:। तत: संख्येयगुण–हीनो मोहनीयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्र: स्थितिबन्ध: ।।३२७।।

अन्वयार्थ– (णवरि य) विशेष यह है कि **(णामदुगाणं)** नामद्विक का अर्थात् नाम और गोत्र कर्म का **(बंधो)** स्थितिबंध **(वीसियपडिभागदो)** वीसिय के अनुपात से **(हवे)** होता है **(य)** और **(पुण)** पुन: **(वेयणीयस्स बंधो)** वेदनीय का बंध **(तीसियपडिभागेण)** तीसिय के अनुपात से होता है अर्थात् नाम–गोत्र से डेढ़गुणा वेदनीय का स्थितिबन्ध होता है।।३२७।।

टीकार्थ– उसमें से नाम–गोत्र का पल्य का असंख्यातवाँ भाग मात्र स्थितिबन्ध होता है। वीसिय का इतना स्थितिबन्ध होने पर तीसिय का कितना स्थितिबन्ध होता है? इसप्रकार त्रैराशिक से वेदनीय का स्थितिबन्ध डेढ़गुणित पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र सिद्ध होता है।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
२०	प / a = पल्य / असंख्यात	३०	(फल x इच्छा) / प्रमाण = (प / a) (३० / २०) = (प / a) (३ / २)

तीन घातियों का संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होता है। उससे मोहनीय का संख्यातगुणा हीन संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध होता है।।३२७।।

विशेषार्थ–मोहनीय कर्म का स्थितिबन्ध सबसे अल्प है। उससे तीन घातिया कर्मों का स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है क्योंकि इसका स्थितिबन्ध उतरने वाले जीव के सूक्ष्मसांपराय नामक दसवें गुणस्थान के प्रथम समय में प्रारंभ होता है और मोहनीय कर्मों का स्थितिबन्ध नवमें गुणस्थान में प्रारम्भ होता है। तीन घाति कर्मों की अपेक्षा नाम–गोत्र का स्थितिबन्ध दूसरा भाग अधिक अर्थात् डेढ़गुणा है।

अथ स्त्रीवेदोपशमनविनाशप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह–

थीअणुवसमे पढमे वीसकसायाण होदि गुणसेढी।
संढुवसमो त्ति मज्झे संखाभागेसु तीदेसु[1] ।।३२८।।

स्त्र्यनुपशमे प्रथमे विंशकषायाणां भवति गुणश्रेणी ।
षंढोपशम इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ।।३२८।।

१) जयध. पु. १४, पृ. ७३

ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु अन्तर्मुहूर्तकाले गतेषु एकस्मिन् समये स्त्रीवेदोपशमो विनष्टः । ततः प्रभृति स्त्रीवेदद्रव्यं संक्रमापकर्षणादिकरणयोग्यं सञ्जातमित्यर्थः । तस्मिन् स्त्रीवेदोपशमनविनाशप्रथमसमये स्त्रीवेदद्रव्यमपकृष्य तस्योदयरहितत्वादुदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन निक्षिपति। अत्र गुणश्रेण्यायामः शेषकर्मणां गलितावशेषगुणश्रेण्यायामसमानः । द्वादशकषायसप्तनोकषायाणां द्रव्यमपकृष्य पूर्वोक्तप्रकारेण गलितावशेषगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च निक्षिपति । एवं विंशतिकषायाणां गुणश्रेणीकरणं प्ररूपितम् । यावन्नपुंसकवेदोपशमोऽस्ति तावत्कालस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु तन्मध्ये ।।३२८।।

अब स्त्रीवेद के उपशमन के नाश की प्ररूपणा करने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं –

अन्वयार्थ–(थी अणुवसमे) स्त्रीवेद का उपशम नष्ट होने पर **(पढमे)** प्रथम समय में **(वीसकसायाण)** बीस कषायों की **(गुणसेढी)** गुणश्रेणी होती है। **(संढुवसमो त्ति)** नपुंसकवेद के उपशम पर्यन्त **(मज्झे)** बीचके काल में **(संखाभागेसु तीदेसु)** संख्यात बहुभाग काल व्यतीत होने पर। ।।३२८।।

टीकार्थ– उसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल में संख्यात हजार स्थितिबन्ध जाने पर एक विवक्षित समय में स्त्रीवेद का उपशम नष्ट हुआ। तब से स्त्रीवेद का द्रव्य संक्रमण और अपकर्षणादि करण के योग्य हुआ, यह अर्थ है। उस स्त्रीवेद के उपशमन के नाश के प्रथम समय में स्त्रीवेद के द्रव्य का अपकर्षण करके उसका उदय न होने से उदयावलि के बाहर गुणश्रेणि आयाम में, अन्तरायाम में और द्वितीय स्थिति में पूर्व में कहे गए विधान से निक्षेपण करता है। यहाँ गुणश्रेणि का आयाम शेष कर्मों की गलितावशेष गुणश्रेणिआयाम समान है। बारह कषाय और सात नोकषायों के द्रव्य का अपकर्षण करके पूर्व में कहे गए प्रकार से गलितावशेष गुणश्रेणिआयाम में, अन्तरायाम में और द्वितीय स्थिति में देता है। इसप्रकार बीस कषायों का गुणश्रेणिकरण कहा है। जब तक नपुंसकवेद का उपशम है तब तक के काल का संख्यात बहुभाग जाने पर उसमें (क्या होता है वह आगे की गाथा में कहेंगे)।।३२८।।

घादितियाणं णियमा असंखवस्सं तु होदि ठिदिबंधो।
तक्काले दुट्ठाणं रसबंधो ताण देसघादीणं[1] ।।३२९ ।।

घातित्रयाणां नियमादसंख्यवर्षस्तु भवति स्थितिबन्धः।
तत्काले द्विस्थानं रसबन्धस्तेषां देशघातिनाम् ।।३२९ ।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ७३–७४

घातित्रयस्य स्थितिबन्धः पल्यासंख्यातभागः स चासंख्यातवर्षमात्रः, नामगोत्रयोस्ततोऽसंख्येयगुणः पल्यासंख्यातभागमात्रः। वेदनीयस्य द्व्यर्धगुणितस्तावन्मात्रः,मोहनीयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः । अस्मिन्नेवावसरे तेषां चतुर्ज्ञानावरणीयत्रिदर्शनावरणीयपञ्चान्तरायाणां देशघातीनां लतादारुसमानद्विस्थानानुभागबन्धो भवति ।।३२९।।

अन्वयार्थ–(घादितियाणं) तीन घातियों का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबन्ध **(णियमा)** नियम से **(असंखवस्सं तु)** असंख्यात वर्ष **(होदि)** होता है। **(तक्काले)** उसी काल में **(ताण देसघादीणं)** उन तीन घातियों की देशघाति प्रकृतियों का लतादारु के समान द्विस्थानरूप अनुभागबंध होता है।।३२९।।

टीकार्थ– तीन घातियों का स्थितिबन्ध पल्य का असंख्यातवाँ भाग होता है। वह असंख्यात वर्ष प्रमाण है। नाम और गोत्र का उससे असंख्यातगुणा ऐसा पल्य का असंख्यातवाँ भाग मात्र होता है। मोहनीय का स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष होता है। इसी समय में उन चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण और पाँच अंतरायरूप देशघाति प्रकृतियों का लतादारु के समान द्विस्थानीय अनुभागबंध होता है।।३२९।।

अथ नपुंसकवेदोपशमनविनाशं तत्कालसम्भविक्रियाविशेषं च प्ररूपयितुं गाथाद्वयमाह–

संढणुवसमे पढमे मोहिगिवीसाण होदि गुणसेढी।
अंतरकदो त्ति मज्झे संखाभागासु तीदासु[1] ।।३३०।।

षंढानुपशमे प्रथमे मोहैकविंशानां भवति गुणश्रेणी ।
अंतरकृत इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ।।३३०।।

ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु एकस्मिन् समये नपुंसकवेदोपशमो विनष्टः । तत्प्रथमसमये नपुंसकवेदद्रव्यमपकृष्य इतरकर्मगलितावशेषगुणश्रेण्यायामसमाने उदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन निक्षिपति। अवशिष्टविंशतिमोहप्रकृतीनां द्रव्यमपकृष्य गलितावशेषगुणश्रेणिं प्राग्वत् करोति। नपुसंकवेदोपशमविनाशप्रथमसमयादारभ्य आरोहकानिवृत्तिकरणस्यान्तरकरणनिष्ठापनचरमसमयपर्यन्तं योऽन्तर्मुहूर्तकालस्तस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु तदन्तरे ।।३३०।।

अब नपुंसकवेद के उपशमन का नाश और उस काल में संभव होने वाली क्रिया विशेष का कथन करने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(संढणुवसमे) नपुंसकवेद के उपशमन का नाश होने पर **(पढमे)** प्रथम

१) जयध. पु. १४, पृ. ७५

समय में **(मोहगिवीसाण)** मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों की **(गुणसेढी)** गुणश्रेणि **(होदि)** होती है। **(अंतरकदो त्ति)** अंतरकृत पर्यन्त **(मज्झे)** मध्य के काल में **(संखाभागासु तीदासु)** संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर।।३३०।।

टीकार्थ–उसके अनन्तर संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर एक समय में नपुंसकवेद के द्रव्य का अपकर्षण करके अन्य कर्मों की गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम के समान उदयावलि के बाहर गुणश्रेणि आयाम में, अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में पूर्व में कहे गए विधान से निक्षेपण करता है। शेष रही बीस प्रकृतियों के द्रव्य का अपकर्षण करके गलितावशेष गुणश्रेणि पूर्व के समान ही करता है। नपुसंकवेद के उपशमन विनाश के प्रथम समय से चढ़ने वाले अनिवृत्तिकरण के अंतरकरण की समाप्ति के अंतिम समय पर्यन्त जो मध्य का अन्तर्मुहूर्तकाल है उसका संख्यात बहुभाग जाने पर उसमें (क्या होता है वह आगे की गाथा में कहेंगें)।।३३०।।

मोहस्स असंखेज्जा वस्सपमाणा हवेज्ज ठिदिबंधो।
ताहे तस्स य जादं बंधं उदयं च दुट्ठाणं[१]।।३३१।।

मोहस्यासंख्येयानि वर्षप्रमाणानि भवेत् स्थितिबन्धः ।
तस्मिन् तस्य च जातो बन्ध उदयश्च द्विस्थानम् ।।३३१।।

मोहनीयस्यासंख्यातवर्षमात्रः स्थितिबन्धः । ततोऽसंख्येयगुणो घातित्रयस्य स्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येगुणो नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः । ततो विशेषाधिको वेदनीयस्य स्थितिबन्धः । तस्मिन्नेवावसरे मोहनीयस्य द्विस्थानानुभागबन्धोदयौ जातौ ।।३३१।।

अन्वयार्थ–(मोहस्स) मोहनीय का **(ठिदिबंधो)** स्थितिबन्ध **(असंखेज्ञा वस्सपमाणा)** असंख्यात वर्ष प्रमाण **(हवेज्ज)** होता है। **(य)** और **(ताहे)** उस समय में **(तस्स)** उसका **(दुट्ठाणं)** द्विस्थानरूप **(बंधं उदयं च)** अनुभागबंध और उदय **(जादं)** हुआ।।३३१।।

टीकार्थ–मोहनीय का असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबंध होता है। तीन घातियों का उससे असंख्यातगुणा स्थितिबन्ध होता है। नाम और गोत्र का उससे असंख्यातगुणा स्थितिबंध होता है। वेदनीय का स्थितिबंध उससे अधिक होता है। उसी समय में मोहनीय का लता व दारु समान द्विस्थानरूप अनुभाग बन्ध और उदय हुआ। ।।३३१।।

विशेषार्थ – उपशमश्रेणि पर चढ़ते हुए जिस स्थान पर पहुँचकर अन्तरकरण करके मोहनीय का संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध करता है, उतरते समय उस स्थान को प्राप्त करने

१) जयध. पु. १४, पृ. ७५–७७

के अन्तर्मुहूर्त पूर्व विद्यमान इस जीव के उपशमश्रेणि से गिरने के कारण मोहनीय का असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध हो जाता है, क्योंकि चढ़ने में जितना समय लगता है उससे उतरने में विशेषहीन समय लगता है। इसलिए प्रकृत में उपयुक्त अर्थ कहना चाहिए। यथा – चढ़ते समय का सूक्ष्मसांपराय काल और उतरते समय का सूक्ष्मसांपराय काल इन दोनों को मिलाकर देखने पर मालूम पड़ता है कि चढ़ते समय के सूक्ष्मसांपराय काल से उतरते समय का सूक्ष्मसांपराय काल अन्तर्मुहूर्त कम है। इसीप्रकार चढ़ते समय और उतरते समय के सब कालों के विषय में जानना चाहिए। इससे हमें यह पता लग जाता है कि उतरते समय मोहनीय का असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबंध किस स्थान से प्रारम्भ हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

अथावतरणे लोभासंक्रमप्रतिघातादिप्ररूपणार्थं गाथात्रयमाह–

लोहस्स असंकमणं छावलितीदेसुदीरणत्तं च ।
णियमेण पडंताणं मोहस्सणुपुव्विसंकमणं[1] ।।३३२।।

लोभस्यासंक्रमणं षडावल्यतीतेषूदीरणत्वं च ।
नियमेन पतत‍ां मोहस्यानुपूर्विसंक्रमणम् ।।३३२।।

अवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयादारभ्याधः सर्वावस्थासु बध्यमानज्ञानावरणादि–कर्मणां समयप्रबद्धद्रव्यमारोहके षडावलिका व्यतिक्रम्य उदीर्यते इति नियमः प्रागुक्तस्तं परित्यज्य इदानीं बन्धावलिव्यतिक्रमे उदीर्यते। अवतारकानिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्य लोभस्यासंक्रमोऽधः सर्वत्रारोहकविपर्ययेण प्रतिहन्यते। संज्वलनलोभस्य मायादिषु संक्रमणशक्ति–परिणतिर्जातेत्यर्थः। तथा मोहस्य नपुंसकादिप्रकृतींना आनुपूर्वीसंक्रमश्च नष्टः। आरोहणे य आनुपूर्वीसंक्रमः प्रागुक्तस्तं परित्यज्य इदानीमनानुपूर्व्या बध्यमाने सजातीयप्रकृत्यन्तरे यत्र तत्र वा संक्रमो जातः इत्यर्थः ।।३३२।।

अब उतरते समय लोभ संक्रमण का प्रतिघात आदिकों का प्ररूपण करने के लिए तीन गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(लोहस्स असंकमणं) लोभ का असंक्रमण, **(छावलितीदेसुदीरणत्तं च)** छह आवलि व्यतीत होने पर उदीरणा होना और **(मोहस्सणुपुव्विसंकमणं)** मोह का आनुपूर्वी संक्रमण यह **(णियमेन)** नियम से **(पडंताणं)** गिरनेवाले के विपरीत होते है। ('विवरीयं पडिहण्णदि' यह आगे की गाथा का पद यहाँ लेना चाहिए।)।।३३२।।

टीकार्थ–उतरने वाले सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय से नीचे सभी अवस्थाओं में बाँधे

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ७७–७८

जाने वाले ज्ञानावरणादि कर्मों के समयप्रबद्ध का द्रव्य छह आवलि व्यतीत होने पर उदय में आता है ऐसा नियम पूर्व में कहा था। अब वह नियम छोड़कर बन्धावलि जाने पर उदय में आता है। उतरने वाले अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय से लोभ का असंक्रम नीचे सर्वत्र चढ़नेवाले के विपरीत रूप से घाता जाता है। संज्वलन लोभ की मायादिक में संक्रमित होने की शक्ति उत्पन्न हुई यह अर्थ है। उसी प्रकार मोह की नपुंसकादि प्रकृतियों का आनुपूर्वी संक्रमण नष्ट हुआ। चढ़ने समय जो आनुपूर्वी संक्रमण पूर्व में कहा गया है उसे छोड़कर आनूपूर्वी से रहित बध्यमान दूसरी किसी भी सजातीय प्रकृतियों में संक्रम होने लगता है यह अर्थ है।।३३२।।

विशेषार्थ– जयधवला में बतलाया है कि प्रकृत विषय को लक्ष्य में लेकर चूर्णिसूत्र में जो 'सव्वस्स' पद आया है सो उसका आशय यह है कि उतरते समय सूक्ष्मसाम्पराय से लेकर ही छह आवलि जाने पर उदीरणा होती है यह नियम नहीं रहता। अन्यथा चूर्णिसूत्र में 'सव्वस्स' यह विशेषण देने की क्या आवश्यकता थी। किन्तु दूसरे आचार्य ऐसा मानते हैं कि उतरने वाले जीव के जब तक संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तब तक छह आवलि जाने पर उदीरणा होती है यही नियम रहता है। किन्तु जहाँ से असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होने लगता है वहाँ से यह नियम नहीं रहता, किन्तु एक बन्धावलि के बाद ही उदीरणा प्रारम्भ हो जाती है। पर जयधवलाकार 'सव्वस्स' पद होने से पूर्वोक्त अर्थ को ही ठीक मानते हैं।

विवरीयं पडिहण्णदि विरियादीणं च देसघादित्तं ।
तह य असंखेज्जाणं उदीरणा समयबद्धाणं[1]।।३३३।।

विपरीतं प्रतिहन्यते वीर्यादीनां च देशघातित्वम् ।
तथा चासंख्येयानामुदीरणा समयबद्धानाम् ।।३३३।।

एवमुक्तप्रकारेण स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु वीर्यान्तरायस्यानुभागबन्धो देशघातिस्वरूपं परित्यज्य सर्वघातिस्वरूपो जातः । ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु मतिज्ञानावरणीयोप–भोगान्तराययोरनुभागबन्धो देशघातिरूपं मुक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः । ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु चक्षुर्दर्शनावरणीयस्यानुभागबन्धो देशघातिरूपं मुक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः । ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु श्रुतज्ञानावरणीयचक्षुर्दर्शनावरणीयभोगान्तरायाणामनुभागबन्धो देशघातिरूपं मुक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः । ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु अवधिज्ञानावरणीयावधिदर्शना–वरणीयलाभान्तरायाणामनुभागबन्धो देशघातिरूपं त्यक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः । ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु मनःपर्ययज्ञानावरणीयदानान्तराययोरनुभागबन्धो देशघातिरूपं त्यक्त्वा

१) जयध. पु. १४, पृ. ७९–८०

सर्वघातिरूपो जातः । ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु असंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणा प्रतिहन्यते।।३३३।।

अन्वयार्थ–(च) और **(विरियादीणं)** वीर्यान्तराय आदिकों का **(देसघादित्तं)** देशघातित्व **(तह य)** और वैसे ही **(असंखेज्जाणं समयबद्धाणं)** असंख्यात समयप्रबद्धों की **(उदीरणा)** उदीरणा **(विवरीयं पडिहण्णदि)** विपरीत होकर नष्ट होती है।।३३३।।

टीकार्थ–इसप्रकार ऊपर कहे गए प्रकार से हजारों स्थितिबन्ध जाने पर वीर्यान्तराय का अनुभागबन्ध देशघाति स्वरूप को छोड़कर सर्वघाति स्वरूप हुआ। उसके पश्चात् बहुत स्थितिबन्ध जाने पर मतिज्ञानावरणीय और उपभोगान्तराय का अनुभागबन्ध देशघाति स्वरूप को छोड़कर सर्वघातिरूप हुआ। उसके पश्चात् बहुत स्थितिबंध जाने पर चक्षुदर्शनावरणीय का अनुभागबन्ध देशघातिरूप को छोड़कर सर्वघातिरूप हुआ। उसके पश्चात् बहुत स्थितिबन्ध जाने पर श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, भोगान्तराय का अनुभागबन्ध देशघातिरूप को छोड़कर सर्वघातिरूप हुआ। उसके बाद बहुत स्थितिबंध जाने पर अवधिज्ञानावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तराय का अनुभाग बन्ध देशघातिरूप को छोड़कर सर्वघातिरूप हुआ। उसके पश्चात् बहुत स्थितिबन्ध जाने पर मनःपर्ययज्ञानावरणीय व दानान्तराय का अनुभागबंध देशघातिरूप को छोडकर सर्वघातिरूप हुआ। उसके पश्चात् बहुत स्थितिबन्ध जाने पर असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा नष्ट होती है।।३३३।।

लोयाणमसंखेज्जं समयपबद्धस्स होदि पडिभागो।
तेत्तियमेत्तद्दव्वस्सुदीरणा वट्टदे तत्तो[1] **।।३३४।।**

लोकानामसंख्येयं समयप्रबद्धस्य भवति प्रतिभागः।
तावन्मात्रद्रव्यस्योदीरणा वर्तते ततः ।।३३४।।

गुणश्रेणीकरणार्थमपकृष्टद्रव्यस्यारोहके यः पल्यासंख्यातभागमात्रो भागहारः प्रागुक्तः सोऽद्य यावदायातोऽस्मिन्नवसरे प्रतिहतः । इदानीमसंख्यातलोकमात्रो भागहारोऽपकृष्टद्रव्यस्य सञ्जातः । ततः कारणादसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणां विना एकसमयप्रबद्धासंख्येयभागमात्रोदीरणा सञ्जातेत्यर्थः ।।३३४।।

अन्वयार्थ– (समयपबद्धस्स) समयप्रबद्ध का **(लोयाणमसंखेज्जं)** असंख्यात लोकमात्र **(पडिभागो)** प्रतिभागहार **(होदि)** होता है **(तत्तो)** इसलिए **(तेत्तियमेत्तद्दव्वस्सुदीरणा)** उतने मात्र द्रव्य की उदीरणा **(वट्टदे)** होती है।।३३४।।

टीकार्थ–गुणश्रेणि करने के लिए अपकृष्ट द्रव्य का आरोहक में जो पल्य का असंख्यातवाँ

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ८१

भागमात्र भागहार पूर्व में कहा गया है, वही अब तक प्रवर्तित होता था, अब वह नष्ट हुआ। अब अपकृष्ट द्रव्य का असंख्यात लोकमात्र भागहार हुआ। इसलिए असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा न होकर एक समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भागमात्र की उदीरणा हुई, यह अर्थ है।।३३४।।

अथ स्थितिबन्धक्रमकरणविपर्ययप्ररूपणार्थं गाथासप्तकमाह–

तक्काले मोहणियं तीसीयं वीसियं च वेयणियं।
मोहं वीसिय तीसिय वेयणिय कमं हवे तत्तो[1] ।।३३५।।

तत्काले मोहनीयं तीसियं वीसियं च वेदनीयम्।
मोहं वीसियं तीसियं वेदनीयं क्रमं भवेत् ततः ।।३३५।।

तस्मिन् समयप्रबद्धस्यासंख्यातलोकमात्रभागहारप्रवेशकाले सर्वतः स्तोकः मोहनीयस्य स्थितिबन्धः पल्यासंख्यातभागमात्रः $\frac{प}{a७}$ ततोऽसंख्येयगुणो घातित्रयस्य $\frac{प}{a६}$ ततोऽसंख्येयगुणो नामगोत्रयोः $\frac{प}{a५}$ ततो विशेषाधिको वेदनीयस्य $\frac{प\;३}{a५\;२}$ ततःपरं संख्यातसहस्र–स्थितिबन्धेषु गतेषु मोहस्य स्थितिबन्धः सर्वतः स्तोकः पल्यासंख्यातभागमात्रः $\frac{प}{a६}$ व्युत्क्रमेण नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः $\frac{प}{a५}$ ततो विशेषाधिको घातित्रयस्य $\frac{प\;३}{a५\;२}$ विशेषाधिको वेदनीयस्य $\frac{प\;३}{a५\;२}$ ।।३३५।।

अब स्थितिबन्ध के क्रमकरण के विपर्यय का निरूपण करने के लिए सात गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(तक्काले) उस काल में **(मोहणियं तीसियं वीसियं च वेयणियं)** मोहनीय, तीसिय, वीसिय और वेदनीय यह क्रम है। **(तत्तो)** उसके पश्चात् **(मोहं, वीसिय, तीसिय, वेयणिय)** मोहनीय, वीसिय, तीसिय और वेदनीय ऐसा **(कमं हवे)** क्रम होता है।।३३५।।

टीकार्थ– उस समयप्रबद्ध के असंख्यात लोकमात्र भागहार के प्रवेशकाल में सबसे कम मोहनीय का पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र $\frac{प}{a७}$ (७ बार असंख्यात का भाग जानना चाहिए। आगे की अपेक्षा छोटी संख्या दिखाने के लिए ७ बार भाग दिया) स्थितिबन्ध होता है। उससे असंख्यात गुणित तीन घाति का $\frac{प}{a६}$, उससे असंख्यातगुणित नाम–गोत्र का $\frac{प}{a५}$, उससे विशेष अधिक वेदनीय का $\frac{प\;३}{a५\;२}$ स्थितिबन्ध दुगुणा होता है।(इसलिए ३/२ से गुणा किया।)उसके आगे

१) जयध. पु. १४, पृ. ८१

संख्यात हजार स्थितिबन्ध जाने पर मोहनीय का स्थितिबन्ध सबसे कम पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र $\frac{प}{a६}$,उससे विपरीत क्रम से नाम गोत्र का असंख्यातगुणा $\frac{प}{a५}$ उससे विशेष अधिक तीन घाति का $\frac{प\ ३}{a५\ २}$,उससे विशेष अधिक वेदनीय का $\frac{प\ \overset{|}{३}}{a५\ २}$ स्थितिबन्ध होता है। (विशेष अधिक दिखाने के लिए ऊपर खड़ी रेखा रखी है)।।३३५।।

मोहं वीसिय तीसिय तो वीसिय मोहतीसियाण कमं।
वीसिय तीसिय मोहं अप्पाबहुगं तु अविरुद्धं[१] ।।३३६।।

मोहं वीसियं तीसियं ततो वीसियं मोहतीसियानां क्रमम् ।
वीसियं तीसियं मोहमल्पबहुकं त्वविरुद्धम् ।।३३६।।

ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु सर्वतः स्तोको मोहस्य स्थितिबन्धः $\frac{प}{a५}$ ततोऽसंख्येयगुणो नामगोत्रयोः $\frac{प}{a४}$ ततो विशेषाधिको घातित्रयवेदनीययोः $\frac{प\ ३}{a४\ २}$ ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु सर्वतः स्तोको नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्यासंख्यातैक-भागमात्रः $\frac{प}{a४}$ ततो मोहनीयस्य विशेषाधिकः $\frac{\overset{|}{प}}{a४}$ ततो घातित्रयवेदनीययोर्विशेषाधिकः $\frac{\overset{||}{प}}{a४}$ संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु सर्वतः स्तोको नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः $\frac{प}{a३}$ ततो विशेषाधिको घातित्रयवेदनीययोः $\frac{प\ ३}{a३\ २}$ ततोऽर्द्धाधिको मोहनीयस्य $\frac{प२}{a३}$ एवं सिद्धान्ता-विरोधेन स्थितिबन्धाल्पबहुत्वं ज्ञातव्यम् ।।३३६।।

अन्वयार्थ-(मोहं वीसिय तीसिय) मोहनीय, वीसिय, तीसिय **(तो)** उसके अनन्तर **(वीसिय मोह तीसियाण)** वीसिय, मोहनीय और तीसिय ऐसा **(कमं)** क्रम होता है। उसके पश्चात् **(वीसिय, तीसिय मोहं)** वीसिय तीसिय और मोह ऐसा क्रम होता है। इनका **(अप्पाबहुगं तु)** अल्पबहुत्व **(अविरुद्धं)** अविरोधरूप से जानना चाहिए ।।३३६।।

टीकार्थ –उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्ध जाने पर सबसे कम मोह का स्थितिबन्ध $\frac{प}{a५}$ होता है। (आगे के स्थितिबंध से असंख्यातगुणा कम दिखाने के लिए एक असंख्यात का भाग कम किया। ऐसा ही आगे भी जानना चाहिए।) उससे असंख्यातगुणा नाम-गोत्र का $\frac{प}{a४}$ उससे विशेष अधिक तीन घातिया और वेदनीय का $\frac{प\ ३}{a४\ २}$ (नाम गोत्र से डेढ़गुणा) होता है।

१) जयध. पु. १४, पृ. ८१

उसके अनन्तर संख्यात हजार स्थितिबन्ध जाने पर सबसे कम नाम गोत्र का स्थितिबन्ध पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र [प/a४] उससे मोहनीय का विशेष अधिक है। [प'/a४] उससे तीन घाति और वेदनीय का विशेष अधिक [प''/a४] होता है। उसके अनन्तर संख्यात हजार स्थितिबंध जाने पर सबसे कम नाम-गोत्र का स्थितिबंध [प/a३] , उससे तीन घाति और वेदनीय का विशेष अधिक है। [प ३/a३ २] उससे मोहनीय का अर्ध से अधिक [प२/a३] (नाम व गोत्र का दुगुणा) होता है। इस प्रकार सिद्धान्त में विरोध न आते हुए स्थितिबन्ध का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।।३३६।।

कमकरणविणट्ठादो उवरिं ठविदा विसेसअहियाओ।
सव्वासिं तं णट्ठे हेट्ठा सव्वासु अहियकमं ।।३३७।।

क्रमकरणविनाशादुपरि स्थिता विशेषाधिकाः ।
सर्वासां तन्नष्टेऽधस्तना सर्वास्वधिकक्रमम् ।।३३७।।

क्रमकरणविनाशस्य व्युत्क्रमणकालस्योपरि तत्कालावसानपल्यासंख्यातभागमात्र-स्थितिबन्धात्प्रभृत्युत्तरकाले सर्वकर्मप्रकृतीनां स्थितिबन्धाः विशेषाधिकाः स्थापिता रचिता इत्यर्थः । क्रमकरणविनाशादधस्तात्तत्कालादिमाऽसंख्येयवर्षमात्रस्थितिबन्धात्पूर्वं संख्यातवर्ष-सहस्रस्थितिबन्धपर्यन्तमायुर्वर्जितसप्तकर्मप्रकृतीनां स्थितिबन्धाः विशेषाधिकाः।।३३७।।

अन्वयार्थ- (कमकरणविणट्ठादो उवरिं) क्रमकरण का नाश होने पर **(सव्वासिं)** सभी कर्मों का **(विसेस अहियाओ)** स्थितिबन्ध विशेषाधिक रूप से **(ठविदा)** रचित है। **(तं णट्ठे हेट्ठा)** उस क्रमकरण के नाश के पूर्व में **(सव्वासु)** सर्व स्थितिबंध (अपने-अपने पूर्व स्थितिबन्ध से) **(अहियकमं)** क्रम से अधिक हैं।।३३७।।

टीकार्थ-क्रमकरण का विनाश होने पर उस काल के अंतिम पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबन्ध से उत्तर काल में सर्व प्रकृतियों के स्थितिबन्ध विशेष अधिकरूप से स्थापित हैं। अर्थात् नाम-गोत्र से तीसिय का विशेष अधिक और तीसिय से मोहनीय का विशेष अधिक है। क्रमकरण का विनाश होने के पूर्व में उस क्रमकरणकाल के प्रारम्भ में असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबन्ध होने के पूर्व में संख्यात हजार वर्ष स्थितिबन्ध होने तक आयु छोड़कर सात कर्म प्रकृतियों का स्थितिबन्ध (अपने-अपने पूर्व स्थितिबन्ध से उत्तर स्थितिबन्ध) विशेष अधिक हैं। (गुणकार रूप नहीं है)।।३३७।।

जत्तो पाये होदि हु असंखवस्सप्पमाणठिदिबंधो ।
तत्तो पाये अण्णं ठिदिबंधमसंखगुणियकमं[१] ।।३३८।।

यत: प्रभृति भवति ह्यसंख्यवर्षप्रमाणस्थितिबन्ध: ।
तत: प्रभृत्यन्यं स्थितिबन्धमसंख्यगुणितक्रमम् ।।३३८।।

यत: प्रभृति नामगोत्रादिकर्मप्रकृतीनामसंख्यातवर्षमात्रस्थितिबन्ध: प्रारब्धस्तत: प्रभृति पूर्वपूर्वस्थितिबन्धादुत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽन्यो संख्येयगुणो भवति यावत्सर्वपश्चिम: पल्या-संख्यातभागमात्र: स्थितिबन्धो जायते ।।३३८।।

अन्वयार्थ-(जत्तो पाये) जहाँ से **(असंखवस्सप्पमाणठिदिबंधो)** असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध **(होदि हु)** प्रारम्भ होता है **(तत्तो पाये)** वहाँ से प्राय: **(अण्णं ठिदिबंधं)** अन्य स्थितिबन्ध **(असंखगुणियकमं)** क्रम से असंख्यातगुणित होता है अर्थात् पूर्व स्थितिबन्ध से आगे का स्थितिबन्ध असंख्यातगुणित होता है।।३३८।।

टीकार्थ -जहाँ से नाम-गोत्रादि कर्म प्रकृतियों का असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबन्ध शुरु हुआ वहाँ से आगे पूर्व-पूर्व स्थितिबन्ध से उत्तर-उत्तर अन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है। जब तक सबसे अंतिम पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबन्ध होता है। (तब तक यह क्रम जानना चाहिए)।।३३८।।

एवं पल्लासंखं संखं भागं च होइ बंधेण ।
एत्तो पाये अण्णं ठिदिबंधो संखगुणियकमं[२] ।।३३९।।

एवं पल्यासंख्यं संख्यं भागं च भवति बन्धेन ।
इत: प्रभृत्यन्य: स्थितिबन्ध: संख्यगुणितक्रम: ।।३३९।।

एवं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातभागप्रमितेषु स्थितिबन्धेषु सर्वपश्चिमपल्या-संख्यातभागमात्रस्थितिबन्धात्परं युगपदेव सप्तकर्मणां पल्यसंख्यातभागमात्र: स्थितिबन्धो जात: । तत्र वीसियस्थितिबन्धात् तीसियस्थितिबन्धो द्व्यर्धगुणित: चालीसियस्थितिबन्धो द्विगुण इति विशेष: पूर्ववद्द्रष्टव्य: । आरोहकस्य क्रमेणोपलभ्यमानो दूरापकृष्टिविषयस्थितिबन्ध: कथमवरोहकस्यैकवारमेव सम्भवतीति नाशङ्कनीयं प्रतिपातिपरिणाममाहात्म्येन तत्र तथाभावस्य विरोधाभावात्। इत: प्रभृत्यनन्तरानन्तरस्थितिबन्धोऽन्य: संख्यातगुणित: सप्तकर्मणां जायते ।।३३९।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ८४ २) जयध. पु. १४, पृ. ८६

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार **(पल्लासंखं)** पल्य का असंख्यातवाँ भाग **(च)** और **(संखं भागं)** संख्यातवाँ भाग **(बंधेण)** बंध की अपेक्षा से **(होइ)** होता है। **(एत्तो पाये)** यहाँ से (पल्य का संख्यातवाँ भाग स्थितिबन्ध होने पर वहाँ से)**(अण्णं ठिदिबंधो)** अन्य स्थितिबंध **(संखगुणियकमं)** क्रम से संख्यातगुणित होता है।।३३९।।

टीकार्थ–इस प्रकार पल्य का असंख्यातवाँ भागप्रमाण संख्यात हजार स्थितिबन्ध होने पर एक ही समय में सात कर्मों का स्थितिबन्ध पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र होता है। उसमें से वीसिय के स्थितिबन्ध से तीसिय का स्थितिबन्ध डेढ़गुणा व चालीसिय का स्थितिबन्ध दुगुणा होता है। यह विशेष पूर्व के समान ही जानना चाहिए। चढ़ने वाले को क्रम से प्राप्त होने वाला दूरापकृष्टि–विषयक स्थितिबन्ध उतरने वाले को एक ही समय में कैसे संभव है ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए क्योंकि गिरने वाले के परिणाम के माहात्म्य से वहाँ वैसा होने में विरोध नहीं आता है। यहाँ से आगे सातों कर्मों का दूसरा अन्य–अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणित होता है।।३३९।।

विशेषार्थ–जब पल्योपम का असंख्यातवाँ भागप्रमाण अंतिम स्थितिबंध हुआ तब उसके आगे एक ही बार में पल्य का संख्यातवाँ भागप्रमाण स्थितिबन्ध होना शुरु होता है।

शंका– चढ़ते समय तो दूरापकृष्टि संज्ञक पल्योपम का संख्यातवाँ भागप्रमाण स्थितिबंध क्रम से प्राप्त हुआ था, यहाँ पल्योपम के असंख्यातवें भाग के आगे एक बार में पल्योपम का संख्यातवाँ भागप्रमाण कैसे होने लगता है?

समाधान– उतरते समय विशुद्धिरूप परिणामों में हानि के कारण ऐसा हुआ है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मोहस्स य ठिदिबंधो पल्ले जादे तदो दु परिवड्ढी।
पल्लस्स संखभागं इगिविगलासण्णिबंधसमं[१] ।।३४०।।

मोहस्य च स्थितिबंधः पल्ये जाते ततस्तु परिवृद्धिः
पल्यस्य संख्यभागमेकविकलासंज्ञिबन्धसमम् ।।३४०।।

एवं संख्यातगुणितवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु सर्वपश्चिमस्थिति–बन्धो नामगोत्रयोः पल्यसंख्यातैकभागमात्रः $\boxed{\frac{प}{५}}$ **ततस्तीसियस्थितिबन्धो द्व्यर्धगुणितः** $\boxed{\frac{प\ ३}{५\ २}}$

१) जयध. पु. १४, पृ. ४६

ततः मोहनीयस्थितिबन्धो द्विगुणः $\frac{\text{प २}}{\text{५}}$ तदनन्तरस्थितिबन्धो मोहस्य सम्पूर्णपल्यमात्रः $\boxed{\text{प}}$ अत्र वृद्धिप्रमाणं पल्यसंख्यातबहुभागमात्रं $\frac{\text{प ५−२}}{\text{५}}$ तीसियस्थितिबन्धः पल्यत्रिचतुर्भागमात्रः $\frac{\text{प ३}}{\text{४}}$ अत्र वृद्धिप्रमाणं अनन्तराधस्तनस्थितिप्रमाणेन $\frac{\text{प ३}}{\text{५ २}}$ अनेन साधिकपल्यचतुर्भाग – $\frac{\text{प १}}{\text{४}}$ न्यूनपल्यमात्रं $\frac{\text{प ५।२}}{\text{५ ४}}$ वीसियस्थितिबन्धः पल्यार्धमात्रः $\frac{\text{प १}}{\text{२}}$ अत्र वृद्धिप्रमाणं अनन्तरा–धस्तनस्थितिबन्धमात्रेण पल्यसंख्यातभागेन $\frac{\text{प}}{\text{५}}$ न्यूनपल्यार्धमात्रं $\frac{\text{प १−}}{\text{२}}$ पूर्वस्थितिबन्धे उत्तरोत्तरस्थितिबन्धे शोधिते अवशेषमात्रं वृद्धिप्रमाणं सर्वत्र ज्ञातव्यम् । चालीसियस्थितिबन्धस्य यदि पल्यमात्रः स्थितिबन्धो लभ्यते तदा तीसियस्थितिबन्धस्य कीदृशः स्थितिबन्धो भवति–

प्र	फ	इ
४०	प	३०

इति त्रैराशिकसिद्धः पल्यत्रिचतुर्भागमात्रस्तीसियस्थितिबन्धः। तथा वीसियस्थितिबन्धमिच्छाराशिं कृत्वा त्रैराशिकसिद्धो वीसियस्थितिबन्धः पल्यार्धमात्रः ।

प्र	फ	इ
४०	प	२०

एवं मोहनीयस्य स्थितिबन्धो यदा पल्यमात्रो जातः ततः परमनन्तरानन्तरस्थितिबन्धोत्सरणेषु पल्यसंख्यातैकभागमात्रं वृद्धिप्रमाणं द्रष्टव्यम् । ततः संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु मोहस्य स्थितिबन्धः एकेन्द्रियस्थिति–बन्धसदृशः सागरोपमचतुःसप्तमभागमात्रः $\frac{\text{सा ४}}{\text{७}}$ तीसियस्थितिबन्धः सागरोपमत्रिसप्तमभाग–मात्रः $\frac{\text{सा ३}}{\text{७}}$ वीसियस्थितिबन्धः सागरोपमद्विसप्तमभागमात्रः $\frac{\text{सा २}}{\text{७}}$ एवं प्रतिकाण्डकं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशा मोहनीयस्य स्थितिबन्धाः परमागमोक्तप्रतिभागक्रमेण ज्ञातव्याः ॥३४०॥

अन्वयार्थ–(मोहस्स य ठिदिबंधो) मोह का स्थितिबन्ध **(पल्ले जादे)** पल्यप्रमाण होता है **(तदो दु)** तब से स्थितिबन्ध में **(पल्लस्स संखभागं)** पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण की **(परिवड्ढी)** वृद्धि होती है। पुनः क्रम से **(इगिविगलासण्णिबंधसमं)** एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान स्थितिबंध होता है॥३४०॥

टीकार्थ –इस प्रकार संख्यातगुणित वृद्धिक्रम से संख्यात हजार स्थितिबन्धोत्सरण होने पर सबसे अंतिम स्थितिबंध नाम–गोत्र का पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र $\frac{\text{प}}{\text{५}}$ होता है। (यहाँ संख्यात की संदृष्टि ५ दी है) उससे तीसिय का स्थितिबन्ध डेढ़गुणा होता है। $\frac{\text{प ३}}{\text{५ २}}$ उससे मोहनीय का स्थितिबंध दुगुणा होता है। $\frac{\text{प २}}{\text{५}}$ उसके बाद का मोह का स्थितिबंध संपूर्ण पल्यप्रमाण होता है। $\boxed{\text{प}}$ (पल्य) यहाँ वृद्धि का प्रमाण पल्य का संख्यात बहुभागमात्र ही है। $\frac{\text{प ५−२}}{\text{५}}$ (वृद्धिप्रमाण = वर्तमान स्थितिबन्ध – पूर्वस्थितिबन्ध अर्थात् $\text{प} - \frac{\text{प २}}{\text{५}}$ समच्छेद करके $\frac{\text{प ५}}{\text{५}} - \frac{\text{प २}}{\text{५}} = \frac{\text{प(५−२)}}{\text{५}}$ (समान संख्या निकालकर शेष रहे ५ गुणकार में ऋण राशि का

दो गुणकार कम किया)। पल्य का प्रमाण १०० माना। पूर्वस्थितिबंध $=\frac{\text{पल्य}\times\text{२}}{\text{५}}=\frac{\text{१००}\times\text{२}}{\text{५}}=\text{४०}$

वर्तमानस्थितिबंध–पूर्वस्थितिबंध=वृद्धि का प्रमाण १००–४०=६०। इसी को ऐसा लिखे

$\text{१००}-\frac{\text{१००}\times\text{२}}{\text{५}}=\frac{\text{१००}\times\text{५}}{\text{५}}-\frac{\text{१००}\times\text{२}}{\text{५}}=\frac{\text{१००}\times\text{५}-\text{२}}{\text{५}}=\text{६०}$ अर्थात् पूर्व में ४० समय स्थितिबंध होता था अब उसमें ६० समयों की वृद्धि होकर पूर्ण १०० समयप्रमाण स्थितिबंध होने लगा। तीसिय का स्थितिबन्ध पल्य का तीन चतुर्थांश भागमात्र $\boxed{\frac{\text{प ३}}{\text{४}}}$ होता है।

यहाँ वृद्धि का प्रमाण अनन्तर पूर्व स्थिति का प्रमाण $\boxed{\frac{\text{प ३}}{\text{५ २}}}$ और पल्य का चतुर्थ भाग $\boxed{\frac{\text{प १}}{\text{४}}}$ पल्य में से कम करने पर जो प्रमाण आता है उतना है $\boxed{\frac{\text{प५।२}}{\text{५ ४}}}$ इसका स्पष्टीकरण–

पूर्व स्थितिबंध+पल्य का चौथा भाग $=\frac{\text{प ३}}{\text{५।२}}+\frac{\text{प}}{\text{४}}=$ समच्छेद $\frac{\text{प ३}\times\text{२}}{\text{५।२}\times\text{२}}+\frac{\text{प}\times\text{५}}{\text{४}\times\text{५}}=$ $\frac{\text{प६}+\text{५}}{\text{५।४}}=\frac{\text{प११}}{\text{५।४}}$ समान संख्या रखकर शेष रहे गुणकारों का जोड किया। इतना प्रमाण पल्य में से कम करने पर वृद्धि का प्रमाण आता है। $\frac{\text{प}-\text{प११}}{\text{५।४}}=$ समच्छेद $\frac{\text{प ५}\times\text{४}}{\text{५}\times\text{४}}-\frac{\text{प११}}{\text{५ ४}}=\frac{\text{प२०}}{\text{५ ४}}-\frac{\text{प११}}{\text{५ ४}}$ $=\frac{\text{प ९}}{\text{५ ४}}$ इसका रूपान्तर ऐसा किया है $\frac{\text{प५}\times\text{२}-\text{१}}{\text{५।४}}=\boxed{\frac{\text{प५।२}}{\text{५।४}}}$

दूसरी विधि से निकालने पर भी यह उत्तर आता है।

वर्तमान का स्थितिबंध–पूर्व स्थितिबंध = वृद्धि का प्रमाण

$\frac{\text{प ३}}{\text{४}}-\frac{\text{प ३}}{\text{५।२}}=$ समच्छेद $\frac{\text{प५}\times\text{३}}{\text{४}\times\text{५}}-\frac{\text{प ३}\times\text{२}}{\text{५।२}\times\text{२}}=\frac{\text{प१५}}{\text{५।४}}-\frac{\text{प ६}}{\text{५।४}}=\frac{\text{प१५}-\text{६}}{\text{५।४}}=\frac{\text{प ९}}{\text{५ ४}}$

इतना प्रमाण पूर्व स्थितिबंध में मिलानेपर $\boxed{\frac{\text{प ३}}{\text{४}}}$ यह उत्तर आता है।

पूर्व स्थितिबंध+वृद्धि का प्रमाण = वर्तमान का स्थितिबंध $=\text{३०}+\text{४५}=\text{७५}$

$\frac{\text{प ३}}{\text{५।२}}+\frac{\text{प ९}}{\text{५।४}}=$ समच्छेद $\frac{\text{प ३}\times\text{२}}{\text{५।२}\times\text{२}}+\frac{\text{प ९}}{\text{५।४}}=\frac{\text{प६}+\text{९}}{\text{५।४}}=\frac{\text{प१५}}{\text{५।४}}=\boxed{\frac{\text{प ३}}{\text{४}}}$

अंकसंदृष्टि–पूर्वस्थितिबंध $+\frac{\text{पल्य}}{\text{४}}=\frac{\text{१००}\times\text{३}}{\text{५}\times\text{२}}+\frac{\text{१००}}{\text{४}}=\text{३०}+\text{२५}=\text{५५}$

पल्य–उपर्युक्त प्रमाण = वृद्धि का प्रमाण १००–५५=४५

अथवा वर्तमान स्थितिबंध–पूर्वस्थितिबंध=वृद्धिप्रमाण $\frac{\text{१००}\times\text{३}}{\text{४}}-\frac{\text{१००}\times\text{३}}{\text{५}\times\text{२}}=\text{७५}-\text{३०}=\text{४५}$

वीसिय का स्थितिबन्ध आधा पल्य $\boxed{\frac{\text{प १}}{\text{२}}}$ होता है। यहाँ वृद्धि का प्रमाण अनन्तर पूर्व स्थितिबंध पल्य का संख्यातवां भाग $\boxed{\frac{\text{प}}{\text{५}}}$ आधे पल्य में से कम करने पर जो प्रमाण आता है $\boxed{\frac{\text{प १}-}{\text{२}}}$ उतना

है। (आधे पल्य में से पूर्व स्थितिबन्ध कम करने के लिए यहाँ – यह कुछ कम की संदृष्टि है) पूर्व स्थितिबन्ध में से उत्तर स्थितिबन्ध कम करने पर शेष रहा प्रमाण वृद्धि का है ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए।

चालीसिय स्थितिबंध का जब पल्य प्रमाण स्थितिबंध होता है तब तीसिय स्थितिबन्ध का कितना स्थितिबन्ध होता है?

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
४०	**प** पल्य	३०	फल x इच्छा / प्रमाण = **प** ३०/४० = **प** ३/४

तीसिय का स्थितिबन्ध पल्य का तीन चतुर्थांश भाग मात्र होता है यह त्रैराशिक से सिद्ध हुआ। उसीप्रकार वीसिय के स्थितिबंध को इच्छाराशि करके त्रैराशिक करने पर वीसिय का स्थितिबंध आधा पल्यमात्र सिद्ध होता है।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
४०	**प** पल्य	२०	फल x इच्छा / प्रमाण = **प** २०/४० = **प** २/४ = **प** १/२

इसप्रकार मोहनीय का स्थितिबन्ध पल्यमात्र होने के बाद आगे के स्थितिबंधोत्सरण में पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र वृद्धि का प्रमाण जानना चाहिए। उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्धोत्सरण जानेपर मोह का स्थितिबंध एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान सागरोपम का चार सप्तमांश भागमात्र **सा** ४/७ तीसिय का स्थितिबन्ध सागरोपम का तीन सप्तमांश भागमात्र **सा** ३/७ वीसिय का स्थितिबंध सागरोपम का दो सप्तमांश भागमात्र **सा** २/७ होता है। इसप्रकार प्रत्येक काण्डक में संख्यात हजार स्थितिबन्धोत्सरण जानेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबन्ध के समान मोहनीय का स्थितिबन्ध परमागम में कहे गए प्रतिभागक्रम से जानना चाहिए ।।३४०।।

विशेषार्थ– जब मोहनीय आदि सातों कर्मों का स्थितिबन्ध यथायोग्य किसी का पल्योपम के रूप में और किसी का अपने–अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के अनुपात में होने लगता है तब वृद्धि सहित स्थितिबन्ध की परिगणना स्थितिबंध के रूप में की जाती है। पहले शुद्ध वृद्धि की अपेक्षा स्थितिबंध के प्रमाण का निश्चय कराया जाता था; किन्तु यहाँ से लेकर वृद्धि सहित पूरे स्थितिबंध का निर्देश किया जा रहा है ऐसा प्रकृत में समझना चाहिए।

मोहस्स पल्लबंधे तीसदुगे तत्तिपादमद्धं च ।
दुतिचउसत्तमभागा वीसतिये एयवियलठिदी ।।३४१।।

मोहस्य पल्यबन्धे त्रिंशद्विके तत्त्रिपादमर्धं च।
द्वित्रिचतु:सप्तमभागा वीसत्रिक एकविकलस्थिति: ।।३४१।।

यदा मोहस्य पल्यमात्रस्थितिबन्धो जातस्तदा तीसियस्थितिबन्ध: पल्यत्रिचतुर्भागमात्र:। वीसियस्थितिबन्ध: पल्यार्धमात्र: । पुनरेकेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशा वीसियतीसियमोहानां

स्थितिबन्धाः सागरोपमस्य द्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागमात्राः । पुनर्द्वीन्द्रियादिस्थितिबन्धसदृशा वीसियादिस्थितिबन्धाः पञ्चविंशतिपञ्चाशच्छतसहस्रगुणिता असञ्ज्ञिस्थितिबन्धपर्यन्ता अनुमन्तव्याः ।।३४१।।

मो	प २ a	प २ ५५५५	प २ ५५५	प २ ५	प १
ती	प ३ a ।२	प ३ ५५५५ २	प ३ ५५५ २	प ३ ५ २	प ३ ४
वी	प a	प ५५५५	प ५५५	प ५	प १ २

अन्वयार्थ–(मोहस्स पल्लबंधे) मोहनीय का पल्यप्रमाण स्थितिबंध होने पर **(तीसदुगे)** तीसिय और वीसिय का स्थितिबंध क्रम से **(तत्तिपादमद्धं च)** उसका तीन चतुर्थांश भाग और आधा भाग होता है। उसके पश्चात् **(एयवियलठिदी)** एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबन्ध के समान **(वीसतिये)** वीसिय, तीसिय और चालीसिय का स्थितिबन्ध **(दुतिचउसत्तभागा)** दो सप्तमांश, तीन सप्तमांश और चार सप्तमांश भागमात्र होता है।।३४१।।

टीकार्थ – जब मोह का पल्यमात्र स्थितिबन्ध हुआ तब तीसिय का स्थितिबन्ध पल्य का तीन चतुर्थांश भागमात्र होता है और वीसिय का स्थितिबन्ध आधा पल्यमात्र होता है। पुनः एकेन्द्रिय के स्थितिबंध के समान वीसिय, तीसिय और मोह का स्थितिबन्ध सागरोपम का दो सप्तमांश भाग, तीन सप्तमांश भाग और चार सप्तमांश भागमात्र होते हैं। पुनः द्वीन्द्रियादि से असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त के स्थितिबन्ध के समान वीसियादि का स्थितिबन्ध पच्चीस गुणित, पचास गुणित, सौ गुणित और हजार गुणित जानना चाहिए। (सर्वत्र वीसिय से डेढ़गुणा तीसिय का और वीसिय से दुगुणा मोहनीय का स्थितिबन्ध जानना चाहिए) ।।३४१।।

कर्म	स्थितिबन्ध				
मोहनीय	प x २ a	प x २ ५५५५	प x २ ५५५	प x २ ५	प १ पल्य
तीसिय	प x ३ a ।२	प x ३ ५५५५ २	प x ३ ५५५ २	प x ३ ५ २	प ३ पल्य का तीन ४ चतुर्थांश भाग
वीसिय	प a	प ५५५५	प ५५५	प ५	प १ आधा २ पल्य
	पल्य का असंख्यातवाँ भाग	पल्य का संख्यातवाँ भाग	पूर्व से संख्यातगुणा	पूर्व से संख्यातगुणा	

मोहनीयादि कर्मों का एकेन्द्रियादिक समान स्थितिबंध का नक्शा

कर्म	एकेन्द्रिय समान	द्वीन्द्रिय समान	त्रीन्द्रिय समान	चतुरिन्द्रिय समान	असंज्ञी पंचेंद्रिय समान
मोहनीय	१ सागर x ४/७	२५ सागर x ४/७	५० सागर x ४/७	१०० सागर x ४/७	१००० सागर x ४/७
तीसिय	१ सागर x ३/७	२५ सागर x ३/७	५० सागर x ३/७	१०० सागर x ३/७	१००० सागर x ३/७
वीसिय	१ सागर x २/७	२५ सागर x २/७	५० सागर x २/७	१०० सागर x २/७	१००० सागर x २/७

अथावतारकानिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितिबन्धप्ररूपणार्थमाह–

तत्तो अणियट्टिस्स य अंतं पत्तो हु तत्थ उदधीणं ।
लक्खपुधत्तं बंधो से काले पुव्वकरणो हु ।।३४२।।

ततोऽनिवृत्तेश्चान्तं प्राप्तो हि तत्रोदधीनाम् ।
लक्षपृथक्त्वं बन्धः स्वे कालेऽपूर्वकरणो हि ।।३४२।।

ततोऽसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिबन्धात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु अवतारकानिवृत्तिकरणचरमसमयं प्राप्तः । तस्मिन् वीसियादिस्थितिबन्धः स्वस्वप्रतिभागगुणितः सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्रो भवति [मो सा ल ७ ४ / ८ ७] [तीसिय सा ल ७ ३ / ८ ७] [वीसिय सा ल ७ २ / ८ ७]

तदनन्तरसमये अयमवतारकोऽपूर्वकरणो जातः ।।३४२।।

अब उतरने वाले अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में स्थितिबन्ध का प्ररूपण करते हैं–

अन्वयार्थ–(तत्तो) उसके पश्चात् **(अणियट्टिस्स य)** अनिवृत्तिकरण के **(अंतं पत्तो)** अंत को प्राप्त हुआ **(तत्थ)** वहाँ **(उदधीणं लक्खपुधत्तं)** लक्ष पृथक्त्व सागरोपम प्रमाण **(बंधो)** बंध होता है और **(से काले)** उसके बाद के काल में **(पुव्वकरणो हु)** अपूर्वकरण हुआ।।३४२।।

टीकार्थ –उस असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्थितिबन्ध के पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्धोत्सरण जानेपर (अवतारक) उतरने वाला अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय को प्राप्त हुआ। उस समय में वीसियादिकों का स्थितिबन्ध अपने–अपने प्रतिभाग से गुणित लाख पृथक्त्व सागरोपम मात्र होता है । मोहनीय का पृथक्त्वलक्षसागरोपम का चार सप्तमांश भागमात्र, [सा ल ७ ४ / ८ ७] तीसिय का पृथक्त्वलक्षसागरोपम

तीन सप्तमांश भागमात्र $\frac{\text{सा ल७ ३}}{\text{८ ७}}$ वीसिय का पृथक्त्वलक्षसागरोपम का दो सप्तमांश भागमात्र $\frac{\text{सा ल ७ २}}{\text{८ ७}}$ (संदृष्टि-सा= सागरोपम; ल= लक्ष, $\frac{७}{८}$ =पृथक्त्व)। उसके बाद के समय में यह जीव अवतारक अपूर्वकरण हुआ। ।।३४२।।

अथापूर्वकरणे सम्भवद्विशेषमाह-

उवसामणा णिधत्ती णिकाचणुग्घाडिदाणि तत्थेव ।
चदुतीसदुगाणं च य बंधो दु अधापवत्तो य[१] ।।३४३।।

उपशामना निधत्तिर्निकाचनोद्घाटितानि तत्रैव ।
चतुस्त्रिंशद्द्विकानां च च बंधस्त्वधाप्रवृत्तश्च ।।३४३।।

तस्मिन्नवतारकापूर्वकरणे प्रथमसमयादारभ्य अप्रशस्तोपशमनकरणं निधत्तिकरणं निकाचन-करणं च युगपदेवोद्घाटितानि भवन्ति । तत्कालस्य सप्तभागीकृतस्य प्रथमभागे हास्यरतिभयजुगुप्सानां चतु:प्रकृतीनां बन्धको जात: । ततोऽवतीर्य तत्कालद्वितीयभागे तीर्थकरत्वादित्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धको जात: । ततस्तत्कालषष्ठभागचरमसमयादारभ्य निद्राप्रचलयोर्बन्धो भवति तत:संख्यातसहस्रस्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु अवतारकापूर्वकरणचरमसमये वीसियादि-स्थितिबन्ध: स्वस्वप्रतिभागगुणित: सागरोपमकोटिलक्षपृथक्त्वमात्रो भवति-

४
३०
०
०
०
०
२

$\frac{\text{मो सा को ल ७ ।४}}{\text{८ ।७}}$ $\frac{\text{ती सा को ल७ ।३}}{\text{८ ।७}}$ $\frac{\text{वी सा को ल ७ ।२}}{\text{८ ।७}}$

सर्वकर्मणां गुणश्रेणी गलितावशेषायामा अद्ययावत्प्रवृत्ता । तदनन्तरसमये ततोऽवतीर्याप्रमत्तगुणस्थाने विशुद्धेरनन्तगुणहानिवशेनाध:प्रवृत्तकरणपरिणामं प्राप्नोति ।।३४३।।

अब अपूर्वकरण में पाये जाने वाले विशेष कहते हैं-

अन्वयार्थ-(तत्थेव) वहीं पर ही अर्थात् अपूर्वकरण के प्रथम समय में **(उवसामणा)** उपशामना, **(णिधत्ति)** निधत्ति **(णिकाचण)** और निकाचना **(उग्घाडिदाणि)** शुरु हुए। **(च)** और क्रमश: **(चदुतीसदुगाणं)** चार, तीस, दो प्रकृतियों का **(बन्धो)** बन्ध शुरु हुआ **(य)** और **(अधापवत्तो)** अध:प्रवृत्त हुआ।।३४३।।

टीकार्थ -उस उतरने वाले अपूर्वकरण के प्रथम समय से अप्रशस्त उपशमकरण, निधत्तिकरण और निकाचनकरण एक ही समय में उद्घाटित होते हैं अर्थात् शुरु होते हैं। सात भागरूप उसकाल

१) जयध. पु. १४, पृ. ९२-९३

के प्रथम भाग में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों का बंधक होता है। वहाँ से नीचे उतरकर उस काल के दूसरे भाग में तीर्थंकरत्वादि तीस प्रकृतियों का बन्धक होता है। उसके पश्चात् उस काल के छठे भाग के अंतिम समय से निद्रा प्रचला का बन्ध होता है।

प्रथम भाग	४	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा
द्वितीय भाग	३०	तीर्थंकर, पञ्चेन्द्रिय इत्यादि
तृतीय भाग	०	
चतुर्थ भाग	०	
पंचम भाग	०	
षष्ठ भाग	०	
सप्तम भाग	२	निद्रा प्रचला

(छठे भाग के अंतिम समय से अर्थात् सातवें भाग के प्रथम समय से)

उसके पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्धोत्सरण जाने पर उतरनेवाले अपूर्वकरण के अंतिम समय में वीसियादिकों का स्थितिबन्ध अपने-अपने प्रतिभाग से गुणित पृथक्त्व लाख कोटि सागरोपम होता है।

मो सा को ल ७ ।४ ८ ।७	**मोहनीय-पृथक्त्वलाखकोटी सागर** x $\frac{४}{७}$
ती सा को ल ७ ।३ ८ ।७	**तीसिय-पृथक्त्वलाखकोटी सागर** x $\frac{३}{७}$
वी सा को ल ७ ।२ ८ ।७	**वीसिय-पृथक्त्वलाखकोटी सागर** x $\frac{२}{७}$

सर्व कर्मों की गुणश्रेणि गलितावशेष आयामवाली अब तक प्रवृत्त होती है। उसके अनन्तर वहाँ से (अपूर्वकरण से) नीचे उतरकर विशुद्धि की अनन्तगुणित हानि से अप्रमत्त गुणस्थान में अध:प्रवृत्तकरण परिणाम को प्राप्त होता है।।३४३।।

विशेषार्थ- चढ़ते समय अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अप्रशस्त उपशमनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनाकरण इन तीनों की व्युच्छित्ति हो गई थी। किन्तु उतरते समय जब जीव अपूर्वकरण में प्रवेश करता है तब उसके प्रथम समय में ही ये पुन: उद्घाटित हो जाते हैं। अर्थात् जिन कर्मों की पहले अप्रशस्त उपशामना की व्युच्छित्ति हो गई थी वे पुन: अप्रशस्त उपशामनारूप हो जाते हैं। इसीप्रकार निधत्ति और निकाचना की अपेक्षा भी जान लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

अथावतारकाप्रमत्तस्याधःप्रवृत्तकरणपरिणामप्रथमसमये सम्भवद्गुणश्रेणिविशेषप्रदर्शनार्थमाह–

पढमो अधापवत्तो गुणसेढिमवट्ठिदं पुराणादो ।
संखगुणं तच्चंतोमुहुत्तमेत्तं करेदी हु ।।३४४।।

प्रथमोऽधाप्रवृत्तो गुणश्रेणीमवस्थितां पुराणात् ।
संख्यगुणं तच्चान्तर्मुहूर्तमात्रं करोति हि ।।३४४।।

अथावतारकापूर्वकरणचरमसमये अपकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणहीनं द्रव्यमपकृष्य अवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयारब्धात् पौराणिकगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणायाममवस्थित–गुणश्रेणिनिक्षेपमवतारकाप्रमत्तः अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमये करोति । विशुद्धिहान्यापकृष्टद्रव्यहानिः गुणश्रेण्यायामः संख्येयगुणोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव नाधिकः ।।३४४।।

अब उतरने वाले अप्रमत्त के अध:प्रवृत्तकरण परिणाम के प्रथम समय में होने वाला गुणश्रेणि विशेष दिखाने के लिए कहते हैं –

अन्वयार्थ–(पढमो अधापवत्तो) प्रथम अध:प्रवृत्त अर्थात् अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय में **(अवट्ठिदं)** अवस्थित **(गुणसेढीं)** गुणश्रेणि **(करेदि)** करता है। **(तच्च)** और वह गुणश्रेणि आयाम **(पुराणादो)** पूर्व के गुणश्रेणि आयाम से **(संखगुणं)** संख्यातगुणा होकर भी **(अंतोमुहुत्तमेत्तं)** अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है।।३४४।।

टीकार्थ –अब अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय में अवतारक अप्रमत्त जीव उतरने वाले अपूर्वकरण के अंतिम समय के अपकृष्ट द्रव्य से असंख्यातगुणे हीन द्रव्य का अपकर्षण करके अवतारक सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में प्रारंभ किए गए पूर्व के गुणश्रेणि आयाम से संख्यातगुणी आयामवाली गुणश्रेणि में निक्षेप करता है। विशुद्धि की हानि होने से अपकृष्ट द्रव्य की हानि होती है और गुणश्रेणि आयाम संख्यात गुणा होकर भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, अधिक नहीं। (यह आकृति संस्कृत टीका में भी है)

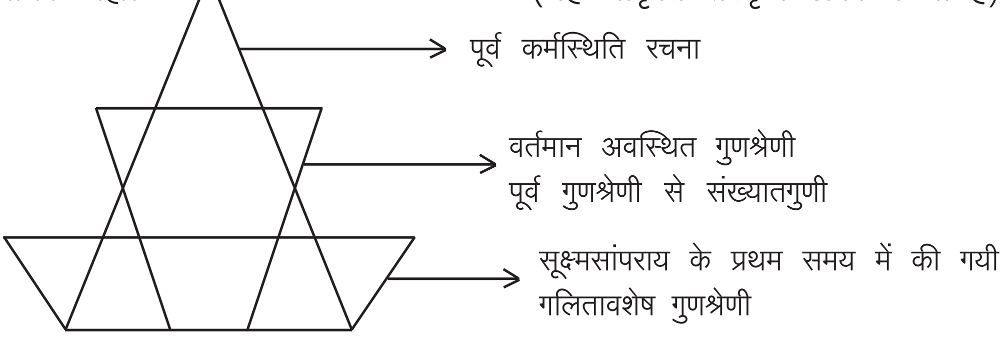

अथ पुराणगुणश्रेण्यनुवादार्थमाह–

ओदरसुहुमादीदो अपुव्वचरिमो त्ति गलिदसेसेव ।
गुणसेढीणिक्खेवो सट्ठाणे होदि तिट्ठाणं[1] ।।३४५।।

अवतरसूक्ष्मादितोऽपूर्वचरम इति गलितशेष एव ।
गुणश्रेणीनिक्षेपः स्वस्थाने भवति त्रिस्थानम् ।।३४५।।

अवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयादारभ्यावतारकापूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तं ज्ञानावरणादिकर्मणां गुणश्रेण्यायामो गलितावशेषमात्र एव नावस्थितः प्रवृत्तः। अयं तु विशेषः–मोहनीयस्यावतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयात्प्रभृति कियन्तमपि कालमवस्थितस्वरूपेण गुणश्रेणिनिक्षेपो भूत्वा ततः परं गलितावशेषायामेन ज्ञानावरणादिकर्मगुणश्रेण्यायामसदृशो जात इति त्रिषु स्थानेषु वृद्ध्यावस्थितगुणश्रेण्यायामदर्शनात् । तत्कथम् ? अवतारकसूक्ष्मसाम्परायकाले सर्वत्रावस्थितस्वरूपेण, स्पर्धकगतलोभापकर्षणे एकवारवृद्ध्या बादरलोभवेदकाद्धापर्यन्तमवस्थितस्वरूपेण, पुनर्मायापकर्षणे द्वितीयवारवृद्ध्या मायावेदककालपर्यन्तमवस्थितस्वरूपेण, ततः परं मानापकर्षणे तृतीयवारवृद्ध्या मानवेदककालपर्यन्तमवस्थितस्वरूपेण, एवं त्रिषु स्थलेषु गुणश्रेण्यायामः प्रवृत्तः । ततः परं क्रोधापकर्षणे चतुर्थवारवृद्ध्या गुणश्रेण्यायामः, अवतारकापूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तं गलितावशेषमात्र एवागतः । इदानीं पुनरधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमये ज्ञानावरणादिकर्मणां गुणश्रेण्यायामः पुराणगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणितोऽवस्थितस्वरूपोऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं प्रवर्तत इत्यर्थः। अधःप्रवृत्तकरणाद्धामात्रमन्तर्मुहूर्तं प्रतिसमयमेकान्तेन विशुद्ध्यनन्तगुणहान्याऽवतीर्य स्वस्थानाप्रमत्तसंयतो भवति। तस्य च संक्लेशविशुद्धिवशेन वृद्धिहान्यवस्थानलक्षणं स्थानत्रयं गुणश्रेण्यायामस्य सम्भवति ।।३४५।।

अब पुरानी गुणश्रेणि का कथन करते हैं –

अन्वयार्थ–(ओदरसुहुमादीदो अपुव्वचरिमो त्ति) उतरने वाले सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय से अपूर्वकरण के अंतिम समय तक (गुणश्रेणि आयाम) **(गलिदसेसेव)** गलितावशेष ही है। **(सट्ठाणे)** स्वस्थान अप्रमत्त में **(तिट्ठाणं)** तीन स्थानरूप अर्थात् वृद्धि, हानि और अवस्थित रूप **(गुणसेढी णिक्खेवो)** गुणश्रेणि निक्षेप (आयाम) **(होदि)** होता है।।३४५।।

टीकार्थ –उतरने वाले सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय से लेकर उतरने वाले अपूर्वकरण के अंतिम समय तक ज्ञानावरणादि कर्मों का गुणश्रेणि आयाम गलितावशेषमात्र ही प्रवृत्त होता है।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. ९६

अवस्थित गुणश्रेणि आयाम नहीं। परन्तु यह विशेष है कि मोहनीय का उतरने वाले सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय से कुछ काल पर्यन्त अवस्थित स्वरूप से गुणश्रेणि निक्षेप होकर उसके पश्चात् गलितावशेष आयाम से ज्ञानावरणादि कर्मों के गुणश्रेणि आयाम के समान गुणश्रेणि हुई। इस प्रकार तीन स्थानों में वृद्धि के द्वारा अवस्थित गुणश्रेणि आयाम दिखता है। वह कैसे? उतरने वाले सूक्ष्मसांपरायकाल में सर्वत्र अवस्थितरूप से, स्पर्धकरूप लोभ का अपकर्षण होने पर एकबार वृद्धि होकर बादर लोभवेदककाल पर्यन्त अवस्थितरूप से, पुनः माया का अपकर्षण होने पर दूसरी बार वृद्धि के द्वारा मायावेदककाल तक अवस्थितरूप से, उसके पश्चात् मान का अपकर्षण होने पर तीसरी बार वृद्धि के द्वारा मानवेदककाल पर्यन्त अवस्थितरूप से, इस प्रकार तीन स्थलों में गुणश्रेणि आयाम प्रवृत्त हुआ। उसके पश्चात् क्रोध का अपकर्षण होने पर चौथी बार वृद्धि के द्वारा गुणश्रेणि आयाम अवतारक अपूर्वकरण के अंतिम समय तक गलितावशेषमात्र ही प्रवृत्त हुआ। अब पुनः अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय में ज्ञानावरणादि कर्मों का गुणश्रेणि आयाम पुराने गुणश्रेणि आयाम से संख्यातगुणित अवस्थितस्वरूप से अन्तर्मुहूर्त तक प्रवृत्त होता है यह अर्थ है। अधःप्रवृत्तकरण के अंतर्मुहूर्त काल पर्यन्त प्रत्येक समय में सर्वथा विशुद्धि की अनन्तगुणहानि से नीचे उतरकर स्वस्थान अप्रमत्तसंयत होता है। उसमें संक्लेश और विशुद्धि से गुणश्रेणि आयाम की वृद्धि, हानि और अवस्थितरूप तीनों स्थान संभव है ।।३४५।।

विशेषार्थ– उतरते समय दसवें गुणस्थान में प्रवेश करने पर संज्वलन, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभ के द्रव्य का अपकर्षण प्रारंभ करता है और वहाँ पर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के काल से एक आवली अधिक आयामवाली अवस्थित गुणश्रेणि स्थापित करता है। जब नववें गुणस्थान में प्रवेश करता है तब बादर लोभवेदककाल प्रारंभ होता है। वहाँ पर बादर लोभवेदककाल से एक आवली अधिक अवस्थित गुणश्रेणिआयाम करता है। अर्थात् ऊपर स्थापित गुणश्रेणिआयाम में एक बार वृद्धि हो जाती है। पुनः माया वेदक काल में प्रवेश करता है तब मायावेदककाल से एक आवलि अधिक अवस्थित गुणश्रेणि आयाम करता है। वहाँ पर गुणश्रेणि आयाम की दूसरी बार वृद्धि हुई। पुनः मानवेदककाल में प्रवेश करता है तब मानवेदक कालसे एक आवलि अधिक अवस्थित गुणश्रेणि आयाम करता है। वहाँ पर गुणश्रेणि में तीसरी बार वृद्धि हुई। जब क्रोधवेदक काल में प्रवेश करता है तब अपूर्वकरण के अंतिम समयतक गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम करता है। यहाँ पर गुणश्रेणि आयाम में चौथी बार वृद्धि हुई। जैसे दसवें गुणस्थान में गुणश्रेणिआयाम ४ समय माना। बादरलोभवेदक काल में ६ समय, माया वेदक काल में बढ़कर १० समय, मानवेदक कालमें बढ़कर १६ समय, क्रोधवेदक काल में बढ़कर ३२ समय माना। क्रोधवेदक काल के पूर्व तक यह अवस्थित गुणश्रेणि आयाम है। अतः पहले स्थापित गुणश्रेणि आयाम वैसा ही रहेगा उसी में और वृद्धि होगी।

उपशमश्रेणि से उतरते समय गुणश्रेणी आयाम में वृद्धि का नक्शा

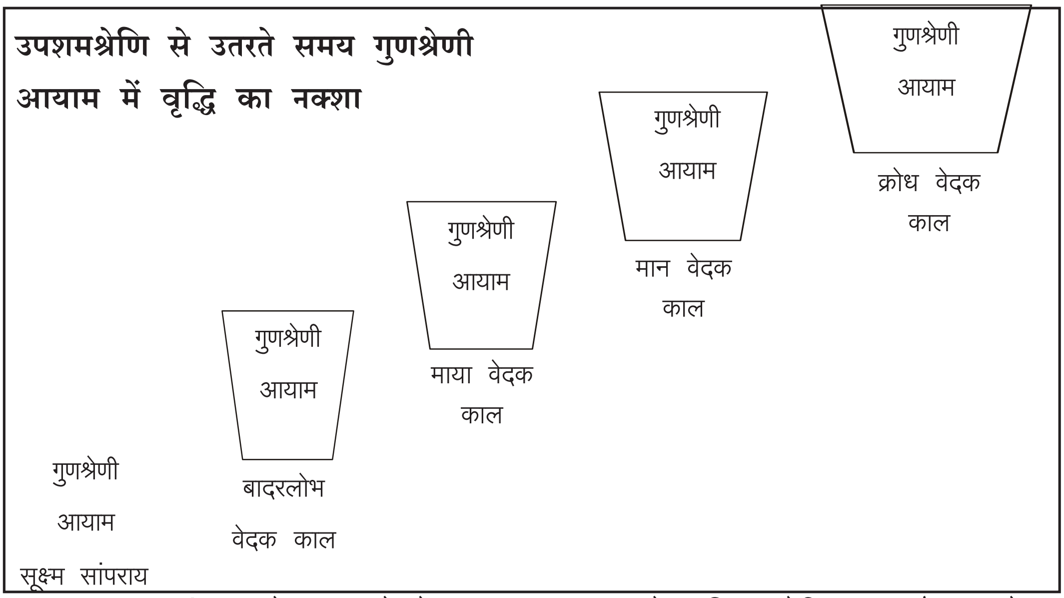

सूक्ष्म सांपराय से बादर लोभवेदक काल तक ३ लोभ की गुणश्रेणि करता है, मायावेदक कालसे ३ लोभ और ३ माया इसप्रकार ६की, मानवेदक कालसे ३ लोभ, ३ माया और ३ मान इसप्रकार ९ की और क्रोधवेदककालमें पूर्वोक्त ९ और ३ क्रोध इसप्रकार १२ की गुणश्रेणि करता है। यह मोहनीय की अपेक्षा गुणश्रेणि का स्पष्टीकरण है।

गाथा में स्वस्थान में तीन स्थानरूप गुणश्रेणि निक्षेप करता है ऐसा जो उल्लेख किया है उसका खुलासा अगली गाथामें (गा. क्र. ३४६ में) किया है।

अथ तत्स्थानत्रयविषयविभागं प्रदर्शयति–

सट्ठाणे तावदियं संखगुणूणं तु उवरि चडमाणे ।
विरदाविरदाहिमुहे संखेज्जगुणं तदो तिविहं ।।३४६।।

स्वस्थाने तावत्कं संख्यगुणोनं तूपरि चटमाने ।
विरताविरताभिमुखे संख्येयगुणं ततस्त्रिविधम् ।।३४६।।

प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयो: स्वस्थानसंयतो भूत्वा वृद्धिहानिभ्यां विनाऽवस्थितं गुणश्रेण्यायामं करोति । विरताविरतगुणस्थानाभिमुख: सन् संक्लेशवशेन प्राक्तनगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणं गुणश्रेण्यायामं करोति । पुन: स एव यदि परावृत्योपशमकक्षपकश्रेण्यारोहणाभिमुखो भवति तदा विशुद्धिवशेन प्राक्तनगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणहीनं गुणश्रेण्यायामं करोति । एवं गुणश्रेण्यायामस्य वृद्धिहान्यवस्थानलक्षणं स्थानत्रयं व्याख्यातम् ।।३४६।।

अब उन तीन स्थानों का विषयविभाग दिखलाते हैं –

अन्वयार्थ–(सट्ठाणे) स्वस्थान में (गुणश्रेणि आयाम) **(तावदियं)** उतना ही रहता है। **(तु उवरि चडमाणे)** ऊपर चढ़ने पर वह **(संखगुणूणं)** संख्यातगुणा हीन होता है और **(विरदाविरदाहिमुहे)** विरताविरत अर्थात् देशसंयत के सन्मुख होनेपर **(संखेज्जगुणं)** संख्यातगुणा होता है। **(तदो)** इसलिए (स्वस्थान अप्रमत्त में गुणश्रेणि आयाम) **(तिविहं)** तीन प्रकार का है।।३४६।।

टीकार्थ–प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में स्वस्थान संयत होकर वृद्धि और हानि बिना अवस्थित गुणश्रेणिआयाम करता है। विरताविरत गुणस्थान के सन्मुख हुआ संक्लेश परिणाम से पूर्व के गुणश्रेणिआयाम से संख्यातगुणा गुणश्रेणिआयाम करता है। पुनः वह जीव यदि पुनः घूमकर उपशमक अथवा क्षपक श्रेणि चढ़ने के सम्मुख होता है तो विशुद्धि परिणाम से पूर्व के गुणश्रेणिआयाम से संख्यातगुणा हीन गुणश्रेणिआयाम करता है। इस प्रकार गुणश्रेणिआयाम की वृद्धि, हानि और अवस्थानरूप तीन स्थान कहे है। ।।३४६।।

अथावतारकाप्रमत्तस्याधःप्रवृत्तकरणे संक्रमसम्भवविशेषं प्रदर्शयति–

करणे अधापवत्ते अधापवत्तो दु संकमो जादो ।
विज्झादमबंधाणं णट्ठो गुणसंकमो तत्थ ।।३४७।।

करणेऽधःप्रवृत्तेऽधःप्रवृत्तस्तु संक्रमो जातः।
विध्यातमबन्धानां नष्टो गुणसंक्रमस्तत्र ।।३४७।।

अवतारकाधःप्रवृत्तकरणे बन्धवतामथाप्रवृत्तसंक्रमो जातः । अबन्धानां विध्यातसंक्रमः। तत्र गुणसंक्रमो विनष्ट एव ।।३४७।।

अब उतरने वाले अप्रमत्त के अधःप्रवृत्तकरण में संभवने वाला संक्रम विशेष दिखाते हैं–

अन्वयार्थ–(अधापवत्ते करणे) अधःप्रवृत्तकरण में **(अधापवत्तो दु संकमो)** अधःप्रवृत्त संक्रम **(जादो)** होता है। **(अबंधाणं)** न बाँधी जाने वाली प्रकृतियों का **(विज्झादं)** विध्यात संक्रम होता है। **(तत्थ)** वहाँ **(गुणसंकमो)** गुणसंक्रमण **(णट्ठो)** नष्ट हुआ।।३४७।।

टीकार्थ –उतरने वाले अधःप्रवृत्तकरण में बाँधी जानेवाली प्रकृतियों का अथाप्रवृत्त संक्रम शुरु हुआ। अबन्धरूप प्रकृतियों का विध्यात संक्रम शुरु हुआ। वहाँ गुणसंक्रम नष्ट ही हुआ।।३४७।।

विशेषार्थ–अपूर्वकरण में गुणसंक्रम होता है। परिणामों में विशुद्धि की हानि होने से अधःप्रवृत्तकरण में प्रत्येक समय में द्रव्य का गुणकाररूप से संक्रमण रुकता है और अधःप्रवृत्त भागहार से भाग देकर आये हुए द्रव्य का अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है। संज्वलन कषाय, पुरुषवेद आदि बंधनेवाली प्रकृतियों का अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है। जिन प्रकृतियों का बंध नहीं होता

ऐसी नपुंसकवेद आदि अप्रशस्त प्रकृतियों का विध्यात भागहार का भाग देकर जो एक भाग प्रमाण द्रव्य प्राप्त होता है उतने द्रव्य का विध्यात संक्रमण होता है।

अथ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालप्रमाणं गाथाद्वयेनाह–

चडणोदरकालादो पुव्वादो पुव्वगो त्ति संखगुणं ।
कालं अधापवत्तं पालदि सो उवसमं सम्मं[1] ।।३४८।।

चटनावतरकालतोऽपूर्वादपूर्वक इति संख्यगुणम् ।
कालमधःप्रवृत्तं पालयति स उपशमं सम्यक् ।।३४८।।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेनोपशमकश्रेण्यामारूढस्यापूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य ततोऽवतीर्णा-पूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तं यावत्कालस्ततः संख्येयगुणं कालमन्तर्मुहूर्तप्रमितं, अधःप्रवृत्तकरणेन स हि द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमनुपालयति ।।३४८।।

अब द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल का प्रमाण दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

अन्वयार्थ–(पुव्वादो पुव्वगो त्ति चडणोदरकालादो) अपूर्वकरण से अपूर्वकरण पर्यन्त चढ़ने व उतरने के काल से **(संखगुणं कालं)** संख्यातगुणा काल **(सो)** वह जीव **(अधापवत्तं)** अधःप्रवृत्त सहित **(उवसमं सम्मं)** उपशम सम्यक्त्व का **(पालदि)** पालन करता है।।३४८।।

टीकार्थ– द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से उपशम श्रेणि पर चढ़ने वाले अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर उतरनेवाले अपूर्वकरण के अंतिम समयपर्यन्त जितना काल है उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल वह जीव अधःप्रवृत्तकरणसहित द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का पालन करता है।।३४८।।

विशेषार्थ–उपशमश्रेणि चढ़ने और उतरने में जितना काल लगता है उसकी अपेक्षा संख्यातगुणा अप्रमत्तसंयत नामक सातवें गुणस्थान का काल है।

तस्समत्तद्धाए असंजमं देससंजमं वापि।
गच्छेज्जावलिछक्के सेसे सासणगुणं वापि[2] ।।३४९।।

तत्सम्यक्त्वाद्धायामसंयमं देशसंयमं वापि।
गच्छेदावलिषट्के शेषे सासनगुणं वापि ।।३४९।।

तस्य द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकाले अधःप्रवृत्तकरणकालं नीत्वा पुनरप्रत्याख्यानावरण-कषायोदयात् असंयमपरिणाममपि गच्छेत् । प्रत्याख्यानावरणकषायोदयाद्देशसंयममपि वा

१) जयध. पु. १४, पृ. ९७-९८ २) जयध. पु. १४, पृ. ९८-९९

गच्छेत्। अथवा असंयमं प्राप्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पश्चाद्देशसंयमं क्रमेण गच्छेत् । देशसंयमं प्राप्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पश्चादसंयमं वा क्रमेण गच्छेत्। एवं क्रमेणोभयप्राप्तेः प्रवचने कथितत्वात् । अथवा तदुपशमसम्यक्त्वकालस्यावलिकषट्केऽवशिष्टेऽनन्तानुबन्धिकषाया-न्यतमोदयात्सासादनगुणस्थानमपि गच्छेत् ।।३४९।।

अन्वयार्थ-(तस्समत्तद्धाए) उस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल में वह जीव **(असंयमं देशसंजमं वापि)** असंयम अथवा देशसंयम को **(गच्छेज्ज)** प्राप्त हो सकता है **(वा)** अथवा **(आवलिछक्के सेसे)** छह आवलि शेष रहने पर **(सासणगुणं अपि)** सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त हो सकता है।।३४९।।

टीकार्थ -उस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल में अध:प्रवृत्तकरण का काल व्यतीतकर पुन: अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से असंयम परिणाम को भी प्राप्त होता है अथवा प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से देशसंयम को भी प्राप्त होता है अथवा असंयम को प्राप्त होकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त स्थित रहकर पश्चात् देशसंयम को क्रम से प्राप्त होता है अथवा देशसंयम को प्राप्त होकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त स्थित रहकर पश्चात् क्रम से असंयम को प्राप्त होता है। इस प्रकार क्रम से दोनों की प्राप्ति प्रवचन में कही गयी है। अथवा उस उपशम सम्यक्त्व का काल छह आवलि शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी कषायों में से किसी एक कषाय के उदय से सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त होता है।।३४९।।

विशेषार्थ- जिसने विसंयोजना के द्वारा अनन्तानुबन्धि चतुष्क को नि:सत्त्व किया है उसको भी परिणाम विशेष से अप्रत्याख्यानादि शेष कषायों का द्रव्य उसी समय में अनन्तानुबन्धी कषायरूप से परिणमित करके अनन्तानुबन्धि का उदय होता है और वह सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है, ऐसा यतिवृषभाचार्य का मत है।

अथ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वात्सासादनगुणप्राप्तस्य सम्भवद्विशेषमाह-

जदि मरदि सासणो सो णिरयतिरिक्खं णरं ण गच्छेदि।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेण[1] ।।३५०।।

यदि म्रियते सासनः स निरयतिर्यञ्चं नरं न गच्छति।
नियमाद् देवं गच्छति यतिवृषभमुनीन्द्रवचनेन ।।३५०।।

यदि स उपशमश्रेणितोऽवतीर्णः सासादनः स्वायुःक्षयवशान्म्रियते तदा नरकगतिं

१) जयध. पु. १४, पृ. १००

तिर्यग्गतिं मनुष्यगतिं च नियमेन न गच्छति किन्तु देवगतिं गच्छति । एवमुपशमश्रेणीतोऽवतीर्णस्य सासादनगुणप्राप्तिः। तस्य मरणं गतिविशेषश्च कषायप्राभृताख्यद्वितीयसिद्धान्तव्याख्याने यतिवृषभाचार्यस्य वचनप्रामाण्येन भणितम् ।।३५०।।

अब द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए का विशेष कहते हैं–

अन्वयार्थ–(सो सासणो) उपशमश्रेणि से उतरा हुआ वह सासादन जीव **(जदि मरदि)** यदि मरता है तो **(णिरियतिरिक्खं णरं)** नरक, तिर्यञ्च और मनुष्यगति को **(ण गच्छेदि)** प्राप्त नहीं होता है **(णियमा)** नियम से **(देवं गच्छदि)** देवगति को प्राप्त होता है ऐसा **(जइवसहमुणिंद–वयणेण)** यतिवृषभ मुनीन्द्र के वचन की अपेक्षा से कहा गया है।।३५०।।

टीकार्थ –उपशमश्रेणी से उतरा हुआ वह सासादन जीव यदि अपनी आयुकर्म के क्षय से मरता है तो नरकगति, तिर्यंचगति और मनुष्यगति को नियम से प्राप्त नहीं होता है; परन्तु देवगति को प्राप्त होता है। इस प्रकार उपशमश्रेणि से उतरे हुए जीव को सासादन गुणस्थान की प्राप्ति, उसका मरण और गतिविशेष कषायप्राभृत नाम के द्वितीय सिद्धान्त व्याख्यान में यतिवृषभ आचार्य के वचन प्रामाण्य से कहा है।।३५०।।

अथ तत्सासादनस्य गतित्रयागमने कारणमाह–

णिरयतिरिक्खणराउगसत्तो सक्को ण मोहमुवसमिदुं ।
तम्हा तिसु वि गदीसु य ण तस्स उप्पज्जणं होदि[1] ।।३५१।।

नरकतिर्यङ्नरायुष्कसत्त्वः शक्यो न मोहमुपशमयितुम् ।
तस्मात् त्रिष्वपि गतिषु च न तस्योत्पादो भवति ।।३५१।।

नारकतिर्यग्मनुष्यायुःसत्त्वसहितो जीवश्चारित्रमोहनीयमुपशमयितुं न शक्तः तत्सत्त्वेन देशसंयमसकलसंयमयोः प्राप्त्यभावात् तस्मात्कारणात्तत्सासादनस्य तिसृष्वपि गतिषूत्पादो नास्ति। इदं सर्वं बद्धपरभवायुष उपशमश्रेणिमारुह्यावतीर्णस्य भणितम् । अबद्धपरभवायुषः तच्छ्रेणिमारुह्यावरूढस्य सासादनस्य मरणमेव न सम्भवति।।३५१।।

अब उस सासादन जीव के तीन गतियों में गमन न करने का कारण कहते हैं –

अन्वयार्थ– (णिरयतिरिक्खणराउगसत्तो) नरक, तिर्यंच और मनुष्यायु का (बध्यमान मनुष्यायु का) सत्त्ववाला जीव **(मोहमुवसमिदुं)** मोह का उपशमन **(ण सक्को)** नहीं कर सकता। **(तम्हा)** इसलिए **(तस्स)** उसका **(तिसु वि गदिसु)** तीनों गतियों में **(उप्पज्जणं**

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १००–१०१

ण होदि) उत्पाद (जन्म) नहीं होता है।।३५१।।

टीकार्थ– नरक, तिर्यञ्च और मनुष्यायु के सत्त्वसहित जीव चारित्र मोहनीय का उपशमन करने में समर्थ नहीं है क्योंकि उस सत्ता से सहित देशसंयम और सकलसंयम की प्राप्ति नहीं होती है। उस कारण से उस सासादन का तीनों गतियों में उत्पाद (जन्म) नहीं होता है। यह सब जिसने परभव संबंधी आयु बाँध ली है ऐसे बद्धायुष्क उपशमश्रेणि चढ़कर उतरे हुए जीव की अपेक्षा से कहा है। जिसने परभव संबंधी आयु नही बाँधी है उस श्रेणि चढ़कर उतरे हुए सासादन जीव का मरण ही सम्भव नहीं है।।३५१।।

अथोपशमश्रेण्यवतीर्णस्य सासादनत्वप्राप्त्यभावमाचार्यान्तराभिप्रायेण भणति–

उवसमसेढीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि ।
भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स फुडोवदेसेण ।।३५२।।

उपशमश्रेणीतः पुनरवतीर्णः सासनं न प्राप्नोति ।
भूतबलिनाथनिर्मलसूत्रस्य स्फुटोपदेशेन ।।३५२।।

उपशमश्रेणीतोऽवतीर्णः सासादनत्वं न प्राप्नोत्येव। तत्प्राप्तिकारणानन्तानुबन्धिकषायोदयस्यासम्भवात् पूर्वमेवानन्तानुबन्धिचतुष्टयं द्वादशकषायस्वरूपेण परिणम्य पश्चादुपशमश्रेणिमारूढस्य तत्सत्त्वाभावात् । इदं सर्वं भूतबलिमुनिनाथप्रोक्ते महाकर्मप्रकृतिप्राभृतार्थप्रथमस्थितिगोचरे प्रथमसिद्धान्ते निर्मलस्य पूर्वापरविरोधादिरहितस्य सूत्रस्य स्फुटोपदेशेनास्माभिर्निश्चितम् ।।३५२।।

अब दूसरे आचार्यों के अभिप्राय के अनुसार उपशमश्रेणि से उतरने वाले जीव को सासादनपना की प्राप्ति का अभाव कहते हैं–

अन्वयार्थ– (पुण) पुनः **(भूदबलिणाहणिम्मलसुत्तस्स)** भूतबलि स्वामी के निर्मलसूत्र के **(फुडोवदेसेण)** स्पष्ट उपदेश से **(उवसमसेढीदो ओदिण्णो)** उपशमश्रेणि से उतरनेवाला जीव **(सासणं)** सासादन गुणस्थान को **(ण पाउणदि)** प्राप्त नहीं होता है। ।।३५२।।

टीकार्थ– उपशमश्रेणि से उतरने वाला जीव सासादनपने को प्राप्त होता ही नहीं क्योंकि उसकी प्राप्ति में कारणभूत अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय का अभाव है। पूर्व में ही अनन्तानुबन्धी चार कषायों को बारह कषाय स्वरूप से परिणमित करके बाद में उपशमश्रेणि पर आरूढ होनेवाले को उसके सत्त्व का ही अभाव है। यह सब भूतबलि मुनिनाथ के कहे हुये महाकर्म प्रकृतिप्राभृत के अर्थ को विषय करनेवाले प्रथम सिद्धान्त के पूर्वापरविरोधादि दोषों से रहित निर्मल सूत्र के स्पष्ट उपदेश से हमने निश्चित किया है।।३५२।।

अथोपशमश्रेण्यारूढद्वादशपुरुषप्रक्रियाभेदप्रदर्शनार्थं द्वादशगाथाः प्ररूपयति–

पुंकोधोदयचलियस्सेसाह परूवणा हु पुंमाणे।
मायालोभे चलिदस्सत्थि विसेसं तु पत्तेयं[1] ।।३५३।।

पुंक्रोधोदयचटितस्यैषाह प्ररूपणा हि पुंमाने ।
मायालोभे चटितस्यास्ति विशेषं तु प्रत्येकम् ।।३५३।।

पुंवेदसंज्वलनक्रोधोदयसहितस्योपशमश्रेणिमारूढस्य पूर्वोक्ता सर्वापि प्ररूपणा भवति। पुंवेदसंज्वलनमानोदयेन पुंवेदसंज्वलनमायोदयेन पुंवेदसंज्वलनलोभोदयेन चोपशमश्रेणिमारूढानां प्रत्येकं प्रक्रियाविशेषोऽस्ति ।।३५३।।

अब उपशमश्रेणि पर आरूढ होनेवाले बारह पुरुषों की प्रक्रिया का भेद दिखलाने के लिए बारह गाथाएँ कहते हैं –

अन्वयार्थ– **(पुंकोधोदयचलियस्स)** पुरुषवेद और क्रोध कषाय के उदय से चढ़ने वाले की **(एसा परूवणा हु)** यह (पूर्वोक्त सब) प्ररूपणा **(आह)** कही है। **(पुंमाणे मायालोभे चलिदस्स)** पुरुषवेद और मानकषाय उसीप्रकार माया और लोभकषाय से चढ़नेवाले **(पत्तेयं तु)** प्रत्येक का **(विसेसं अत्थि)** विशेष है।।३५३।।

टीकार्थ– पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के उदय से सहित उपशमश्रेणिपर चढ़नेवाले की पूर्व में कही गयी सभी प्ररूपणा है। पुरुषवेद और संज्वलन मान के उदय से, पुरुषवेद और संज्वलन माया के उदय से और पुरुषवेद तथा संज्वलन लोभ के उदय से उपशम श्रेणि पर आरूढ़ होनेवाले में से प्रत्येक की प्रक्रिया में भेद है।।३५३।।

तद्यथा–

दोण्हं तिण्हं चउण्हं कोहादीणं तु पढमठिदिमेत्तं ।
माणस्स य मायाए बादरलोहस्स पढमठिदी[2] ।।३५४।।

द्वयोस्त्रयाणां चतुर्णां क्रोधादीनां तु प्रथमस्थितिमात्रम् ।
मानस्य च मायाया बादरलोभस्य प्रथमस्थितिः ।।३५४।।

संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां मध्ये पुंक्रोधोदयेनारूढस्य द्वयोः क्रोधमानयोर्यावन्मात्री प्रथमस्थितिस्तावन्मात्री पुंमानोदयेनारूढस्य मानप्रथमस्थितिर्भवति–

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १०१ २) जयध. पु. १४, पृ. १०१–१०२

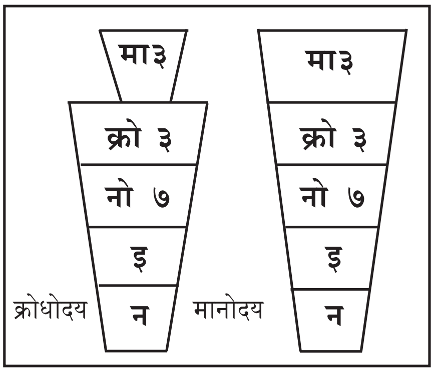

तथा पुंक्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानमायासंज्वलनानां त्रयाणां सम्पिण्डिता प्रथमस्थितिर्यावन्मात्री पुंमायोदयारूढस्य संज्वलनमायाप्रथमस्थितिर्भवति।

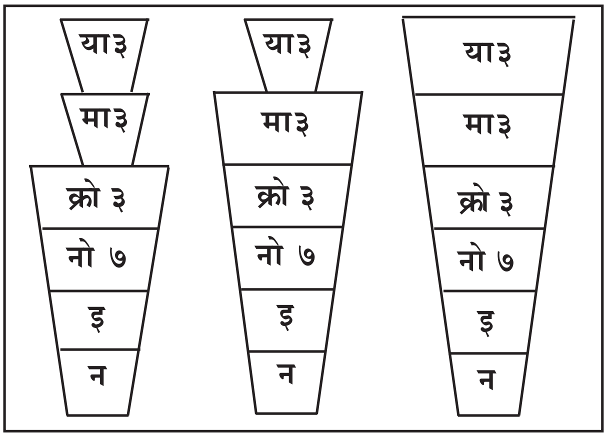

तथा पुंक्रोधोदयारूढस्य संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां समुदिता यावन्मात्री प्रथमस्थिति-र्भवति तावन्मात्री पुंलोभोदयेनारूढस्य संज्वलनबादरलोभस्य प्रथमस्थितिर्भवति ।

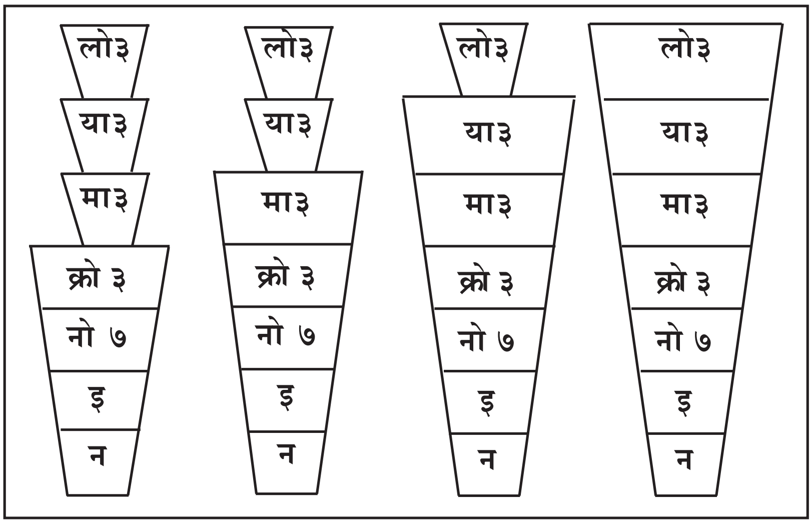

चतुर्णामुदयैः श्रेण्यारूढानां सर्वेषां सूक्ष्मलोभप्रथमस्थितिः समानैव ।

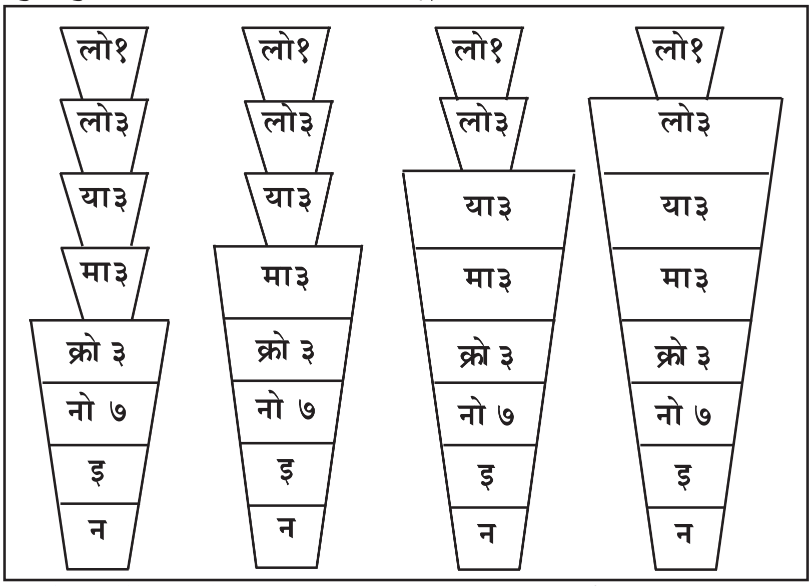

तथा नपुंसकवेदस्त्रीवेदसप्तनोकषायाणामुपशमनकालाश्चतुर्णां समाना एव ।।३५४।।

वह इस प्रकार

अन्वयार्थ– **(कोहादीणं दोण्हं पढमठिदिमेत्तं)** क्रोधादिक दो कषायों की जितनी प्रथम स्थिति है उतनी **(माणस्स)** एक मान कषाय की **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति होती है। **(कोहादीणं तिण्हं तु पढमठिदिमेत्तं)** क्रोधादिक तीन कषायों की प्रथम स्थितिप्रमाण **(मायाए पढमठिदि)** एक माया कषाय की प्रथम स्थिति होती है **(य)** और **(कोहादीणं चउण्हं पढमठिदिमेत्तं)** क्रोधादिक चार कषायों की प्रथम स्थितिप्रमाण **(बादरलोहस्स)** बादरलोभ की **(पढमठिदी)** प्रथम स्थिति होती है।।३५४।।

टीकार्थ–संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ में से पुरुषवेद और क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़ने वाले की क्रोध और मान कषाय दोनों की मिलकर जितनी प्रथम स्थिति है उतनी पुरुषवेद और मान के उदय से श्रेणि चढ़ने वाले की मान की प्रथम स्थिति होती है।

उसीप्रकार पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़ने वाले की क्रोध, मान और माया इन तीन कषायों की मिलकर जितनी प्रथम स्थिति है उतनी पुरुषवेद और माया कषाय के उदय से श्रेणि चढ़ने वाले की संज्वलन माया कषाय की प्रथम स्थिति होती है।

उसीप्रकार पुरुषवेद और क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़ने वाले जीव की संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ की मिलकर जितनी प्रथम स्थिति है उतनी पुरुषवेद और लोभ के उदय से श्रेणि चढ़ने वाले की संज्वलन बादरलोभ की प्रथम स्थिति होती है।

चारों कषायों के उदय से श्रेणि चढ़नेवाले सबकी सूक्ष्मलोभ की प्रथम स्थिति समान ही है। उसीप्रकार नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और सात नोकषायों का उपशमनकाल चारों का भी समान ही है।

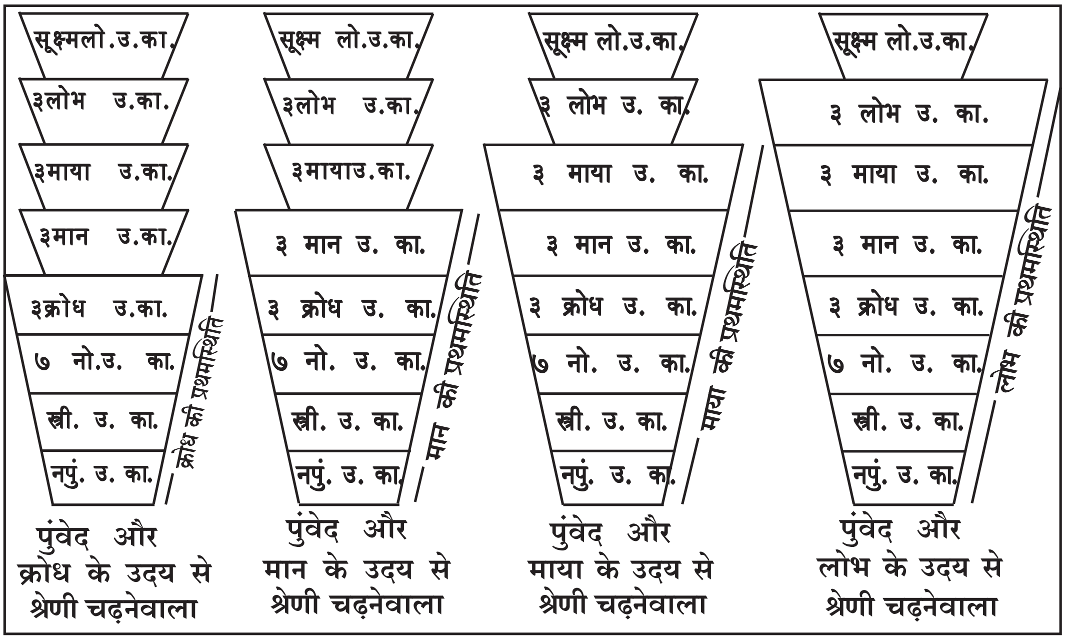

जस्सुदयेणारूढो सेढीं तस्सेव ठवदि पढमठिदिं ।
सेसाणावलिमेत्तं मोत्तूण करेदि अंतरं णियमा ।।३५५।।

यस्योदयेनारूढो श्रेणिं तस्यैव स्थापयति प्रथमस्थितिम् ।
शेषाणामावलिमात्रं मुक्त्वा करोत्यन्तरं नियमात् ।।३५५।।

यस्य वेदस्य कषायस्य वा उदयेन श्रेणीमारूढस्तस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं स्थापयित्वा शेषवेदकषायाणां उदयरहितानामावलिमात्रीं मुक्त्वा उपर्यन्तरं करोति ।।३५५।।

अन्वयार्थ– (जस्सुदयेण सेढीं आरूढो) जिस कषाय अथवा वेद के उदय से श्रेणि चढ़ता है **(तस्सेव)** उसकी ही **(पढमठिदिं)** प्रथम स्थिति **(ठविदि)** स्थापित करता है। **(सेसाण)** शेष (अनुदयरुप) प्रकृतियों की **(णियमा)** नियम से **(आवलिमेत्तं मोत्तूण)** आवलि मात्र स्थिति छोड़कर **(अंतरं करेदि)** अंतर करता है।।३५५।।

टीकार्थ– जिस वेद अथवा कषाय के उदय से श्रेणि पर आरूढ़ होता है उसकी प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र स्थापन करके शेष उदयरहित वेद और कषायों की आवलि मात्र स्थिति छोड़कर उसके ऊपर अंतर करता है।।३५५।।

जस्सुदयेणारूढो सेढिं तक्कालपरिसमत्तीए ।
पढमट्ठिदिं करेदि हु अणंतरुवरुदयमोहस्स।।३५६।।

यस्योदयेनारूढः श्रेणिं तत्कालपरिसमाप्तौ।
प्रथमस्थितिं करोति ह्यनन्तरोपर्युदयमोहस्य।।३५६।।

यस्य कषायस्योदयेन श्रेणीमारूढः तत्कषायप्रथमस्थितौ समाप्तायां पुनरनन्तरो-परितनोदयवत्कषायस्य प्रथमस्थितिं करोति । तथाहि-

यथा पुंक्रोधोदयेन श्रेणीमारूढः संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितावन्तर्मुहूर्तमात्र्यां समाप्तायां पुनर्मानसंज्वलनस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति । एवमुपर्यपि । तथा पुंमानोदयेन श्रेणीमारूढः संज्वलनमानस्थितावन्तर्मुहूर्तमात्र्यां समाप्तायां पुनः संज्वलनमायाप्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति । एवमुपर्यपि । तथा पुंमायोदयेन श्रेणिमारूढः संज्वलनमायाप्रथमस्थितावन्तर्मुहूर्तमात्र्यां समाप्तायां पुनःसंज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति । एवमुपर्यपि । तथा पुंलोभोदयेन श्रेणीमारूढः संज्वलनलोभप्रथमस्थितावन्तर्मुहूर्तमात्र्यां निष्ठितायां पुनः सूक्ष्मलोभस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति ।।३५६।।

अन्वयार्थ- **(जस्सुदयेण)** जिसके उदय से **(सेढिं आरूढो)** श्रेणि चढ़ा **(तक्काल-परिसमत्तीए)** उसका काल समाप्त होने पर **(अणंतरुवरुदयमोहस्स)** उसके अनन्तर ऊपर की उदयरूप मोह की **(पढमट्ठिदिं)** प्रथम स्थिति **(करेदि हु)** करता है।।३५६।।

टीकार्थ- जिस कषाय के उदय से श्रेणि चढ़ा उस कषाय की प्रथम स्थिति समाप्त होने पर अनन्तर ऊपर की उदयरूप कषाय की प्रथम स्थिति करता है। उसका स्पष्टीकरण-

जिस प्रकार जो पुरुषवेद और क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़ा वह संज्वलन क्रोध की अंतर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति समाप्त होने पर पुनः संज्वलन मान की अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति करता है। इस प्रकार माया व लोभ की भी करता है। उसीप्रकार जो पुरुषवेद और मान के उदय से श्रेणि चढ़ा वह संज्वलन मान की अन्तर्मुहूर्त मात्र प्रथम स्थिति समाप्त होने पर पुनः संज्वलन माया की अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति करता है। इसी प्रकार ऊपर लोभ की भी करता है। उसी प्रकार जो पुरुषवेद और माया के उदय से श्रेणि चढ़ा वह जीव संज्वलन माया की अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति समाप्त होने पर पुनः संज्वलन लोभ की अन्तर्मुहूर्त मात्र प्रथम स्थिति करता है। इसी प्रकार उसके बाद सूक्ष्म लोभ की भी करता है। उसी प्रकार जो पुरुषवेद और लोभ के उदय से श्रेणि चढ़ा वह जीव संज्वलन लोभ की अंतर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति समाप्त होने पर पुनः सूक्ष्म लोभ की अंतर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति करता है।।३५६।।

माणोदएण चडिदो कोहं उवसमदि कोहअद्धाए ।
मायोदएण चडिदो कोहं माणं सगद्धाए ।।३५७।।

मानोदयेन चटितः क्रोधं उपशमयति क्रोधाद्धायाम् ।
मायोदयेन चटितःक्रोधं मानं स्वकाद्धायाम् ।।३५७।।

पुंक्रोधोदयेनारूढस्य या संज्वलनक्रोधोदयाद्धा तस्यामेव पुंमानोदयेन श्रेण्यारूढः उदयरहितक्रोधत्रयमुपशमयति । तथा पुंमायोदयेनारूढः उदयरहितं क्रोधत्रयं मानत्रयं च पुंक्रोधोदयारूढस्य क्रोधप्रथमस्थितौ मानप्रथमस्थितौ चोपशमयति ।।३५७।।

अन्वयार्थ– **(माणोदएण चडिदो)** मान के उदय से चढ़ा हुआ जीव **(कोहअद्धाए)** क्रोध के काल में **(कोहं)** क्रोध का **(उवसमदि)** उपशमन करता है। **(मायोदएण चडिदो)** माया के उदय से श्रेणि चढ़ा हुआ जीव **(सगद्धाए)** अपने–अपने काल में **(कोहं माणं)** क्रोध और मान का उपशमन करता है, अर्थात् क्रोध के काल में क्रोध का और मान के काल में मान का उपशमन करता है।।३५७।।

टीकार्थ– पुरुषवेद और क्रोध के उदय से चढ़े हुए जीव का जो संज्वलन क्रोध का उदयकाल है उतने ही काल में पुरुषवेद और मान के उदय से श्रेणि चढ़ा हुआ जीव उदयरहित तीन क्रोध का उपशमन करता है। उसीप्रकार पुरुषवेद और माया के उदय से श्रेणि चढ़ा हुआ जीव उदयरहित तीन क्रोध और तीन मान का क्रमशः पुरुषवेद और क्रोध के उदय से चढ़े हुए जीव की क्रोध की प्रथम स्थिति का और मान की प्रथम स्थिति का जो काल है उस काल में उपशमन करता है।।३५७।।

लोभोदएण चडिदो कोहं माणं च मायमुवसमदि।
अप्पप्पण अद्धाणे[१] ताणं पढमट्ठिदी णत्थि ।।३५८।।

लोभोदयेन चटितः क्रोधं मानं च मायामुपशमयति ।
आत्मात्मनोऽध्वाने तेषां प्रथमस्थितिर्नास्ति ।।३५८।।

पुंलोभोदयेनारूढः उदयरहितं क्रोधत्रयं मानत्रयं मायात्रयं च पुंक्रोधोदयारूढस्य यथासंख्यं क्रोधप्रथमस्थितौ मानप्रथमस्थितौ मायाप्रथमस्थितौ चोपशमयति । तेषां क्रोध–मानमायानां प्रथमस्थितिर्नास्त्युदयरहितत्वात् ।।३५८।।

अन्वयार्थ– **(लोभोदएण चडिदो)** लोभ के उदय से चढ़ा हुआ जीव **(कोहं माणं मायं च)** क्रोध, मान और माया का **(अप्पप्पण अद्धाणे)** अपने–अपने काल में **(उवसमदि)**

---

१) पाठभेद–अद्धाए । का. ह. प्र.

उपशम करता है। **(ताणं)** उनकी **(पढमट्ठिदि)** प्रथम स्थिति **(णत्थि)** नहीं होती है।।३५८।।

टीकार्थ– पुरुषवेद और लोभ के उदय से श्रेणि चढ़ा हुआ जीव उदयरहित तीन क्रोध, तीन मान और तीन माया का, पुरुषवेद और क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़ा हुआ जीव क्रम से क्रोध की प्रथम स्थिति में, मान की प्रथम स्थिति में और माया की प्रथम स्थिति में उपशमन करता है। उनकी क्रोध, मान व माया की प्रथम स्थिति नहीं होती क्योंकि (लोभ के उदय से चढ़े हुए जीव को) क्रोधादिकों का उदय नहीं होता। ।।३५८।।

विशेषार्थ– पुरुषवेद और क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़े हुए जीव की जो क्रोध की प्रथम स्थिति है उस काल में यह पुरुषवेद और लोभ के उदय से चढ़ा हुआ जीव तीन क्रोध का उपशमन करता है। उसकी मान की प्रथम स्थिति के काल में तीन मान का उपशमन करता है। उसकी माया की प्रथम स्थिति के काल में तीन माया का उपशमन करता है। पुरुषवेद और लोभ के उदय से चढ़े हुए जीव को श्रेणि पर एक लोभ कषाय का ही उदय होता है। क्रोध, मान और माया का उदय नहीं होता है। इसलिए वह अंतर करने के पूर्व में लोभ की प्रथम स्थिति करता है। क्रोध, मान और माया की प्रथम स्थिति नहीं करता है।

माणोदयचडपडिदो कोहोदयमाणमेत्तमाणुदओ ।
माणतियाणं सेसे सेससमं कुणदि गुणसेढिं ।।३५९।।

मानोदयचटपतित: क्रोधोदयमानमात्रमानोदय: ।
मानत्रयाणां शेषे शेषसमं करोति गुणश्रेणीम् ।।३५९।।

पुंमानोदयेन श्रेणिमारुह्य पतितस्य मानोदयकाल: क्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानोदयकालप्रमित:। स मानोदयारूढपतितस्त्रिविधं मानमपकृष्य ज्ञानावरणादिगुणश्रेणेरायामसमानं गलितावशेषायामेन गुणश्रेणिं करोति । मायोदयारूढपतितस्य मायोदयकाल: क्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानमायोदय-कालप्रमित:। स मायोदयारूढपतितस्त्रिविधमायामपकृष्य ज्ञानावरणादिगुणश्रेण्यायामसमेन गलितावशेषायामेन गुणश्रेणिं करोति । लोभोदयारूढपतितस्य लोभोदयकाल: क्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानमायालोभोदयकालमात्र:। स लोभोदयारूढपतितस्त्रिविधलोभमपकृष्य ज्ञानावरणादि-गुणश्रेण्यायामसमेन गलितावशेषायामेन गुणश्रेणिं करोति ।।३५९।।

अन्वयार्थ– **(माणोदयचडपडिदो)** मान के उदय से श्रेणि चढ़कर गिरे हुए जीव का **(कोहोदयमाणमेत्तमाणुदओ)** क्रोध और मान के उदयकाल प्रमाण मान का उदयकाल है। **(माणतियाणं)** तीन मान की **(सेससमं)** शेष कर्म समान **(सेसे गुणसेढिं)** गलितावशेष गुणश्रेणि **(कुणदि)** करता है।।३५९।।

टीकार्थ– पुरुषवेद और मान के उदय से श्रेणि चढ़कर गिरे हुए जीव का मान का उदयकाल, क्रोध के उदय से चढ़े हुए जीव के क्रोध और मान के उदयकाल प्रमाण है। मान के उदय से चढ़कर गिरा हुआ वह जीव तीन प्रकार के मान का अपकर्षण करके ज्ञानावरणादि गुणश्रेणिआयाम के समान गलितावशेष आयाम से गुणश्रेणि करता है। माया के उदय से चढ़कर गिरे हुए जीव का माया का उदयकाल, क्रोध के उदय से चढ़े हुए जीव का क्रोध, मान और माया का जितना उदयकाल है उतना प्रमाण है। माया के उदय से चढ़कर गिरा वह जीव तीन प्रकार की माया का अपकर्षण करके ज्ञानावरणादि गुणश्रेणिआयाम के समान गलितावशेष आयाम से गुणश्रेणि करता है। लोभ के उदय से चढ़कर गिरे हुए जीव के लोभ का उदयकाल, क्रोध के उदय से श्रेणि चढ़े हुए जीव का क्रोध, मान, माया और लोभ का जितना उदयकाल है उतना प्रमाण है। लोभ के उदय से चढ़कर गिरा वह जीव तीन प्रकार के लोभ का अपकर्षण करके ज्ञानावरणादि के गुणश्रेणि आयाम समान गलितावशेष आयाम से गुणश्रेणि करता है।।३५९।।

माणादितियाणुदये चडपडिये सगसगुदयसंपत्ते ।
णवछत्तिकसायाणं गलिदवसेसं करेदि गुणसेढिं ।।३६०।।

मानादित्रयाणामुदये चटपतिते स्वकस्वकोदयसम्प्राप्ते ।
नवषट्त्रिकषायाणां गलितावशेषां करोति गुणश्रेणिम् ।।३६०।।

मानमायालोभोदयैरारूढपतितः स्वस्वकषायोदयं सम्प्राप्तः यथासङ्ख्यं नवषट्–त्रिकषायाणां गलितावशेषायामां पूर्वोक्तप्रकारेण गुणश्रेणिं करोति।।३६०।।

अन्वयार्थ– **(माणादितियाणुदये चडपडिये)** मानादि तीन कषायों के उदय से श्रेणि चढ़कर गिरने पर **(सगसगुदयसंपत्ते)** अपनी अपनी कषायों का उदय प्राप्त होने पर क्रम से **(णवछत्तिकसायाणं)** नौ, छह, तीन कषायों की **(गलिदवसेसं गुणसेढिं)** गलितावशेष गुणश्रेणि **(करेदि)** करता है।।३६०।।

टीकार्थ–मान, माया और लोभ के उदय से चढ़कर गिरा हुआ जीव क्रोध का उदय प्रारम्भ होने पर बारह कषायों की गलितावशेष गुणश्रेणि करता है अपने अपने कषाय के उदय को प्राप्त होने पर क्रमसे नौ, छह और तीन कषायों की पूर्वोक्त प्रकार से गलितावशेष आयामरूप गुणश्रेणि करता है।।।३६०।।

विशेषार्थ–जिसप्रकार क्रोध के उदयसहित चढ़कर गिरा हुआ जीव क्रोध का उदय प्रारंभ होनेपर बारह कषायों की गलितावशेष गुणश्रेणी करता है उसीप्रकार मान के उदयसहित चढ़कर गिरा जीव मान का उदय प्रारम्भ होने पर नोकषायों की गलितावशेष गुणश्रेणि करता

है। माया के उदयसहित चढ़कर गिरा हुआ जीव माया का उदय शुरु होने पर लोभ और मायारूप छह कषायों की गलितावशेष गुणश्रेणि करता है। लोभ सहित चढ़कर गिरा हुआ जीव लोभ का उदय होने पर तीन प्रकार के लोभ की गलितावशेष गुणश्रेणि करता है।

जस्सुदएण य चडिदो तम्हि य ओक्कट्टियम्हि पडिऊण ।
अंतरमाऊरेदि हु एवं पुरीसोदए चडिदो ।।३६१।।

यस्योदयेन च चटितस्तस्मिंश्चापकर्षिते पतित्वा ।
अन्तरमापूरयति ह्येवं पुरुषोदये चटितः।।३६१।।

यस्य कषायस्योदयेन श्रेणिमारुह्य पतितः तस्मिन् कषायेऽपकृष्टेऽन्तरमापूरयति । एवमुक्तप्रकारेण पुंवेदोदयेन श्रेण्यारूढावरूढो व्याख्यातः ।।३६१।।

अन्वयार्थ– **(जस्सुदएण य चडिदो)** जिस कषाय के उदय से श्रेणि चढ़ा है **(पडिऊण)** गिरकर **(तम्हि य ओक्कट्टियम्हि)** उस कषाय का अपकर्षण होने पर **(अंतरमाऊरेदि हु)** अंतर भरता है **(एवं)** इस प्रकार **(पुरिसोदए)** पुरुषवेद के उदय से **(चडिदो)** चढ़े हुए जीव का विधान कहा है।।३६१।।

टीकार्थ– जीव जिस कषाय के उदय से चढ़कर गिरा उस कषाय का अपकर्षण होने पर अन्तर भरता है। इस प्रकार ऊपर कहे गए प्रकार से पुरुषवेद के उदय से श्रेणि चढ़ने और उतरने का व्याख्यान किया।।३६१।।

थीउदयस्स वि एवं अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे।
सममुवसामदि संढस्सुदए चडिदस्स वोच्छामि ।।३६२।।

स्त्र्युदयस्याप्येवमपगतवेदो हि सप्तकर्मांशान् ।
सममुपशमयति षंढस्योदये चटितस्य वक्ष्यामि ।।३६२।।

स्त्रीवेदोदयेन सहितैः क्रोधादिकषायोदयैः श्रेणिमारूढः, अपगतवेदोदयः सन्नेव सप्तनोकषायान् युगपदुपशमयति । अवशिष्टं सर्वमुपशमनविधानं पुंवेदारूढवद्द्रष्टव्यं ।।३६२।।

अन्वयार्थ– **(थीउदयस्स वि एवं)** स्त्रीवेद के उदय से चढ़े हुए का भी विधान इसीप्रकार है। विशेष यह है कि **(अवगदवेदो हु)** अपगतवेदी अर्थात् वेद के उदय से रहित होकर **(सत्तकम्मंसे)** सात नोकषायों को **(सममुवसामदि)** एक समय में ही उपशमित करता है। **(संढस्सुदए)** नपुंसकवेद के उदय से **(चड्डिदस्स)** चढ़े हुए जीव का **(वोच्छामि)** आगे मैं व्याख्यान करता हूँ।

टीकार्थ– स्त्रीवेद के उदय से सहित क्रोधादि कषायों के उदय से श्रेणि चढ़ा वेद के उदय से रहित होकर ही सात नोकषायों का एक समय में ही उपशमन करता है। शेष सर्व उपशमविधान पुरुषवेद के उदय से चढ़े हुए जीव के समान ही जानना चाहिए।

अथ षण्ढोदयारूढस्य विशेषं वक्ष्यामि–

संढुदयंतरकरणो संढद्धाणम्हि अणुवसंतंसे।
इत्थिस्स य अद्धाए संढं इत्थिं च समगमुवसमदि।।३६३।।

षण्ढोदयान्तरकरणः षण्ढाद्धायामनुपशान्तांशे ।
स्त्रियश्चाद्धायां षण्ढं स्त्रीं च समकमुपशमयति ।।३६३।।

नपुंसकवेदोदयेन सहितैः क्रोधादिकषायैः श्रेण्यारूढो नपुंसकवेदस्यान्तरं कुर्वाणः प्रथमस्थितिं पुंवेदोदयारूढस्य नपुंसकस्त्रीवेदोपशमनकालमात्रीं स्थापयित्वा प्रागेव नपुंसकवेदोपशमनं प्रारभ्य पुंवेदारूढनपुंसकोपशमनकालपर्यन्तं गच्छति नाद्यापि नपुंसकवेदोपशमनं समाप्तम् । ततः स्त्रीवेदोपशमनं प्रारभ्य द्वावपि वेदावुपशमयन् पुंवेदारूढस्य स्त्रीवेदोपशमनकालमात्रमन्तर्मुहूर्तं गत्वा ।।३६३।।

अब नपुंसकवेद के उदय से चढ़े हुए जीव का विशेष मैं कहूँगा। (इसप्रकार आचार्य प्रतिज्ञा करते हैं)–

अन्वयार्थ– (संढुदयंतरकरणो) नपुंसकवेद के उदय से श्रेणि चढ़नेवाला अंतरकरण किया हुआ जीव **(संढद्धाणम्हि)** नंपुसकवेद के उपशमनकाल में **(अणुवसंतंसे)** नपुंसकवेद पूर्णरूप से उपशान्त न होने से **(इत्थिस्स य अद्धाए)** स्त्रीवेद के उपशमन काल में **(संढं इत्थिं च)** नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का **(समगमुवसमदि)** एक साथ उपशमन करता है।।३६३।।

टीकार्थ– नपुंसकवेद के उदय से सहित क्रोधादि कषाय से श्रेणि चढ़ा हुआ अन्तर करनेवाला जीव पुरुषवेद के उदय से श्रेणि चढ़ने वाले जीव का जो नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का उपशमन काल है उतनी मात्र नपुंसकवेद की प्रथम स्थिति स्थापित करके प्रथम नपुंसकवेद का उपशमन प्रारंभ करके पुरुषवेद के उदय से चढ़ने वाले के नपुंसकवेद के उपशमनकालतक जाता है तो भी नपुंसकवेद का उपशमन पूर्ण नहीं होता। उसके पश्चात् स्त्रीवेद का उपशमन शुरु करके दोनों वेदों का उपशमन करता हुआ पुरूषवेद के उदय से चढ़ने वाले का जो स्त्रीवेद का उपशमनकाल प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है वहाँ तक जाकर (क्या करता है वह आगे की गाथा में कहते हैं)।।३६३।।

ताहे चरिमसवेदो अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे ।
सममुवसामदि सेसा पुरीसोदयचलिदभंगा हु ।।३६४।।

तस्मिन् चरमसवेदोऽपगतवेदो हि सप्तकर्मांशान् ।
सममुपशमयति शेषाः पुरुषोदयचलितभङ्गा हि ।।३६४।।

तदा चरमसमयसवेदः स्त्रीनपुंसकवेदोपशमनं निष्ठापयति। ततः परमपगतवेदः सप्तनोकषायान् सममुपशमयति। शेषं सर्वं पुंवेदारूढप्रकारेण ज्ञातव्यम् ।।३६४।।

अन्वयार्थ- **(ताहे)** उस समय में वह **(चरिमसवेदो)** अंतिम समयवर्ती सवेदी होता है उसके पश्चात् **(अपगदवेदो हु)** अपगतवेदी **(सत्तकम्मंसे)** सात कर्मों का **(सममुवसामदि)** एक समय में ही उपशमन करता है। **(सेसा)** शेष सर्व **(पुरिसोदयचलिदभंगा हु)** पुरुषवेद के उदय से चढे हुए जीव के समान विधान है।।३६४।।

टीकार्थ- उस समय में वह अंतिम समयवर्ती सवेदी जीव स्त्री और नपुंसकवेद का उपशमन समाप्त करता है। उसके पश्चात् वेदरहित होकर सात नोकषायों का एक ही साथ उपशमन करता है। शेष सब विधान पुरुषवेद के उदय से चढ़े हुए जीव के समान जानना चाहिए। ।।३६४।।

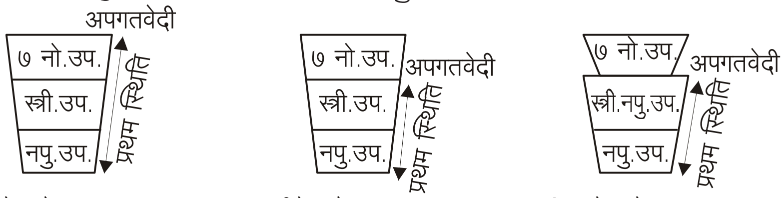

पुरुषवेद से चढा हुआ   स्त्रीवेद से चढा हुआ   नपुंसकवेद से चढा हुआ

अथोपशमनश्रेण्यामल्पबहुत्वपदकथनप्रतिज्ञामाह-

पुंकोहस्स य उदए चडपडिदेऽपुव्वदो अप्पुव्वो त्ति ।
एदिस्से अद्धाये अप्पाबहुगं तु वोच्छामि ।।३६५।।

पुंक्रोधस्य चोदये चटपतितेऽपूर्वतोऽपूर्व इति ।
एतस्यामद्धायामल्पबहुकं तु वक्ष्यामि ।।३६५।।

पुंक्रोधोदयारूढावरूढस्यारोहकापूर्वकरणप्रथमसमयात्प्रभृति अवरोहकापूर्वकरणचरमसमय-पर्यन्ते काले सम्भवाल्पबहुत्वपदानि वक्ष्यामि ।।३६५।।

अब उपशमश्रेणि में अल्पबहुत्वपद के कथन की प्रतिज्ञा करते हैं-

अन्वयार्थ- **(पुंकोहस्स य उदए)** पुरुषवेद और क्रोध के उदय से **(चडपडिदे)** श्रेणि चढ़कर गिरनेवाले जीव का **(अपुव्वदो अप्पुव्वो त्ति)** आरोहक अपूर्वकरण से अवरोहक अपूर्वकरण पर्यन्त **(एदिस्से अद्धाये)** इस काल में **(अप्पाबहुगं तु)** अल्पबहुत्व **(वोच्छामि)** मैं कहता हूँ।।३६५।।

टीकार्थ- पुरुषवेद और क्रोध के उदय से चढ़कर उतरने वाले जीव के आरोहक अपूर्वकरण के प्रथम समय से अवरोहक अपूर्वकरण के अंतिम समय पर्यंत के काल में संभवने वाले अल्पबहुत्व स्थान मैं कहता हूँ। ।।३६५।।

अथ तान्येवाल्पबहुत्वपदानि व्याख्यातुं सप्तविंशतिगाथाः प्ररूपयति–

अवरादो वरमहियं रसखंडुक्कीरणस्स अद्धाणं ।
संखगुणं अवरट्ठिदिखंडस्सुक्कीरणो कालो[1] ।।३६६।।

अवराद् वरमधिकं रसखंडोत्करणस्याध्वानम् ।
संख्यगुणमवरस्थितिखंडस्योत्करणः कालः ।।३६६।।

सर्वतः स्तोको जघन्यानुभागकाण्डकोत्करणाद्धा २ ज्ञानावरणादिकर्मणामारोहक-सूक्ष्मसाम्परायचरमानुभागकाण्डकोत्करणाद्धा मोहनीयस्यान्तरकरणे क्रियमाणे तत्र चरमानुभागकाण्डकोत्करणाद्धा च जघन्या कथ्यते।१।तत उत्कृष्टानुभागखण्डोत्करणाद्धा विशेषाधिका २१̍ साप्यारोहकापूर्वकरणप्रथमसमये सर्वकर्मणां भवति।२।ततो ज्ञानावरणादि-कर्मणां जघन्यस्थितिकाण्डकोत्करणकालः सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयसम्भवी अनिवृत्तिकरणचरम-समयसम्भवी मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धकालश्च संख्यातगुणौ २१̍४ परस्परं समानौ।३। ।।३६६।।

अब उस अल्पबहुत्वपद का व्याख्यान करने के लिए सत्ताईस गाथाएँ कहते हैं–

अन्वयार्थ– (रसखंडुक्कीरणस्स अवरादो वरं अद्धाणं अहियं) अनुभागकाण्डकोत्करण के जघन्य काल की अपेक्षा उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे **(अवरट्ठिदिखंडस्सुकीरणो कालो संखगुणं)** जघन्य स्थितिकांडकोत्करण काल संख्यातगुणा है।।३६६।।

टीकार्थ–जघन्य अनुभागकाण्डकोत्करण काल सबसे छोटा है। २१ (अन्तर्मुहूर्त) ज्ञानावरणादि कर्मों का चढ़ते समय सूक्ष्मसांपराय का अंतिम अनुभागकाण्डकोत्करण काल और मोहनीय का अन्तरकरण करते समय वहाँ अंतिम अनुभागकाण्डकोत्करण काल जघन्य कहा जाता है। पद–१।

उससे उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकोत्करण काल विशेष अधिक है २१̍ (विशेष अधिक करने के लिए अन्तर्मुहूर्त के ऊपर खड़ी रेखा दी है)। वह भी आरोहक अपूर्वकरण के प्रथम समय में सभी कर्मों का होता है। पद–२। उससे सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में होनेवाला ज्ञानावरणादि कर्मों का जघन्य स्थितिकाण्डकोत्करण काल और अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में होनेवाला मोहनीय का जघन्य स्थितिबन्धकाल संख्यातगुणे होकर दोनों परस्पर समान ही हैं २१̍४ (संख्यात की संदृष्टि ४ है।) पद–३ ।।३६६।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १२०–१२१

पडणजहण्णट्ठिदिबंधद्धा तह अंतरस्स करणद्धा ।
जेट्ठट्ठिदिबंधट्ठिदिउक्कीरद्धा य अहियकमा[1] ।।३६७।।

पतनजघन्यस्थितिबन्धाद्धा तथाऽन्तरस्य करणाद्धा ।
ज्येष्ठस्थितिबन्धस्थित्युत्करणाद्धा चाधिकक्रमाः ।।३६७।।

तस्मादवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यस्थितिबन्धकालः अवतारकानिवृत्तिकरणप्रथमसमये मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धकालश्च विशेषाधिकौ परस्परं समानौ [२०४] ।४। एतस्मादन्तरकरणकालो विशेषाधिकः [२०४] ननु पूर्वमेकस्थितिकाण्ड-कोत्करणकालसमानः अन्तरकरणकाल इत्युक्तम् । इदानीं विशेषाधिक इत्युच्यते, कथने पूर्वापरविरोधः इति चेन्न मध्यमस्थितिकाण्डकोत्करणकालेनान्तरकरणकालस्य समानत्ववचनात् ।५। तस्मादन्तरकरणकालादारोहकापूर्वकरणप्रथमसमयसम्भविनौ उत्कृष्टस्थितिबन्धकाल उत्कृष्टस्थितिकाण्डकोत्करणकालश्च विशेषाधिकौ [२०४] ।४। परस्परं समानौ ।६। ।।३६७।।

अन्वयार्थ– जघन्य स्थितिकाण्डकोत्कीरणकाल से **(पडणजहण्णट्ठिदिबंधद्धा)** गिरनेवाले का जघन्य स्थितिबंधकाल **(तह)** उसीप्रकार **(अंतरस्स करणद्धा)** अंतरकरणकाल **(य)** और **(जेट्ठट्ठिदिबंधट्ठिदिउक्कीरद्धा)** उत्कृष्ट स्थिति बंधकाल और उत्कृष्ट स्थिति काण्डकोत्कीरणकाल **(अहियकमा)** क्रम से अधिक हैं।।३६७।।

टीकार्थ– उससे उतरनेवाले का सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में होनेवाला ज्ञानावरणादि कर्मों का जघन्य स्थितिबंध काल और अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में होनेवाला मोहनीय का जघन्य स्थितिबंधकाल विशेष अधिक होकर भी वे दोनों परस्पर समान [२०४] हैं । पद–४। इससे अंतरकरण काल विशेष अधिक हैं। [२०४]

शंका– पूर्व में एक स्थितिकाण्डकोत्करण काल से अन्तरकरण काल समान है इसप्रकार कहा है। अब विशेष अधिक है इस प्रकार कहते हैं। अतः इस कथन में पूर्वापर विरोध आता है।

समाधान– ऐसा नहीं है क्योंकि पूर्व में मध्यम स्थितिकाण्डकोत्करणकाल के समान अंतरकरणकाल कहा था, (यहाँ जघन्य स्थितिकाण्डकोत्करणकाल की अपेक्षा अधिक कहा है।) पद–५। उस अंतरकरणकाल से चढ़नेवाले अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिबंधकाल और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकोत्कीरण काल विशेष अधिक है [२०४]। वे दोनों काल परस्पर समान हैं। पद–६।।३६७।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १२१–१२२

सुहमंतिमगुणसेढी उवसंतकसायगस्स गुणसेढी।
पडिवदसुहुमद्धा वि य तिण्णि वि संखेज्जगुणिदकमा[१] ।।३६८।।

सूक्ष्मान्तिमगुणश्रेण्युपशान्तकषायकस्य गुणश्रेणी ।
प्रतिपतत्सूक्ष्माद्धापि च तिस्रोपि संख्येयगुणितक्रमाः ।।३६८।।

तत आरोहकसूक्ष्मसाम्परायचरमसमयसम्भविगलितावशेषो गुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणः [२१ ४।४] ।७। तत उपशान्तकषायस्य प्रथमसमये आरब्धगुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणः [२१ ४।४।४] ।८।,ततः प्रतिपतत्सूक्ष्मसाम्परायकालःसंख्यातगुणः [२१ ४।४।४।४] ।९। ।।३६८।।

अन्वयार्थ– उससे **(सुहुमंतिमगुणसेढी)** सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में होने वाला गुणश्रेणिआयाम, **(उवसंतकसायगस्स गुणसेढी)** उपशान्त कषाय का गुणश्रेणिआयाम **(य)** और **(पडिवदसुहुमद्धा वि)** गिरनेवाले का सूक्ष्मसांपराय काल **(तिण्णि वि)** ये तीनों भी **(संखेज्जगुणिदकमा)** क्रम से संख्यातगुणित हैं।।३६८।।

टीकार्थ– उससे आरोहक सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम समय में संभवनेवाला गलितावशेष गुणश्रेणिआयाम संख्यातगुणा है [२१ ४।४] पद–७। उससे उपशान्तकषाय के प्रथम समय में शुरु किया गया गुणश्रेणिआयाम संख्यातगुणा है [२१ ४।४।४] पद–८। उससे गिरने वाले का सूक्ष्म–साम्पराय का काल संख्यातगुणा है [२१ ४।४।४।४] । पद–९ ।।३६८।।

तग्गुणसेढी अहिया चडसुहुमो किट्टिउवसमद्धा य।
सुहुमस्स य पढमठिदी तिण्णि वि सरिसा विसेसहिया[२] ।।३६९।।

तद्गुणश्रेण्यधिका चलसूक्ष्मः कृष्ट्युपशमाद्धा च।
सूक्ष्मस्य च प्रथमस्थितिस्तिस्रोऽपि सदृशा विशेषाधिकाः।।३६९।।

तस्मात्प्रतिपतत्सूक्ष्मसाम्परायस्य संज्वलनलोभगुणश्रेण्यायामः आवलिमात्रेण विशेषाधिकः [१/२१] ।१०। ततः आरोहकसूक्ष्मसाम्परायकालः सूक्ष्मकृष्ट्युपशमनकालः सूक्ष्म–साम्परायप्रथमस्थित्यायामश्च विशेषाधिकाः [१ ।/२१] परस्परं समानाः। अत्र विशेषप्रमाण–मन्तर्मुहूर्तमात्रम् ।११। ।।३६९।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १२२–१२३ २) जयध. पु. १४, पृ. १२४

अन्वयार्थ– उससे **(तग्गुणसेढी)** उतरनेवाले सूक्ष्मसांपराय का गुणश्रेणि–आयाम **(अहिया)** अधिक है। उससे **(चडसुहुमो)** चढ़नेवाले का सूक्ष्मसांपराय का काल **(य)** और **(किट्टिउवसमद्धा)** कृष्टियों का उपशमनकाल **(य)** और **(सुहुमस्स पढमठिदी)** सूक्ष्मसांपराय की प्रथम स्थिति **(तिण्णि वि)** तीनों काल **(सरिसा)** परस्पर समान होकर (पूर्वपद से) **(विसेसहिया)** विशेष अधिक हैं। ।।३६९।।

टीकार्थ– उससे उतरनेवाले सूक्ष्मसांपराय के संज्वलन लोभ का गुणश्रेणिआयाम आवलिमात्र से विशेष अधिक है [१ / २੧] (सर्वकाल अंतर्मुहूर्त है इसलिए लघुसंदृष्टि करने के लिए पुन: २੧ यह चिह्न रखा। आवलि अधिक करने के लिए ऊपर एक अधिक किया है) पद–१०। उससे चढ़नेवाले का सूक्ष्मसांपराय का काल, सूक्ष्मकृष्टि उपशमनकाल और सूक्ष्मसांपराय की प्रथम स्थिति का आयाम विशेष अधिक है [१ । / २੧] वे तीनों काल परस्पर समान हैं। यहाँ विशेष का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। पद–११ ।।३६९।।

किट्टीकरणद्धहिया पडबादरलोभवेदगद्धा हु ।
संखगुणा तस्सेव य तिलोहगुणसेढिणिक्खेओ[१] ।।३७०।।

कृष्टिकरणाद्धाधिका पतद्बादरलोभवेदकाद्धा हि ।
संख्यगुणं तस्यैव च त्रिलोभगुणश्रेणिनिक्षेप: ।।३७०।।

तत: सूक्ष्मकृष्टिकरणकालो विशेषाधिक: [१ ।। / २੧] अयं चानिवृत्तिकरणकालस्य[१] किंचि–न्न्यूनत्रिभागमात्र: [२੧।१– / ३] ।१२। तत: पतद्बादरसाम्परायस्य बादरलोभवेदककाल: संख्यातगुण: [२੧।२ / ३] ।१३। तत: पतदनिवृत्तिकरणस्य लोभत्रयगुणश्रेणिनिपेक्ष: आवलिमात्रेणाधिक: [२੧।२ । / ३] ।१४। ।।३७०।।

अन्वयार्थ– इससे **(किट्टीकरणद्धहिया)** कृष्टिकरण काल अधिक है। उससे **(पडबादरलोभवेदगद्धा हु)** गिरनेवाले बादर सांपराय का बादरलोभ वेदककाल **(संखगुणा)** संख्यातगुणा है। उससे **(तस्सेव य)** उसका ही **(तिलोहगुणसेढिणिक्खेओ)** तीन लोभ का गुणश्रेणि निक्षेप विशेष अधिक है। (यहाँ से आगे ३७४ गाथा का अधिक शब्द लगाना चाहिए) ।।३७०।।

टीकार्थ– उससे सूक्ष्मकृष्टिकरण का काल विशेष अधिक है [१ ।। / २੧] । यह

---

१) 'अनिवृत्तिकरणकालस्य' इस स्थानपर 'लोभवेदककालस्य' ऐसा पाठ चाहिए।

अनिवृत्तिकरणकाल का (यहाँ लोभवेदककाल का ऐसा पाठ चाहिए।) कुछ कम तीसरा भागमात्र है। [२९।१– / ३] (किंचित् कम के लिए '–' रेखा है।) पद–१२। उससे गिरनेवाले बादरसांपराय का बादर लोभवेदककाल संख्यातगुणा है। [२९।२ / ३] (पूर्ण लोभवेदककाल का दो तिहाई भाग मात्र है।) पद–१३। उसकी अपेक्षा गिरनेवाले अनिवृत्तिकरण के तीन लोभ का गुणश्रेणिनिक्षेप आवलिमात्र से अधिक है। [। २९।२ / ३] (क्योंकि वेदककाल से गुणश्रेणि निक्षेप आवलिप्रमाण अधिक होता है।) पद–१४ ।।३७०।।

चडबादरलोहस्स य वेदगकालो य तस्स पढमठिदी ।
पडलोहवेदगद्धा तस्सेव य लोहपढमठिदी[१] ।।३७१।।

चटबादरलोभस्य च वेदककालश्च तस्य प्रथमस्थितिः ।
पतल्लोभवेदकाद्धा तस्यैव च लोभप्रथमस्थितिः ।।३७१।।

तस्मादारोहकानिवृत्तिकरणस्य बादरलोभवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः [॥ २९।२ / ३] **।१५। तत आरोहकानिवृत्तिकरणस्य बादरलोभप्रथमस्थित्यायामो विशेषाधिकः** [॥। २९।२ / ३] **।१६। ततः पतद्बादरलोभवेदककालो[२] विशेषाधिकः** [२९] **।१७। ततोऽवतारकस्य लोभप्रथम-स्थित्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः** [१— / २९] **।१८। ।।३७१।।**

अन्वयार्थ– (चडबादरलोहस्स य वेदगकालो) उससे चढ़ने वाले बादरलोभ का वेदककाल अधिक है। उससे **(य तस्स पढमठिदी)** उसकी ही प्रथम स्थिति अधिक है। उससे **(पडलोहवेदगद्धा)** गिरने वाले का पूर्ण लोभवेदककाल विशेष अधिक है। उससे **(तस्सेव य लोहपढमठिदी)** उसकी ही लोभ की प्रथम स्थिति विशेष अधिक है।।३७१।।

टीकार्थ– उससे चढ़ने वाले अनिवृत्तिकरण का बादरलोभ वेदककाल अन्तर्मुहूर्त मात्र से अधिक है [॥ २९।२ / ३]। पद–१५। उससे आरोहक अनिवृत्तिकरण के बादरलोभ की प्रथम स्थिति का आयाम विशेष अधिक है [॥। २९।२ / ३]। पद–१६। उससे गिरने वाले सूक्ष्म और बादरलोभ का मिलकर वेदककाल विशेष अधिक है। [२९] पद–१७। उससे गिरनेवाले का लोभ की प्रथम स्थिति का आयाम आवलिमात्र से अधिक है। [१— / २९] पद–१८ ।।३७१।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १२५–१२६ २) टीका में **'पतद्बादरलोभवेदककालो'** ऐसा पाठ है। उसके स्थानपर केवल **'पतद्लोभवेदककालो'** ऐसा पाठ चाहिए अथवा **'पतद्बादरसूक्ष्मलोभवेदककालो'** ऐसा पाठ चाहिए क्योंकि यहाँ सूक्ष्म और बादर दोनों का मिलकर काल ग्रहण किया है।

विशेषार्थ– पूर्व का तेरहवां स्थान भी लोभवेदककाल का दो तिहाई भाग (२/३) है और पंद्रहवां स्थान भी दो तिहाई (२/३) भाग है। फिर भी अनिवृत्तिकरण में उतरने की अपेक्षा चढ़ने का काल विशेष अधिक होता है। बादर लोभवेदककाल की अपेक्षा प्रथम स्थिति का आयाम आवलिमात्र से अधिक होता है क्योंकि चढ़नेवाला अनिवृत्तिकरण जीव चारो संज्वलन की अपने–अपने वेदककाल से उच्छिष्टावलिमात्र अधिक प्रथम स्थिति की रचना करता है।

तम्मायावेदद्धा पडिवडछण्हंपि खित्तगुणसेढी।
तम्माणवेदगद्धा तस्स णवण्हं पि गुणसेढी[1]।।३७२।।

तन्मायावेदकाद्धा प्रतिपतत्षण्णामपि क्षिप्तगुणश्रेणी ।
तन्मानवेदकाद्धा तस्य नवानामपि गुणश्रेणी ।।३७२।।

ततः पतन्मायावेदककालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः [१ I / २९] ।१९। ततः प्रतिपतन्माया–वेदकस्य षण्णां कषायाणां गुणश्रेण्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः [१ II / २९] ।२०। ततः प्रतिपत–न्मानवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकः [१ III / २९] ।२१। ततस्तस्यैव नवानां कषायाणां गुणश्रेण्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः [१ IIII / २९] ।२२। ।।३७२।।

अन्वयार्थ– उससे **(तम्मायावेदद्धा)** उसका (गिरनेवाले का) माया वेदककाल अधिक है। उससे **(पहिवडछण्हंपि खित्तगुणसेढी)** गिरनेवाले का छह कषायों का गुणश्रेणि निक्षेप विशेष अधिक है। उससे **(तम्माणवेदगद्धा)** उसका मानवेदककाल विशेष अधिक है। उससे **(तस्स णवण्हं पि गुणसेढी)** उसकी नोकषायों की गुणश्रेणि विशेष अधिक है।।३७२।।

टीकार्थ– उससे गिरनेवाले का माया वेदककाल अन्तर्मुहूर्त मात्र से अधिक है [१ I / २९]। पद–१९। उससे गिरनेवाले मायावेदक का छह कषायों का गुणश्रेणि आयाम आवलिमात्र अधिक है [१ II / २९] । पद–२०। उससे गिरनेवाले का मानवेदक काल अन्तर्मुहूर्त से अधिक है [१ III / २९]। पद–२१। उससे उसका ही नोकषायों का गुणश्रेणिआयाम आवलिमात्र से अधिक है [१ IIII / २९]। पद–२२ ।।३७२।।

चडमायावेदद्धा पढमट्ठिदि मायउवसमद्धा य ।
चलमाणवेदगद्धा पढमट्ठिदि माणउवसमद्धा य[2]।।३७३।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १२६–१२७ २) जयध. पु. १४, पृ. १२७–१२८

चटमायावेदाद्धा प्रथमस्थितिर्मायोपशमाद्धा च ।
चटमानवेदकाद्धा प्रथमस्थितिर्मानोपशमाद्धा च ।।३७३।।

तत आरोहकमायावेदककालोऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकः [२९] ।२३। ततस्तन्मायाप्रथमस्थित्यायाम उच्छिष्टावलिमात्रेणाधिकः [१/२९] ।२४। ततो मायोपशमनकालः समयोनावलिमात्रेणाधिकः [१।/२९] ।२५। तत आरोहकमानवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण विशेषाधिकः [१॥/२९] ।२६।ततस्तत्प्रथमस्थित्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः [१।।।/२९] ।२७। ततस्तन्मानोपशमनकालः समयोनावलिमात्रेणाधिकः [१।।।।/२९] ।२८। ।।३७३।।

अन्वयार्थ– उससे **(चडमायावेदद्धा)** चढ़ने वाले का माया वेदककाल, **(पढमट्ठिदि)** माया की प्रथम स्थिति, **(मायउवसमद्धा य)** माया का उपशमनकाल **(चलमाणवेदगद्धा)** चढ़ने वाले का मान वेदककाल, **(पढमट्ठिदि)** मान की प्रथम स्थिति **(य)** और **(माणउवसमद्धा)** मान का उपशमनकाल ये छह पद एक की अपेक्षा एक अधिक है।।३७३।।

टीकार्थ– उससे चढ़ने का मायावेदककाल अन्तर्मुहूर्त से अधिक है [२९]। (यह काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है इसलिए लघुसंदृष्टि के लिए अन्तर्मुहूर्त की संदृष्टि की है।) पद–२३। उससे माया की प्रथम स्थिति का आयाम उच्छिष्टावलि मात्र से अधिक है [१/२९]। पद–२४। उससे उसके माया का उपशमनकाल एक समय कम आवलिमात्र से अधिक है [१।/२९]। पद–२५। उससे चढ़ने वाले का मान वेदककाल अन्तर्मुहूर्त से विशेष अधिक है [१॥/२९]। पद–२६। उससे उसके प्रथम स्थिति का आयाम आवलिमात्र से अधिक है [१।।।/२९]। पद–२७। उससे उसके मान का उपशमनकाल एक समय कम आवलिमात्र से अधिक है [१।।।।/२९]। पद–२८ ।।३७३।।

कोहोवसामणद्धा छप्पुरिसित्थीणउंसयाणं च।
खुद्दभवग्गहणं च य अहियकमा एक्कवीसपदा[१]।।३७४।।

क्रोधोपशामनाद्धा षट्पुरुषस्त्रीनपुंसकानां च ।
क्षुद्रभवग्रहणं च च अधिकक्रमाणि एकविंशतिपदानि ।।३७४।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १२८–१२९

ततः क्रोधोपशमनकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः [२९] ।२९। ततःषण्णोकषायोपशमन-कालो विशेषाधिकः [।/२९] ।३०। ततः पुंवेदोपशमनकालः समयोनद्व्यावलिमात्रेणाधिकः [॥/२९] ।३१। ततः स्त्रीवेदोपशमनकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः [।।।/२९] ।३२। ततो नपुंसकवेदोपशमन-कालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः [२९] ।३३। ततः क्षुद्रभवग्रहणं विशेषाधिकम् [१/१८] । ३४।। ३७४।।

अन्वयार्थ– उससे **(कोहोवसामणद्धा)** क्रोध का उपशमनकाल, **(छप्पुरिसित्थीणउंसयाणं च)** छह कषायों का उपशमन काल, पुरुषवेद का उपशमन काल, स्त्रीवेद का उपशमन काल, नपुंसकवेद का उपशमनकाल **(च य)** और **(खुद्दभवग्गहणं)** क्षुद्रभवग्रहण ये छह पद **(अहियकमा)** क्रम से अधिक हैं। **(एक्कवीसपदा)** पूर्व के कुल इक्कीस पद क्रम से अधिक हैं। ।।३७४।।

टीकार्थ– उससे क्रोध का उपशमनकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र से अधिक है [२९] ।पद– २९। उससे छह नोकषायों का उपशमनकाल विशेष अधिक है [।/२९] । पद– ३०। उससे पुरुषवेद का उपशमनकाल एक समय कम दो आवलिमात्र से अधिक है [॥/२९] । पद–३१। उससे स्त्रीवेद का उपशमन काल अन्तर्मुहूर्तमात्र से अधिक है [।।।/२९] । पद–३२। उससे नपुंसकवेद का उपशमनकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र से अधिक है [२९] । पद–३३। उससे क्षुद्रभवग्रहण विशेष अधिक है। १/१८ (श्वास का अठारहवां भाग) पद–३४ ।।३७४।।

विशेषार्थ– सबसे छोटे भवग्रहण को क्षुद्रभवग्रहण कहते हैं। यह एक उच्छ्वास का साधिक अठारहवां भागप्रमाण होने पर भी संख्यात हजार आवलि प्रमाण है। निरोगी मनुष्य के ३७७३ उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है। एक मुहूर्त में ६६३३६ क्षुद्रभव होते हैं। ३७७३ उच्छ्वासों को ६६३३६ से भाग देने पर एक श्वास का साधिक अठारहवां भाग प्रमाण आता है। वही क्षुद्रभवग्रहण का काल जानना चाहिए।

उवसंतद्धा दुगुणा तत्तो पुरिसस्स कोहपढमठिदी।
मोहोवसामणद्धा तिण्णि वि अहियक्कमा होंति[1]।।३७५।।

उपशान्ताद्धा द्विगुणा ततः पुरुषस्य क्रोधप्रथमस्थितिः।
मोहोपशमनाद्धा त्रीण्यप्यधिकक्रमाणि भवन्ति।।३७५।।

तत उपशान्तकषायकालो द्विगुणः [१।२/१८] ।३५। ततः पुंवेदस्य प्रथमस्थित्यायामो

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १३०–१३१

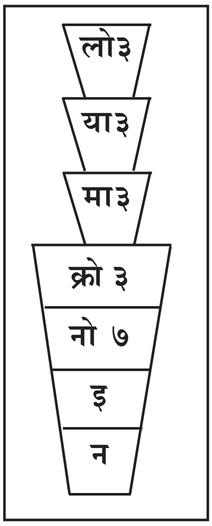

विशेषाधिकः [२१ ।] ।३६। ततः सञ्ज्वलनक्रोधप्रथमस्थित्यायामः किञ्चिन्न्यूनत्रिभागमात्रेणाधिकः [२१ ॥] ।३७। ततो मोहनीयस्योपशमन-कालः नपुंसकवेदोपशमनप्रारम्भात् प्रभृति मानमायालोभोपशमनकालैः साधिकः [२१ ।।।] ।३८। ।।३७५।।

अन्वयार्थ– (तत्तो) उससे **(उवसंतद्धा)** उपशान्त कषाय का काल **(दुगुणा)** दुगुना है। उससे **(पुरिसस्स कोहपढमठिदी)** पुरुषवेद की प्रथम स्थिति, क्रोध की प्रथम स्थिति और **(मोहोवसामणद्धा)** मोह का उपशमनकाल **(तिण्णि वि)** ये तीनों भी **(अहियक्कमा)** क्रम से अधिक **(होंति)** हैं।।३७५।।

टीकार्थ– उससे उपशान्त कषाय का काल दुगुणा है [१।२ / १८]। (श्वास का नौंवा भाग) पद–३५। उससे पुरुषवेद की प्रथम स्थिति का आयामविशेष अधिक है। [२१ ।] (श्वास का नौंवा भाग अर्थात् अन्तर्मुहूर्त ही है इसलिए अन्तर्मुहूर्त का चिह्न लिखकर उसके ऊपर अधिक का चिह्न किया है। पद–३६। उससे संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति का आयाम कुछ कम त्रिभागमात्र से अधिक है [२१ ॥]। पद–३७। उससे नपुंसकवेद की उपशमना से लेकर मोहनीय का उपशमन काल मान, माया, लोभ के उपशमन–कालों से अधिक हैं [२१ ।।।]।पद– ३८ ।।३७५।।

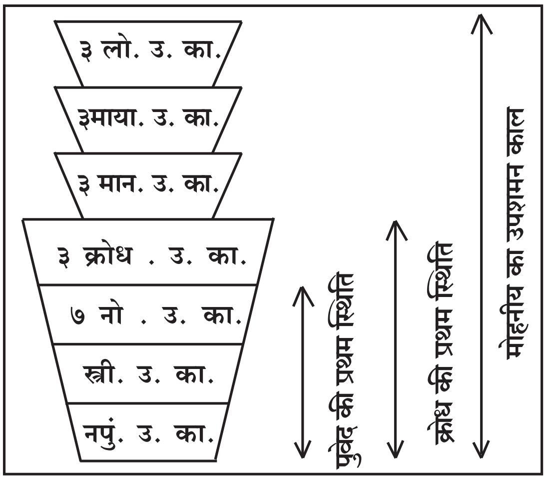

पडणस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणाकालो ।
संखगुणो चडणस्स य तक्कालो होदि अहियो य[१] ।।३७६।।

पतनस्यासंख्यानां समयप्रबद्धानामुदीरणाकालः ।
संख्यगुणश्चटनस्य च तत्कालो भवत्यधिकश्च ।।३७६।।

ततः पततोऽसंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणाकालः संख्येयगुणः [२१४ (ऊपर III)] **।३९। तत आरोहकस्यासंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण विशेषाधिकः** [२१४ (ऊपर III I)] **।४०।।।३७६।।**

अन्वयार्थ– इससे **(पडणस्स)** गिरने वाले का **(असंखाणं समयप्रबद्धाणुदीरणाकालो)** संख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने का काल **(संखगुणो)** संख्यातगुणा है **(य)** और उससे **(चडणस्स तक्कालो)** चढ़ने वाले का वह काल (असंख्यात समयप्रबद्धों का उदीरणा काल) **(अहियो होदि)** अधिक है।।३७६।।

टीकार्थ– उससे गिरने वाले का असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने का काल संख्यातगुणा है [२१४ (ऊपर III)] । पद–३९। उससे चढ़ने वाले का असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होने का काल अन्तर्मुहूर्त से विशेष अधिक है [२१४ (ऊपर III I)]। पद–४० ।।३७६।।

विशेषार्थ– उतरते समय सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय से लेकर देशघातिकरण नष्ट होने तक असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा होती है अतः उतना काल लेना। चढ़ते समय क्रमकरण समाप्त होने के बाद संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण जाने पर असंख्यात समयप्रबद्धों की उदीरणा प्रारंभ होती है और वह उपशांतमोह गुणस्थान तक चालू रहती है। अतः वहाँ तक पूरा असंख्यात समयप्रबद्ध का उदीरणा काल लेना।

पडणाणियट्टियद्धा संखगुणा चडणगा विसेसहिया।
पडमाणा पुव्वद्धा संखगुणा चडणगा अहिया[२] ।।३७७।।

पतनानिवृत्त्यद्धा संख्यगुणा चटनका विशेषाधिका ।
पततोऽपूर्वाद्धा संख्यगुणा चटनकाऽधिका ।।३७७।।

पततोऽनिवृत्तिकरणकालस्ततः संख्येयगुणः [२१४।४ (ऊपर III I)] **।४१।आरोहकानिवृत्तिकरणकाल–स्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण विशेषाधिकः** [२१४।४ (ऊपर III I I)] **।४२। ततः पतदपूर्वकरणकालः संख्येयगुणः** [२११] **।४३। तत आरोहकापूर्वकरणकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः** [२११ (ऊपर I)] **।४४। ।।३७७।।**

अन्वयार्थ– उससे **(पडणाणियट्टियद्धा)** गिरने वाले अनिवृत्तिकरण का काल **(संखगुणा)** संख्यातगुणा है। उससे **(चडणगा)** चढ़ने वाले का अनिवृत्तिकरण का काल **(विसेसहिया)** विशेष अधिक है। उससे **(पडमाणा पुव्वद्धा)** गिरने वाले अपूर्वकरण का काल **(संखगुणा)** संख्यातगुणा

१) जयध. पु. १४, पृ. १३१ २) जयध. पु. १४, पृ. १३२

है। उससे **(चडणगा)** चढ़नेवाले का अपूर्वकरण का काल **(अहिया)** विशेष अधिक है।।३७७।।

टीकार्थ– उससे गिरने वाले का अनिवृत्तिकरण का काल संख्यातगुणा है २१ ४।४ । पद–४१। उससे चढ़ने वाले का अनिवृत्तिकरण का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र से विशेष अधिक है २१ ४।४। पद–४२। उससे गिरने वाले का अपूर्वकरण का काल संख्यातगुणा है २११ ।पद–४३। (अपूर्वकरण का काल अनिवृत्तिकरण की अपेक्षा संख्यातगुणा है। इसलिए आवलि को दो बार संख्यात से गुणा किया।) उससे चढ़ने वाले का अपूर्वकरण का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र से अधिक है २११ । पद–४४। ।।३७७ ।।

पडिवडवरगुणसेढी चडमाणापुव्वपढमगुणसेढी ।
अहियकमा उवसामगकोहस्स य वेदगद्धा हु[1]।।३७८।।

प्रतिपतद्वरगुणश्रेणी चटदपूर्वप्रथमगुणश्रेणी ।
अधिकक्रमा उपशामकक्रोधस्य च वेदकाद्धा हि ।।३७८।।

ततः प्रतिपततः सूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये प्रारब्धोत्कृष्टगुणश्रेण्यायामोऽन्तर्मुहूर्तेन साधिकः २११ ।४५। आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमयगुणश्रेण्यायामस्ततोऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकः २११ ।४६। तत आरोहकस्य क्रोधवेदककालः संख्येयगुणः २११।४ ।४७। अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य संज्वलनक्रोधवेदकत्वेनापूर्वकरणप्रथमसमयारब्धगुणश्रेण्यायामात् क्रोधवेदककालस्य संख्येयगुणत्वसम्भवात् ।।३७८।।

अन्वयार्थ– उससे **(पडिवडवरगुणसेढी)** गिरने वाले का उत्कृष्ट गुणश्रेणिआयाम और **(चढमाणापुव्वपढमगुणसेढी)** चढ़ने वाले का अपूर्वकरण के प्रथम समय का गुणश्रेणि आयाम **(अहियकमा)** क्रम से अधिक हैं **(य)** और **(उवसामगकोहस्स वेदगद्धा हु)** उपशामक के क्रोध का वेदककाल संख्यातगुणा है। (३८० गाथा का संख्यातगुणित शब्द यहाँ और आगे भी लगावे) ।।३७८।।

टीकार्थ– उससे गिरने वाले का सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में शुरु किया गया उत्कृष्ट गुणश्रेणिआयाम अन्तर्मुहूर्त से अधिक है २११। पद–४५। उसकी अपेक्षा चढ़ने वाले अपूर्वकरण के प्रथम समय का गुणश्रेणिआयाम अन्तर्मुहूर्त से अधिक है २११ । पद–४६। उससे

१) जयध. पु. १४, पृ. १३२–१३३

चढ़ने वाले का क्रोधवेदक काल संख्यातगुणा है। २११४ अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय से संज्वलन क्रोध का वेदक होने से अपूर्वकरण के प्रथम समय में शुरु किये गुणश्रेणिआयाम से क्रोधवेदककाल संख्यातगुणा संभव है। पद–४७ ।।३७८।।

संजदअधापवत्तगगुणसेढी दंसणोवसंतद्धा।
चारित्तंतरगठिदी दंसणमोहंतरठिदीओ[1]।।३७९।।

संयताध:प्रवृत्तकगुणश्रेणी दर्शनोपशान्ताद्धा ।
चारित्रान्तरिकस्थितिर्दर्शनमोहान्तरस्थिति: ।।३७९।।

तत: प्रतिपतत: स्वस्थानाप्रमत्तसंयतस्य प्रथमसमयकृतगुणश्रेण्यायाम: संख्येयगुण: ।४८। ततो दर्शनमोहस्योपशान्तावस्थाकाल: संख्येयगुण:। चारित्रमोहोपशमनात्पूर्वं पश्चाच्चाप्रमत्ताद्यसंयतकालपर्यन्तं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वानुपालनात् ।४९। ततश्चारित्रमोहान्तरायाम: संख्येयगुण: ।५०। ततो दर्शनमोहस्यान्तरायाम: संख्येयगुण: ।५१। ।३७९।।

अन्वयार्थ– **(संजदअधापवत्तगगुणसेढी)** स्वस्थान अप्रमत्तसंयत का अध:प्रवृत्तकरण में गुणश्रेणि आयाम, **(दंसणोवसंतद्धा)** दर्शनमोह का उपशान्त काल, **(चारित्तंतरगठिदि)** चारित्रमोह का अंतरायाम और **(दंसणमोहंतरठिदीओ)** दर्शनमोह की अन्तरस्थिति ये चार पद एक की अपेक्षा एक संख्यातगुणे हैं।।३७९।।

टीकार्थ– उससे गिरने वाले स्वस्थान अप्रमत्तसंयत का प्रथम समय में किया गया गुणश्रेणि आयाम संख्यातगुणा है। पद–४८। उससे दर्शनमोह का उपशान्त अवस्थाकाल संख्यातगुणा है क्योंकि चारित्रमोह की उपशमना के पूर्व में और पश्चात् भी अप्रमत्त से लेकर असंयतकाल तक द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का सद्भाव है। पद–४९। उससे चारित्रमोह का अन्तरायाम संख्यातगुणा है। पद–५०। उससे दर्शनमोह का अन्तरायाम संख्यातगुणा है। पद–५१ ।।३७९।।

अवरा जेट्ठाबाहा चडपडमोहस्स अवरठिदिबंधो ।
चडपडतिघादिअवरट्ठिदिबंधंतोमुहुत्तो य[2] ।।३८०।।

अवरा ज्येष्ठाबाधा चटपतमोहस्यावरस्थितिबन्ध: ।
चटपतत्रिघात्यवरस्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तश्च ।।३८०।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १३३–१३४ २) जयध. पु. १४, पृ. १३४–१३६

तत आरोहकसूक्ष्मसाम्परायचरमसमये ज्ञानावरणादिबन्धस्य जघन्याबाधा संख्येयगुणा, मोहनीयस्य पुनरारोहकानिवृत्तिचरमसमये जघन्याबाधा ग्राह्या ।५२। ततोऽवरोहकापूर्वकरणचरमसमये सर्वकर्मणां स्थितिबन्धस्योत्कृष्टाबाधा संख्येयगुणा [२१] साऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमितैव ।५३। तत आरोहकानिवृत्तिकरणचरमसमये मोहजघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः, सोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमित एव ।५४। ततोऽवरोहकानिवृत्तिप्रथमसमये मोहजघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः स चारोहकस्थिति–बन्धादवरोहकस्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वसम्भवाद् युक्त एव ।५५। तत आरोहकसूक्ष्मसाम्परायचरमसमये घातित्रयस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः ।५६। ततोऽवरोहकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये घातित्रयस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः स च पूर्वस्मादद्विगुण एव।५७। तत उत्कृष्टान्तर्मुहूर्तः संख्येयगुणः [२१–१][१] ।५८। समयोनमुहूर्त उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त इति प्रतिपादनात् ।अनेनान्तदीपकपदेन इतः पूर्वपदानां सर्वेषामन्तर्मुहूर्तमात्रत्वमेव सूचितम् ।।३८०।।

अन्वयार्थ– **(अवरा जेट्ठाबाहा)**जघन्य आबाधा, उत्कृष्ट आबाधा **(चडपडमोहस्स अवरठिदिबंधो)** चढ़ने वाले का मोह का जघन्य स्थितिबंध, गिरने वाले का मोह का जघन्य स्थितिबंध **(चडपडतिघादिअवरट्ठिदिबंधंतोमुहुत्तो य)** चढ़ने वाले का तीन घाति का जघन्य स्थितिबन्ध, गिरने वाले का तीन घाति का जघन्य स्थितिबंध, (उत्कृष्ट) अन्तर्मुहूर्त ये सातों पद एक की अपेक्षा एक संख्यातगुणे हैं।।३८०।।

टीकार्थ– उससे चढ़ने वाले सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में ज्ञानावरणादिकों कें बन्ध की जघन्य आबाधा संख्यातगुणित है। पुनः मोहनीय की जघन्य आबाधा चढ़ने वाले अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय की ग्रहण करना चाहिए। पद–५२। उससे गिरने वाले अपूर्वकरण के अंतिम समय में सभी कर्मों के स्थितिबन्ध की उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणित है। वह [२१] भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है। पद–५३। उससे चढ़ने वाले अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में मोह का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। वह भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है। पद–५४। उससे उतरने वाले अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में मोह का जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात गुणा है। वह भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है पद ५४। उससे उतरने वाले अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में मोह का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। वह चढ़ने वाले के स्थितिबंध से उतरने वाले का स्थितिबन्ध दुगुणा होने से वह युक्त ही है। पद–५५। उससे चढ़ने वाले के सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में तीन घातियों का जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। पद–५६। उससे गिरने वाले के सूक्ष्मसाम्पराय के प्रथम समय में तीन घातियों का जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। वह पूर्वपद की अपेक्षा दुगुणा ही है। पद–५७। उससे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त संख्यातगुणा है मु–१ क्योंकि एक समय कम मुहूर्त उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है इसप्रकार कहा है। पद–५८। अन्तर्मुहूर्त अन्तदीपक

१) यहांपर मु–१ ऐसी संदृष्टि होना चाहिए क्योंकि मुहूर्त में से एक समय कम करना है।

पद होने से इसके पूर्व के सभी पद अन्तर्मुहूर्तमात्र ही हैं यह सूचित होता है।।३८०।।

चडमाणस्स य णामागोदजहण्णट्ठिदीण बंधो य ।
तेरसपदासु कमसो संखेण य होंति गुणियकमा[1] ।।३८१।।

चटतश्च नामगोत्रजघन्यस्थितीनां बन्धश्च ।
त्रयोदशपदेषु क्रमशः संख्येन च भवन्ति गुणितक्रमाः ।।३८१।।

तत आरोहकस्य नामगोत्रयोर्जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः सोऽपि षोडशमुहूर्तमात्रः।५९। स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिचरमसमये ग्राह्यः। त्रयोदशपदानि संख्यातगुणितक्रमाणि भवन्ति।।।३८१।।

अन्वयार्थ– इससे **(चडमाणस्स य णामागोदजहण्णट्ठिदीण बंधो य)** चढ़नेवाले का नाम और गोत्र का जघन्य स्थितिबन्ध (संख्यातगुणा है) **(तेरसपदासु कमसो संखेण य गुणियकमा होंति)** ४७ से ५९ पर्यन्त तेरह पद क्रम से संख्यातगुणित हैं।।३८१।।

टीकार्थ– उससे चढ़नेवाले का नाम–गोत्र का जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। वह भी सोलह (१६) मुहूर्तमात्र है। पद–५९। अपनी–अपनी बन्ध व्युच्छित्ति के अंतिम समय में जघन्य स्थितिबन्ध ग्रहण करना चाहिए। इसप्रकार तेरह पद क्रम से संख्यात गुणित हैं।।३८१।।

चडतदियअवरबंधं पडणामागोदअवरठिदिबंधो ।
पडतदियस्स य अवरं तिण्णि पदा होंति अहियकमा[2] ।।३८२।।

चटतृतीयावरबन्धः पतन्नामगोत्रावरस्थितिबन्धः ।
पतत्तृतीयस्य चावरस्त्रीणि पदानि भवन्त्यधिकक्रमाणि ।।३८२।।

तत आरोहकस्य वेदनीयजघन्यस्थितिबन्धो विशेषाधिकः । सोऽपि चतुर्विंशतिमुहूर्तमात्रः ।६०। ततः पततो नामगोत्र(जघन्य)स्थितिबन्धो विशेषाधिकः । सोऽपि द्वात्रिंशन्मुहूर्तमात्रः।६१। ततः पततो वेदनीयजघन्यस्थितिबन्धो विशेषाधिकः । सोऽप्यष्टचत्वारिंशन्मुहूर्तमात्रः ।६२।।३८२।।

अन्वयार्थ– उससे **(चडतदियअवरबंधं)** चढ़ने वाले का तृतीय अर्थात् वेदनीय का जघन्य स्थितिबन्ध, उससे **(पडणामागोदअवरठिदिबंधो)** गिरने वाले का नाम और गोत्र का जघन्य स्थितिबन्ध, उससे **(पडतदियस्स य)** गिरने वाले का तृतीय अर्थात् वेदनीय का **(अवरं)** जघन्य स्थितिबन्ध **(तिण्णि पदा)** ये तीनों पद **(अहियकमा)** क्रम से अधिक **(होंति)** होते हैं।।३८२।।

टीकार्थ–उससे चढ़ने वाले के वेदनीय का जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। वह

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १३६ २) जयध. पु. १४, पृ. १३६

भी चौवीस (२४) मुहूर्तमात्र है। पद–६०। उससे गिरने वाले का नाम और गोत्र का जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। वह भी बत्तीस मुहूर्तमात्र है। पद–६१। उससे गिरने वाले का वेदनीय का जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। वह भी अड़तालीस मुहूर्तमात्र है। पद–६२।।३८२।।

चडमायमाणकोहो मासादीदुगुण अवरठिदिबंधो ।
पडणे ताणं दुगुणं सोलसवस्साणि चलणपुरिसस्स[1]।।३८३।।

चटमायामानक्रोधो मासादिद्विगुणावरस्थितिबन्धः ।
पतने तेषां द्विगुणं षोडशवर्षाणि चटनपुरुषस्य ।।३८३।।

आरोहकस्य संज्वलनमायाजघन्यस्थितिबन्धः पूर्वस्मात्संख्यातगुणो मासप्रमितः।मा १।६३। तस्यैव संज्वलनमानजघन्यस्थितिबन्धो द्विगुणः मा २।६४। तस्यैव क्रोधसंज्वलनजघन्यस्थितिबन्धो द्विगुणः मा ४। तेषामेव मायादीनां प्रतिपततो जघन्यस्थितिबन्धाः आरोहकजघन्यस्थितिबन्धेभ्यो द्विगुणाः मा २ । मा ४ । मा ८ । आरोहकस्य पुंवेदजघन्यस्थितिबन्धः षोडशवर्षमात्रः।।३८३।।

अन्वयार्थ– उससे **(चडमायमाणकोहो अवरठिदिबंधो मासादीदुगुण)** चढ़ने वाले का माया का जघन्य स्थितिबन्ध एक माह, मान का जघन्य स्थितिबन्ध दो माह, क्रोध का जघन्य स्थितिबन्ध चार माह इस प्रकार दुगुणा–दुगुणा है। उससे **(पडणे ताणं दुगुणं)** गिरते समय उसका दुगुणा है। **(चलणपुरिसस्स सोलसवस्साणि)** चढ़ने वाले का पुरुषवेद का जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्षमात्र है।।३८३।।

टीकार्थ– चढ़ने वाले का संज्वलन माया का जघन्य स्थितिबंध पूर्वपद की अपेक्षा संख्यातगुणा अर्थात् एक माह है मा १ पद–६३। उसका ही संज्वलन मान का जघन्य स्थितिबन्ध दुगुणा है मा.२ (दो माह) पद–६४। उसका ही संज्वलन क्रोध का जघन्य स्थितिबन्ध दुगुणा है मा.४ (चार माह) पद–६५। उसी मायादिकों के गिरने वाले के जघन्य स्थितिबन्ध चढ़ने वाले के जघन्य स्थितिबंध से दुगुणे हैं। माया का दो माह, मान का ४ माह, क्रोध का ८ माह, पद ६६, ६७, ६८। चढ़ने वाले का पुरुषवेद का जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्षमात्र है पद–६९ ।।३८३।।

पडणस्स तस्स दुगुणं संजलणाणं तु तत्थ दुट्ठाणे ।
बत्तीसं चउसट्ठी वस्सपमाणेण ठिदिबंधो[2] ।।३८४।।

पतनस्य तस्य द्विगुणं संज्वलनानां तु तत्र द्विस्थाने ।
द्वात्रिंशच्चतुःषष्टिर्वर्षप्रमाणेन स्थितिबन्धः ।।३८४।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १३६–१३७ २) जयध. पु. १४, पृ. १३७

प्रतिपततस्तद्बन्धो द्विगुणः । तत्काले संज्वलनचतुष्टयस्यारोहके स्थितिबन्धो द्वात्रिंशद्वर्षमात्रः। अवरोहके तद्बन्धश्चतुःषष्टिवर्षमात्रः ।।३८४।।

अन्वयार्थ– उससे **(पडणस्स तस्स दुगुणं)** गिरने वाले का उसका (पुरुषवेद का)जघन्य स्थितिबन्ध दुगुणा (बत्तीस वर्षमात्र) है। **(तत्थ दुट्ठाणे संजलणाणं ठिदिबंधो बत्तीसं चउसट्ठी वस्सपमाणेण)** वहाँ पुरुषवेद के दोनों समय में संज्वलन कषायों का स्थितिबंध क्रम से बत्तीस (३२) वर्षप्रमाण और चौसठ ६४ वर्षप्रमाण है।।३८४।।

टीकार्थ– उसका (पुरुषवेद का) जघन्य स्थितिबंध दुगुणा है। पद–७०। उस काल में संज्वलन चतुष्क का चढ़ते समय स्थितिबंध बत्तीस (३२) वर्षमात्र है। पद–७१। उतरते समय उसका (संज्वलन चतुष्क का) बंध चौसठ वर्षमात्र है। पद–७२ ।।३८४।।

चडपडणमोहपढमं चरिमं तु तहा तिघादघादीणं ।
संखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं[1] ।।३८५।।

चटपतनमोहप्रथमं चरमं तु तथा त्रिघाताघातिनाम् ।
संख्येयवर्षबन्धः संख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ।।३८५।।

आरोहकस्यान्तरकरणनिष्पत्त्यनन्तरसमये मोहनीयस्य प्रथमस्थितिबन्धः पूर्वस्मात्संख्यात–गुणः संख्यातसहस्रवर्षप्रमितः । अवरोहकस्य तत्प्रणिधिस्थाने मोहचरमस्थितिबन्धः ततः संख्येयगुणः । सोऽपि संख्यातवर्षसहस्रप्रमित एव । यथा पूर्वमारोहकस्थितिबन्धादवरोहकस्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वनियमस्तथाऽस्मिन्नवसरे तन्नियमो नास्ति, किन्तु यथासम्भवसंख्येयगुणकारो द्रष्टव्यः। आरोहकस्य घातित्रयप्रथमस्थितिबन्धः पूर्वस्मात्संख्येयगुणः । ततोऽवरोहकस्य प्रथम (चरम) स्थितिबन्धः संख्येयगुणः । तत आरोहकस्य सप्तनोकषायोपशमनकाले अघातित्रयप्रथमस्थिति–बन्धः संख्येयगुणः । ततोऽवरोहकस्य तच्चरमस्थितिबन्धः संख्येयगुणः।।३८५।।

अन्वयार्थ– (चडपडणमोहपढमं चरिमं संखेज्जवस्सबंधो) चढ़ने वाले के मोहनीय का संख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबंध, उतरने वाले के मोहनीय का संख्यात वर्षप्रमाण अंतिम स्थितिबंध **(तहा)** उसीप्रकार **(तिघादघादीणं संखेज्जवस्सबंधो)**तीन घातियों का चढ़ने वाले का प्रथम और उतरने वाले का अंतिम संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिबंध, उतना ही चढ़ने वाले का अघातियों का संख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबंध और उतरने वाले का अंतिम स्थितिबंध **(छण्हं)** ये छह स्थान **(संखेज्जगुणक्कमो)** क्रम से संख्यातगुणित हैं।

टीकार्थ– अवरोहक का अन्तरकरण की उत्पत्ति के पश्चात् के समय में मोहनीय का प्रथम स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण पूर्वस्थान से संख्यातगुणा है। पद–७३। उससे उतरने

१) जयध. पु. १४, पृ. १३७–१३९

वाले का उसके पास के स्थान में होने वाला मोहनीय का अंतिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। वह भी संख्यात हजार वर्ष प्रमाण ही है। पद-७४। जिसप्रकार पूर्व में चढ़ने वाले के स्थितिबंध की अपेक्षा उतरने वाले का स्थितिबंध दुगुणा होता है इस प्रकार नियम था उसप्रकार इस काल में वह नियम नहीं है। परन्तु यथासंभव संख्यात गुणकार जानना चाहिए। चढ़ने वाले का तीन घातियों का (संख्यात वर्षप्रमाण) प्रथम स्थितिबन्ध पूर्व स्थान से संख्यातगुणा है। पद-७५। उससे उतरने वाले का तीन घातियों का अंतिम स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। पद-७६। उससे चढ़ने वाले का सात नोकषायों के उपशमन काल में होनेवाला तीन अघातियों का प्रथम स्थितिबंध संख्यातगुणा है। पद-७७। उससे उतरने वाले का तीन अघातियों का अंतिम स्थितिबंध संख्यातगुणा है। पद-७८।।३८५।।

चडपडणमोहचरिमं पढमं तु तहा तिघादघादीणं।
असंखेज्जवस्सबंधोऽसंखेज्जगुणक्कमो छण्हं[1] ।।३८६।।

चटपतनमोहचरमं प्रथमं तु तथा त्रिघाताघातिनाम् ।
असंख्येयवर्षबन्धोऽसंख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ।।३८६।।

तत आरोहके मोहनीयस्यासंख्यातवर्षप्रमितश्चरमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः, स च पल्यासंख्यातभागमात्रोऽन्तरकरणप्रारम्भसमये सम्भवति । ततोऽवरोहके मोहनीयस्यासंख्यात-वर्षसहस्रमात्रः प्रथमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। तत आरोहके घातित्रयस्यासंख्यातवर्षसहस्र-मात्रचरमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। स च स्त्रीवेदोपशमनकाले संख्यातभागं गत्वा सम्भवति। ततोऽवतारके तत्प्रथमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। तत आरोहकेऽघातित्रयस्य चरमस्थितिबन्धोऽ-संख्येयगुणः। स च सप्तनोकषायोपशमनकाले संख्यातभागे गते सम्भवति । ततोऽवतारके तत्प्रथमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। एषोऽपि पल्यासंख्यातभागमात्र एव $\frac{प}{a}$ अवतारकस्य स्थितिबन्धाः प्रागुक्ताः सर्वेऽपि आरोहकास्थितिबन्धकालमन्तर्मुहूर्तेनाप्राप्य सम्भवन्ति ।।३८६।।

अन्वयार्थ- (चउपडणमोहचरिमं पढमं) चढ़ने वाले का मोहनीय का अंतिम, उतरने वाले का मोहनीय का प्रथम **(तहा)** उसीप्रकार **(तिघादघादीणं)** चढ़ने वाले का तीन घातियों का अंतिम, उतरने वाले का प्रथम, चढ़ने वाले का तीन अघातियों का अंतिम और गिरने वाले का प्रथम **(असंखेज्जवस्सबंधो)** असंख्यात वर्षों का स्थितिबंध **(छण्हं)** ये छह पद **(असंखेज्जगुणक्कमो)** क्रम से असंख्यात गुणित हैं।।३८६।।

टीकार्थ-उससे (पूर्वस्थान से) चढ़ने वाले में मोहनीय का असंख्यात वर्षप्रमाण अंतिम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणित है। पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र वह स्थितिबन्ध अन्तरकरण के प्रथम

१) जयध. पु. १४, पृ. १३९-१४०

समय में संभव है। पद–७९। उससे उतरते समय मोहनीय का असंख्यात हजार वर्षमात्र प्रथम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणित है। पद–८०। उससे चढ़ने वाले में तीन घातियों का असंख्यात हजार वर्षमात्र अंतिम स्थितिबंध असंख्यातगुणित है। वह स्त्रीवेद के उपशमन काल में संख्यातवाँ भाग जाने पर संभव है। पद–८१। उससे उतरने वाले में उन तीन घातियों का असंख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबन्ध असंख्यातगुणित है। पद–८२। उससे चढ़ने वाले का तीन अघातियों का (असंख्यात वर्षप्रमाण) अंतिम स्थितिबंध असंख्यातगुणित है। वह सात नोकषायों के उपशमनकाल में संख्यातवाँ भाग जाने पर होता है। पद– ८३। उससे उतरने वाले का तीन अघातियों का असंख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबंध असंख्यातगुणित है। यह भी पल्य का असंख्यातवाँ भागमात्र ही है। प/a पद–८४। उतरने वाले के पूर्व में कहे गये सभी स्थितिबन्ध चढ़ने वाले के स्थितिबन्ध के काल में अंतर्मुहूर्त से प्राप्त न होकर संभव है। अर्थात् चढ़ने वाले का जो विवक्षित स्थितिबंध का काल है उतरते समय उस काल को प्राप्त होने के अन्तर्मुहूर्त पहले ही वह विवक्षित स्थितिबन्ध होता है क्योंकि चढ़ने वाले के काल से उतरने वाले का काल छोटा है।।३८६।।

चडणे णामदुगाणं पढमो पलिदोवमस्स संखेज्जो ।
भागो ठिदिस्स बंधो हेट्ठिल्लादो असंखगुणो[1] ।।३८७।।

चटने नामद्विकयोः प्रथमः पलितोपमस्य संख्येयः ।
भागः स्थितेर्बन्धोऽधस्तनादसंख्यगुणः ।।३८७।।

तत आरोहके नामगोत्रयोः पल्यसंख्यातैकभागमात्रः प्रथमस्थितिबन्धोऽधस्तनात् अघातित्रयस्थितिबन्धादसंख्येयगुणः प/५ ।।३८७।।

अन्वयार्थ– **(चडणे)** चढ़ते समय **(णामदुगाणं)** नाम और गोत्र का **(पलिदोवमस्स संखेज्जो भागो पढमो ठिदिस्स बंधो)** पल्योपम का संख्यातवाँ भागमात्र प्रथम स्थितिबंध **(हेट्ठिल्लादो)** नीचे के अर्थात् पूर्व स्थान से **(असंखगुणो)** असंख्यातगुणित है।।३८७।।

टीकार्थ– उससे चढ़ते समय नाम और गोत्र का पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र प्रथम स्थितिबन्ध नीचे के तीन अघातियों के स्थितिबंध से असंख्यातगुणित है। प/५ पद–८५ ।।३८७।।

तीसियचउण्ह पढमो पलिदोवमसंखभागठिदिबंधो।
मोहस्स वि दोण्णि पदा विसेसअहियक्कमा होंति[2] ।।३८८।।

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १४०
२) जयध. पु. १४, पृ. १४१

तीसियचतुर्णां प्रथमः पलितोपमसंख्यभागस्थितिबन्धः।
मोहस्यापि द्वे पदे विशेषाधिकक्रमे भवतः ।।३८८।।

तत आरोहके तीसियचतुष्कस्य प्रथमस्थितिबन्धो विशेषाधिकः, स च पल्यसंख्यातभाग एव $\boxed{\frac{\text{प ३}}{\text{५ २}}}$ **तत आरोहके मोहस्य चालीसियस्थितिबन्धो विशेषाधिकः** $\boxed{\frac{\text{प २}}{\text{५}}}$ **विशेषप्रमाणं तत्त्रिभागमात्रम्** $\boxed{\frac{\text{प ३}}{\text{५।२।३}}}$ **।।३८८।।**

अन्वयार्थ– (तीसियचउण्ह) तीसिय चतुष्क का (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और वेदनीय का) **(पढमो पलिदोवमसंखभागठिदिबंधो)** पल्योपम का संख्यातवाँ भागमात्र प्रथम स्थितिबन्ध और **(मोहस्स वि)** मोहनीय का भी पल्योपम का संख्यातवाँ भागमात्र प्रथम स्थितिबन्ध **(दोण्णि पदा)** ये दोनों पद **(विसेसअहियक्कमा होंति)** क्रम से विशेष अधिक हैं ।।३८८।।

टीकार्थ– उससे चढने वाले में तीसिय चतुष्क का प्रथम स्थितिबंध विशेष अधिक है। वह पल्य का संख्यातवाँ भागमात्र ही है। $\boxed{\frac{\text{प ३}}{\text{५ २}}}$ (नाम–गोत्र से डेढ़गुणा दिखाने के लिए ३/२ से गुणा किया) पद–८६। उससे चढ़ने वाले में मोहनीय का स्थितिबंध विशेष अधिक है। $\boxed{\frac{\text{प २}}{\text{५}}}$ (नाम–गोत्र का दुगुणा) विशेष का प्रमाण पूर्व स्थितिबन्ध का तीसरा भागमात्र है। (तीसिय के बन्ध में उसका ही तीसरा भाग मिलाने पर मोहनीय का बंध आता है।

$\frac{\text{प ३}}{\text{५ २}} + \frac{\text{प ३}}{\text{५।२।३}}$ समच्छेद $\frac{\text{प ३} \times \text{३}}{\text{५ २} \times \text{३}} + \frac{\text{प ३}}{\text{५।२।३}} = \frac{\text{प ९+३}}{\text{५।२।३}} = \frac{\text{प१२}}{\text{५।६}} = \boxed{\frac{\text{प २}}{\text{५}}}$ पद–८७. ।।३८८।।

ठिदिखंडयं तु चरिमं बंधोसरणट्ठिदी य पल्लद्धं ।
पल्लं चडपडबादरपढमो चरिमो य ठिदिबंधो[1] ।।३८९।।

स्थितिखण्डकं तु चरमं बन्धापसरणस्थिती च पल्यार्थम् ।
पल्यं चटपतद्बादरप्रथमश्चरमश्च स्थितिबन्धः ।।३८९।।

ततश्चरमस्थितिखण्डः संख्येयगुणः $\boxed{\frac{\text{प}}{\text{१ १}}}$ **स च ज्ञानावरणादिकर्मणां सूक्ष्मसाम्परायचरमसमये मोहस्य चान्तरकरणकाले सम्भवति। ततः पल्योत्पत्तिनिमित्तपल्यसंख्यातभागपर्यन्ताः बन्धापसरणे समुत्पन्ना ये स्थितिबन्धाः पल्यसंख्यातभागप्रमितास्ते सर्वेऽपि संख्यातगुणाः** $\boxed{\frac{\text{प}}{\text{१ १ १ १}} \text{ ००००००} \frac{\text{प}}{\text{१}}}$ **पल्यार्थात्पल्यसंख्यातभागात् पल्यं संख्यातगुणं** $\boxed{\text{प}}$ **। तत आरोहका निवृत्तिकरणप्रथमसमये स्थितिबन्धः संख्येयगुणः**

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १४१–१४२

सोऽपि सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्र; । ततोऽवतारकानिवृत्तिकरणचरमसमये स्थितिबन्धः संख्येयगुणः ।।३८९।।

अन्वयार्थ– (चरिमं ठिदिखंडयं) उससे अंतिम स्थितिकाण्डक आयाम, उससे **(पल्लद्धं य बंधोसरणट्ठिदी)** पल्यप्रमाण स्थितिबन्ध करने के लिए हुई बंधापरसणरूप स्थिति **(पल्लं)** उससे पल्य, उससे **(चडपडबादरपढमो चरिमो य ठिदिबंधो)** चढ़ने वाले का बादर लोभ का अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय का स्थितिबंध, उतरने वाले के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय का स्थितिबंध ये पाँच पद क्रम से संख्यातगुणे हैं।।३८९।।

टीकार्थ– उससे अंतिम स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है [प / ११]। पद–८८। वह ज्ञानावरणादि कर्मों का सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में और मोहनीय का अंतरकरणकाल में संभव है। उससे पल्य की उत्पत्ति के लिए पल्य का संख्यातवाँ भाग पर्यन्त बन्धापसरण में उत्पन्न हुआ जो पल्य का संख्यातवाँ भाग प्रमाण स्थितिबंध, बंधापसरण वे सब भी संख्यातगुणे हैं। [प / ११११ ०००००० प / १] पद–८९। पल्य के लिए (अपसरण हुए) पल्य के संख्यातवें भाग से पल्य संख्यातगुणा है। पद–९०। उससे चढ़ने वाले का अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय का स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। वह भी पृथक्त्वलक्ष सागरप्रमाण है। पद–९१। उससे उतरने वाले के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय का स्थितिबंध संख्यातगुणा है। पद–९२।।३८९।।

चडपडअपुव्वपढमो चरिमो ठिदिबंधओ य पडणस्स ।
तच्चरिमं ठिदिसत्तं संखेज्जगुणक्कमा अट्ठ[1] ।।३९०।।

चटपतदपूर्वप्रथमश्चरमः स्थितिबन्धकश्च पतनस्य ।
तच्चरमं स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणक्रमाण्यष्ट ।।३९०।।

तत आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमये स्थितिबंधः संख्येयगुणः [सा अंतःको २ / ४।४।४।४] सोऽपि सागरोपमान्तःकोटीकोटिप्रमितः । ततः प्रतिपतदपूर्वकरणचरमसमये स्थितिबन्धः संख्येयगुणः [सा अंतःको २ / ४।४।४] अत्र गुणकारः द्विरूपमात्रः तत्प्रायोग्यसंख्यातरूपमात्रो वा ग्राह्यः। ततः प्रतिपतदपूर्वकरणचरमसमये स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं [सा अंतःको २–२१ / ४।४।४]

---

१) जयध. पु. १४, पृ. १४३–१४४

अन्वयार्थ– उससे **(चडपडअपुव्वपढमो चरिमो ठिदिबंधओ)** चढ़ने वाले के अपूर्वकरण के प्रथम समय का स्थितिबंध, उससे गिरने वाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय का स्थितिबंध, उससे **(पडणस्स तच्चरिम ठिदिसंतं)** गिरने वाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। **(अट्ठ)** पूर्वोक्त ८८ से ९५ तक आठ पद **(संखेज्जगुणक्कमा)** क्रम से संख्यातगुणित हैं।।३९०।।

टीकार्थ– उससे चढ़ने वाले के अपूर्वकरण के प्रथम समय का स्थितिबंध संख्यातगुणा है [सा अंत:को २ / ४।४।४।४]। वह भी अंत: कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। (आगे के पद अंत: कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण ही हैं। उससे कम दिखलाने के लिए चार बार संख्यात से भाग दिया। ४ भी संख्यात की संदृष्टि है।)पद–९३। उससे गिरने वाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय का स्थितिबंध संख्यातगुणा है [सा अंत:को २ / ४।४।४]। यहाँ गुणकार दो अथवा योग्य संख्यातरूप ग्रहण करना चाहिए पद–९४। उससे गिरने वाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। [१ —— सा अंत:को २–२ / ४।४] (यहाँ [सा अंत:को २ / ४।४] इतनी ही संदृष्टि आती है। परन्तु अपूर्वकरण के प्रथम समय के स्थितिसत्त्व की अपेक्षा अंतिम समय का स्थितिसत्त्व एक समय कम अपूर्वकरण के कालमात्र स्थिति से कम है। २१ इसलिए एक समय कम अन्तर्मुहूर्त कम किया) पद–९५ ।।३९०।।

तप्पढमट्ठिदिसत्तं पडिवडअणियट्टिचरिमठिदिसत्तं ।
अहियकमा चडबादरपढमट्ठिदिसत्तयं तु संखगुणं[1] ।।३९१।।

तत्प्रथमस्थितिसत्त्वं प्रतिपतदनिवृत्तिचरमस्थितिसत्त्वम् ।
अधिकक्रमं चटबादरप्रथमस्थितिसत्त्वकं तु संख्यगुणम् ।।३९१।।

ततः प्रतिपतदपूर्वकरणप्रथमसमये स्थितिसत्त्वं विशेषाधिकं [१ —— सा अंत:को २ / ४।४] विशेष–प्रमाणं समयोनापूर्वकरणकालमात्रं [२ १] अवतरणे प्रथमसमय–स्थिति–सत्त्वादेतावत्समयानां चरमसमयस्थितिसत्त्वे हीनत्वात् । ततः प्रतिपतदनिवृत्तिकरणचरमसमय–स्थितिसत्त्वमेकसमयेनाधिकं [सा अंत:को २ / ४।४] ततः आरोहकानिवृत्तिकरणप्रथमसमयस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं [सा अंत:को २ / ४] अस्याद्याप्यनिवृत्तिकरणपरिणामकृतस्थितिसत्त्वघातासम्भवात् ।३९१।

१) जयध. पु. १४, पृ. १४४

अन्वयार्थ– उससे **(तप्पढमट्ठिदिसत्तं)** गिरनेवाले के अपूर्वकरण के प्रथम समय का स्थितिसत्त्व और उससे **(पडिवडअणियट्टिचरिमठिदिसत्तं)** गिरने वाले के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय का स्थितिसत्त्व **(अहियकमा)** क्रम से अधिक है। उससे **(चडबादरपढमट्ठिदिसत्तयं तु संखगुणं)** चढ़ने वाले के अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है।।३९१।।

टीकार्थ– उससे गिरने वाले के अपूर्वकरण के प्रथम समय का स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है [१ —— सा अंत:को२ / ४।४] । विशेष का प्रमाण एक समय कम अपूर्वकरण के काल प्रमाण है। कारण उतरने वाले के प्रथम समय के स्थितिसत्त्व से अंतिम समय का स्थितिसत्त्व उतने समय मात्र से ही कम होता है। पद–९६। उससे गिरने वाले के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय का स्थितिसत्त्व एक समय से अधिक है [सा अंत:को २ / ४।४] । पद–९७। उससे चढ़ने वाले का अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है [सा अंत:को २ / ४] क्योंकि इसका अभी तक अनिवृत्तिकरण के परिणाम से किया स्थितिसत्त्व का घात संभव नहीं है। पद–९८ ।।३९१।।

चडमाणअपुव्वस्स य चरिमट्ठिदिसत्तयं विसेसहियं।
तस्सेव य पढमट्ठिदिसत्तं संखेज्जसंगुणियं।।३९२।।

चटमानापूर्वस्य च चरमस्थितिसत्त्वकं विशेषाधिकम् ।
तस्यैव च प्रथमस्थितिसत्त्वं संख्येयसंगुणितम् ।।३९२।।

तत आरोहकापूर्वकरणचरमसमये स्थितिसत्त्वं विशेषाधिकं [प / सा अंत:को २ / ४] तच्चरमकाण्डकचरमफालिप्रमाणस्य पल्यसंख्यातभागस्य सम्भवात्। तत आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमयस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं [सा अंत:को २] तच्चान्त:कोटी–कोटिसागरोपमप्रमितम् । अपूर्वकरणकाले सम्भविसंख्यातसहस्रमात्रस्थितिकाण्डकघातवशेन तत्प्रथमसमयस्थितिसत्त्वसंख्यातबहुभागेषु घातितेषु यत्तच्चरमसमयस्थितिसत्त्वं संख्यातैकभागमात्रम्। तस्मात्तत्प्रथमसमयस्थितिसत्त्वस्य पूर्वस्थितिकाण्डकघाताभावात् संख्यातगुणत्वसम्भवात्।।३९२।।

अन्वयार्थ– **(चडमाणअपुव्वस्स य चरिमट्ठिदिसत्तयं विसेसहियं)** उससे चढ़ने वाले के अपूर्वकरण के अंतिम समय का स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। उससे **(तस्सेव य पढमट्ठिदिसत्तं संखेज्जसंगुणियं)** उसके ही प्रथम समय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणित है।।३९२।।

टीकार्थ– उससे चढ़ने वाले का अपूर्वकरण के अंतिम समय का स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है। (ऊपर **प / सा अंत:को २ / ४** लिखा वह अधिक जानना चाहिए) विशेष का प्रमाण पल्य का संख्यातवाँ भाग है क्योंकि अंतिम कांडक की अंतिम फालि का प्रमाण पल्य का संख्यातवाँ भाग है। (घात होने के पूर्व में उतना सत्त्व अधिक है।) पद–९९।

उससे चढ़ने वाले का अपूर्वकरण के प्रथम समय का स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। **सा अंत:को २** वह अंत:कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है क्योंकि अपूर्वकरण के काल में संख्यात हजार स्थितिकांडक घात से उसके प्रथम समय के स्थितिसत्त्व का संख्यात बहुभाग का घात होने पर उसके अंतिम समय का स्थितिसत्त्व संख्यात एक भागमात्र रहता है और उस प्रथम समयवर्ती स्थितिसत्त्व के पूर्व में स्थितिकांडकघात का अभाव है। इसलिए उसके अंतिम समयवर्ती स्थितिसत्त्व से प्रथम समयवर्ती स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। पद–१०० ।।३९२।।

(उपशमश्रेणि के १०० अल्पबहुत्व पदों की सारणी और नक्शा आगे के पृष्ठ पर दिया है।)

प्रणमामि महावीरं सर्वशांतिकरं जिनम् ।
प्रशांतदुरितानीकं शांतये सर्वकर्मणाम् ।।

अन्वयार्थ– **(प्रशांतदुरितानीकं)** पापरूपी सेना का नाश करने वाले **(सर्वशांतिकरं)** सर्व शांति करने वाले **(महावीरं)** महावीर **(जिनं)** जिनवर को **(सर्वकर्मणां शांतये)** सभी कर्मों का नाश करने के लिए **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

एवं चारित्रमोहोपशमनविधानं समाप्तम्।

उपशमश्रेणी पर आरोहक अपूर्वकरण के प्रथम समय से अवरोहक अपूर्वकरण के अंतिम समयपर्यंत संभवनेवाले १०० अल्पबहुत्व स्थान

स्थानों के नाम	प्रमाण	पूर्वपद अपेक्षा से अल्पबहुत्व	अर्थसंदृष्टि
१) चढ़ते समय सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में ज्ञानावरणादिकों का व अंतरकरण के अंतिम समय में मोहनीय का जघन्य अनुभागखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त		२१
२) चढ़ते समय अपूर्वकरण के प्रथम समय में उत्कृष्ट अनुभागखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	$२\overset{|}{१}$
३) चढ़ते समय सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में ज्ञानावरणादिकों का और अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में मोहनीय का जघन्य स्थितिखंडोत्करणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	$२\overset{|}{१}\ ४$
४) उतरते समय सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में ज्ञानावरणादि कर्मों का और अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में मोहनीय का जघन्य स्थितिबंधकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	$२\overset{|}{१}\ \overset{|}{४}$
५) अंतरकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	$२\overset{|}{१}\ \overset{||}{४}$
६) चढ़ते समय अपूर्वकरण के प्रथम समय में होनेवाला उत्कृष्ट स्थितिबंधकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	$२\overset{|}{१}\ \overset{|||}{४}$
७) चढ़ते समय सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में होनेवाला गुणश्रेणी–आयाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	$२\overset{|}{१}\ \overset{|||}{४}।४$

८) उपशांत कषाय के प्रथम समय में शुरू किया हुआ गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	$२\overset{।}{९}\ \overset{।।।}{४}।४।४$
९) उतरतेसमय सूक्ष्मसांपराय का काल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	$२\ \overset{।}{}\ \overset{।।।}{४}।४।४।४$
१०) गिरनेवाले सूक्ष्मसांपरायका संज्वलन लोभ का गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	आवलि-अधिक	$२^{१}\overline{९}$
११) चढ़नेवाले सूक्ष्मसांपराय का काल, सूक्ष्मकृष्टि-उपशमनकाल, सूक्ष्मसांपराय का प्रथम स्थितिआयाम	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त अधिक	$२^{१}\overset{।}{\overline{९}}$
१२) सूक्ष्मकृष्टिकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	$२^{१}\overset{।।}{\overline{९}}$
१३) गिरनेवाले का बादरलोभवेदककाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	$२९।२_{३}$
१४) उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण का तीन लोभ का गुणश्रेणीनिक्षेप	अंतर्मुहूर्त	आवलि-अधिक	$२९।२_{३}^{।}$
१५) चढ़नेवाले का बादरलोभ वेदककाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त-अधिक	$२९।२_{३}^{।।}$
१६) चढ़नेवाले अनिवृत्तिकरण का बादरलोभ का प्रथम स्थितिआयाम	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	$२९।२_{३}^{।।।}$
१७) उतरनेवाले का पूर्ण लोभवेदककाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष अधिक	२९
१८) उतरनेवाले का लोभ का प्रथम स्थितिआयाम	अंतर्मुहूर्त	आवलि-अधिक	$२^{१}\overline{९}$
१९) उतरनेवाले का मायावेदककाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त-अधिक	$२^{१}\overset{।}{\overline{९}}$

२०) उतरनेवाले मायावेदक का छह कषायों का गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	आवलि–अधिक	$\overset{१}{२}\overset{II}{\overline{१}}$
२१) उतरनेवाले का मानवेदककाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	$\overset{१}{२}\overset{III}{\overline{१}}$
२२) उतरनेवाले मानवेदक का नौ कषायों का गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	आवलि–अधिक	$\overset{१}{२}\overset{IIII}{\overline{१}}$
२३) चढ़नेवाले का मायावेदककाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२१
२४) चढ़नेवाले का माया का प्रथम स्थिति का आयाम	अंतर्मुहूर्त	आवलि–अधिक	$\overset{१}{२}\overline{१}$
२५) माया का उपशमन काल	अंतर्मुहूर्त	एक समय कम आवलिमात्र से अधिक	$\overset{१}{२}\overset{I}{\overline{१}}$
२६) चढ़नेवाले का मानवेदक काल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	$\overset{१}{२}\overset{II}{\overline{१}}$
२७) चढ़नेवाले मानवेदक का प्रथम स्थिति का आयाम	अंतर्मुहूर्त	आवलि–अधिक	$\overset{१}{२}\overset{III}{\overline{१}}$
२८) मान का उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	एक समय कम आवलिमात्र से अधिक	$\overset{१}{२}\overset{IIII}{\overline{१}}$
२९) क्रोधका उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२१
३०) छह नोकषायों का उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष–अधिक	$२\overset{I}{१}$
३१) पुरुष वेद का उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	एक समय कम २ आवलि अधिक	$२\overset{II}{१}$

३२) स्त्रीवेद का उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२१ (ऊपर |||)
३३) नपुंसकवेद का उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२१
३४) क्षुद्रभव–ग्रहणकाल	श्वास का १८ वाँ भाग	विशेष–अधिक	१ / १८
३५) उपशांत कषायकाल	श्वास का ९ वाँ भाग	दुगुणा	१।२ / १८
३६) पुरूषवेद का प्रथम स्थिति का आयाम	अंतर्मुहूर्त	विशेष–अधिक	२१ (ऊपर |)
३७) संज्वलन क्रोध का प्रथम स्थिति का आयाम	अंतर्मुहूर्त	कुछ कम त्रिभाग से अधिक	२१ (ऊपर ||)
३८) नपुंसक वेद के उपशमन से लेकर मोहनीय का पूर्ण उपशमनकाल	अंतर्मुहूर्त	मान,माया, लोभ के उपशमनकालों से अधिक	२१ (ऊपर |||)
३९) गिरनेवाले का असंख्यात समयप्रबद्धों का उदीरणाकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२१ (ऊपर |||) ।४
४०) चढ़नेवाले का असंख्यात समयप्रबद्धों का उदीरणाकाल	अंतर्मुहूर्त	विशेष–अधिक	२१ (ऊपर |||) ।४ (ऊपर |)
४१) गिरनेवाले का अनिवृत्तिकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२१ (ऊपर |||) ।४ (ऊपर |) ।४
४२) चढ़नेवाले का अनिवृत्तिकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२१ (ऊपर |||) ।४ (ऊपर |) ।४ (ऊपर |)
४३) गिरनेवाले का अपूर्वकरणकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२११

४४) चढ़नेवाले का अपूर्वकरणकाळ	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२११^{I}
४५) गिरनेवाले का सूक्ष्मसांपराय का प्रथम समय में प्रारंभ किया हुआ उत्कृष्ट गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२११^{II}
४६) चढ़नेवाले का अपूर्वकरण के प्रथम समयमें गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त–अधिक	२११^{III}
४७) चढ़नेवाले का क्रोधवेदककाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२११^{III} ।४
४८) गिरनेवाले का स्वस्थान अप्रमत्तसंयत के प्रथम समयमें प्रारंभ किया हुआ गुणश्रेणीआयाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
४९) दर्शनमोह का उपशांत अवस्थाकाल	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५०) चारित्रमोह का अंतरायाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५१) दर्शनमोह का अंतरायाम	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५२) चढ़नेवाले का सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में ज्ञानावरणादिक के बंध की और अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में मोह की जघन्य आबाधा	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५३) उतरनेवाले अपूर्वकरण के अंतिम समय में सर्व कर्मों की उत्कृष्ट आबाधा	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	२१

५४) चढ़नेवाले का अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में मोह का जघन्यस्थितिबंध	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५५) उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में मोह का जघन्य स्थितिबंध	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५६) चढ़नेवाले का सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में तीन घाति का जघन्य स्थितिबंध	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५७) उतरनेवाले सूक्ष्मसांपराय के प्रथम समय में तीन घाति का जघन्य स्थितिबंध	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा	
५८) उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त	मुहूर्त-१	संख्यातगुणा	मु-१
५९) चढ़नेवाले का नाम-गोत्र का जघन्य स्थितिबंध	१६ मुहूर्त	संख्यातगुणा	मु १६
६०) चढ़नेवाले का वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध	२४ मुहूर्त	८ मुहूर्त अधिक	मु २४
६१) गिरनेवाले का नाम-गोत्र का जघन्य स्थितिबंध	३२ मुहूर्त	८ मुहूर्त अधिक	मु २४
६२) गिरनेवाले का वेदनीय का जघन्य स्थितिबंध	४८ मुहूर्त	१६ मुहूर्त अधिक	मु ४८
६३) चढ़नेवाले का संज्वलन माया का जघन्य स्थितिबंध	१ माह	संख्यातगुणा	मा १
६४) चढ़नेवाले का संज्वलन मान का जघन्य स्थितिबंध	२ माह	दुगुना	मा २

६५) चढ़नेवाले का संज्वलन क्रोध का जघन्य स्थितिबंध	४ माह	दुगुणा	मा ४
६६) गिरनेवाले का संज्वलन माया का जघन्य स्थितिबंध	२ माह	चढ़नेवाले से दुगुणा	मा २
६७) गिरनेवाले का संज्वलन मान का जघन्य स्थितिबंध	४ माह	चढ़नेवाले से दुगुणा	मा ४
६८) गिरनेवाले का संज्वलन क्रोध का जघन्य स्थितिबंध	८ माह	चढ़नेवाले से दुगुणा	मा ८
६९) चढ़नेवाले का पुरूषवेद का जघन्य स्थितिबंध	१६ वर्षमात्र	संख्यातगुणा	व १६
७०) गिरनेवाले का पुरूषवेद का जघन्य स्थितिबंध	३२ वर्षमात्र	दुगणा	व ३२
७१) उसकाल में चढते समय संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध	३२ वर्षमात्र	समान	व ३२
७२) उतरते समय उसकाल में संज्वलन चतुष्क का स्थितिबंध	६४ वर्षमात्र	दुगुणा	व ६४
७३) चढ़नेवाले का अंतरकरण के निष्पत्ति के अनंतर मोहनीय का प्रथम स्थितिबंध	संख्यात हजार वर्ष	संख्यातगुणा	व १००० ९
७४) उतरनेवाले का अंतरकरण के पास मोहनीयका अंतिम स्थितिबंध	संख्यात हजार वर्ष	संख्यातगुणा	

७५) चढ़नेवाले का तीन घाति का संख्यातवर्ष प्रमाण प्रथम स्थितिबंध	संख्यात हजार वर्ष	संख्यातगुणा	
७६) उतरनेवाले का तीन घाति का संख्यातवर्ष प्रमाण अंतिम स्थितिबंध	संख्यात हजार वर्ष	संख्यातगुणा	
७७) चढ़नेवाले का तीन अघाति का संख्यातवर्ष प्रमाण प्रथम स्थितिबंध	संख्यात हजार वर्ष	संख्यातगुणा	
७८) उतरनेवाले का तीन अघाति का संख्यात वर्षप्रमाण अंतिम स्थितिबंध	संख्यात हजार वर्ष	संख्यातगुणा	
७९) चढ़नेवाले का मोहनीय का असंख्यात वर्षप्रमाण अंतिम स्थितिबंध	असंख्यात हजार वर्ष	असंख्यातगुणा	
८०) उतरनेवाले का मोहनीय का असंख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबंध	असंख्यात हजार वर्ष	असंख्यातगुणा	
८१) चढ़नेवाले का तीन घाति का असंख्यात वर्षप्रमाण अंतिम स्थितिबंध	असंख्यात हजार वर्ष	असंख्यातगुणा	
८२) उतरनेवाले का तीन घाति का असंख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबंध	असंख्यात हजार वर्ष	असंख्यातगुणा	
८३) चढ़नेवाले का तीन अघाति का असंख्यात वर्षप्रमाण अंतिम स्थितिबंध	असंख्यात हजार वर्ष	असंख्यातगुणा	
८४) उतरनेवाले का तीन अघाति का असंख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबंध	असंख्यात हजार वर्ष	असंख्यातगुणा	प a
८५) चढ़नेवाले का नाम-गोत्र का पल्य का संख्यातवा भागमात्र प्रथम स्थितिबंध	$\frac{\text{पल्य}}{\text{संख्यात}}$	असंख्यातगुणा	प ५

८६) चढ़नेवाले का तीसिय चतुष्क का पल्य का संख्यातवा भागप्रमाण प्रथम स्थितिबंध	पल्य का संख्यातवां भाग	विशेष अधिक (डेढ़गुणा)	**प ३** **५ २**
८७) चढ़नेवाले का मोहनीय का पल्य का संख्यातवा भागप्रमाण प्रथम स्थितिबंध	पल्य का संख्यातवां भाग	त्रिभाग से आधिक	**प २** **५**
८८) ज्ञानावरणादि कर्मों का सूक्ष्मसांपराय के अंतिम समय में व मोहनीय का अंतरकरण काल में अंतिमस्थिति कांडकायाम	पल्य का संख्यातवां भाग	संख्यातगुणा	**प** ११
८९) पल्य के उत्पत्ति के लिए हुआ स्थितिबंधापसरण	पल्य का संख्यातवां भाग	संख्यातगुणा	**प** ०००० **प** १११ १
९०) पल्य	पल्य	संख्यातगुणा	**प**
९१) चढ़ते समय अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय का स्थितिबंध	सागरोपम लक्षपृथक्त्व	संख्यातगुणा	**सा ल ७** **८**
९२) उतरते समय अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में स्थितिबंध	सागरोपम लक्षपृथक्त्व	संख्यातगुणा	
९३) चढ़नेवाले का अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिबंध	अंत:कोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	**सा अंत:को २** **४।४।४।४**
९४) गिरनेवाले अपूर्वकरण के अंतिम समय में स्थितिबंध	अंत:कोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	**सा अंत:को २** **४।४।४**

९५) गिरनेवाले अपूर्वकरण के अंतिम समय में स्थितिसत्त्व	अंतःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	१ सा अंतःको २-२९ ४।४
९६) गिरनेवाले अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिसत्त्व	अंतःकोड़ाकोड़ी सागर	विशेष अधिक	१ सा अंतःको २ ४।४
९७) गिरनेवाले अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में स्थितिसत्त्व	अंतःकोड़ाकोड़ी सागर	एक समय से अधिक	सा अंतःको २ ४।४
९८) चढ़नेवाले का अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में स्थितिसत्त्व	अंतःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यातगुणा	सा अंतःको २ ४
९९) चढ़नेवाले का अपूर्वकरण के अंतिम समय में स्थितिसत्त्व	अंतःकोड़ाकोड़ी सागर	विशेष अधिक	प सा अंतःको २ ४
१००) चढ़नेवाले का अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थितिसत्त्व	अंतःकोड़ाकोड़ी सागर	संख्यात गुणित	सा अंतःको २

उपर्युक्त १०० अल्पबहुत्वस्थानों का निर्देश करनेवाला नक्शा आगे के पृष्ठों पर दिया जा रहा है। उसमें आरोहक और अवरोहक की अपेक्षा स्वतंत्र नक्शा निकाला है। आरोहक माने चढ़नेवाला और अवरोहक अर्थात् गिरनेवाला। आरोहक का नक्शा देखते समय नीचे से ऊपर जाएँ और अवरोहक का नक्शा देखते समय ऊपर से नीचे जाएँ। अल्पबहुत्व की अपेक्षा से आयाम कम ज्यादा दिखाया है किंतु हर स्थान पर यह नियम पालन करना शक्य नहीं है जैसे अपूर्वकरण का काल अनिवृत्तिकरण से संख्यातगुणा होने पर भी छोटा दिखाया है क्योंकि अनिवृत्तिकरण में अल्पबहुत्व स्थान अधिक पाये जाते हैं और अपूर्वकरण में कम हैं। अतः वे सब स्थान दिखाने के लिए अनिवृत्तिकरण का आयाम बड़ा दिखाया है। अल्पबहुत्व के अनुसार छोटा-बड़ा आयाम निकालना नक्शे में शक्य नही है इसलिए भाव समझना चाहिए। अल्पबहुत्वपदों का नाम उपर्युक्त कोष्टक में लिखा है। नक्शे में उसका केवल क्रमांक लिखा है। क्रमांकसंख्या से वह नाम समझ लेना चाहिए।

उपशम श्रेणी में १०० अल्पबहुत्वपदों का नक्शा

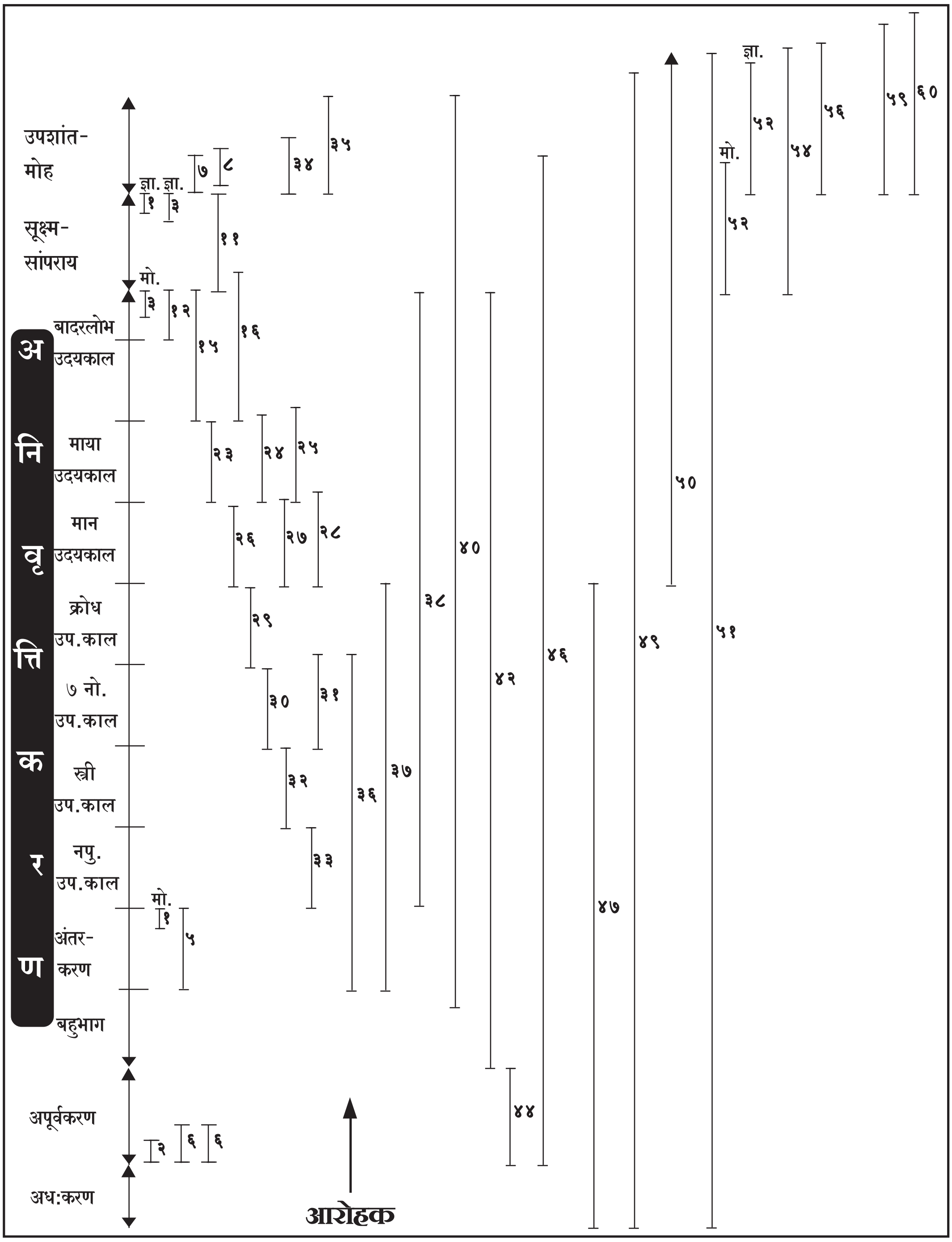

उपशम श्रेणी में १०० अल्पबहुत्वपदों का नक्शा

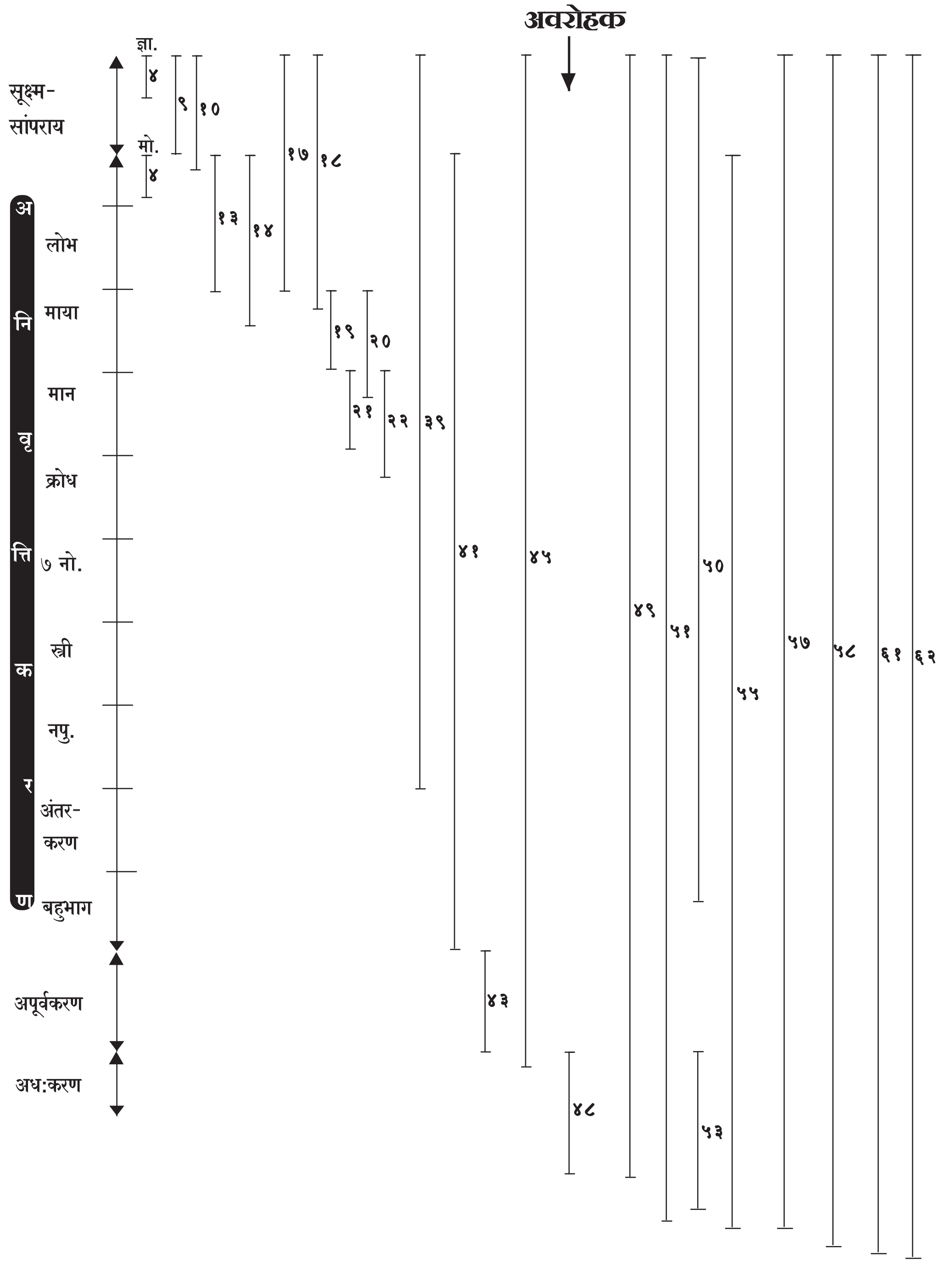

उपशम श्रेणी में १०० अल्पबहुत्वपदों का नक्शा

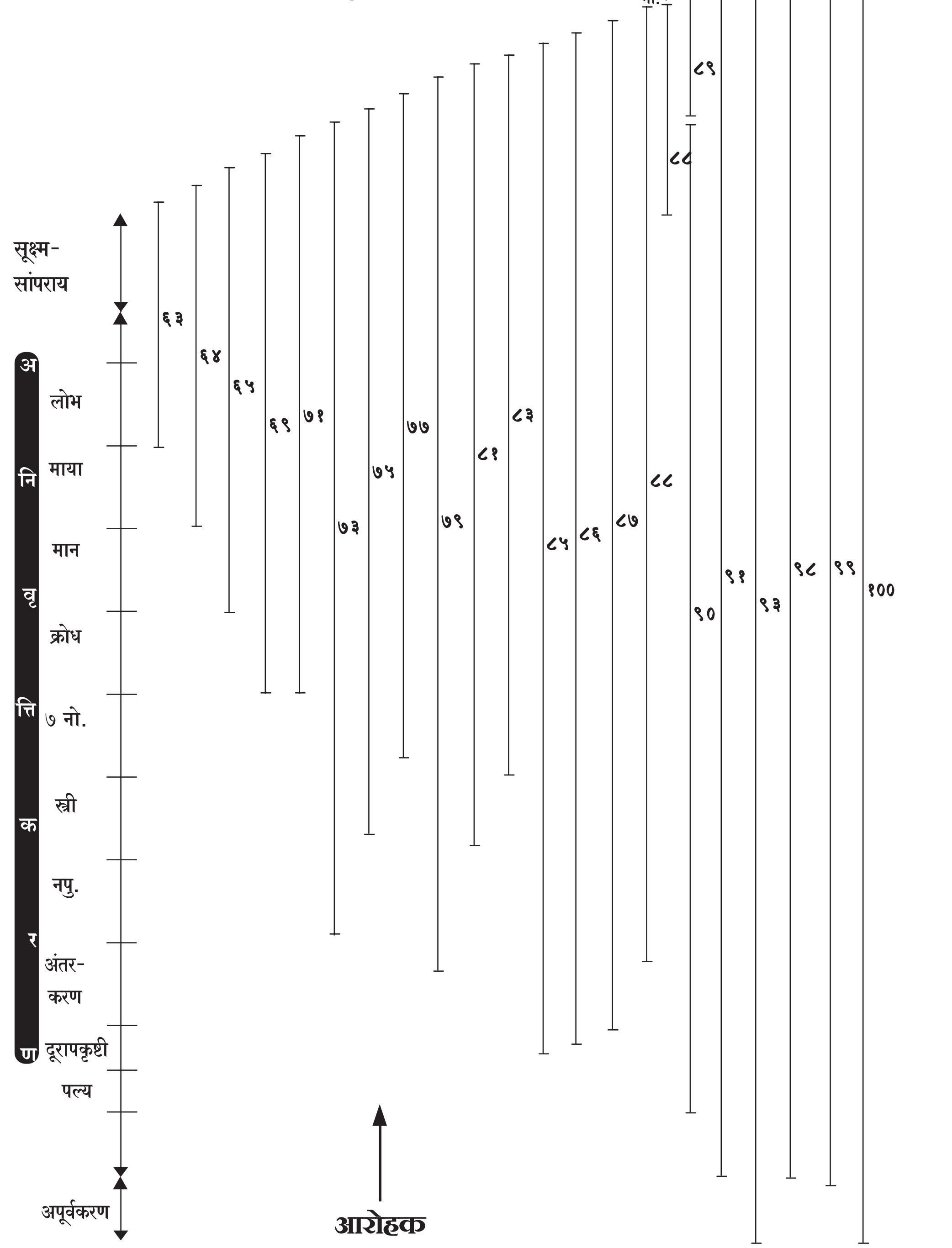

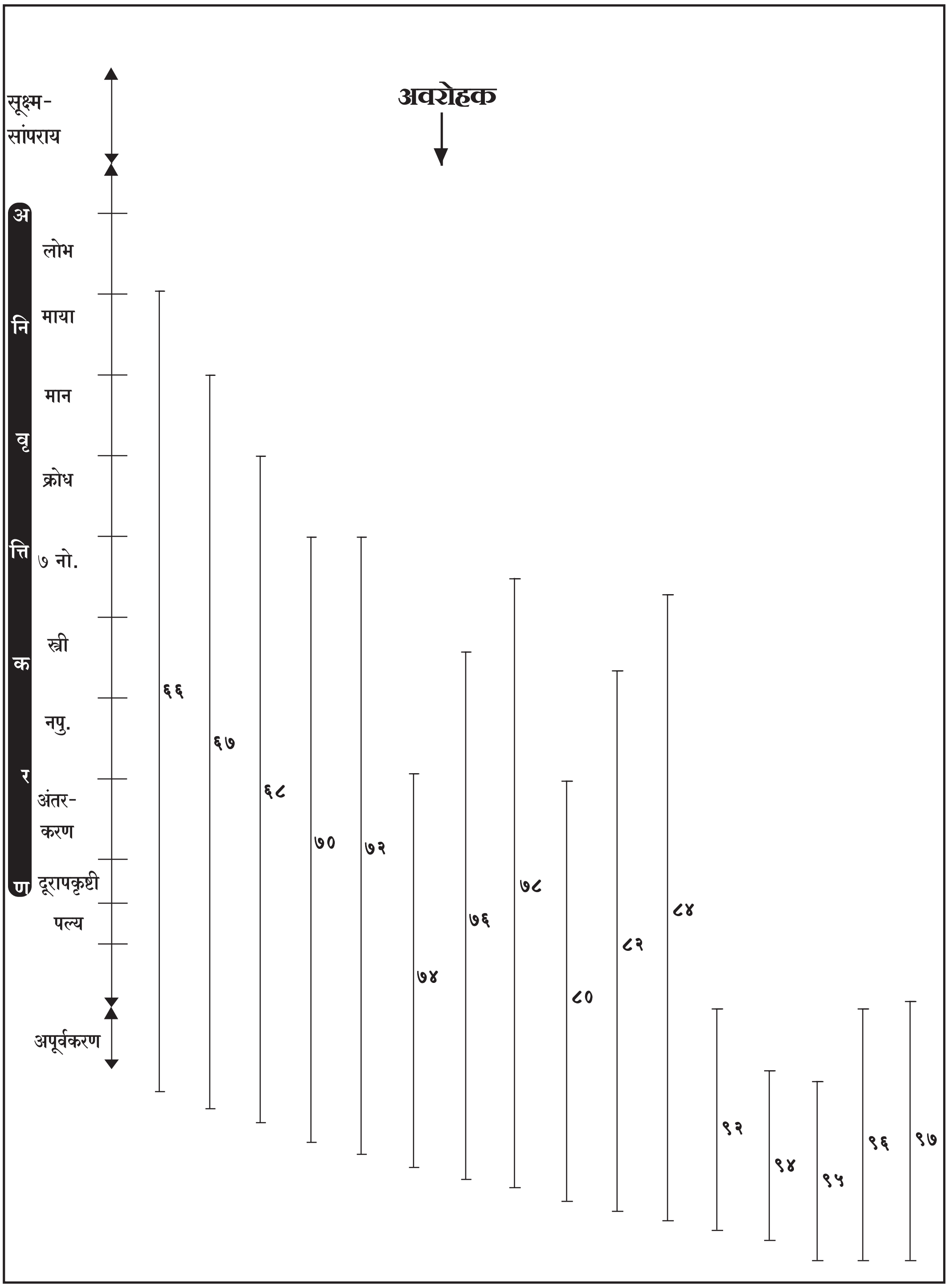

अवरोहक
सूक्ष्म-
सांपराय
अनिवृत्तिकरण
लोभ
माया
मान
क्रोध
७ नो.
स्त्री
नपु.
अंतर-
करण
दूरापकृष्टी
पल्य
अपूर्वकरण
६६
६७
६८
७०
७२
७४
७६
७८
८०
८२
८४
९२
९४
९५
९६
९७

पारिभाषिक शब्दों के अर्थ

१) अकरणोपशामना : प्रशस्त-अप्रशस्त परिणामों के बिना ही अप्राप्त काल वाले कर्म प्रदेशों का उदयरूप परिणाम के बिना अवस्थित करने को अकरणोपशामना कहते है। इसी का दूसरा नाम अनुदीर्णोपशामना है। इसमें करण परिणामों की अपेक्षा नहीं होती है, इसलिए इसे अकरणोपशामना कहते है।

२) अग्रस्थिति : सत्त्वकर्म की अन्तिम स्थिति अग्रस्थिति कहलाती है।

३) अतिस्थापना : जिन निषेकों में द्रव्य दिया नहीं जाता वे निषेक अतिस्थापना रूप जानना चाहिए अर्थात् उसका उल्लंघन कर नीचे अथवा ऊपर के निषेकों में द्रव्य दिया जाता है।

४) अनुदीर्ण : उदीर्ण दशा से भिन्न अर्थात् उदयावस्था को नही प्राप्त हुए कर्म को अनुदीर्ण कहते हैं।

५) अनुदीर्णोपशामना : अनुदीर्ण कर्म की उपशामना को अनुदीर्णोपशामना कहते हैं।

६) अन्तर्मुहूर्त : मुहूर्त से कम और आवली से अधिक काल को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

७) अवरोहक : उपशमश्रेणी उतरनेवाले को अवरोहक कहते हैं।

८) अश्वकर्णकरण : जहाँ घोड़े के कान के समान लोभ से क्रोध पर्यंत क्रम से अनुभाग हीन होता है उसे अश्वकर्णकरण कहते हैं।

९) अहिगति : सर्प की चाल के समान जहाँ विशुद्धि जघन्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट से जघन्य बढ़ती है उसे अहिगति कहते हैं।

१०) आगाल : द्वितीय स्थिति के निषेकों का द्रव्य अपकर्षण करके प्रथम स्थिति के निषेकों में देना उसे आगाल कहते हैं।

११) आनुपूर्वी संक्रम : अन्तरकरण (नवम गुणस्थान में) कर चुकने के प्रथम समय में मोहनीय कर्म सम्बन्धी सात करण प्रारम्भ होते हैं। उसमें से यह प्रथम करण है।

१२) आयाम : लंबाई को आयाम कहते है। काल के समय एक साथ नहीं होते हैं क्रम-क्रम से होते हैं। इसलिए काल के प्रमाण की आयाम संज्ञा है। जहाँ ऊपर-ऊपर रचना होती है वहाँ उसके प्रमाण को भी आयाम संज्ञा है।

अ) अनुभागकांडकायाम- अनुभाग कांडक के द्वारा जितने स्पर्धकों का अभाव किया उतने स्पर्धकों के प्रमाण को अनुभागकांडकायाम कहते हैं।

आ) अंतरायाम- अंतरकरण में जितने निषेकों का अभाव किया है उतने निषेकों को अन्तरायाम कहते हैं।

इ) गुणश्रेणी-आयाम- जितने निषेकों मे गुणकार पंक्ति से निषेको में द्रव्य दिया वह गुणश्रेणि आयाम होता है। गुण यानी गुणकार और श्रेणि याने पंक्ति। जहाँ गुणकार पंक्ति से निषेकों में द्रव्य दिया जाता है वह गुणश्रेणि होती है। अथवा जितने निषेकों में असंख्यात गुणश्रेणिरूप से प्रदेशों का निक्षेपण होता

है वह गुणश्रेणि आयाम कहलाता है।

ई) स्थितिकांडकायाम– एक काण्डक के द्वारा कर्मों की जितनी स्थिति कम की गयी उतनी स्थितियों के निषेकों के प्रमाण का नाम स्थितिकांडकायाम है।

१३) आरोहक : उपशमश्रेणी चढ़नेवाले को आरोहक कहते हैं।

१४) आवली : जघन्य युक्तासंख्यात समयों के समूह को आवलि कहते हैं।

अ)अतिस्थापनावली : द्रव्य निक्षेपण करते समय जिन आवलीमात्र निषेकों में द्रव्य नहीं दिया जाता है उसे अतिस्थापनावली कहते हैं।

आ) उदयावली– वर्तमान समय से आवलिमात्र काल में उदय में आनेवाले निषेकों को उदयावलि कहते हैं।

इ) उपशमनावली– जिस काल में उपशमन होता है वह उपशमनावली होती है।

ई) प्रत्यावली– उदयावलि के ऊपर की आवली को प्रत्यावली अथवा द्वितीयावली कहते हैं।

उ) बंधावली (अचलावली)– कर्म का बन्ध होने के समय से एक आवली काल पर्यंत उदीरणा, संक्रमणादि कोई भी क्रिया नहीं होती है उसे बंधावली अथवा अचलावली कहते हैं।

ऊ) संक्रमणावली : जिस आवलीप्रमाण काल में संक्रमण होता है वह संक्रमणावली होती है।

१५) उत्कर्षण : विवक्षित प्राक्तन सत्कर्म से उसी कर्म का नवीन स्थितिबन्ध अधिक होनेपर बन्ध के समय उसके निमित्त से सत्कर्म की स्थिति को बढ़ाना उत्कर्षण है।

१६) उत्कृष्ट : सबसे अधिक संख्या को उत्कृष्ट कहते हैं।

१७) उदय : द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का आश्रय लेकर कर्मों के होनेवाले विपाक–परिणाम को उदय कहते हैं।

१८) उदीर्ण : उदय से परिणत कर्म को उदीर्ण कहते हैं।

१९) उपशम : करण परिणामों के द्वारा नि:शक्त किये गये दर्शनमोहनीय के उदयरूप पर्याय के बिना अवस्थित रहने को उपशम कहते हैं।

२०) उपशामक : उपशम करनेवाले को उपशामक कहते हैं।

२१) उपशमावली : जिस आवली में उपशम करना पाया जाय उसे उपशमावली कहते हैं।

२२) करणोपशामना : प्रशस्त और अप्रशस्त कर्मों के द्वारा कर्म प्रदेशों का उपशान्त भाव से रहना करणोपशामना है। अथवा निधत्ति, निकाचित आदि ८ करणों का प्रशस्त उपशामना के द्वारा उपशान्त करने को करणोपशामना कहते हैं।

२३) कृष्टि : जिसके द्वारा संज्वलन कषायों का अनुभाग सत्त्व उत्तरोत्तर कृश अर्थात् अल्पतर किया जाय उसे कृष्टि कहते हैं।

२४) कांडक : पर्व यानी कांडक होता है। जिस प्रकार गन्ने में पौर होते हैं उसीप्रकार मर्यादारूप स्थान का नाम कांडक है। अथवा अन्तर्मुहूर्त मात्र फालियों का समूहरूप ''काण्डक'' है।

अ) अनुभाग कांडक : सत्तारूप अनुभाग में से अनुभाग के जितने स्पर्धक कम किये उतने स्पर्धकों को अनुभागकांडक कहते हैं।

ळळ) पर्व : पर्व यानी भाग होता है। (१) अनन्तानुबन्धी और तीन दर्शन मोहनीय की स्थिति कम करते समय चार पर्व कहे गये हैं। उनको चार पर्व कहते हैं। (२) अपकृष्ट द्रव्य देने के तीन स्थान हैं - उदयावलि, गुणश्रेणि, उपरितन स्थिति इनको तीन पर्व कहा जाता हैं।

आ) स्थितिकांडक – सत्ता की स्थिति में से जितनी स्थिति कम की गयी उतने मर्यादारूप स्थान को स्थितिकांडक कहते हैं। अर्थात् विवक्षित स्थिति समूह का घात करना स्थिति काण्डक है।

२५) कालः विवक्षित कार्य के काल का जो प्रमाण है वही उसका काल होता है।

अ) अंतरकरणकाल– जिस काल में अंतरकरण किया जाता है उस काल को अंतरकरण काल कहते हैं।

आ) कांडकोत्करणकाल– एक काण्डक का घात करने के लिए लगने वाला जो काल है वह काण्डकोत्करण काल है। उसमें से प्रथम समय में प्रथमफालि का पतनकाल है। एक-एक समय में एक-एक फालि का पतन करता है। काण्डकोत्करणकाल के अंतिम समय को चरमफालिपतनकाल कहते हैं।

इ) क्रोधवेदक काल– श्रेणि चढ़ते समय जितना काल क्रोध उदय को भोगता है उसको क्रोधवेदक काल कहते हैं। इसके समान मानवेदक काल इत्यादि जानना चाहिए।

२६) गुणसंक्रमण : जहाँ प्रत्येक समय में गुणकाररूप से विवक्षित प्रकृति के परमाणु अन्य प्रकृतिरूप संक्रमित होते हैं उसे गुणसंक्रमण कहते हैं। अथवा प्रतिसमय असंख्यात गुणे क्रम से युक्त, अबन्ध अप्रशस्त प्रकृतियों का द्रव्य, बध्यमान स्वजातीय प्रकृतियों में संक्रान्त होना गुणसंक्रमण है। अथवा विशुद्धि के वश प्रतिसमय असंख्यातगुणित वृद्धि के क्रम से अबध्यमान अशुभ प्रकृतियों के द्रव्य को जो शुभ प्रकृतियों में दिया जाता है इसका नाम गुणसंक्रमण है।

२७) गुणहानि : जहाँ गुणकार रूप से परमाणुओं की हानि होती है उसे गुणहानि कहते हैं।

२८) गोपुच्छाकार : जिस प्रकार गाय की पूँछ क्रम से हीन (पतली) होती है उसीप्रकार जहाँ एक-एक चय हीन क्रम से निषेक प्राप्त होते हैं वहाँ गोपुच्छ यह संज्ञा है।

२९) चालीसिया : चालीस कोटा-कोटी सागर स्थितिबन्ध वाला मोहनीय कर्म चालीसिया कहलाता है।

३०) जघन्य : सबसे कम संख्या को जघन्य कहते हैं।

३१) तीसिया : तीस कोटा-कोटी सागर स्थितिबन्ध वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अंतराय कर्म को तीसिया कहते हैं।

३२) द्रव्य : कर्म प्रकृति के कथन में उस प्रकृति के परमाणुओं को द्रव्य कहते हैं।

अ) अपकृष्ट द्रव्य– सर्व द्रव्य में अपकर्षण भागहार का भाग देकर जो एक भाग आया उतने परमाणुओं को अपकृष्टद्रव्य कहते हैं।

आ) अंतरकरणद्रव्य– ऊपर और नीचे के निषेकों को छोड़कर मध्य के कुछ निषेकों का अभाव करना अंतरकरण होता है। अभाव रुप किए जानेवाले निषेकों के परमाणुओं को अंतरकरण द्रव्य कहते हैं।
इ) उपशमद्रव्य– उदय में आने के अयोग्य किये गए परमाणुओं का नाम उपशमद्रव्य हैं।
ई) कांडकद्रव्य– स्थितिकांडक के निषेकों के परमाणुओं को कांडकद्रव्य कहते हैं।
उ) दीयमानद्रव्य– सत्तारूप निषेकों में जितने नवीन परमाणुओं को अपकर्षण अथवा उत्कर्षण करके निक्षिप्त किया उतने परमाणुओं को दीयमान द्रव्य कहते हैं।
ऊ) दृश्यमानद्रव्य– पूर्व में सत्त्वरूप और नवीन दिए दोनों परमाणुओं के समूह का नाम दृश्यमान द्रव्य है।
ए) फालिद्रव्य– कांडक की प्रथमादि फालि के परमाणुओं को प्रथमादि फालिद्रव्य कहते हैं।
ऐ) बंधद्रव्य– विवक्षित समय में जितने परमाणुओं का बंध हुआ उतने परमाणुओं को बंध द्रव्य कहते हैं।
ओ) सत्त्वद्रव्य– सत्ता में होनेवाले परमाणुओं को सत्त्वद्रव्य कहते हैं।
३३) नवक समयप्रबद्ध : नवक अर्थात् नवीन समयप्रबद्ध जिनका बन्ध हुए थोडा काल हुआ है। संक्रमणादि करने योग्य जो निषेक नहीं हुए ऐसे नूतन समयप्रबद्ध के निषेक का नाम नवक समयप्रबद्ध है।
३४) निर्व्याघात : १) अपकर्षण में स्थितिकाण्डक घात का अभाव निर्व्याघात कहलाता है।
२) उत्कर्षण में : जिस समय आवली प्रमाण अतिस्थापनावली बन जाती है वहाँ निर्व्याघात संज्ञा है।
३५) निक्षेप: उत्कर्षण अथवा अपकर्षण होकर कर्म परमाणुओं का अन्य स्थितिविकल्पों में पतन होता है उसकी निक्षेप संज्ञा है। जिन निषेकों में द्रव्य दिया जाता है उन निषेकों को निक्षेपरूप जानना चाहिए।
३६) पृथक्त्व : तीन से अधिक और नौ से कम प्रमाण को पृथक्त्व कहते हैं। पृथक्त्व शब्द बहुलतावाची है। इसलिए कुछ जगह बहुत हजार को भी पृथक्त्व कहते हैं।
३७) प्रत्यागाल : प्रथम स्थिति के निषेकों का द्रव्य उत्कर्षण के द्वारा द्वितीय स्थिति के निषेकों में देना उसे प्रत्यागाल कहते हैं।
३८) फाली : १) समुदायरूप एक क्रिया में अलग-अलग खंड करके भेद करने को फालि कहते है। (संक्रमण के प्रकरण में)।
२) स्थितिकांडक के प्रकरण में जिस प्रकार एक काण्डक का द्रव्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल में अन्यत्र दिया गया है वहाँ पहले समय में जितना द्रव्य अन्यत्र दिया वह कांडक की प्रथम फालि, दूसरे समय में जितना द्रव्य दिया गया है वह द्वितीयफालि अर्थात् जितना द्रव्य काण्डक में से प्रतिसमय अवशिष्ट नीचे की स्थिति में दिया जाता है वह फालि है।
३) उपशमन काल में पहले समय में जितना द्रव्य उपशमित किया गया है वह उपशम की प्रथम फालि, दूसरे समय में जितना द्रव्य उपशमित किया गया वह उसकी द्वितीय फालि आदि। इसके समान ही संक्रमण

और अंतरकरण की भी फालि जानना चाहिए।

३९) बंधापसरण : नवीन बंध कम होना बंधापसरण कहलाता है।

ळ) अनुभागबन्धापसरण : अप्रशस्त प्रकृतियों का पूर्व अनुभागबंध की अपेक्षा नवीन अनुभागबंध अनन्तगुणा हीन होकर बंधता है उसे अनुभागबंधापसरण कहते हैं।

ळ)प्रकृतिबंधापसरण– में से एक-एक प्रकृति कम होना अर्थात् प्रकृतियों का कम प्रमाण में बंध होने को प्रकृतिबंधापसरण कहते हैं।

ळळ) स्थितिबन्धापसरण : एक- एक अंतमुहूर्त में पूर्व स्थितिबन्ध से नवीन स्थितिबंध कम करता हुआ बंधता है उसे स्थितिबन्धापसरण कहते हैं।

४०) विसंयोजना : चारों अनन्तानुबन्धी कषायों को अप्रत्याख्यानावरणादि १२ कषायरूप और नौ नोकषायरूप परिणमा देना विसंयोजना है।

४१) वीसिया : बीस कोटाकोटी सागर स्थितिबन्ध वाले नाम-गोत्र कर्म को वीसिया कहते हैं।

४२) स्तिबुक संक्रमण : उदयरूप से समान स्थिति में जो संक्रम होता है उसे स्तिबुक संक्रमण कहते है ।

४३) स्थिति : कर्मस्थिति के प्रकरण में निषेकों के प्रमाण को स्थिति कहते हैं।

अ) उपरितन स्थिति– विवक्षित निषेकों के ऊपर के निषेकों को उपरितन स्थिति कहते हैं। गुणश्रेणि के प्रकरण में गुणश्रेणि आयाम के ऊपर के निषेकों को उपरितन स्थिति कहते हैं। केवल उदीरणा के प्रसंग में उदयावलि के ऊपर के निषेकों को उपरितन स्थिति कहते हैं।

आ) द्वितीय स्थिति– अन्तरायाम के ऊपर के निषेकों को द्वितीय स्थिति कहते हैं। अर्थात् अन्तरायाम के ऊपर जितनी कर्म स्थिति है वह द्वितीय स्थिति है।

इ) प्रथम स्थिति– विवक्षित प्रमाणरूप अंतरायाम के नीचे के निषेकों का नाम प्रथम स्थिति है। अर्थात् अन्तरायाम के नीचे जितनी स्थिति है वह प्रथम स्थिति है।

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
मर्हतः	मर्हन्तः		१	४
श्रीमान्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती	श्रीमन्नेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती		१	१५
पंचदशस्यार्थं	पञ्चदशस्याधिकारस्यार्थं		१	१७
मुख्यो वायं	मुख्यार्थो वायं	१	२	१६
विनयादधीयते येभ्यः	विनयादधीयन्ते एतेभ्यः	१	२	१७
पढमुवसमं स गिण्हदि	पढमुवसम्मं गेण्हदि	२	३	१७
गर्भश्चैव	गर्भजश्चैव	२	३	२२
तस्याः चरमसमये	तस्याः चरमे चरमसमये	२	४	१
भव्याभव्यसाधारण्यादपि	भव्याभव्यसाधारणादपि	३	७	१४
सम्यक्चारित्रे च	सम्यक्त्वे चारित्रे च	३	७	१४
विसुद्धलद्धी सो	विसोहीलद्धी सो	५	९	२२
तथा तथा संभवत्सुसंगत	तथा तथा वृद्धिसम्भवः सुसङ्गतः	५	९	२८
साधारणा भवति	साधारणी भवति	७	११	१६
बंधसत्त्वपरिणामकर्मणां	बंधसत्त्वपरिणामे कर्मणां	८	१३	१२
अंतोकोडाकोडि	अंतोकोडाकोडिं	९	१५	१३
करोति	कुरुते	९	१५	१५
उदहिसदस्स	उदधिसदस्स	१०	१६	८
उदये शतस्य	उदधिशतस्य	१०	१६	१०
पुनःपुनरुदीर्य	पुनःपुनरवतीर्य	१०	१६	१०
चतुश्चत्वारिंशत्	चतुस्त्रिंशत्	१०	१६	११
स्थितिबंधनात्	स्थितिबन्धात्	१०	१६	१२

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
शतलक्षसागरोपम	शतलक्षणसागरोपम	१०	१६	१६
आऊ पडि	आउं पडि	११	१९	६
सुहुमदोणि	सुहुमदोण्णि	११	१९	६
नरकगतितदानुपूर्व्यो:	नरकगतितदानुपूर्व्ययो:	११	१९	११
तिरिगदुगुज्जोवो वि	तिरियदुगुज्जोवे वि	१३	२१	१६
प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि	एवं प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि	१५	२३	२
पदानि	प्रकृतिबन्धापसरणपदानि	१६	२४	६
चोदसपदा	चोद्दसपदा	१७	२५	९
आनतकल्पाद्युपरिम	आनतकल्पादुपरिम	१८	२६	५
विदियठाणसंपत्ता	विदियठाणसंजुत्ता	१९	२६	२४
सप्तमीपृथिव्यां	सप्तमपृथिव्यां	१९	२६	२७
प्रक्लृप्ते	प्रक्षिप्ते	२२	३१	१७
विशुद्धिमिथ्यादृष्टी	विशुद्धमिथ्यादृष्टी	२४	३३	७
पुडवि	पुढवी	२२	३१	१५
सम्यक्त्वाभिमुख	प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखो	२५	३४	२
प्रकृतीनामुत्कृष्टं वा	प्रकृतीनामुत्कृष्टमनुत्कृष्टं वा	२५	३४	१
एकट्ठि	एक्कट्ठि	२६	३४	१६
प्रोक्ता:	प्रोक्ता	२७	३५	९
उदये चउदसघादी	उदये चोद्दसघादी	२८	३७	३
दस सिय	दसतिय	२८	३७	४
दश स्यात्	दशत्रिकं	२८	३७	६
सयोग्येकं	स्वयोग्यैकम्	२८	३७	६

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
मेकान्नत्रिंशत् (प्रकृतय:)	मेकान्नत्रिंशत् प्रकृतिकं	२८	३७	९
स्थिरसुभगयुग	स्थिरशुभयुगल	२८	३७	१३
पूर्वे एव	पूर्वोक्ता एव	२८	३७	१६
पंचाशद्भंगा	पञ्चाशत्तद्भङ्गा	२८	३८	९
उदइल्लाणं	उदयिल्लाणं	२९	४४	११
अजहण्णमणुकुस्सप्पदेस	अजहण्णमणुकुस्सं पदेस	३०	४५	९
ठिदीतियं	ठिदित्तियं	३२	४८	२४
अंतोमुहुत्तकालो	अंतोमुहुत्तकाला	३४	५०	१४
पुंजसंख्या	पुञ्जानां संख्या	३५	५१	१८
तहं वि य	तहं चिय	३६	५२	१५
मुहूर्तांतरेण	मुहूर्तान्तेन	३९	५५	७
प्रथमसमये स्थितिबंध	प्रथमसमये य: स्थितिबंध:	४०	५६	१२
खंडकमा	खंडकया	४४	६५	६
खंडक्रमा:	खंडकृता:	४४	६५	९
छट्टाणाणी विसेसे वि	छट्टाणाणि वि विसेसे वि	४५	६५	२५
षट्स्थानान्येकस्मिन्	षट्स्थानान्यप्येकैकस्मिन्	४५	६६	१
द्विचरमसमय इति	द्विचरमसमयपर्यन्ता:	४७	७०	३
अवरखडै:	अवरखण्डा:	४७	७०	३
अध:प्रवृत्तकरणपरिणामेभ्य:अपूर्व-करणपरिणामा	अध:प्रवृत्तकरणपरिणामेभ्य:असंख्ये-यलोकमात्रेभ्य:अपूर्वकरणपरिणामा	५०	७७	४
अपुव्वकरणं ति	अपुव्वकरणो त्ति	५१	७७	२०
अपूर्वकरणमिति	अपूर्वकरण इति	५१	७७	२२

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
विदियावलिकादिम	विदियावलियादिम	५६	८५	३
तिभागमेत्तो तु	तिभागमेत्तो त्ति	५७	८६	१५
त्रिभागमात्रस्तु	त्रिभागमात्रपर्यन्ते	५७	८६	१७
अतिस्थापनं समयाधिकं	अतिस्थापनं तु समयाधिकं	५७	८६	२०
द्विसमयाधिको	द्विसमयाधिकं	५७	८६	२३
उत्कृष्टस्थितौ	अपकर्षितायां	५८	८८	१८
उक्कस्सट्ठिदिं	उक्कस्सठिदिं	५९	९१	१
सत्तग्गट्ठिदिं	सत्तग्गट्ठिदि	६१	९४	८
आदित्थियुक्कड्डुणे	अदित्थियुक्कड्डुणे	६१	९४	८
सत्ताग्रस्थितिबन्ध	सत्ताग्रस्थितिं बन्धे	६१	९४	१०
आदिस्थित्युत्कर्षणे	अतिस्थाप्योत्कर्षणे	६१	९४	९
वारट्ठदीए	वरट्ठिदीए	६४	९६	५
अतिस्थापनावलिमुक्त्वा	अतिस्थापनावलिं मुक्त्वा	६५	१०२	६
तस्याधो निषेकाणां	तस्याधोऽधोनिषेकाणां	६५	१०२	८
आबाहागा	आबाहग्गा	६६	१०४	१५
तत्सामान्य	तत्समान	६६	१०४	२०
विदीयावलिपढमुक्कड्डुणे	विदियावलिपढमुक्कड्डुणे	६७	१०५	१
निर्जराविधानं प्रक्रमते	निर्जराविधानं प्ररूपयितुं प्रक्रमते	६८	१०८	१०
बाहरम्मि	बाहिरम्मि	६८	१०८	११
आयुर्द्रव्यस्य	अत्रायुर्द्रव्यस्य	६९	१०९	२४
पुनरपकृष्टैकभागपल्यासंख्येय-	पुनरपकृष्टैकभागे पल्यासंख्येय-	६९	११०	१
सेसिगभागे	सेसिगिभागे	७०	१११	९

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
सेसेगं च	सेसिगिभागं च	७०	१११	९
शेषैकं च	शेषैकभागं च	७०	१११	११
विसेसहीणे कमं	विसेसहीणक्कमं	७२	११३	४
निक्षिपति इत्यनेन	निक्षिपति च इत्यनेन	७४	११९	७
अपुव्वो	अपुव्वे	७८	१२५	११
स्थितिकालश्च	स्थितिविकल्पास्ततः	७७	१२२	११
स्थितिकांडकोत्कर्षणकाल:	स्थितिकाण्डकोत्करणकाल:	७७	१२२	१९
स्थितिबंधश्चापूर्वो	स्थितिबन्धश्चापूर्वे	७८	१२५	१३
स्थितिस्पर्धकानि	स्थितस्पर्धकानि	८१	१२९	१४
विकल्परहिता एव	विकल्परहिता एकादृशा एव	८३	१३१	२३
ठिदिरसखंडे	ठिदिरसखंडं	८३	१३१	१७
अन्ये स्थितिरसखंडे अन्यत्	अन्यत् स्थितिरसखण्डमन्यत्	८३	१३१	१९
स्थित्यायामनिषेकभावं	स्थित्यायामे निषेकाभावं	८४	१३३	५
मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योरन्तरं	मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योरप्यन्तरं	८६	१३५	२१
तद्बहुभागमात्रो	तद्बहुभागमात्री	८६	१३६	१
द्वितीयस्थितिस्थितत‌द्दर्शन	द्वितीयस्थितिस्थितदर्शन	८७	१३८	१९
आगाला:	आगाल:	८८	१३९	१९
प्रत्यागाला:	प्रत्यागालो	८८	१३९	१९
मसंख्येयफालिद्रव्यं	मसंख्येयगुणं फालिद्रव्यं	८८	१४०	२
सम्यक्त्वाद्यग्रहणकालं	सम्यक्त्वग्रहणकालं	८९	१४१	१८
प्रतिरूपयति	प्ररूपयति	८९	१४१	१८
सम्यक्त्वरूपेण	सम्यस्वरूपेण	९०	१४३	३

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
पृथक्स्थाप्य	पृथक्संस्थाप्य	९०	१४३	९
असंख्यातैकभागमात्रः	अस्यानन्तैकभागमात्रः	९०	१४३	१३
अनन्तर	अन्तर	९१	१४५	१७
संख्येयगुणकारः	संख्येयगुणकाराः	९१	१४६	८
द्विगुणरूपाधिका	द्विगुणा रूपाधिका	९१	१४६	९
मप्पबहु	मप्पबहुं	९२	१४९	३
मल्पं बहु	मल्पबहुं	९२	१४९	३
गुणपूरणकालः	गुणसंक्रमपूरणकालः	९४	१५१	९
णियट्टीगुणसेढि	णियट्टिगुणसेढि	९५	१५३	१
सम्यक्त्वकरणविशुद्धेः	सम्यक्त्वकारणविशुद्धेः	९८	१६१	३
देशसंयमकरणविशुद्धि	देशसंयमकारणविशुद्धि	९८	१६१	३
षडावलिमात्रस्तु	षडावलिमात्रतः	१००	१६३	१६
मिथ्यादृष्टिः किंतु	मिथ्यादृष्टिः नापि सम्यग्मिथ्या-दृष्टिः किन्तु	१००	१६३	१९
प्रतिपद्यमानस्य	प्रतिपद्यमानकस्यापि	९८	१६०	२६
प्रथमोपशमप्रारंभको	प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारम्भको	१०१	१६४	८
दंसणमोहं तुरंत	दंसणमोहंतरं तु	१०३	१६६	१६
उदयल्लिस्सुदयादो	उदयिल्लस्सुदयादो	१०३	१६६	१६
तत्प्रतिद्रव्यं	तत्प्रकृतिद्रव्यं	१०४	१६७	१०
द्रव्यमपकृष्टैकभाग	द्रव्यमप्यकृष्टैकभाग	१०४	१६८	११
असद्भावमजानन्	असद्भावमजानानो	१०५	१७३	६
दरसिज्जतं	दरिसिज्जतं	१०६	१७३	४

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
तथा मरणे सोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे	तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिरपि तत्त्वा-तत्त्वश्रद्धानमिश्रपरिणामो न विरूध्यत इत्यर्थः। स मरणे स्व-मरणकाले स्वायुषोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे	१०७	१७४	२७
श्रद्धाति	श्रद्दधाति	१०९	१७६	६
तित्थयरपायमूले	तित्थयरपादमूले	११०	१७७	१०
किदकरणिज्जो	कदकरणिज्जो	१११	१७८	१५
प्रविश्यति	प्रविशति	११२	१८०	४
वियले य समं	वियलेयसमं	११५	१८५	२
विकले च समं	विकलैकसमं	११५	१८५	४
पणवीसमेक्कयं	पणुवीसमेक्कयं	११६	१८५	१८
द्रव्यमपकृष्ट्या	द्रव्यमपकृष्य	११७	१८७	१४
स्थितिखंडमन्यदेव स्थितिबंधनं	स्थितिखण्डमन्यदेवानुभाग खण्डमन्यदेव स्थितिबंधनं	११७	१८७	१६
तस्तूपशमश्रेणि	यस्तूपशमश्रेणि	११७	१८७	२२
अमणंठिदि	अमणट्ठिदि	११९	१९०	२५
ठिदिखंडेय	ठिदिखंडये	११९	१९०	२६
तदो असंखेज्जं	तदो असंखेज्जा	१२१	१९२	२७
ततः असंखेयम्	ततो असंख्येयाः	१२१	१९३	१
पदिदे	पडिदे	१२५	१९६	२२
चरमफालिं	चरिमफालिं	१२६	१९७	१७
उच्छिष्टसमयद्विकशेषे	उच्छिष्टे समयद्विकशेषे	१२७	१९८	१६

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
चरमाउलिं व सरिसी	वरमाउलिंगसरिसी	१२९	२०२	२
संक्षुब्धे	संक्षिप्ते	१२९	२०२	३
चरमावलिरिव सदृशी	वरमातुलिंगसदृशी	१२९	२०२	४
एवोदयाद्यवस्थितिगुणश्रेणी	एवोदयाद्यवस्थितगुणश्रेणि	१३०	२०३	२३
अनन्तगुणहान्यापकृष्टा	अनन्तगुणहान्यापकृष्य	१३१	२०४	९
तदानींतनशुद्धि	तदानींतनविशुद्धि	१३१	२०४	१३
उवरिमि	उवरिम्मि	१३२	२०७	१
अष्टवर्षात् उपरिअपि द्विचरम-खंडस्य चरमफालीति	अष्टवर्षादुपर्यपि द्विचरमखण्डस्य-चरमफालिपर्यन्तम्	१३२	२०७	३
मिश्रद्विक	यथा मिश्रद्विक	१३२	२०७	५
समयाद्यवस्थितिगुणश्रेण्यायामे	समयाद्यवस्थितगुणश्रेण्यायामे	१३२	२०७	६
सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमिदं	सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यमिदं	१३३	२०८	८
विधानेनापकृष्टमप्याधो	विधानेनापकृष्टस्याधो	१३३	२०९	४
निक्षिप्य द्रव्यमात्रं	निक्षेप्यद्रव्यमात्रं	१३३	२१०	१०
प्रतिक्षिपेत्	प्रक्षिपेत्	१३३	२१०	१९
फालिद्रव्यस्याध:प्रवृत्त	फालिद्रव्यं काण्डकद्रव्यस्याध:प्रवृत्त	१३३	२११	१६
पृथग्लिख्येत	पृथग्लिखितम्	१३३	२११	२३
संख्यातप्रमितसर्वद्रव्यस्य	संख्यातप्रमितया सर्वद्रव्यस्य	१३३	२१२	२०
निसिंचति	निर्षिंचति	१३४	२२२	१९
चरमकांडकचरमफालि	प्रथमकांडकचरमफालि	१३४	२२२	२१
गुणित्वात्	गुणितत्वात्	१३५	२२३	२५
तथाहि	तद्यथा	१३५	२२४	१

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
उपर्यष्टवर्षसमय	उपर्यष्टवर्षद्वितीयसमय	१३५	२२३	२८
प्राक्तनअवयवमात्र	प्राक्तनचयमात्र	१३५	२२४	६
द्विगुणहान्या	द्विगुणगुणहान्या	१३५	२२४	१०
तद्द्वितीयगुणश्रेणि	तद्द्वितीयसमयगुणश्रेणि	१३५	२२४	१३
गुणश्रेणिशीर्षद्रव्याणि	गुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यं	१३५	२२४	१५
गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यात्	गुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यात्	१३५	२२४	१५
पदिददव्वं	पडिददव्वं	१३६	२२८	१४
विधानेन गुणश्रेणिशीर्ष-	विधानेन विवक्षितगुणश्रेणिशीर्ष-	१३७	२२९	१३
पपत्तिदर्शनार्थ	पपत्तिप्रदर्शनार्थ	१३६	२२८	१८
हीनत्वेनाणगत्वात्	हीनत्वेनागणनात्	१३७	२२९	२१
एतादृशो	एकादृशो	१३७	२२९	२२
अपकृष्ट्या	अपकृष्य	१३८	२३०	१४
तत्तत्कालभाविदृश्ये	तत्तत्कालभाविदृश्यं	१३८	२३०	१६
संखगुण	संखगुणो	१३९	२३१	४
चावस्थितिगुणश्रेणिबहुभागसंख्यात	चावस्थितगुणश्रेणिबहुभागै:संख्यातगुणै:	१३९	२३१	११
चरमकाण्डकमध:	चरमकाण्डकस्याध:	१३९	२३१	१५
गुणसेढीसीसे सीसे य	गुणसेढीणं सीसे य	१४०	२३४	२
चरिमम्हि	चरिमे य	१४०	२३४	२
गुणश्रेणिशीर्षे शीर्षे च	गुणश्रेण्यो:शीर्षे च	१४०	२३४	४
चरमे	चरमे च	१४०	२३४	४
फालिपतन	फालिपातन	१४०	२३४	८
जहा	जदो	१४२	२३५	११

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
यथा	यतो	१४२	२३५	१५
सेसिगभागं	सेसिगिभागं	१४२	२३५	११
मसंख्यातक्रमेण	मसंख्यातगुणितक्रमेण	१४२	२३६	५
उपरितनस्थितिसमया-	उपरितनस्थितिप्रथमसमया-	१४२	२३६	१०
द्वितीयपर्वायामसंख्यातगुणत्वात्	द्वितीयपर्वायामत:संख्यातगुणाद्	१४२	२३६	१२
तृतीयपर्वनिषेके	तृतीयपर्वप्रथमनिषेके	१४२	२३६	१५
फाडेदि	पाडेदि	१४३	२३९	३
दु	हु	१४४	२३९	२२
तु	हु	१४४	२३९	२४
असंखगुणियकमा	असंखगुणियकमे	१४४	२३९	२२
प्रथममूलभागहारेण	प्रथमवर्गमूलमात्रभागहारेण	१४४	२४०	५
कदकरणिज्जे त्ति	कदकरणिज्जो त्ति	१४५	२४१	८
संख्यातभागमात्रे	संख्यातबहुभागमात्रे	१४६	२४१	१७
वाप्नोति	प्राप्नोति	१४६	२४१	२१
नान्यगतिस्तेषु	नान्यगतिजेषु	१४६	२४२	१
तदनन्तरकृतकृत्य	तदनन्तरं कृतकृत्य	१४७	२४३	२१
सर्वेषु मृतस्य	सर्वेषु भागेषु मृतस्य	१४७	२४३	२८
बद्धनरकायुष:	बद्धनारकायुष:	१४७	२४३	२६
वेदककाले असंख्यातगुणित-	वेदककाले असंख्यातसमयप्रबद्धा-नामुदीरणापि तत्काले यावत्स-मयाधिका उच्छिाष्टावलिरवशिष्यते तावत्प्रतिसमयमसंख्यातगुणित-	१४८	२४५	२२

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
असंखगुणसमुदय	असंखगुणमुदय	१४९	२४६	१२
कदकिज्जो	किदकिज्जो	१४९	२४६	१३
ठिदीए	ठिदिए	१५१	२४६	१७
तदेकभागमुदयप्रथम	तदेकभागमुदयावल्यामुदयप्रथम	१५१	२४६	२६
द्वित्रिभागमपि संस्थाप्य	द्वित्रिभागमतिसंस्थाप्य	१५१	२४७	१६
मनुभागसमयापवर्तनेनैव	मनुभागासमयापवर्तनेनैव	१५१	२४७	२३
मप्पबहु	मप्पबहुं	१५२	२५०	१८
चरिमे खंडिय	चरिमं खंडय	१५६	२५४	५
चरमे खंडित	चरमं खण्डित	१५६	२५४	७
खवदे	खविदे	१५७	२५४	२२
ठिदिखंडं संखसंगुणं	ठिदिखंडमसंखसंगुणं	१५९	२५६	४
स्थितिखंड संख्यसंगुणं	स्थितिखण्डमसंख्यसंगुणं	१५९	२५६	६
पलिदोवमसंतो दो	पलिदोवमसत्तादो	१६०	२५६	२२
पलिदोवमसंतो दो	पलिदोवमसत्तादो	१६१	२५७	२०
हेट्ठिमठिदिप्पमाणेणब्भिहियो	हेट्ठिमठिदिप्पमाणेणब्भहियो	१५८	२५५	१७
अधस्तनस्थितिप्रमाणेनाभ्यधिकं	अधस्तनस्थितिप्रमाणेनाभ्यधिको	१५८	२५५	१९
मिच्छसंतं हि	मिच्छसत्तं हि	१५७	२५४	२२
संखगुणिदकमं	संखगुणिदकमा	१५४	२५२	५
संख्यगुणितक्रमं	संख्यगुणितक्रमा:	१५४	२५२	७
ठिदिसंतं	ठिदिसत्तं	१६२	२५८	८
संतो	सत्तो	१६३	२५९	३
संखेये	संखेण य	१६३	२५९	४

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
संख्येय	संख्येन च	१६३	२५९	६
चरमस्थितिकाण्डकफालिद्रव्यं	चरमस्थितिकाण्डकचरमफालिद्रव्यं	१५७	२५५	१
तुरियभवे	तुरियभवं	१६५	२६५	४
क्षायिकलब्धसंयतसम्यग्दृष्टौ	क्षायिकलब्धिरसंयतसम्यग्दृष्टौ	१६५	२६५	१५
सयलं ते वि व	सयलं ते वि य	१६४-१६७	२६७	३
लभते	लभेते	१६८	२६७	७
बन्धसत्तयो	बन्धसत्त्वयो	१६८	२६८	२१
गिण्हमाणो	गेण्हमाणो	१६९	२६९	१२
ग्रहणेऽन्यूनं	ग्रहणेऽप्यनूनं	१७०	२६९	२०
प्रतिपादनार्थमाह	प्रतिपादनार्थमिदमाह	१७०	२७२	६
गुणसेढीमवट्ठिदं	गुणसेढिमवट्ठिदं	१७३	२७२	८
करोति	कुरुते	१७३	२७२	१०
द्वितीयादिसमयेष्ववस्थित	द्वितीयादिसमयेष्वप्यवस्थित	१७३	२७२	१५
गुणश्रेण्यायामेन	गुणश्रेण्यायामात्	१७३	२७२	१६
मुहुत्त संतेण	मुहुत्तस्संते ण	१७५	२७४	२४
मुहूर्त संयतेन	मुहूर्तस्यान्ते	१७५	२७४	२६
तद्विशुद्धिपरिणामानुसारेण	तत्तद्विशुद्धिपरिणामानुसारेण	१७५	२७६	९
गुणश्रेणिं यदा	गुणश्रेणिनिक्षेपं करोति यदा	१७६	२७६	१२
तदा संक्लेशपरिणामं	यदा तु विशुद्धिहान्या संक्लेशपरिणामं	१७६	२७६	१२
चरिमेत्ति	चरिमोत्ति	१७७	२७८	८
चरमे इति	चरम इति	१७७	२७८	१०
एयंतवड्ढिकाले	एयंतवड्ढिकालो	१७९	२७८	२५

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
एकांतवृद्धिकाले	एकांतवृद्धिकालो	१७९	२७९	१२
अविरता तथा	अविरतस्तथा	१८०	२७९	१३
संभवज्जघन्य	संभवजघन्य	१७८-१८३	२७९	२१
मनुष्योत्कृष्ट	मनुष्यस्योत्कृष्ट	१८४	२८५	१०
प्रतिपर्वासंख्यातलोकभागमात्राणि	प्रतिपर्वासंख्यातलोकमात्राणि	१८५	२८६	१२
पडिवच्चगया	पडिवज्जगया	१८६	२८७	८
षट्स्थानानि अन्तरयित्वा	षट्स्थानपतितानि देशसंयम-लब्धिस्थानानि अन्तरयित्वा	१८६	२८७	१४
मनुष्यस्योत्कृष्टं भवति	मनुष्यस्योत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति	१८७	२८९	१६
मनुष्यसंभवीन्येवा	मनुष्यसम्बधीन्येवा ।	१८७	२८९	१३
सन्ति प्रतिपातस्थानानि	सम्भवन्ति प्रतिपातस्थानानि	१८८	२९१	१३
दृष्टव्यानि	द्रष्टव्यानि	१८८	२९०	१२
प्रतिपद्यमानात्प्रभृति	प्रतिपद्यमानस्थानात्प्रभृति	१८८	२९१	२३
असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्येति	असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्येति - सम्भावनीयम्	१८८	२९२	७
मिथ्यादृष्टिचरस्य संभवति	मिथ्यादृष्टिचरस्य च सम्भवति	१८८	२९२	८
देशसंयमलब्धिस्थानादसयंते	देशसंयमलब्धिस्थानमसंयते	१८८	२९२	८
गाथासूत्रव्याख्यानमुक्तम्	गाथासूत्रव्याख्यानं सूक्तम्	१८८	२९२	१२
गिण्हदो	गेण्हदो	१८९	२९७	३
यथा	तथैव	१८९	२९७	८
वेदगजोगो	वेदगजोग्गो	१९०	२९८	११

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
वेदकयोगो	वेदकयोग्यो	१९०	२९८	१३
देसवदं वा गिण्हदि	देसवदं वा गेण्हदि	१९०	२९८	१२
तच्चरसमये	तच्चरमसमये	१९४	३०३	२२
तच्चरसमये	तच्चरमसमये	१९४	३०४	२
संखं वा	देसं वा	१९५	३०६	३
संख्यं वा	देशमिव	१९५	३०६	५
तस्मादार्यखण्डमनुष्यस्य	तस्मादार्यखण्डजमनुष्यस्य	१९६	३०८	६
तानि चोत्तर	तानि चोत्तरोत्तर	१९६	३०८	१५
पडिवज्जय संखसमयमेत्ता	पडिबद्धाऽसंखसमयमेत्ता	१९७	३०९	२४
प्रतिवर्ज्य संख्यसमयमात्रा	प्रतिबद्धाऽसंख्यसमयमात्रा	१९७	३०९	२६
संजमे होदि	संजमं होदि	१९७	३०९	२५
संयमे भवति	संयमं भवति	१९७	३०९	२७
क्षपणचरमसमय	क्षपकचरमसमय	१९७	३१०	१
सर्वस्थानेभ्योऽनन्तविशुद्धिकं	सर्वस्थानेभ्योऽनन्तगुणविशुद्धिकं	१९७	३१०	५
पडिवादादीतिदयं	पडिवादादित्तिदयं	१९९	३१२	५
उपर्युपरितनमसंख्य	उपर्युपरिमसंख्य	१९९	३१२	१९
तत्प्रायोग्य	तत्तत्प्रायोग्य	१९८-२०४	३१३	१५
संयमेपि च	सूक्ष्मसापराव संयमे च	१९८-२०४	३१४	४
कथमसंयतप्रतिपाताभाव:	कथमसंयमे प्रतिपाताभाव:	२०६	३१४	६
उवसमचरियाहिमुहा	उवसमचरियाहिमुहो	२०६	३१७	१४
वेदकसम्यक्अनं	वेदकसम्योऽनं	२०६	३१७	१६
दर्शनमोहक्षपणा विधिना प्रागुक्तेनेति	दर्शनमोहक्षपणाविधि: प्रागुक्त इति	२०६	३१७	२१

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
पढमट्ठिदिं	पढमठिदिं	२११	३२५	९
उदयावल्या:	उदयवत्या:	२११	३२५	१२
सम्मपढम्ममि	सम्मपढमम्मि	२१३	३२८	१
निक्षिपतीर्त्थ:	निक्षिपतीत्यर्थ:	२१४	३२९	१३
पावे	पावइ	२१५	३२९	२४
यदुपरिस्थिता	तदुपरिस्थिता	२१४	३२९	१२
तद्वृद्धितो	तदवस्थितो	२१९	३३४	१६
व्यवस्थाया	व्यवस्थया	२१९	३३४	१९
तव्वड्ढिदो	तदवट्ठिदो	२१९	३३४	१४
अण्णपयडीसु	अण्णपयडी हु	२२०	३३५	११
अन्यप्रकृतीषु	न्यायप्रकृतीर्हु	२२०	३३५	१३
रसखंडमणंतभागा	रसखंडणमणंतभागा	२२४	३३९	२
बहुभागमात्रकाण्डकं	बहुभागमात्रमनुभागकाण्डकं	२२४	३४०	७
प्रतिस्थाप्य	मतिस्थाप्य	२२४	३४०	८
बहुभागमात्रानुभाग	बहुभागमात्रानुभागसत्त्वे	२२४	३४०	८
वोच्छिण्णा	वोच्छिण्णो	२२६	३४७	३
षण्णोकषायोदया	षण्णोकषायोदयो	२२६	३४७	५
व्युच्छिना:	व्युच्छिन्न:	२२६	३४७	५
वि एएदि	बियेइंदी	२३०	३५१	१७
सप्तमभागप्रमित:।	सप्तमभागप्रमित इत्यर्थ:।	२३०	३५१	२४
ठिदिबंधो	ठिदिबंधे	२३१	३५२	२०
स्थितिबन्ध:।	स्थितिबन्धे	२३१	३५२	२२

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
असंज्ञादिषु	असंज्ञ्यादिषु	२३१	३५२	२५
पल्लसंखं ति	पल्लासंखं	२३२	३५४	४
संखगुणूणमसंखगुणमित्यत्र	संखगुणूणमसंखगुणहीनमित्यत्र	२३३	३५४	१२
मोहनीयपल्यजात	मोहनीयानां पल्यजात	२३३	३५५	१९
द्वयमात्र	द्वयपल्यमात्र	२३३	३५५	२१
संख्यातैकभागमात्रावस्थितिबन्धा	संख्यातैकभागमात्रौ च स्थितिबन्धा	२३५	३५६	४
विशुद्धिविशेषस्थितिबन्धन	विशुद्धिविशेषनिबन्धन	२३७	३६१	२५
समयपबद्धाणं	समयबद्धाणं	२३९	३६४	५
समयप्रबद्धानां	समयबद्धानां	२३९	३६४	७
विरयं	विरियं	२४१	३६५	७
ठिदिबंधे	ठिदिबंधो	२४१	३६५	८
स्थितिबन्धे	स्थितिबन्ध:	२४१	३६५	१२
तत्तियपदेसु	तेत्तियपदेसु	२४२	३६७	१३
वेदाणेकं	वेदाणेक्कं	२४३	३६८	१
पढमट्ठिदिं	पढमठिदिं	२४३	३६८	२
अंतोमुहूत्त आवलियं	अंतोमुहूत्तमावलियं	२४३	३६८	२
वि समं	विसमं	२४४	३६८	२०
अधस्तनापि समं	अधस्तने विषमं	२४४	३६८	२२
तदुपरि	तद्दुग	२४४	३६८	२१
तदुपरि	तद्‌द्विक	२४४	३६८	२३
उदयानुदयप्रकृतीनां सदृशा	उदयानुदयप्रकृतीनां सर्वासामपि सदृशा	२४४	३६८	२४

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
स्वबन्धे	स्वस्वबन्धे	२४६	३७०	२३
औदयिकानामान्तरजं	उदयमानयोरन्तरजं	२४७	३७१	१४
चोत्कृष्य संक्रामयतीत्ययं	चोत्कृष्य निक्षिपति तत उदयमान कषायस्य प्रथमस्थितौ चापकृष्य संक्रमयतीत्ययं	२४७	३७१	१८
प्रथमस्थित्यन्तरायामौ व्यवस्थित	प्रथमस्थित्यन्तरायामाववस्थित	२४८	३७२	१६
आणुपुव्वीसंकमणं	अणुपुव्वीसंकमणं	२५०	३७५	१२
वक्ष्यमाण्यात्	वक्ष्यमाणया	२४९-२५०	३७५	२५
सममुच सामदि	सममुवसामदि	२५१	३७८	१७
एक्केकं	एक्केक्कं	२५१	३७८	१६
समुच्च शमयति	सममुपशमयति	२५१	३७८	१९
जाण ण च	जाव ण च	२५३	३८०	३
जानीहि न	यावन्न	२५३	३८०	५
सदवस्थाकारणमुपशमनं	सदवस्थाकरणमुपशमनं	२५३	३८०	९
चरमसमयमसंख्यात	चरमसमयपर्यंतमसंख्यात	२५३	३८०	१२
ठिदिरसखंडाण	ठिदिरसखंडा ण	२५५	३८३	२५
स्थितिरसखंडाणां	स्थितिरसखण्डा न	२५५	३८४	१
हीनत्वोपते:	हीनत्वोपपत्ते:	२५५	३८४	१०
अस्मादर्धेनाधिको	अस्मादस्यैवार्धेनाधिको	२५६	३८६	३
विवक्षितबन्धप्रथमसमये	विवक्षितस्थितिबन्धप्रथमसमये	२५८	३८७	१९
मैकेनैकस्थितिबन्धापसरणेन	मैकेनैव स्थितिबन्धापसरेणन	२५८	३८७	२२
समस्थितिबन्धाभ्युपगमने	समस्थितिबन्धाभ्युपगमेन	२५८	३८७	२१

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
संढुवसमदे	संढुवसमिदे	२५९	३८८	१५
षण्ढोपशान्ते	षण्ढोपशमिते	२५९	३८८	१७
संखतुवं	संखवुदं	२६०	३८९	१८
रसबंधो केवलणाणेगहाणं	रसबंधो विकेवलणाणेगठाणं	२६०	३८९	१८
केवलज्ञानैकस्थानं	विकेवलज्ञानैकस्थानं	२६०	३८९	२०
स्त्रीवेदोऽत्युपशमितो	स्त्रीवेदोऽप्युपशमितो	२६०	३८९	२५
संखज्जदिमे	संखेज्जदिमे	२६१	३९०	२०
वेयणियट्ठिदिबंधो	वेयणीयट्ठिदिबंधो	२६२	३९१	८
तद्दुगाणि	तद्दुगुणं	२६४	३९६	६
तद्द्विकानि	तद्द्विगुणं	२६४	३९६	८
घातिचतुष्टयस्य	घातित्रयस्य	२६४	३९६	१०
एदि	देदि	२६६	३९८	११
एति	ददाति	२६६	३९८	१३
संक्रमत्येव	संक्रामत्येव	२६६	३९८	१५
संक्रमति	संक्रामति	२६६	३९८	१६
प्रागुक्तनवकद्रव्यं	प्रागुक्तनवकबन्धद्रव्यं	२६७	३९९	६
एकसमयफालिद्रव्यानि	एकसमयप्रबद्धफालिद्रव्याणि	२६७	३९९	१६
समयबद्धानां	समयप्रबद्धानां	२६७	४००	२
प्रवृत्तिर्दर्शिता	प्रवृत्तिप्रदर्शनात्	२६७	४००	४
कोहे	कोहं	२६९	४०३	२
पुंवेदप्रथमस्थितौ विशेषाधिका	पुंवेदप्रथमस्थितेर्विशेषाधिका	२६९	४०३	८
यावत्तावद्भवति	यावद्भवति	२७१	४०५	१५

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
कोहस्स पढमठिदी	कोहस्स य पढमठिदी	२७२	४०६	१५
क्रोधस्य प्रथमस्थिति:	क्रोधस्य च प्रथमस्थिति	२७२	४०६	१७
बन्धोदया भवन्ति	बन्धोदयौ भवत:	२७२	४०६	१८
स्थितिसत्त्वद्रव्या	स्थितसत्त्वद्रव्या	२७३	४०८	२
प्रथमसमयादपकृष्टद्रव्यासंख्येय	प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यादसंख्येय	२७३	४०८	७
अनन्तरससमयेषू	अनन्तरान्तरसमयेषू	२७४	४०९	१८
पढमदि	पढमठिदि	२७६	४११	१४
संछुहठिदी	संछुहदि	२७६	४११	१३
आलावो	आलाओ	२७८	४१२	२३
विभंजणं	विभंजणो	२७८	४१२	२३
विभंजन तत्र	विभञ्जनस्तत्र	२७८	४१२	२५
ते पुण	तं पुण	२८२	४१५	१४
प्रथमभागसंज्वलनबादर-लोभवेदकाद्धा प्रथमार्ध:।	प्रथमभाग: संज्वलनबादर-लोभवेदकाद्धाप्रथमार्ध:।	२८३	४१७	२१
रुपोनकृष्टिगच्छसंख्यातवारानन्त-गुणित	रुपोनकृष्टिगच्छसंख्यावारा-नन्तरूपगुणित	२८५	४२४	१९
द्वितीयसमयापकृष्टिद्रव्यस्य	द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टिद्रव्यस्य	२८७	४२९	८
प्रथमसमयादपकृष्टकृष्टिद्रव्य	प्रथमसमयकृतकृष्टिद्रव्य	२८७	४२९	१५
इयमेवादिं	इममेवादिं	२८७	४२९	१५
खंडद्रव्यद्वयं	खंडद्वयद्रव्यं	२८७	४३०	१६
उभएविसेसे तदा	उभयविसेसं तदो	२८८	४३९	१
उभयविशेषे ततो	मुभयविशेषं ततो	२८८	४३९	३

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
यथोक्त	अथोक्त	२८९	४४०	११
उभयद्रव्यविशेषादस्मात्	उभयद्रव्यविशेषद्रव्यादस्मात्	२८९	४४१	१
निक्षपति	निक्षिपति	२८९	४४१	२,५,८,१४,१६
द्रव्यादिकमेकेनोभय	द्रव्यादिदमेकेनोभय	२८९	४४१	६
द्विद्रव्यासो जान:	द्विद्रव्यन्यासो जात:	२८९	४४१	१९
निक्षिप्त्य	निक्षिप्य	२८९	४४२	१७
गोपुच्छद्रव्ये	गोपुच्छद्रव्यं	२८९	४४३	१
परिष्यैकरूप	परिस्थैकरूप	२८९	४४३	८
चरिमेत्ति	चरिमोत्ति	२९१	४५१	१६
नंतरातीतबंधात्	नंतरातीतस्थितिबंधात्	२९४	४५५	७
स्थूलसांपरायो य:	स्थूलसाम्परायश्च	२९६	४५७	५
गत्थ	एत्थ	२९७	४५८	३
गत्वा	अत्र	२९७	४५८	५
मसंख्यातगुणितकृष्टिद्रव्य	मसंख्यातगुणितं कृष्टिद्रव्य	२९७	४५९	१
शेषास्ते बहुभागाः	शेषास्तद्बहुभागाः	२९८	४६२	८
भवत्तत्र	भवति तत्र	२९८	४६२	२०
पल्लाअसंखभागं	यग्गादसंखभागं	२९९	४६६	२
पल्यासंख्यभागं	चाग्रादसंख्यभागं	२९९	४६६	४
उक्तकृष्टिष्वेतासु	मुक्तकृष्टिष्वेतासु	२९९	४६६	१३
किञ्चिन्न्यूनत्वा.....दथा	किञ्चिन्न्यूनत्वात्। अथा	३०६	४७६	१५
प्रतिमिता:	प्रमिता:	३०६	४७६	९
कषायेण	कषाये	३०७	४७८	१८

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
गोत्रकं	गोत्रैकं	३०७	४७८	२१
कारणानि	करणानि	३०९	४८३	९
उदयावलिबाहिरगे गोपुच्छाए	उदयावलिबाहिरगोउंछाए	३१०	४८४	७
उदयावलिबाह्यके अन्तरे	उदयावलिबाह्यगोपुच्छायां	३१०	४८४	९
प्रारम्भमाण	प्रारभमाण	३११	४८५	१०
संक्लेशमानः	संक्लिश्यमानः	३११	४८५	२०
समयेणद्ध्रुवसामण	समये णट्ठुवसामण	३१२	४८६	२८
समयेनाध्रुवशम	समये नष्टोपशमन	३१२	४८७	१
चानुभागबन्धाद्यथा	चानुभागबन्धस्तत्प्रथमसमयानु-भागबन्धाद्यथा	३१५	४९१	११
बहुभागमात्रो मध्यमकृष्टयः	बहुभागमात्र्यो मध्यमकृष्टयः	३१५	४९१	१५
घादितियं	घादितिये	३१७	४९६	२१
अघादितियं	अघादितिये	३१७	४९६	२१
आकृष्योत्कृष्यं	उकृष्योत्कृष्य	३१७	४९७	३
द्विविधमायाद्रव्यं त्रिविधलोभद्रव्यं	त्रिविधमायाद्रव्यं द्विविधलोभद्रव्यं	३१८	४९८	१६
मानवेदककालावलिका	मानवेदककालादावलिका	३२०	५००	१३
उदयावलिबाह्यं	उदयावलिबाह्ये	३२०	५००	१४
बादरकसायाणं	बारकसायाणं	३२२	५०१	१६
बादरकषायाणां	द्वादशकषायाणां	३२२	५०१	१८
सहस्सवस्साणि	सहस्समेत्ताणि	३२३	५०७	२
सहस्रवर्षाणि	सहस्रमात्राणि	३२३	५०७	४
संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु	संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु	३३०	५१२	१८

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
संख्यातबहुभागेषु तदन्तरे	संख्यातबहुभागेषु गतेषु तदन्तरे	३३०	५१२	२२
मोहस्यानानुपूर्विसंक्रमणम्	मोहस्यानुपूर्विसंक्रमणम्	३३२	५१४	१३
उदीयत	उदीर्यते	३३२	५१४	१५
विरयादीणं	विरियादीणं	३३३	५१५	१६
समयपबद्धाणं	समयबद्धाणं	३३३	५१५	१७
समयप्रबद्धानाम्	समयबद्धानाम्	३३३	५१५	१९
स्थितिबन्धसहस्रेषु असंख्यात	स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु असंख्यात	३३३	५१६	१
पल्यासंख्यातमात्रो	पल्यासंख्यातभागमात्रो	३३४	५१६	१९
ततोऽधिको	ततोऽर्द्धाधिको	३३६	५१८	१४
उवरिट्ठविदा	उवरिं ठविदा	३३७	५१९	७
तणद्धे	तं णट्ठे	३३७	५१९	८
तदद्धायां	तन्नष्टे	३३७	५१९	१०
तत्कालादिनाऽसंख्येय	तत्कालादिमासंख्येय	३३७	५१९	१३
तत्तो पाये	एत्तो पाये	३३९	५२०	१७
तत:प्रभृति	इत:प्रभृति	३३९	५२०	१९
पल्यासंख्यातभागमात्र:	पल्यसंख्यातभागमात्र:	३३९	५२०	२१
तदा दु	तदो दु	३४०	५२१	२०
तदा तु	ततस्तु	३४०	५२१	२२
स्थितिबन्धोत्सुरणेषु सर्व	स्थितिबन्धोत्सुरणेषु गतेषु सर्व	३४०	५२१	२४
पल्यासंख्यातैकभागमात्र:	पल्यसंख्यातैकभागमात्र:	३४०	५२१	२५
पल्यासंख्यातबहुभाग	पल्यसंख्यातबहुभाग	३४०	५२२	२
पल्यासंख्यातभागेन	पल्यसंख्यातभागेन	३४०	५२२	५

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
पल्यासंख्यातैकभागमात्रं	पल्यसंख्यातैकभागमात्रं	३४०	५२२	११
दुतिचरुसत्तम	दुतिचउसत्तम	३४१	५२४	२३
त्रिंशद्‌द्विके	त्रिंशद्विके	३४१	५२४	२४
अवतारका-	अथावतारका-	३४२	५२६	६
बंधो अद्धापवत्तो य	बंधो दु अधापवत्तो य	३४३	५२७	६
बंधो अधाप्रवृत्त च	बंधस्त्वधाप्रवृत्तश्च	३४३	५२७	८
अथद्वितीयोपशमसम्यक्त्वकाल- प्रमाणं गाथाद्वयमाह	अथावतारकाप्रमत्तस्याध:प्रवृत्तकरण परिणामप्रथमसमये सम्भवद्‌गुण- श्रेणिविशेषप्रदर्शनार्थमाह	३४४	५२९	१
गलिदसेसे व	गलिदसेसेव	३४५	५३०	२
गलितशेषो वा	गलितशेष एव	३४५	५३०	४
वृद्ध्यावस्थितिगुणश्रेण्या	वृद्ध्यावस्थितगुणश्रेण्या	३४५	५३०	११
लोभाकर्षणे	लोभापकर्षणे	३४५	५३०	१०
सर्वत्रावस्थितिस्वरूपेण	सर्वत्रावस्थितस्वरूपेण	३४५	५३०	११
विज्झादमबंधाणे	विज्झादमबंधाणं	३४७	५३३	१३
विध्यातमबन्धने	विध्यातमबन्धानां	३४७	५३३	१५
गाथाद्वयमाह	गाथाद्वयेनाह	३४८	५३४	५
गत्वावलिषट्‌के	गच्छेदावलिषट्‌के	३४९	५३४	२५
णिरयतिरक्खं	णिरयतिरिक्खं	३५०	५३५	२२
सासादनगुणप्राप्ते:	सासादनगुणप्राप्ति	३५०	५३६	२
गतित्रयगमने	गतित्रयागमने	३५१	५३६	१४
णरतिरियक्ख	णिरयतिरिक्ख	३५१	५३६	१५

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
गदी सु ण	गदीसु य ण	३५१	५३६	१६
उपशमश्रेण्यामवतीर्णस्य	उपशमश्रेण्यवतीर्णस्य	३५२	५३७	८
चटितस्य शेषा अथ	चटितस्यैषाह	३५३	५३८	४
पढमठिदिमित्तं	पढमठिदिमेत्तं	३५४	५३८	२०
यावन्मात्री पुलोभो	यावन्मात्री प्रथमस्थितिर्भवति – तावन्मात्री पुलोभो	३५४	५३९	४
ठविदि	ठवदि	३५५	५४१	१३
रूढस्य वा	रूढस्य या	३५७	५४३	५
गुणसेढी	गुणसेढिं	३५९	५४४	१५
उक्कट्टियम्हि	ओक्कट्टियम्हि	३६१	५४६	४
थीउदयस्स य	थी उदयस्स वि	३६२	५४६	१७
स्त्री-उदयस्य च	स्त्र्युदयस्याप्येवम	३६२	५४६	१९
चलपलिदे	चडपडिदे	३६५	५४८	१३
अद्धाणं	अद्धाये	३६५	५४८	१४
अद्धानाम	अद्धायाम	३६५	५४८	१६
बंधठिदी	बंधट्ठिदी	३६७	५५०	२
साम्परायकाल:	साम्परायकाल: संख्यातगुण:	३६८	५५१	७
विसेसाहिया	विसेसहिया	३६९	५५१	१७
चलसुहुमो	चडसुहुमो	३६९	५५१	१६
छप्पुरिसित्थीणउवसमाणं च	छप्पुरिसित्थीणउंसयाणं च	३७४	५५५	२०
षट्पुरुषस्त्रीनपुंसोपशमानां च	षट्पुरुषस्त्रीनपुंसकानां च	३७४	५५५	२२
खुद्दभवगहणं	खुद्दभवग्गहणं	३७४	५५५	२१

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
भवति	भवन्ति	३७५	५५६	२४
अहिया य	अहियो य	३७६	५५८	२
चडगणा	चडणगा	३७७	५५८	१९
पतंत्यापूर्वाद्धा:	पततोऽपूर्वाद्धा	३७७	५५८	२२
अधिका:	अधिका	३७७	५५८	२२
संख्येयगुणा:	संख्येयगुण:	३७७	५५८	२३
चढमाणा	चडमाणा	३७८	५५९	८
अन्तर्मुहूर्तेनाधिक:	अन्तर्मुहूर्तेन साधिक:	३७८	५५९	१२
सूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये	सूक्ष्मसाम्परायचरमसमये	३८०	५६१	६
स पूर्वस्माद्	स च पूर्वस्माद्	३८०	५६१	८
ग्राह्य:।	ग्राह्य:। त्रयोदशपदानि संख्यात-गुणितक्रमाणि भवन्ति।	३८१	५६२	७
चलतदिय	चडतदिय	३८२	५६२	१४
चलणपुरिसस्तो	चलणपुरिसस्स	३८३	५६३	५
तिघादियादीणं	तिघादघादीणं	३८५	५६४	१०
त्रिघातकादीनाम्	त्रिघाताघातिनाम्	३८५	५६४	१२
तिघादियादीणं	तिघादघादीणं	३८७	५६५	९
त्रिघातकादीनाम्	त्रिघाताघातिनाम्	३८७	५६५	११
मोहनीयस्य संख्यात	मोहनीयस्यासंख्यात	३८६	५६५	१४
आरोहकघातित्रयस्य	आरोहकेऽघातित्रयस्य	३८६	५६५	१७
पलितोपमस्यासंख्येय:	पलितोपमस्य संख्येय :	३८७	५६६	१५
पल्यासंख्यातैकभागमात्र:	पल्यसंख्यातैकभागमात्र:	३८७	५६६	१७

पूर्व मुद्रित पाठ	संशोधित पाठ	गाथा क्र.	पृष्ठ क्र.	पंक्ति क्र.
घातित्रयस्थितिबन्धाद	अघातित्रयस्थितिबन्धाद	३८७	५६६	१८
विशेषाधिकक्रमो भवन्ति	विशेषाधिकक्रमे भवतः	३८८	५६७	२
पल्यासंख्यातैकभाग	पल्यसंख्यातभाग एव	३८८	५६७	३
पल्यार्धं	पल्यार्थम्	३८९	५६७	१८
चरमस्थितिबन्धः	चरमस्थितिखण्डः	३८९	५६७	२०
ठिदिसंतं	ठिदिसत्तं	३९०	५६८	१८
चरमस्थितिबन्धकश्च	चरमःस्थितिबन्धकश्च	३९०	५६८	१९
संख्येयगुणक्रमं अष्ट	संख्येयगुणक्रमाण्यष्ट	३९०	५६८	२०
अवतारणे	अवतरणे	३९१	५६९	२२
स्थितिकरणं तेन तावत्समयानां	स्थितिसत्त्वादेतावत्समयानां	३९१	५६९	२२-२३
स्थितिसत्त्वेन तत्वात्	स्थितिसत्त्वे हीनत्वात्	३९१	५६९	२३
पढमठिदीसत्तं	पढमट्ठिदिसत्तं	३९२	५७०	१४
संख्येयगुणितम्	संख्येयसंगुणितम्	३९२	५७०	१६

लब्धिसारस्य गाथानुक्रमणिका

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
अजहण्णमणुक्कस	३०	४५	अवरे देसट्ठाणे	१८५	२८६
अजहण्णमणुक्कस्सं	३२	४८	अवरे बहुगं देदि हु	२८९	४४०
अट्ठ-अपुण्णपदेसु वि	१२	२०	अवरे विरदट्ठाणे	१९२	३०२
अडवस्सादो उवरिं	१३०	२०३	असुहाणं पयडीणं	८०	१२७
अडवस्से उवरिम्मि	१३२	२०७	असुहाणं रसखंड	२२४	३३९
अडवस्से य ठिदीदो	१३६	२२८	अहवावलिगदवरठिदि	६५	१०२
अडवस्से संपहियं	१३५	२२३	आगवज्जाणं ठिदि	७८	१२५
अडवस्से संपहियं	१३३	२०८	आउं पडि णिरयदुगे	११	१९
अणियट्टी अद्धाए	११३	१८१	आदिमकरणद्धाए	४२	५७
अणियट्टिकरणपढमे	११८	१९०	आदिमकरणद्धाए	४०	५६
अणियट्टिस्स य पढमे	२२७	३४८	आदिमलद्धिभवो जो	५	९
अणियट्टी संखगुणो	९५	१५३	उक्कस्सट्ठिदि बंधिय	५९	९१
अणियट्टी संखेज्जा	११५	१८५	उक्कस्सट्ठिदिबंधे	६६	१०४
अणुपुव्वी संकमणं	२५०	३७५	उक्कस्सट्ठिदिबंधो	५८	८८
अणुभयगाणंतरजं	२४८	३७२	उदइल्लाणं उदये	२९	४४
अणुसमओवट्टणयं	१४९	२४५	उदयवहिं ओक्कट्टिय	१४९	२४६
अथिरअसुभजसअरदी	१५	२२	उदयाणमावलिम्हि य	६८	१०८
अद्धाखए पडंतो	३१०	४८४	उदयाणं उदयादो	३१३	४८७
अमणट्ठिदिसत्तादो	११९	१९०	उदयादि अवट्ठिदगा	३०६	४७५
अवरवरदेसलद्धी	१८४	२८५	उदयादिगलिदसेसा	१४३	२३९
अवरा जेट्ठाबाहा	३८०	५६०	उदयावलिस्स दव्वं	७१	११३
अवरादो चरिमोत्ति य	२९१	४५१	उदयावलिस्स बाहिं	२२५	३४५
अवरादो वरमहियं	३६६	५४९	उदयिल्लाणंतरजं	२४७	३७१
अवरा मिच्छतियद्धा	१८०	२७९	उदये चोद्दसघादी	२८	३७

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
उवणेउ मंगलं	१६७	२६६	ओक्कड्डिदइगिभागे	६९	१०९
उवरि समं उक्कीरइ	२४४	३६८	ओकड्डिदम्हि देदि	७३	११५
उवसमचरियाहिमुहा	२०६	३१७	ओक्कट्टिदइगिभाग	१०४	१६७
उवसमसम्मत्तद्धा	१००	१६३	ओक्कड्डिद इगिभागं	२८५	४२४
उवसमसम्मत्तुवरिं	१०३	१६६	ओक्कट्टिद बहुभागे	१४२	२३५
उवसमसेढीदो पुण	३५२	५३७	ओदरगकोहपढमे	३२२	५०१
उवसमगो य सव्वो	९९	१६२	ओदरगकोहपढमे	३२३	५०७
उवसमिय सकल-	२०५	३१७	ओदरगपुरिसपढमे	३२४	५०७
उवसामणा णिधत्ती	३४३	५२७	ओदरगमाणपढमे	३२०	४९९
उवसंतद्धा दुगुणा	३७५	५५६	ओदरगमाणपढमे	३२१	५०१
उवसंतपढमसमये	३०४	४७३	ओदरबादरपढमे	३१७	४९६
उवसंते पडिवडिदे	३०९	४८३	ओदरमायापढमे	३१८	४९८
उवहिसहस्सं तु	११६	१८५	ओदरमायापढमे	३१९	४९९
एइंदियट्ठिदीदो	२३१	३५२	ओदरसुहुमादीदो	३१४	४९०
एक्केक्कट्ठिदिखंडय	७९	१२६	ओदरिय तदो विदीया-	६७	१०५
एत्तो उवरिं विरदे	१९१	२९९	अंतरकदपढमादो	२५३	३८०
एत्तो समऊणावलि	५७	८६	अंतरकदपढमादो	८७	१३८
एदेहिं विहीणाणं	२६	३४	अंतरकदादु छण्णो	२६६	३९८
एयट्ठिदिखंडुक्कीरण	८५	१३४	अंतरकरणादुवरिं	२५५	३८३
एय णवुंसयवेदं	२५२	३७९	अंतरपढमादु कमे	२५१	३७८
एवं पमत्तमियर	२२०	३३५	अंतरपढमे अण्णो	२४५	३६९
एवं पल्लासंखं	३२९	५११	अंतरपढमं पत्ते	८९	१४१
एवं पल्ले जादे	२३३	३५५	अंतरहेदुक्कीरद-	२४६	३७०
एवंविहसंकमणं	७६	१२०	अंतिमरसखंडुक्की-	९३	१४९
एवं संखेज्जेसु ट्ठिदि-	२५९	३८८	अंतिमरसखंडुक्कीरण	१७८	२७८

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
अंतोकोडाकाडी विट्ठाणे	७	१७	खुज्जद्धं णाराए	१४	२२
अंतोकोडाकोडीठिदिं	२४	३३	गुणसेढिसंखभागं	१३९	२३१
अंतोकोडाकोडी जाहे	९७	१६०	गुणसेढीए सीसं	८६	१३५
अंतोकोडाकोडी	२२८	३४९	गुणसेढीगुणसंकम	५३	८०
अंतोमुहुत्तकाला	३४	५०	गुणसेढी गुणसंकम	३७	५३
अंतोमुहुत्तकाले	१६९	२६८	गुणसेढीदीहत्तम	५५	८२
अंतोमुहुत्तकालं	११७	१८७	गुणसेढी सत्थेदर	३१५	४९१
अंतोमहुत्तमद्धं	१०२	१६५	घादितियाणं णियमा	३२९	५११
अंतोमुहुत्तमेत्तं आवलिमेत्तं	२११	३२५	घादितिसादं मिच्छं	२०	२९
अंतोमुहुत्तमेत्तं घादि-	३०१	४७०	चडपडणमोहचरिमं	३८६	५६५
अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसंत-	३०५	४७४	चडपडअपुव्वपढमो	३९०	५६८
कदकरणसम्मखवणा	१५४	२५२	चडपडणमोहपढमं	३८५	५६४
कमकरणविणट्ठादो	३३७	५१९	चडणे णामदुगाणं	३८७	५६६
कम्ममलपडलसत्ती	४	८	चउणोदरकालादो	३४८	५३४
करणपढमादु जावय	१४७	२४३	चडबादरलोहस्स य	३७१	५५३
करणे अधापवत्ते	३४७	५३३	चडमाणस्स य णामा	३८१	५६२
किंट्टिं सुहुमादीदो	३००	४६९	चडमाण अपुव्वस्स य	३९२	५७०
किट्टीकरणद्धहिया	३७०	५५२	चडमायमाणकोहो	३८३	५६३
किट्टीकरणद्धाए	२९३	४५४	चडमायावेदद्धा	३७३	५५४
किट्टीयद्धाचरिमे	२९४	४५५	चदुगदिमिच्छो सण्णी	२	३
कोहदुगं संजलणग	२७१	४०५	चडतदिय अवरबंधं	३८२	५६२
कोहस्स पढमट्ठिदी	२७२	४०६	चरिमणिसेओक्कड्डे	६०	९१
कोहोवसामणद्धा	३७४	५५५	चरिमाबाहा तत्तो	१८१	२७९
खयउवसमियविसोही	३	७	चरिमे फालिं दिण्णे	१४५	२४१
खवगसुहुमस्स चरिमे	२०४	३१२	चरिमे सव्वे खंडा	४७	७०

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
चरिमं फालिं देदि दु	१४४	२३९	ठिदिबंधोसरणं पुण	१७५	२७४
छद्दव्वणवपयत्थो	६	१०	ठिदिरसघादो णत्थि	२०९	३२२
जत्तो पाये होदि हु	३३८	५२०	ठिदिसत्तमपुव्वदुगे	३५१	५३६
असंख-	२५६	३८५	णिरयतिरिक्खणराउग	१६	२४
जत्तो पाये होदि हु ठिदि-	१२३	१९५	णरतिरियाणं ओघो	१८७	२८९
जत्थ असंखेज्जाणं	१३७	२३०	णरतिरिये तिरियणरे	२९०	४५०
जदि गोउच्छविसेसं	३५०	५३५	णवरि असंखाणंतिम	२६३	३९२
जदि मरदि सासणो सो	१५१	२४६	णवरि य पुंवेदस्स य	३२७	५०९
जदि वि असंखेज्जाणं	१५०	२४६	णवरि य णामदुगाणं	२६२	३९१
जदि संकिलेसजुत्तो	१२७	१९८	णामदुगवेयणीय	३०७	४७८
जदि होदि गुणिदकम्मो	५१	७७	णामधुवोदय बारस	५६	८५
जम्हा उवरिमभावा	३५	५१	णिक्खेवमदित्थावण	१११	१७८
जम्हा हेट्ठिमभावा	३५६	५४२	णिट्ठवगो तट्ठाणे	६४	९६
जस्सुदयेणारूढो	३५५	५४१	तक्काले बज्झमाणे	३३५	५१७
जस्सुदयेणारूढो	३६१	५४६	तक्काले मोहणियं	२३८	३६२
जस्सुदयेण य चडिदो	२१५	३२९	तत्काले वेयणियं	३६९	५५१
जावंतरस्स दुचरिम	८	१३	तग्गुणसेढी अहिया	४१	५६
जेट्ठवरट्ठिदिबंधे	२२३	३३८	तच्चरिमे ठिदिबंधो	२६४	३९६
ठिदिखंडयं तु खइये	३८९	५६७	तच्चरिमे पुंबंधो	९८	१६०
ठिदिखंडयं तु चरिमं	१३४	२२२	तट्ठाणे ठिदिसत्तो	१३८	२३०
ठिदिखंडाणुक्कीरण	२३०	३५१	तत्तक्काले दिस्सं	३४२	५२६
ठिदिबंधपुधत्तगदे	२४०	३६५	तत्तो अणियट्टिस्स य	३३	४९
ठिदिबंधसहस्सगदे	२२९	३५०	तत्तो अभव्वजोग्गं	१०	१६
ठिदिबंधसहस्सगदे	२५८	३८७	तत्तो उदहिसदस्स य	१९६	३०८
ठिदिबंधाणोसरण	५४	८१	तत्तोणुभयट्ठाणे	२०७	३१९

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
तत्तो तियरणविहिणा	६२	९६	तो देसघादिकरणा-	२३	३२
तत्तोदित्थावणगं	१९५	३०६	तं णरदुगुच्चहीणं	२२	३१
तत्तो पडिवज्जगया	९४	१५१	तं सुरचउक्कहीणं	३२८	५१०
तत्तो पढमो अहिओ	१९७	३०९	थीअणुवसमे पढमे	३६२	५४६
तत्तो य सुहुमसंजम	१४१	२३५	थीउदयस्स य एवं	२६१	३९०
तत्थ असंखेज्जगुणं	१८६	२८७	थीउवसमिदोणंतर	२६०	३८९
तत्थ य पडिवादगया	१९३	३०३	थीयद्धासंखेज्जदि	१७४	२७३
तत्थ य पडिवादगया	३९१	५६९	दव्वं असंखगुणियं	३१	४६
तप्पढमट्ठिदिसत्तं	३७२	५५४	दुतिआउतित्थाहार	१६८	२६७
तम्मायावेदद्धा	३४९	५३४	दुविहा चरित्तलद्धि	१५९	२५६
तस्सम्मत्तद्धाए	४३	६४	दुरावकिट्टिपढमं	२१	३०
ताए अद्धापवत्तद्धाये	३६४	५४७	देवतसवण्णअगुरु	१४६	२४२
ताहे चरिमसवेदो	२२१	३३६	देवेसु देवमणुए	१७६	२७६
तिकरणबंधोसरणं	१३	२१	देसो समये समये	३५४	५३८
तिरियदुगुज्जोवे वि य	२३९	३६३	दोण्हं तिण्हं चउण्हं	११०	१७७
तीदे बंधसहस्से	३८८	५६६	दंसणमोहक्खवणा	१६३	२५९
तीसियचउण्ह पढमो	१७	२५	दंसणमोहूणाणं	२०८	३१९
ते चेव चोद्दसपदा	१९	२६	दंसणमोहुवसमणं	१६५	२६५
ते चेवेक्कारपदा	२१९	३३४	दंसणमोहे खविदे	१९८	३१२
तेण परं हायदि वा	२३५	३५९	पडचरिमे गहणादी	३६७	५५०
तेत्तियमेत्ते बंधे	२३६	३६०	पडणजहण्णट्ठिदि	३७६	५५८
तेत्तियमेत्ते बंधे	२३७	३६१	पडणस्स असंखाणं	३८४	५६३
तेत्तियमेत्ते बंधे	१८	२६	पडणस्स तस्स दुगुणं	३७७	५५६८
ते तेरसविदियेण य	३०८	४८०	पडणाणियट्टियद्धा	४५	६५
तेसिं रसवेदमवट्ठाणं	२४२	३६७	पडिखंडगपरिणामा	२०१	३१२

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
पडिवज्जजहण्णदुगं	३७८	५५९	पढमो अधापवत्तो	७७	१२२
पडिवडवरगुणसेढी	१९४	३०३	पढमं अवरवरट्ठिदि	५०	७६
पडिवादगया मिच्छे	१९९	३१२	पढमं व विदियकरणं	२०२	३१२
पडिवादादितिदयं	१८८	२९०	परिहारस्स जहण्णं	१६१	२५७
पडिवाददुगवरवरं	४४	६५	पलिदोवमसत्तादो	१६०	२५६
पडिसमयगपरिणामा	२८६	४२८	पलिदोवमसत्तादो	१२०	१९१
पडिसमयमसंखगुणा	७५	११९	पल्लट्ठिदिदो उवरिं	११४	१८३
पडिसमयमसंखगुणं	७४	११९	पल्लस्स संखभागो	३९	५५
पडिसमयमोक्कड्डदि	२८३	४१७	पल्लस्स संखभागं मुहुत्त-	१२१	१९२
पढमठिदिअद्धंते	१७९	२७८	पल्लस्स संखभागं तस्स	१८२	२७९
पढमट्ठिदिखंडुक्की	८८	१३९	पल्लस्स संखभागं चरिम-	२३२	३५४
पढमट्ठिदियावलि	२७४	४०७	पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं	२४१	३६५
पढमट्ठिदिसीसादो	९१	१४५	पुणरवि मदिपरिभोगं	२६७	३९९
पढमादो गुणसंकम	९६	१५५	पुरिसस्स उत्तणवकं	२६५	३९७
पढमापुव्वजहण्णं	८२	१३०	पुरिसस्स य पढमट्ठिदि	३०२	४७०
पढमापुव्वरसादो	२६८	४०२	पुरिसादीणुच्छिट्ठं	३०३	४७२
पढमावेदो संजलणाणं	२६९	४०३	पुरिसादो लोहगयं	३२६	५०९
पढमावेदे तिविहं	१८३	२७९	पुरिसे दु अणुवसंते	११२	१७९
पढमे अवरो पल्लो	४८	७१	पुव्वं तिरयणविहिणा	३५३	५३८
पढमे करणे अवरा	४९	७६	पुंकोधोदयचलिय	३६५	५४८
पढमे करणे पढमा	४६	६९	पुंकोहस्स य उदये	३२५	५०८
पढमे चरिमे समये	२९८	४६२	पुंसंजलणिदराणं	३१६	४९५
पढमे चरिमे समये	२२६	३४७	बादरपढमे किट्टी	२९६	४५७
पढमे छट्ठे चरिमे	२७	३५	बादरलोभादिठिदी	७२	११३
पढमे सव्वे विदिये	३४४	५२९	मज्झिमधणमवहरिदे	२७६	४११

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
माणदुगं संजलणग-	२७७	४१२	मोहस्स य ठिदिबंधो	३३६	५१८
माणस्स य पढमठिदी	२७५	४१०	मोहं वीसिय तीसिय	३४१	५२४
माणस्स य पढमठिदी	३६०	५४५	मोहस्स पल्लबंधे	८१	१२९
माणादितियाणुदये	३५९	५४४	रसगदपदेसगुणहा	१५३	२५०
माणोदयचडपडिदो	३५७	५४३	रसठिदिखंडुक्कीरण-	३५८	५४३
माणोदयेण चडिदो	२८०	४१४	लोभोदयेण चडिदो	३३४	५१६
मायदुगं संजलण	२८१	४१४	लोयाणमसंखेज्जं	३३२	५१४
मायाए पढमठिदी	२७९	४१३	लोहस्स असंकमणं	२५७	३८७
मायाए पढमठिदी	२५	३३	वस्साणं बत्तीसा	१६२	२५८
मिच्छणथीणतिसुरचउ	९०	१४३	विदियकरणस्स पढमे	१५२	२५०
मिच्छत्तमिस्ससम्म-	२००	३१२	विदियकरणादिमादो	९२	१४९
मिच्छयददेसभिण्णे	१५८	२५५	विदियकरणादिमादो	५२	७९
मिच्छंतिमठिदिखंडो	१०८	१७५	विदियकरणादिसमया	२२२	३३७
मिच्छंतं वेदंतो	१२६	१९७	विदियकरणादिसमये	१७७	२७८
मिच्छस्स चरिमफालिं	१०९	१७६	विदियकरणादु जावय	२१३	३२८
मिच्छाइट्ठी जीवो	१२४	१९६	विदियट्ठिदिस्स दव्वं	२१६	३३१
मिच्छुच्छिट्ठादुवरिं	१५७	२५४	विदियट्ठिदिस्स दव्वं	२९५	४५६
मिच्छे खविदे सम्मदु	१७०	२६९	विदियद्धा परिसेसे	२९२	४५३
मिच्छो देसचरित्तं	१७१	२७०	विदियद्धा संखेज्जा	२८४	४२१
मिच्छो देसचरित्तं	१२५	१९६	विदियद्धे लोभावर	८३	१३१
मिस्सुच्छिट्ठे समये	१०७	१७४	विदियं व तदिय करणं	२९९	४६६
मिस्सुदये सम्मिस्सं	१२८	१९९	विदियादिसु समयेसु	१३१	२०४
मिस्सदुगचरिमफाली	२३४	३५९	विदियावलिस्स पढमे	३३३	५१५
मोहगपल्लासंख-	३३१	५१३	विवरीयं पडिहण्णदि	१९०	२९८
मोहस्स असंखेज्जा	३४०	५२१	वेदगजोगो मिच्छो	६३	९६

गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.	गाथा	गा.क्र.	पृ.क्र.
वोलिय बंधावलियं	३४६	५३१	सुहुमप्पविट्ठसमये	३६८	५५१
सट्ठाणे तावदियं	२४९	३७५	सुहुमंतिमगुणसेढी	२९७	४५८
सत्तकरणाणि यंतर	६१	९४	से काले किट्टिस्स य	१७३	२७२
सत्तगट्ठिदिबंधे	१६६	२६५	से काले देसवदी	२७३	४०७
सत्तण्हं पयडीणं	१६४	२६५	से काले माणस्स य	२७८	४१२
सत्तण्हं पयडीणं	३८	५४	से काले मायाए	२८२	४१५
सत्थाणमसत्थाणं	३६	५२	से काले लोहस्स य	७०	१११
समए समए भिण्णा	१४०	२३४	सेसिगिभागे भजिदे	१२९	२०२
समत्तचरिमखंडे	२१२	३२६	सेसं विसेसहीणं	३१०	४८४
सम्मत्तपयडिपढम-	२१४	३२९	सोदीरणाण दव्वं	८४	१३२
सम्मत्तपयडिपढम-	९	१५	संखेज्जदिमे सेसे	३७९	५६०
सम्मत्तहिमुहमिच्छो	१७२	२७०	संजदअधापवत्तम-	२७०	४०४
सम्मत्तुप्पत्तिं वा	२१८	३३३	संजलणचउक्काणं	२४३	३६७
सम्मत्तुप्पत्तीए	१५५	२५३	संजलणाणं एक्कं	२५३	३८०
सम्मदुचरिमे चरिमे	२१०	३२३	संढादिमउवसमगे	३६३	५४७
सम्मस्स असंखेज्जा	१२२	१९२	संढुदयंतकरणो	३३०	५१२
सम्मस्स असंखाणं	२१७	३३२	संढणुवसमे पढमे	२८७	४२९
सम्मादिठिदिज्झीणे	१०५	१७३	हेट्ठासीसे उभयग-	२८८	४३९
सम्मुदए चलमलिण-	१५६	२५४	हेट्ठासीसं थोवं		
सम्मे असंखवस्सिय	१८९	२९७			
सयलचरित्तं तिविहं	२०३	३१२			
सामयियदुगजहण्णं	१०१	१६४			
सायारे पट्ठवगो	१	२			
सिद्धे जिणिंदचंदे	१०६	१७३			
सुत्तादो तं सम्मं	३१२	४८६			